कन्नड साहित्य का बृहद् इतिहास

कन्नड साहित्य का बृहद् इतिहास

लेखक

त० सु० श्यामराव
डॉ० मे० राजेश्वरय्या

हिन्दी रूपान्तर

डॉ० मे० राजेश्वरय्या
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर

भूमिका

जब साहित्य को और उसमें भी उच्चस्तरीय साहित्य को लोकप्रिय बनाना अत्यंत कष्टसाध्य कार्य है तब साहित्य के इतिहास को आकर्षक बनाकर प्रस्तुत करना सचमुच साहस का कार्य है। यह प्रसन्नता की बात है कि इस ग्रंथ के लेखकों को इस साहसिक कार्य में काफी सफलता प्राप्त हुई है।

इस ग्रंथ में शुष्क पांडित्य प्रदर्शन के स्थान पर साधारण सहृदय पाठकों में साहित्यिक रुचि को जगा कर उनके सामने सरल और सुपाठ्य सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। यहाँ साहित्य के इतिहास को केवल 'इतिहास' न बनाकर साहित्यांश के ही अन्तर्गत इतिहासांश को भी सरल शैली में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। यही कारण है कि यह साहित्य का इतिहास, साहित्य और इतिहास दोनों की रक्षा कर सका है।

मैं आशा करता हूँ कि साहित्य का यह इतिहास अपने पाठकों को कन्नड की मूल कृतियों के पठन-पाठन की ओर प्रेरित करेगा।

हममें से कुछ समीक्षक अपने आत्मगौरव की स्थापना हेतु हमारे साहित्य की तुलना अंग्रेजी साहित्य से करने के अभ्यस्त हैं। यह समीक्षा की दृष्टि से अप्राकृत है। काश कि हमारे ग्रंथकार कम से कम ग्रंथ के अन्त में परिशिष्ट के तौर पर हमारे साहित्य की प्राचीनता, विविधता तथा उत्तमता आदि का विवरण देकर हमारे साहित्य की परिसीमाओं का निर्धारण तो करते! अंग्रेजी काव्य के प्रपितामह कवि चौसर ने 1340 ई० में जन्म लिया जबकि हमारे महाकवि पंप उसके पाँच सौ वर्षों के पहले ही 902 में जन्म ले चुके थे। शेक्सपियर ने 1564 ई० में जन्म लिया था। जब तक हमारे यहाँ के पंप, रन्न, जन्न, नागवर्म, हरिहर, राघवांक, नारणप्पा, रत्नाकर आदि महाकवियों ने कन्नड साहित्य श्री को महोज्वल रूप प्रदान कर गये थे। इस ऐतिहासिक तथ्य से शायद कन्नड भाषा-भाषी की मूढ़ता और दीनता का थोड़ा बहुत निवारण हो जाता है।

मुझे यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि यह ग्रंथ हिन्दी में अनूदित होकर अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त करेगा। मेरी तो अपनी राय है कि प्रचार और विज्ञापन के अभाव में कन्नड के प्रति जितना अन्याय हो रहा है उतना और किसी भारतीय भाषा के प्रति नहीं हुआ है।

—कुवेंपु

लेखकों की ओर से

हमें अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि कन्नड साहित्य के बृहद् इतिहास को लिखने की हमारी इच्छा ईश्वर की असीम कृपा से पूरी हो रही है। ढाई सौ पृष्ठों में इस इतिहास को समाप्त करने का हमारा विचार था, पर यह ग्रंथ चार सौ पृष्ठों तक बढ़ता गया है।

इस ग्रंथ के बारे में पाठकों के सम्मुख कुछ सुझाव रखना आवश्यक प्रतीत होता है। इस कार्य को हमने साधारण जनता की सेवा के लिए अपने ऊपर लिया न कि अपने पांडित्य प्रदर्शन के लिए। यही कारण है कि हमने इस ग्रंथ में "शकटरेफ" तथा 'ळ' 'कुळ', 'क्षळ' जैसे अक्षर भेदों का प्रयोग नहीं किया है। क्योंकि यह अक्षर भेद आज के लोक जीवन के कन्नड में प्रयुक्त नहीं हैं। एक साधारण कन्नड पाठक को इन अक्षरों के भेद से किसी तरह का लाभ नहीं है। यदि पाठक हमारे इस इतिहास से प्रेरित होकर कन्नड की मूल कृतियों के पठन-पाठन की ओर प्रवृत्त होगें तो हम अपने इस प्रयास को धन्य समझेंगे। कवि राघवांक ने 650 वर्ष पहले कहा था कि जो चलते हैं वे ही ठोकर खा सकते हैं, बैठे हुए ठोकर क्या खाक खायेंगे ! हाँ कुछ छापे की गलतियाँ इस ग्रंथ में दिखाई देती हैं। इसके अलावा ग्रंथ के विभागों के शीर्षकों के नामकरण में भी यत्र-तत्र कुछ दोष दिखाई देते हैं; और भी प्रकार की कुछ भूलें इस ग्रन्थ में हमारी ओर से रह गयी हैं। उदारचेता पाठकों के लिए ये बातें मामूली हैं। पुस्तक के दूसरे संस्करण में इन गलतियों को अवश्य सुधारा जायगा। हमारे पूज्य विद्या गुरु और कर्नाटक के राष्ट्रकवि पद्मभूषण डॉ० के. वी. पुट्टप्पा (एम. ए., डी. लिट.) ने इस ग्रंथ का आदि से अंत तक पठन करके अपनी साधिकार लेखनी से इस ग्रंथ के लिए एक आमुख लिखकर हम पर अनुग्रह किया है। साथ ही साथ लोकसभा के उपाध्यक्ष कन्नड के उत्कट प्रेमी एस. वी. कृष्णमूर्ति राव जी ने इसे अपने को समर्पित करने की अनुमति प्रदान की है। कन्नड माता के इन दोनों सुपुत्रों को हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। डॉ० प्रभुशंकर और डॉ० चिदानंद मूर्ति ने पांडुलिपि पढ़ कर बड़े मूल्यवान सुझाव दिये। हमारे कई मित्रों ने इसकी पांडुलिपि को पढ़कर इस ग्रंथ की मनोहरता की प्रशंसा की है। शुद्ध पांडुलिपि तैयार करने में श्री एन. सुब्रह्मण्यम् और श्री नागराज ने काफी सहायता की है, अतः हम उनके ऋणी हैं।

स. सु. श्यामराव
मे. राजेश्वरय्या

हिन्दी रूपान्तर

इस बृहद् ग्रंथ का हिंदी रूपांतर मैंने किया। इस व्यस्त जीवन में इतने बड़े ग्रंथ का हिंदी अनुवाद कैसे हो गया यह चमत्कार ही है। इसे तो मैं भगवान की ही कृपा मानता हूँ। इस कार्य में मुझे श्री पंडित वेंकटाचल शर्मा से थोड़ी बहुत सहायता मिली है। मेरे सहयोगी श्री तिप्पेस्वामी ने इसके प्रूफ देखने में सहायता दी है। अन्त में दिल्ली निवासी श्री बी. आर. नारायण तथा श्रीमती कमल नारायण की सेवा को मैं कभी नहीं भूल सकता। उन दोनों ने इसके उत्तरार्ध के अनुवाद को पढ़कर आवश्यक सुधार करके प्रूफ पढ़ने का भी कष्ट उठाया।

इस बृहद् ग्रंथ को प्रकाशित करने के साहस से आगे आये वाणी प्रकाशन के युवा मालिक श्री अशोक कुमार का भी मैं बड़ा आभारी हूँ। मैं आशा करता हूँ कि हिंदी जगत में इसका समुचित स्वागत होगा।

—मे. राजेश्वरय्या

क्रम

पम्प-पूर्व युग

भारत में सैकड़ों भाषाएँ व्यवहृत हैं। इनमें केवल चौदह भाषाएँ राष्ट्रभाषाओं के रूप में स्वीकृत हैं। इन चौदह भाषाओं में कन्नड़ भी एक है। इस भाषा को जानने वालों की संख्या करीब दो करोड़ है। चौहत्तर हजार वर्ग मीलों के प्रदेश में कन्नड़ भाषा-भाषी बसे हैं। अभी-अभी जो 'मैसूर' के नाम से तथा भाषाई पुनर्संघटन के बाद 1956 नवम्बर पहली से जो 'विशाल मैसूर' के नाम से पुकारा जाता था वह कन्नड़ भाषा-भाषी प्रदेश 1973 नवम्बर पहली से अपने प्राचीन नाम 'कर्नाटक' से सुशोभित कर दिया गया है। प्राचीन ग्रन्थों में तथा शिलोत्कीर्णों में केवल इस प्रदेश को ही नहीं अपितु यहाँ की इस भाषा को भी कर्नाटक नाम से अभिहित किया है। दक्षिण भारत के इस 'कन्नाड' प्रदेश में जलवायु हितकर और भूमि उपजाऊ है। हमारे एक कवि ने कहा है कि यहाँ का वन प्रान्त हाथियों को जन्म देता है, चन्दन को पैदा करता है, और धरती में सोना फलता है; यह प्रदेश आम और चमेली के लिए तो जन्मस्थान है। यहाँ के निवासी आम का आस्वादन कर, चमेली को धारण कर आनन्द मना सकने वाले रसिक हैं। एक कवि प्रश्न करता है कि आम और चमेली हो तो और क्या चाहिए ? आम से बढ़कर फल, जो संसार-सार-सर्वस्व है, और कौन हो सकता है ? इस तरह की भावभूमि में विचरने वाले व्यक्ति ऐहिक की अवहेलना न करते हुए आमुष्मिक से दूर न होकर एक समन्वित सम्पूर्ण जीवन जीने के आदी हैं। द्वैत-अद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत की त्रिवेणी का संगम यहाँ हुआ है। सबकी समानता का उद्घोष कर कर्म को धर्म की गद्दी पर बिठाने वाले बसवेश्वर इसी मिट्टी में जनमे, पले और बड़े हुए। अनेकता में एकता की परख करने वाली कन्नड़ जनता की उदार चेतना ने 'हरिहर' और 'शंकर नारायण' की सृष्टि की है। इस प्रदेश में स्थान-स्थान पर दिखने वाले चित्र, शिल्प आदि कलाकृतियाँ इन लोगों के धर्म-प्रेम और रसिक जीवन की साक्षी हैं। ऐसे परिसर प्रभाव में विकसित साहित्य पर्याप्त मात्रा में सहज ही समृद्धशाली है।

दक्षिण भारत में तमिल, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम्, तुळु—ये पाँच प्रमुख भाषाएँ हैं। इन्हें "पंच-द्राविड़" कहते हैं। इन पाँचों की मातृका एक "मूल-द्राविड़" भाषा होगी—ऐसा विद्वानों का मत है। परन्तु इस मूल-द्राविड़ से फूटकर कन्नड़ भाषा कब एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में अपनी एक विशिष्टता के साथ विकसित हुई इसका निर्णय करना प्रमाणों के अभाव में सम्भव नहीं। कन्नड़ प्रदेश और इस प्रदेश की भाषा निस्सन्देह ईस्वी सन् से प्राचीन है, यह कहा जा सकता है। रामायण और महाभारत में "कर्नाटक" का उल्लेख है। ईसा-पूर्व दूसरे शतक में निर्मित एक ग्रीक-प्रहसन में पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त कन्नड़ शब्दों को चुनकर श्री गोविन्द पै जी ने दर्शाया है। ईसा-पूर्व दूसरे शतक में ग्रीस देश के यात्री टालेमी जब भारत आये थे तो उन्होंने कन्नड़ प्रदेश के प्रसिद्ध शहरों एवं बन्दरगाहों का उल्लेख अपने यात्रा-विवरण में किया है। कन्नड़ से जो शब्दावली प्राकृत साहित्य ने ली, ऐसे शब्दों को विद्वानों ने खोज-बीन कर दर्शाया है।

विद्वानों का मत है कि कन्नड़ का साहित्य भी उतना ही प्राचीन होगा जितना यह प्रदेश एवं भाषा है। स्वर्गीय प्रोफेसर श्री टी० एस० वेंकण्णय्या जी ने कहा है कि "बौद्ध ही कन्नड़ भाषा के आदि कवि होंगे; बौद्ध मत के पतन के साथ ही बौद्ध ग्रन्थों का भी नाश हुआ है।" (देखें—कन्नड़ साहित्य चरित्र और अन्य लेख, पृ० 18)। श्री गोविन्द पै जी ने ई० सन् 150 में स्थित हाल राजा की "गाथा सप्तशती" नामक प्राकृत ग्रन्थ में प्रयुक्त कन्नड़ शब्दों के आधार पर इस बात का अनुमान किया है कि कन्नड़ साहित्य इस काव्य से भी पहले रहा होगा। इन विद्वानों के अनुमान को केवल अनुमान मानकर ही टाल दें तब भी कन्नड़ साहित्य की प्राचीनता के विषय में शंका करने की आवश्यकता नहीं। अभी हमें जो कन्नड़-साहित्य उपलब्ध हुआ है वह पर्याप्त रीति से प्राचीन है। कन्नड़ की बोली साहित्य में प्रयुक्त होकर लिखित रूप में हमें जो अब तक उपलब्ध हुआ है वह हल्मिडि के शिलालेख का उत्कीर्ण है। यह ई० सन् 450 का है। इस प्रस्तरोत्कीरित लेख में अळकदम्ब नामक राजा के विज अरस नामक व्यक्ति को दो गाँव दान के रूप में देने की बात की है। यह प्रस्तर लेख गद्य में है और इस सम्पूर्ण लेख में केवल बीस शब्द कन्नड़ के हैं, शेष सब संस्कृत के हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इन शिलालेखों के उत्पन्न होने के समय तक कन्नड़ पर संस्कृत का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। इस शिलालेख में प्रयुक्त भाषाशैली पर गौर करने से यह बात भी स्पष्ट विदित होती है कि इस समय तक भाषा अच्छी तरह पुष्ट हुई थी और इस तरह पुष्ट बनने के लिए कुछ सदियाँ अवश्य लगी होंगी। इस बात का उल्लेख श्री एम० मरियप्पा भट्टजी ने इस शिलालेख के सम्बन्ध में अपने "संक्षिप्त कन्नड़ साहित्य चरित्रे", पृ० 7 में किया है। वह विशेष ध्यान देने योग्य बात है।

अब तक उपलब्ध सर्वप्रथम ग्रन्थ, कन्नड़ का, "कविराज मार्ग" है। इसका समय नवम शताब्दी है। इससे पहले कन्नड़ साहित्य विस्तृत रूप से विकसित था—यह निर्विवाद है। परन्तु इससे पहले का कोई समग्र ग्रन्थस्थ साहित्य हमें उपलब्ध नहीं हुआ है। अभी हमें जो उपलब्ध हुआ है वह केवल शिलालेख मात्र है। इन प्रस्तर लेखों में कुछ तो बहुत ही काव्यमय हैं। उदाहरण के लिए ई० सन् 700 के आसपास के इस निम्नांकित प्रस्तर-उत्कीर्ण का उल्लेख करते हैं—यह उस शिलालेख की भाषा और शैली है, देखें—

"साधुगें साधु माधुर्यन्गें माधुर्यं
बाधिप्प कलिगें कलियुग विपरीतन्
माधवनीतन् पेरनल्ल
ऑळ्ळित्त कॅय्वॉरार् पॉल्लदुमदरंतें
बल्लित्तु कलिगें विपरीता पुराकृत—
मिल्लि संदिक्कुमदु बन्दु
कट्टिद सिन्धमन् कॅट्टोदेनॅमगॅन्दु
बिट्टिवॉल कलिगें विपरीतंगहितर्क्कळ्
कॅट्टर् मेम् सत्तरविचारं"

(हलन्तान्त शब्दों को हिन्दी शब्दों की तरह उच्चरित न करें। पूर्ण अक्षर का उच्चारण

पूर्ण ही करें। जहाँ हल् का चिह्न अंकित है केवल उसी का अर्धोच्चारण करें। कन्नड़ में ह्रस्व 'ए ओ' हैं जो हिन्दी में इनका ह्रस्वोच्चार होने पर भी लिपि चिह्न नहीं। कन्नड़ में ह्रस्वोच्चार होता है। इस ह्रस्व के लिए ˇ इस हिन्दी के चिह्न को उल्टा कर ˇ यों अंकित किया है। उच्चारण के इन संकेतों को ध्यान में रखकर कन्नड़ को पाठक पढ़ने की कृपा करें।)

उपर्युक्त इस प्रस्तरोत्कीर्ण काव्यमय लेखन, भाव तथा भाषा के विद्युदालिंगन से उत्पन्न एक सुन्दर भावगीत है जिसका भाव यों है : "कलियुग विपरीतन्" के अभिधान से भूषित कन्नड़-कलि "कप्पॆ अरभट्ट" से सम्बन्धित वीरगीत है। वह "कलि-युग विपरीतन्" साधुओं के लिए साधु है और मित्रों के लिए मित्र; परन्तु प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर सामना करने के लिए सम्मुख आने वालों के लिए वह साक्षात् माधव की तरह भयंकर है। भलाई के बदले में भलाई और बुराई के प्रति बुराई करने में वह पुराकृत कर्मफल की तरह निश्चित है। बँधे सिंह को खुला छोड़ने वाले मूर्खों की तरह इस सुप्त सिंह "कलियुग विपरीतन्" को छेड़नेवाले मूर्ख कहीं के न रहेंगे और मृत्यु का आलिंगन करेंगे।"—कन्नड़ के शुद्ध देशी छन्द में निर्मित यह वीरगीत कर्नाटक के शूरवीर के सजीव चित्र को प्रत्यक्ष कराता है। भाषा ओजस्वी है, भाव स्वाभाविक एवं सत्त्वयुक्त।

इसी प्रस्तर-लेख के करीब-करीब समसामयिक श्रवण-बेळगोल के इस निम्नां-कित प्रस्तरोत्कीर्ण को भी देखें :—

> सुरचापंबोलॆं विद्युल्लतॆगळतॆरवॊल् मंजुवॊल् तोरॆबेगं
> पिरिंगु श्रीरूपलीलाधनविभवमहाराशिगळ् निल्लवार्गं
> परमार्थं मॆच्चॆनानी धरणियुळिरवानॆन्दु संन्यासनंगॊ
> ण्डुरुसत्वन् नंदिसेनप्रवरमुनिवरन् देवलोकक्कॆ संदान्।

उपर्युक्त वीरगीत बादामी के शिलालेख से है। यह एक वैराग्य-पूर्ण गीत है। इस गीत का भावार्थ यों है :—

"इस संसार के भोग-भाग्य इन्द्रधनुष की तरह, बिजली की चमक जैसे, बिजली जैसे चंचल हैं। इस नश्वर सुख को मैं पसन्द नहीं करता हूँ। मुझे अब इस संसार का जीवन पर्याप्त है।—ऐसा विचार कर संन्यास स्वीकार कर (सल्लेखन व्रत का आचरण करके) नन्दिसेन व्रती स्वर्ग सिधारे।"—इस वैराग्यगीत में प्रयुक्त शब्दों में जादू है, ऐसा शब्द-विन्यास कवि की लेखनी से ही सम्भव है, किसी सहृदय कवि ने ही इस काव्यमय लेख को लिखा होगा, यह सोचना कोई गलत नहीं। हमें यह बात अच्छी तरह विदित है कि कई काव्य-निर्माता कवियों ने शिलालेखों को भी लिखा है। ऐसा अनुमान भी किया जा सकता है कि इन शिलालेखों के लेखकों ने काव्य भी रचा होगा। और ऐसे काव्य कालगति से नष्ट हो गये होंगे या कहीं छिपे पड़े हों कुछ पता नहीं।

अब उपलब्ध सर्वप्रथम ग्रन्थ "कविराज मार्ग" पर विचार करें। यह एक लाक्षणिक ग्रन्थ है—अलंकार शास्त्र है। इसमें तीन अध्याय (परिच्छेद) हैं। इन अध्यायों के अन्त में "नृपतुंगदेवानुमतमप्प कविराज मार्ग दोळ्" (नृपतुंगदेव से स्वीकृत कविराज मार्ग में) अंकित है। इस अन्तिम पंक्ति के आधार पर यह निर्णीत है कि

राष्ट्रकूट राजा नृपतुंग अमोघवर्ष के समय में (ई० सन् 814-877) इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है। परन्तु इसी कथन के आधार पर ग्रन्थकर्ता के सम्बन्ध में बहुत चर्चा चल पड़ी है। क्या यह नृपतुंग की ही कृति है? या नृपतुंग राजा के निदेशानुसार उनके आश्रित किसी व्यक्ति की बनाई कृति है? राजाश्रय में रहने वाले श्रीविजय की यह कृति है? अथवा श्रीविजय नामक किसी प्राचीन कवि की कृति को नृपतुंग के दरबारी कवीश्वर नामक व्यक्ति ने लिखा? कविराज से मतलब कवि जो राजा थे या कवियों में जो राजा थे? यह कवि का राजमार्ग है या कविराज का मार्ग है? आदि-आदि कई तरह के प्रश्न उठाये गये हैं। चाहे जिस किसी ने इसे लिखा हो, इतना तो निश्चित है कि इस कृति पर नृपतुंग का काफी प्रभाव पड़ा है—इसमें शंका नहीं। फिलहाल हम इस सर्वसम्मत बात को स्वीकार कर लें कि इस कृति का कर्ता श्रीविजय कवि था।

कविराज मार्ग कन्नड़ साहित्य के इतिहास में एक बहुत ही मुख्य क्रोश-प्रस्तर (मील का पत्थर) है। इस कृति के कर्ता ने कन्नड़ प्रदेश, यहाँ की भाषा, इसके साहित्य और यहाँ की संस्कृति के सम्बन्ध में जो बातें कही हैं वे कर्नाटकियों के लिए आदरणीय हैं और वे इस प्रदेश की जनता के लिए गर्व करने की हैं। "कावेरियिंद मागोदावरिवरमिर्द नाडदा कन्नडदोळ् भाविसिद जनपदं"—[अर्थात् कावेरी नदी के प्रान्त भाग से लेकर गोदावरी नदी तक फैले हुए विस्तृत क्षेत्र का यह जनपद कन्नड़ (प्रदेश) है।] कविराज मार्ग के कर्ता की इस उक्ति के अनुसार कन्नड़ देश के उत्तर की सीमा गोदावरी और दक्षिणी सीमा कावेरी। परन्तु आज? महाराष्ट्र, तेलुगु और तमिल इस उत्तरी सीमा को दक्षिण की तरफ सरकाती आयी है। उस उक्त कन्नड़ प्रदेश में ठेठ कन्नड़ (तिरुळ्गन्नड) प्रदेश रहा उसकी सीमाओं का उल्लेख यों किया गया है—

"अदरॉळगं किसुवॉळला
विदित महा कॉणपनगरदा पुलिगॅरॅया
सदभिस्तुतमप्पॉकुं
दद नडुवण नडॆ नाडॆ कन्नडद तिरुळ्

किसुवॉळल्, कॉणपनगर, पुलिगॅरॅ, ऑंकुन्द—ये चार शहर आज क्रमशः पट्टदकल्लु, कॉप्पळ, लक्ष्मेश्वर, ऑक्कुंद के नाम से बच रहे हैं। जब इन चार शहरों का नाम सुनते हैं तब ऐसा लगता है कि ये चारों शहर कन्नड़ भाषा देवी के चित्र के चारों तरफ सजाये चार दीपस्तम्भ हैं।

कविराज मार्ग के कर्ता ने कन्नड़ देश के निवासियों के बारे में जो बातें कही हैं वे बड़ी ही रोमांचकारी हैं। वे इस प्रकार हैं:—

पदनरिदु नुडियलुं नुडि
दुदनरिदारयलुमापरा नाडवगळ्
चदुरर् निजर्दि कुरितो
दर्देयुं काव्य प्रयोग परिणत मतिगळ्॥

अर्थात् "कन्नड़ प्रदेश के लोग ठीक समझ-बूझ के साथ बोलते हैं—ऐसा बोलना वे जानते हैं; दूसरों से कही गयी बातों को अच्छी तरह समझकर उस पर विचार-

विमर्श कर सकने की योग्यता रखते हैं; जन्मतः बुद्धिमान हैं; काव्याभ्यासी न होने पर भी काव्य-प्रयोगों में परिणतमति हैं।" इतना ही नहीं, आगे और कहते हैं :—

कुरित्तवरल्लदें मसं
पॅरहं तंतम्म नुडियॉळॅल्लर् जाणर्
किर वक्कळ् मा मूगर
मरि पल्करिवर् विवेकमं मातुगळं ।

अर्थात् "ग्रन्थाभ्यास न करने पर भी अपनी भाषा में बड़े बुद्धिमान थे; छोटे बच्चे, गूँगे भी बातों को समझते थे; कहने वाले एवं सुनने वाले दोनों अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि वाले रहे होंगे। नहीं तो क्या ? नाडवर कन्नड़ भाषा के स्रष्टा हैं।

अस्तु, कविराज मार्ग एक लक्षण ग्रन्थ है, इसलिए यह निर्विवाद है कि इस ग्रन्थ से भी पहले कन्नड़ भाषा में साहित्य विकसित हुआ था। कविराज मार्ग के कर्ता ने काव्य नियमों के उदाहरण के रूप में उद्धृत कृतियों के कर्ताओं के नामों का उल्लेख किया है—ये कन्नड़ के पद्य-रचयिता कवि हैं :—

परम श्रीविजय कवी
श्वर पंडित चन्द्र लोकपालादिगळा
निरतिशय वस्तु विस्तर
विरचनें लक्ष्यं तदाद्यकाव्यक्कॅल्दुं ॥

श्रीविजय, कवीश्वर, पंडित, चन्द्र, लोकपाल आदि-आदि पद्य रचयिता कवि हैं तो

विमळोदय नागार्जुन
समेत जयबन्धु दुर्विनीतादि गळी
क्रम दॉळ् नॅगळ्चि गद्या
श्रय पद गुरुता प्रतीतियं कय्कोण्डर ॥

विमळ, उदय, नागार्जुन, जयबन्धु, दुर्विनीत आदि गद्य लेखन में प्रसिद्ध थे। कविराज मार्ग के कर्ता ने दो काव्य रूपों का उल्लेख किया है—एक, काव्य विमर्श रीति (बॅदंडॅ) दूसरी, काव्य रीति (चत्ताण)। कन्द (पद्यबन्ध की एक छन्दोरीति) और वृत्त (वर्णछन्द) सौन्दर्य बनकर सुन्दर काव्य में सज गये तो वह "बॅदंडॅ" (काव्य विमर्श रीति) है। शुद्ध कन्नड़ के ठेठ छन्द अक्कर, चौपदि, गीतिका, त्रिपदी के रूप में काव्य-श्री की वृद्धि में योग दें तो वह "चत्ताण" (काव्य की एक रीति) है।

कविराज मार्ग ने समय की भाषा व साहित्य के सम्बन्ध में कई अमूल्य जानकारियाँ हमें दी हैं, और सो भी बड़े सुन्दर ढंग से बातों को व्यक्त किया है। बताया है कि कन्नड़ भाषा के अनेक देशी रूप हैं। उन सभी रूपों को बताने में शेषनाग के हजार मुँह भी पर्याप्त नहीं। संस्कृत से अधिक प्रभावित तथा संस्कृत के अव्यय कन्नड़ शब्दों के साथ मिलकर प्रयोग करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ी हुई प्रतीत होती है। ऐसे प्रयोगों को देखकर कविराज मार्ग के कर्ता ने उन प्रयोगों का घोर विरोध किया है। ऐसे शब्दों के प्रयोग उन्हें परुष और कटु लगते थे। कन्नड़ में अरि-समास के प्रयोग कविराज मार्ग के कर्ता को अखर रहे थे, इसलिए ऐसे प्रयोगों को देखकर कहा कि अच्छी तरह उबलते हुए शुद्ध स्निग्ध दुग्ध में छाछ की बूँदें गिराकर दूध और छाछ मिलाने जैसा है। ऐसा लेखन जिसमें शब्द-सारूप्य नहीं, उन्हें पसन्द न था; अतः ऐसे

लेखन की तुलना श्वान मिलाये हुए दही से की है, और मूल्यवान्, मोती के साथ काली मिर्च मिलाने जैसा बताया है। अन्तलघुवाले शब्दों के साथ संयुक्त वर्ण मिलाने पर – ऐसे शब्द प्रयोग छोटे बच्चे के सिर पर बोझ रखने जैसा लगता है। वह सुष्ठु प्रयोग नहीं।" कविराज मार्ग एक लाक्षणिक शास्त्रग्रन्थ होने पर भी उसमें वर्णित ऐसे वर्णनों को जब देखते हैं तो लगता है कि कृतिकार कविहृदयी व्यक्ति था। कन्नड़ प्रदेश और भाषा तथा इस प्रदेश की जनता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा इस ग्रन्थ के कर्ता ने की है। इसीलिए श्रीमान् मुगळी ने इस ग्रन्थ को कर्नाटकियों का हस्त-दर्पण (कन्नडिगर कैपिडि) कहा है जो सर्वथा सही है। परन्तु विषय-निरूपण में कोई कहने लायक स्वातन्त्र्य इसके कर्ता ने नहीं लिया। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ की ऐसी कोई खास विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती। संस्कृत के लाक्षणिक प्रसिद्ध दंडि, भामह आदि की प्रेरणा से प्रेरित कृति है कविराज मार्ग। यह कविराज मार्ग उन संस्कृत ग्रन्थों से अधिक उत्तम नहीं।

कविराज मार्ग में उल्लिखित गद्य लेखक तथा पद्य रचयिता कवियों की कृतियाँ हमें उपलब्ध नहीं हुई हैं। परन्तु जिस रूप में इन लेखक और कवियों के नामों का उल्लेख हुआ है उससे लगता है कि वे लब्ध-प्रतिष्ठ कवि रहे होंगे। यह खेद की बात है कि इन महानुभावों की कोई कृति उपलब्ध नहीं—यह हम कन्नड़ भाषा-भाषियों का दुर्भाग्य है। इन लेखक व कवियों की कृतियाँ अनुपलब्ध होने पर भी इनमें एकाध साहित्यिकों के विषय में कुछ विवरण मिलता है। ऐसे कृतिकर्ताओं में दुर्विनीत एक कवि हैं। यह दुर्विनीत ई० सन् छः सौ के आस-पास के हैं और गंग-वंश के राजा भी। गंग राजाओं के शिलालेखों से यह विदित होता है कि यह बहुश्रुत एवं बड़े मेधावी थे। इन शिला-फलकों से यह भी मालूम पड़ता है कि उन्होंने कई ग्रन्थ भी लिखे थे। इन ग्रन्थों में कुछ का उल्लेख भी इन शिलोत्कीर्णों में है। ये ग्रन्थ संस्कृत के हैं या कन्नड़ के—यह बताना कठिन है। "अवंति सुन्दरी कथासार" नामक ग्रन्थ से विदित होता है कि संस्कृत के महाकवि भारवि इनके दरबारी कवि रहे। उन्होंने पैशाची भाषा की कृति "बृहत्कथा" को संस्कृत में अनुवाद किया, फिर इसी को "वड्डकथा" के नाम से कन्नड़ में प्रस्तुत किया है—यह महाकवि बेंद्रेजी का अनुमान है। कन्नड़ के कवियों की पंक्ति में श्रीविजय के नाम का उल्लेख है। "कन्नड साहित्य चरित्रे" (कन्नड़ साहित्य का इतिहास) के लेखक श्रीमान् मुगळी ने अपनी पुस्तक में ऐसी राय प्रकट की है कि कविराज मार्ग के कर्ता यही श्रीविजय होंगे। इन पद्य कवियों की पंक्ति में एक और कवि "चन्द्र" का उल्लेख आता है जिनके यश का गीत कन्नड़ के कवि चौडरस, दुर्गसिंह आदि ने गाया है। यह चन्द्र कवि कदाचित् वही होंगे जिनका कीर्तिगान कविराज मार्ग में किया गया है।

दुर्विनीत और चन्द्र दोनों कवि हैं—यह विदित होने पर भी उनकी कृतियों के बारे में कोई निर्दिष्ट विचार अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। कविराज मार्ग में कुछ पद्य उदाहृत हैं, इन पद्यों के रचयिता कौन हैं—यह विदित नहीं। इन पद्यों की रचना कविराज मार्ग के कर्ता ने अपनी कृति की आवश्यकता को दृष्टि में रखकर की हो—यह भी हो सकता है। परन्तु रामायण से सम्बन्धित कुछ घटना सन्निवेशों को लेकर चित्रित (कुछ पद्य) दस-बीस इस कविराज मार्ग में यत्र-तत्र मिलते हैं। इस

आधार पर ऐसा अनुमान समीचीन ही लगता है कि इस कृति से पूर्व रामायण की रचना हुई होगी।

कन्नड़ भाषा की प्राचीनता को प्रमाणित करने के लिए कविराज मार्ग के अतिरिक्त और भी कई सबूत मिलेंगे। भट्टाकलंक (ई० सन् 1604) नामक वैयाकरणी ने तथा (ई० सन् 1838) देवचन्द्र नामक कवि ने अपनी-अपनी कृतियों में एक तुंबळूराचार्य का नामोल्लेख किया है और बताया है कि उन आचार्य प्रवर ने "चूडामणि" नामक (व्याख्यान) व्याख्या-ग्रन्थ की रचना की थी। भट्टाकलंक ने इस ग्रन्थ के आकार को 96,000 पद्यों का बताया है तो देवचन्द्र ने इसे 84,000 का बताया है। इस ग्रन्थ की पद्य-संख्या दोनों में से चाहे किसी को मान लें—इसमें शक नहीं कि तुंबळूराचार्य का ग्रन्थ "चूडामणि" पर्याप्त मात्रा में बड़ा विपुल ग्रन्थ है। आचार्य प्रवर "तुंबळूराचार्य" ई० स० सातवीं सदी में रहे। व्याख्या ग्रन्थ जैसी शास्त्रीय कृति का निर्माण यदि ई० स० सातवीं सदी में हुई हो तो यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि इस भाषा में इस ग्रन्थ के निर्माण के पहले कम से कम दो-एक सदियों से कन्नड़ में साहित्य का निर्माण हुआ था। तुंबळूराचार्य के समकालीन 'श्यामकुंदाचार्य' ने कन्नड़ में "प्राभृत" की रचना की—ऐसा कहा जाता है। गंगराजा "सैगोट्ट शिवमार" ने जो, ई० स० आठवीं सदी में रहे, "गजाष्टक" नामक ग्रन्थ की रचना की थी जो बहुत जनप्रिय था। यह बात कुछ उस समय के शिलालेखों से स्पष्ट होती है। जिस समय कविराज मार्ग का प्रणयन हुआ उसी समय के आस-पास "गुणगांकियं" नामक छन्दशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ की रचना कन्नड़ में हुई थी—ऐसा तमिळ् भाषा के एक छन्दशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ से विदित होता है।

कविराज मार्ग के प्रणयन-समय के ही आस-पास "अगस गुणनन्दी" नामक दो महाकवि हो चुके थे—ऐसा प्रतीत होता है। बाद के कवि पोन्न, दुर्गसिंह और नयसेन आदि ने इन पूर्व कवियों की प्रशंसा की है। व्याकरण शास्त्री केशिराज ने इन पूर्व कवियों की कृतियों को अपनी कृति में परिभाषा-उदाहरणों के रूप में उद्धृत किया है। 'अगस' नामक कवि के "वर्धमान चरित" नामक संस्कृत ग्रन्थ से यह तो स्पष्ट होता है कि वह ई० स० 854 में रहे, साथ ही उसी "वर्धमान चरित" के इस वाक्य, "श्री अगस भूप कृते वर्धमान चरिते"—से ऐसा अनुमान भी किया जा सकता है कि वह राजा भी रहे होंगे। "गुणनन्दि" के नाम का उल्लेख तो भट्टाकलंक ने बहुत श्रद्धा और भक्ति के साथ "भगवान् गुणनन्दि" कहकर उद्धृत किया है। परन्तु उनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। श्रवण बेळगोळ के एक प्रस्तर-लेख में उल्लिखित "गुणनन्दि" की प्रशस्ति के आधार पर "कन्नड साहित्य चरित्रे" के लेखक श्री मुगळी ने पृ० सं० 47 में लिखते हुए यह अनुमान लगाया है कि यह आदि कवि पम्प के गुरु देवेन्द्र सैद्धान्तिक के गुरु रहे होंगे और ई० स० 900 में हुए होंगे। केशिराज ने "ळ" के स्थान पर रेफयुक्तद्वित्व के प्रयोग सम्बन्धी नियमों के उदाहरण के तौर पर गुणनन्दि के एक पद्य का उद्धरण दिया है—

"चुंचिदवॉल् विसिलळर कि
मुळ्ळिवद तळिरंत नॉन्दु

(तेज धूप के व्याप्त होने से या सूर्य की प्रखर किरणों के चुभने के कारण मुरझाये

क्रौंचल की तरह मन में दुखी होकर) ऊपर उद्धृत सूक्ति के इस अंश मात्र से हम अनुमान कर सकते हैं कि ये बहुत अच्छे कवि हुए होंगे।

कविराज मार्ग के बाद और आदि कवि पम्प के पहले दो और कवि ख्यात हुए जिनका उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। उनमें प्रथम कवि गुणवर्मा हैं। कन्नड़ के कृतिकर्ताओं में दो गुणवर्मा हैं; अतः इस गुणवर्मा को प्रथम कहना एक प्रचलित परम्परा है। गुणवर्मा दूसरे (1235) ने गुणवर्मा प्रथम की कीर्ति गायी है। नयसेन (1112), पार्श्वपंडित (1205), रुद्रभट्ट (1200) आदि अनेक कवियों ने इनकी प्रशंसा की है। दो प्रसिद्ध वैयाकरणी केशिराज और नागवर्मा ने इनके काव्यों से कई उद्धरणों को अपनी कृतियों में उद्धृत किया है। केशिराज ने अपने शब्दमणि दर्पण (व्याकरण) के 118वें सूत्र के उदाहरण के रूप में गुणवर्मा के "हरिवंश" नामक कृति से एक वाक्य (ईन्द पुलियवॉलिर्दळ्) उद्धृत किया है। नागवर्मा ने अपने भाषाभूषण (व्याकरण) में द्वितीया विभक्ति के उदाहरण के तौर पर निम्नांकित पद्य को उद्धृत किया है :—

"ऍनिसॅनिसंबुज पत्र नेत्रॅया
घन स्तनंगळ् बळॅगु किरातॅया
अनितनितुं वनदॉळ् वनेचरं
तनसु बिल्लानदनंतॅ कीसुवं"

इस छन्द वृत्त को उद्धृत कर "गुणवर्मकवेः भुवनैकवीरस्य प्रयोगः" कहा है। कवि मल्लिकार्जुन (12) द्वारा संकलित "सूक्ति सुधार्णव" तथा अभिनववादि विद्यानन्द (ई० स० 155) द्वारा संकलित "काव्यसार" नामक ग्रन्थ में भी कवि गुणवर्मा के "शूद्रक" काव्य से कुछ पद्य उद्धृत हैं। ये उद्धृत सारे पद वृत्त और कन्नड़ के विशिष्ट छन्दों (कन्द) में और साथ-साथ इन उद्धृत भागों में यत्र-तत्र कुछ गद्य-रूप में भी उदाहृत होने के कारण ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि यह चम्पूग्रन्थ हो सकता है। इन उद्धृत काव्य भागों में कहीं-कहीं किसी एक गंगराजा की स्तुति की गयी है। गंग-वंश के राजाओं में प्रसिद्ध एक राजा था। ऍरॅयप्पा ही वह राजा हो सकता है। यह 886 से 913 तक राज कर रहा था। इस बात को मानकर गुणवर्मा के समय को ई० स० 900 का निर्धारित किया गया है। इस तरह अनुशीलन करने पर यह स्वीकृत किया जा सकता है कि गुणवर्मा प्रथम ने "हरिवंश, भुवनैकवीर, शूद्रक" इन तीन ग्रन्थों की रचना की; और उनका "शूद्रक" गंगराजा के जीवनवृत्त से सम्बन्धित कथावस्तु से प्रभावित चम्पूकाव्य है। उपलब्ध काव्य-भागों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनका काव्य-ग्रन्थ काफ़ी प्रौढ़ है। देशी शैली से मार्गी ही इन्हें अधिक प्रिय था। इनकी कल्पना बहुत उन्नत स्तर की न होने पर भी ये निम्न स्तर के कवि न थे। कवि पम्प से पहले चम्पू शैली में काव्य-निर्माण करनेवाले कवि गुणवर्मा परमादरणीय और मान्य हैं। अपने राजा ऍरॅयप्पा के जीवन-वृत्त को अपने काव्य "शूद्रक" में समाविष्ट कर कवि पम्प के लिए एक उदाहरण उपस्थित कर उनके मार्गदर्शी बने प्रतीत होते हैं।

शिवकोट्याचार्य महाकवि पम्प से पहले रहे—ऐसा निर्धारित हुआ है। इन शिवकोट्याचार्य की कृति "वड्डाराधनें" कन्नड़ साहित्य में एक अपूर्व काव्य है। इसकी बड़ी विशेषता है, "गद्य काव्य" होना। यही कन्नड़ साहित्य में सर्वप्रथम उपलब्ध गद्य-

काव्य है। इसमें उन्नीस सुन्दर कहानियाँ हैं। प्रत्येक कथा के आरम्भ में एक "प्राकृत गाहा" है। कन्नड़ काव्य-साहित्य के षट्-पदी छन्द के काव्यों में प्रत्येक प्रसंग के प्रथम उस प्रसंग में उक्त विषय के सारांश को सूचित करनेवाले सूचना पद दिये जाने का क्रम चला है। इसी तरह प्रत्येक कथा के आरम्भ में जो "प्राकृत गाहा" उस कथा की वस्तु को संक्षेप में सूचित करता है। पहले "गाहा", फिर उसका कन्नड़ में अर्थ, बाद को कथा आरम्भ होती है। प्रत्येक कथा का यही क्रम है। कृतिकर्ता ने इसी क्रम को निबाहा है। एक हजार साल से भी पहले निर्मित यह कृति आज भी हमारे आदर और प्रीति का पात्र है। पाठकों के मन को आकर्षित करने योग्य कथोपकथन इस कृति की विशेषता है। कृतिकर्ता की विशिष्टता और मौलिकता उनकी वस्तु-प्रतिपादन की इसी शैली के कारण है। वाक्य-निर्माण की कुशलता और भावाभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त शब्द-योजना बहुत ही सुन्दर है। इस व"ड्डाराधने" की पहली कथा "सुकुमार स्वामी की कथा" है। इस कथा के निम्नांकित अंश को देखें :—

सुकुमार स्वामी कई जन्म-मरणों के आवर्त में चक्कर काटते हुए अपने पुराकृत पाप-कर्मों से सम्पूर्ण मुक्त होकर अंतिम जन्म में एक बहुत बड़े धनी के घर में जन्मे हैं। इनके ऐश्वर्य की प्रशंसा से चकित होकर राजा इनके दर्शनके लिए इनके घर पधारते हैं। सुकुमार की माता राजा को उचित आसन देकर समस्त उपचारों से उनका सत्कार करती है। तब राजा माता से पूछता है :—

(मूल)—राजा—सुकुमारनॆल्लिद नॆन्दु बेसगॊण्डॊडॆ

(सुकुमार कहाँ है—ऐसा प्रश्न करने पर)

माता—(स्वामी ! आतं करं सादु, निम्म बरमनरियं, प्रासादद मेगण नॆलॆयॊळिर्दं।

(स्वामिन् ! उन्हें बुलवा लिया जाता है, आपके आगमन की बात उन्हें मालूम नहीं, प्रासाद के ऊपरी तल्ले पर रहे।)

माता के इस उत्तर को सुन राजा ने कहा—"उन्हें हमारे पास बुलवा लिया जाये।" तब माता स्वयं जाकर बेटे से कहती है—"मगनॆ अरसर् बंदर्, बा, पोपं" (बेटा राजा पधारे हैं, आओ, जायें)। यह वचन सुन बेटे सुकुमार ने माँ से पूछा कि "अरसरॆम्बॊरारॆ" (राजा कौन होते हैं।) इस बात का उत्तर माता यों देती है—"नम्मनाळ्वर" (हमारे रक्षक त्राता) यह सुन बेटा पूछता है कि "नम्मनाळ्वर मॊळरॆ ! (हमारे रक्षक त्राता भी एक हैं क्या ?)—इस तरह विस्मय से चकित होकर माता के वचन का प्रत्युत्तर न देकर माता के साथ चलकर राजा को प्रत्यक्ष देखकर अत्यन्त आनन्द पाकर आँखों के होने का फल पाया समझा और कामदेव को आलिंगन करने जैसा उन्हें अंक में भरकर सुन्दर तल्प शय्या पर बिठाया...आदि, आदि"

कन्नड़ मूल में इस उक्त प्रसंग के सम्भाषण को पढ़ेंगे तब उस शैली एवं प्रयुक्त भाषा का सौष्ठव, पदयोजना एक-एक या दो-दो शब्दों में प्रश्नोत्तर, भाव-वैशाल्य को लिए हुए छोटे-छोटे वाक्य, बहुत ही सरस तथा सत्वयुक्त मालूम पड़ेंगे। शिवकोट्याचार्य की देशी-प्रधान यह शैली सुन्दर एवं अनुकरणीय है।

ऐसा कहा जाता है कि "वड्डाराधने" का एक दूसरा भी नाम "उपसर्ग केवलियों की कथा" था। इसमें की कथाओं के प्रत्येक नायक ने किसी न किसी उपसर्ग

नियम से बँधकर उन्हीं नियमों का पालन करते हुए स्वर्ग-सुख प्राप्त किया है।—इस तरह की कथावस्तु इन कथाओं में प्रणीत होने के कारण यह नाम "उपसर्ग केवलियों की कथा" बिल्कुल अन्वर्थ है।—यह प्रो० डी० एल० नरसिंहाचार्य जी का कथन है। प्रो० मुगळी बताते हैं कि सल्लेखन व्रत के आचरण के द्वारा समाधि मरण प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों में वैराग्य-वृत्ति को प्रचोदित कर प्रोत्साहित करने के लिए इस कृति की कथाएँ बहुत उपयुक्त हैं। इस तरह धर्म-दर्शन की दृष्टि चाहे कुछ भी रही हो, ये कथाएँ जिस मात्रा में वैराग्य-बोधक हैं, उससे भी अधिक परिमाण में मनोरंजन की भी सामग्री प्रस्तुत करती हैं। इतना ही नहीं, उस समय की भाषा तथा उसके स्वरूप का भी दिग्दर्शन इस कृति के द्वारा हो जाता है। इस कृति के समसामयिक जन-जीवन की प्रतिच्छाया इस कृति में बहुत अच्छी तरह प्रतिबिम्बित है। कन्नड़ साहित्य में यह कृति चिरंजीवी है। कविराज मार्ग में इस कृति का नामोल्लेख नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि यह कृति उसके बाद की ही हो सकती है। पम्प कवि से पहले करीब 920-30 के आस-पास की हो सकती है।

इस तरह कवि पम्प के पूर्व युग में कन्नड़ साहित्य काफी प्रौढ़, विस्तृत रूप से विकसित हुआ था—यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकृत की जा सकती है।

पम्प-युग या स्वर्ण-युग

कन्नड़ साहित्य के "आदि-कवि, एवं नवीन युग-प्रवर्तक" के रूप में सुविख्यात महाकवि पम्प का समय दसवीं शताब्दी है। यह "कन्नड़ साहित्य का स्वर्णयुग" कहलाता है। इस युग के "स्वर्णयुग" कहलाने का सारा श्रेय महाकवि पम्प को ही मिलना चाहिए। महाकवि पम्प के समय से अर्थात् दसवीं सदी के बीच से लेकर करीब दो सदियों तक कन्नड़ साहित्य जगत् पर इस कवि का एकच्छत्र अधिकार था। कन्नड़ साहित्य के स्वर्णयुग कहलाने वाले ये दो शतक महाकवि पम्प से प्रभावित साहित्य से समृद्ध हैं। इस युग का साहित्य अत्यन्त प्रौढ़ सत्त्वयुक्त एवं सरस है। इसी समय को यहाँ पम्प-युग के नाम से अभिहित किया है। बारहवीं सदी के उत्तरार्ध के अन्त में हरिहर कवि के अवतरण के साथ कन्नड़ साहित्य का एक नवीन युग आरम्भ होता है। कवि हरिहर का अवतरण कन्नड़ साहित्य के नवीन युग में पदार्पण को द्योतित करने वाली सीमा मात्र है, इससे अभिप्रेतार्थ यह नहीं है कि पम्प का महत्त्व घटा अपितु आज भी उनका वह महत्त्व ज्यों का त्यों अक्षुण्ण बना हुआ है। इसमें कोई शंका नहीं कि यह आदि कवि अद्वितीय है। नवीन युग के आरम्भ होने पर भी इस आदि कवि पम्प का महत्त्व एवं प्रभाव अदृश्य नहीं हुआ। उनकी काव्य शैली का अनुकरण बराबर होता ही रहा। इनको आदर्श मानकर इनकी स्तुति करना और इनके प्रति श्रद्धा से नत-शिर होना बन्द नहीं हुआ।

साहित्य को "जीवन की प्रतिच्छाया" कहते हैं। पम्पयुग के महाकाव्यों में दिखनेवाला जनजीवन राजप्रासाद एवं राजास्थान के आस्थानिकों तक ही सीमित है। कहीं-कहीं कुछ सैनिकों के सामान्य यान्त्रिक जीवन का परिचय दृष्टिगोचर होता है। सामान्य जनजीवन का सजीव चित्रण यदि देखना चाहें तो हमें नयसेन की कृतियों का ही आश्रय लेना होगा या दुर्गसिंह के पंचतन्त्र की शरण लेनी पड़ेगी। पम्पयुग का कन्नड़ काव्य साहित्य यदि "स्वर्णयुगीय साहित्य" कहलाने के श्रेय का भागी है तो इस साहित्य का परिप्रेक्षक जनजीवन भी उज्ज्वल होना चाहिए। उस समय की राजनैतिक स्थिति, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन आदि बातों की ओर ध्यानपूर्वक देखने पर इस तथ्य का भान होगा। दसवीं सदी के पूर्वार्ध में राष्ट्रकूट राजा प्रबल रहे और इस सदी के अन्त तक उन्नति के शिखर पर पहुँचकर अचानक ही अस्तंगत हो गये। वेमलवाडा के चाळुक्य, दक्षिण के गंगराजा बड़े प्रबल रहे और इन दोनों ने राष्ट्रकूटों की सहायता की, साम्राज्य की स्थापना में इन राजाओं का हाथ रहा। ग्यारहवीं सदी में कल्याणी चाळुक्य उठ खड़े हुए। परन्तु इन्हें लगातार चोळ राजाओं से युद्ध करते रहना पड़ा। चोळ राजाओं के आक्रमणों के कारण गंगराजा हार खाकर दुर्बल हो गये थे; इस दशा में अकेले चाळुक्यों को ही कर्नाटक का रक्षक बनना पड़ा। राजघराने के आन्तरिक झगड़ों के कारण कुछ समय तक वह भी दुर्बल रहे। परन्तु विक्रमादित्य (छठे) ने अपने बड़े भाई को कारावास देकर ई० स० 1076 में सिंहासन पर अधिकार जमाया। तब कर्नाटक का सितारा बुलन्द हुआ। विक्रमादित्य ने युद्ध

पर युद्ध करते हुए कर्नाटक राज्य की सीमाओं को विस्तृत किया। इनके पश्चात् चाळुक्य वंश के राजाओं का तेज क्षीण होते-होते बारहवीं सदी के अन्त तक होयसळ राजाओं की राज्य-स्थापना के समय के आते-आते सम्पूर्ण रीति से समाप्त हो गया, और चाळुक्य राजा अज्ञात हो गये।

इस तरह सम्पूर्ण राजनैतिक वातावरण शस्त्रास्त्रों की झनझनाहट से प्रतिध्वनित हो रहा था। ऐसे क्षुब्ध वातावरण ने कन्नड़ जनता के पौरुष को सान पर चढ़ाकर प्रखर बना दिया। युद्ध का नाम सुनते ही लोगों की बाँहें फड़कने लगतीं। गाँवों, स्त्रियों एवं पशुओं की रक्षा के हेतु लोग प्राणों की आशा छोड़कर लड़ते थे। आज भी कन्नड़ देश में यत्र-तत्र और सर्वत्र बिखरनेवाली प्रस्तरोत्कीरित वीर प्रतिमाएँ (वीर प्रतिमा प्रस्तर) इस बात की गवाही दे रहे हैं। युद्ध में वीरगति प्राप्त करने पर वीर स्वर्ग-प्राप्त होता है—यह सनातन सत्य कन्नड़ जनता के लिए समादरणीय विश्वस्त आदर्श था। उस वक्त के राजा भी उनके इस आदर्श का पोषण बराबर करते रहे और योद्धाओं को प्रोत्साहन देते रहे। इसलिए यह युद्धोत्साह सर्वदा ताजा रहा करता था। उस समय के उद्दाम कवि भी योद्धा हुआ करते थे। अपने समसामयिक लोकजीवन के प्रवाह की तरंगें इन महाकवियों के लिए काव्य-वस्तु बनी रहीं। उस समय की साहित्य-वाहिनी की धारा में अवगाहन करने पर यह तथ्य मनश्चक्षु के सामने प्रत्यक्ष और साकार होगा। नागवर्मा, चावुंडराय आदि कवि केवल लेखनी ही के धनी नहीं तलवार के भी धनी थे। जिस देश के सहृदय कवि भी आवश्यकता पड़ने पर लेखनी की जगह हाथ में तलवार भी उठा सकते हैं, उसके बारे में कहना ही क्या ? इन कारणों से इस युग को कन्नड़ साहित्य का "वीरयुग" भी कहा गया है।

यह कर्नाटक के जनजीवन का एक वीरतापूर्ण चित्र है। अब इस पम्पयुग के धार्मिक जीवन का भी अवलोकन करें। राजनैतिक जीवन में जैसे उतार-चढ़ाव रहे, धार्मिक जीवन में भी ऐसे ही उतार-चढ़ाव रहे—ऐसा प्रतीत होता है। उस समय कर्नाटक में दो प्रसिद्ध मत-धर्म प्रबल रहे : एक वैदिक, दूसरा जैन। दसवीं सदी में राष्ट्रकूट वैदिक धर्मानुयायी रहे, तो भी उन लोगों ने जैनमत को बहुत प्रोत्साहन दिया। इस सदी में अन्य मत-मतान्तर सम्बन्धी विद्वेष की भावना कहीं भी थोड़ी-सी भी नहीं दिखती। दक्षिण के गंगराजा जैनमतावलम्बी थे और इसकी उन्नति के लिए यत्न-शील रहे। दसवीं सदी के अन्तिम चरण में चावुंडराय ने श्रवण-बेळुगोल में गोम्मट की महाकाय मूर्ति की स्थापना की एवं धार्मिक जगत् में चिरंजीवी होने का श्रेय प्राप्त किया। दसवीं सदी समाप्त हुई और ग्यारहवीं सदी ने पदार्पण किया, धार्मिक जगत् की शान्तिमय स्थिति में उथल-पुथल शुरू हो गया। चोळ राजाओं के हमलों से गंगवंशीय राजाओं की स्थिति डावाँडोल हो अवनति की ओर खिसकने लगी। वंशों की अवनति के साथ जैनमत की भी अवनति शुरू हो गयी। चोळ राजाओं के आघातों से जैनमत पर जो आघात पड़ा उसे चाळुक्य राजाओं ने शक्ति भर रोका। फिर भी इस जैनमत की कान्ति मन्द ही पड़ती गयी। बारहवीं सदी में जिस जैन-साहित्य का प्रणयन हुआ वह वाद-प्रधान है। इससे यह स्पष्ट है कि जैनमत अपनी मौलिकता को खो बैठा था और तेजोहीन हो गया था। हमारी यह साहित्य-धारा

जीवन-प्रवाह के उतार-चढ़ाव के साथ वह चली है।

चम्पयुग में काव्य-निर्माण करने वाले कवियों में दो तीन को छोड़कर अन्य सभी जैन हैं। संस्कृत भाषा से मोह के कारण ब्राह्मण कवि इस कन्नड़-प्राकृत के विषय में अनासक्त हो गये थे—ऐसा प्रतीत होता है। शास्त्र-विवेचन अथवा स्वान्तः सुखाय भी कन्नड़ उनके लिए कभी उपयुक्त माध्यम नहीं रही। लौकिक प्रयोजन की भी दृष्टि से इनके लिए कन्नड़ काम की भाषा नहीं रही। शासन, शिलालेख लिख-कर ही ये सन्तुष्ट थे—ऐसा मालूम पड़ता है। इस समय के सभी कन्नड़-काव्य उत्तम, प्रौढ़-मार्गी शैली में निर्मित "चम्पू काव्य" के रूप में हैं। इसलिए कुछ लोग इस युग को "चम्पूयुग" नाम से भी अभिहित करते हैं। इन "चम्पू काव्यकारों" में पम्प, पॉन्न, रन्न—इन तीनों को "रत्नत्रय" के नाम से पुकारने की एक परिपाटी ही चली हुई है। इस श्रेय के ये कैसे, किस हद तक पात्र हैं—इस बात का विवेचन इन कवियों के बारे में जब चर्चा होगी तब करेंगे। इन तीनों अर्थात् इस "कवित्रय" में ये सामान्य लक्षण हैं—(१) तीनों जैन कवि थे, (२) तीनों ने अपनी-अपनी कृतियों में से एक कृति को धर्म के लिए और दूसरी को लौकिक विषयों के लिए नियत कर रखा है। इन तीनों की लौकिक काव्य-कृतियों में उन-उन कवियों के आश्रयदाता किन्हीं पुराण-पुरुषों के वेश में उन-उन की कृतियों में नियोजित हुए हैं; उनके इतिहास को समझने में यही हमारे लिए सहायक हैं।

इस तरह कुछ सामान्य लक्षणों से युक्त इस "रत्न-त्रय" (पम्प, पॉन्न, रन्न) की विवेचना करेंगे। ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ हेर-फेर दिखने पर भी—पॉन्न और रन्न के बीच दो और कवि हुए हैं—साहित्यिक विवेचना की दृष्टि से यह बहुत ही समीचीन है।

महाकवि पम्प

कवि नागराज ने, जो करीब छः सौ साल पहले रहे, पूर्व कवियों के स्मरण के सन्दर्भ में कवि पम्प के विषय में यों कहा है—

"पसरिस कन्नडक्कोंडेयनोर्वनें सत्कवि पम्पनावगं
वसुधेगें चक्रियन्तमर भूमिगें वासवनंतें संततं
रसॅगुरगेंद्रनंतें गगनक्कें दिनेशनंतें धात्रियोळ्
पॅसर्वडॅदिर्दनीगळॅमगीगें तदीय वचोविळासमं।"

अर्थात् विशाल कन्नड़ भाषा के लिए हर-हमेशा एक ही सत्कवि-पम्प है। भूमंडल के चक्रवर्ती की तरह, स्वर्ग के लिए देवेन्द्र की तरह, पाताल के लिए शेषनाग की तरह, आकाश के लिए सूर्य की तरह जगद्वन्द्य है यह महाकवि पम्प,—ऐसा महाकवि पम्प अपने वाग्विलास से मुझे अनुग्रहीत करें।—इस तरह आदि कवि की स्तुति करके उनके आशीर्वाद की प्रार्थना की है। इसी तरह अनेक कवियों ने इस आदि कवि के रस, भाव, शैली और सौन्दर्य के अपनी कृतियों में समाहित होने की प्रार्थना करते हुए इस महाकवि के आशीर्वाद माँगे हैं। इस आदि कवि को बड़े आदर के साथ स्मरण करके, आशीर्वाद की प्रार्थना भी कोई उनके स्तर तक नहीं पहुँच पाये। आखिरकार उनको यह कहना पड़ा कि "कन्नडक्कोब्बने कवि पम्प" अर्थात् कन्नड़ भाषा का अकेला

कवि पम्प ही है। यह बात अमर हो गयी है। नागचन्द्र की यह उक्ति "अज्ञानी ! कोई कृति धन बल से शाश्वत नहीं बनती, बल्कि संसार के सौभाग्य से अमर कृति बनती है।"—महाकवि पम्प की कृतियों के लिए चरितार्थ होती है। माता भूमि देवी की कई सदियों की तपस्या के पुण्य फल के रूप में एक महाकवि उनके गर्भ से जन्म लेता है। ऐसे विशिष्ट कवियों की पंक्ति में बैठाने योग्य महाकवि पम्प हैं। कन्नड़ भाषा के सम्बन्ध में कहना हो तो पम्प जैसा कवि "न भूतो न भविष्यति" कहना पड़ेगा।

पम्प कवि दसवीं सदी के हैं। अपने दो कृति-रत्नों में से एक "आदिपुराण' में उन्होंने अपना जन्म-संवत् इस तरह बताया है—"दुन्दुभिगभीर निनन्द, दुन्दुभि संवत्सरोद्भव"—अर्थात् दुंदुभि जैसा गम्भीर नाद करने वाला दुंदुभि संवत्सर में जन्मा। उन्होंने उस महाकाव्य की रचना—"शक वर्ष मॅण्टुनूरक्कें कॅडॅयॉळरवत्तुमूरु सन्दन्दु" अर्थात् शक वर्ष 863 में, यानी ई० सन् 941 या 942—भारतीय संवत्सर प्लव—इस तरह से यह रचना अपनी उनचालीसवीं (39) आयु में रची। उनका जन्म ई० स० 902 या 903 के करीब हुआ है। अपने जन्म-काल को बताने वाले कवि ने अपनी कृति में अपने जीवन-वृत्तान्त को भी काफी विस्तार के साथ बताया है। कहीं-कहीं तो निःसंकोच भाव से—सीमा का अतिक्रमण करके भी—अपने परिचय के बारे में लिखा है। इनके पूर्वज वॅंगिमण्डल के वॅंगिपुळ नामक अग्रहार के निवासी थे; ब्राह्मण थे; श्रीवत्स गोत्र के थे। पम्प के परदादा के पिता माधव सोमयाजी यज्ञ-यागादि कर्म करके सबके पूज्य और आदरणीय थे। उनका बेटा अभिमान चन्द्र और उनका बेटा कॉमरय्या और फिर उनका पुत्र अभिरामदेवराय; यही महाकवि पम्प के पिता हैं। अभिरामदेवराय ब्राह्मण से जैन बने। उत्तम ब्राह्मण कुलीन होने पर भी "अहिंसा परमोधर्मः" को अनुसरण योग्य मानकर इस आदर्श से प्रेरित होकर उन्होंने जैनमत को स्वीकार किया होगा। "अहिंसा परमोधर्मः"—इस आदर्श को मानकर जैनमत का अवलम्बन करने वाले अपने पिताजी को ब्राह्मणत्व का त्याग करने के कारण असमाधान प्रकट न कर स्तुति की है। यज्ञ-यागादि करके होम-धूम से अपने धवल-यश पर कालिख लगाने वाले अपने पूर्वजों के इस कृत्य पर पश्चात्ताप प्रकट करता है। एक दृष्टि से अभिरामदेवराय (पम्प के पिता) का जैनमतावलम्बी होना कन्नड़ के लिए बहुत बड़ा उपकार ही हुआ—ऐसा लगता है। कवि पम्प में जैन-वैदिक संस्कृतियों का इतना सुन्दर समन्वय हुआ है जिससे वे बहुत उदारचेता बने। इस मतान्तर का एक दूसरा भी शुभ परिणाम यह हुआ कि—अभिरामदेवराय के जैनमतावलम्बी होने पर अपने बन्धु-बान्धवों की अवहेलना का पात्र जो बनना था—उससे बचने के लिए आन्ध्र राज्य के अपने निवासस्थान वॅंगिपुळ को छोड़कर कर्नाटक में आकर बसे। ऐसा लगता है कि ये बनवासी में बसे। पम्प कवि के काव्यों में से एक "विक्रमार्जुन विजय"-है, जिसमें उन्होंने बनवासी का वर्णन किया है, उसे पढ़ने से यह बात स्पष्ट होती है। उनका यह वर्णन देखिए :—

सॊगयिसि बन्द मामरनॆ तळ्तॆळॆवळ्ळियॆ पूत जाति सं
पगॆयॆ कुकिल्व कोगिलॆयॆ पाडुव तुंबियॆ नल्लरॊळ्मॊगं
नगॆमॊगदॊळ् पळं चळॆयॆ कूडुव नल्लरॆ नोळ्पॊडाव बॆ

तुंबळॊळं मावनन्दन वनंगळॊळॆं बनवासि देशदॊळ् ॥

अर्थात् बनवासी के किसी पहाड़ या उद्यान को देखें—जहाँ देखें वहीं फलभार से लदे आम के पेड़, फैली हुई लताएँ, पुष्पित चम्पा के पेड़, उन पर "कुहू-कुहू" करने वाली कोयलों की मधुर ध्वनि, झंकार करने वाले भ्रमर, हँसी-खुशी के साथ परस्पर मिल-जुलकर विहार करनेवाले प्रेमी युगल—ऐसा सुखमय जीवन बनवासी के निवासियों के ही भाग्य में बदा है। इसलिए यहाँ के सुख-भोग भोगने के लिए किसी भाग्यशाली को ही जन्म लेना चाहिए। जो भाग्यशाली होगा वही यहाँ (बनवासी में) जन्मता है। मनुष्य होकर जन्मने जैसा सुकृत हो तो—

"चागद भोगदक्करद गेयद गॊट्टियलंपिनिंपुग
ळ्गागरवाद मानिसरें मानिसरंतवरागि पुट्टले
नागियुमेनों तीर्दपुदें ? तीरदॊडं मरिदुंबियागिमेण्
कोगिलॆयागि पुट्टवुदु नंदनदॊळ् बनवासि देशदॊळ्"

अर्थात् त्याग, भोग, साहित्य, संगीत आदि सरस प्रसंग गोष्ठियों में आनन्द का अनुभव कर सकने की क्षमता वाले ही मानव कहलाने योग्य हैं। ऐसे गुणों से युक्त मानव बनकर जन्मना दुःसाध्य है। इस तरह के गुण-सम्पन्न मनुष्य होकर जन्मने का भाग्य हो तो नन्दन वन जैसे इस कन्नड़ देश में भ्रमर शिशु बनकर या कोयल बनकर विहार करना चाहिए।—और सुनिए उनका बनवासी प्रदेश का वर्णन—

"तॆंकणगाळि सोकिदॊडमॊळ्नुडिगेळ्दॊडमिंपनाळ्द गे
यं किविवॊक्कॊडं बिरिद मल्लिगॆ गंडॊडमाद कॆन्दलं
पं गॊडगॊण्डडं मधु महोत्सव मादॊडेननॆम्बॆ ना
रंकुसमिट्टॊडं नॆनॆवॆवुदॆन्न मनं बनवासि देशमं"

अर्थात् दक्षिण की दिशा से हवा का बहना मात्र पर्याप्त है; मृदु मधुर वाणी का सुनना ही काफी है, कर्ण-मधुर संगीत की ध्वनि सुनना मात्र ही बस है; विकसित मल्लिका को देखना मात्र एवं केवल प्रणय सुख का स्मरण ही पर्याप्त है; ऋतुराज वसन्त का प्रवेश मात्र पर्याप्त है, मन मस्त हाथी की तरह अप्रयत्न ही बनवासी प्रदेश की ओर अपने आप दौड़ पड़ता है। चाहे कोई किसी भी तरह के अंकुश का प्रयोग करे, वह मनरूपी मस्त हाथी बनवासी की ओर भागेगा ही, रुकेगा नहीं।[1]

इस सारे वर्णन को जब हम पढ़ते हैं तो हमारा यह सोचना गलत नहीं होगा कि इस कवि पम्प की बाल्यावस्था; तरुणावस्था कन्नड़ प्रदेश के बनवासी प्रदेश में ही व्यतीत हुआ होगा। कवि ने अपने काव्य की भाषा को "पुलिगॆरॆय तिरुल कन्नड" (अर्थात् पुलिगॆरॆ की शुद्ध कन्नड़) कहा है। यह पुलिगॆरॆ बनवासी के पड़ोस में ही है। इससे भी यह मत पुष्ट होता है।

कवि पम्प का जन्म और बाल्य जीवन तथा अध्ययन आदि बनवासी प्रदेश में

---

1. "इस कविता की आखिरी पंक्ति में कवि की मर्मव्यथा अत्यन्त रसपूर्ण दार्शनिक ध्वनि में पर्यवसित है"—यह राष्ट्रकवि कु० वॆं० पु० की राय है : सुख-सन्तोष के समय ही नहीं, जीवन-मरण की समस्या को उपस्थित करने वाले युद्ध के समय में भी मेरा मन बनवासी प्रदेश की तरह आकृष्ट होकर उसी का स्मरण करता रहता है।—यह भाव भी उनके इस काव्य में अन्तर्निहित है; श्री कु० वॆं० पु० का यह भी मत है।

होने पर भी अपने जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने हैदराबाद जिले के मेलवाड़ को चुना। उस समय चालुक्य राजा अरिकेसरी वहाँ राज कर रहे थे। यह अरिकेसरी राष्ट्रकूट राजाओं के सामन्त होने पर भी इस राष्ट्रकूट राजवंश के रिश्ते में रहकर उनके आत्म-मित्रों में थे और बड़े प्रभावशाली भी थे। कवि पम्प इस अरिकेसरी के आश्रय में रहकर उनके आदर-विश्वास का भी पात्र बने। इसके फलस्वरूप उन्हें धन, कीर्ति और प्रतिष्ठा भी प्रभूत मात्रा में प्राप्त हुई। कवि पम्प बड़े अभिमानी व्यक्ति थे स्वभाव से। उनकी इस मनोवृत्ति को उन्हीं के शब्दों में देखें, वे कहते हैं: "पॅररी-वुदें, पॅररु माडुवुदें पॅर्रॅरिदमप्पुदें"—अर्थात् कोई क्या देगा, कोई क्या करेगा, किसी से क्या होगा!—इस तरह की मनोवृत्ति का होने पर भी अरिकेसरी की मैत्री उनके लिए इतनी आकर्षक हुई कि वे इस आकर्षण का संवरण नहीं कर सके। और इसी ने महाकवि को अरिकेसरी के साथ बाँधे रखा। इतिहास में कवि बाण और श्रीहर्ष, पुराणों में कर्ण-दुर्योधन जिस तरह के मैत्री बन्धन से बँधे थे उसी तरह पम्प अरिकेसरी के स्नेह-बन्धन में रहा। राजा अरिकेसरी "गुणार्णव" बिरुद से भूषित थे तो कवि पम्प "कविता गुणार्णव" बिरुद से विभूषित रहकर उनकी मैत्री के सुख-सन्तोष का भोग कर रहे थे। राजा के अत्यन्त प्रिय कवि, सेनापति और मन्त्री रहकर सम्पूर्ण जीवन सुख-समृद्धि के साथ जीने वाले सुकृती थे। अपने सौन्दर्य का स्वयं वर्णन करते हुए, कहते हैं:—

"कदली गर्भश्यामं,
मृदुकुटिल शिरोरुहं, सरोरुहवदनं
मृदु मध्यम तनु, हित मित
मृदुवचनं ललित मधुर सुन्दरवेषं"

अर्थात्—केले के तने के बीच दिखाने वाले श्यामवर्ण, मुलायम, घुँघराले केश, कमल की तरह गोल मुख, कोमल मद्धिम देह, वार्तालाप में संयम-मिश्रित मार्दव—इनके साथ सुन्दर वेशभूषा, यह है उनके व्यक्तित्व का अंग-सौष्ठव। और आगे लिखा है "वनिता कटाक्ष कुवलयवन चन्द्र"—अर्थात् वनिता कटाक्ष रूपी कुमुदवन का चन्द्र। यह है इस रसिक रसऋषि महाकवि पम्प का देहयष्टि-सौष्ठव। और सुनिए:—

"केरल विटी तटी सू
त्रारुणमणि मलय युवति दर्पणनु
आन्ध्र नीरन्ध्र बन्धुरस्तनतट
हारनुदारं सरस्वती मणिहारं"

अर्थात्—केरल रमणियों की करधनी का रत्न, मलय-सुन्दरी-हस्त दर्पण, आन्ध्र रमणी-विशाल वक्षस्थल व विराजित हार, सरस्वती-मणिहार या कवि पम्प। इन्हें फूलों पर बहुत प्रेम था, फूलों में भी चमेली इनके प्रेम और आकर्षण का विशेष पात्र था। वे कहते हैं:—

"आवलरं पण्णुं वी
तोवदु बीयबिल्ल मल्लिगॅयुं इ
म्माकुगळु मॅन्दॉपिड पॅर
तावुदु संसारसार सर्वस्वफलं ?

अर्थात्—कोई फूल, या कोई फल हो, बहुत अधिक पक जाने पर आस्वादन करने योग्य नहीं रह जाते हैं। इस कन्नड़ देश में आम और चमेली इस तरह आस्वादन करने योग्य न रह जावें—उस हद तक रखे ही नहीं जाते, आम और चमेली को इस अवस्था तक पहुँचने ही नहीं देते। यहाँ के लोग उन्हें उपभोग-योग्य पाकर उपभोग कर ही लेते हैं। इससे अभिप्रेतार्थ यह कि यहाँ के लोग प्रत्येक वस्तु को उपयुक्त रीति से आस्वादन करने योग्य स्थिति में पाकर सुखी होते हैं, जीवन का सुख-भोग भोग लेते हैं। खाने के लिए आम और सजने के लिए सुगन्धिपूर्ण चमेली हो तो और क्या चाहिए? यही तो संसार का सार-सर्वस्व सुख-भोग है! विशेष रूप से कल्पना-जगत् में विहार करने वाले कवि, काव्यजीवी के लिए इससे अधिक की अपेक्षा भी नहीं।

महाकवि पम्प ने हमें दो महाकाव्य दिए हैं। वे कहते हैं :—

"बॆळगुवॆनिल्लि लौकिकमनल्लि जिनागममं समस्त भू
तळकॆ समस्त भारत मुमादिपुराणमॆन्दु मॆय्य सुं
गॊळुलिरॆ पूण्दु तॆरदॊन्दरॊळगळॊ ळॊन्दु मूरॆल
गळॊळॆ समाप्तियादुवॆनॆ बण्णिसिदं कवितागुणार्णवं !"

अर्थात्—यहाँ लौकिक जीवन से सम्बन्धित समग्र महाभारत को, वहाँ जिनागम को समझाने के उद्देश्य से आदिपुराण को लिखने की प्रतिज्ञा अचानक ही करके एक को छह मास की तथा दूसरे को तीन महीने की अवधि में सम्पूर्ण रूप में लिखकर महा-पम्प ने समाप्त किया। जिस दिन उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की उस समय अपने सामने जो माना हुआ कार्य था, उसकी विशालता को देखकर खुद चकित हुए हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि जो कृतियाँ उन्होंने चुनीं, वे दोनों संस्कृत साहित्य के लिए मेरुतुल्य हैं। व्यास रचित महाभारत नाम के अनुसार महान् है ही। कहा भी गया है, जो "भारत में नहीं वह दुनिया में नहीं, जो दुनिया में है सो सब भारत में है।"—ऐसे बृहदाकार साहित्य का लिखना सो भी छह महीने में लिखकर समाप्त करना कोई हँसी-खेल नहीं। ऐसे कितने लोग हैं जो पूर्ण ग्रन्थ को ही पढ़कर छह महीने में समाप्त करें और अच्छी तरह समझ भी लें। केवल एक बार छह महीने में पढ़कर समाप्त करना ही हममें से कितने लोग कर सकते हैं? समझना तो दूर, फिर लिखकर काव्य निर्माण करना और भी कठिन एवं अचिन्त्य विषय है। इस तरह की प्रतिज्ञा केवल पम्प ही कर सकते हैं।—अरिकेसरी के दरबारी पण्डितों ने तो ऐसा ही कहा। इस विषय में कवि पम्प स्वयं कहते हैं :

"कतॆ पिरिदाडॊडं कतॆय मॆय्गिडलीयदॆ मुं समस्त भा
रत मनपूर्व मार्ग सलॆ पेळ्द कवीश्वररिल्ल कर्मकं
कतॆयॊळॊडंबड पडॆडे पेळ्वॊडॆ पम्पने पेळ्गुमॆन्दु पं
डितरॆ नगुळ्दु बच्चळिसॆ पेळलॊडर्चिदॆनी प्रबन्धमं।"

अर्थात्—"कथा तो बहुत बड़ी है; कहीं किसी विषय का लोप न करके सम्पूर्ण भारत की कथा को अपूर्व ढंग से कहने वाला कवि कोई नहीं है। इस कथा में वर्णित सभी भावों का वर्णन भी कथावस्तु में ही सम्मिलित कर यदि कोई कह सकते हैं तो वह अकेले पम्प से ही सम्भव है—यों पण्डितों के कहने से मैंने इस प्रबन्ध काव्य की रचना करना आरम्भ किया।"

कवि पम्प को मालूम है कि जो कार्य उन्होंने अपने हाथ में लिया, वह बड़ा है। इसीलिए उन्होंने बहुत ही नम्रता से कहा है, "व्यासमुनीन्द्र रुन्द्र वचनामृतवार्धियनीसुवेनम्; कवि व्यासनेंम् ऎम्ब गर्वमॆनगिल्ल"—अर्थात् व्यास महर्षि के वचनामृत रूपी समुद्र को तैरकर पार करूँगा, मैं ही व्यास हूँ—ऐसा घमण्ड मुझे नहीं है। परन्तु कृति की समाप्ति पर यह अनुभव करके कि मैंने इस महार्णव को तैरकर विजय-गर्व के साथ पार किया है—इस आत्म-प्रत्यय के साथ कहते हैं कि "मुन्निन कब्बमनॆल्ल मिक्किमॆट्टिदुवु समस्त भारतमुमादि पुराण महा प्रबन्धमुं"—यानी यह भारत और महापुराण रचने से समस्त पूर्व साहित्य पिछड़ा ही रह गया।—यों कहकर उनसे भी पहले निर्मित विकसित साहित्य की ओर संकेत किया है। इस पम्प-पूर्व साहित्य में "भारत" भी था—इस विषय से हम अवगत हो चुके हैं। वे सब पम्प महाकवि की इस कृति के कारण सम्भवतः आँखों से ओझल हो गये हैं।

कवि पम्प के महाभारत की ही तरह उनका आदिपुराण भी संस्कृत साहित्य की उच्चकोटि की बृहत् कृति है। महाकवि व्यास की कृति ही की तरह जिन-सन्त व गुणभद्रों की कृति "महापुराण" भी अपनी विशालता तथा महत्ता के लिए जैन पुराणों में विशेष महत्त्व रखती है।

पम्प कवि की कृतियों में प्रथम आदिपुराण है। उस कृति के आरम्भ में ही उन्होंने कहा है :—

"इदुवॆं सुकवि प्रमोद
प्रदमिदुवॆं समस्त लोक प्रमद
प्रदमॆनॆं नॆगळ्दादि पुरा
णदॊळरिवुदु काव्यधर्ममं धर्ममुमं"

अर्थात्—यह कवि के लिए जैसे आनन्ददायक है वैसे समस्त जीव-लोक के लिए भी सन्तोषदायक है। क्योंकि आदिपुराण द्वारा जैसे धर्म के मर्म को समझा जा सकता है, वैसे ही काव्य धर्म को भी जाना जा सकता है। इसमें उक्त धर्म विचार जैन मतावलम्बियों के लिए जैसे अत्यन्त प्रिय है—वैसे ही अन्य मतावलम्बियों के लिए अप्रिय नहीं। काव्य धर्म सबके लिए समान रूप से प्रिय है। जैनेतर भी आदिपुराण के काव्य-सौन्दर्य का रसास्वादन कर आनन्दित हो सकते हैं। यह एक धार्मिक काव्य है, इसलिए कवि पम्प को मूल ग्रन्थ का अनुसरण करना आवश्यक था, और इस बात का ध्यान रखना भी जरूरी था कि मूल ग्रन्थ की विचारधारा में कहीं कोई बात छूट न जाय। धार्मिक चौखट के अन्दर कवि की कल्पना शक्ति पंख खोलकर उड़ नहीं सकती थी। फिर भी निश्चित अवधि एवं दायरे के अन्दर उनकी प्रतिभा तथा कल्पना बहुत अच्छी तरह खुलकर खेली है। जैनमत का सार सर्वस्व है भोग-विरति, वैराग्य। कवि पम्प ने इन दोनों बातों को बहुत ही हृदयंगम रीति से व्यक्त किया है। घुमक्कड़ की दृष्टि का रेगिस्तान पम्प कवि की दृष्टि से सिंचित होकर नन्दनवन बना है।

कवि पम्प की कवि-प्रतिभा से आदिपुराण, किस तरह का सरस काव्य बना है देखें, हम भी उसका रसास्वादन करें। इस आदिपुराण में उक्त सभी तीर्थंकरों की जीवनियों में से आदितीर्थंकर की ही जीवनी बहुत बड़ी और विस्तृत है। शेष तीर्थंकरों की कथाएँ करीब-करीब समान तथा एक-सी हैं। आदितीर्थंकर की समस्त भावा-

यदि इस पुराण में चलचित्र की भाँति, उनके जीवन की प्रत्येक घटना की सारी बातें हमारी आँखों के सामने गुजर जाती हैं। प्रत्येक दृश्य हमारी चेतना को हर लेता है। 'जीव' से उसकी भोगासक्ति जन्मजन्मान्तर तक चली आती है। आदितीर्थंकर का जीव ललितांग नामक देवता के रूप का धारण जब करता है तब स्वयंप्रभा नामक सुन्दरी उसके प्रेम का पात्र बनती है। उस सुन्दरी के प्रेम में मग्न रहकर वह अपने को भूले रहते हैं। इसी अवस्था में उनकी आयु समाप्त हो जाती है। अब उन्हें अपनी प्रेमिका से अलग होना ही पड़ता है। उस समय की उनकी मानसिक पीड़ा का क्या कहना? वे अपने को इस अन्तिम अवस्था से बचाने के लिए समस्त देवी-देवताओं की शरण लेते हैं। प्यारी पत्नी की भी शरण लेते हैं। मगर है सब फजूल।

"एँळें दुटंवतकंगिल्ल, देवांगनेंयर मारांपरें ?"

अर्थात्—प्राण हरण करने वाले महाराज यम भी उस अन्तिम दशा में जब कुछ कर नहीं पाते तो ये देवांगनाएँ क्या कर सकेंगी ?— इसलिए जिन भगवान के चरण ही शरण है—ऐसा मानकर जीवन के शेष दिन व्यतीत कर दूसरे जन्म में वज्रजंघ नामक विद्याधर-राजा होकर जन्म लेता है। इधर स्वयंप्रभा रोती-बिलखती शेष जीवन अपने प्रियतम ललितांग का ही ध्यान करती हुई व्यतीत करती है और इसी दुःख में समाप्त हो जाती है। स्वयंप्रभा का जीव दूसरे जन्म में "श्रीमती" के नाम से राजकुमारी होकर जन्म लेता है, और वज्रजंघ की रानी बनती है। ये दोनों प्रेमीयुगल अपने को धन्य मानकर सुख-भोग रूपी सरोवर के राजहंसों की तरह बहुत समय तक जीवन-यापन करते हैं। उनका भी अन्तिम समय आता है। यह अन्तिम घड़ी भी कैसे अचानक आयी! एक दिन वह प्रेमीयुगल एकान्त भवन में सोये हुए हैं। नौकर केश संस्कार के उद्देश्य से धूप-धूम सुलगाकर चला गया है। किन्तु शयनकक्ष का गवाक्ष खोलना भूल गया है। यह प्रेमीयुगल एक दूसरे के बाहुपाश में बँधे हुए हैं, धुएँ के कारण दम घुटने लगता है। दोनों उसी अवस्था में मृत्यु का आलिंगन करते हैं। उनकी ऐहिक लीला समाप्त हो जाती है। "लोकाश्चर्यमं माडि कॉन्दुदु कृष्णागरु धूम निवहं कृष्णोरगं कॉल्वबॉल" अर्थात् "जिस तरह काला नाग डसकर जान से मार डालता है उसी तरह इस काले अगरु के काले धूम ने इस प्रेमीयुगल को मार डाला।—यही भोगासक्ति की चरम परिणति है।" इस घटना के स्मरण से कवि पम्प के मन में आश्चर्य और विषाद दोनों होते हैं, साथ ही इस प्रेमीयुगल के प्रति एक प्रशंसा की भावना भी स्फुरित होती है। कवि कहते हैं :—

"बिडदें पॉगॅसुत्तें, तोळं
सडलिसदा प्राणवल्लभर प्राणमनं
दॉडपळॅदरो परोपरॅं
ळॉड सायल्पडॅदुरिन्नवें सैपॉळवें ?"

साथ-साथ इस तरह प्रेममय जीवनयापन करने वाले इस प्रेमीयुगल का परस्पर आलिंगन में रहकर एक साथ परलोक यात्रा करने से भी अधिक पुण्यमय जीवन और कौन हो सकता है? यह कवि का सवाल है। महाकवि पम्प ने परस्पर प्रेमासक्त युगल के घनीभूत प्रेम का कितनी मार्मिकता से वर्णन किया है! इस अनुभव से वज्रजंघ का मन भी बहुत परिपक्वावस्था को पहुँचा होगा। इसके पश्चात् दूसरा जन्म धारण करता

है। उसकी वह भोगतृष्णा समाप्त-प्राय होकर मित्रवत् "जीव" का सहायक बना और उसे सम्यक् व्रती के रूप में परिणत किया। इस आखिरी जन्म में नाभिराज के पुत्र पुरुदेव के नाम से प्रसिद्ध होकर पैदा होता है। यह पुरुदेव "पद्म पत्र मिवाम्भसि" की तरह कमल के पत्ते पर पड़े पानी की तरह सांसारिक जीवन-यापन कर "परिनिष्क्रमण" के लिए तैयार होता है। इस समय देवेन्द्र पुरुदेव के मनोरंजन के लिए नीलांजना नामक देवकन्या के नृत्य की व्यवस्था करता है। "कबिन बिल्ले मसेद मदनन कर्णं बदु किसॅनिसुतें" [अर्थात् (मदन) कामदेव के इक्षुचाप पर तेज तीर चढ़ा हो] पुरुदेव पर कामदेव का इक्षुचाप के समान देवकन्या नीलांजना के नृत्य का आयोजन था जो देवेन्द्र का उन पर प्रयुक्त बाण-प्रयोग था। उस देवकन्या ने पुरुदेव के सभा-भवन में प्रवेश कर उपस्थित सभाजनों के अन्तःकरण को ही लूट लिया। नृत्य का यह वर्णन कवि पम्प की ही वाणी में सुनिए :—

"ताळद लयमं निरि, नी
ळाळक, हारद पॉदळ्द मुत्तॅम्बुवु मुं
मेळिसि कैकॉण्डुवु, लुळि
ताळकि कैकॉण्डळॅम्बु दॉन्दच्चरियें ?"

अर्थात्— उस मनोहर रूपवाली सुन्दरी की साड़ी की शोभा, काली घुँघराली लट, गले के हार के मोती—ये तीनों मिलकर ताल-लय का काम दे रहे थे; ऐसी दशा में यह कहना जरूरी नहीं कि उस सुन्दरी ने अलम से नृत्य किया।

वह जिधर देखती है उधर चाँदनी छिटक जाती है। उसकी वह साड़ी सँभालने की रीति अथवा मोतियों की माला को ठीक करने का वह ढंग आदि प्रत्येक अदा वर्णनातीत है। वह तो "मदनराज राज्यविळासं" है —अर्थात् कामदेव के राज्य-वैभव का विलास है। इस मनोहर नाट्योत्सव के बीच नाचते-नाचते ही देव सुन्दरी नीलांजना की आयु समाप्त हो जाती है। वह ज्यों की त्यों गलकर समाप्त हो जाती है मोम की तरह। नाट्योत्सव में इस तरह का रसाभास न हो जाय— इस इरादे से नीलांजना ही की तरह की दूसरी का सृजन कर आयोजित उत्सव को आगे बढ़ाता है। क्षणभर में हुई इस घटना का आभास तक उपस्थित सभासदों में से किसी को नहीं मिला। परन्तु पुरुदेव इस सारी घटना को समझ गये। परिपक्वावस्था को प्राप्त पुरुदेव का जीव वैराग्य वृत्ति में ही अचल होकर स्थायी रह गया। उन्होंने समझा :

"तनु, रूप, विभव, यौवन
धन सौभाग्यायुरादिगळ्गॅणॅ कुडुमि
ञ्चिन पॉळॅपु मुगिल नॅळॅलि
द्रन बिल् बॉब्बुळिकॅयुर्बु पविद भोगं"।

अर्थात्—देह, रूप-वैभव, यौवन, ऐश्वर्य, सौभाग्य, आयु —ये सब क्षण मात्र में चमक जाने वाली बिजली की तरह, मेघ-माला के साये की भाँति, कामदेव के कार्मुक जैसे पानी के बुदबुद-से अस्थिर एवं क्षणभंगुर हैं।—जन्म-जन्मान्तर के समस्त अनुभूत सुख-भोगों का उन्हें स्मरण हो आता है; कहते हैं :—

"ऍनितानुमंबुनिधिगळ
ननेक नाकंगळल्लि कडिमॅपॉग्ति

सौंख्यं, मरकोभमेंम्बी
पनिपुल्लं नक्कीं तृप्तमेंब्दु पोक्कुपे"

अलग-अलग स्वर्गों में देवता बने रहकर सब तरह के सुख-भोग रूपी समुद्र को भोगकर भी यह भोग-पिपासा बुझी नहीं। मानव बन इस मानवी-भोग रूपी दूब पर की बूँद चाटने से मेरे जीवन का आशा-दाह कैसे बुझेगा ?—ऐसा समझकर पुरुदेव कैवल्य पद की प्राप्ति के लिए तप करने चले जाते हैं।

धर्म, काव्यधर्म दोनों शब्द और अर्थ की तरह एक दूसरे में घुले-मिले हैं। इस तरह महाकवि की काव्य-वाहिनी बही है।

पुरु चक्रवर्ती के बेटे भरत और बाहुबलि—इन दोनों का प्रसंग आदिपुराण का एक प्रभावशाली रसपूर्ण प्रकरण है। चक्रवर्ती पुरु विरागी हो गए। इसके पश्चात् उनका बड़ा बेटा भरत चक्राधिपति बना। अपने शस्त्रागार में उत्पन्न चक्र-रत्न के प्रभाव से षट्खण्डों को जीतकर वह समस्त भूमण्डल का राजा बना। परन्तु उसके सहजात भाइयों ने ही उसका विरोध किया। भरत की राजसी-वृत्ति इस विरोध को सहन नहीं कर सकी। उन सभी विरोधियों को अपने अधीन कर लेना चाहती है। वे राजभोग के प्रति घृणा का भाव रखते हैं, इसलिए वे सब तपोनिरत होते हैं। इन सबके इस तरह इतनी आसानी से भोग-विरत होने की बात को देखकर भरत चकित हो जाता है। परन्तु चकित होने से क्या ? अपने विरुद्ध खड़े होने वाले बाहुबलि के साथ दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध, मल्लयुद्ध आदि करके हार जाता है; इस हार के कारण ग्लानि से क्रोधित होकर मूर्ख की तरह उन पर चक्ररत्न का प्रयोग करता है। इससे बाहुबलि का बाल भी बाँका नहीं हुआ, बल्कि आवेश के प्रति क्रोधावेश के उत्पन्न होने के बदले उनके मन में घृणा का भाव उत्पन्न होता है। वह सारा राज्य बड़े भैया को देकर, "नी नोलिद ललांगिगं, धरैग साटिसिदंदु नेंगळ्तें मासर्द ?" अर्थात्—"वह सुन्दरी जिस पर तुम आसक्त हो और यह राज्य जिसके प्रति तुम्हारा अत्यधिक मोह है—ये दोनों एक-से हैं, छोटे भाई होकर मुझे इन पर आसक्त नहीं होना चाहिए। यह अकीर्तिकर और अश्रेयस्कर है।" यह कहकर बाहुबलि तपस्या करने चले जाते हैं।

इस तरह जन्म-जन्मान्तरों के अनुभव से संस्कृत चैतन्य मुक्ति-यात्रा के पथ पर आगे बढ़ते हुए इस मुक्ति-मार्ग की सीढ़ियों को एक-एक कर पार कर किस तरह अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचा—इसका बहुत ही मनोहारी वर्णन आदिपुराण में निरूपित है। महाकवि पम्प ने धर्म के क्वाथ में काव्यधर्म की शर्करा मिलाकर उसे मीठा बनाया है। इसीलिए जैनेतर भी उनके काव्य का रसास्वादन कर आनन्दित हो सकते हैं। तो भी जैनमत को निरूपित करने के लिए ही निर्मित इस पुराण-काव्य में मत-सिद्धान्त व आदर्श सम्बन्धी विवरण, नीति-निरूपण का पर्याप्त मात्रा में समावेश होना अनिवार्य है। पम्प महाकवि के इस काव्य का रसास्वादन करने के लिए सहृदयता चाहिए। धर्मनिरपेक्ष और काव्य-रसास्वादन क्षमता-युक्त सरस हृदय चाहिए। मत-धर्म सम्बन्धी आवेष्टन से वेष्टित महाकाव्य होने के कारण यह आदिपुराण जैनमतावलम्बियों के लिए तो आदरणीय है ही। काव्यधर्म से युक्त होने के कारण सहृदय साहित्यिकों के लिए भी समादरणीय है। शहद बाँटने से बाँटने वाले के हाथ में शहद लगेगा ही। वह उसका मीठा स्वाद लेना चाहे तो चाट ले, नहीं तो धो ले। इसी तरह काव्य-रसास्वादन

इसमें, उक्त मत-धर्म-तत्व का आवरण हटाकर शुद्ध साहित्यिक बनकर करें। जो इस परिश्रम से बचना चाहें उन्हें इस महाकवि के "भारत" को पढ़ना चाहिए।

"पम्प भारत" के नाम से जिसे हम आदर-प्रेम के साथ अभिहित करते हैं उसका वास्तविक नाम 'विक्रमार्जुन विजय" है। कवि पम्प के आश्रयदाता अरिकेसरी, पराक्रम में अर्जुन के समान ही पौरुषशाली हैं। कवि पम्प ने अपने इस काव्य में अपने आश्रयदाता के इतिहास को विस्तार के साथ वर्णन किया है। उन्होंने कहा है—"पर बलद नॆत्तर कडळॊळगिन जिगुळॆ बळॆव तॆरदॊळॆ बळॆद"—यानी 'वैरि-वाहिनी की रक्त-वारिधि में जोंक की तरह बढ़ते-बढ़ते आगे बढ़ आया।" यह भी इससे स्पष्ट है कि अरिकेसरी बाल्यकाल से रणोत्साही रहा है। इस बात को वह स्वयं कहते हैं। स्वभावतया शूर अरिकेसरी कवि की दृष्टि में महाभारत के अर्जुन ही की तरह है। कवि लिखते हैं—"ईतनुदात्त पूर्वभूमिपरुमनॊळ्पनॊळ् तगुळॆ वंदॊडॆयी कथॆयॊळ् तगुळ्चि पोलिपॊडॆ नगळ्तियादुदु गुणार्णव भूभुजनं किरीटियॊळ्।" अर्थात्—"यह अरिकेसरी बड़े उदात्त स्वभाव के हैं, इनकी तुलना पूर्वजों से करके देखी तो इनकी बराबरी का कोई नहीं दिखा, महाभारत के पात्रों से तौलकर देखा तो गुणार्णव अरिकेसरी किरीटी अर्जुन के बराबर लगे।—अरिकेसरी अपने सद्गुणों के कारण सभी प्राचीन राजाओं से बहुत आगे बढ़े हुए हैं, अर्जुन के साथ तुलना करके देखने पर खरे उतरे।"—इसलिए कवि को अर्जुन के साथ तौलकर भारत की कथा लिखने की इच्छा हुई। यही कारण है कि समूचे काव्य में अर्जुन की विरुदावलि से अरिकेसरी विभूषित हैं। अर्जुन की कीर्ति अरिकेसरी की कीर्ति है, अर्जुन ही अरिकेसरी है और अरिकेसरी ही अर्जुन है। इसीलिए कवि ने अपनी कृति को अर्जुन और अरिकेसरी परस्पर मिल-जुलकर एक-से होने के कारण समस्त "भारत" कहा है। महाकवि पम्प के द्वारा रचित इस "भारत" में जो सम्माननीय स्थान प्राप्त हुआ, उससे बहुत सन्तुष्ट होकर राजा अरिकेसरी ने उन्हें बहुत-से मूल्यवान वस्त्रादि से पुरस्कृत ही नहीं किया बल्कि धर्मपुर नामक एक अग्रहार (एक गाँव जहाँ धनधेनु केवल ब्राह्मणों के ही परिवार हों) जागीर में दिया। कवि पम्प इस बात को भी भूलकर कि वह स्वयं जैन हैं अपनी इस जागीर का वर्णन इस तरह करते हैं—

"दॆसॆ मखधूमदिं द्विजर होमदिनॊळ्गॆरॆ हंसकोक सा
रस कळनाददिं दॊळवॆ वेद निनाद दिनॆत्तमॆम्दॆ भो
भिसॆ सुर मथ्यमान वनधि क्षुभितार्णव घोषदंतॆ चू
णिसुतिरली गुणार्णवनं धर्मद धर्मपुरं मनोहरं।"

अर्थात्—ब्राह्मणों के यज्ञ-धूम एवं होम-आदि से दिशाएँ भरी हुई हैं; यहाँ के तालाब-पोखरे और जलाशय हंस-चकवा आदि खग वृन्द के कल-कूजन से भरे पड़े हैं; सारा गाँव वेदघोष से गुंजायमान है। इस तरह इस गुणार्णव के द्वारा दिया हुआ यह धर्मपुर अग्रहार देवों द्वारा मन्थन किये जाने वाले समुद्र-घोष की तरह वेद-घोष से शब्दमय है। -यह है कवि पम्प की जागीर की शोभा उन्हीं के शब्दों में।

यह कहना कि कवि पम्प ने प्रभूत मात्रा में धन-कनक आदि के देने के कारण अपने आश्रयदाता का गुणगान किया है, न्यायसंगत नहीं होगा। कवि पम्प स्वभाव से ही उदार और विशाल-हृदय व्यक्ति हैं। ऐसे न होते तो इतनी सहृदयता तथा आद्र

हृदय से महाभारत की प्रतिपादित वस्तु का रसास्वादन कर प्रस्तुत नहीं कर सकते थे। पम्प भारत को जो एक बार आमूलाग्र पढ़ेगा वह इस तथ्य को जान सकेगा। उन्होंने "भारत" को एक विश्व-बंधु साहित्य माना है। ऐसा मानने का कारण साम्प्रदायिक परम्परागत विश्वास नहीं। "भारतः पंचमोवेदः" कहकर समस्त धर्म-सूक्ष्म भावनाओं को दर्शाने वाला धर्मग्रन्थ मानकर अथवा श्रीकृष्ण भगवान की महिमा से परिपूर्ण "कृष्ण चरितामृत" मानव-चेतना का उद्धार करनेवाला ग्रन्थ समझकर इस महाकवि की दृष्टि में यह "भारत" महान् नहीं। उनकी राय में महानता इस दृष्टि से है। वे कहते हैं—

> "बलदॊळ् दुर्योधनं नन्नियॊळिनतनयं, गंडिनॊळ् भीमसेनं
> बलदॊळ् मद्रेशनत्युन्नतियॊळमर सिंधूद्भवं चापविद्या
> बलदॊळ् कुंभोद्भवं साहसद महिमॆयॊळ् फल्गुणं धर्मदॊळ् नि
> र्मलचित्तं धर्मपुत्रं मिगिलिवर्गळिनो भारतं लोकपूज्यं।"

अर्थात्—अपने वांछित हठ-साधन करने में दुर्योधन, सत्य-निष्ठा में सूर्यपुत्र कर्ण, पराक्रम में भीम, शूरता में शल्य, औद्धत्य में भीष्म, धनुर्विद्या में द्रोण, साहस में अर्जुन, धार्मिकता में शुद्धात्मा युधिष्ठिर—ये महान् व्यक्ति हैं। इन्हीं के कारण महाभारत की महानता है, इसके लिए आदरणीय स्थान हैं, यह पूज्य ग्रन्थ है।

कवि पम्प का यह कथन सम्प्रदाय-प्रेमी जनों को चकित कर देता है। यह क्या? भारत का हृदय, प्राण और भारत का सूत्रधार बनकर ख्यात एवं साक्षात् भगवान् का अवतार माने जाने वाले कृष्ण भगवान के नाम तक का उल्लेख नहीं! जैन भारत में कृष्ण एक नारकी है; कवि पम्प ने जैन होने के कारण अपने संस्कारों के अनुसार कृष्ण के चरित्र को नीचे उतार दिया है! व्यास-रचित "भारत" का कृष्ण कहता है—"मम प्राणाहि पाण्डवाः", और उन पाण्डवों को, उनमें भी अपने परम भक्त अर्जुन को, जब कभी कष्ट-दशा प्राप्त हुई हो तब स्वयं प्रत्यक्ष होकर "साधु परित्राण" करने वाले बनकर अपने विरुद को चरितार्थ करने वाले कृष्ण महान् व्यक्ति के रूप में चित्रित हैं। ऐसे कृष्ण का उल्लेख पम्प-भारत में नहीं के बराबर है। अगर कहीं उल्लेख आया भी हो तो वह बहुत ही साधारण कोटि का है, कोई प्रभावशाली नहीं। शायद पम्प कवि ने यह अनुमान ही किया होगा कि इस तरह कृष्ण के चरित्र के प्रति उदासीन होने पर आक्षेप होगा—इसलिए अर्जुन को सिंहासन पर बिठाने के बाद उनके राज्य-निर्वहण के सम्बन्ध में कवि यों वर्णन करता है :—

> "पसरिसि नीळ्द तन्न जसदॊळ् पॆरनॊर्वन कीर्ति तळ्तु रं
> जिसॆ नॆगळॆदातनॆं नॆगळ्दनॆंब चलंमिगॆ; तन्न पॆम्पु त
> न्नॆसकमॆ तन्न विक्रममॆ तन्न नॆगळ्तॆयॆ तन्न मातॆ ता
> नॆसॆव जगत्रयक्कॆनिसि पालिसिदं नॆलनं गुणार्णवं॥"

अर्थात्—"अपनी कीर्ति में दूसरे की भी कीर्ति को सम्मिलित कर अपनी बड़ाई की डींग हाँकने वाला भी कैसा बड़ा आदमी है? जो आग्रहपूर्वक अपने स्वयं-पौरुष से अर्जित महत्व, अपने कर्तव्य, खुद के पराक्रम, खुद की अर्जित कीर्ति—इन सबसे युक्त होकर निश्चय ही तीनों लोकों में मान्य हो—ऐसे निर्धारपूर्वक दर्प के साथ गुणार्णव अर्जुन ने राज्य किया। पम्प कवि का अर्जुन श्रीकृष्ण की छाया में जीने वाला नहीं। वह (अर्जुन)

श्रीकृष्ण से, पौरुषपूर्ण जीवन क्या है इसके बारे में वीर जीवन का आदर्श बहुता है, सुनिए :—

"ऑत्ति तरंबिनिद रिपुभूक समाजद बेर्वळं नम
मकॅत्तदें, बन्दु सम्म मरॅवॊक्कॊर्डे कावदें, चागदोळ्पिन
क्कॊंत्तदें, मागडु बाळ्व पुळुवागसर्नेम्बन अंडसॅम्ब दीं
दत्तिय पण्णॊळिर्प पुळुवल्लदें मानसने मुरांतका ॥"

अर्थात्—हे कृष्ण, जो आक्रमण कर सामना करने वाले वैरि राजाओं को जड़समेत उखाड़कर निकाल न दे, अथवा शरण में आये हुए को रक्षा न करे, त्याग रूपी सद्गुण की छाप न लगा सके, वह मनुष्य ही क्या ?—ऐसा व्यक्ति मनुष्य ही नहीं। वह इस ब्रह्माण्ड रूपी गूलर के फल के अन्दर का एक कीड़ा है।

वीरता के ऐसे आदर्श को माननेवाले वीर पुरुष कदम-कदम पर श्रीकृष्ण की कृपा की भिक्षा माँगें, यह राजस वृत्तिवाले पम्प को कैसे सह्य हो सकेगा ? उनका दृष्टिकोण इस तरह का होने के कारण ही कवि ने अपने "भारत" को "लौकिक काव्य" कहा।

एक और बात। कवि पम्प ने लोकादरणीय पात्रों की पंक्ति में दुर्योधन और कर्ण को सम्मिलित किया है। महाभारत में ये दोनों पात्र दुष्ट चतुष्टयों की पंक्ति में हैं। पम्प कवि ने इन दोनों को अपरिमित आदर और गौरव का स्थान दिया है। दुर्योधन मृत्यु का आलिंगन करता है, इसके पश्चात् कवि दुर्योधन के बारे में चरमगीत गाते हुए कहते हैं :

"नुडिदुदनॅय्दें नुलतुदियॅय्दुविनं नुडिदं वलं, चलं
बिडिदुदनॅय्दें मुंपिडिदुदं पिडिदं सलॅ पूण्द पूण्कॅ ने
र्पडॅ मडॅवन्नॆगं नडॅदनळ्कदॆं बळकदें तन्नॊडळ पब
ल्वडुविनमम्मुगुन्दनें दलेनाभिमानधनं सुयोधनं"

अर्थात्—आखिरी दम तक वह दुर्योधन एक बार कही हुई बात को न बदलकर उसी पर अटल रहा, जिसे करना चाहा आग्रहपूर्वक उसी को साधा, अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए जिस मार्ग का पथिक बना उसी पर अडिग रहकर आगे बढ़ा, किसी भी हालत में न घबराया, न डरा; अन्त में जब मृत्यु सन्निहित रही तब भी उसका पौरुष कम नहीं हुआ, ऐसा यह सुयोधन कितना बड़ा अभिमान-धनी रहा !

ध्यान रखना चाहिए कि कौरवेश्वर इस महाकवि की दृष्टि में परम आदरणीय एवं गौरव का पात्र है—इसीलिए कवि ने उसे सुयोधन, अभिमान-धनी आदि कहकर समादृत किया है। पम्प कवि द्वारा चित्रित कर्ण, दुर्योधन पात्र ग्रीक नाटकों के दुःखान्त नायकों की तरह लगते हैं। इन उन्नत व्यक्तियों में रही दैत्य शक्ति का समस्त प्रयोग व्यर्थ गया, और वे भाग्य के हाथ खेल गये—इसे देखकर कौन ऐसा होगा जो हाय-तोबा न करेगा ? महाकवि पम्प जिस रास्ते में गये उसी पथ में पीछे चलकर कवि रन्न ने अपनी कृति में दुर्योधन को एक ऊँचे स्तर के दुरन्त नायक (Tragic Hero) बनाया है। कवि पम्प ने अपनी कृति में ऐसा प्रयोग कर्ण के पात्र की सृष्टि में किया है।

पम्प के "भारत" में अर्जुन नायक है, इसलिए उसके प्रतिस्पर्धी नायक कर्ण का

करना सहज ही है। कवि पम्प को इस पर असीम गौरव, आदर और प्रेम है। यह ठीक भी है, सहज भी। वास्तव में कर्ण जैसे अभागे दुनिया के साहित्य में विरले ही मिलते हैं। वह सूर्य-पुत्र, वीर क्षत्राणी कुन्ती देवी के गर्भ से सम्भूत है; सुप्रसिद्ध पांडवों में ज्येष्ठ है। गरीब की झोंपड़ी में जन्मा बच्चा भी गरम कपड़ों में सोकर माँ का दूध पीता है; बेचारा कर्ण जन्मते ही गंगा में बहा दिया गया; धीवर के हाथ लगा, उसीके यहाँ पला, बड़ा हुआ। तो भी जन्मजात स्वभाव कहाँ जाएगा ? वीर क्षत्राणी के गर्भ का प्रभाव और गुण कैसे लुप्त होंगे ? वह धीरोदात्त गुण कहाँ जाएगा ? इस सम्बन्ध में पम्प का कथन सुनिए; जब वह (कर्ण) यौवन की देहरी पर पहुँचा ही था, उस अवस्था में कर्ण कैसे रहा—

> "पोंर्दुवु बिल्ल जेवोंडेयें मोरव वैरिजरेल्लरं सिडि
> ल्वोंडेयवोलड्ड मुट्टि कडिदिक्कि बुधार्थेडरं निरन्तरं
> कडिकडि दित्त पोन्नें बुध मार्गण वंदिजनक्कें कोट्ट को
> डेंडरदें बेडिमोडिसिदु चागद वीरद मातु कर्णना ॥"

अर्थात्—कर्ण के पास दो ही बातें हैं—एक "भागो" दूसरा 'माँगो"। पौरुष की बात हो तो सामने कोई टिक न सकेगा—इसलिए भागो। त्याग में कोई बराबरी नहीं कर सकता है, इसलिए माँगो। एक बार धनुष पर तीर चढ़ा और धनुष की डोरी की टंकार-ध्वनि निकली नहीं कि शत्रु उसे सुनकर डर के मारे ऐसे भाग जायें जैसे गाज गिरी हो। और बुध-मागध जनों को जो सोना वह काट-काटकर देता था उससे उनकी गरीबी कट जाती थी। इसलिए कर्ण कहता था कि कोई मेरा सामना मत करो—भागो; यदि मदद की जरूरत हो तो आओ—माँगो।

इस तरह दिन दूना और रात चौगुना बढ़नेवाले कर्ण को देखकर इन्द्र भी डर जाता था। इन्द्र को यह डर था कि अगर कर्ण की यही स्थिति रही तो बेटे अर्जुन की क्या हालत होगी ? इसलिए इन्द्र उपनीत वटु (ब्रह्मचारी) का वेश धारण कर कर्ण के पास आया और उसके कवच-कुण्डल माँगने लगा। इस प्रसंग में कवि कहते हैं :—

> "ऍन्दुं पोर्गन्दनें मा
> यॅन्दनें पॅरतॉन्दनीवॅनॅन्दनें नॊन्दु
> ऍन्दनें सॅरगिल्लवें पिडि
> यॅन्दनिदें कासवो चागिगो राधेय"

अर्थात्—राधा का पुत्र कर्ण ऐसा कभी न कहेगा कि 'आओ', न कभी 'नहीं' कहेगा। जो माँगे उसे छोड़ किसी दूसरी चीज को देने का बहाना नहीं करेगा। माँगनेवाले ने जो माँगा उसी को उठाकर दे दिया, यह कर्ण का स्वभाव है। कितना बड़ा त्याग और कैसे त्यागी ! कवच माँगने की देरी थी कि "तन्न सहज कवचमं नॅत्तरु पनिपन पत्तिर्द सिबिर्दुगिसतुगिदु कोट्टन्"—यानी खून की धारा बहते हुए भी मरे हुए जानवर की खाल जैसे उधेड़ी जाती है वैसे उखाड़कर दे ही दिया।

कवि पम्प की बातों में जो तेज और ओज लक्षित होता है वह तो है ही, परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि यह कवि बहुत कम बातों में विशाल भाव को व्यक्त करने की असाधारण क्षमता रखते हैं। उनके वाक्य सूत्र के समान छोटे हैं। इतने बड़े कवि और शब्द-प्रयोग में इतने कृपण ! वास्तव में यह उनकी कृपणता नहीं बल्कि उनकी

भाषा ध्वनि-शक्ति से युक्त, सक्षम, भावपूर्ण है । दूसरे लोग जहाँ दस शब्दों का प्रयोग करेंगे वहाँ कवि पम्प एक ही ऐसे शब्द का प्रयोग करेंगे जो दस शब्दों का काम दे सके । इस महाकवि ने बड़े संयम से अपनी कृतियों में शब्द-योजना रखी है । चार पंक्तियों का एक गद्य, तीन छोटे कन्द पद्यों (एक कन्नड़ छन्द है "कन्द") में समस्त घटना को समाप्त किया है । कर्ण परशुराम के पास विद्याध्ययन करने जाता है, परशुराम कर्ण को शाप देते हैं— इस पूरी घटना को एक छोटा गद्य, एक ही छोटा पद्य और आधे एक गद्य भाग—इतने में समाप्त किया है। कर्ण परशुराम के पास धनुर्विद्या में निष्णात हो जाता है, एक दिन गुरु परशुराम इसकी (कर्ण की) गोद में सिर रख जब सोते रहे तब इन्द्र द्वारा भेजे गये दो वज्रकीट कर्ण की दोनों जंघाओं को काटने लगे और इनके काटने से जाँघों में छेद हो गये तथा उनसे खून बहने लगा । इस प्रसंग को कवि ने यों संक्षेप में कहा है—"उळियॊळूरि कॊडंतियॊळ् बेट्टिदन्तत्त मिस मुक्षियोगॆयु मदनरियदंतॆ गुरुवॊं निद्राभिघातमक्कुमॆन्दु तलॆयनुगुरि सुत्तुमिरॆयिरॆ"—अर्थात् छेनी को जोर से दबाकर ऊपर से मुँगरे से मारने पर जैसे छेद बनता है वैसे ही ये कीड़े जाँघों में छेद बना रहे थे, तो भी गुरु की निद्रा भंग होने के भय से इस दर्द को सहता हुआ ज्यों का त्यों सिर खुजाता बैठा रहा, परन्तु घाव से रक्त जो बहा उससे गुरु की जटा भीगी । जागने पर गुरु अपनी भीगी जटा देखकर चकित हो गये; तब वे सोच-विचारकर इस बात को समझने लगे—"ई धैर्यं क्षत्रियंगल्लदागदु" यानी यह साहस क्षत्रिय ही कर सकता है—ऐसा जानकर परशुराम ब्राह्मण कहकर अपने पास विद्याध्ययन करने के लिए आनेवाले शिष्य कर्ण को शाप देते हैं । इतनी बड़ी निश्छल गुरु-भक्ति और उसका यह फल ? यह कैसा न्याय ? यह कैसा दुर्भाग्य ?

कर्ण को दुर्योधन का मित्र बनाने के लिए जो युक्ति की गयी वह भी विधि की एक कृत्रिम अभिसन्धि है । पाण्डव और कौरव बड़े हुए, गुरु द्रोण के पास विद्या सीखी । अध्ययन पूरा हुआ । एक निश्चित दिन इन बालकों की परीक्षा की जा रही है । सभी शिष्यों ने अपनी विद्या में चातुरी दिखायी, और सब उपस्थितों ने उनकी प्रशंसा की । इसके पश्चात् अर्जुन ने अपनी धनुर्विद्या-चातुरी दिखाकर लोगों को चकित कर दिया । इसे देखकर "दुर्योधनन मॊगं तलॆनविरगॆंटि किरिदागॆ" यानी दुर्योधन का दुख (सिर के बालों की गाँठ से भी) बहुत छोटा हो गया । तब—

"तॊळगुव तेजं तॊळ तॊळ
तॊळगुव दिव्यास्त्रमर्दे कोदंडमसुं
गॊळिसॆ, मनंगॊळिसॆ, भयं
गॊळिसॆ, सभासदरुमं रदॆं कर्णं बंदं ॥"

अर्थात्—क्षात्रतेज से पूर्ण, चमकनेवाले दिव्यास्त्रों से सज्जित धनु, देखनेवालों के मन में आदर, प्रेम व भय को एक साथ उत्पन्न करनेवाली आकृति—इस तरह के रूप से आकर्षक कर्ण ने उपस्थित सभासदों की जरा भी परवाह किये बिना उस रंगमंच पर प्रविष्ट होकर गुरु द्रोण को एक बार प्रणाम कर अपनी शस्त्र-विद्या की निपुणता का प्रदर्शन किया; इतना ही नहीं, अर्जुन से लड़कर अपनी वीरता स्थापित करने तक के लिए तैयार हुआ । तब द्रोण और कृपाचार्य उसकी जाति-जन्म को लेकर उसका अपमान करने लगे । इसे सुनकर अपने को धीवर समझनेवाला कर्ण "पंदॆयं पावर्दलॆं"

(कायर साँप के चढ़ने से जैसे डरता है) डर गये। तब दुर्योधन आगे आया और कहने लगा :—

"कुलमॅम्बुदुंटॆ वीरमॆ
कुलमल्लदॆ कुलमनिन्तु पिक्कदिरिं नी
मॊलिदॆल्लि पुट्टि बॆळॆदिरो
कुलमिर्दुदॆ कॊडदॊळं शरस्तंभदॊळं"

"शौर्य ही कुल या वंश है, दूसरा कुल कौन है ? इस तरह कुल की बात न करें। यह जरा सोचें कि आपका कहाँ जन्म हुआ। घड़े में या तूणीर में ? कौन-सा कुल रहा है ?" यों कहकर दुर्योधन ने डाँट दिया।

कौरव राजा दुर्योधन की इस आवेशपूर्ण घन-गर्जन को सुनकर घड़े में जन्मा द्रोण और तूणीर में जन्मे कृपाचार्य ठण्डे पड़ गये। कर्ण के जलते अन्तर को सान्त्वना देते हुए दुर्योधन ने उसे अंगराज्य की राजगद्दी देकर अभिषिक्त किया, और कहा :—

"पॊडमडुवर जीयॆम्बर
कुडु दयॆगॆय्यॆ प्रसादमॆम्बिवु पॆररॊळ्
नडॆयॆम्म निम्मयॆडॆयॊळ्
नडॆयल्वेडॆनमॆ गॆळॆयनी राधेय"

अर्थात्—सब लोग मुझे साष्टांग करते हैं। "महास्वामी" कहकर पुकारते हैं। "दया हो, कृपा करें, महाप्रसाद" कहकर भय और भक्ति के साथ बात करते हैं। परन्तु मेरे और तुम्हारे बीच जो सम्बन्ध होगा उसमें यह सब आवश्यक नहीं रहेगा। स्वामि-सेवक सम्बन्धी ऐसी बातें हमारे बीच में नहीं होंगी। तुम मेरे मित्र हो।

इस मैत्री सम्बन्ध के हो जाने के बाद कर्ण और दुर्योधन दूध-पानी की तरह एक दूसरे में मिलकर एकाकार हो गये। इन दोनों की यह मैत्री इतनी आकर्षक और हृदयग्राही है कि इसके वर्णन में कवि ने मानो अपने स्वामी अरिकेसरी के साथ अपनी मैत्री के अनुभव को ही समाविष्ट किया है।

पम्प कवि ने व्यास कवि के "भारत" को विरूप किए बिना संक्षेप में कन्नड़ भाषा-भाषियों के लिए उसे दिया। तो भी उनकी वह कृति श्रीमान् ती० नं० श्रीकंठय्या जी के कथनानुसार "कन्नड़ के दर्पण में यह छोटा बनकर प्रतिबिम्बित भारत नहीं"— उनकी यह उक्ति बहुत ही अर्थपूर्ण है। मूल कथावस्तु में यत्र-तत्र किये गये परिवर्तन कितने अर्थवान् और सबल हैं। कथावस्तु वही है जो मूल में है, तो भी कहने के ढंग में कितनी नूतनता। अगर व्यास का भारत बृहत्काय "गोम्मट" हो तो पम्प "भारत" पहाड़ पर की कलापूर्ण चामुण्डा देवी के समान है। श्रीकृष्ण पाण्डवों के सन्धि विग्राहक बनकर कौरव के पास आते हैं और आधा राज्य माँगकर अपने प्रयत्न में असफल होकर लौटते हैं—यह महाभारत का कथांश बहुत ही रसवान अंश है। यहाँ कर्ण का चरित्र तप्त सुवर्ण की तरह जगमग चमकता है। कर्ण को अपना जन्मवृत्तान्त कृष्ण सुनाता है और पाण्डवों के साथ मिल जाने को प्रेरित करता है। पर कर्ण इनकार कर देता है। इस इनकार करने में भी उसकी महानता व्यक्त होती है। कवि पम्प राजनय में भी बड़े निपुण हैं न। इसलिए उन्होंने अपनी राजनीति-निपुणता से भी काम लेकर कर्ण के चरित्र को बहुत ही उन्नत स्तर पर पहुँचाया है। महाभारत की

कथा कई रूपों में उपलब्ध है। परन्तु किसी भारत में कौरवों को छोड़कर पाण्डवों के साथ सम्मिलित होने के लिए श्रीकृष्ण ने कर्ण से नहीं कहा है—यदि कहीं कहा भी है तो पाण्डवों में सम्मिलित होने के लिए जो कारण बताये हैं वे कोई नवीन नहीं हैं। मगर पम्प महाकवि ने जो कारण बतलाये हैं वे बिलकुल नवीन और अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होते। इस सम्बन्ध में कृष्ण कर्ण से बात करना शुरू करता है। उसके कहने के ढंग और राजनय की रीति बहुत ही नवीन और एकदम अभूतपूर्व है; उन्हीं की बातों में सुनिए :—

"भेदिसलॅन्दॅ दल् तुडिदरॅन्तदिरॉय्यनॅ केळ कर्ण नि
न्नादियॉळव्वॅ कॉन्ति, निनगम्मनहर्पति, पॉडुनन्दनर
सोदररॅय्दॅ मैम्दुननॅ नां पॅरतॅ पडॅमातॉ निन्न दी
मेदिनी, पट्टमुं निनतॅ, नीरिरॅ मत्तॅ पॅरर् नरेन्द्ररे।"

एक कहावत है—"चोर की दाढ़ी में तिनका"। श्रीकृष्ण कर्ण के पास भेदोपाय से कौरवों के पक्ष को छोड़कर एवं पाण्डवों में शामिल होने के लिए कहने ही को आया है—तो भी जिस ढंग से वह कहना शुरू करता है वह गौर करने लायक है। वह कहता है—"हे कर्ण! सुनो, ऐसा मत समझो कि मैं तुम लोगों में भेदोपाय से अलगाव पैदा करने आया हूँ। शान्त चित्त से बात सुनो—तुम्हें जन्म देनेवाली माँ कुन्ती है। सूर्य तुम्हारे पिता। पाण्डु के बेटे तुम्हारे एकोदर भाई हैं। मैं तुम्हारा (साला) श्यालक, बहुत बातों से क्या लाभ; सबसे बड़े तुम, यह राज्य वास्तव में तुम्हारा ही है। यह गद्दी तुम्हारी। तुम्हारे रहते दूसरा कोई राजा हो कैसे सकता है?" यों वार्तालाप आरम्भ करते हुए कृष्ण कहता है—"इस बात को दुर्योधन भी जानता है कि तुम पाण्डवों में ज्येष्ठ हो। पहले जब दुर्योधन-कर्ण दोनों (मृगया) शिकार खेलने जंगल में गये थे तब वे वहाँ सत्यपरन्तप नामक एक ऋषि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ ऋषिराज सत्यपरन्तप ने कर्ण को पहले आसन देकर उनके प्रति आदर दिखाया था। मानी दुर्योधन को यह सहन नहीं हुआ, तो उसने कर्ण को किसी दूसरे काम के बहाने अन्यत्र भेजकर ऋषि से पूछा—"आनिरॅ नीमिदेकॅ दयॅगॉय्दिरोमीड्गुणिगंपॅ"—अर्थात् मेरे रहते इस धींवर की इतनी प्रतिष्ठा?—ऋषिराज ने दुर्योधन के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्हें कर्ण का जन्म-वृत्तान्त सुनाया था। ऋषि की यह बात सुनकर तब दुर्योधन ने यह निश्चय किया कि "पाटि सुवॅग्गॉय्यनॅ मुळ्ळॉळ् मुळ्ळन्"—अर्थात् "अच्छा! यह बात है; तब तो मैं इस काँटे से ही काँटों को निकाल दूँगा।" देखिए, कृष्ण की ये बातें कितनी मार्मिक हैं! अगर कर्ण की जगह कोई और होता तो कृष्ण की इन बातों के वश में आ जाता। कर्ण इन बातों में नहीं आया। आँखों में आँसू भरकर कर्ण ने कृष्ण से कहा—"नण्पिन नॅवदिद पाण्डवर नानॉळ पॉक्कोड नीवॅ पेसिरॅ?"—अर्थात् यह समझकर कि पाण्डव मेरे सगे सम्बन्धी हैं, यदि मैं उनकी तरफ हो जाऊँ तो स्वयं आप ही मुझसे घृणा न करेंगे?" कौरवों के विश्वासघात का एक उदाहरण कृष्ण देता है तो कर्ण उनके असमान स्नेह का एक उदाहरण देता है :—

"नॅतमनाडॅ, भानुमति सोल्लॉडॅ, सोलगमीवुकॅन्दु का
डुत्तिरॅ, लंबणं परियॅ, मुत्तिन केडलॅ सोडि नॉडि व
ळ्कुत्तिरॅ येवमिल्लदिकनाय्युदॉ तप्पदॅ पेळिमॅन भू

पोरमन बिसुट्टिरवें निम्मोळ्‍ पॉक्कॉडें बेडनल्लने ?"

अर्थात् — एक दिन कर्ण दुर्योधन रनिवास में भानुमती के साथ अक्ष-क्रीड़ा खेल रहा है। दुर्योधन वहाँ प्रेक्षक बना बैठा है। भानुमती हार गयी है। (हारनेवाले जीतनेवाले को मुक्ताहार दे दें ऐसा प्रण रहा होगा।) प्रण के अनुसार भानुमती के गले की मोतियों की माला पर कर्ण का अधिकार हो गया है। वह महारानी भानुमती के गले के उस मुक्ताहार को हाथ से पकड़कर निकालकर देने के लिए कह रहा है। खींचातानी में हार टूटता है और मोती बिखर जाते हैं। यह देखकर दुर्योधन थोड़ा भी विचलित न होकर कहने लगा—"क्यों भाई ! क्या मोती चुनकर दूँ ?"—ऐसे श्रेष्ठ राजा को छोड़कर मैं यदि आपमें सम्मिलित हो जाऊँ तो आप स्वयं ही यह न कहेंगे कि मैं किरात से भी गया-गुजरा हूँ ?

कवि पम्प के काव्य-स्वरूप को दर्शाने के लिए ऊपर उद्धृत पद्य एक उदाहरण है। उनकी यह उक्ति कितनी संक्षिप्त और कितनी ध्वनिपूर्ण है ! कवि कु० वें० पु० की बातों में इस प्रसंग का चित्रण यों है :—

"विशेष परिस्थिति की किंचिन्मात्र भी जहाँ गन्ध तक नहीं है वहाँ उन बातों से निकलनेवाली ध्वनि समुद्र की तरंगों के कोलाहल के समान उमड़ी पड़ी है। काँटे से काँटे को जैसे निकाला जाता है वैसे ही कर्ण के द्वारा पाण्डवों का निर्मूलन स्वार्थ-प्रेरित अभिसन्धि मात्र होता तो मैत्रीयुक्त इन दोनों की आपस की आत्मीयता इतनी गाढ़ और स्निग्ध न होती। रनिवास तक पहुँचना सम्भव कैसे हो सकता था ? इतना मात्र कहना पर्याप्त था कि राजा-रानी का सरस-संलाप अन्तःपुर में रहकर सुनने और उसमें भागी बनने का भाग्य कर्ण को प्राप्त था। इतना कहने से कर्ण-दुर्योधन के बीच की मैत्री का गाढ़तम स्तर ज्ञात हो सकता था। परन्तु इधर हम देख रहे हैं कि महा-रानी के साथ कर्ण पासा खेले—इस स्तर तक मैत्री की शुद्धता और पवित्रता जहाँ हो वहाँ उस पर कलंक लगे भी तो कैसे ? कलंक लगाना कभी सम्भव हो सकेगा ? दुर्योधन की यह उक्ति "एवमिल्लदिवनाय्बुदो ?"—कर्ण के विषय में कितनी उचित है। श्रीकृष्ण ने दुर्योधन की इस उक्ति का पूर्ण रूप से इंगितार्थ समझा और बिना कुछ कहे लौट पड़ा। कर्ण की इस उक्ति का चमत्कार देखिए—"निम्मोळ्‍ पॉक्कॉडें बेडन-ल्लवे ?"—अर्थात् आपके पक्ष में हो जाऊँ तो क्या मैं किरात से गया-गुजरा नहीं कहाऊँगा ?—अब तक संसार ने कर्ण को व्याध या किरात समझा था। परन्तु अब यह विदित हुआ कि वह व्याध या किरात नहीं। मगर जिस पत्तल में खाएँ उसी में छेद कर संसार की दृष्टि में क्या वह अपने को व्याध या किरात कहकर अपने नाम को अन्वर्थ बना ले ? नहीं।

कर्ण की इन बातों को सुनकर और यह समझकर कि यह मछली जाल में फँसनेवाली नहीं, चुपचाप कृष्ण चला गया। कृष्ण के उस तरफ चले जाते ही इधर कर्ण आँसू बहाता चिन्तामग्न हो बैठ गया। उसकी चिन्ता थी—"भाइयों को मारे भी कैसे ? और इधर अपने मालिक को धोखा भी दे कैसे ?" इस दुविधा में उसने अन्त में यह निश्चय किया कि आगे युद्ध शुरू होने पर लड़कर पहले इस रणयज्ञ में आत्माहुति दे दूँगा। परन्तु युद्ध आरम्भ होने पर उन्हें अपने निश्चयानुसार करने का अवसर नहीं मिला। यह निर्णय हुआ कि भीष्माचार्य नायक बनें, इस निश्चय के अनुसार भीष्म

अधिकृत प्रधान सेना-नायक बनाये गये। यह देखकर कर्ण की मानसिक वेदना भीष्म के प्रति तिरस्कार के रूप में व्यक्त होती है; तब वह दुर्योधन से कहता है :—

"कट्टिद पट्ट मॅ सरबिगॅ
नॅट्टनॅ दॉरॅ; पिडिद बिल्लॅं दंटिगॅयॅ क
ळ्ॉट्ट मुडुपंगॉ; पगॅवर
निट्टॅल्वं मुरिवॉडॅनगॅ पट्ट मट्टा।"

अर्थात्—इस बूढ़े को सेनापति के पद पर आसीन करना केले के रेशे से मस्त हाथी को बाँधने की कोशिश जैसा है। यानी केले के रेशे के समान है इस बूढ़े को सेनापति बनाना। धनुष जो उसके हाथ में होगा सो ज्वार के डण्डे के समान रहेगा। इस अन्धे को यह सेनापति का पद क्यों? यदि शत्रुओं की हड्डी-पसली को चूर-चूर करना हो तो मुझे सेनापति बनाओ। "कुलवृद्धरमाजिगुय्दु कॅम्मनॅ पगॅवाडियॅाळ् नगिसि कॉण्डॉडॅं बल्वपुदॅ सुयोधना"—बूढ़े को रणक्षेत्र में ले जाकर खड़ा करके शत्रुओं की हँसी का पात्र बनने से तुम्हें क्या फायदा होगा, हे सुयोधन !

कर्ण की इस उक्ति में यह भाव व्यक्त होने पर भी कि भीष्म पाण्डव-पक्षपाती हैं और पूरे पके वृद्ध हैं, एक और बात भी स्पष्ट दिखती है कि अपने जन्मवृत्तान्त को समझने के बाद जो उसके मन में ग्लानि उत्पन्न हुई थी उसकी भी प्रतिक्रिया ध्वनित होती है। हो सकता है कर्ण का दुर्योधन से इस तरह कहने का यह भी कारण हो।

यह सोलहों आने सत्य है कि भीष्म वृद्ध हैं। यहाँ कवि पम्प ने भीष्म के व्यक्तित्व का जो चित्र खड़ा किया है वह कितना गरिमामय है, देखिए :—

"जोल्द पुर्बनॅत्तिकट्टिद ललाटपट्टदॉळ् इट्टळमॉप्पुव वीरवट्टमुं"—अर्थात् वृद्धाप्य के कारण उनके (भीष्म के) झुर्रीदार चेहरे पर लटकनेवाले भौंहों को ऊपर की तरफ तानकर माथे पर सेनापतित्व का सूचक 'वीरपट्ट' बँधा हुआ है। यों वे इतने वृद्ध हो गये हैं कि भौंहें लटकाकर उनकी आँखों को भी ढँक दें। परन्तु क्या? जैसे आचार्य द्रोण कहते हैं कि भीष्म का वृद्धाप्य और सिंह का वार्धक्य, क्या कोई वार्धक्य है? परम शान्त एवं क्षमाशील भीष्म कर्ण की इन बातों से क्रुद्ध नहीं हुए। उन्होंने हँसते हुए कहा और कहा बड़े गम्भीर होकर "मुदुकर बिल्बल्मॅ अण्णनॅन्दन्तुटे।" यानी बूढ़े का धनुष बड़ा शक्तिवान् होता है जैसा अभी भाई ने कहा। इतना कहकर भीष्म अपने पराक्रम के बारे में स्वयं कहते हैं—

"पिडियॅम् चक्रमनॅम्ब चक्रियनिळा चक्रं भयंगॉळ्विनं
पिडियिप्पॅम् करचक्रमं, नररथं तूळ्दा कुरुक्षेत्र दिं
पडुवॅण्गावुदम्[1] पोगॅ योगडिसुवॅम् निन्वं धराधीशरं
पडलिट्टंतिरॅ माळ्पॅनोदवॅ पयिच्छासिर्बरं युद्धदॉळ् ॥"

अर्थात्—चक्र धारण न करने की प्रतिज्ञा करनेवाले कृष्ण के हाथ में संसार को कँपा-देनेवाले भीषण चक्र को धराऊँगा। महामहिप कृष्ण की प्रतिज्ञा भंग कराऊँगा। अर्जुन के रथ को (जिस पर निशान हनुमान का और जिसका सारथि कृष्ण) पश्चिम

---

१. एण्गावुद—गावुद बारह मील की दूरी को कहते हैं। ऐसे आठ गावुद अर्थात् ९६ मील की दूरी।

दिशा की ओर कोसों[1] दूर जा गिरे—ऐसा तीर चलाऊँगा। प्रतिदिन युद्ध में दस हजार किरीटधारी योद्धाओं को धराशायी करूँगा—ऐसा युद्ध करूँगा।

भीष्म ने जैसा कहा वैसा ही किया और अन्त में शरशय्या पर लेट गये। "भीष्मानंतरं द्रोणं" ?—उनकी बारी समाप्त होने के बाद कर्ण की बारी। कर्ण सेनापति बनने के पहले शरशय्या पर लेटे भीष्म के पास जाकर उनके चरणों में सिर रखकर क्षमा याचना करता है :

"आं मातरिवदें मुळिदुं
निम्मडियं नोयें नुडिदॅनुरदेळिसले
नॅम्मळवॅ ? मरॅवुदा मन
दुम्मच्चमनज्ज निम्मनॅरॅयलॅ बन्दॅम्"

अर्थात्—"हे तात ! मैं बात करने में शिष्टाचार का पालन करना नहीं जानता। मानसिक उद्वेग के कारण मैं जो मन में आया सो कह गया और आपके मन को टीस पहुँचायी। मुझमें इतनी योग्यता कहाँ कि मैं आपको टीस पहुँचाकर अपमानित कर सकूँ। क्रोध के वशीभूत होकर मैंने जो कुछ कहा उसे भूलकर मुझे क्षमा का पात्र समझकर मेरे अपराध को क्षमा करें। इसी क्षमा-याचना के लिए मैं सेवा में निवेदन करने आया हूँ।" कर्ण के इस विनीत वचन को सुन भीष्म पितामह (सूर्य-रश्मि के लगने पर जैसे हिम पिघलता है) पिघल गये। भीष्म पितामह ने कर्ण को यों समझाकर समाधान किया—"बेटा ! तेरी ये कटूक्तियाँ कौरव के प्रति तुम्हारी स्वामिनिष्ठा को द्योतित करती हैं।" यों उसे सान्त्वना देकर पितामह कहते हैं—"नीनॅमगॅ कुंतिय गांधारिय मक्कळ लॅक्कद मॊम्मनै" यानी तू भी पाण्डव कौरवों की तरह हमारा पौत्र है। यहाँ एक-दूसरे को न समझकर दादा-पोता कहकर सम्बोधित करते हुए वार्तालाप करना बहुत ही चित्ताकर्षक है।

यों कर्ण के चरित्र-चित्रण में काव्य-समाधि में लीन कवि (पम्प) इस बात को भूल गये हैं कि वास्तव में उनकी कृति का नायक कौन है। दीप बुझने के पहले एक बार महान् प्रकाश अन्तिम बार दिखाकर जैसे सदा के लिए बुझ जाता है वैसे ही अपना अभूतपूर्व पराक्रम दिखाकर मृत्यु की गोद का आलिंगन करनेवाले सूर्यपुत्र (कर्ण) के प्रति कवि यों अपने उद्गार प्रकट करते हैं :—

"नॅनॅमदिरण्ण भारतदॊळ् पॅररारुमनॊन्दॅ चित्तदिं
नॅनॅवॊडॅ कर्णनं नॅनॅय, कर्णनॊळारॅदॅरॆ ! कर्णनेरु क
र्णन कडुनन्नि कर्णनकर्षकद कर्णन चागमॆन्दु क
र्णन पडॆमातिनॊळ् पुदिदु कर्ण रसायनमल्तॆ भारतं।"

कहने का तात्पर्य यह कि—"यदि भारत में किसी का स्मरण करना हो तो और किसी का नहीं, केवल एकाग्र भाव से कर्ण का ही स्मरण करो। कर्ण के समान और कौन है ? कर्ण का शौर्य, उसकी सत्यपरायणता, उसका साहस और उस महादानी का त्याग आदि संसार में प्रसिद्ध हैं और इसी कारण से भारत सुश्रव्य महाकाव्य है।

---

१. कन्नड़ में "गावुद" १२ मील की दूरी को कहते हैं। ऐसे आठ "गावुद" का अर्थ हुआ ९६ मील। "गावुद" का पर्याय हिन्दी में मालूम नहीं पड़ा, अतः "कोसों दूर" लिखा गया।

इस तरह कर्ण का चरित्र चित्रित है। ग्रीक नाटकों के दुरन्त नायक (Tragic Hero) के समस्त गुण कर्ण के चरित्र में समाहित देखकर हमें चकित होना पड़ता है। शौर्य, औदार्य आदि गुणों से भूषित कर्ण धर्मपरायण पाण्डवों के विरुद्ध रह कर विधि-विलास के कारण काल-कवलित हुआ। महाकवि पम्प का कर्ण के प्रति जो करुणाशील है उसे पढ़ या सुनकर हृदय द्रवित होता है और आँखें अश्रुपूर्ण होती हैं। इतना ही नहीं विधि की दुर्दम्यता के स्मरण मात्र से भय भी उत्पन्न होता है। महाकवि पम्प का कर्ण कवि रन्न के दुर्योधन और नागचन्द्र के रावण के पात्र निर्माण में आदर्श बनकर कन्नड़ साहित्य को पुष्ट करने में सहायक बना है। महाकवि रन्न ने पम्प कवि का बड़े आदर के साथ स्मरण किया है तो नागचन्द्र ने अपने को "अभिनव पम्प" बताकर गौरवान्वित माना है। तब से अब तक हजार से भी अधिक वर्ष व्यतीत हुए हैं तो भी महाकवि पम्प का बड़प्पन, गौरव और आदरभाव अक्षुण्ण बने हुए हैं।

पॅान्न

इस युग के कन्नड़ साहित्य के निर्माताओं में प्रमुख तीन कवि माने गये जिन्हें कन्नड़ साहित्य के इतिहासकारों ने "रत्नत्रय" माना। इनमें से प्रथम रत्न महाकवि पम्प हैं जिनके व्यक्ति-परिचय के साथ कृति-परिचय भी दिया जा चुका है। अब इस युग के द्वितीय रत्न महाकवि "पॅान्न" है। यह कवि राष्ट्रकूट चक्रवर्ती मुम्मडी (कृष्ण-तृतीय)—(ई० सन् 939-968) के आस्थान कवि थे। इसलिए इनकी काव्य-रचना बहुत करके ई० सन् 950 से आरम्भ हुई होगी। ऐसा लगता है कि यह भी महाकवि पम्प की तरह वेंगिमण्डल से ही आये होंगे। वेंगिमण्डल के पुंगनूर में नागमय्या नामक एक जैन ब्राह्मण थे। उनके मल्लप और पुण्णिमय्या नामक दो वीर पुत्र थे। इन दोनों ने जब अपने गुरु दीनचन्द्र के दिवंगत होने पर उनकी सद्गति के निमित्त महाकवि पॅान्न से सोलहवें तीर्थंकर की भावावळी-युक्त "शान्ति पुराण" को सम्भवतः लिखवाया हो। इन दोनों में ज्येष्ठ मल्लप की एक बेटी थी जिसका नाम अत्तिमब्बे था। महाशया अत्तिमब्बे "दान चिन्तामणि" के बिरुद से प्रख्यात थी। इन्होंने इस कवि पॅान्न रचित शान्ति पुराण की सहस्र प्रतियाँ लिखवाकर "जिन" देव की सहस्र स्वर्ण प्रतिमाओं को बनवाकर उन सहस्र हस्तलिखित ग्रन्थों के साथ दान दिया था—ऐसी प्रतीति है। हो सकता है कि कवि पॅान्न की काव्य-रचना के समय तक या उसके पहले ही महाकवि पम्प की रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हों। ऐसा लगता है मानो यह पम्प कवि का ही अनुकरण कर रहा है। "लोकोत्तर लौकिक परिणति पॅान्निगंगें शान्तीश्वर रामकथा प्रशस्ति यिदाद कृतिर्गळि'—अर्थात् लोकोत्तर परिणतमति पॅान्न का "शान्तीश्वर राम कथा" प्रशस्तियों से युक्त काव्यों का प्रणयन उनकी धार्मिक एवं लौकिक दोनों क्षेत्रों की परिणत प्रतिभा का परिचायक है। धर्मग्रन्थ के रूप में "शान्तिपुराण," लौकिक काव्य ग्रन्थ के रूप में "रामकथा" को प्रणयन किया होगा। यदि पम्प महाकवि ने अपनी कृति का नामकरण "विक्रमार्जुन विजय" किया तो कवि पॅान्न ने अपनी कृति का नाम "भुवनैकरामाभ्युदय" रखा। ऐसा लगता है जैसे महाकवि पम्प के भारत में अरिकेसरि विक्रमार्जुन का पात्र अदा करता है तो कवि पॅान्न का आश्रयदाता श्रीराम बनकर विराज रहा हो। यह ग्रन्थ "भुवनैक रामाभ्युदय" अनुपलब्ध है। उपलब्ध होने पर सम्भव

है कि कवि पॅान्न के चौबक से सम्बन्धित ऐतिहासिक विषय मालूम पड़े। कवि पॅान्न ने स्वयं यह बताया है कि उनके इस काव्य में चौदह आश्वास हैं जो चौदह लोकों के मूल्य के बराबर हैं। उन्हीं की वाणी में सुनिए—"पदिनाल्कु भुवनंगळ् । पदिनाल्काश्वास रचनेगं बॅलॅयक्कुं" अर्थात् चतुर्दश भुवन, चतुर्दश आश्वासों का मूल्य है। इन्हें "उभय-भाषा चक्रवर्ती" का बिरुद भी प्राप्त था, ऐसा कहा जाता है—

"कविता विळासमं च
क्रवर्ति तानिदुं मेच्चें पॅसगॅाँडेरडुं
कवितॅयॅाळुभयकवि च
क्रवर्तियॅनें नॅगळ्दनी कुरुळ्गळ सवणं

अर्थात्—चक्रवर्ती (कृष्ण तृतीय) मेरे कविता विलास को देखकर अपना सन्तोष व्यक्त करके इस केशी श्रमण को "उभय कविता चक्रवर्ती" नामक बिरुद से विभूषित किया है। उपर्युक्त काव्यांश में इस बात को स्वयं पॅान्न कवि लिखते हैं। जैन धर्म की प्रशंसा के गीत गाने के कारण "कुरुळ्गळ सवण" अर्थात् केशों वाले श्रमण की उपाधि अलग है। इन उपाधियों की उमंग में आकर कवि स्वयं अपने को भूलकर कहता है :—

"कन्नड़ कबितॅयॅाळसगं
मन्नूमॅडि रेखॅगग्गळं सक्कददॅाळ्
मुन्नुळ्ळ काळिदासं
मन्नूमॅडि रचनॅयॅाळ् कुरुळ्गळ सवणं"

अर्थात्—स्वयं कवि अपने इस काव्यांश में कहता है, "मेरी रचना सामर्थ्य कन्नड़ के असग और संस्कृत के कालिदास इन दोनों से सोगुनी अच्छी और उत्तम है।" कवि की यह उद्धतता, कहने की अहं-पूर्ण रीति और उनकी ये उपाधियाँ सब देखकर इन्हें एक महाकवि मानकर इनकी महान् कृति "शान्ति पुराण" को पढ़ने लगते हैं तो धोखे में पड़ने की सम्भावना है। पॅान्न ने अपनी कृति "शान्ति पुराण" को उपमातीत कृति और पुराणों में चूड़ामणी कहकर जो प्रशंसा की है वह केवल ढकोसला है—ऐसा स्पष्ट हो जाता है। काव्यधर्म और धर्म को दूध और शक्कर की तरह प्रमाणानुसार मिलाकर बहुत ही रोचक ढंग से निर्मित महाकवि पम्प की कृति "आदि पुराण" को पढ़कर इस "शान्ति पुराण" को पढ़ते हैं तो यह केवल मात्र पानी के स्वाद जैसा फीका लगता है। 'कुरुळ्गळ् सवण' ने जैनागम धर्म-निरूपण करने की धुन में रस भावों को एकदम निकाल ही नहीं दिया है, बल्कि काव्य के घेरे से बाहर कर दिया है। अपना पण्डिताऊपन दिखाने के लोभ में लालित्य को तिलांजलि दे दी है। ऐसा व्यक्ति जो अपने को कालिदास से सौ गुना उत्तम समझता है, उसकी धृष्टता को क्या कहें ? कहाँ कालिदास, कहाँ पॅान्न ? कालिदास के रघुवंश के इन्दुमती स्वयंवर के सन्दर्भ के वर्णन में लिखे गये समस्त काव्य भाव को पूर्ण रूप से अपने शान्तिपुराण के पाँचवें आश्वास में जहाँ ज्योतिप्रभा के स्वयंवर का वर्णन है—इस वर्णन के लिए ले लिया है और कालिदास के प्रति अपनी कृतज्ञता तक प्रकट नहीं की है। कालिदास के उस उक्त प्रसंग का भाषान्तर (अनुवाद) जो किया वह भी ललित-मनोहर नहीं। पॅान्न ने "जिनाक्षरमाला" के नाम से एक जिनस्तोत्र ग्रन्थ की रचना की है। "क" कार से "ळ" कार तक के प्रत्येक अक्षर से आरम्भ होने वाले कन्द-पद्यों की

रचना की है जो पर्याप्त मात्रा में चमत्कार पूर्ण हैं। परन्तु यहाँ भी हम कवित्व पद-बद्धता के औचित्य को नहीं देख पाते। प्रतीति है कि "मत-प्रत्यांगत" नामक एक और ग्रन्थ की रचना इन्होंने की है जो कि उपलब्ध नहीं है। वह समय ही ऐसा था कि ताड़पत्र पर कांटे से ग्रन्थ लिखे जाते थे; और जो ग्रन्थ जनप्रिय न हो वह समयान्तर में कालकवलित हो गया हो—इसमें कोई आश्चर्य नहीं। सम्भवतः जैनियों की धर्मानुरक्ति के कारण पॉन्न के ये दो ग्रन्थ बचे हों।

चाहे जो भी हो, कवि पॉन्न भाग्यशाली हैं। "कवि चक्रवर्ती" नामक विरुद जो महाकवि पम्प के भी भाग्य में बदा न था सो इनके हिस्से में पड़ा और यह केवल इन्हें एक चक्रवर्ती राजा का आश्रय मिलने से ही प्राप्त हुआ। जब कोई उदार आश्रय-दाता मिलता है तब साधारण व्यक्ति को भी प्रतिष्ठा या कोई असाधारण पद मिल ही जाता है। यह लोकरूढ़ि है और इसका उदाहरण है यह पॉन्न कवि। जब यह जीवित रहा तब असाधारण गौरव से समादृत हुआ। बाद को भी स्थानबल के कारण उसका वही आदर बना रहा। साहित्य के इतिहास में कवि-चक्रवर्ति-त्रय में एक माना गया है। कन्नड़ साहित्य के रत्नत्रय में एक है। जैन धर्म के प्रतिपादक सभी कवियों ने इस कवि (पॉन्न) की धर्म-निरूपण क्षमता एवं धर्म सम्बन्धी निकृष्ट ज्ञान-गरिमा के कारण (इसकी) कीर्ति गाई है। कन्नड़ भाषा के व्याकरण शास्त्री केशिराज, नाग-वर्म और भट्टाकलंक आदि ने अपने व्याकरण-सूत्रों के उदाहरण के रूप में पॉन्न की कविता में से आवश्यक पद्यभागों को उद्धृत किया है। पॉन्न ने स्वयं अपने काव्य को प्रशंसा यों कहकर की है कि पण्डित और मूर्ख दोनों इनके काव्य की स्तुति समान रूप से करते हैं। श्रीमान मुगळी जी ने अपने "साहित्य के इतिहास" (पृ० संख्या 106) में लिखा है कि पॉन्न कवि के शान्ति पुराण को एक श्रेष्ठ कृति कहकर प्रशंसा करने वाले या तो पण्डित ही होंगे या मूर्ख ही होंगे। परन्तु साहित्य रसास्वादन करने वालों के लिए इसमें कुछ भी नहीं मिलेगा।

रन्न

जैनियों का पवित्र क्षेत्र श्रवणबॆळुगॊल; इस क्षेत्र में एक छोटा टीला; इस टीले पर एक प्रस्तर खण्ड; इस प्रस्तर खण्ड पर प्रकृति के प्रकोप का सामना करके भी हजारों साल से पाँच अक्षर अमिट हैं। वे अक्षर हैं "श्री कवि रत्न"। लोग कहते हैं कि इन अक्षरों को प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण करने वाले स्वयं रन्न ही थे। यह श्रुति परम्परागत सत्य है। उनका बाल्यकालीन शिक्षण भी यहीं हुआ था—ऐसी प्रतीति है। सम्भवतः बालक रत्नने अपने बालपन की चंचलता को तृप्त करने के लिए स्वयं अपने इन नामाक्षरों को उत्कीर्ण किया होगा। कन्नड़ भाषा के साहित्योपासकों के लिए रन्न के ये स्वहस्ताक्षर देखकर भ्रम से ही सही, रोमांच हो जाता है। कन्नड़ के इस रत्नत्रय में अन्तिम रत्न यह कवि रन्न नाम से भी अन्वर्थ है अर्थात् यह नाम "रन्न" इनके विषय में अन्वर्थ है। वह सब दृष्टियों से अनर्घ कवि रत्न ही है। "रत्नत्रय" कहकर अभिहित करने वाले भी सर्वप्रथम यही हैं।

"कविजनदॊळ् रन्नत्रय
पविमर्ममॆनॆ मॆयळ्द पंपनुं पॊन्निगनुं

कविरत्नतु मी मूवर्
कविमळ् जिन समय दीपकर् ऍंब्रॉळरे ?"

कवियों के आम्नाय (कुल या समूह) में जैन धर्म को उद्योतित करने वाले पम्प, पौन्न, रन्न श्रेष्ठ रत्न-त्रय के रूप में प्रसिद्ध हुए। इन्हें छोड़ दूसरा कौन है ? शेष कवियों की बात रहने दें; ऐसा महाकवि रन्न बिना संकोच अपनी प्रशंसा क्या आप करे ? इस आत्म-प्रशंसा में यह कवि पम्प-पौन्न दोनों से आगे बढ़ा हुआ है—

"रत्न परीक्षकनां मृति
रत्न परीक्षकर्नेनेन्दु फणिपतिय फणा
रत्नमुमं रन्नन कृति
रत्नमुमं पेळ् परीक्षिपंसॅप्टॅदॅ ये ?"

अर्थात् कवि रत्न पूछते हैं :—

"मैं एक रत्न परीक्षक जौहरी हूँ—ऐसा मानकर शेषनाग के फणिमणि की, और मैं काव्य विमर्शक हूँ—ऐसा समझकर कवि रन्न के काव्यरत्न की परीक्षा करने के लिए क्या तुम्हें आठ-आठ छातियाँ हैं ? यानी जौहरी के नाते नागफण-मणि की परीक्षा और विमर्शक के नाते रन्न की कृति की विमर्शा करने का क्या तुम्हें इतना साहस है ?"

"बहुरत्ना वसुन्धरा" यह एक लोकोक्ति है। कवि रन्न कहता है कि इस कहावत को मिटा दो। यदि कोई रत्न है तो "इस लोक में केवल एक ही रत्न" है और वह है कवि रन्न। इतना ही नहीं उनका साहस तो देखिए :—

"आरातीय कवीश्वर
रारं मुन्नातॅरिल्ल; वाग्देविय भं
डारद मुद्रॅयनॊडॆदं
सारस्वतमॆनिप कवितॆयॊळ् कवि रत्नं ॥"

अर्थात्—पहले किसी कवि से बन नहीं सका; कवि रन्न ने अपनी रसवान् कविता द्वारा सारस्वत क्षेत्र में उत्कृष्ट काव्य-कृतियों से वाग्देवी के भण्डार का ताला तोड़कर उनकी सम्पूर्ण सारस्वत सम्पत्ति हस्तगत कर ली। तात्पर्य यह कि अब वाग्देवी का सारा भण्डार कवि रन्न का हो गया और वह भण्डार रिक्त हो गया।

रसभावों की अनुभूति से परिपूर्ण कवि रन्न नई देशी शैली में काव्य-सर्जना करने में बड़े दक्ष हैं। इस सृजन-कार्य में वह दूसरे चतुर्मुख (ब्रह्मा) ही हैं। स्वयं उन्होंने अपने ही मुँह से अपनी बड़ाई की है, तो भी यह बड़ाई केवल बड़ाई नहीं, उनके कृतिरत्न इस बड़ाई के लिए सर्वथा योग्य हैं। उनकी कृतियों को पढ़ने के पश्चात् हमें प्रतीत होता है कि वे वास्तव में इस प्रशंसा के योग्य अवश्य हैं। उन्होंने जो अपनी कृतियों पर प्रशंसा के वाक्य कहे हैं और गर्व के साथ कहे हैं, वे सर्वथा उचित हैं। उन कृतियों को पढ़कर पाठक तृप्त और सन्तुष्ट हो जाता है।

कवि रन्न के काव्यों में 'अजित पुराण' और 'गदायुद्ध या साहसभीम विजय'—ये दो सम्पूर्ण ग्रन्थ तथा "रन्न कन्द" नामक निघण्टु (कोश) के कुछ पद्य मात्र उपलब्ध हैं। "चक्रेश्वर चरित", "परशुराम चरित" इन दो ग्रन्थों को भी लिखा है—ऐसा स्वयं कवि बतलाते हैं। कुछ पण्डितों का यह अनुमान है कि "गदायुद्ध" ही "चक्रेश्वर

चरित" हो सकता है। पण्डितों की यह भी कल्पना है कि "परशुराम चरित" कवि रन्न के आश्रयदाता और उनके अभिभावक "समरपरशुराम" के नाम से विख्यात चावुंडराय से सम्बन्धित ग्रन्थ भी हो सकता है। वैसे इनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कोई राय देना कठिन है।

रन्न ने अपने काव्यों में अपने बारे में सभी बातें आमूलाग्र बतलायी हैं। उनका जन्म बॆळुगुलिनाडु के मुदुवॊळ्ळु अथवा मुधोल् में ई० सन् 449 के सौम्य संवत्सर में हुआ। उनकी माता का नाम अब्बलब्बे और पिता का जिनवल्लभेन्द्र था। दृढ़बाहु, रेचण, मारय्या ये तीन उनके सहोदर भाई थे। इस कवि की दो पत्नियाँ —अक्कि, शान्ति थीं। बहुत समय तक इनकी कोई सन्तान नहीं हुई; वार्धक्य की समीपवर्ती अवस्था में इनके एक लड़का और लड़की—इस तरह दो सन्तानें हुईं। उन्होंने अपने बेटे का नाम अपने अभिभावक चावुंडराय की स्मृति में "राय" रखा; और बेटी का नाम अपनी अभिभाविका अत्तिमब्बे के स्मरण में अत्तिमब्बे रखा। इस कवि ने श्रवण-बॆळगॊळ में अजितसेनाचार्य नामक गुरु के पास विद्याध्ययन किया। कन्नड़ और संस्कृत भाषाओं में तब तक के सुप्रसिद्ध सभी ग्रन्थों का इन्होंने अध्ययन किया होगा। उसके पश्चात्—

"मॊदलॊळ् सावंतरिनिनि
सुदितोदितनागि मण्डलेश्वरनिन्द।
भ्युदय पर नॆनिसिच क्रियि
नुदय परंपरॆयनॊयदि दं कवि रन्नं।"

अर्थात्—"पहले सामन्त, राजा और मण्डलेश्वरों में थोड़ी बहुत प्रगति करते हुए अन्त में चक्रवर्ती के द्वारा सम्पूर्ण अभ्युदय को प्राप्त किया। यह इस कवि की प्रगति का क्रमिक विकास है। बहुत करके इनके आश्रयदाता अत्तिमब्बे और चावुंडराय आदि के द्वारा प्रगति की सीढ़ी पर चढ़ता हुआ अन्त में चालुक्य चक्रवर्ती तैलप और उसका पुत्र सत्याश्रय—इनके आश्रय में उच्चतम स्तर तक पहुँच गया होगा। चक्रवर्ती ने इन्हें "कवि चक्रवर्ती" के बिरुद से विभूषित कर छत्र, चामर, हाथी आदि देकर गौरवान्वित किया।

कवि रन्न की उपलब्ध कृतियों में "अजित पुराण" प्रथम है। उन्होंने ई० सन् 993 में इसकी रचना की। नाम से ही यह स्पष्ट होता है कि यह दूसरे तीर्थंकर "अजित" की पुण्यकथा है। यह (चम्पू काव्य) बारह आश्वासों में समाप्त होता है और इसमें अन्य जैन-पुराणों में दिखने वाली भवावलि की गड़बड़ नहीं है। "अजित" के पूर्व जन्मों में से केवल एक के बारे में इसमें कुछ उल्लेख है। पॊन्न कवि के "शान्ति-पुराण" की हजार प्रतियाँ तैयार करवाकर दान करने वाली "दानचिन्तामणि" अत्तिमब्बे ने ही कवि रन्न की अभिभाविका बनी रहकर उनसे "अजित पुराण" लिखवाया। कवि ने अपने इस चम्पू काव्य में अत्तिमब्बे का पूरा इतिहास विस्तार के साथ लिखा है। उनकी दानशीलता आदि गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उस देवी के नाम को अजरामर कर दिया है। रन्न कवि से काव्य लिखवाने वाली यह देवी अवश्य ही अभिनन्दन की पात्र हैं। इस काव्य के विषय में स्वयं कवि ने "काव्यरत्न" जो कहा है वह भी सही है। पुराणों में यह तिलकप्राय है। इसमें कवि ने कुछ मार्मिक सन्नि-

वेशों का हृदयस्पर्शी चित्र भी प्रस्तुत किया है। अजित तीर्थंकर बनकर परिनिष्क्रमण करते हैं और तपस्या करने के लिए चल पड़ते हैं। उनके चले जाते ही अयोध्या नगरी ऐसी लगने लगती है जैसा विवाह के बाद बालिकाओं को विदा करने पर घर लगने लगता है। अन्तःपुर की स्त्रियाँ सिसकियाँ भरती हुई रोने लगती हैं :—

"आवीनॆरपिद दुष्कृत
माबुदुबड ! नडॆयिमॊडनसुंगळॆंदपमा
देव वल्लिदनॆंमगॆं म
नोवल्लभनॆनिसुदॆन्दु कॆबिळ्दपॆनॆं"

अर्थात्— हमने कौन-सा कुकर्म किया ? चलो, हम सब एक साथ प्राण-त्याग करें। वे ही हमारे स्वामी, हमारे प्राणवल्लभ हैं; कैसे जानें कि वे ऐसे होंगे।—कहकर एक रोती है तो दूसरी—

"कळॆं सिरिगन्नडियं मं
गळपसदनमेवुदक्क काललतिगॆयं
कळॆं तॊडॆदु कण्णॆ कज्जल
विळासविन्नेवुदॆंमगॆं वेवळ्दपॆवो"

कहती है कि रत्नजटित आरसी को निकाल फेंक दो; मांगलिक सजावट के समस्ती प्रसाधन सामग्री की अब मेरे लिए क्या आवश्यकता है ? बहिन, मेरे पैरों में लगी मेहँदी आदि को तथा लाक्षा रस को पोंछ डालो, इन आँखों के लिए अंजन की क्या आवश्यकता है ? यह सारी विलास-सामग्री अब किसलिए—इसी तरह दूसरी, तीसरी आदि भी अपनी-अपनी प्रसाधन सामग्री की निन्दा करती हुई इधर-उधर बिखेर देती हैं। अपनी दासियों को बुलाकर—

"बिडिमिन्दी वरराज हंसॆगळनिन्नी राज कीरंगळं
बिडिमिन्ती मृगपोतकंगळॆनिवं कॊण्डॊय्दु कांतावदॊळ्
बिडिमी वाचिप वीणॆयं तिसरियं कॊळ्ळॆन्दु बल्लंगिवं
कुडिमे गॆय्दवॆमागिवक्कॆमगिदिन्नॆल्लमे गॆय्वुदॊ"

तात्पर्य यह कि—"इन राजहंसों को तथा इन कीरकोकिलों को पिंजड़ों से निकालकर उड़ा दो; इन हरिण शावकों को ले जाकर वनप्रान्तों में छोड़ दो; इन वीणा आदि वाद्यों को तज्ञ विद्वानों को बुलाकर उन्हें दे दो ; इन्हें रखकर हम क्या करेंगी ?"— यों कहकर सबका त्याग करती हुई, दास-दासियों को बुलाकर उनके प्रति अब तक के व्यवहार में हुए अपराधों के लिए क्षमा माँगती हुई, अपने सारे विलास-स्थान लता-विलासों, चन्दन-द्रुमों, अशोक-वृक्षों, सहकार-तमालों को देख वे उनसे कहती हैं। "वियोगमादुदॆंमगं निमगं" (अब हमारा परस्पर वियोग हुआ) और सिसक-सिसक रोती हैं। स्वामी की याद कर-करके बार-बार सिसक पड़ती हैं।

"पिरिन्दु पुण्यदॆं पतियं
परमेश्वर पडॆदु निन्ननावनुभविसु
त्तिरलॆय्दॆं पडॆदॆविल्लं
तरायबाय्तॆंमगदॊन्दु विधिवशदिं"

मतलब यह कि "पूर्व सुकृत के प्रताप से आप जैसे स्वामी को हमने पति रूप में पाया;

परन्तु जिसे पाया उसका भोग करने का सौभाग्य हमें प्राप्त नहीं हुआ। विधि के प्रताप से यह विरह प्राप्त हुआ। इस विरह के कारण—

"एर्लम्म मनमॅ शून्यं
नीलिल्लद राजमन्दिरं शून्यमयो
छ्यानगरं शून्यमखिळा
स्थानं शून्यं त्रिलोकमण्डल तिळका"—

अर्थात्—"तीनों लोकों के तिलक समान हे अजित महाराज, आपकी अनुपस्थिति के कारण हम लोगों का मन शून्य है; यह राजमहल शून्य है; यह अयोध्या नगरी, राजास्थान सब कुछ शून्य हो गया है।" इन स्त्रियों को सर्वत्र सूना-सूना ही लग रहा है। वे सब उन्मत्तावस्था में बौरायी हुई "गुणनिधि कहाँ ? भुवन पूजित कहाँ ?" कहकर आक्रन्दन करती हुई राज-प्रासाद की सीढ़ियों से उतरकर बाहर आ रही हैं। काव्य के इस प्रसंग में करुणरस उमड़कर छलकता है।

अजित तीर्थंकर के समसामयिक चक्रवर्ती सगर की कथा भी परिशिष्ट के रूप में इस पुराण में सम्मिलित हो गई है। यह कथा बहुत ही मार्मिक है। चक्रवर्ती सगर के साठ हजार पुत्र हैं। राजा को इन पुत्रों पर अपार प्रेम है। इन पुत्रों के प्रति इस व्यामोह को दूर करने के लिए कवि रन्न ने जिस योजना की कल्पना की है वह बहुत ही हृदयंगम है। एक बार सगर के साठ हजार पुत्रों ने एक साथ आकर पिता से कहा, "हमें कोई काम सौंपो।" तब राजा ने उनसे कहा, "तुम लोग खाओ, पियो और आराम से रहो।" पर बेटों ने नहीं माना। उन लोगों ने कहा, "हमारे ये भुजबाहु व्यर्थ ही अपयश के पात्र क्यों बनें ?" अन्त में राजा ने आज्ञा दी, "पुत्रो ! कैलास पर्वत पर भरतचक्रि ने अनेक रत्न-प्रतिमाओं को बनवाकर रखा है। वे मानवों को दिखें नहीं—इस तरह उन प्रतिमाओं की रक्षा का प्रबन्ध करो।" राजाज्ञा को महाप्रसाद मानकर सब बच्चे चले गये। सगर को ज्ञानोदय कराने के निमित्त जनम-जनम से पैदा होते रहने वाले उनके मित्र चेतन ने, मणिकेतु दृष्टि-विषोरग का रूप धारण कर भगीरथ को छोड़ शेष साठ हजार पुत्रों को मृत्यु के अधीन कर दिया। उसके पश्चात् ब्राह्मण का वेष धारण कर राजा के महल के पास पहुँचकर धाड़ें मार-मारकर रोने लगा। उससे इस दुःख का कारण पूछने पर उसने बताया—"हे राजा ! कई देवताओं की मनौती मानने के पश्चात् प्राप्त मेरा एकमात्र पुत्र मृत्युदेव यम के वज्राघात के कारण नहीं रहा, अतः अब मुझे या तो मृत्यु की ही शरण में जाना है या आपकी शरण में आना है। इसलिए मैं आपके पास आया हूँ।" इस ब्राह्मण की ये बातें सुनकर राजा करें भी तो क्या करें ? मरे हुए को जिलाना क्या सम्भव है ? इसलिए पुरोहित की युक्तिपूर्ण सलाह के अनुसार राजा ने इस कपट-वेषधारी ब्राह्मण से कहा—"हे विप्र ! एक ऐसे घर से, जहाँ मृत्यु का परिचय तक न हुआ हो, पयाल और आग लाओ तो तुम्हारे बच्चे को जिलाऊँगा।" यह कपटी ब्राह्मण यों एक चक्कर काटकर लौटा और कहा, "ऐसा कोई घर नहीं मिला।" तब उन्होंने समझाया मृत्यु एक अनिवार्य सत्य है।

"आरारं नुंगिदनि
ल्लारारं नॉर्मॅदनिल्ल ? सविनॉक्किदनि

स्वादारं ? सुरमानव
नारक तिर्यक् समूहमं यमराजं"

अर्थात्—"यमराज की कृपा किस पर नहीं हुई है ? उसने किस-किसको स्वाहा नहीं किया ? उसके डाढ़ों ने किस-किसको नहीं चबाया है ? किस-किस के स्वाद को नहीं चखा है ? देव, मानव, नारकि, तिर्यक् प्राणियों में किसे उसने छोड़ा ?"—आदि-आदि बातों का उपदेश उस कपटी ब्राह्मण को दिया और भेजा।

"मृतपटहं जयपटहं
चिताग्निधूमं जयध्वजं, जनकरुणा
रुति जयमंगलरुतियेंनें
कृतान्तराजंगें राज्य चिह्नमिदल्तें ?"

—तात्पर्य यह कि "मृतक के प्रति बजाये जाने वाले वाद्य यमराज के विजय वाद्यघोष हैं; चिताधूम उसकी विजय वैजयन्ती है; मृतक के सगे-सम्बन्धियों का और लोगों का रुदन उसकी जय-जयकार है; ये ही यमराज के राज्य-चिह्न हैं।"

सगर के इन उपदेशों को सुनकर वह कपटी ब्राह्मण प्रश्न करने लगा—"ई निन्न पेळ्द धर्ममिदेनेंनगेयों निमगुमेंटो ?"—"यह जो तुमने बतलाया वह धर्म केवल मेरे ही लिए है या तुम्हारे लिए भी लागू होता है ?" राजा ने हँसते हुए उत्तर दिया, "ऐंनगदु मुन्नं"—"मेरे लिए यह पहले।" अर्थात् जिस धर्म का उपदेश मैंने तुम्हें दिया वह मेरे लिए पहले है; सभी मृत्युधर्मा हैं। इसे सुनते ही उस कपटी ब्राह्मण ने कहा कि 'तुम्हारे साठ हजार पुत्र भी मर गए'। ठीक इसी समय पर भगीरथ भी आये और पिता को यह हृदय-विदारक समाचार कह सुनाया। इस समाचार को सुनकर वहाँ उपस्थित सभी काँप उठे। रनिवास से रोती हुई सभी स्त्रियाँ वहाँ पहुँचीं। सगर राजा की रानियों ने अपने स्वामी से प्रार्थना की कि अपने मरे हुए पुत्रों को यमराज से छुड़ा लावें। सभी पुत्र-वधुएँ रोती हुई कतार में खड़ी हो गईं। इस तरह शोक-सागर की लहरें चारों ओर से उठकर सगर को थपेड़ें मारने लगीं। इतनी थपेड़ें खाकर भी सगर विचलित नहीं हुए। इस परिस्थिति में सगर ने "मौनं सर्वार्थ साधनं" का अनुसरण किया। बिलकुल मौन और शान्त बने रहे। उसी समय सांसारिक बन्धनों को तोड़कर वे विरक्त हुए और बेटे भगीरथ को राज्य सौंपकर तपस्या करने चले गए। यह सम्पूर्ण कथाभाग एक बहुत ही मार्मिक रसघट्ट है।

कवि रन्न का वैराग्य-वर्णन अद्भुत है। समूचे कन्नड़ साहित्य में ऐसा वर्णन बहुत अपूर्व है। कवि की आत्मा का यह रुदन इस प्रसंग में घनीभूत हो गया है। इस भाग के पद्यों को कोई पाठक पढ़े,तो वह विरक्त हुए बिना नहीं रहेगा।

"मतिगॅट्टु जीव धर्मा
मृतमं सेविसदधर्ममं सेविसि दु
र्गतिगिळिदी जवनॅम्ब र
सि तिम्ब दैवक्के पोगि पाळप्पडुवै"

अर्थात्—"हे जीव ! तुम धर्मामृत का सेवन न करके मतिहीन होकर, अधर्म में प्रवृत्त हो दुर्गति को प्राप्त कर, ढूँढ़-बीनकर खाने वाले यमराज की आहुति बन जाते हो न !"

"ऎनितॆनितु कळिद भवमं
नॆनॆदपॆ ? यॆनितॆनितु भवद बन्धुगळं नी
नॆनॆदपॆ ? यॆनितॆनितॊडलं
नॆनॆदपॆ यॆलॆ जीव ? नीनॆं पेळ्पवगॊळवॆं ?"

अर्थात्—"हे जीव ! तुम बीते हुए कितने जन्म-जन्मान्तरों को याद करते हो ? कितने जन्म-जन्मान्तरों के बन्धु-बान्धवों का स्मरण करते हो ? कितने शरीरों को स्मृतिपटल में लाते हो ? क्या यह सम्भव है ? तुम ही कहो ।"

"ऎंनितं कक्कुळगुदिदपॆ ?
ऎंनितं कक्कळगळल्दपै ? जीवनॆं नी
नॆंनितं मल्मल मरुगुवॆं ?
ऎंनितं संसार दॊळगॆं तिरॆनॆं तिरिवै ?"

भाव यह कि—"हे जीव ! तुम अपने में कितना उबलोगे ? कितना रोओगे ? कितना दुःख करोगे ? कितनी बार इस संसार में जन्म-मरण का चक्कर काटते रहोगे ?"

"कडॆयिल्लद संसारद
कडॆगाणळ् बगॆवॆयप्पॊडॆन्नुक्तिगॊडं
बडु; जीव, निन्न कालं
पिडिवॆंम् धर्ममनॆं मगुळॆं बल्विडिविडिया"

कहने का तात्पर्य यह कि "इस अनन्त संसार से पार पाना हो तो मेरी बात सुनो; हे जीव ! तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ; धर्म-मार्ग को ही दृढ़ता के साथ ग्रहण करो फिर से ।"

इस संसार में, जन्म-मरण में कोई सुख प्राप्त नहीं होता । "असारमी संसारं" (यह संसार निस्सार है) ।

"अंगजन सुखद साम्रा
ज्यंगळ् शरीर मानसागंतुक दुः
खंगळॆनॆं माळ्पुवदरिं
पिंगुवॆनिन्नगॆं जिनन चरणं शरणं"

इसका तात्पर्य यह कि "कामदेव के जो सुख साम्राज्य हैं वे सभी सुख-भोग की सामग्रियाँ शरीर और मन को दुःख ही देने के कारण बनते हैं । इसलिए मैं इनका त्याग करता हूँ । भगवान के चरण ही शरण हैं जो उद्धार कर भवसागर के पार उतारने में पटु हैं । मेरे लिए भगवान के चरण ही शरण हैं ।"

कवि की यह अन्तश्चेतना कितनी सुसंस्कृत है ? कवि की वेदना कितनी गहरी है । वेदना-प्रसूत कृति का प्रभाव पाठकों के मन पर परिणामकारी क्यों न होगा ? कवि की यह अन्तश्चेतना सहृदय पाठकों को अपना वशवर्ती बना लेती है ।

रन्न कवि की कविता-सामर्थ्य बहुत अद्भुत है, तो भी कवि पम्प के "आदि पुराण" के साथ रन्न के "अजित पुराण" की तुलना करते हैं तो हमें आदि पुराण की भव्यता अजित पुराण में नहीं दीखती ।

अब रन्न के "गदायुद्ध" के सम्बन्ध में कुछ विचार करें । यह कृति "कृतिरत्न" के नाम से अभिहित होकर ख्यात है । यद्यपि कवि ने कहीं इस बात का उल्लेख नहीं किया है तो भी सब तरह से यह पम्प भारत की अनुकृति है । वह "विक्रमार्जुन विजय"

है तो यह "साहस भीम विजय" है। वहाँ अर्जुन नायक है तो यहाँ नायक भीम है। कवि पम्प ने अरिकेसरी को अर्जुन के साथ समीकरण कर "समस्त भारत" को लिखा तो यहाँ सत्याश्रय के साथ अभिन्नता स्थापित कर एक और "समस्त गदायुद्ध" का सृजन किया गया है। पम्प भारत में अर्जुन प्रधान है तो वह प्रधानता यहाँ भीम को प्राप्त है। वहाँ अरिकेसरी का इतिहास है तो यहाँ विस्तार के साथ सत्याश्रय का इतिहास वर्णित है। इस काव्य में कवि ने स्वतन्त्रता से काम लेकर भीम की वंश-परम्परा का समीकरण सत्याश्रय की वंश-परम्परा से करने जाकर इस प्रयत्न में थोड़ा-बहुत विकार काव्य-वस्तु में पैदा कर दिया है। अपनी राजभक्ति की मस्ती से, ऐसा लगता है कि कवि कुछ हद तक होश खो बैठा है। यहाँ कवि की सन्तुलन शक्ति डाँवाँ-डोल हो गई है। रन्न ने केवल विक्रमार्जुन विजय का अनुकरण ही नहीं किया है, बल्कि पूर्णतया उसका अध्ययन कर हृदयंगम कर लिया है। उस काव्य के तेरहवें आश्वास में गदासौप्तिक पर्वों की कथावस्तु का काव्यभाग कवि को बहुत ही अच्छा लगा है। उस अंश को लेकर कवि ने समग्र काव्य की रचना के लिए प्रेरणा पाई है। जिस समय रन्न ने काव्य-रचना का आरम्भ किया तब उनके अन्तश्चक्षु के सामने पम्प-भारत के पद और पद-बन्ध नाचते हुए-से लगते हैं। इनका कवि ने अपनी कृति में उपयोग भी किया है। एक स्थान पर तो कवि ने पम्प के काव्यांश को ज्यों का त्यों अपने काव्य में सम्मिलित कर लिया है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि यदि पाठक को ऐसा लगे कि रन्न ने कृति चौर्य किया है। परन्तु गम्भीर अध्ययन करने पर कवि रन्न की महत्ता, उनकी(कर्तृत्व-शक्ति) रचना-सामर्थ्य, उनकी महती प्रतिभा, काव्योचित एवं समयोचित प्रसंगोद्भावना की शक्ति आदि का परिचय मिलता है। रन्न संस्कृत के "वेणी संहार" नाटक से और महाकवि भास के "ऊरुभंग" नाटक से भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुए हैं और इनसे प्रेरणा भी पाई है। इन नाटकों की प्रसंगोद्भावना रचना की भाव-भव्यता की छाया को हम "गदायुद्ध" में देख सकते हैं, तो भी रन्न के यश और उनके औन्नत्य को कोई धक्का नहीं।

गदायुद्ध का सार केवल मात्र गदापर्व और सौप्तिक पर्वों की कथा है। तो भी रन्न का कहना है कि इसमें समूचे महाभारत की कथा आई है। वे कहते हैं—

ऑळपॅक्कु नोडॆं भारत
दॆॆळगण कथॆयॆल्लमी गदायुद्ध दॊळं
तॊळकॊण्डिरॆनॆं सिंहा
वळोकन क्रमदिनरिपिदं कवि रन्नं"

—यह कथन ठीक है। कवि भारत की प्रमुख सब घटनाओं का स्मरण पाठकों को करा देता है। इसका मुख्य माध्यम उनकी नाटकीय शैली है। गदायुद्ध काव्य होने पर भी उसके चौखट-(घेरे) में एक नाटक समाविष्ट है। हो सकता है कि रन्न ने उसे नाटक के ही रूप में प्रस्तुत करना चाहा हो। जैसे महाकवि मिल्टन ने अपने "पैराडाइज लास्ट" को नाटक ही के रूप में लिखना चाहकर भी किसी अज्ञात कारण से उसे काव्य के ही रूप में प्रस्तुत किया है। रन्न ने भी सम्भवतः ऐसा ही किया होगा। गदायुद्ध में प्रस्तुत भावपूर्ण सम्भाषण शैली, नाटकीय प्रसंग आदि कन्नड़ के और अन्य किसी काव्य में अनुपलब्ध विदूषक का पात्र भी इस नाटकीय काव्य में दिखाई पड़ते हैं।

इसीलिए स्व० श्री बी० एम० श्रीकंठय्या जी ने इस गदायुद्ध काव्य के पूरे पाँच सौ छिहत्तर पद्यों का निचोड़ एक सौ सैंतालीस पद्यों में बिल्कुल कम हेरफेर के साथ एक अद्भुत दुःखान्त नाटक के रूप में परिवर्तित कर प्रस्तुत किया है। इस नाटकीयता के सृजन में रन्न का स्थान सर्वप्रथम है। इसी कारण से रन्न को पम्प कवि से भी अधिक श्रेय प्राप्त है।

गदायुद्ध का नायक भीम है, प्रतिनायक दुर्योधन। कवि पम्प के कर्ण की तरह रन्न का दुर्योधन पाठकों की दया और प्रेम का पात्र बना हुआ है। भारत-युद्ध का अन्तिम दिन; दुर्योधन संजय के साथ युद्ध-क्षेत्र में प्रवेश करता है। अपनी सेना के वीराधिवीर सब वहाँ मरे पड़े हैं। प्रत्येक मृत वीर को देखता है तो उनका हृदय दुःख-भार से फटा जाता है। आँखें भर आती हैं, अनजाने ही रोना आता है। हृदय फूट पड़ता है। उनमें जब वह कर्ण और दुःशासन को देखता है तब वेदना बढ़ती है और दुःख असीम हो जाता है। दुर्योधन कोई बहुत सज्जन शिरोमणि नहीं है, तो भी कवि रन्न ने उसके चरित्र को जैसा चित्रित किया है उसे पढ़कर हृदयंगम कर लेने पर हमारा हृदय लुटा-सा रह जाता है। मरघट जैसे लगने वाले उस रणक्षेत्र में जब मरे पड़े अभिमन्यु के मृत कलेवर को देखता है तब उसी दम उस वीर बालक का पौरुषपूर्ण व्यक्तित्व उनकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष होता है। उस समय सुयोधन को इस बात का भान भी नहीं होता कि वह अपने बैरी का बेटा है। तुरन्त मुँह से निकल पड़ता है—"निन्नं पॆत्तळॆ मॊलॆबॆत्तळॆ ? वीर जननि बॆसरं पॆत्तळ्"—यानी "तुम्हें जन्म देने वाली स्त्री केवल स्तनों वाली स्त्री मात्र नहीं, उसने "वीर जननि" के नाम को ही जन्म दिया।" उस वीर पुत्र को जन्म देने वाली वीर जननी का स्मरण करके अभिमन्यु की प्रशंसा करता है; उनकी वह प्रशंसा उस वीर के प्रति भक्ति में परिणत होती है; तब सुयोधन उनके प्रति कहता है :—

"असम बल भवद्विक्रम
मसंभवं पॆरर्गॆ निन्ननानितं प्रा
र्थिसुवॆ नभिमन्यु ! निज सा
हसैकदेशानुमरणममगक्कॆ गडा"

कि—हे अद्वितीय पराक्रमी अभिमन्यु ! किसी दूसरे में तुम्हारे पराक्रम जैसा पराक्रम देखना असम्भव है। तुमसे मेरी इतनी ही प्रार्थना है—तुम्हारे साहस का एक अंश मृत्यु जो है वह मुझे भी मिले।—यह कहकर उसे प्रणाम करता है। यही उदात्त मनोभाव उस अवसर पर भी हमें दुर्योधन के व्यक्तित्व में अनुभूत होता है जब अश्वत्थामा उप-पाण्डवों के सिरों को काटकर लाते हैं। मरण-संकट में पड़े दुर्योधन के मन को खुश करने के उद्देश्य से अश्वत्थामा रात के अँधेरे में पाण्डवों का वध करने आकर देखे समझे बिना उप-पाण्डवों के सिरों को (अँधेरे में) काटकर ले आते हैं। उन सिरों को देखते ही वैरिवंश के निःशेष होने की वजह से प्रसन्न न होकर पश्चात्ताप करते हुए (दुर्योधन) कहते हैं—"परमज्ञानिये, विवेकविकळरवोळ् बालर तलॆयनरिदु तन्दयो ! दॊरकॊण्डुदु निनगॆ पातक बालवधं"—मतलब यह कि "हे परमज्ञानी अश्वत्थामन् ! तुमने केवल अज्ञानियों का-सा काम किया है। इन बच्चों के सिर काटकर लाये। केवल बच्चों का। अकारण ही पंच महापातकों में से एक महापातक शिशुहत्या भी

है जिसके तुम पात्र बने ।" दुर्योधन के ऐसे लोकोत्तर गुणों के कारण रन्न की कृति में विमर्शकों की दृष्टि से वह बहुत ऊँचा बन गया है। यह दुर्योधन के चरित्र का एक पहलू है तो एक दूसरा भी पहलू उनके चरित्र का है। वह "साहस भन" है और "छलदंक मल्ल—जिद्दी योद्धा)" भी है। अपनों के लिए आँसू बहाते हुए भी वैरियों के प्रति आग-बबूला होता है। जब वह युद्धभूमि में चलते हुए जा रहा है तब उनके वृद्ध माता-पिता उनकी खोज में आकर उन्हें पाकर उपदेश देते हैं, पिता उनसे कहते है :—

"यमसुतनिंवुकेवनेंमगिन्नुमोडंबडु, कन्द, सन्धियं
समकोळिसल्कें संजयननट्टुवें, भीमनोळाद बद्ध वै
रमनुळि, नीडदिर् सुत सहोदर दुःखमनींवुदर्भरा
ज्यसबवर्गण्ण ! काल्विडिदु बेडुवॅनन्धपितं सुपुत्रनं"

कि "बेटा ! युधिष्ठिर अब भी हमारी बातों को मान्यता देते हैं। सो हे पुत्र ! तुम उनसे सन्धि कर लेना स्वीकार कर लो। अभी मैं पाण्डवों के पास सन्धि-सन्धान के लिए संजय को भेज देता हूँ। अब इस बात का स्मरण छोड़ दो कि तुम्हारे बेटे और भाई पंचत्व को प्राप्त कर गये। भैया ! यह तुम्हारा अन्धा बाप तुम्हारे पैरों पड़कर प्रार्थना कर रहा है कि उन्हें (पाण्डवों को) आधा राज्य दे दो।"—फिर माता भी कहती है :—

"समर व्यापारं मा
ण्दु मगने निज शिबिरदत्त बिजयंगेयु, स
त्त मगंदिर्, सत्तर्, नी
नेंमगुळ्ळोडॆ साल्वुदवरॆनि तन्दपॆवे ?"

कि—"युद्ध समाप्त कर अब तुम अपने शिविर में लौटो। जो मेरे बेटे मरे सो गए। उन्हें फिर जिलाकर लौटाया नहीं जा सकता। यदि कम से कम तुम अकेले ही बच रहो तो वही हमारे लिए पर्याप्त है।"—यों कहती हुई माँ रोने लगती है। "वीरशत जननी" के नाम से प्रख्यात गान्धारी अब "दुःख शत जननी" हुई है। परन्तु कौरव (दुर्योधन) की जो वेदना है उसे उनका हृदय ही जानता है। अपने साथ जन्मे सौ के सौ मर गए हैं। उधर युधिष्ठिर ने यह प्रतिज्ञा की है कि अपने भाइयों में से एक भी मरा तो अग्नि में प्रवेश करूँगा। युधिष्ठर के भ्रातृ-प्रेम ने कौरव के हृदय को प्रभावित कर रखा है। इसलिए वह अपने माता-पिता से कहता है—"बाळ्वॅनॆम्बॅन्नळियासेयं बिसुडिमॅन्नवरावुदनायदिर्पॆने ?" अर्थात्—"मेरे जीवित रहने की आशा छोड़ दीजिए, आपकी यह आशा व्यर्थ है; जो दशा अपने लोगों की हुई है, उसे ही मैं भी प्राप्त करूँगा।"—यों कहते हुए उनका हृदय ज्वालामुखी की तरह फट पड़ता है, और उस आवेश में उनके मुँह से लावे की तरह ये बातें निकल पड़ती हैं :—

"साधिसुवें फल्गुणनं
साधिसुवें पवनसुतन बसिरं हा क
र्ण ! दुःश्यासन ! तेरॆवें
साधिसि निर्दोषि यमजमोळ् पुदुवाळ्वें"

तात्पर्य है कि—"हाय कर्ण, बदले में अर्जुन की आहुति लेकर तुम्हें प्राप्त करूँगा; हाय

दुःशासन, भीम का पेट चीरकर तुमको प्राप्त करूँगा । यों इन दोनों की आहुति इस समराग्नि में देकर निर्दोषी युधिष्ठिर के साथ रहकर जीवनयापन करूँगा ।"—यों माता-पिता से कह देता है । असह्य दुःख की वेदना से परिपूर्ण उस महापुरुष के हृदय में उत्पन्न होने वाली इस धर्मबुद्धि को तो देखिए :—

"आम्मगनें निमगें धर्मज
नेम्मगल्लनें ? बळिक्कें नीमुं तामुं
निम्मोळ् नेर्पडुगिडदें सु
खम्मुन्निम तॅरदें बाळ्वुदिन् बिडिमॅन्नं"

दुर्योधन कहता है—"क्या केवल मैं ही आपका पुत्र हूँ, युधिष्ठिर आपका बेटा नहीं ? (युधिष्ठिर भी तो आपका बेटा है) आप लोग आपस में मिलकर (खुशी से) सुखी रहें, मेरी आशा छोड़ दें । मेरी आशा छोड़ दें ।"

यह कवि रन्न के द्वारा चित्रित कौरवेश्वर का चित्र है । रन्न की कृति में कौरव का व्यक्तित्व वीर और करुण रसों का संगम स्थान है । उस अभिमान धन का हठ हमारे दिलों को अपने वशवर्ती बना लेता है । उसका भ्रातृ-प्रेम और मित्रवात्सल्य देखकर, उसके दृढ़निश्चय से उसे डिगाना असम्भव जानकर माता-पिता सलाह देते हैं कि भीष्म के पास जाकर उनसे विचार-विमर्श करे और पश्चात् आगे के कार्य के विषय में निश्चय करे । दुर्योधन स्वीकार कर लेता है । वह भीष्म के पास जाता है । पास आये हुए पौत्र को अकेले, बिना राजोचित ठाट के देखकर भीष्म-पितामह का हृदय द्रवित हो जाता है । वे कहते हैं—

"धवळ गजेन्द्रमुं धवळ चामरमुं धवळातपत्रमुं
धवळ विलोचनोत्पल वधूजनं बॅरसष्टदिक्तटं
धवळिसॅ कीर्तियिं धवळमंगळ गेयदिनॉप्पि बर्प की
रव धवळंगॅ देसिगनें बर्पवॊलॊर्वनें बर्पुदादुदें ?"—

कि—"श्वेत हस्ती, सफेद चामर, श्वेत-छत्र, कान्ति-युक्त चमकदार नेत्रोंवाली अंगनाएँ, —इन सबके साथ आठों दिशाओं को अपनी धवल कीर्ति से प्रतिध्वनित करने वाले मंगल गीतों के श्रुति-मधुर संगीत के साथ आने वाले धवल यश कौरव को अब इस तरह अकेले आना पड़ा ?"—भीष्म पितामह की दर्दभरी यह कसक हमारे हृदयों को भी आन्दोलित कर देती है । यहाँ इस पद्य में "धवल" शब्द की कई बार आवृत्ति ने एक मार्मिक वातावरण का सृजन कर दिया है । अपने पौत्र की पितामह इतनी प्रशंसा करके, जिद्दी लड़के को सही रास्ते पर लाने के लिए प्रयत्न करने वाले एक बुजुर्ग की तरह, कौरवेश को सन्धि कर लेने की सलाह देते हैं । कौरव पितामह की यह बात सुनकर चौंक पड़ते हैं, और कहते हैं—"समरदॊळॆनगज्ज, पेळिमावुदु कज्जं ?" "हे पितामह ! रण में अब मुझे करना क्या है उसे बताइए । सन्धि की बात छोड़ दीजिए ।"

"नॆलकिरिवॆनॆन्दु बगॆदिरॆ ?
चल किरिवॆं पांडुसुतरॊळी नॆळनिदु पा
ळनॆलनॆनगॆ दिनप सुतनं
कॊलिसिद नॆलनॊडनॆ मत्तॆ पुदुवाळ्दपॆनॆ ?"

कहने का तात्पर्य यह कि—"क्या आप समझते हैं कि मैं राज्य के लिए लड़ रहा हूँ? नहीं, मैं अपने हठ के लिए लड़ता हूँ। पाण्डवों के साथ मिला हुआ यह राज्य मेरे लिए श्मशान के समान है। सूर्य-पुत्र (कर्ण) को मरवाने वाली इस उजाड़ भूमि को फिर से बाँटकर राज्य करूँ? —आप नहीं रहे, द्रोण नहीं रहे, कर्ण और दुःशासन नहीं रहे। किसके साथ रहकर मैं राज्य करूँ? किसे अपना वैभव दिखाकर सन्तुष्ट होऊँ?" यों कहकर पितामाह का मुँह बन्द करा देता है। वैशम्पायन सरोवर के पास वह दिन बिताकर दूसरे दिन आने वाले परशुराम से मिले; और युद्ध चालू करने की सलाह भीष्म पितामह कौरव को देते हैं। कौरव ने इस बात को स्वीकार तो कर लिया, परन्तु बार-बार सन्धि के बारे में कहते सुनकर उन्हें असह्य वेदना होने लगी। तब अपने-आपसे कहते हैं—

"अरियर् पांडवरॉळ्
विरोधमं बिसुट्टु संधियं माडुवुदें
न्बर नुडियं केळल्कें
न्देरडुं किविगळुमनॅनगें बिदि माडिदने ?"

कि पाण्डव शत्रु हैं, उनके साथ बैर छोड़कर सन्धि कर लेने के लिए बार-बार कहने वालों की बातें सुनने ही के लिए अभागे विधि ने मेरे कान बनाये हैं?"—ऐसा सोच-कर स्वयं अपने ऊपर ही उन्हें एक तरह की जुगुप्सा का भाव उत्पन्न होता है। बड़ों की बात मानकर सरोवर में छिप तो गया, परन्तु भीम की ललकार भरी बातें सुनते ही "नीरॉळगिर्दुम् बेमर्तनुरग पताकं"—पानी में रहकर भी क्रोध-तप्त सर्पकेतु दुर्योधन स्वेदसिक्त हो गया। "रसॅयं कालाग्निरुद्रं पॉरमडुवंतें" अर्थात्—प्रलयकाल का रुद्र भू-गर्भ को भेदकर जैसे बाहर निकलता है उसी तरह कौरव पानी से बाहर निकलकर भीम से लड़ते-लड़ते मर जाता है। रन्न ने पम्प रचित उसी (चरम श्लोक) चरम गीत को अपनी कृति में उपयोग किया है।

"नुडिदुदनॅय्दें तुत्तुदियॅय्दुविनं नुडिदं वलं चलं
बिडिदुदनॅय्दें मुंपिडिदुदं पिडिदं सलॅ पूण्द पूण्कॅ ने
पंडॅ नडॅ न्नॅयं नडॅदनळ्कदॅ बळ्कदॅ तन्नॉडल पड
ल्वडुविनमम्मुगुंददॅ दलॅनभिमानधनं सुयोधनं"

अर्थात्—"एक बार जो बात कही आखिरी दम तक उससे विचलित नहीं हुए। अन्तिम श्वास तक अपने ही हठ को साधा। अपने प्रण पर जब तक हो सका अड़ा रहा और उसी को चलाया। जब तक जिया तब तक निर्भय होकर जिया। किसी से कभी डरा नहीं। सुयोधन वास्तव में कितना बड़ा स्वाभिमानी रहा!"—सम्भवतः रन्न ने पम्प के इस पद्य को उनके (पम्प के) दुर्योधन से भी अधिक अपने (रन्न के) दुर्योधन के लिए अधिक उपयुक्त एवं संगत माना होगा। इस चरम गीत की समाप्ति के साथ सूर्यास्त और कुरुवंश-सूर्य सुयोधन—दोनों अस्तंगत हुए—यह कहकर इससे अब कुरु-वंश पर अँधेरे के छा जाने की सूचना देकर कौरव को समादृत किया है।

कौरव को कवि के द्वारा जो प्रशस्ति मिली उसे पढ़कर कोई भी यह सवाल कर सकता है कि कवि रन्न अपने आश्रयदाता को कहीं भूल तो नहीं गये? या उनके प्रति अन्याय तो नहीं किया? ऐसा नहीं, रन्न ने लिखा "साहस भीम-विजय"। अपने

आश्रयदाता सत्याश्रय को भीम के चरित्र में समन्वित कर "समस्त गदायुद्ध" को वह लिख रहे हैं। इसलिए भीम का पात्र भी अत्यन्त उज्ज्वल है। अनेक रूपों में चित्रित द्रौपदी का चरित्र भीम के पात्र का पोषण करने में प्रेरक है। विदूषक द्रौपदी को सम्बोधित कर कहता है—"देवासुर युद्धक्कें करगं बॉत्त डावर डाकिनि" यानी—देवासुर संग्राम के पूर्व शक्ति देवी की पूजा के उपयुक्त आवश्यक सामग्री हाथ में लिये खड़ी पिशाचिनी हो।—और

"कुरुकुलमं नुंगिदें इ
न्नरॅबरुमं नुंगलिपॅं कुरुपतियुमनी
ऍरडनॅय हिडिबॅयनॅं
म्मरसं रक्कसियनॅल्लि तन्दनो निन्नं ?"

आगे कहता है—"तुमने समस्त कौरव वंश को ही स्वाहा कर लिया; अब बच रहे दुर्योधन को भी निगलने के लिए तैयार हो रही हो। तुम दूसरी हिडिम्बि हो; तुम जैसी राक्षसी को हमारे महाराज लाये कहाँ से !"—यों उनकी परिहास करता है। उनकी इस हास्योक्ति में सत्य का बीज भी निहित है। द्रौपदी भीम को प्रचोदित करती हुई कहती है, कहने का ढंग तो देखिए—

"इरिवबॅडंग देव परमेश्वर साहस भीम निन्नॉळा
रिरिदु वर्दुकुवर् निजभुजोग्र गदापरिघ प्रहारदिं
परिवरियागि पॉण्मुवॆणनागि, मरुळ्गुणि सागि युद्धदॉळ्
कुरिदरियागि बिळ्दरिबलंगळॆं पेळवॆं निन्न वीरमं"

वह कहती है—"काटने का अपना ही ढंग है; हे स्वामी परमेश्वर, साहस भीम, तुमसे लड़कर युद्ध में कौन जीत सकता है ? कौन जी सकता है ? तुम्हारी भुजा के आभूषण गदा के द्वारा कटकर पड़ी हुई भेड़-बकरियों की तरह मरी पड़ी इस शत्रुसेना के युद्धाओं के सूजे पड़े ये शव पिशाचों का आहार बने हैं—क्या यह सब तुम्हारी वीरता के परिचायक नहीं ? और आगे कहती है—

"ऑडलॉडमॆं यम्बिवॆंरडुं
कॆडलिर्पुवु कॆडद कसवरं जसमदरिं
कॆडुवॊडलॊडमॆंयनॆन्दुं
कॆडदॊमडॆमगॆं मारुगुडुवुदिरिव बॆडंगा"—

कि—"शरीर और ऐश्वर्य—ये दोनों बिगड़ जाने वाले ही तो हैं। बिना बिगड़े रहने वाला सोना केवल कीर्ति है। इसलिए बिगड़ने वाले आभूषण देकर हमेशा बिना बिगड़ने वाले आभूषण को खरीदना चाहिए। इतना ही नहीं, आगे—

"मणि कनकं वस्तु विभू
षणंगळं कॉट्टु पॆण्डिरॉल्वरॆ ? गंडर्
गुणमनॆं मॆरॆवुदु शस्त्र
व्रणमं निन्नंतॆ मॆरॆवुरिव बॆडंग"—

कहती है कि—हे भीम ! (इरिव बॆडंग) हीरा, सोना, आभूषण आदि देने मात्र से

पत्नियाँ खुश नहीं होती हैं। जो मर्द है उसे अपने गुणों का प्रदर्शन करना चाहिए। तुम्हारी तरह मार-पिट-चण दिखाना चाहिए। तब पत्नियाँ खुश होती हैं।"

द्रौपदी की इन बातों को सुनकर भीम उत्तर देता है। इस उत्तर देने के ढंग को तो देखिए—

"नीवग्नि पुत्रियै पव
मान तनूभवर्ननान्; चलं कूडिरॅं सं
धानमरितुपरॉळॅन्तन
लानिल संयोगमुरिपदिर्कुमॅं पगॅयं"

भीम कहता है—"तुम अग्नि-पुत्री हो और मैं वायु-पुत्र हूँ। यदि हम जिद्द पकड़ें तो सन्धि-सन्धान होंगे कैसे ? अग्नि और वायु दोनों मिलकर शत्रुओं को भस्म ही न कर देंगे ?"—देखिए ये बातें कितनी पैनी हैं। "रन्न ने भीम को अपनी ऊँचाई से नीचे नहीं उतारा, और दुर्योधन को ऊपर उठाकर उनके चरित्र को उज्ज्वल बनाया है।"—यह बात स्व० श्री जी ने अपनी कृति कन्नड़-कैपिडि (सं० 2, पृष्ठ 599) में कही है। यह अत्यन्त महत्त्व का वक्तव्य है।

गदायुद्ध को आदि से अन्त तक पढ़ने के बाद कवि रन्न की यह बात कि "मैंने सरस्वती के भण्डार के ताले की सील-मुहर तोड़ दी है" सत्य साबित होती है।

पम्प-युग के अन्य कवि

1. **चावुंडराय**—श्रवण बॆळुगॊळ में गॊम्मटेश्वर की मूर्ति को खड़ा कर अपनी कीर्ति को अमर करने वाले चावुंडराय गंग राजा रायमल्ल (ई० सन् 974-984) के मन्त्री व सेनानायक बने रहकर अपने पराक्रम के कारण "समर परशुराम", "वीरमार्तंड, "प्रतिपक्ष राक्षस" आदि बिरुदावली से विभूषित प्रसिद्ध-पुरुष थे। अपने औदार्य गुण से राजा का प्रिय पात्र बनकर "राय" और प्रजा के प्रीतिपात्र होकर "अण्णा" नामक बिरुदावली से समादृत होकर प्रसिद्ध हो गये थे। कन्नड़ साहित्य के "रत्नत्रय" में से एक कवि रन्न के आश्रयदाता व पोषक रहे। दसवीं सदी के अन्य कवियों की तरह ये कवि, कलि (योद्धा) दोनों थे। "वड्डाराधने" के उपलब्ध होने के चावुंडराय का "त्रिषष्टि लक्षण महापुराण" ही कन्नड में सर्वप्रथम गद्यकाव्य के रूप में प्रसिद्ध था। अब प्रथम गद्य-काव्य के रूप में वह विख्यात न रहने पर भी उसका महत्व कम नहीं है। कन्नड के गद्य-साहित्य के इतिहास में चावुंडराय के इस प्रसिद्ध काव्य को पर्याप्त मात्रा में प्रतिष्ठा मिलनी ही चाहिए।

"त्रिषष्टि लक्षण पुराण" या "चावुंडराय पुराण" जैनियों में परम पूज्य माने जाने वाले तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों आदि तिरसठ शलाका पुरुषों की कथा है। संस्कृत में जिनसेन, गुणभद्र इन दोनों के द्वारा लिखित "महा पुराण" के आधार पर लिखा यह ग्रन्थ जैनियों के लिए परम-पवित्र एवं पूज्य ग्रन्थ है। कवि धर्म के साथ काव्य धर्म को भी समन्वित कर प्रस्तुत करने के प्रयत्न में बहुत हद तक सफल हुए हैं। उनकी कृति में यत्र-तत्र चमकने वाले काव्य-गुणों को देखकर उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। पारिभाषिक शब्दावली के साथ संस्कृत समास पदों की बहुलता के होते हुए भी गद्य की धारा बहुत ही सरल होकर बही है। अपनी कृति के लिए जो वस्तु चुनी वह आगम सम्बन्धी होने के कारण कवि बँधा हुआ है, कवि उस आगम सम्बन्धी वस्तु का उपयोग करने में वांछित स्वतन्त्रता नहीं ले सकता है। इसलिए सीधा अपने लक्ष्य तक पहुँचने की ही दृष्टि से आगे बढ़ा है, और उस लक्ष्य तक पहुँचने में वह सफल भी हुआ है।

2. **नागवर्मा प्रथम**—"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" गद्य ही कवियों की शक्ति का परिचायक स्पर्श-प्रस्तर है। इस खराद पर ठीक उतरे, तभी कवि की महानता है। महाकवि बाणभट्ट ने गद्य का चरमोत्कर्ष अपनी रचना "कादम्बरी" में दर्शाया। उनकी कृति "कादम्बरी" के बाद जिस किसी ने गद्य लिखा वह "बाणोच्छिष्ट" हुआ। इसीलिए कहा गया "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं"। इस कृति को कन्नड में प्रस्तुत करने का श्रेय नागवर्मा को है। संस्कृत के एक गद्य-काव्य को कन्नड में चम्पू काव्य के रूप में प्रस्तुत करने वालों में ये सर्वप्रथम व्यक्ति हैं। इन्हीं के अनुकरण में नेमिचन्द्र, देवि कवि, चौण्डरस आदियों ने एक साहित्यिक विधान का ही विकास किया है। इन साहित्यिकों की पंक्ति में सामयिक दृष्टि से एवं योग्यता की दृष्टि से भी नागवर्मा अग्रगण्य हैं।

कर्नाटक कादम्बरी, छन्दोम्बुधि, भाषाभूषण, काव्यावलोकन वस्तुकोश—ये पाँच कृतियाँ नागवर्मा की मानी जाती हैं। इन पाँचों को नागवर्मा ने ही लिखा है ? या प्रथम दो कृतियों के कर्ता एक नागवर्मा और शेष कृतियों के कर्ता दूसरा नागवर्मा है ? पहली और दूसरी कृतियों के अलावा बाकी कृतियों की रचना जिनसे हुई, क्या ये तीन नागवर्मा अस्तित्व में हैं ?—इन और ऐसे प्रश्नों को लेकर काफी चर्चा हो चुकी है। इस चर्चा में न पड़कर बहुमत से स्वीकृत प्रथम दो कृतियों—कर्नाटक कादम्बरी एवं छन्दोम्बुधि के कर्ता नागवर्मा प्रथम है—इसी को स्वीकार कर लेंगे। नागवर्मा कवि पम्प की तरह वेंगिदेश के वेंगिपुळा के निवासी कौण्डिन्य गोत्रोत्पन्न वेण्णमय्या-पोळकब्बे नामक ब्राह्मण दम्पति के ज्येष्ठ पुत्र होकर जन्मे। यह बात छन्दोबुधि के पदों से ही स्पष्ट हो जाती है। "कविराज, बुधाब्जवन कळहंस, कन्दकन्दर्प, नेंगळ्तें गोज"—ये सब उनकी बिरुदावली है।

नागवर्मा की "छन्दोम्बुधि" कन्नड का सर्वप्रथम छन्दःशास्त्र है। भगवान् शंकर ने उमा को छन्दःशास्त्र सिखाया। इस कारण से नागवर्मा ने भी अपनी पत्नी को उपदेश दिया—ऐसा प्रतीत होता है।

> "मदनवतियक्करं चौ
> पदि गीतिकें एळें तिवदियुत्साहं ष
> ट्पदियक्करिकें करं चें
> ल्वोंदविद छन्दोवतंसमब्जदळाक्षी !"

अर्थात्—"हे कमलनेत्री ! मदनवति, अक्कर, चौपदि, गीतिका, एळें, त्रिपदी, उत्साह, षट्पदि, अक्करिका—ये असाधारण छन्द हैं।" अपनी पत्नी को इन छन्दों के लक्षण समझाने के लिए जो पद्य-रचना उन्होंने की वे ही पद्य लक्ष्योदाहरण भी हैं। सारांश यह कि लक्ष्य-लक्षण दोनों एक ही पद में समाविष्ट हैं। काव्य रचना की इस शैली के कारण कृति संग्रह रूप में है, कलेवर विस्तृत नहीं हुआ है। ग्रन्थ के छोटे कलेवर में कृतिकर्ता का उद्दिष्टार्थ पूर्णतया व्यक्त और स्पष्ट है। इस कृति की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। परन्तु हमें छन्दःशास्त्र जैसे नीरस विषय को, अपनी पत्नी को समझाने वाले कवि की रसिकता एवं उस कवि-पत्नी की सहृदयता तथा शान्त-मनोवृत्ति देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है।

नागवर्मा की रसिकता, कल्पना शक्ति, कलाकौशल और ऊँची प्रतिभा—इनको देखना हो तो हमें उनकी "कर्नाटक कादम्बरी" में देखना चाहिए। पम्प और रन्न की तरह यह भी कवि और योद्धा दोनों रहे होंगे—ऐसा प्रतीत होता है। कवि ने यह भी बताया है कि राजा भोज ने इनकी कृति को देखकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और इस प्रशंसा में कलिंग, कम्भोज और बाहलीक देशों के उत्तम घोड़े देकर पुरस्कृत किया, उनकी यह बात "वीर सिरियक्कें भुजासिगें नागवर्मना"—अर्थात् नागवर्मा के भुजरूपी तलवार को वीरश्री ही प्राप्त हो। तात्पर्य यह कि कवि नागवर्मा रणोत्साही भी रहे—इस बात का द्योतन इस उक्ति से होता है। "विक्रमार्जुन विजय" या "साहस भीम विजय" की तरह विस्तृत इतिहास के इतिवृत्त को बताने का प्रयत्न "कर्नाटक कादम्बरी" में नहीं हुआ है, तो भी इन पिछली कृतियों के ही मार्ग का अनुसरण कादम्बरीकार ने किया है—ऐसा भान होता है। नागवर्मा ने भी पम्प और रन्न की तरह अपने कथानायक

चन्द्रापीड के साथ अपने आश्रयदाता चन्द्रराज की तुलना करके अथवा दोनों में समीकरण करके काव्य रचना की है। परन्तु आश्रयदाता चन्द्रराज और कथानायक चन्द्रापीड—इन दोनों में कितनी और कौन-कौन सी समानताएँ या असमानताएँ हैं—इनका पता लगाने के लिए कोई साधन सामग्री उपलब्ध नहीं है।

नागवर्मा ने बाणभट्ट की 'कादम्बरी' का संग्रह कर भाषान्तर करने में उद्युक्त हुआ हैं। परन्तु वह केवल अनुवादक नहीं, बल्कि बड़े ही प्रतिभावान् कवि हैं। पाठकों को थका देने वाले जो वर्णना भाग मूल संस्कृत कादम्बरी में हैं उसे अपनी पाण्डित्य-प्रतिभा के प्रखर तेज की आँच में जमी हुई मूल-ग्रन्थ कर्ता बाणभट्ट की उस विद्वत्ता को पिघलाकर सरस काव्यधारा को बहा दिया है। मूल में कथावस्तु की अपेक्षा वर्णन भाग अधिक है; परन्तु नागवर्मा में उस वर्णन के साथ कथावस्तु का समुचित रीति से समन्वय किया गया है और कथा को आगे बढ़ाया गया है।

एक बृहत् कथा में अवान्तर कथा का ताना-बाना बुनकर संकुल बनाया है नागवर्मा ने। पण्डिताऊपन से भरे इस कथाकानन में पाठक भटककर चक्कर काटते रह जाय तो कोई अचरज की बात नहीं। नागवर्मा ने कादम्बरीकार के वर्णना-संकुलित जटिलतापूर्ण भँवर जाल को बहुत कुछ सुलझाया है तो भी पाठक जाल में फँसकर भटकेगा ही—यह अनिवार्य है। फिर भी, पाठक को इस भटकने में घाटा उठाना नहीं पड़ेगा। इस भटकन में जिस आकर्षक सौन्दर्य की अनुभूति पाठक को होगी वह अन्यत्र दुर्लभ है। कैसी नागरिकता, कैसा नय-विनय, कितनी समृद्ध संस्कृति, कैसी कोमल भावना, कितना सुन्दर व्यवहार, कैसा मधुर स्नेह—ऐसा वातावरण पाठक अन्यत्र नहीं पा सकेगा। इस तरह के स्वर्णिम दृश्य को कन्नड साहित्य में प्रस्तुत करने का श्रेय नागवर्मा को है; इसके लिए वे अभिनन्दनीय हैं। ऐसी कृति को पाकर हम भी धन्य हैं।

काव्य के नाम से ही यह स्पष्ट है कि इस कथा की नायिका कादम्बरी है। यह व्यक्तिवाची नाम इस कथा की नायिका के विषय में अन्वर्थ है—ऐसी मोहक रूपिणी गन्धर्व कन्या है, यह कादम्बरी। इसकी कथावस्तु चन्द्रांश सम्भूत राजकुमार चन्द्रापीड का कादम्बरी के साथ का प्रेम-व्यापार है। इस प्रणयधारा के समानान्तर में ऋषिकुमार पुण्डरीक और अप्सर कन्या महाश्वेता के प्रणय की धारा बहती आयी है जो चन्द्रापीड-कादम्बरी की प्रणय गाथा से भी अधिक मनोहारी है। महाश्वेता पर मोहित पुण्डरीक विरहतप्त होकर असह्य वेदना का अनुभव करता है, और वेदना की पराकाष्ठा में चन्द्र को शाप देकर पंचत्व को प्राप्त होता है। इस शाप से चन्द्र चन्द्रापीड के रूप में अवतरित होकर कादम्बरी पर मोहित हो जाता है। उसके साथ विवाहबन्धन में बन्धित होने के पहले अपने प्रिय मित्र वैशम्पायन के मरने का समाचार पाकर शरीर त्याग करता है। फिर शूद्रक राजा के रूप में जन्म लेता है। शापमुक्त होने के बाद चन्द्रापीड के शरीर में प्रविष्ट होकर कादम्बरी को प्राप्त करता है। पुण्डरीक भी चन्द्र के शाप से ग्रस्त होकर चन्द्रापीड के मित्र वैशंपायन के रूप में जन्म लेता है और पूर्वजन्म संस्कार के बल महाश्वेता से प्रेम करने लगता है। महाश्वेता इन्हें पर-पुरुष समझकर शाप देती है। इसके फलस्वरूप तोते का जन्म लेता है। फिर पुण्डरीक के रूप में जन्म पाकर महाश्वेता से विवाह करता है। यह मोटे तौर पर

कादम्बरी की कथा का ढाँचा है, या कहिए रेखाचित्र। भूमि और आकाश को मिलाने वाले सेतुबन्ध की तरह यह कथा स्त्री-पुरुषों को दिव्य प्रेम का मोहक रूप से दिग्दर्शन कराती है। यह प्रेम प्रथम तो वासना के रूप में, फिर विरह की आँच में तपकर जन्मान्तरों के चक्कर में घूम-फिरकर, प्रथम जन्य वासना की प्रखरता से मुक्त होकर अन्त में परिशुद्ध-स्वर्ण की तरह पवित्र-प्रेम का रूप धर लेता है। तीन जन्मों के चक्कर में लग सकने की कालावधि के समाप्त होने तक अपने-अपने प्रियतमों की प्रतीक्षा बड़ी निष्ठा के साथ इन कन्याओं ने भी की, अपनी तपस्या की महिमा से एवं प्रेम से अपने-अपने प्रियतमों की इष्टार्थ-सिद्धि के लिए कारण बनकर अपनी तपस्या में सिद्धि भी प्राप्त कर लेती है।

कादम्बरी का कथानक राजा शूद्रक के दरबार के वर्णन से आरम्भ होता है। स्त्री-सुख पराङमुख होकर राजा एक सुन्दर-प्रभात में अपने राजास्थान में विराजमान थे। तब एक प्रतिहारी दरबार में उपस्थित होकर विनीत भाव से निवेदन करने लगा—

"जनताधीश्वर बिन्नपं त्रिदशलोकक्केरुतिर्दा त्रिशं
कु नराधीशन लक्ष्मि शक्रन महा हुंकारदिं बिळ्दळॆम्
बिनॆगं विश्रुत दक्षिणापथदिनॊर्वळ कन्नॆ चंडालॆ द
र्शनतात्पर्यदॆ राजकीर सहितं बंदिर्दपळ् बागिलॊळ्"

अर्थात्—राजाधिराज से निवेदन है—कि स्वर्गारोहण करने वाले महाराज त्रिशंकु की इन्द्र के हुंकार से नीचे गिरने वाली भाग्य लक्ष्मी की तरह लगने वाली एक मातग कन्या दक्षिणापथ से दर्शनार्थ द्वार पर प्रतीक्षा में है। राजा की आज्ञा पाकर वह मातंग-कन्या आस्थान में प्रवेश करती है। उसके सौन्दर्य को देखकर सभी सभासद दंग रह जाते हैं। उस चण्डाल कन्या के मोहक सौन्दर्य को देखकर उसकी सृष्टि करने वाले ब्रह्मा की हँसी उड़ाते हुए राजा कहता है यह सृष्टिकर्ता का "दुर्विवेक" है—कहता है—

"इदनरिवॆं कमलभवं
मॊदलॊळ् मातंगियॆन्दु तां मुट्टदॆ मा
डिदनक्कुं, कय्यॊळ् मु
ट्ट दॊडिन्तग्गळिसि तोर्कुमॆ लावण्यं ?"

तात्पर्य यह कि "ब्रह्मा ने इस कन्या को चण्डाल समझकर अपने हाथ से स्पर्श किये बिना ही बनाया होगा। यदि ब्रह्मा का हस्त-स्पर्श हुआ होता तो सौन्दर्य का ऐसा लिखना सम्भव नहीं हुआ होता। उस मातंग कन्या के साथ एक चण्डाल का बालक भी था जिसके हाथ में राजकीर युक्त एक सोने का पिंजड़ा था। उन्होंने यह बताया कि यह कीर (तोता) सकल शास्त्रों में पारंगत है, इतना ही नहीं—

"वनितॆयरॊलविन कलहद
मुनिसुगळं तिळिपुवडॆयॊळति चतुरं ता
नॆनिसिदुं वैशंपा
यन नॆन्निपुदु पॆसरॊळी शुकं भुवनपती"

अर्थात्—महाराज ! कन्याओं के प्रणय-कलह-जन्य क्रोध का निवारण करने में अतिचतुर इस राजकीर का नाम वैशंपायन है। इतना कहकर जब उसने पिंजड़े का द्वार खोला

तो तोते ने अपने दायें पैर को उठाकर राजा को प्रणाम किया तथा उसने अस्खलित वाणी से कहा—

"वीररवीर विमुक्ता
हारं भवदरिवधूस्तनद्वितयं क
ण्णीरिं मिन्दॆदॆर्गिचिं
दोरंतिरॆं बन्दु चरिसुतयमं तपमं"

भावार्थ यह कि—"हे वीराधिवीर राजा ! तुम्हारी शत्रु-स्त्रियों के स्तनद्वय मुक्ताहार विहीन होकर अश्रु-स्नान कर, हृदयाग्नि से तपकर तपोरत है।" यह बात सुन राजा चकित हो गया। मातंग कन्या को आराम करने की आज्ञा देकर उस तोते के रूप में रहने वाले वैशंपायन-कीर को महारानियों के महल में भेजकर राजा ने सभा को विसर्जित किया। स्नान और भोजन के बाद विश्रान्त हुआ। आराम के पश्चात् उस तोते को लाने की आज्ञा पहरेदार को दी। उस द्वार-पालिका ने राजा के आदेश के अनुसार तोते को राजा के सामने पेश किया। तब राजा ने तोते से पूछा—"तुमने रानीवास में क्या-क्या आस्वादन किया ?" तोते ने जवाब दिया—"महाराज ! मैंने क्या-क्या नहीं खाया ?—

"कळ कण्ठ लोचनच्छवि
विळासमं तळॆद नीलपाटल जम्बू
फळ मधुररसमनींटिदॆं
निळेश पिरिदळ्तियिं मनं तणिविनॆंगं।"

तोते ने बताया—महाराज ! कोयल की चक्षु-कान्ति के समरान लाल रंग से मिश्रित कृष्ण वर्णयुक्त जामुन के मधुर रस का आस्वादन कर अघा गया।

"हरिविदळित मदगज कुं
भरक्त सिक्तार्द्र मौक्तिक प्रकरदवॊल्
करमॆसॆव दाडिमी ळीबी
जराजियं तॆगॆदु रसवनास्वादिसिदॆं।"

अर्थात्—"सिंह के द्वारा विदारित हस्तिकुम्भ रक्त से सिक्त मोती की तरह रहने वाले चमकते हुए अनार के बीजों को चुगकर उनका रसास्वादन किया।"

"आदत्तामळक फळा
स्वादनॆयिं तृप्ति देव गळपुत्तिरलॆं ?
आदत्तमृतं देविय
रादरदिं तम्म कॆय्यॊळ्डिदरन्नं।"

सारांश यह कि—"आँवले के फल का आस्वादन कर तृप्त हुआ। हे प्रभो ! अधिक क्या कहूँ ? महारानी ने अपने हाथों मुझे खिलाया, सो अमृत बन गया।"—यों कहा।

तोते की इन बातों को सुनकर राजा मुग्ध हो गया। राजा ने बड़ी उत्सुकता से उस तोते का सारा वृत्तान्त पूछा; आद्योपान्त तोते ने अपना सारा करुण वृत्तान्त कह सुनाया।

नागवर्मा ने अपने काव्य की कथावस्तु को कथा के पात्रों के ही द्वारा कहलवाकर आगे बढ़ाया है। तोता अपनी करुण कहानी यों सुनाता है। वह कहता है कि

"उसका जन्म विन्ध्य में हुआ, जन्मते ही माता का देहान्त हुआ; बूढ़े पिता की देखरेख में बढ़ने लगा। इस अवस्था में वृद्ध पिता किसी व्याध का शिकार होकर दिवंगत हुआ। ईश्वर की कृपा से बचकर वह जाबालि ऋषि के आश्रम में पहुँचा।" आश्रमवासी अन्य ऋषियों के पूछने पर महर्षि जाबाली ने उस तोते के पूर्व-जन्मों का वृत्तांत बताया। —इसी प्रसंग पर चद्रापीड का वृत्तान्त भी आता है। उज्जयनी के राजकुमार चन्द्रापीड अपने दिग्विजय के सिलसिले में आखेट खेलते हुए इन्द्रायुध नामक अपने घोड़े पर सवार होकर किन्नर युग्म का पीछा करता है। इससे वह थककर पानी की खोज करते हुए अच्छोद सरोवर के पास पहुँचता है। वहाँ उन्हें ऐसा लगा मानो वहाँ की ठंडी हवा उनका आह्वान कर रही है। कवि उसका वर्णन यों करता है :—

"कुमुद रजंगळॊळ् पॊरॆदु, वा:कणजालमनांतु कॊंडॆ वि
भ्रमिसि तरंगमालिकॆगळॊळ् कलहंस निनाद बंभ्रम
द्भ्रमर रवंगळॊळ् बॆरसि मारुतनॊय्यनॆ बंदु तीडिद
त मर्दोसॆदप्पिकॊण्डु करॆवंतॆवॊला मनुजेन्द्र चन्द्रनं।"

अर्थात्—"कुमुद पुष्पों के पराग से युक्त, सीकरपूर्ण, सरोवर के तरंगों में आरम्भ कर सुगन्धित शीतल मन्द हवा कलहंस निनाद और भ्रमरों की झंकृति से युक्त होकर बहने लगी"—और आगे सुनिए—हवा जिस दिशा से बह रही थी वहीं वह दिव्य सरोवर है, उसकी दिव्यता—

"ऐलॆ तारागं हरं कण्णिडॆ करगिदुदन्तल्तु रुद्राट्टहासं
जलमादत्तल्तु, चन्द्रातपममृत रसाकारमान्तल्तु, हैमा
चलमंभोरूपदिन्दं परिणमिसिदुदन्तल्तु, नैर्मल्य शोभा
कलितं त्रैलोक्यलक्ष्मी मणिमुकुर मॆनल् चॆल्वदाय्तब्जषंडं।"

याने—सरोवर को देखते ही राजकुमार आश्चर्यचकित होकर ठगा-सा रह गया। "चाँदी का पर्वत—कैलास—शिव के फालनेत्र के कारण पिघलकर पानी हो गया क्या ?"—इस भ्रम में पड़ा। सूर्य की रश्मि के प्रकाश में चमक रहे उस पानी को देखकर सहज ही ऐसे भ्रम में पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु शिवजी के अपने निवास को यों गला देने में कोई अर्थ नहीं—इसलिए यह प्रथम कल्पना गलत है—ऐसा समझकर "नहीं, वह नहीं, यह सरोवर रुद्र का अट्टहास ही हो"—यों अनुभव करने लगा। सरोवर में होने वाली तरंग केलि को देखकर भान हुआ कि वह भी नहीं। तब और क्या हो सकता है ? "शायद चाँदनी ही दूध बनकर यह सरोवर बना है।" यों विचार करने लगता है। फिर उसे सन्देह होने लगता है कि यह भी ठीक नहीं। सम्भवतः हिमालय ही पानी के रूप में बदल गया होगा—ऐसा सोचने लगता है। अन्त में सरोवर के किनारे पर पहुँचने के पश्चात् पास-पड़ोस की प्रकृति को उसके समस्त सौन्दर्य के साथ सरोवर में प्रतिबिम्बित देखकर उस निर्मल जलयुक्त सरोवर को "त्रिलोक लक्ष्मी का मुकुट"[1] मान लेता है।

चन्द्रापीड उस सरोवर में जलपान कर विश्राम कर रहे थे तो उसी समय एक वीणावादन की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है। जहाँ से वीणा ध्वनि आ रही थी उसका अनुसरण करते हुए जाने पर वहाँ एक सिद्धायतन दिखाई पड़ता है। उसके अन्दर एक

१. कुवेंपु के 'तपोनन्दन' में संकलित सरोवरद सिरिगन्नडियल्लि, पृ० ७५-७७

रत्नजटित पीठ पर स्फटिक शिवलिंग और उस पर ईश्वर का अट्टहास ही साकार हुआ हो—ऐसा लगने वाले शेषनाग के अनन्त फनों की तरह चन्द्रमा की षोडश कलाओं की भाँति चमकने वाले श्वेत कमल राशि—उस मूर्ति के सामने पूजा निरत दिव्य सुन्दरी दिखाई पड़ती है। उस सुन्दरी की देहकान्ति शुभ्र धवल है। तथा—

"अमृतांभोराशि पूरप्रतिम निजतपस्संचयं पर्वितो लो
कमनॅम्बन्तिर्दं देहांशुगळ बळगदिं काननानीकमं दं
तमयं माळ्पन्तॆ ताराचळमसदळं नुण्णिपंतॊर्वळत्यु
त्तम दिव्याकारॆ कुळ्ळिर्दतनु हरननाराधिसुत्तिदेळागळ् ।"

"क्षीर-सागर के प्रवाह जैसे मानो उस देवी की तपस्या समस्त लोक में व्याप्त हुई हो—इस तरह की देहकान्ति से उस समस्त वनप्रान्त को हस्तिदन्त की भाँति और चाँदी के पर्वत (कौलम) को (पहाड़ के उतार-चढ़ावों को) अपनी देहकान्ति की चिकनाई से भरकर समतल कर दिया हो—ऐसी सुन्दर रूपवाली एक बालिका (बच्ची) का आराधन कर रही थी।

संस्कृत से इस कथा को कन्नड में अनुवाद करते समय कवि नागवर्मा ने देशी शैली का उपयोग न कर मार्गी शैली को ही अपनाया है जो सहज है। महाश्वेता नाम को अन्वर्थ करनेवाली उसके शरीर के रंग-रूप का वर्णन कवि ने यों किया है।—

"कडॆदरॊ शंखदिं, तॆगॆदरॊ नवमौक्तिकदिं, मृणाळदिं
पडॆदरॊ, दंतदिंदॆसॆयॆ माडिदरॊ, रुचिरोज्वलांगमं
बिडदमृतांशुरश्मिगळ कुंचिगॆयिंदमॆ कर्चि पारदं
दॊडॆदरॊ पेळॆनल् करमॆ कण्गॆसॆदिर्दुदु रूपु कान्तॆया।"

अर्थात्—"शंख (घोंघा) को तराशकर बनाया गया है? नये मोतियों से तैयार किया गया है? या कमल नाल से ही निर्मित किया है? अथवा हाथीदाँत को कढ़कर बनी है? या क्या है? इतने मनोहर उसके शरीर को चाँदनी से धोकर पारद का लेप लगाकर उसे बनाया है?—उस सुन्दरी महाश्वेता का रूप-सौन्दर्य वर्णनातीत था।

उस देवी का रूप मात्र शुभ्र-धवल नहीं, गुण भी वैसे ही शुभ्र-धवल था। इस शुभ्र धवल रूप-गुण सम्पन्न महाश्वेता के प्रभाव में आकर "कादम्बरी" के समस्त पात्र उसी प्रभाव-जाह्नवी में धुलकर शुभ्र-धवल बन पड़े हैं। सद्यः-स्नाता शुभ्र वस्त्र-धारिणी उस देवी के केश बिखरे और फैले हुए हैं; अभी उस केश-पाश पर पानी की बूँदें दिखाई पड़ती हैं। हाथ में मोतियों की जपमाला, कटि में ब्रह्मसूत्र, उस देवी की उम्र?

"दिविजतॆयिं दिवसंगळ
पवणरियल्बारदादॊडं सॊगयिसि तो
र्पवयदिंदं पदिनॆ
न्टु वरिसदाकृतियिनब्जमुखि कण्गॆसदळ्"

याने—"उस देवता स्त्री की अवस्था का अनुमान से भी निर्णय करना असम्भव है। फिर भी अंग सौष्ठव एवं देहकान्ति से यह अनुमान किया जाय कि यह कमलमुखी अठारह वर्ष की अवस्था वाली होगी—तो असंगत नहीं होगा। कमनीय कोमल कण्ठ से मधुर शिवस्तुति करने वाली उस मोहकमूर्ति कन्या के सौन्दर्य से आकृष्ट चन्द्रापीड ने उस कन्या को देखा। वह कन्या इसे देखते ही यदि अदृश्य हो न जाय—तब पूछ

कर यह जान लेना चाहिए कि यह कौन है ? और इस अवस्था में यह तपस्या क्यों ? तथा उसका नाम-धाम क्या है ? परन्तु पूजा-समाप्ति के पश्चात् उन्होंने स्वयं ही राजकुमार की ओर इस तरह देखा—

"आसँदाश्वसिसुवंतँ पुष्यततियिं मुट्टवन्तच्छ ती
थँसमूहांबुगळिदाभेषवं माळ्पंतँ पूतत्वमं
पसरिप्पंतँ बरंगळं पदपिनिंदीवंतँ दृक्तृप्ति रा
जिसे दिव्यांगनँ नोडिदळ् तगुळ्दु चंद्रापीड भूपालनं ।

कि "मानो प्रेम से आश्वासित कर रही हो, सुकृत से स्पर्श कर रही हो, परिशुद्ध तीर्थोदक से अभिषिक्त कर रही हो, पवित्रता का प्रसरण कर रही हो, उत्साह से वरदान देने के लिए सन्नद्ध हुई हो"—इस तरह की प्रसन्न दृष्टि से उन्होंने राजकुमार चंद्रापीड का स्पर्श किया ।

उस सुरसुन्दरी की जितनी स्निग्ध-मधुर दृष्टि थी उनकी वाणी भी उतनी ही शालीनता से युक्त थी ।

"स्वागतमे निनगँ महा
भागनँ मद्भू मिगॅन्तु बन्दय् नीन
भ्यागत नागल्वेळ्कॅ
दागळ् नृपसुतननळ्कॅरि सति नुडिदळ् ।"

"हे महानुभाव ! स्वागत है । आप अभ्यागत हैं । आज हमारी इस भूमि में कैसे आये ?" —यों बड़े प्रेम से प्रश्न किया ।

इस देवी की चितवन तथा वाणी से राजकुमार अपने को कृतकृत्य मानकर उनके आश्रम में गया; उनके आतिथ्य-सत्कार से तृप्त होकर उस देवी के वृत्तान्त को जानने को उत्सुक हुआ । उन्होंने अपनी करुण कथा सुनाते हुए सारा अतीत-वृत्तान्त सुनाया । पुण्डरीक के साथ अपने प्रणय-वृत्तान्त को बड़े ही हृदय-विदारक ढंग से उस देवी ने सुनाया जिससे कादम्बरी के कथा-तन्तु को आगे बढ़ाने में सुगमता भी उत्पन्न हो गयी । इन देवी की कृपा से ही राजकुमार को गंधर्व राजकुमारी कादम्बरी के दर्शन हुए । पति के विरह में जब प्राण-प्रिय सखी महाश्वेता संन्यासिनी की तरह जीवन-यापन करने का व्रत ले रखा है तब कादम्बरी क्योंकर वैवाहिक-जीवन को स्वीकार कर सकेगी ? महाश्वेता समझती है कि अपनी प्रिय-सखी को चंद्रापीड के दर्शन हो जाएँ तो उसको मानसिक शान्ति मिलेगी । वह देवी यही सोचकर राजकुमार से कहती है :—

"निन्ननकारण बान्धव
नं नोडियँ शोकवारिदुदु सुजनर लो
कोन्नतर परहितर नि
म्मन्नर बरवार्गँ सुखमनुत्पादिसदॅ ?"

अर्थात्—बिना कारण के बन्धु बने आपके दर्शन मात्र से मेरा दुःख बहुत कम हो गया परहितरत लोकोन्नत चारित आप-से सज्जन के आगमन से कौन ऐसी अभागिनी होगी जो अपने को सुखी नहीं मानेगी ?"—यों कहकर उन्हें कादम्बरी के पास ले गयी । कादम्बरी को उस अन्तःपुर का क्या कहा जाए—

"इदु नारीमयमप्पलोकमिदु, बेरॉन्दंगनाद्वीप मि

तिदु निष्पुरुष लोकमिदु सर्गक्कॆन्दु पद्मोद्भवं
सुदतीरत्न समूहमं पदर्पिनि बच्चिट्ट भंडारम
प्पुदॆंनल् संदणिसिर्द सुन्दरियर् ।"

यह अन्तःपुर नारियों से भरा लोक है; यह एक प्रत्येक रूप से निर्मित अंगनाओं का द्वीप है। यह पुरुषों से रहित अलग ही एक राज्य है; स्वर्ग लोक की आवश्यकता को पूर्ण करने के विचार से अप्सरियों को लाकर यहाँ ब्रह्मा ने मानो सुरक्षित रखा है, या स्वर्ग की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए सुरक्षित अप्सरियों का एक भण्डार ही है। ऐसा लगता था वह अन्तःपुर। दोनों तरफ पंक्तिबद्ध उन रमणी-रत्नों के बीच से होकर राजा ने उस अन्तःपुर में प्रवेश किया।

"ऎरडुं पक्कदॊळोलगक्कॆ पदपि बंदिर्द कान्ताजनो
त्कर रत्नाभरण प्रभाप्रसरवादं तळ्तु तद्वीथिकां
तरदॊळ् पॆर्बनिलन्दर्दि परियॆ कंडंता प्रभापूरदॊळ्
भरदिंतानिदिरीसुवंतॆ नडॆदं भूपाल विद्याधरं।"

इस राजकुमार का प्रवेश ऐसा था कि "सभासदों की हैसियत से उस सभाभवन में आयी हुई सुन्दरियाँ बीच में मार्ग छोड़कर दोनों ओर कतार में अपने-अपने आसन पर आसीन थीं; उनके रत्न जटित आभरणों की कान्ति ने इस मध्यस्थित मार्ग को अपनी आभा से भर दिया था जो ऐसा लगता था मानो एक कान्ति की स्रोतस्विनी ही बह रही हो, राजकुमार बहुत परिश्रम से सामने आती हुई धारा के विरुद्ध तैरते हुए से चलकर वह पहुँचा। ठीक सामने ही कादम्बरी बैठी है। ओह !

"पॊळॆयुत्तिर्प महावराह वदनोद्यद्दंष्ट्रमं नॆम्मि निं
दळॊ भूकांतॆयॆंरल्कॆ नीलवसन प्रच्छन्नन पर्यंक मं
डळदॊळ् बॆळ्पॆसॆदिर्द कौळुडॆयनॊन्दं नॆम्मिकुळ्ळिर्द को
मळॆयं दूरदॆ नोडि कंडनरसं कादम्बरी देवियं !"

अर्थात्—"हिरण्याक्ष को मारने वाले आदि वराह के डाढ़ पर विश्वास करके बैठी रहने वली भूदेवी की तरह कृष्ण-वस्त्राच्छादित पर्यंक पर शुभ्र-धवल तकिये के सहारे बैठी हुई सुकुमारी कादम्बरी को राजकुमार ने दूर से देखा। उस देवी की सुन्दरता ने राजकुमार की दृष्टि को एकबारगी ग्रसित कर रखा। तब उन्होंने अपने मन में कहा—

"इवळं नोडल् पडॆदॆं
न्न विलोचनमाव नोंपियं नोन्तुवो मा
य्द विधात्रनेकॆ विरचिस
नॊ विलोचनमयमॆंनल् मदिंद्रियचयमं।"

तात्पर्य यह कि "इस सुन्दरता को किस सुकृत के कारण मेरे ये नेत्र देख सके ! सृष्टि कर्ता ब्रह्मा ने मेरे पाँचों इन्द्रियों को नयन ही क्यों नहीं बनाया ?"—अर्थात् इस सौन्दर्य को देखने के लिए ये दो आँखें पर्याप्त नहीं। जिस तरह राजकुमार ने इस अनुपम सौन्दर्य का आस्वादन अपनी आँखों द्वारा किया, ठीक वैसे ही, कादम्बरी के मन में इस प्रथम दर्शन में ही प्रणय अंकुरित हुआ।

"आँदवॆं पुलकांकुरंगळ्
मॊदलॊल्, भूषणद रवमॆंरडनॆय सूळ् मु

निदिरेळें ता बळिक्किर
दिदिरॅळ्दळ् तरळ नयनें संभ्रमदिदं ।"

तब कादम्बरी की दशा यों हुई कि—"राजकुमार चन्द्रापीड को देखते ही प्रणय अंकुरित तो हुआ। साथ ही आनन्दातिरेक के कारण सारा शरीर पुलकित हुआ और उस सौन्दर्य मूर्ति के आभूषण ध्वनित हुए। यह हर्ष-पुलक तथा आभूषण-रव इन दोनों ने अतिथि का स्वागत किया। तब राजकुमारी ने उनकी अगुवानी की।"

चन्द्रापीड और कादम्बरी का समागम एवं चंद्रापीड का कादम्बरी के मेहमान बनकर ठहरना तथा वहाँ से उनका लौटना—यह एक स्वर्गीय दृश्य है। कादम्बरी के इस मानसिक परिवर्तन को देखकर महाश्वेता बहुत आनन्दित होती है। इन दोनों में उत्पन्न प्रणयांकुर को सींचने के ही उद्देश्य से महाश्वेता कादम्बरी के हाथ से तांबूल (पान) दिलवाती है। इस तांबूल देने के कार्य को करने में वह लज्जा का अनुभव करती है और महाश्वेता से कहती है—

"आनक्क नाण्चुवें पिडि
नीने नृपंगिक्कु तंबुलमनरिवॅनॅ पे
ळे नानुमनानॅन्दति ल
ज्जानतमुखियागि कान्तें मॅल्लनें नुडिदळ् ।"

कि "बहन, मैं लज्जा का अनुभव करती हूँ। लो, तुम ही राजा को तांबूल दो; यह सब मैं क्या जानूं? तुम ही कहो। यों लज्जा से सिर झुकाकर धीमी आवाज में कहा। परन्तु यह बहन वैसा मानने वाली नहीं थी। उन्होंने जबरदस्ती की तो असहायक होकर कादम्बरी को ताम्बूल देना पड़ा। इस दशा में कादम्बरी का हाल देखिए; उनकी उस वक्त की स्थिति मानो यह—

"बॅमरि मुळुगिदपॅम् सं
भ्रमदिं बिळ्दप्पॅनरस कैगुडु नीं बे
गमॅनिप्प नॅरदें ताबू
लमिळितं कांतें नीडिदळ् निजकरमं ।"

कह रही है कि मैं पसीने से तरबतर हो उसी में डूब रही हूँ; इस मिलन सम्भ्रम के भार से दबती जा रही हूँ। महाराज, आप तुरन्त अपने हाथ का सहारा दें—और अपने ताम्बूलयुक्त हस्त को आगे किया। राजकुमार चन्द्रापीड ने भी मानो पंचेन्द्रिय ही पाँचों अंगुलियों का रूप धारण कर गयी हो—ऐसा लगने वाला हाथ पसारा। उस तन्वंगी कादम्बरी ने ताम्बूल दिया।—यह देना भी कैसा था—

"ऍनसुं मुंदें नखांशु निळ्कॅ नृपहस्तान्वेषणंगॅय्ववोल्
निमगॅन्नं बिड्दुण्मिदी बॅमरॅ कन्यीरागिरल् तोर्कॅ गॉ
ट्टननंगं पिडि निन्न कैयॅडॅय नॉन्दिर्दंबुदिन्नॅन्न जी
वनॅवम्बन्ददिनिक्किदळ् नडुगुतुं ताम्बूलमं ।"

इस प्रसंग का वर्णन कवि ने यों किया है—"कादम्बरी की नखद्युति राजकुमार के हाथ को मानो ढूंढ़ रही हो और धाराकार बहने वाला स्वेदजल ही मानो वर के हाथ में कन्या समर्पण के समय ही जाने वाली वारिधारा हो और स्वयं मन्मथ ही उसे राजकुमार के हाथों सौंप रहा हो। यह सारा कार्य ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो स्वयं

कादम्बरी यह कह रही है कि मुझे मन्मथ ने आपको (राजकुमार को) सौंप रखा है; इसे स्वीकार करो, मेरा समस्त जीवन आपके अधीन है।—इस तरह काँपते हाथों उन्होंने ताम्बूल दिया।"

चन्द्रापीड कादम्बरी देवी के आतिथ्य से धन्य होकर अपने राज्य को लौटा। रात-दिन उसे कादम्बरी की ही चिन्ता है। इधर कादम्बरी का हाल भी वही। चन्द्रापीड से रहित जीवन ऐसा था कि उसके लिए सारा संसार शून्य लग रहा था। राजकुमार को अपनी सेना के शिविर में पहुँचते-पहुँचते समाचार मिला कि उधर कादम्बरी अस्वस्थ है। समाचार पाते ही राजकुमार कादम्बरी के पास लौटकर आता है, विरह ताप से अस्वस्थ कादम्बरी को सान्त्वना देकर फिर वहाँ से लौटता है। इसके कुछ ही समय बाद अपने मित्र की मरण-वार्ता सुनकर हृदय की धड़कन बन्द होने से मर जाता है। इस अवस्था में चन्द्रापीड के मृत कलेवर के साथ सहगमन कर सती होने के लिए जब कादम्बरी सन्नद्ध होती है तब चन्द्रदेव उसे यह आश्वासन देता है कि राजपुत्र का शरीर नित्य है और शीघ्र ही पुनर्मिलन होगा। इस आश्वासन के पश्चात् महापतिव्रता महाश्वेता अपनी सखी कादम्बरी को यों समझाती है :—

"ऍनगिदु दैवमॅन्दु मनदॉळ् परिभाविसि कल्ल मण्ण रू
पनॅ गड पूजिसुत्तुमिरॅ सन्निदवादपुदेन्दॉडक्क नॅ
ट्टनॅ मनुजेन्द्र चन्द्रवॅसरिंदॅसॅवग्गद चन्द्रमूर्तियं
मनमॉसॅदर्चिसुत्तिरॅ सन्निदमधुदिदाव संदॅगं।"

—कि "ईश्वर समझकर मिट्टी-पत्थर की पूजा करने से ही जब इष्टार्थ की सिद्धि हो सकती है तब चन्द्रापीड के अभिधान से जब स्वयं चन्द्र ही आये हैं तो उनकी इस देह की पूजा भक्ति से करने पर अपने वांछितार्थ की सिद्धि होने में सन्देह कहाँ रह जाता है?"—इन दोनों साध्वियों के पुण्यकर्मों से दोनों के पतिदेव मिल जाते हैं और उनका जीवन पूर्णता को प्राप्त करता है। "महाकवि की प्रतिभा के स्वप्न-सुन्दर साहसों में कादम्बरी-काव्य भी एक अद्भुत-कृति है। यह एक मेघ-चुम्बी शृंगार सौध का सुन्दर कंगूरा है। भूमि पर उसकी नींव पड़ी-सी लगती है उसका चरमोन्नत कंगूर मेघमाला को चुम्बन करता हुआ मेघों के साथ आँख मिचौनी खेलता हुआ-सा लगता है। कादम्बरी का काव्य-जगत् ऐसा रंग-बिरंगा और मनोहर बना हुआ है मानो वर्षा स्नात बसन्त वन राजि पर सद्योदित बाल सूर्य की पर्वत शृंग पर से किरणें पड़ी हों और पादप-शीर्षों को विविध रंगों से भर दिया हो। और रचना शैली की वैखरी भी ऐसी मनोहारी है जैसे पूर्णिमा की नीरव रात्ति की ज्योत्स्ना में एक स्वर्णिम-स्वप्न साकार होकर चाँदनी को ओढ़े ध्यानस्थ हो।"—कवि कु० वें० पु० की इस विमर्शा[1] को समझना हो तो 'मानव की कल्पना के स्वर्णिम-स्वप्न' और 'ऐन्द्रजालिक की मनमोहक-सृष्टि-सा' लगने वाले कादम्बरी-काव्य को पढ़ना चाहिए।

3. दुर्गसिंह : (ई० सन् 1031) : संस्कृत के पंचतन्त्र को कन्नड़ में प्रस्तुत करने का श्रेय दुर्गसिंह को है। यह ग्रन्थ दुनिया के समस्त भाषा-साहित्यों में है। दुनिया में और कोई लौकिक काव्य इस पंचतन्त्र की तरह शायद ही व्याप्त हो। प्रो० एड्गरटन कहते हैं कि यह पंचतन्त्र दुनिया की करीब पचास भाषाओं में कोई दो सौ विविध

१. कुवेंपु : तपोनन्दन, पृ० १, २

रूपों में फैला हुआ है। ई० सन् 11वीं सदी में सबसे पहले इस पंचतन्त्र का यूरोप से परिचय हुआ और 15वीं सदी तक ग्रीक, लैटिन, स्पैनिश, इतालवी, जर्मन, अंग्रेजी आदि अनेक पश्चिमी भाषाओं में अनुवादित होकर परिचित हो चुका था। यों देश देशान्तरों में व्याप्त इस पंचतन्त्र को कन्नड में दुर्गसिंह ने 11वीं सदी में प्रस्तुत किया।

"पंचतन्त्र" के आरम्भ में कवि ने अपने बारे में थोड़ा बहुत बताया है। उनका कहना है कि वे कर्नाटक के किसुनाड में स्थित सैयडि नामक अग्रहार के निवासी हैं। वहाँ सकल विद्या पारंगत दुर्गमय्या नामक एक विद्वान ब्राह्मण रहते थे। उनके पुत्र का नाम ईश्वरार्य था। इस ईश्वरार्य की पत्नी का नाम था रेवाम्बा। इन्हीं ईश्वरार्य और रेवाम्बा की सन्तान होकर दुर्गसिंह ने जन्म लिया। महायोगी श्री शंकर भट्ट इनके गुरु थे। जगदेकमल्ल जयसिंह प्रथम के आस्थान में कवि दुर्गसिंह सन्धि विग्रही के पद पर नियुक्त होकर सुख शान्तिमय जीवन व्यतीत करते हुए 'हरिहर' देव के अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाकर कीर्ति पायी। उन्होंने अपने इस "पंचतन्त्र" ग्रन्थ को ई० सन् 1031 में लिखा। जिस मूल ग्रन्थ के आधार पर उन्होंने अपनी इस कृति का निर्माण किया उसके बारे में वे यों बतलाते हैं—"पूर्वकाल में गिरिराज पुत्री पार्वती ने एक बार अपने पतिदेव परशिव (शंकर) से प्रार्थना की कि कोई एक अपूर्व कथा सुनावें। शिवजी उनकी इच्छा को पूर्ण करने के इरादे से ऐसी अपूर्व कथा सुनाने लगे। उस समय पुष्पदन्त नामक शिवजी के एक गणधर ने वह कथा सुनी। कारणान्तर से इस गणधर पुष्पदन्त को भूलोक में जन्मे यह गणधर पुष्पदन्त गुणाढ्य के नाम से विख्यात हुआ। इन्होंने शिवजी के द्वारा सुनी उस पूरी कथा को पैशाची भाषा में लिख रखा। यह वह "बृहतकथा" के नाम से प्रसिद्ध कृति है। इस "बृहतकथा" से कथाओं का चयन करके वसुभाग भट्ट ने "पंचतंत्र" के नाम से प्रस्तुत किया। दुर्गसिंह ने, उसके सम्बन्ध में कहा है—

वसुभाग भट्ट कृतियं
वसुधाधिप हितमनखिल विबुधस्तुतमं
पॉसतागिरॆं विरचिसुवॆम्
वसुमतियॊळ् पंचतन्त्रमं कन्नडदिं"

—वसुभाग भट्ट ने जिसे राजाओं के लिए हितकारी समझकर और विद्वानों की प्रशंसा के पात्र तथा "पंचतन्त्र" के नाम से संसार में प्रसिद्ध इस ग्रन्थ को रचा, उसे कन्नड़ में दुर्गसिंह ने प्रस्तुत किया। अब वसुभाग भट्ट का पंचतन्त्र, जो संस्कृत में था उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि वसुभाग भट्ट की वह कृति जावा सुमात्रा आदि द्वीपों में प्रचलित थी। डा० वेंकटसुब्बय्याजी का कहना है कि उसकी प्रतियाँ भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ती हैं। परन्तु वह हमारे यहाँ प्रचलित नहीं है। हमारे यहाँ विष्णु शर्मा और पूर्णभद्र के द्वारा विरचित पंचतन्त्र मात्र प्रचलित हैं। वसुभाग भट्ट के द्वारा विरचित पंचतन्त्र के स्वरूप को समझने के लिए हमें उपलब्ध एकमात्र आधार कन्नड़ का यही पंचतन्त्र है। पंचतन्त्र के इतिहास का अनुशीलन करने के लिए वसुभाग भट्ट के काव्य का भी अध्ययन करना आवश्यक है। इस दृष्टि से दुर्गसिंह का पंचतन्त्र अमूल्य निधि है। वर्तमान प्रचलित संस्कृत पंचतन्त्र में अनुपलब्ध अनेक कथाएँ कन्नड के पंचतन्त्र में उपलब्ध हैं।

दुर्गसिंह का पंचतन्त्र चम्पू के रूप में है। इसका मूल आधार अर्थशास्त्र है।

राजनीति की रीति-नीति, दैनिक जीवन के विधि-विधान आदि विषयों का मनोरंजक निरूपण होने के कारण से यह काव्य राजकुमारों के आदर और गौरव का पात्र बना। इसे क्षत्रिय कुमारों की पाठ्य पुस्तक कहा जाय तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। पंचतन्त्र के कथा भाग से जैसे जो इसकी प्रस्तावना है उसी से यह बात स्पष्ट होती है। सौरुप्यपुर के राजा ने स्वेच्छाचारी तीनों बेटों को ठीक रास्ते पर लाने के लिए वसुभाग भट्ट से प्रार्थना की और उन्होंने अर्थ-शास्त्र के पाँच उपायों से युक्त पाँच कहानियों को सुना कर उन राजकुमारों को ठीक रास्ते पर लगाया। ये पाँच उपाय ये हैं—1. प्राण-प्रिय मित्रों में भेद पैदा करना "भेदोपाय" 2. अविश्वास करने वालों में विश्वास पैदा करके उनमें प्रवेश करना "विश्वासोपाय", 3. किसी कार्य को बिना सोचे विचारे नहीं करना चाहिए—यह बताने वाला "परीक्षोपाय", 4. दूसरों के मन की बात समझ कर संधान द्वारा उन्हें धोखा देना "वंचनोपाय", 5. सबसे मैत्री स्थापित कर सबको अपना बनाने का "मित्र कार्योपाय"—इस तरह इन पाँचों के बारे में पाँच कहानियाँ सुना कर राजकुमारों को योग्य बनाया। ये पाँचों तन्त्र पिंगळक नामक सिंह और संजीवक नामक बैल के बीच के वार्तालाप के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

उज्जयिनी में वर्धमान नामक एक वैश्य था। वह जब व्यापार करने निकला तो रास्ते में उनका एक बैल लंगड़ा हो गया। उसकी सेवा एवं रक्षा करने के लिए सेवकों को रखकर समुचित व्यवस्था करके वह अपने काम पर चला गया। वह बैल सेवकों की उदासीनता और समुचित देखरेख न होने के कारण जंगल में इधर-उधर घूमता-फिरता यमुना के तीर-वर्ती प्रदेश में पहुँचा। वहाँ की कोमल घास तथा पौष्टिक जल-वायु में शीघ्र ही स्वस्थ हुआ। एक अच्छा स्वस्थ सुडौल बैल बन गया। देखने पर वह बैल शिवजी के वाहन वृषभराज जैसा लगने लगा। उसी अरण्य-प्रांत में पिंगलक नामक सिंह भी निवास करता था। वह पानी पीने के लिए नदी पर आया। उसे देख इस बैल ने एक बार ज़ोर से हुंकार किया। बैल के इस हुंकार को सुन सिंह भयभीत होकर बिना पानी पिये लौटा और भाग गया। करटक और दमनक नामक दो सियारों ने इस घटना को देखा और उन दोनों ने सिंह को समझा बुझाकर उसकी बैल के साथ मित्रता जमाई। धीरे-धीरे सिंह-वृषभ की मैत्री बढ़ने लगी। इस मैत्री के फलस्वरूप सिंह अहिंसावादी बन गया। सिंह भुक्त-शेष पर गुज़र करने वाले इन शृंगालों को भूखों मरना पड़ा। इस हालत में इन दोनों सियारों ने मित्र बने हुए सिंह और बैल के बीच शत्रुता पैदा कर बैल को मरवाया। यह प्रथम तन्त्र की कथा-वस्तु है। शेष चार तन्त्रों में ऐसी अनेक कहानियाँ और कहानी के अन्दर कहानियाँ हैं, कोई एक अखण्ड कथा नहीं। इन कथाओं के द्वारा नैतिक उपदेश मात्र दिया गया है। कहानी-कला की दृष्टि से पहला तन्त्र सुन्दर है।

दुर्गसिंह एक अच्छे कथाकार हैं। इतना ही नहीं अच्छे विडम्बनकार (हास्य-कथा लेखक) भी है। पिंगळ के राजमहल के द्वार पर दो जंगली भैंसों को पहरे पर नियुक्त किया हैं। इन मूर्ख पशुओं के साथ इन दोनों शृंगालों के चतुरता पूर्ण व्यवहार हास्यरस का पुट देने में सहायक मात्र नहीं, पद के अधिकार बल से भैंसे की तरह के बुद्धिवाले कैसे बरताव करते हैं—यह भी स्पष्ट होता है। स्वार्थी अपने स्वार्थ की साधना करने में किस-किस तरह की युक्तियाँ करते हैं और अपने स्वार्थ को सिद्ध कर

लेते हैं—इसका अच्छा निदर्शन इन सियारों के उदाहरण से स्पष्ट होता है। पिंगलक के व्यवहार से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुकूल समय पाकर अपने स्वार्थ को साध लेने वाले स्वार्थियों के हाथ की कठपुतली कैसे बन जाते हैं। छल-कपटपूर्ण बातों से व्यक्तियों की दिल्लगी उड़ाने में दुर्गसिंहसिद्ध हस्त मालूम पड़ते हैं। "बन्दर, बैल, श्वान" आदि के लिए विचित्र पदों का प्रयोग करके दिलों में हास्य पैदा करने में बड़े चतुर हैं। उन्होंने पम्प रन्न आदि की शैली का ही अनुकरण किया है। उदाहरण के लिए उनका यह पद देखें :—

"अनिमिष चापदंतें सिरि, शारद नीरद कांतियंतें यौ
वनदेंसकं, तृणाग्रगत वा: कणिकागणदंतें संद जी
वनमदरिं भवप्रभवजीविगें पिर्मल धर्ममार्गदोळ्
मनमोसॅदागळु नडॅयवेळ्पुदु विचमृमेन्द्र वल्लभा"

मतलब यह कि—"ऐश्वर्य इन्द्रधनुष की तरह अशाश्वत है : यौवन शरदृतु के मेघ की तरह चंचल है, दूब पर की जल-बिन्दु जैसे जीवन अशाश्वत है, इसलिए हे मृगराज! संसार में जन्मे प्रत्येक प्राणी को सदा शुद्ध स्वच्छ धर्म मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए। काव्य धर्म और केवल धर्म इन दोनों को प्रतिपादन करने वाले इस पद को जब सुनते हैं तो ऐसा लगता है कि इस पद के कर्ता रन्न या पम्प होंगे! सव्यसाची की तरह कन्नड़ और संस्कृत दोनों का प्रयोग करने में दक्ष हैं। उनकी पद्य-शैली विशुद्ध मार्गी-शैली है। संस्कृत पद बाहुल्य भाषा में है। परन्तु वह एक उद्दिष्टार्थ-साधन मात्र के लिए। वाणी विनीत होकर उनका अनुसरण बड़ी सरलता से करती हुई-सी लगती है। जिस मूल ग्रन्थ का अनुवाद आपने प्रस्तुत किया है उसे देखे बिना अनुवाद के बारे में कहना कठिन होने पर भी उनकी कृति निःसन्देह हमें अच्छी लगती है। कन्नड़ साहित्य के इतिहास में, उसमें भी कन्नड़ के गद्य-विकास में इनके लिए ही एक उच्च-स्थान निश्चित है। कवि ने स्वयं अपने बारे में जो कहा है। वह अतिशयोक्ति हो सकती है, तो भी असत्य नहीं।

"निश्चितमनरल्लुदरं
दुश्चरितरनॅव्द पडॅद दोषक्कं प्रा
यश्चित्तमॅन्दु सकल वि
पश्चिन्निधियॅनिप दुर्गनं बिदि पडॅदं"

अर्थात्,—"अस्थिर मनवालों को और दुर्भागियों को सृष्टि करने के पाप का प्रायश्चित करने के ही लिए ब्रह्मा ने दुर्गसिंह को पाया।"

4. **शान्तिनाथ** : यह शान्तिनाथ कवि "सहजकवि" चतुरकवि, "सरस्वती मुखमुकुर" जिनमतांभोजिनी राजहंस"—इत्यादि बिरुदावली से प्रशंसित हैं। इन्होंने "सुकुमार चरित" नामक चम्पू काव्य लिखा है। ई० सन् 1068 के शिकारिपुर के 136 वें शिलालेख को शान्तिनाथ ने ही लिखा है—यों सोचने के लिए पर्याप्त आधार है। उस शिला लेख में "सुकर रस भावदिं वर्णकदिं तत्वार्थ विचर्यदिं सूक्तमॅनल सुकुमार चरित पेळद कवीन्द्राग्रणी"—मनोहर रस भावों से युक्त, तत्वार्थ पूर्ण और सबकी प्रशंसा के पात्र सुकुमार चरित को कवीन्द्राग्रणी ने कहा है।"—यह बात उत्कीरित है। इससे यह कहा जा सकता है कि यह "सुकुमार चरित" ई० सन् 1068

से भी पहले लिखा हुआ होगा । यह कवि चालुक्यचक्रवर्तियों के प्रतिनिधि लक्ष्मण राजा के मन्त्री के पद पर नियुक्त होकर बारह हजार बनवासी के प्रदेश का अर्थ-सचिव था। इनके पिता "सत्यरत्नाकर" नामक विरुद से विभूषित गोविन्दराज थे, भाई "वाग्भूषण" रेवण तथा इनके आराध्य देव जिनपति थे ।

शान्तिनाथ ने कवि पम्प की तरह—"ई सुकुमार चरितदॊळ्तोळ्कें काव्य धर्ममुनमळ जिनधर्ममुमं—" इस सुकुमार चरित में काव्य धर्म और जिनधर्म इन दोनों का निरूपण किया गया है ।"—कहा है । उनके काव्य में धर्म-निरूपण की कमी नहीं है । श्री डी० एल्० नरसिंहाचार्य जी ने इस "सुकुमार चरित" के प्राक्कथन में कहा है कि इस सम्पूर्ण काव्य का एक चौथाई भाग मततत्व से ही भरा है जिससे यह काव्य "जिन मताचार" की एक छोटी मार्गदर्शिका ही बन गया है । जैनधर्म सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली से लदकर शास्त्र का स्मरण कराता हुआ साधारण पाठकों के लिए दुर्ग्राह्य बना है । उनके काव्य का शेषांश काव्यधर्म से उतना ही निबिड है—ऐसा कहा नहीं जा सकता । कथा-निरूपण का ढंग मनोहर है । शैली ललित और सरल है, वर्णन भी अपनी सीमा के अन्दर हितकर है, पात्र सजीव हैं । सन्निवेश-रचना भी स्वाभाविक है । उनकी कविता में कवि समय और सप्रम्दायों का अनुसरण लक्षित होता है । परन्तु उनकी शैली की स्वरधारा पाठकों के मन को हर लेती है । वह वायुभूति अपने मामा से कहते हैं—

नीं बेवादॊडॆ निम्न कु
टुंबिनियुं कप्पॆसॊरॆय कुडियॆं मिडिये
नॆम्बंतॆं दरसियोदळि
दें बळ्वळ बळद वन्धुतनमिनिदाय्तो"

भाव यह कि—"तुम अगर नीम तो तुम्हारी पत्नी भी वैसी ही, कहावत है करैला पहले ही कडुवा तिस पर नीम चढ़ा"—तुम्हारी ही तरह वह भी हुई । तेजी से बढ़ी यह बन्धुता कितनी अच्छी हुई !"—यह उक्ति कितनी तीक्ष्ण है जैसे तलवार के तेज धारदार फाल हो ।

सूर्यमित्र भट्टारक अपने दामाद से कहते हैं—

"पगॆयावुदु कॆळॆयावुदु
बगॆवॊडॆ भाविसुवॊडॆन्दु नोडुवॊडॆन्दुं
पगॆ कर्ममॆं, कॆळॆ धर्ममॆं
जगदॊळ्मुनिपतिगॆ परम जिनपति मतदिं ।"

वैर क्या है ? मैत्री कौन-सी है —इस पर चिन्तन कर समझने से हमारा वैर दुष्कृत ही है, मैत्री धर्म ही है, जिनके मत के अनुसार जो मुनि होता है उन्हें इसी तरह सोचना चाहिए ।

ऐसे मौकों पर शान्तिनाथ काव्य धर्म और केवल धर्म दोनों का समन्वय करके कृतकृत्य हुआ है ।

5. **नागचन्द्र** : द्वारसमुद्र के बल्लाल राजा के धर्मचन्द्र नामक एक ब्राह्मण मन्त्री था । इस मन्त्री का पुत्र एक अध्यापक था । इस अध्यापक ने अपने विद्यार्थियों की बुद्धि को उद्दीप्त करने के लिए "ज्योतिष्मती तैल" नामक एक तेल को तैयार

करके एक मिट्टी के छोटे बर्तन में भर रखा था। मूर्ख विद्यार्थियों को आधी बूंद पिला देने से ही काफी हो जाता। एक दिन राज प्रसाद की दासी "कन्ती" ने इस तेल की करामात को बिना समझे अनजान में पूरा तेल पी लिया और बर्तन को रीता कर दिया। इससे सारा शरीर जलने लगा और उस जलन को वह सह न सकी और कुएँ में कूद पड़ी। कुएँ में पानी गले तक ही गहरा था, इसलिए वह मरी नहीं। पानी में खड़े-खड़े ही उसके मुँह से एक अद्भुत काव्यधारा बह निकली। इसे सुनकर राजस्थान के कवि पम्प वहाँ आये और उस कुएँ में रहने वाली "कन्ती" के सामने एक हजार समस्याएँ रखीं और प्रत्येक समस्या की पूर्ति भी उन्होंने कन्ती से पायी। उदाहरण के लिए समस्या और उसकी यह पूर्ति देखिए। पम्प की समस्या—"कनबं कडि कडिदु बसदिगॆळॆयुत्तिर्दर्" अर्थात् गायों को मार कर जैन मन्दिर (बसति) में फेंकते थे। इस समस्या की पूर्ति कन्ति ने यों की—

"वनदॊळगॆं पुट्टि बॆळॆयुतॆं, तनिगंपं पत्तुदॆसॆगॆं बीरुत्तिर्प घनतर सुरुचिर सच्छंबनबं कडिकडिदु बसदिगॆळॆयु त्तिर्दर्।"—अर्थात् "जंगल में पैदा होकर वहीं बढ़कर अपनी सुगन्धि को दसों दिशाओं में फैलाते रहने वाले चन्दन को जैन मन्दिर के अन्दर डाल रहे हैं।"—यों कन्ति ने समस्या पूर्ति की। कन्ति और पम्प के बीच हुई समस्यापूर्ति सम्बन्धी पद्यों का संग्रह "कन्ति-पम्प की समस्या" के नाम से ख्यात है यह कवयित्री राजा बल्लाल के आस्थान में बहुत प्रसिद्ध थी। यह एक दन्त कथा है। यह कथा सत्य है तो अभिनव पम्प के नाम से सुप्रसिद्ध नागचन्द्र राजा बल्लल के समय में (1100-1106) रहा—ऐसा कहा जा सकता है। और यह भी स्थापित होता है कि "कन्ति" नामक कवयित्री भी उन्हीं के समकालीन थी। इन दोनों बातों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त आधार के अभाव के कारण यह कथा केवल दन्त कथा ही है, सत्य नहीं है— ऐसा पण्डितों का मत है। श्रीमान् गोविन्द पै जी ने अपना निर्णय इस तरह बताया है कि चालुक्य चक्रवर्ती चौथे सोमेश्वर (ई० सन् 1100-1126) की इस नागचन्द्र कवि ने अपने "मल्लिनाथ पुराण" में श्लेषयुक्त रीति से प्रशंसा है, इसलिए यह काव्य ई० सन् 1100 से भी पहले का है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यह कवि ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में रहा है। यह भी कहा जाता है कि यह कवि विजापुर का है।

नागचन्द्र के दो काव्य हैं। "मल्लिनाथ पुराण" और "रामचन्द्र चरित पुराण" दोनों जैनागमों से संयुक्त काव्य हैं। तो भी उनका धर्माभिमान काव्य धर्म पर हावी नहीं हुआ है। निःसन्देह नागचन्द्र बहुत बड़े कवि हैं। उनका यह बिरुद "अभिनव पम्प" व्यर्थ नहीं। उन्होंने १९ वें तीर्थंकर के चरित्र को "मल्लिनाथपुराण" के नाम से तथा "रामचन्द्र चरित पुराण" के नाम से जैन रामायण को भी लिखा है। पम्प कवि के विक्रमार्जुन विजय को लोग प्रेम से "पम्प भारत" के नाम से जिस तरह पुकारते हैं वैसे ही उतने ही प्रेम से अभिनव पम्प की रामायण को "पम्प रामायण" के नाम से बड़े प्रेम से पुकारते हैं; यह एक रिवाज सा बना है।

नागचन्द्र के काव्यों में, ऐसा लगता है कि "मल्लिनाथ पुराण" प्रथम कृति है। उनकी रामायण में दिखने वाली कला परिणति इसमें दृष्टिगोचर नहीं होती। पुराण में कवि ने तीर्थंकर के पूर्वजन्म की कथा का वर्णन कर उनके जन्म की कथा को विस्तार

के साथ वर्णन करके इस छोटी कथा को चौदह अध्यायों में फैलाकर विस्तृत होने के कारण कथा भाग की अपेक्षा वर्णना भाग की ही प्रधानता का होना सहज और स्वाभाविक है। यही नहीं यह कथा धार्मिक पृष्ठ-भूमि पर होने के कारण कवि उतना स्वतन्त्र नहीं। इस काव्य में "पम्प रामायण" में जिस तरह की पात्र पोषण में परिणति दृष्टिगोचर होती है। वैसी परिणति इस "मल्लिनाथ पुराण" में नहीं दिखती। परन्तु उनके वर्णन सहज-सुन्दर और मनोहर हैं। महाराज वैश्रवण ने एक बार बिजली के आघात से एक बहुत बड़े बरगद के पेड़ को धराशायी होते देखा तो वह अश्चर्य से चकित हो गया। यह घटना उनके मन में वैराग्य को उत्पन्न करने का कारण बनी। उस गिरे हुए वृक्ष का वर्णन कवि ने यों किया है—

"सिडिलॅम्ब जवन कोडलिय
कडुवॉल्यि नॅगॅद बेगॆळॅाडनॆं नॆलं बा
य्बिडॆं बॆट्टु कॅडॆव तॆरॆदिं
कॆडॆदाल मनिदिरॉळवनीपालं कंडं"

याने "बिजली ही यमराज की हँसिया है; उस हँसिये के आघात से बृहदाकार वृक्ष की जड़ें हिल गयीं जिससे जमीन में दरारें पड़ीं और वृक्ष ऐसा धराशायी हुआ जैसा पहाड़ ही गिर गया हो।" इस बरगद के वृक्ष को देखकर महाराज के मन में वैराग्य भाव जागृत हुआ। दूसरे दिन के प्रातः काल का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

"मूडण संजॆ कॅन्दळिर कावणदंतिरॆं, चंद्रमंडळं
बाडिद माधवीमधुर मंजरियंतिरॆं, तारकाळि नी
रोडि कळल्द बीळ्व कळिवूगॅणॅयागिरॆं तण्णनर्घलर्
तीडॆं तपोवनंबॊलति पावनमाय्त् नभं प्रभातदॊल्"

अर्थात्—"उष: काल की अरुणता वृक्षों के नये निकले कोंपलों पर अपनी छटा फैला रही थी जो पर्णशाला-सी शोभा से सुन्दर प्रभात का सृजन कर रही थी। चन्द्र मण्डल मुरझाये, माधवी-फूलों के गुच्छे की तरह लग रहा था। तारे सूखकर डण्ठल से गिरे मुरझे हुए फूल-से लग रहे थे। शीतल वायु के बहने के कारण आकाश तपोवन की तरह पावन बन गया था।"

कवि की भक्ति पूर्ण जिनस्तुति उनके धर्मानुराग का एक उत्कृष्ट प्रवाह-सा लगता है।

"निनगॆं रसमॊन्दॆं शान्तमॆं
जिनेन्द्र, मनमा रसांबुनिधियॊळगवगा
हनमिर्दु मिक्क रसमं
कनसिनॊळं नॆनॆयदंतु माॅडनगर्हा"

भाव यह कि "हे देव जिनेश्वर, तुम्हें केवल एक मात्र शान्त रस ही प्रियकर है। इस लिए मेरे मन को उसी शान्त रस का ही अवगाहन करता रहे, और अन्य सब रसों का स्वप्न में भी स्मरण न हो—ऐसा अनुग्रह करें।"

"मणि भूषण भरदिं तनु
किण मधु ददेकॆं निन्न निर्मल गुण भू

वधार्म दयॆगॆम् पडॆवॆ
प्रणयमनपवर्ग लक्ष्मिमर्दारॆहॆ

मतलब यह है—कि "बोझीले रत्नाभूषणों से शरीर को सजाकर उसे निश्चल एवं निर्विण बना देने अभिलाषा नहीं है; हे देव ! तुम अपने सद्‌गुण रूपी आभूषण देकर मेरे ऊपर दया करो। उन सद्‌गुण रूपी आभूषणों से सजकर मोक्षलक्ष्मी का प्रणय प्राप्त कर सन्तुष्ट होऊँगा।"

भक्ति भरे इस तरह के पद्य जैसाकि स्वर्गीय श्रीजी ने स्पष्ट बता दिया है कि ये "अभिनव पंप" की आत्मा की वाणी है और उनका सार सर्वस्व है।

नागचन्द्र की कविता शक्ति उनके "रामचन्द्र चरित' में खुलकर खेली है। इसमें जैन सम्प्रदाय के अनुसार रामायण की पूर्ण कथा है। विमलसूरि (ई० सन् प्रथम शतक) का "पउमचरित' (प्राकृत) और रविषेण (ई० सन् द्वितीय शती) का "पद्‌म-पुराण" (संस्कृत)—ये दोनों इस "रामचन्द्र चरित" के लिए आकर ग्रन्थ (मूल) हैं—ऐसा पण्डितों का अभिमत है। नागचन्द्र ने हू-ब-हू विमलसूरि का ही अनुकरण किया है। "उत्तम कलापूर्ण परिवर्तन इनके काव्य में नहीं दिखाई पड़ता।"—यह श्रीमान् डी. एल. नरसिंहाचार्य जी ने "पम्प रामायण संग्रह" की भूमिका में यों कहा है। श्री आचार्य जी का जो कथन है—उसे देखने पर ऐसा मानना पड़ता है कि नागवर्मा की तरह नागचन्द्र भी एक अनुवादक मात्र थे। ये दोनों बहुत बड़े अनुवादक हैं। श्रेष्ठ संग्रहकार हैं। इतना ही नहीं, इन दोनों के काव्यों में अपने-अपने व्यक्तित्व बहुत अच्छी तरह अभिव्यक्त हैं। कविताशक्ति में पदलालित्य में नागचन्द्र नागवर्मा से भी आगे बढ़ा हुआ कहा जा सकता है।

जैन रामायण वाल्मीकि रामायण से भिन्न है। इस रामायण में न तो. यज्ञ-याग आदि के बारे में कुछ लिखा है न ऋषि ब्राह्मण आदि का कोई वृत्तान्त या उल्लेख है। यहाँ का राम विष्णु का अवतार भी नहीं। यहाँ राम रावण को मारने वाले भी नहीं। यह राम जैनियों के शलाका पुरुषों में एक बलदेव है। उनके भाई लक्ष्मण वासुदेव है; यहाँ का रावण वैकुण्ठ का शापग्रस्त द्वारपाल भी नहीं। वह प्रतिवासुदेव है। इनकी मृत्यु होती है लक्ष्मण से। यहाँ की सीता आयोनिज नहीं; जनक की और सपुत्री है, प्रभामण्डल की बहन है। सुग्रीव हनुमान आदि कपि न होकर कपिध्वज हैं। इन वानरों ने समुद्र पर पुल नहीं बनाया बल्कि आकाशगामिनी विद्या के प्रभाव से उड़कर समुद्र को पार किया है। ये वानरध्वज और राक्षस बन्धु हैं; हनुमान जी रावण की बहन का दामाद है। रावण राक्षस नहीं। वह खेचरों का राजा है। उनके दस सिर नहीं थे बल्कि आईने में दस सिर दिखे इस कारण से वह दशानन है। इस रामायण में मन्थरा की बात ही नहीं। बालिवध का प्रसंग नहीं; वह विरागी होकर संन्यास ग्रहण करता है, इस रामायण का हनुमान गृहस्थ है; लक्ष्मण का भी कई स्त्रियों से विवाह हुआ था।

इस तरह पम्प रामायण मूल रामायण से कई बातों में भिन्न है तो भी इसके सभी पात्रों का सिरमौर है रावण के पात्र की सृष्टि। इस जैन कवि ने रावण पर अपार अनुकम्पा दिखाकर उन्हें भी जैन बना दिया है। महानुभाव रावण परांगना विरति व्रत" का निष्ठावान् अनुयायी है। एक बार नलकूबर की राजधानी दुर्लंघ्यपुर पर

रावण ने हमला किया तो नलकूबर की पत्नी रावण पर मोहित होती है। इस कारण से उस दुर्लंघ्यपुर को जीतने का उपाय एक दूती के द्वारा कहला भेजकर उस नलकूबर की पत्नी ने अपने को स्वीकार करने की प्रार्थना रावण से करती है। विजयी रावण उस दिव्य-सुन्दरी की इस प्रार्थना को अस्वीकार कर अपने पति के साथ सुखमय जीवन बिताने का उपदेश देते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान को बता सकने वाली अवलोकिनी विद्या रावण की अनुगामिनी बनी है। तो क्या ? आग की चिनगारी में कालिख की तरह ऐसे रावण का मन भी श्रीरामचन्द्र की पत्नी सीता जी को देखकर चंचल हो जाता है। वज्र के पीछे की विद्युल्लता सी रहने वाली सीता जी को श्रीरामचन्द्र जी के साथ देखते ही—

"बलें दृष्टिगें वज्रद सं
कलें हृदयक्कॅनिप रूपवति जानकि क
ब्बॉलॅदॉळिरॅ पद्म पत्रद
जल बिन्दुविनन्तें चलितमादुदुचित्तं"

रावण की यह दशा हुई कि—"सुन्दरी सीता के सौन्दर्य ने उनकी (रावण की) दृष्टि को अपने फन्दे में फँसा लिया, और हृदय को बाँध रखने वाली हीरे की जंजीर-सी सीता जी को देखकर कमल के पत्ते पर के जल कण की तरह वह (रावण) चंचल हो गया।" रावण की इस दशा को देखकर अवलोकिनी विद्या उनसे कहती है—

"अन्नॅयदिं नडॅववरं
नीन् नियमिसुवॅ दशास्य पॅरवावन् नि
न्नन्नियमिसुवं मुन्नीर्
बॅन्नीरॅनॅ बॅरसलण्ण तण्णीरॉळवॅ ?"

अर्थात्—"हे दशानन ! संसार में अन्यायियों को दण्ड देने वाले तो तुम हो। तुमको दण्ड देने वाला और कौन हो सकता है ? भाई ! समुन्दर का पानी ही गरम हो जाय तो उसमें मिलाने के लिए ठण्डा पानी कहाँ से लावें ?"—रावण का मन उनके वश में नहीं हुआ। उस अवलोकिनी विद्या को दबाकर उसका मुँह बन्द करा दिया।

जब से सीता पर रावण मोहित हुआ तभी उनका (रावण का) अधःपतन भी शुरू हो जाता है। पुराकृत कर्म से छुटकारा पाना किससे सम्भव है ? रावण दुर्विधि के हाथ का कठपुतला बना। भयंकर कृष्ण सर्प को हाथ में धरे रहने वाले बच्चे की तरह विवेकहीन होकर उन्होंने सीता का अपहरण किया। उन्हें (सीता जी को) बन्धन में रख अपना सब कुछ उनके (सीता जी के) चरणों में समर्पित करने को तैयार होकर उसे (रावण को) स्वीकार करने की बिनती (वह रावण) करने लगा। परन्तु सीता जी निश्चय से डिगी नहीं, वह अटल रही। राम लक्ष्मणों के साथ युद्ध भी सन्निहित हुआ। रावण की इस विषम परिस्थिति में विभीषण ने भी उनको छोड़ दिया। फिर भी रावण ने हिम्मत नहीं हारी। तीनों लोकों को जीत सकने वाली "बहुरूपिणी विद्या" को साधना द्वारा रावण ने हस्तगत कर लिया। इसके पश्चात् सीताजी के पास जाकर कहने लगा कि "अब मुझे जीत सकने वाला कोई नहीं; मेरा सामना कर सके ऐसा कोई वीर नहीं; राम की आशा छोड़कर मुझे वर लो।" रावण की इस बात को सुनकर सीताजी भयभीत होकर अपने पति (श्रीराम) की प्राणभिक्षा

की प्रार्थना करती है। भय और दुःख से संज्ञाहीन हुई पतिव्रता सीता को देखकर रावण के मन का मैल छँटकर स्वच्छ हो जाता है।

"कदडिद सलिलं तिळिवं
दर्दे तन्निं तानें तिळिद दशवदनंगा
वुदु वैराग्यं सीतेयों
ळुदात्तनॊळ् पुट्टदल्तें नीलीरागं।"

अर्थात्—"जिस तरह मटमैला पानी अपने आप स्फटिक निर्मल होता है, उसी तरह रावण के मन में सीता के प्रति विरक्ति के भाव जागृत हो गये। एक उत्तम उदात्त व्यक्ति में भी बुरी तरह का मोह क्या उत्पन्न नहीं होगा ?"—अर्थात् अच्छे से अच्छे व्यक्ति में भी कभी-न-कभी कोई बुरी भावना जागृत होती ही है।

अब रावण अपने किये पर पछताने लगा। उनके मन में यह—

"रामनिनगल्चि तन्दा
नी मानिनिगिनितु दुःखमं पुट्टिसिदें
कामव्यामोहदि ना
शामुखमं युदियें दुर्यशः पटहरवं"

भाव पैदा हुआ कि "राम से इस स्त्री को अलग करके लाया और अपने काम-व्यामोह के कारण उन्हें कितना कष्ट दिया ? मेरी अपकीर्ति का दुंदुभि-निनाद समस्त दिशाओं में भर गया"—यों अपने आपसे कहते हुए पछताने लगा। पश्चात्ताप की भावना के उत्पन्न होने के साथ ही साथ सीताजी को ले जाकर रामचन्द्र को सौंपने की प्रबल इच्छा भी पैदा हुई। मगर रावण अभिमानी था। उनके अभिमान ने उनसे यह काम करने नहीं दिया। दोनों सेनाओं में अपने बाहुबल को दिखाकर राम और लक्ष्मण, दोनों को बन्दी बनाकर लाना और तब सीताजी को रामचन्द्र के हाथों सौंपना, यों सोचकर रावण ने ऐसा करने का निश्चय किया। परन्तु वह अपने निश्चय के अनुसार करने में असफल होकर वीरगति को प्राप्त करता है। इस तरह एक दुरन्त नायक होकर काव्य को करुण रस से प्लावित करने वाले रावण के पात्र के साथ कवि की सहानुभूति, अनुकम्पा, आत्मीयता आदि इस काव्य में यत्र-तत्र बिजली की तरह चमक जाती हैं।

कहते हैं कि नागचन्द्र को "अर्थान्तरन्यासालंकार" बहुत प्रिय हैं। इस अर्थान्तर-न्यासालंकार के प्रति उनके प्रेम ने काव्य की शैली को बहुत ही पुष्ट बनाया है। नागचन्द्र के काव्य में लोकोक्तियों के प्रयोग कवि के लोकानुभव के साक्षी देते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियों में स्थाली पुलाक न्याय से एक दो का उद्धरण यहाँ करना अप्रासंगिक नहीं होगा—जैसे "समुद्र बिसियादरें तण्णीलॆल्लि तरुवुदु"—अर्थात् "अगर समुद्र का पानी गरम हो जाय तो मिलाने के लिए ठण्डा पानी कहाँ से लावें।" "गुण हीनन सिरिगिंतं गुणिगळ बड़तनवें लेसु" अर्थात्—"गुणहीन के ऐश्वर्य से गुणी व्यक्ति की गरीबी अच्छी।" आदि आदि। विस्तार भय से अधिक नहीं दिये जा सकते। उनकी कथा को विकसित व पल्लवित करने की रीति, प्रसंगोद्भावनाएँ, वर्णना वैखरी, पात्रसृष्टि उसमें भी रावण जैसे दुरन्त नायक की सृष्टि; आदि ने उनके "अभिनव पम्प" नामक बिरुद को सार्थक बनाया है।

पम्प युग की सीमा में आने वाले दो कवि और हैं। वे ये हैं—नयसेन और ब्रह्मशिव। नयसेन का समय ई०सन् 1112; और उनकी कृति "धर्मामृत"। उनका कथन है कि चौदह अध्यायों के इस काव्य में "जिनमतदॉळॅनितु सारम, दनितुं लेखामितोर्पुदु याने जैन धर्म का सार सर्वस्व" है। इन आश्वासों के आरम्भ और अन्तिम पदों में कवि ने अपनी प्रशंसा "सुकवि निकर पिकभाकन्द," सुकवि जन मनः पद्मिनी राजहंस"—इन शब्दों में की है। इसके अलावा "दिगम्बरदास', नूतन कविता विलास"—ये बिरुद भी इनके हैं। धर्म निरूपण करने ही के लिए लिखित इस काव्य की विशेषता यह है कि कथाओं के द्वारा धर्म-स्वरूप को समझाकर स्पष्ट किया है। प्रत्येक अध्याय में धर्म के एक-एक अंग को लेकर एक सुन्दर कथानक के द्वारा इसका निरूपण किया है। इनकी शैली देशी है। उनकी यह बात सुनिए—

"सक्कदमं पेळबॉडॅ नॆरॆ
सक्कदमं पेळ्गॆं; शुद्धगन्नडॉळ् तं
दिक्कुवुदें सक्कदंगळ
तक्कुदॆं बॆरसल्कॆं घृतमुमं तैलमुमं"

तात्पर्य यह कि "यदि संस्कृत में ही कहना है शुद्ध संस्कृत का ही प्रयोग करें; शुद्ध कन्नड में संस्कृत को क्यों घुसेड़ना? घी से तेल को क्यों मिलावें?"

नयसेन ने अपने इस उपदेश को केवल दूसरों के लिए न मान अपने लिए भी लागू किया है। अपने काव्य में इस आदर्श का पालन किया है। उन्होंने अपने काव्य में—

"कन्नडियं तोरुवॉड
त्युन्नत सल्लक्षणंगॆं मुनिसागदु म
त्तॊन्नदॆं मूकॉरॆयंगं
कन्नडियं तोरॆ बडिगुमिरिगुं कॉल्गुं"

तात्पर्य यह कि "सुन्दर व्यक्ति को आईना दिखाने पर वह क्रुद्ध नहीं होता; उसे छोड़ कर नककटे को आईना दिखावे तो वह गुस्से में आकर मार-मारकर मार ही डालता है।"

जो है उसे सच-सच बताने पर सज्जन और दुर्जन के मन पर होने वाले परिणाम और उनकी प्रतिक्रिया को इस उपर्युक्त पद में कितनी सरल-रीति से और सुन्दर ढंग से बताया है। कितना सुन्दर गम्भीर हास्य है? कैसी काकु (वक्रोक्ति) है? हँसी हँसी में ही सामना करने वाले के मदमर्दन करने की यह चातुरी कितनी प्रशंसनीय और हृदयहारी है! इस दूसरे उदाहरण दुर्जनों के सहजगुण जहाँ वर्णित हैं, देखें—

"कलितनदिन्दं लोगर।
पुलियं पिडिदॉडमदॆं बिडॆम्बर तामॉ
दिलियं पिडिदॉडमदु पॆं।
बुलियॆम्बर दुर्जनर्गॆं तानिदु सहजं"

अर्थात् "पौरुष के साथ यदि कोई भयंकर बाघ को पकड़ता है तो कहेंगे कि कौन-से बड़े साहस का काम किया? खुद एक साधारण चूहे को पकड़ेंगे तो कहेंगे कि उसने बहुत बड़े बाघ को पकड़ा है।" यह दुर्जन का सहज गुण है।

उनके काव्य में सबसे अधिक आकर्षक बात यह कि उन्होंने बहुत अर्थगर्भित प्रचलित कहावतों को अपने काव्य में खपाया है। कहावतों का आधिक्य पाठकों को आकर्षित करने में काफी समर्थ हुआ है। इनके कारण उनका काव्य भी लोकप्रिय हुआ है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। उनके काव्य में प्रयुक्त कहावतें आज भी सजीव और लोगों की जीभ पर हैं। जैसे—"कुत्ते को मोर जैसा खेल क्यों ?"—"कुत्ते की पूँछ टेढ़ी"—"सपने के धान को लेने के लिए थैला ?" "बिना साक्षी या गवाह के कर्ज कैसे ?"—स्थालीपुलाक न्याय से उद्धृत इन कन्नड की कहावतों का अनुवाद जानकारी के लिए यहाँ प्रस्तुत किया है जो प्रचलित हैं।

नयसेन रन्न और पम्प जैसे महाकवि होने पर भी कन्नड में मार्गी शैली का विरोध करके शुद्ध देशी शैली में अपने चम्पू काव्य को प्रस्तुत करनेवाले क्रान्तिकारी हैं। कहानियों के रूप में धर्मप्रचार करनेवालों में इनका स्थान अग्रगण्य है। साथ ही यह भी कहना चाहिए अन्य मतों की हँसी काव्य द्वारा उड़ानेवालों में भी यही सर्वप्रथम है। बुद्धिपूर्वक हँसी उड़ाने पर भी वह हँसी विवेचना रहित नहीं; और इस काम में उन्होंने सीमोल्लंघन नहीं किया है। काव्य में ऐसी विडम्बना आगे बढ़कर "ब्रह्मशिव" के काव्य ग्रन्थों में खूब पल्लवित हुआ।

यह ब्रह्मशिव बारहवीं सदी में रहा; यह पहले जैन मतावलम्बी फिर बाद को शैव और पुन: शैव से जैन बना था। इससे इन्हें जैनेतर मतों का भी अच्छा परिचय रहा होगा। सौर, कौल, वेद, स्मृति, पुराण—इन सबसे कवि अच्छा परिचित है—ऐसा स्वयं कवि के ही कथन से स्पष्ट होता है। इसी कारण से उन्हें इन सौर, पुराण कौल आदि आदि में रहने वाली कमियों-खामियों की और असंगत बातों की अपने काव्य में हँसी उड़ाना सम्भव हुआ।

ब्रह्मशिव ने "समय परीक्षा" और "त्रैलोक्य चूडामणी" नामक दो ग्रन्थ रचे हैं। यह "समय परीक्षा" मतों की योग्यता को निर्णय करने वाला ग्रन्थ है। कवि ने अपने समसामयिक मतों में रहने वाले दोषों को दिखाकर यह सिद्धान्त स्थिर करने के लिए प्रयत्न किया है कि जैनमत ही सर्वग्राह्य मत है। इससे हमें उस समय के धार्मिक जीवन को समझने में सहायता मिलती है। पन्द्रह अध्यायों में विभक्त इस काव्य में कन्द (कन्नड़ का एक छन्द) वृत्तों के सिवा कहीं नाम मात्र के लिए भी गद्य नहीं।

ब्रह्मशिव की भाषा आसान है और शैली गम्भीर परन्तु कहने की रीति बड़ी चुभने वाली। अन्य मतों के लोप-दोषों को निकालकर निर्दयता, निर्दाक्षिण्य और निडर होकर खण्डन कर कृतकृत्य हुआ है, यह कवि। उदाहरण के लिए यह देखिए, वैष्णव मत पर उनका प्रहार कैसा ?—

> "धरॆगॊडॆयं चक्रेशं
> तिरिवनॆं बलियल्लि बेडि मूरडि नॆलनं
> सिरियॊडॆयं कीळाळा
> गिरलरिवनॆं परिसुतं किरीटिय रथमं ?

भाव यह कि— "समस्त संसार के स्वामी हे विष्णु; वह बलि के पास जाकर तीन फुट जमीन की भीख क्यों माँगे ? साक्षात् लक्ष्मी के पति होकर अर्जुन के रथ को चलाने वाले सारथी क्यों हो ?"

वह विष्णु, कहते हैं कि सारे विश्व को ही अपने पेट में समाया बैठा है। ऐसा हो तो असुर भी वहीं उसी में निवास करते हैं न? हाय! हरि ने उन असुरों को, जो अपनी ही शरण में आए थे, क्यों मार डाला?

अब आगे देखिए, शैवों पर उनका प्रहार कैसा है :—

"अरिविल्लॅम्बुदमक्षसूत्र मर्णियं, कारुण्यमिल्लॅम्बुदं
मिरुगुत्तिपं तिसूळदिं, तनगणं नाण्मुन्नमिल्लॅम्बुदं
मॉरॅगॅट्टचिप लिंगदिं, तपद मातिल्लॅम्बुदं गौरियिं
दरदेनॅन्दु जडर् मृडंगॅरगुवर् त्रैलोक्य चूडामणी?"

अर्थ यह है कि—"उस शिवजी के हाथ में पकड़ी हुई वह जपमाला यह बताती है कि वह अज्ञानी है; उनका वह त्रिशूल स्पष्ट बताता है कि वह निष्करुणी है, लिंगपूजा से साफ है कि वह निर्लज्ज है। आधा देह में अपनी पत्नी गौरी को समाये बैठा है जिससे मालूम होता है कि वह तपस्वी ही नहीं। फिर भी मूर्ख लोग क्या समझकर और क्यों उसकी पूजा करते हैं, मालूम नहीं।"

उपरोक्त पद्य को ब्रह्मशिव की "त्रैलोक्य चूडामणी" नामक जिनस्तोत्र ग्रन्थ से उद्धृत किया गया है। छत्तीस पद्यों में यह जिनस्तोत्र ग्रन्थ समाप्त हुआ है। इन छन्दों में स्तोत्र की अपेक्षा अन्य मतों पर छींटाकशी ही अधिक है। ब्रह्मा से लेकर सभी देवता इनकी हँसी-दिल्लगी के शिकार बने हुए हैं। कवि पूछते हैं कि दुनिया को बनाने वाले ब्रह्मा ने अपने ही सिर को क्यों नहीं बचाया? और कहता है कि मानव के उद्धार के लिए केवल जैनमत ही उपयुक्त है, इसका कारण यह है :—

"पुसिवनें तॉलगा, हिंसॅयॉ
ळॅसगुत्तिपंनें तॉलगु, परवधुविंगा
टिसुववनें तॉलगॅनुत्तु
पसरिसुवुदु जैन धर्म भेरी निनदं"

"अरे झूठे आदमी! दूर हट, अरे हिंसक! हट जा, परस्त्री को चाहने वाले दुष्ट! निकल जा।"—यों जैन धर्म डंका बजा-बजाकर कहता है।"

ब्रह्मशिव की इस अन्यमत सम्बन्धी छींटाकशी के बीच उनकी हास्यपूर्ण बातें बड़ी मोहक हैं। श्रीमान् डी० एल० नरसिंहाचार्य जी का कहना है कि ब्रह्मशिव के द्वारा गालियाँ सुनना भी कभी-कभी अच्छा लगता है।

करीब इसी समय (ई० सन् 1140) के कर्णपार्य ने बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के विषय में "नेमिनाथ पुराण" नामक एक पुराण ग्रन्थ को लिखा है। अन्य जैन पुराणों की तरह यहाँ भी जिनदेव के गर्भावतरण, पंच कल्याण आदि के साथ हरिवंश कुरु-वंशों की कहानी कथित है। यही इसकी विशेषता है। जैन धर्मानुसार महाभारत और श्रीकृष्ण का वृत्तान्त वैदिक ग्रन्थों से भिन्न रूप में इसमें कथित है। कर्णपार्य की इस कृति को पढ़ने से ऐसा लगता है कि उन्होंने पम्प भारत को पढ़कर उसी कथा का अनुसरण किया है। इस काव्य में यत्र तत्र जो वर्णन दृष्टिगोचर होते हैं, उनमें कवि की काव्य-शक्ति या कृतित्व-शक्ति के औन्नत्य को देख सकते हैं। शैली प्रौढ़ है। शब्दा-लंकारों की बहुलता है; अठारह तरह के वर्णन भी (जो काव्य के लक्षण हैं) इसमें हैं। काव्य का प्राण रस है, इसमें उसी का अभाव है। "सहज कविता रसोदय", "भव्य

नयचन मार्तण्ड", "सम्यक्त्व रत्नाकर" आदि उनके बिरुद हैं । इनमें दूसरे तीसरे बिरुद को स्वीकार करने पर भी प्रथम (बिरुद) को स्वीकार करना जरा कठिन है ।

अन्य मत की विडम्बना करने की परिपाटी नयसेन से अंकुरित होकर ब्रह्मशिव से पोषित होकर वृत्तविलास में विकसित हुई । कवि ने बतलाया है कि मैं संस्कृत की "धर्म-परीक्षा" का कन्नड में भाषान्तर प्रस्तुत कर रहा हूँ । यह कवि वृत्तविलास एक अच्छे कथाकार हैं । इनके काव्य का आरम्भ ही एक कथा से होता है । मनोवेग और पवनवेग नामक दो राजकुमार पाटली-पुत्र में पहुँचे । वहां के ब्रह्म मन्दिर में आकर मन्दिर के नगाड़े बजाकर पास के सिंहासन पर बैठे । इस नगाड़े की ध्वनि ने वहाँ के ब्राह्मणों को आकृष्ट किया । वे वहाँ गये और उन राजकुमारों से उन्होंने कहा कि यहाँ का नियम है कि इस नगाड़े को बजाने के बाद यहाँ के ब्राह्मणों से वाक्यार्थ करके जीतने पर सिंहासन पर बैठना चाहिए । वहाँ से उस नियम को बताने के बाद उन ब्राह्मणों ने राज-पुत्रों से पूछा कि तुम लोग कौन कौन-से शास्त्र में पारंगत हो ? राज-कुमारों ने कहा कि हमें कुछ भी मालूम नहीं और सिंहासन से उतरकर नीचे बैठ गये । फिर ब्राह्मणों को कहानियाँ सुनाना शुरू किया तथा इन कहानियों ही के द्वारा उन (ब्राह्मणों) के मत का खण्डन कर जैन मत के झण्डे को फहराया । उन्होंने जो कहानियाँ सुनाईं वे सब धर्म-परीक्षा के सार सर्वस्व हैं । कवि की कथा निरूपण शैली सरल और सुन्दर तथा हास्य तरंगें उठाने वाली है । स्व० श्री डी० एल० नरसिंहाचार्य जी ने बताया है हास्य रस का उगम ही यहाँ से हुआ है—इस बात को समझने पर यहाँ के हास्य का स्वरूप मालूम होता है । वृत्तविलास जैसे अच्छे कथाकार हैं वैसे ही एक उत्तम कवि भी हैं । उनके इस पद्य की सहजता तो देखिए—

"परिहरिसि निद्रॆयुडुगिद
कौरलं निमिर्दॆत्ति नोडि नाल्दॆसॆयं के
सरमं बिदिर्दॆरकॆय
नॆरडं वडिदॆद्दु कोळि कूगिदुदागळ् ।"

अर्थात्—"नींद से जागकर मुर्गे ने अपनी गर्दन उठायी और आगे की ओर गर्दन करके अयाल झाड़कर पंख फड़फड़ाकर बाँग दिया ।"—पद्य जैसे सुन्दर है भाव भी वैसे ही सरल है, यह सहज सरलता ही उनकी विडम्बना को तेज बनाने में सहायक बनी है ।

वृत्तविलास का समय बारहवीं सदी के बीच का है—यह निर्णय कविचरित्र के कर्ता श्री आर० नरसिंहाचार्य जी का है । फिर भी विद्वानों ने श्री आचार्य जी के इस मत को स्वीकार न कर चौदहवीं सदी को माना है । फिर यह वृत्तविलास नयसेन और ब्रह्मशिव के पंथ का अनुयायी होने के कारण यहाँ उनके बारे में कहा है ।

बारहवीं सदी के बीच से ही कन्नड-साहित्य का स्वतन्त्र युग आरम्भ होता है; तो भी पम्प के प्रभाव से प्रभावित और रीति व शैली में कृति रचना पम्प के अनुकरण पर करने का सम्प्रदाय यहीं समाप्त नहीं हुआ । बहुत समय तक यह आगे भी बढ़ता चला आया है; इस बात का हमें स्मरण रखना चाहिए ।

एक बात और । इस स्वतन्त्र युग के आरम्भ होने से पहले ही अनेक शास्त्र ग्रन्थ कन्नड़ से प्रकट हुए थे । "गणित विलास" के बिरुद से विभूषित राजादित्य ने (ई० सन्० 1120) सर्वप्रथम गणितशास्त्र को कन्नड में प्रस्तुत किया । "गोवैद्य"

लिखने वाले कीर्तिवर्मा (ई० सन् 1125), "कल्याण कारक" नामक वैद्यग्रन्थ को प्रस्तुत करने वाले 'विचित्र कवि' जगदळ सोमनाथ (ई० सन् 1150), "काव्यावलोकन", "भाषाभूषण", "वस्तुकोश"—इनके लेखक दूसरे नागवर्मा (ई० सन् 1145), "उदयादित्यालंकार" नाम अलंकारशास्त्र को प्रस्तुत करने वाले उदयादित्य (ई० सन् 1150) आदि कवि उल्लेखनीय हैं। इनमें कई ऐसे कवि थे जिनमें काव्यरचना करने की अच्छी योग्यता भी थी। ऐसी प्रतीति है कि इनमें कुछ ने कई काव्य भी लिखे हैं। ये सभी महानुभाव कन्नड-साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना सम्पूर्ण योगदान देकर अभिनन्दनीय बने हैं।

हरिहरयुग या स्वतन्त्रयुग

समय-समय पर मानव का इतिहास जिस तरह बदलता रहता है वैसे ही साहित्य का भी इतिहास अपनी गतिविधि को बदलकर आगे बढ़ता है; इस तरह का परिवर्तन ही भाषा के जीवित रहने का लक्षण है, भाषा की सजीवता का प्रमाण है। परन्तु यह परिवर्तन अवश्यम्भावी होने पर भी एकदम और अचानक नहीं होता। न तो यह कोई आन्दोलन है और न कोई आकस्मिक घटना। इस परिवर्तन के लिए एक सुदीर्घ और विस्तृत पृष्ठ-भूमि की आवश्यकता होती है। इस विस्तृत कालावधि में परिवर्तन लाने वाली क्रान्ति शक्ति सुप्त या अर्धजागृत अवस्था में रहती है जो समय पाकर फूट निकलती है। इस बारहवीं सदी में कन्नड साहित्य में ऐसी एक क्रान्ति दृष्टिगोचर होती है।

बारहवीं सदी में कर्नाटक की राजनैतिक स्थिति सुव्यवस्थित थी—ऐसा नहीं कहा जा सकता। चालुक्यवंशी राजा उत्तर कर्नाटक में प्रबल थे, मगर इस बारहवीं सदी के उत्तरार्ध में कालचुर्य राजाओं के शिकार होकर निस्तेज हो गये। तेरहवीं सदी के प्रारम्भ होते-होते ये कालचुर्य राजा यादवी राजाओं के शिकार बने और खत्म हो गये। कर्नाटक के दक्षिण भाग में होय्सल राजा प्रबल थे और राज्य विस्तरण में लगे थे। उत्तर और दक्षिण कर्नाटक के राजाओं में युद्ध अनिवार्य था। जब राजनैतिक स्थिति में ऐसी उथल-पुथल हो रही थी तो जन-जीवन में शान्ति कहाँ? धार्मिक स्थिति भी इस तरह की राजनैतिक अवस्था के जैसे कुछ डांवाडोल ही रही होगी। ग्यारहवीं सदी में चोल राजाओं के दबदबे के कारण जैनमत तेजोहीन हो गया था, वह पुनः अपने पहले के प्रभाव को नहीं प्राप्त कर सका। अब उसे (जैनमत को) अपने अस्तित्व को बनाये रखना जरूरी हो गया था। ब्राह्मण मत का बहुत हद तक ह्रास हो गया था। धर्म अपने निजी रूप में न रहकर अन्तःसत्व से शून्य बाहरी आडम्बर, अर्थहीन आचार सारहीन जातीयता आदि को स्थान देकर अपने असली तत्व को खो चुका था। शायद इस मत के अनुयायियों को ही यह अच्छा नहीं लग रहा था। यदि ब्राह्मण मत की यह दशा न हुई होती तो बारहवीं सदी के आरम्भ में रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत के उद्भव की क्या आवश्यकता होती? हरि (विष्णु) को सर्वोपरि मानने वाले ब्राह्मण-पंथ ने इस विशिष्टाद्वैत के विकास का मार्ग प्रशस्त किया तो शिव को सर्वोपरि समझने वाले ब्राह्मण-पंथ ने शक्ति-विशिष्टाद्वैत को प्रोत्साहन दिया। इस विषय में "इदमित्थं" कहकर निर्णय करने की हठवादिता हमें नहीं है। तात्पर्य यह कि ये दोनों—वैष्णव और शैव—पंथ बहुत करके समसामयिक ही होंगे। इन दोनों मतों के स्वरूप में अन्तर होने पर भी दोनों का ध्येय एक ही है। मोक्षप्राप्ति के राजमार्ग पर के काँटे-दार झाड़-झंखाड़ को उखाड़ फेंकने के काम में इन दोनों मतों ने समान रूप से परिश्रम किया और उस मोक्ष मार्ग को प्रशस्त किया। सभी भिन्न-भिन्न मतानुयायियों के लिए इन दो नव-विकसित मतों के झण्डों के नीचे आश्रय मिला। सभी के लिए मुक्ति-मार्ग का बन्द दरवाजा खुल गया। श्रीवैष्णव मत के लिए त्रिपुण्ड्र लांछन बना तो वीर शैव

के लिए लिंग और भस्म लांछन बने। कर्मकाण्ड और वर्णाश्रम का निराकरण विशिष्टाद्वैत स्वीकार करता है, परन्तु इस तरह का उपदेश नहीं देता। शक्ति विशिष्टाद्वैत इसे स्वीकार करता है और निराकरण की घोषणा भी करता है। मानवता के प्रति प्रेम सबमें समानता का भाव, भगवद्‌भक्ति और नैतिक जीवन आदि आदि इन दोनों के लिए समान रूप से मान्य थे।

इस प्रकार धार्मिक क्रान्ति का असर उस समय के साहित्य जगत् पर भी पड़ा। रामानुज तमिलनाड के रहने वाले थे। इसलिए धर्मोपदेश के लिए उन्होंने जिस भाषा को माध्यम के रूप में लिया वह तमिल थी। उनके अनुयायियों के द्वारा जो सेवा हुई वह तामिल को मिली। शैवमत के प्रवर्तन के लिए कमर कसने वाले कर्नाटक का ही व्यक्ति था। इसलिए उनकी सेवा कन्नड भाषा के विकास एवं उसकी श्रवद्धि में लगी जिससे कन्नड की प्रगति में विशेष सहायक सिद्ध हुई। इसका तात्पर्य यह नहीं कि इन दोनों के अनुयायियों की भाषा सेवा अपनी-अपनी भाषा तक ही सीमित रही। तमिल में वीरशैव और कन्नड में वैष्णव धर्मों का साहित्य है। विशालता की दृष्टि से दोनों ने अलग-अलग धर्मों को स्थान दिया है। अब तत्कालीन कन्नड साहित्य पर और उमके स्वरूप पर कुछ विचार करें।

कन्नड साहित्य में स्वर्णयुग की स्थापना करने वाले आदि कवि पम्प थे। उनके द्वारा प्रवर्तित चम्पू काव्य-धारा कुछ सदियों तक प्रवहमान रहकर अनेक छोटे-बड़े कवियों को मार्ग-दर्शन करती रही। साहित्य का वह राजमार्ग धीरे-धीरे संकुचित होती हुई छोटी पगडण्डी-सी बनकर सत्रहवीं सदी के अन्त तक पूर्णतया बन्द हो गया। इस राजमार्ग से निकली पहली टोली के साहित्यकार अपनी प्रतिभासम्पन्नता एवं विद्वत्ता के कारण अपने समसामयिक राजाओं और राजसभाओं के सभासदों के आदर और प्रेम के पात्र बने। उनकी कृतियाँ आमतौर पर संस्कृत काव्यों के आधार पर निर्मित हुईं। उन काव्यों की वस्तु एवं रचना की रीति दोनों ही संस्कृत का ही अनुकरण है। इतना ही नहीं, उन्होंने जिस भाषा को माध्यम बनाया वह संस्कृत-भूयिष्ठ रही। कई बार इन साहित्यकारों ने इसको भूलकर कि वे कन्नड में लिख रहे हैं, संस्कृत में ही पद्य रचना कर कन्नड पद्यों के बीच में सम्मिलित भी किया है। उनका लक्ष्य राजानुग्रह पाना और पण्डितों को सन्तुष्ट करना ही तो रहा। राजानुग्रह और पण्डितों की प्रशंसा पाकर वे कृतियाँ कृतकृत्य हुईं। अभी कुछ समय पूर्व तक अपने यहाँ के साहित्यकारों की योग्यता की जाँच उनके अँग्रेजी ज्ञान के आधार पर ही होती थी न! उनका और उनके पाण्डित्य का आम जनता से सम्पर्क रहा कहाँ? इसी तरह उस समय के कवियों का जनता के साथ किसी तरह का सम्पर्क नहीं रहा।

धर्म के सिद्धांतों के निरूपण के लिए कन्नड भाषा माध्यम बनी, इससे साहित्य की भी अच्छी प्रगति हुई। किसी भी विषय को आम जनता में प्रसारित करना हो तो जनता की भाषा का ही माध्यम होना चाहिए। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर ही बौद्धों ने संस्कृत के द्वारा कथित धर्म तत्त्वों को तत्कालीन लोकभाषा पाली में कहा। हम ने आरम्भ में इस बात की ओर संकेत भी किया है कि शायद इन बौद्धों ने अपने उपदेश कन्नड में भी लिख रखा हो परन्तु उस तरह का साहित्य काल गर्भ में नष्ट हो गया हो। जैन भी बौद्धों ही की तरह अपने धर्म का उपदेश लोकभाषा में ही देने के इरादे

है उस समय में प्रचलित प्राकृत का उपयोग कर उसे धार्मिक पीठ पर प्रतिष्ठित किया। वे जिस प्रदेश में गये वहाँ की प्रादेशिक भाषा में धर्मोपदेश देकर उसी में साहित्य-निर्माण का कार्य भी किया। इसी तरह कन्नड को भी अपनाकर कुछ जैन पुराणों को इस भाषा में लिखकर प्रचलित किया। परन्तु इस साहित्य ने राजाओं की कृपा याचना की और पण्डितों की प्रशंसा चाही। इनके अलावा केवल कृपा पाने ही के उद्देश्य से निर्मित लौकिक साहित्य भी है। इस लौकिक साहित्य में अपने आश्रयदाताओं को इन्द्रचन्द्र देवेन्द्र कहकर उनका गुणगान करना कवियों के लिए जरूरी भी था। यही नहीं, उन्हें अपने काव्य की भाषा को भी राज दरबार के दरबारियों जैसे सज-धज के साथ प्रस्तुत करना अनिवार्य था। इस तरह की भव्य भाषा को प्रस्तुत करने के साथ अपने पाण्डित्य, प्रतिभाओं का भी परिचय व प्रदर्शन भी उनका लक्ष्य बना था। इन कवियों की प्रतिभा और पाण्डित्यों से सजकर उनके आश्रयदाताओं के ही जैसे काव्यदेवी को सिंहासनस्थ होकर रहना पड़ा। आम जनता उसके वैभव को दूर से ही भक्ति के साथ प्रणाम करने की स्थिति में रही; काव्यश्री के उस वैभव के भागी बनकर उसका आस्वादन करने की दशा में सामान्य लोग नहीं थे। कन्नड में साहित्य सृष्टि तो हुई। परन्तु वह आम लोगों की चीज नहीं बन सकी। पण्डिताऊपन के बोझ से लदकर इतना भारी बन गया था कि वह साधारण जनता के गले न उत्तर सकता था। इस साहित्य की भाषा व शैली में परिष्करण आवश्यक था। पहले से इसके लिए प्रयत्न चल रहे थे। कन्नड साहित्य में सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ "कविराज मार्ग" है, इसमें कन्नड भाषा में प्रयुक्त किये जाने वाले संस्कृत शब्दों के परिमाण के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में चर्चा है। "भाषा व शैली में समरसता होनी चाहिए। जिसमें यह सामरस्य न हो वह 'धान का दही में मिलाने' जैसा अथवा 'मोती के साथ धुलकर सफेद किये गये काली मिर्च के दाने पिरोकर बनायी गयी माला की तरह' होता है। यह कविराजमार्ग के लेखक का कहना है। इतना ही नहीं, कवि नयसेन का कथन है कि जहाँ कन्नड का प्रयोग करना चाहिए वहाँ संस्कृत का प्रयोग करने वालों को कवि नहीं माना है। कहते हैं "बॅरॅसल् तक्कुदॆ घृतमुमं तैलमु मं"—याने तेल और घी को एक साथ कहीं कोई मिलाकर दोनों की शुद्धता को कोई बिगाड़ता है?"—नयसेन इस तरह से ऐसी भाषा लिखने वालों को धिक्कारता है। उन्होंने जैसा कहा है वैसे ही भाषा का अपनी कृतियों में व्यवहार किया है। उनके काव्य सुलभ सरल शैली में रचे गये। ब्रह्मशिव और वृत्तविलास ने इन्हीं के आदर्श पर अपने काव्यों का निर्माण प्रांजल कन्नड में ही किया है। फिर भी उन्होंने काव्य के लिए जो छन्द योजना की, उसके अनुसार उनकी कृतियों में संस्कृत की बहुलता दिखती है। उनकी विद्वत्ता एवं प्रतिभा के मूल में संस्कृत की नींव है, इसलिए संस्कृत शब्द प्रयोग सहज ही था।

सम्प्रदाय शरण कन्नड साहित्यकार कन्नड भाषा व साहित्य में अभी मीन-मेख करते हुए सोच ही रहे थे कि इतने में बारहवीं सदी का पदार्पण हुआ। इस सदी के आते एक जबरदस्त क्रान्ति हो ही गयी। इस क्रान्ति की नांदी वीर शैव वचनकारों ने किया। निराभरण सुन्दरी की तरह लगने वाला कन्नड का वचन-साहित्य कन्नड़ भाषा का सिरमौर है। इस ढंग का साहित्य शायद अन्य द्रविड़ भाषाओं में उपलब्ध नहीं। द्रविडेतर अन्य आर्यभाषाओं में भी ऐसा वचन-साहित्य

प्राय: नहीं मिलता। यह कन्नड का अपना विशिष्ट स्वत्व है। भाषा व भाव—दोनों इसी कन्नड की मिट्टी में जन्म लेकर शुद्ध कन्नड के वातावरण में पले-बढ़े हैं, कन्नड-से ओतप्रोत हैं।

वचन वाङमय का उगम धर्म-मूलक है। अब तक लौकिक काव्य निर्माण के लिए जैसे राजाओं के आस्थानों के आश्रय की आवश्यकता थी वैसे ही धार्मिक काव्यों के सर्जन के लिए भी राजाश्रय वांछनीय रहा। इसका मुख्य कारण यही रहा होगा कि इन राजाओं के द्वारा कवियों को प्रोत्साहन मिलता था, मदद भी मिलती थी। राजाओं से प्रोत्साहन पाकर धर्म तलवार का भय या प्रसाद का प्रलोभन दिखाकर मत परिवर्तन के कार्य को साधने में समर्थ बना हुआ था। मतलब यह कि जिस धर्म मत को राजाश्रय मिलता वह (धर्म मत) लोगों को अपने अनुयायी बनाने में समर्थ होता। "युग युगगळ् ऎंदॆंगॆं, ऒंदॆ दिनं गदॆगॆं यानी" लोगों के मन को अपने उपदेशों के द्वारा परिवर्तित करने में युग युगान्तर तक की लम्बी अवधि की आवश्यकता होती है, वही कार्य तलवार के बल से एक दिन में ही सध जाता है।"—इस सिद्धान्त को अनुसरण करने के दिन थे वे। राजा निरंकुश थे; इन निरंकुश राजाओं की सत्ता के उतार-चढ़ाव के साथ धर्म भी चढ़ता-उतरता रहा। बारहवीं सदी तक कर्नाटक की राजनैतिक स्थिति इन राजाओं के पारस्परिक लड़ाई-झगड़ों के कारण से हो या स्वार्थ-प्रेरित ईर्ष्या-द्वेष की वजह से अथवा भोग-विलास की दुर्बलता के कारण से, बिगड़ गयी थी। इस हालत में धर्म इन सबसे छूटकर अपनी स्वतन्त्रता का उद्घोष करने लगा। एक तरफ राजनैतिक उथल-पुथल के कारण, दूसरी ओर धार्मिक अन्ध परम्परा के बाहरी आडम्बरों को ही धर्म बताने वाले सम्प्रदाय शरणों की चंगुल में फँसे रहने के कारण, भगवान् और धर्म के नाम पर जनता का शोषण करने वाले स्वार्थी पण्डों के फन्दे में फँसकर देश की जनता त्रस्त एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी थी। जनता की इस दुरवस्था को देखकर उन्हें सही मार्ग पर चलाने के लिए आवश्यक व्यवस्था पर विचारवान लोग सोचने-विचारने लगे। इन विचारवान व्यक्तियों ने मानवता की समानता एवं स्वतन्त्र्य की नींव पर नये समाज के निर्माण करने के काम में अपने को लगाया। इस तरह नवीन समाज को संगठित करने वाले व्यक्ति ही ये वचनकार हैं। आज जिस समतावाद की कल्पना हम कर रहे हैं, उसकी नींव आज से एक हजार वर्ष पहले डालने का श्रेय इन वचनकारों को मिलना चाहिए।

वचन का अर्थ है बात। हम जो बातचीत करते हैं वह गद्य रूप में रहती है। इसलिए चम्पू काव्यों में यत्र-तत्र दिखने वाले गद्य को भी वचन ही कहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त गद्य रचना "वचन" ही के नाम से पहचानी जाती थी। शिवशरणों के समस्त उपदेश गद्य-रूप में ही होते थे। इसलिए ही शायद इन उपदेशात्मक बातों का नाम "वचन" पड़ा। परन्तु आज इस "वचन" शब्द को एक विशिष्टार्थ में "शिवशरणों के वचन" कहकर प्रयोग करते हैं। "वचन" एक आध्यात्मशास्त्र है। इस शास्त्र के लिए "षट्-स्थल शास्त्र" एक दूसरा भी नाम है। हमारे समस्त आध्यात्म शास्त्र का मूल-स्रोत संस्कृत है। वह गीर्वाण भाषा है। वह देवभाषा ही हमारे समस्त ज्ञान का भण्डार है। उसी सुसंस्कृत भाषा के द्वारा गुरु-शिष्य परम्परा से अनुसृत होकर हमारी संस्कृति की धारा बहती आयी है। परन्तु यह सहूलियत के एक वर्ग के लोगों

तक ही सीमित रही है । आम जनता के लिए यह शश-विषाण की तरह अलभ्य चीज बनी हुई थी । इस भाषा सम्बन्धी समस्या को हल करने का प्रयत्न बौद्ध और जैनों ने किया । उन्होंने धर्मोपदेश के लिए जनता की बोली को काम में लाने का यत्न किया और कुछ हद तक सफल भी हुए । परन्तु वास्तव में इस जनभाषा को धर्मपीठ पर आसीन करने का श्रेय इन वचनकारों को ही मिलना चाहिए । क्योंकि इन लोगों ने अपने इस प्रयत्न में पूर्ण सफलता पायी है ।

भारतवर्ष के समस्त अध्यात्मज्ञान का उद्गम स्थान वेद हैं । इन्हीं वेदों के आधार पर उपनिषदों का विकास हुआ है । तो भी इनमें यज्ञ-याग आदि कर्मकाण्ड से अधिक प्राशस्त्य ज्ञानमार्ग को दिया गया है । इन उपनिषदों से आगे का कदम आगम शास्त्र है । इन आगमों में तत्त्व-प्रतिपादन की अपेक्षा उपासना-क्रम की अधिक प्रधानता है । इन आगमों में दो तरह से आचार हैं—एक दक्षिणाचार, दूसरा वामाचार । इनमें वामाचार अवैदिक और दक्षिणाचार वेद-विहित है । वेद-विहित दक्षिणाचार को स्वीकार करने अट्ठाईस शैवागम ही वीरशैव के आधार हैं । ये आगम परात्पर सच्चिदानन्द स्वरूप शिव से सम्बन्धित ज्ञान का और शिवाद्वैत का उपदेश देते हैं । षट्स्थल सिद्धान्त का भी मूल उत्स यही है । ये वचनकार इसी आगमोक्त शिवाद्वैत का बोध जनता को कराने के लिए यत्नशील हुए । इसीलिए इस "वचन वाङमय" को "कन्नड शैवागम" के नाम से अभिहित कर उसे गौरवान्वित किया है ।

वचनकारों के "वचन वाङमय" के लिए आगम आधार होने पर भी उनके वे 'वचन' इन आगमों का अनुवाद तो नहीं । इस तरह के वाङमय को तेज और ओज "बसवण्णा" से मिला । बसवण्णा से पहले भी यह वचनवाङमय था—यह निर्विवाद है सर्वप्रथम "वचन साहित्य" जो उपलब्ध है वह देवर दासिमय्या का है । उनके वचन साहित्य का अनुशीलन करने से ऐसा लगता है कि उनसे भी पहले ऐसा साहित्य रहा होगा । वीरशैवों में जैनियों के त्रिषष्ठि-शलाका पुरुष जैसे प्रसिद्ध हैं वैसे ही अरुवत्तु मूवरु—(याने तिरसठ शिवभक्त सन्त) पुरातन पुरुष" प्रसिद्ध हैं। ये सब तिरसठ सन्त सच्चरित्र, उज्जव शिवभक्त और अपनी तपस्या की शक्ति से अद्भुत करामात दिखाने वाले महापुरुष हैं । इन तिरसठ महानुभावों की रीति-नीति और अनुभूतियाँ ही इन वचनों के लिए आधार हैं—ऐसा लगता है । इसलिए ये वचन आकाश पुराण की तरह निरर्थक न होकर सजीव आचरण का पवित्र गंगा स्रोत है । इन पुरातनों का नाम सुनने पर ऐसा लगता है कि ये तमिलनाड के निवासी हैं । इनका समय अज्ञात है और अनिर्दिष्ट भी ।

लोक-जागरण इन वचनकारों का ध्येय है । आत्मोद्धार का राजमार्ग सबके लिए खोल देना इनकी इच्छा है । इस विषय को जानने समझने की इच्छा रखने वाले आबालवृद्ध सबकी समझ में आने लायक रीति से कहना इनका उद्देश्य है । कही हुई बात अनुसरण करने योग्य तथा अनुसरण करने के लिए साध्य होना चाहिए । यह उनका प्रयत्न है । ये ही इन महानुभावों की उदार-वृत्ति थी । ये किसी से पुरस्कार पाने या अपने पाण्डित्य प्रदर्शन कर लोगों की शाबासी पाने अथवा कीर्तिकामी होकर इस तरह के कार्यक्षेत्र में नहीं आये । यहाँ तक कि इन महानुभावों में कई ऐसे भी व्यक्ति रहे जिन्होंने अपनी कृतियों में अपने नाम का जिक्र तक नहीं किया है । यह भी पता नहीं

चलता कि इन महानुभावों ने अपनी अनुभूतियों को स्वयं लिख रखा या उनकी उस अमृतवाणी को सुननेवालों श्रोताओं ने इन वचनों के अनमोल मूल्य को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से लिख रखा। इन वचनकारों में पंडित भी हैं अनपढ़ भी। पंडितों ने भी आम जनता की ही भाषा में स्वानुभूतियों को कहा है और ज्ञानोपदेश दिया है। यहाँ पांडित्य का आदर नहीं, इन साधु-सन्तों की स्वानुभूति के लिए सम्मान है। वेद और आगम जिस नित्य सत्य की अमर गंगा बहाते रहे हैं, वह इन साधु-सन्तों के हृत्सरोवर में जमा होकर इन अनुभावियों के हृत्सरोवर से उमड़कर जो स्रोतस्विनी बह निकली वही यह वचन वाङमय है। शुद्ध स्वच्छ कन्नड भाषा के पहनावे में सजकर पंडित-पामर-दोनों को एक साथ एक ही ढंग से सन्तुष्ट कर उनके मन का अपहरण कर सकने की शक्ति से युक्त होकर साधारण से साधारण व्यक्ति को भी आत्मोद्धार के राजमार्ग का पथिक बनने योग्य बनाने के लिए ही यह वाङमय निर्मित है। इसी में इस वाङमय की सार्थकता है।

इन वचनों की वस्तु आध्यात्म, धर्म, और नीति है। इसी कारण से सदियों के बाद भी ये अजर और अमर है। मानव को देवता बनाने के अमूल्य गुण इनमें हैं, यही इनकी अमरता का कारण है। धर्म-प्राण यह वाङमय ही वीरशैव धर्म का आधार है। साधना-मग्न साधक की रसानुभूति के कारण प्रसूत अनुभव के कारण अप्रयास ही उनके मुँह से अर्थपूर्ण वाणी सूत्रवत् होकर निकली। स्वानुभव से उमड़कर निकली हुई यह आत्मा की वाणी ऊर्मि में से उमड़-उमड़कर बहने वाली स्रोतस्विनी की तरह स्वाभाविक है। इस वाणी को समझना कठिन नहीं। कोई अमोघ आध्यात्म तत्त्व दो चार छोटे-छोटे वाक्यों में व्यक्त हुआ है। कई एक बार यह वाणी तुकबद्ध होकर लोकोक्ति के रूप में व्यक्त हुई है। सरल कन्नड में अर्थपूर्ण है यह वाणी। महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को सरल शब्दों में निरूपण करने वाले इन वचनों को "कन्नड का उपनिषद्" कहकर गौरवान्वित करना सार्थक है।

वचनकारों की संख्या अनगिनत है और उनसे लाभान्वित होनेवालों की तादाद उससे भी अधिक है। वीरशैव ने जातिमतों के ऊँच-नीच भाव को हटाकर, स्त्री-पुरुष के भेद-भाव का निवारण कर किसी तरह के भेद-भाव के बिना स्वरूप ज्ञान प्राप्त करने की यदि योग्यता हो तो उसे पाने के लिए आवश्यक सारी सहूलियतें सबके लिए प्रस्तुत कीं। और इस ज्ञान को सब का स्वत्व बनाया। इसी कारण से इन आध्यात्म-साधकों में सभी जातियों, कुलों एवं पंथों के लोग मिलते हैं। स्त्री और शूद्र इस आध्यात्म-साधना के लिए अयोग्य जो माने जाते थे, वह भावना अब हट गयी थी, साधना द्वारा स्त्री और शूद्रों ने उस अध्यात्मक ज्ञान केवल पाया ही नहीं बल्कि इसके उपदेश देने तक की योग्यता उन्होंने पायी। "कायक ही कैलास"—(शारीरिक परिश्रम कायक है, और इसी परिश्रम से कैलास की प्राप्ति होती है।—अर्थात् कर्तव्यदेही का धर्म है, जिससे अध्यात्म चेतना को प्रेरणा मिलती है, इसी चेतना के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर देही मुक्ति पाता है। अतः इस प्रक्रिया का मूल कायक है। धर्माधर्म विवेक-युक्त कर्म अध्यात्म ज्ञान की नींव है, इसीलिए कायक ही कैलास है) कर्म करने के लिए काय आवश्यक है। यह काया ऊँच-नीच भेद के कारण कोई उच्च या कोई नीच नहीं है। काया सबकी बराबर है। लकड़हारा, रस्सी बटने वाला, जूता गाँठनेवाला मोची,

धोबी, मछुआ, कुम्हार, आखेटक, काछी, कुर्मी सब बराबर हैं। कुल या जाति से शील मुख्य है। कथनी नहीं करनी मुख्य है। शुद्धशीलवान् भक्तों के अनुभव-जन्य, अप्रयास-निःसृत, अबाधित, सार्वकालिक सत्य के रूप में व्यक्त वाणी ही यह वचन है इन वचनों में छन्दो-नियम नहीं, प्रौढ़ भाषा भी नहीं, पाण्डित्य का आडम्बर नहीं है। ऐसी वचन रचना के लिए न पाण्डित्य की जरूरत है और न उसके लिए मेहनत ही करनी पड़ती है। ये वचन शीलवान व्यक्तियों की स्वानुभूति और भक्त-साधक के हृत्कमल की सुगन्धि एवं अनुभावियों के हृदय स्पन्दन हैं। इन्हें कहने वाले विद्वान् नहीं थे; अनुभावी थे, साधक थे। इसी सुगमता के कारण कई स्त्रियाँ वचन कर्त्री हुईं। इन वचनों में भी सम्भवतः बहुत कुछ अंश नष्ट हो गया होगा। इस वचन साहित्य में कुछ अंश नष्ट होने लायक भी रह सकता है। बचा हुआ सारा वचन-वाङमय भी पूर्णतया प्रकाश में आया है—यह भी कहा नहीं जा सकता। फिर भी इतना हम मान सकते हैं कि अब तक जो वचन साहित्य प्रकाश में आया है, वही कन्नड भाषा व साहित्य के लिए गर्व करने की चीज है।

प्रश्न उठता है कि वचन वाङमय धर्म ग्रन्थ हैं या केवल शुद्ध साहित्य है? इस प्रश्न का उत्तर केवल यही हो सकता है कि वेद और उपनिषद् धर्म ग्रन्थ है या साहित्य? इस प्रश्न का जो उत्तर होगा वही उत्तर इसके सम्बन्ध में भी लागू होगा। ये वचनकार न साहित्यिक हैं न साहित्य निर्माण करने की महत्त्वाकांक्षा रखने वाले व्यक्ति ही हैं। ये केवल सत्य की उपासना में रत साधक हैं। ये शरणजीवी साधक अपनी अनुभूतियों को शेष समाज के जीवन के मार्गदर्शक हो, इस इरादे से और उदारता से अपनी अनुभूतियों को अपरिग्रह बुद्धि से जनता में बाँटकर सन्तुष्ट होने वाले व्यक्ति हैं। यह वाङमय दो रूपों में उपलब्ध होते हैं—कुछ उपदेशात्मक हैं और कुछ प्रार्थना परक। पहले कहा जा चुका है कि इस वाङमय का सार सर्वस्व आध्यात्म, धर्म और नीति का निरूपण है। भिन्न-भिन्न वचनकारों की अनुभूतियाँ भिन्न-भिन्न होने पर भी सबकी विचार-सरणी एक है। षट्-स्थल शास्त्र निरूपण और सदाचार एवं सद्भक्ति का प्रकटीकरण। इस कारण से यह निर्विवाद है कि यह वचन वाङमय शास्त्र-ग्रन्थ है और वह वचन-शास्त्र है।

यह वचन-शास्त्र साहित्यिक दृष्टि से भी कोई सामान्य चीज नहीं। यह साहित्य सरल, सुगम और स्पष्ट है। थोड़े से और सामान्य शब्दों में बड़ी ऊँची भावनाओं को परखना हो तो इस वचन साहित्य को देखना चाहिए। बातें छोटी हैं पर भाव-गम्भीर आडम्बरहीन इन सरल शब्दों से निकलने वाली ज्ञान की ज्योति अज्ञान के अन्धकार से जनता को मुक्त कर ज्ञान के प्रकाश के विशाल मैदान में ला खड़ा करने के लिए पर्याप्त है। सीधे सरल हृदय से निकली बात हृदयान्तराल में पहुँचकर वहाँ अपनी चिरस्थाई छाप डालने में समर्थ है। कभी-कभी ये वचन ऐसे भी निकलते हैं, जिन्हें अलग-अलग कड़ियों में विभाजित कर सकते हैं; कहीं-कहीं अलंकार भी इनमें दिख जाते हैं। प्रास, ताल, लय भी दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं-कहीं एक श्रेष्ठ कवि की कल्पना चातुरी व भावों की तरंगें भी इनमें पा सकते हैं। यों छन्दोबद्ध होने पर भी ये पद्य नहीं। ये वचन गाये भी जाते थे—इसके लिए प्रमाण मिलते हैं; आज भी वचन गाये जाते हैं, ये वचन गाने के लिए उपयुक्त भी हैं जिन्हें स्वर-ताल के साथ

गाने के लिए शुद्ध रूप में बैठाये जा सकते हैं। यह सब होते हुए भी वे गेय नहीं, पद्य नहीं; यह काव्यमय गद्य है।

यह वचन-शास्त्र गद्य के रूप में रहने के कारण इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह गद्य "गद्यं कविनां निकषं वदन्ति" को सार्थक बनाने में समर्थ हुआ है। सरल व संक्षिप्त होने के साथ अर्थपूर्ण होने के कारण कन्नड भाषा एवं कन्नड जनता का केवल अभिमान-पात्र ही नहीं बल्कि इस गद्य ने कन्नड भाषा-भाषियों के सिर को गर्वोन्नत भी किया है। शरणों की स्वानुभूति का यह अप्रयासजन्य स्फुरण, सरल सुन्दर एवं निराडम्बर भाषा का चोला लेकर मूर्तिमान हुआ है। इससे यह स्पष्ट है कि कन्नड भाषा ऊँचे से ऊँचे भावों को सुगमता से सरल से सरल ढंग से अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है। आज भी अर्थात् इस बीसवीं सदी में कन्नड भाषा की भावाभिव्यक्ति क्षमता पर सन्देह प्रकट करने वाले हमारे भाई इस साहित्य को एक बार देखें, वचनकारों ने स्वानुभूतियों को इस भाषा में अभिव्यक्त करके स्पष्ट रूप से इस बात को प्रमाणित किया है कि कन्नड भावाभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में सक्षम भाषा है। "तन्न तानरिदरॆ तन्नरिवॆ गुरु" अर्थात् "अपने को पहचानने पर इस स्वपरिचय-जन्य ज्ञान ही गुरु है,"—ऐसे सन्देहवादी इस शरण-वचन का पाठ करें।

अब तक उपलब्ध वचन साहित्यकारों में सर्वप्रथम वचनकार देवर दासिमय्या है। यह वचनकार चालुक्य जयसिंह (1015-1042) के समकालीन थे। इनके डेढ़ सौ वचन उपलब्ध हैं। ये वचन प्रसाद गुणयुक्त हैं और सुन्दर हैं। ईश्वर की सर्वव्यापी-सत्ता का उपदेश देने वाले तथा जनता को इस ईश्वर के सर्वान्तर्यामित्व का बोध कराने के लिए उद्यम शील यह वचनकार कहते हैं—

> "इळॆ निम्म दान, बॆळॆ निम्म दान, सुळिदु बीसुव
> वायु निम्म दान, निम्म दानव नुंडु अन्यर हॊगळुव
> कुन्निगळनेनॆम्बॆ रामनाथा ?

कि—"यह भूमि, यह फसल, बहनेवाली यह हवा—यह सब, हे ईश्वर ! तुम्हारा ही दिया हुआ दान है। इस दान का उपभोग कर तुम्हें छोड़ दूसरों की प्रशंसा करनेवाले नालायकों को क्या कहें ? हे रामनाथ !" परमात्मा की खोज में निरत इस महानुभाव को किसी भी तरह के भौतिक सुख भोग की आकांक्षा नहीं। वे कहते हैं—"करियमित्तॊडॊल्लॆ, सिरिय नित्तॊडॊल्लॆ, हिरिदप्प राज्यवनित्तॊडॊल्लॆ, निम्म शरणर सुळुनुडिय ऒन्दरगळिगॆ इत्तडॆ निन्ननित्तॆकाणा रामनाथा।"—याने मुझे हाथी की, ऐश्वर्य की या बहुत बड़े साम्राज्य की चाह नहीं है। किसी भी तरह का ऐश्वर्य या भोग भाग्य मैं नहीं चाहता। हे रामनाथ ! मुझे केवल शिवशरणों के धर्मवाक्य सुनने को मिले तो पर्याप्त है और इससे मुझे इतना सन्तोष होगा कि मानों स्वयं परमेश्वर ही प्रत्यक्ष हो, दरसन दिया हो। भक्तिपथ में आगे बढ़ने वालों के लिए अपने भगवान के प्रति एक-निष्ठ होना अनिवार्य है। यह निष्ठा ही उसका सहारा है। निष्ठावान् भक्त बीच जंगल में भी हो तो वह जंगल ही नगर लगने लगता है। निष्ठारहित भक्त नगर में रहे तो भी वह घोर जंगल-सा लगेगा।—यह इस देवर दासिमय्या का निष्कर्ष है। जो भक्त है उसे दुनिया के द्वारा मिलनेवाले दुःख-दर्द की परवाह नहीं करनी चाहिए। विघ्न-बाधाओं से डरना नहीं चाहिए। भक्त की भक्ति की परीक्षा करने के लिए

स्वयं भगवान् उसे दुख-दरद में फँसाकर बाधाओं में डालता है। इस शरण भक्त की उक्ति कितना सत्य है? कहते हैं—"हर तन्न भक्तर तिरिवन्तें माडुव, ऑरॆंदुनोडुव सुवर्णद चिन्नदन्तें, अरॆंदुनोडुव चन्दनदन्तें, अरॆंदुनोडुव कब्बिन कोलिनन्तें, बॆंदरदें बॆंच्चदें इद्दडॆं करविडिदु ऍत्तिकॊंम्ब नम्म रामनाथनु"—अर्थात्, "अपने भक्तों को भिखारी बनाकर देखता है, सुवर्ण की परीक्षा करने के लिए जैसे कसौटी पर कसते हैं वैसे भगवान् भक्त को भक्ति की कसौटी पर कसकर परखता है, चन्दन की तरह घिसकर परीक्षा करता है। ईख की तरह निचोड़कर भक्त की परीक्षा लेता है। इन सभी की परवाह न कर धीरज के साथ जो अपनी एकाग्र भक्ति में अटल रहता है उसे हमारे भगवान रामनाथ बाँह पकड़कर उद्धार करता है, अपने हाथ का सहारा देकर उसकी (ऐसे भक्त की) रक्षा करता है।"—इस शरण महात्मा के ये वचन भारतीय संस्कृति के दर्शन कराने वाले प्रकाशस्तम्भ जैसे हैं।

देवर दासिमय्या के सम-सामयिक शंकर दासिमय्या थे। वीरशैव पुराणों से विदित होता है कि इन्होंने भी वचन कहे थे। और ये दोनों करामात दिखाने वाले महापुरुष थे। ऐसे दो-चार वचन भी उपलब्ध होते हैं जो शंकर दासिमय्या के कहे जाते हैं। केवल इतने मात्र से इन वचनों के आधार पर उन पर कोई मत प्रकट करना उतना ठीक नहीं जँचता।

अनन्य व प्रसिद्ध वचनकार बसवण्णा के सम-सामयिक और उनसे भी बड़ी उम्र वाले दो व्यक्ति बड़े वचनकार हुए जो उल्लेख योग्य हैं। इन दो में एक सकलेश मादरस है। जैसे नाम से ही स्पष्ट होता है कि वे एक छोटे-से राज्य के राजा थे। ये सांसारिक भोग-विलास की क्षणिकता का अनुभव करके उसे त्याग कर विरागी हुए थे। इनके अट्ठासी वचन उपलब्ध हैं। देवर दासिमय्या के वचन यदि "रामनाथा" के अंकित से अंकित है तो इन के वचन "सकलेश्वरा" के नाम से अंकित हैं। इन के ये वचन देवर दासिमय्या के वचनों से अधिक सूत्रबद्ध और मार्मिक हैं। उदाहरण के लिए उनका यह वचन देखिये संयत व संक्षिप्त होने पर भी इस में अर्थ वैशाल्य कितना है:—"आशॆयिन्द बिट्टु किरियरिल्ल, निराशॆयिन्द बिट्टु हिरियरिल्ल, दयॆयिन्द बिट्टु धर्मविल्ल, विचारदिंद बिट्टु सहायिगळिल्ल, सचराचरक्कॆं सकलेश्वर देवरिन्द बिट्टु दैवविल्ल"—अर्थात् "आशा या लालच से छोटा कुछ नहीं, निराशा से बड़ी और कुछ नहीं। दया से बड़ा धर्म नहीं, विचार से बड़ा कोई सहायक नहीं। इस सचराचर जगत् के लिए सकलेश्वर भगवान् को छोड़ दूसरा कोई सहारा नहीं।"—प्रभावयुक्त ऐसे सारवान् वचन जब पढ़ते हैं तो बसवण्णा के वचनों का स्मरण हो आता है। शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से ये वचन इतना महत्वपूर्ण न होने पर भी शास्त्र की दृष्टि से प्रशंसनीय हैं।

प्रभुदेव :

बसवण्णा के समसामयिक दूसरे बड़े वचनकार प्रभुदेव हैं। इन का बड़प्पन देश तथा काल-इन दोनों से भी अतीत हैं, अर्थात् ये वचन सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक हैं। बॆळ्ळिगावॆ नामक गाँव के निवासी निरहंकार—सुज्ञानि नामक दंपती के सुपुत्र हो कर इन्होंने जन्म लिया और युवावस्था में ही इन्होंने संसार की निस्सारता एवं

अनित्यता का अनुभव कर वैराग्य ग्रहण किया प्रतीत होता है। गंभीर आत्मचिन्तन द्वारा दिव्यज्ञानी बन कर कुछ समय तक देश भ्रमण करते हुए, दुखी जीवों को निर्मल शिवज्ञान का अमृत पिलाते हुए शरणों के कामधेनु स्वरूप हो कर रहे। ये भ्रमण करते हुए बसवण्णा के पास आये। लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान में परिणत आपने कल्याण में रहनेवाले सभी शिवशरणों को संगठित कर उनकी आत्मोन्नति की साधना के लिए उपयुक्त साधन जुटाने के महान् कार्य में अपने को लगा दिया। इन साधकों के मार्ग दर्शन के लिए "अनुभव मंडप" की स्थापना हुई। यहाँ आये दिन शरणों की गोष्ठियाँ जमतीं और शिवतत्त्व विचारों पर चर्चाओं की व्यवस्था भी की जाने लगी। बसवण्णा, संगन बसवण्णा, सकळेश मादरस, महादेवि अक्का आदि आदि महान् अनुभावी शरण अपनी-अपनी अनुभूतियों को विस्तार के साथ बताया करते थे। प्रभुदेव जहाँ ठहरे वह जगह कैलास बन गयी। इस अनुभव मंडप की कीर्ति चारों दिशाओं में व्याप्त होकर सर्वत्र फैलने लगी और कल्याण शरणों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना। जाति, कुल, गोत्र अथवा लिंगभेद आदि के किसी तरह के भेद-भाव के बिना, राजा से लेकर रंक तक, परिवारी से संन्यासी तक अंतरंग और बहिरंग शुद्धि रखनेवाले सभी के लिए इस मंडप में प्रवेश मिला। सभी अनुभावी प्रभुदेव के उपदेशों से मुमुक्षु बने। भक्त सांसारिक झंझटों से मुक्त हुए, उनका उद्धार हुआ। बसवण्णा ने प्रभुदेव के लिए शून्य सिंहासन का निर्माण किया। "शून्य" का अर्थ "खुला मैदान या मुक्ति" है। शून्य सिंहासन के नाम से अभिहित इस "अनुभव मंडप" के अध्यक्ष प्रभुदेव के लिए कोई एक आसन था या नहीं, अथवा निराकार सिद्धि को प्राप्त कर एक साथ साकार-निराकार दोनों तरह से रह कर वे मुक्ति का अधिष्ठाता बने—या यों दोनों तरह से रहे हों— ऐसा भी हो सकता है।

शून्य सिंहासनासीन प्रभुदेव की वाणी देववाणी की तरह प्रामाणिक है, सत्यनिष्ठ है, दाक्षिण्यरहित है। एक बार हजारों शिवभक्त बसवण्णा पर क्रुद्ध हो कर कल्याण से चले जाने की तैयारी में लगे तो प्रभुदेव ने उन से कहा—"अंग जंगुळिगळॆल्ला अशनक्कॆ नॆरॆदरु, लिंगद हवणनिवरॆत्त बल्लरु ? कायजीविगळु कळवळ धारिगलु, देवर सुद्दियनिवरॆत्त बल्लरु ? मद्यपानवनुंडु मदवॆद्द जोगियन्तॆ नुडिवरु गुहेश्वरन निलवनिवरॆत्त बल्लरु ?"—तात्पर्य यह कि देह पोषणरत व्यक्ति केवल खाने में आसक्त हैं, उन्हें शिवलिंग की महिमा कहाँ विदित है ? देहधारी जीव सांसारिक झंझटों में फँसे हैं, उन्हें भगवान् के बारे में क्या जानकारी है ? मद्यपान से मस्त जोगियों की तरह बकनेवाले गुहेश्वर (भगवान्) का परिचय कहाँ जाने ?"—अन्य किसी वचनकार में न दिखानेवाली न्याय-निष्ठुरता प्रभुदेव की है। विचार की दृष्टि से भी इनका स्थान बहुत ऊँचा है। जाति-मत-पंथ आदि भेदों से ऊपर उठे भेदातीत इस ज्ञानी के लिए अपनेपन का अभिमान भी नहीं, परायेपन का पक्षपात नहीं। अन्य संप्रदायों की तरह वीरशैव संप्रदाय को भी कटु आलोचना से परे नहीं रखा, उन्होंने उसकी भी कड़ी टीका की। उनकी दृष्टि बड़ी तीखी, बुद्धि तेज, जिह्वा असि की तरह धारदार है। धर्म के नाम से अनावश्यक नेम-निष्ठा का पालन व अंधश्रद्धा की हँसी उड़ाते हुए वे कहते हैं:—"हालनेमव हिडिदात बॆक्कागि हुट्टुव; कडलॆय नेमव हिडिदात कुदुरॆयागि हुट्टुव; अग्घवणिय नेमव हिडिदात कप्पयागि हुट्टुव, पुष्पद नेमव हिडिदात

कुंबियासि हुट्टुव; इवु षट्स्थलक्कें होरगु; भक्तिनिष्ठॅयिल्लदवर कंडडॅ मॅच्च गुहेश्वर"—अर्थात् "दूध न खाने का नियम रखनेवाला बिल्ली का जन्म पाएगा, चना न खाने का नियम करें तो वह घोड़ा बनेगा, जल, फूल आदि का निषेध रखने पर मेढ़क, भ्रमर आदि-आदि जन्मों का चक्कर काटता रहेगा। ये सब निषेध-नियम धर्म के नाम से जो पालन किये जाते हैं वह सब केवल ढकोसला है; अंधविश्वास है। यह "षट्स्थल" के बाहर की बातें हैं। इन नियम-निषेधों के पालन से कोई भगवद्भक्त या मुक्त नहीं हो सकता। भक्ति के लिए एकाग्र निष्ठा और मुक्ति के लिए षट्स्थल नियमों का जीवन में बरतना—ये आवश्यक हैं। निष्ठायुक्त भक्ति न हो तो गुहेश्वर भगवान् प्रसन्न नहीं होगा।" प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने "शिवलिंग" को ही बड़ा मानकर उसी को महत्त्व दे—यह बात इस अद्वैती प्रभुदेव को पसंद न था। वह कहते हैं—"ऍन-गॉन्दु लिंग, निनगॉन्दु लिंग, मनॅगॉन्दु लिंगवाय्तु, होयितल्ला भक्ति जलवक्कि"—याने मेरे लिए एक, तुम्हारे लिए एक, घर के लिए एक इस तरह पूजनीय शिव (लिंग) में पृथक्-पृथक् व्यवहार करने लगे तो वहाँ भक्ति नहीं रहेगी। अर्थात् वह भगवान् सर्वत्र व्याप्त अखंड है। ऐसे अखंड ईश्वर तत्त्व में इस तरह भेद रखनेवाला भक्त कैसा? और कहते हैं:—"उळि मुट्टिद लिंगव मन मुट्ट बल्लुदे गुहेश्वरा"—हथौड़ा और छेनी के संयोग से कढ़ कर बनाया हुआ पत्थर का यह लिंग मन पर क्या प्रभाव डाल सकेगा? इस से भी आगे बढ़ कर वह कहते हैं:—"पृथ्विगॅ हुट्टिद शिलॅ, कल्लुकुटिकंगॅ हुट्टिद मूरुति, मंत्रक्कॅ लिंगवायितल्ला ! ई मूवरिगॅ हुट्टिद मगन लिंगवॅन्दु कैविडिव अञ्च व्रतगेडिगळ नेनॅम्बॅ गुहेश्वरा !"—अर्थात्—"पृथ्वी से पत्थर जन्मा, संगतराश ने उसे तराश कर शिवलिंग बनाया, यह ऐसा बना पत्थर मंत्र से व ईश्वर बन गया ! इन तीनों के इस बच्चे को परमशिव भगवान् कहकर उसकी पूजा-अर्चना करनेवाले लोगों को क्या कहें। ये व्रतहीन, हे ! गुहेश्वरा ! तुम्हारे अनुग्रह के पात्र कैसे होंगे?"—इस महाज्ञानी प्रभुदेव के ये वचन मत-निष्ठा रखनेवाले लोगों के लिए निगलने लायक कौर बन कैसे सकेंगे? मूर्तिपूजा के विषय में उनकी यह बात कितना कटु सत्य है; कहते हैं—"कल्लु देवरॅन्दु पूजिसुवरु; आगदु काणिरो ! अगडिगरादिरल्ला ! मुंदॅ हुट्टुव कूसिगॅ इन्दु मॉलॅय कॉडुवन्तॅ गुहेश्वरा !"—याने—"पत्थर को भगवान् समझकर पूजते हैं। पत्थर भगवान् नहीं बन सकता, इसे समझे बिना मूर्ख बन गये, कभी साधना द्वारा प्रतीयमान उस परमात्मा को इन प्रस्तर मूर्तियों की पूजा के द्वारा आज देखने के तुम्हारे प्रयत्न—ऐसे लगते हैं कि कभी भविष्य में पैदा होनेवाले बच्चे को आज स्तन्य दे रहे हैं। हे गुहेश्वरा ! ऐसे लोगों को क्या कहे !—मूर्ति या विग्रह को पत्थर समझनेवाले इस महा पुरुष को मूर्ति या मंदिर भाएगा कैसे? वह कहते हैं—"कल्ल मनॅय माडि, कल्ल देवर माडि, आ कल्लु कल्ल मेलॅ कडॅदरॅ देवरॅत्त होदरो ? लिंग प्रतिष्ठॅ माडिदवंगे नायक नरक गुहेश्वरा !"—कि पत्थर का घर बना कर, पत्थर के भगवान् को तराशकर, इस पत्थर को उस पत्थर पर बिठाकर तराशने से वह सच्चा ईश्वर कहाँ रह गया? ऐसे लिंग (भगवान्) की प्रतिष्ठा करने करानेवाले को, हे गुहेश्वरा ! नरक के सिवाय अन्यत्र स्थान कहाँ?"—और आगे बताते हैं:—"देह दॉळगॅ देवालयविद्दु मत्ते बेरॅ देवालयवेकॅ ? एरडक्कॅ हेळलिल्लवय्या ! गुहेश्वरा ! नीनु कल्लादरॅ नानेनप्पॅनु ?"—कि "देह ही जब देवालय है तब दूसरा मंदिर, क्या

आवश्यक है ? दो मंदिर बन गये हैं, इस लिए नहीं कहता; हे गुहेश्वरा ! यदि तुम पत्थर बनो तो मैं क्या होऊँगा।"—चिन्मय भगवान् को मिट्टी से बना कर पूजा करते हैं, इन की क्या दशा होगी ?—इतना स्पष्टवादी हो कर भी वे सब के पूज्य बन कर रहे। उनका व्यक्तित्व, प्रभाव इतने ऊँचे स्तर के हैं कि उस तक पहुँचना सब के लिए साध्य नहीं। यह बात उनके वचनों से ही स्पष्ट है। इतने महान् व्यक्तित्व वाले प्रभाववान् व्यक्ति ही ऐसे वचन कह सकते हैं। कर्म व भक्ति मार्गों से आगे बढ़ कर ज्ञान मार्ग में अग्रसर इस महापुरुष के वचन उनके व्यक्तित्व के योग्य हैं। वे कहते हैं:—"वेदवॅम्बुदु ओदिन मातु; शास्त्रवॅम्बुदु संतॅय सुद्दि; पुराणवॅम्बुदु पुंडर गोष्ठि; तर्कवॅम्बुदु तगर होरटॅ; भक्ति यॅम्बुदु तोरुव लाभ; गुहेश्वरनॅम्बुदु मीरिद घनवु," "इष्टलिंगव तोरि मृष्टान्न हॉडॅववरिगॅ इष्टार्थ सिद्धियदॅल्लियदो ? अदॅल्लियदो लिंग ? अदॅल्लियदो जंगम ? अदॅल्लियदो पादोदक प्रसाद ? अल्लदाटवनाडि ऍल्लरू मुंदुगॅट्टरु, गुहेश्वरा निम्मणे"—कि "वेद पठन का विषय है; शास्त्र बाजार की बात है; पुराण गपोड़ियों के गप्प हैं; तर्क बातों का बतंगड़ है; भक्ति दिखा कर खाना पाने में लाभदायक है, गुहेश्वर इन सब से भारी और इन सब की सीमा से अतीत है; इष्टलिंग को दर्शाकर मिष्टान्न खानेवालों के लिए इष्टार्थ सिद्धि कहाँ से और कैसे होगी ? वह लिंग भी कहाँ का ? जंगम ही कहाँ रहा ? वह चरणामृत व प्रसाद कहाँ का, किसका ? हे सर्वेश्वर भगवान् गुहेश्वर ! तेरी सौगंध है इस तरह के अंट-संट खिलवाड़ करके सभी ने अपने भावी को बिगाड़ा "—यह कितनी कटु आलोचना है। इन शब्दों में कितना बड़ा कठोर सत्य है ? प्रभु जैसे व्यक्तित्ववाले ही ऐसी बातें कहने के अधिकारी हैं।

सम्प्रदाय, मताचार और साकार पूजा की इतनी कटु टीका करने वाले पक्षपात-रहित और सत्यनिष्ठ यह महात्मा अपने ही ढंग का पूजाविधान यों बताते हैं :—"मेरे हृत्कमल में मूर्तरूप धारण किये हुए प्राणेश्वर को मेरी क्षमाशीलता ही अभिषेक जल है; मेरा परम वैराग्य भाव ही पुष्प माला है; मेरी समाधि-सम्पत्ति ही चन्दन और मेरा निरंहकार ही अक्षत है; मेरा सद्विवेक ही वस्त्र और मेरा सत्य ही आभूषण है, मेरा दृढ़ विश्वास ही धूप और मेरा दिव्यज्ञान ही दीप है; मेरा निर्भ्रान्ति भाव ही नैवेद्य, और मेरा निर्विषय (विषय वासना रहित्य) ही तांबूल तथा मेरा मौन ही घण्टा नाद है; मेरी निर्विकल्पावस्था ही प्रदक्षिण (नमस्कार) और मेरी परि-शुद्धता ही नमस्कार है। अपने अंतःकरण से की जाने वाली मेरी सेवा ही उपचार है। इस तरह अपने गुहेश्वर लिंग की प्राणों से पूजा करते करते तल्लीन होकर सारी बाहरी क्रियाओं को पूर्णतया विस्मरण कर दिया है। हे संगन बसवण्णा ! ऐसी ही स्थिति है मेरी।" यों अपनी साधना में सिद्धि पाने वाले इस महापुरुष के सारे वचन एक सिद्ध पुरुष की अधिकार-वाणी है। साधना करने वाले एक साधक की कसक अथवा आर्त-नाद इस वाणी में नहीं दिखते। अपनी साधना में सफलता शीघ्र न मिलने वाले की कुतूहल-पूर्ण व्यथा का लेश मात्र भी इस वाणी में नहीं दिखती। अद्वैत सिद्धि को प्राप्त यह महानुभाव उस ऊँचे स्तर से नीचे उतर नहीं सकता। ऐसा उतरना भी मुश्किल है। उस महानुभाव की श्रेणी का स्तर उन्हीं की वाणी से समझने का प्रयास पाठक करें। वे कहते हैं—"वेनेनॅनॅयॅन्दॅडॅ एन नॅनॅवॅनय्या ! ऍन्न कायवे कैलासवायित्तु; मनवें लिंगवायित्तु

तनुवें संज्ञेयायित्तु, नेनेंबडें देवनुंटें ? नोडुवडें भक्तनुंटें ? गुहेश्वरलिंग लीयवायित्तु । आनु नीनेंम्बुदु तानिल्ल, तानिल्लद बळिक मत्तेनू इल्ल इल्ल इल्लद इल्लवें येल्लिन्द बप्पुदों ? अनुवनरिदु तनुव मरेंदु भाव रहित गुहेश्वरा ।" अर्थात्—"स्मरण करने को कहें तो क्या और किसका स्मरण करें ? मेरी काया ही कैलास बन गयी, मन ही लिंग और शरीर ही पलंग बना, स्मरण करने के लिए देव कहाँ ? भक्ति करने के लिए भी कौन-सा सहारा रहा ? सब कुछ उस गुहेश्वर लिंग में लीन हो एकाकार हो गया। मैं और तुम हो तो वहाँ भगवान् ही कहाँ रहेंगे ? आप न रहे तो और रहा ही क्या ? जो नहीं वह आवें कहाँ से ? आप (भगवान्) के अस्तित्व को पहचान कर शरीर को भूल जावें । भावरहित (शुद्ध चैतन्यमय) हो गुहेश्वर में लीन इस अद्वैत के साधक की वह सिद्धोक्ति कितनी बड़ी अनुभूति का द्योतक है । प्रभुदेव ने साकार-निराकार दोनों से परे परम और चरम तत्त्व का साक्षात् अनुभव किया है । इस अपनी अनुभूति का कितना सुन्दर निरूपण है यह—"आकार निराकार वेंम्बॅरडुस्वरूपगळु; ऑन्दु आह्वान ऑन्दु विसर्जन; ऑन्दु व्याकुळ, ऑन्दु निराकुळ; उभय कुळरहित, गुहेश्वरा, निम्म शरण निश्चिन्तनु,"—भाव यह है कि—"आकार निराकार ये दोनों ही रूपद्योतक हैं; इनमें एक, आकार आह्वान है तो दूसरा, निराकार विसर्जन; एक व्यक्त, दूसरा अव्यक्त; गुहेश्वर तो इस व्यक्ताव्यक्त से परे हैं । इस व्यक्ताव्यक्त से परे गुहेश्वर की शरण में रहने वाला निश्चिन्त है । उसे किसी की चिन्ता नहीं । कहने का तात्पर्य यह कि परमात्मा-साकार निराकार से परे और सर्वान्तर्यामी है और जो उनका (भक्त) है वह निश्चिन्त है ।"

प्रभुदेव के वचनों में ऐसे कुछ विशिष्ट तरह के वचन हैं जो ऊपर से अटपटे लगते हैं, परन्तु ऐसे बहुतांश वचन इतने क्लिष्ट हैं कि बिना अर्थ समझाये इनका भाव समझना कठिन है । इन वचनों की भाषा तन्त्र साहित्य की भाषा की तरह सांकेतिक है । इन वचनों में निहित गूढ़ार्थ को समझने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रभुदेव ने "गुहेश्वर" उपनाम अपने लिए जो प्रयुक्त किया है वह अक्षरशः सार्थक है । उदाहरण के लिए उनके ऐसे एक-दो वचन उद्धृत हैं—"आकाशव कप्पें नुंगिदरें, आगळें हत्तित्तु राहु नोडिरें अपूर्ववतिशय ! अन्धक हाव हिडिद । इदुकारण लोकक्कें अरुहदें नानरिदॅनु गुहेश्वरा ।" —भावार्थ यह कि "ब्रह्म रंध्र में सुप्त रहने वाली शान्ति-बिन्दु अमृत स्वरूप होते ही कुंडलि स्थान का सुप्त भुजंग उस अमृत का पान करने लगा । इस आत्यन्तिक सुख को एक निष्ठ भक्त ने समझा, परन्तु मौनी ही बना रहा, संसार को नहीं बता सका ।" इस उपर्युक्त वचन का भाव समझना अध्यात्म तत्त्व को समझने वाले के लिए भी अनुभवगम्य होना कठिन है । ऐसे वचनों का बहुतांश इसी तरह क्लिष्ट एवं दुर्बोध है । कभी-कभी ये वचन सुन्दर और सरल होने के साथ सुलभ-ग्राह्य भी हैं । उदाहरण—"कॅण्डद गिरिय मेलें ऑन्दु अरगिन कंभ विद्दुद कंडें, अरगिन कंभद मेलॉन्दु हंसें इद्दुद कंडें, कंभ बॅन्दु हंसें हारित्तु," भाव यह कि "अग्नि पर्वत पर एक लाख के स्तंभ को देखा और उस पर एक हंस को बैठा देखा; फिर देखा कि यह लाख का स्तंभ जल गया था और हंस उड़ गया था ।"—तात्पर्य यह कि ज्ञान के शिखर पर यह अशाश्वत देह एक लाक्षा-स्तंभ की तरह है, देह भाव के न रहने पर (पिघल जाने पर) देहान्तर्गत आत्मा उड़ गयी और परमात्मा में लीन हो गयी । यहाँ का अग्नि पर्वत और उस पर का लाक्षा स्तंभ तथा स्तंभ पर का हंस—इनका यथार्थ

चित्र भी बड़ा सुन्दर है । "ऊरद चेळिन, ऐंरद बेनैंयलिल, मूरुलोकवैल्ला नरळिगु, हुट्टदे निडुविन चिट्टलैंय तन्दु मुट्टदे पूसलु माबुदु गुहेश्वरा" माने यह कि "मिथ्या-रूपी बिच्छू के डंक मारने से उससे तीनों लोक संसार के जंजाल में फंसकर दर्द का अनुभव कर रहा है । इस संसार के दुःख-दर्द रूपी वृश्चिकविष के लिए पुनर्जन्म रहित शिवज्ञान-क्रिया रूपी औषध को देहगण के स्पर्श के बिना लेप किये जाने पर इस विष का परिहार होता है ।" ऐसे वचन सुलभ ग्राह्य न होने के कारण इनसे काव्य रसास्वादन दुःसाध्य है ।

उनके वचन संक्षिप्त और अर्थपूर्ण हैं । कुछ वचन तो प्रभुदेव के उस अद्वितीय ज्ञान एवं अतुलित प्रतिभा के परिचायक होने के साथ-साथ उसके अनन्य साधारण अनुभूति को दर्शाने वाले प्रकाश स्तंभ जैसे हैं । उन महानुभाव की ये बातें कितने प्रभाव शाली और ज्ञान भरी हैं; साधारण शब्द, छोटे वाक्य, परन्तु इन बातों में एक मात्रा भी निरर्थक नहीं । अर्थपूर्ण और गम्भीर अनुभव । निम्न वाक्य कुछ उदाहरण हैं— "तन्नतानरितरॅ नुडियॅल्ल परतत्त्व", "वेदवॅम्बुदु ओदिन मातुः शास्त्रवॅम्बुदु संतॅय सुद्दि; पुराण वॅम्बुदु पुंडर गोष्ठि; तर्कवॅम्बुदु तगर होरटॅ; भक्तियॅम्बुदु तोरि उम्ब लाभ;" "निनगॅ नीगुरुवल्लदॅ निन्निन्दधिकवप्प गुरुवुंटॅ ?", "देहदॉळगॅ देवालयविर्दु मत्तॅ बेरॅ देवालयवेकॅ ?" "सासुवॅयष्टु सुखक्कॅ सागरदष्टु दुःखनोडा," "मन सोंकिद सुखव मॉट्टॅय कट्ट बहुदे ?" "मातॅम्बुदु ज्योतिर्लिंग"; "स्वरवॅम्बुदु परतत्त्व"···इन उपर्युक्त वाक्यों का क्रमशः भावार्थ यों है :

"अपने आपको पहचानने पर मुँह से निकली सभी बातें परतत्त्व हैं ।" "वेद पठन-विषय है, शास्त्र हाट की बात है, पुराण गपोड़ियों की गप्पें हैं, तर्क बातूनियों के बतंगड़ हैं; भक्ति, दिखाकर खानेवालों के लिए लाभ का मार्ग है"; "अपने लिए अपने आपसे बड़ा कोई गुरु है ?" "देह ही जब देवालय है तो दूसरा देवालय क्यों ?" "राई के बराबर सुख पाने के लिए समुद्र जितना बड़ा दुःख सहना कौन-सी बुद्धिमानी है ?" "मानसिक सुख को बटोरकर गठरी में बाँध सकते हैं ?" "वाणी ज्योतिर्लिंग है, स्वर ही परतत्त्व है ।"

प्रभुदेव शून्य सिंहासनासीन होकर अपने प्रभुसम्मित वचनों द्वारा शरणों को सही मार्ग पर चला कर सदसद्विवेक बुद्धि, शिव भक्ति एवं मोक्ष मार्ग का उपदेश देते हुए उन-उनकी योग्यता के अनुसार निरवयव स्थिति का निरूपण करते हुए गुहेश्वर नामक लिंग की निज समाधि में समाधिस्थ हो, उसी में परवश होकर उसी शून्य में समाधिस्थ हो गये । इस तरह समाधिस्थ होने के पूर्व एक ऐसी घटना हुई जिसने प्रभुदेव के व्यक्तित्व को और अधिक चमका दिया । वह घटना यह है—एक बार ऐसा संयोग हुआ कि उत्तरी भारत के मत्स्येन्द्रनाथ नामक हठयोगी के शिष्य "गोरक्ष" (गोरखनाथ) से मुलाकात हुई । इस गोरक्षनाथ ने पट्टदकल्लु नामक प्रदेश के राजा नरवर्मा के यहाँ गोपालन करता हुआ अपनी साधना द्वारा अपने शरीर को वज्र-सा कठोर बनाया था । इसकी परीक्षा करने के निमित्त प्रभुदेव ने तलवार से उनके (गोरक्ष) शरीर पर प्रहार किया । तलवार का प्रहार लगते ही उसके टकराने की आवाज के साथ-साथ चिनगारियाँ निकलीं बस, और उनका एक भी बाल बाँका न हुआ । इसे देखकर प्रभुदेव को आश्चर्य नहीं हुआ । उनकी इस साधना की प्रशंसा भी प्रभुदेव ने नहीं की ।

बल्कि उन्होंने उस गोरक्षनाथ की हंसी उड़ाते हुए कहा—"नाल्वेरिन कुटिलकुहकद योगवल्लदु निल्लिरो ! काय समाधिकरण समाधि योगवल्लदु निल्लिरो ! निज समाधि गुहेश्वर" याने—"अरे ठहरो ! यह जड़ी-बूटियों के द्वारा साधित कुहक योग नहीं, काय समाधिकरण समाधि है, यह योग नहीं। सच्ची समाधि, गुहेश्वर में लीन होना है।" और वही तलवार गोरक्ष के हाथ में देकर कहा—"इस तलवार से तुम मुझे मारो।" गोरक्ष ने तलवार लेकर प्रभुदेव को मारा। तो तलवार का वह प्रहार वायु को काटता रह गया। तब वह हठयोगी गोरखनाथ प्रभुदेव का शरणागत हो गया। प्रभुदेव ने उसे उपदेश दिया—उस उपदेश का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा—गोरक्ष ने समझा और वह अनुभव करने लगा—"रसवादंगळ कलितल्लि लोहसिद्धियल्लदें रस सिद्धियागुवुदिल्ल, नाना कल्पयोग अदृश्य करणंगळ कलितल्लि कायसिद्धियल्लदें आत्मसिद्धियावुदुटें ? नाना वाग्वादगळिन्द होरि मातिन मालॅयायित्तल्लदें आत्मरहितवादुदिल्ल-नीनानॅन्दल्लि नीनु नानादॅयल्लदें नानु नीनादुदिल्लं। गोरक्ष पालक महाप्रभु सिद्ध सोमनाथ लिंगवादें यल्लदें लींयवागि आलिंगवे आदुदिल्ल"—भावार्थ यह है कि केवल रस (पारा) सिद्धि से लौह सिद्ध हो सकते हैं वास्तविक परमात्म सिद्धि-नहीं होगी। अनेक कल्प और योग विधियों का अभ्यास करने पर शरीर लोहे की तरह कड़ा बन सकता है, काय सिद्धि हो सकती है। इस से आत्मसिद्धि कहीं हो सकेगी ? कई प्रकार के तर्क-वितर्क से केवल शब्दों की माला हो सकती है, आत्मा-परमात्मा में एकाकार हो—ऐसी आत्मरहितता प्राप्त नहीं होती। 'मैं—तुम' के झंझट में 'तुम मैं' हुए—इसके अलावा और कुछ नहीं, मगर मैं 'तुम' नहीं बना, (तुम और मैं के भेद के कारण अद्वैत की सिद्धि नहीं हो सकती, ("मैं और तुम" मिटकर एक दूसरे में लीन हो और भेद मिटे तब अद्वैत है।) तुम, हे गोरक्ष ! सिद्ध सोमनाथ लिंग ही बने रहे, उस महाप्रभु सोम-नाथ में लीन हो एकाकार न हो सके। (मैं-तुम का भेद अभेद बना नहीं, 'मैं' मैं रह गया और "तुम" तुम रह गये। ऐसी स्थिति में अद्वैत कहाँ ?)—इस अनुभूति के होने पर साधना द्वारा गोरक्ष ने अद्वैत सिद्धि प्राप्त की। इस अद्वैत-सिद्धि की महत्ता के सामने अपने हठ योग की अल्पता का उसे अनुभव हुआ। प्रभु के वचन कड़ुवा लगने पर भी उदर के लिए रुचिकर ही नहीं, उनके वचनों में जाति-कुल-गोत्र आदि से अतीत, काल देश की सीमा से परे नित्य सत्य की परंज्योति प्रत्यक्ष है। ऐसे महामहिम हैं प्रभुदेव।

बसवण्णा

बागेवाडी नामक एक अग्रहार। (अग्रहार के माने हैं अध्ययनसम्पन्न, निष्ठा-वान्, स्वधर्मनिरत सद्ब्राह्मणों के अध्ययन-अध्यापन एवं अपने धर्म-कर्म पालन की सहूलियतों के साथ निश्चित भाव से रहने के लिए राजा-महाराजाओं के द्वारा ब्राह्मणों के लिए बसायी हुई बस्ती) इस अग्रहार में मादिराज और मादांबिका नामक शैव ब्राह्मण दम्पति रह रहे थे। भगवद्भक्त इस दम्पति के पवित्र गर्भ से जन्मा वह कारुणिक महापुरुष "बसवण्णा" है। बचपन में ही माता-पिता का वियोग हुआ। शिव-भक्ति न परदादी की गोद में पलकर सोलह वर्ष की अवस्था तक पहुँचा। स्वभाव से विचारवान् व देवभक्त इस किशोर बसवण्णा के मन में ब्राह्मण मत के कई

मार्ग पर एक तरह की विरक्त-भावना उत्पन्न हुई। इस अवस्था तक सम्भवतः उपनयन (जनेऊ) संस्कार भी हुआ होगा, कर्मलता की तरह लगने वाले इस यज्ञोपवीत को उन्होंने निकाल फेंका और मलप्रहरी-कृष्णवेणी नदियों के संगम पर कप्पडी नामक गाँव में आये। वहाँ उस संगम-स्थान पर संगमेश्वर का मन्दिर था। ईशान्य नामक शिवभक्त वहाँ के अधिपति थे। तेजस्वी बसवण्णा को उन्होंने देखा और उनकी तेजस्विता के प्रति आकृष्ट भी हुए। बसवण्णा उनकी कृपा का पात्र भी बना। बसवण्णा उन शिव-भक्त ईशान्य के शिष्य बनकर भगवद् भक्ति की साधना में तल्लीन हुए। इस तरह कुछ समय व्यतीत होने के बाद एक दिन स्वयं शिवजी ने स्वप्न में दर्शन देकर आज्ञा दी कि मंगळवाड नामक स्थान में जावें। बार-बार इसी तरह का अनुभव बसवण्णा को होने लगा। भावुक बसवण्णा शिवाजी की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके मंगळ-वाडा पहुँचे। वहाँ के राजा के खजांची सिद्दनंजेश ने इन्हें आश्रय दिया। यह खजांची बहुत बड़े दूरदर्शी थे, मगर निःसन्तान थे; इसलिए उन्होंने अपने ही पुत्र की तरह उनको अपने पास रखा। होनहार बसवण्णा की बुद्धिमत्ता की खबर राजा बिज्जळ के कान में पड़ी तो राजा ने अपने आस्थान (दरबार) में उन्हें सम्मान किया। कुछ समय पश्चात् सिद्दंडेश स्वर्गवासी हुए तो बसवण्णा ही उनके जायदाद का उत्तरा-धिकारी बने। गंगादेवी और मायादेवी नामक दो सुन्दरियों ने उनसे विवाह किया और इस तरह उनके लौकिक जीवन की इच्छाएँ पूर्ण हुईं। आगे चलकर बसवण्णा बिज्जळ राजा के मन्त्री भी बने। मानव जितनी सुख-सहूलियतों की आकांक्षा कर सकता है, वे सभी उन्हें प्राप्त थे; अधिकार, ऐश्वर्य, कीर्ति, सौन्दर्य, यौवन, सुन्दरी स्त्रियाँ—आदि सब उनके पास मौजूद थे। परन्तु बसवण्णा का स्वभाव इस सुखलोलुपता के भोगने का न था। पानी में रहकर भी कमल जैसे ऊर्ध्वमुख रहता है वैसे ही स्वभाव का था बसवण्णा। राजा के भण्डार के अधिकारी जब तक बने तब तक वे भक्ति भण्डारी भी बन चुके थे। अपने सारे जीवन को उन्होंने लोक-कल्याण के कार्यों में ही लगा देने का व्रत रखा। इस निष्ठावान् साधक ने अपना तन-मन-धन सब कुछ जंगमाराधन में विनियोग किया। उनकी कीर्ति दसों दिशाओं में फैली। शिव शरण भी टोली बाँधकर एक के बाद एक मंडळवाडा आने लगे। बसवण्णा ने इन शरणों का संगठन किया, इनके लौकिक व पारलौकिक जीवन की अच्छी व्यवस्था करने की ओर विशेष ध्यान दिया। जंगमों के लिए नित्य दासोह (भोजन-व्यवस्था) के साथ-साथ शरणों की विचार गोष्ठी की भी समुचित व्यवस्था करने की दृष्टि से शून्य सिंहासन की स्थापना कर सजीव परमेश्वर की तरह रहने वाले प्रभुदेव को उस सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप वीरशैव-मत का उद्धार हुआ। मानव समाज के हजारों दोषों का निवारण हुआ और श्रेयोमार्ग पर अग्रसर होने के लिए एक मार्ग प्रशस्त हुआ। इस तरह मानव समाज का उद्धार कर बसवण्णा ने अपने जन्म को सार्थक बनाया, वे अमर हो गये।

धर्मनिरत त्यागजीवी को अवतार-पुरुष मानकर उनके प्रति आदर दिखाना स्वाभाविक बात है। इस कारण से बसवण्णा को अवतारी पुरुष कहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कैलाश में वृषभ मुख नामक एक गणनायक ने शिवजी के प्रसाद-पुष्प का वितरण शिवजी के सभी आस्थानिकों में बाँटा और षण्मुख (कार्तिकेय) को

प्रसाद-पुष्प देना भूल गया। इस भूल पर जब आक्षेप किया गया तब इस वृषभ-मुख ने षण्मुख को प्रसाद न देने के इस आक्षेप को स्वीकार नहीं किया। इस गणनायक वृषभ मुख के द्वारा षण्मुख को प्रसाद-पुष्प न दिये जाने का अपराध स्वयं शिवजी ने प्रत्यक्ष देखा था। उसकी इस भूल पर शिवजी क्रुद्ध हुए और कहा कि तुम भूलोक में पैदा होकर सभी भक्तों को प्रसाद बाँटकर आओ, यह बात कहकर भेज दिया। वही गण-नायक वृषभमुख बसवण्णा के रूप में अवतरित हुआ—यों बसवण्णा के अवतारी पुरुष होने के सम्बन्ध में बिस्तार के साथ एक ऊहाचित्र निर्मित हुआ। इतना ही नहीं, लोगों का विश्वास है कि वह एक अद्भुत कार्य करने वाले करामाती व्यक्ति थे—ऐसी दैवी शक्ति उनमें थी। लोगों का यह विश्वास एक प्रकार से उनकी धर्म-निष्ठा का सहारा है। इसलिए ऐसे विश्वास का स्वागत करना भी ठीक ही लगता है। परन्तु विचारवान् व्यक्ति ऐसी करामातों से सन्तुष्ट नहीं हो सकेंगे। विचारवान् व्यक्ति उनके जीवन के मानवीय मूल्यों की खोज करेंगे ही। ऐसे व्यक्तियों के लिए भगवान् मानव रूप में उतरा है—ऐसा नहीं लगता। उनके लिए एक साधारण मानव अलौकिक महत्कार्य करने के कारण देवत्व को प्राप्त किया हुआ-सा प्रतीत होगा। बसवण्णा ऐसे विचार-वानों की खराद पर भी सोलहों आने खरे निकलेंगे। उनके वचन ही इस महान् पुरुष के आन्तरिक प्रकाश को दर्शाने के लिए पर्याप्त हैं। इन वचनों से उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट चित्र उपस्थित हो जाता है। साधना के मार्ग में अग्रसर होते हुए पग-पग किस तरह आगे बढ़कर वे सिद्ध पुरुष हुए—इस बात का भी स्पष्टीकरण इन वचनों से हो जाता है।

साधक के आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष का मार्मिक चित्र बसवण्णा के वचनों से स्पष्ट हो जाता है। ईश्वर के प्रति अपार श्रद्धायुक्त इस भक्त की आर्ततापूर्ण प्रार्थना है—"अय्या अय्या ऍन्दु करॅयुत्तलिद्देनॅं, अय्या अय्या ऍन्दु ऑरलुत्तलिद्देनॅं, ओ ऍन्नलागदॅं अय्या ? आवागळू निम्म करॅवुत्तलिद्देनॅं, मौनवे कूडल संगमदेव ?"—भाव यह—"हे ! जगत्पिता परमेश्वर ! मैं तुम्हें बराबर पुकारता ही रहा हूँ। क्या मेरी पुकार तुम सुन नहीं रहे हो ? हे कूडल संगमदेव ! ऐसा मौन धारण क्यों ? क्या इस अनाथ भक्त का यह आर्तक्रन्दन तुम्हारे कानों तक पहुँचता भी है ? भगवन्, कृपा करो।" उनका यह आर्त क्रन्दन केवल दिखावा नहीं। और कहते हैं—"अकटकटा, शिव निन-गिनितु करुणविल्ल, अकटकटा शिव, निनगिनितु कृपॅयिल्ल, ऐकॅ सृष्टिसिदॅ इहलोक दुःखिय, परलोक दूरन ? ऐकॅ हुट्टिसिदॅ ? कूडल संगमदेव केळय्या, ऍन-गागि मत्तॊन्दु तरु मरादिगळिद्दिल्लवॅं ?"—तात्पर्य यह कि—"हे कूडल संगम देव ! तुम्हें मुझ पर थोड़ी-सी भी दया अनुकम्पा नहीं ? हाय हाय ! हे परमेश्वर, इस लोक में मुझसे दुःखी को क्यों जन्म दिया ? मुझ से पापी को जो परलोक से दूर है, क्यों पैदा किया ? हे ! कूडल संगमदेव ! सुनो; क्या मेरे जैसे को पुनर्जन्म देते समय क्या कोई पेड़-पौधा नहीं दिखा जो मुझे पेड़ पौधा न बना कर मनुष्य बनाया ?" मतलब यह कि परमात्मा के साक्षात्कार के लिए तड़पने वाले इस भक्त की यह तड़पन कितना हृदय विद्रावक है। और आगे उनकी यह मोक्षाकांक्षा बहुत तीव्र होकर इस भक्त की वेदना इन वचनों में प्रकट हुई है—"ऍन्दो संसारदंदुग हिंगुवुदु ? ऍन्दो मनदल्लि परिणामवहुदॅनगॅ ?

ऐन्दो ऐन्दों कूडल संगमदेवा इन्नेंन्दो ? परम सन्तोषदल्लिहुदिन्नेंन्दो !"—माने यह कि—"हे कूडल संगमदेव ! इस संसार के दुःख से मुक्ति कब मिलेगी ? मेरे मन पर तुम्हारी कृपा का परिणाम (असर) कब होगा ? इतने आर्त होकर गुहारते-गुहारते सारी उम्र बीत गयी, फिर भी तुम्हारी करुणा की भिक्षा न मिली । हे प्रभो ! कब उस पर परमानन्द सुख की प्राप्ति होगी ? कब तुम्हारी कृपा होगी ?"—इन वचनों द्वारा उपस्थित होने वाले भावचित्र केवल किताबी बातें नहीं अथवा कोई ऊहा चित्र नहीं । ये वचन स्वानुभूति के घरिये में पिघल कर खरा बना सुवर्ण जैसे हैं । गम्भीर चिन्तन और मनन के परिणाम हैं । इसीलिए बसवण्णा के वचन हृदयंगम होने के साथ-साथ हृदय पर असर करने वाले हैं ।

ईश्वर के साक्षात्कार के लिए चित्त की एकाग्रता का होना आवश्यक है । परन्तु मानव का मन बन्दर की तरह चंचल है । बसवण्णा को इस बात का अनुभव हुआ है । वे कहते हैं—कॉम्बॅय मेलण मर्कटनंतें लंघिसुवुदॅन्न मनवु-निन्दल्लि निल्ललीयदॅन्न मनवु हॉन्दिदल्लि हॉन्दलीयदॅन्न मनवु"—भाव यह कि एक डाल से दूसरी डाल पर कूदने-फाँदने वाले बन्दर की तरह मेरा मन भी कूदता-फाँदता रहता है । वह एक जगह स्थाई नहीं रहता । जहाँ लगा रखा वहाँ टिकता नहीं ।"—इस तरह वश में रखने के प्रयत्न करने पर भी चंचल होने वाले अपने मनकी स्थिति को देख दुखी होते हैं—यह साधक भक्त शिरोमणि बसवण्णा । इस मनरूपी मर्कट को क्या करें । माया-मोह भी मन पर अपना प्रभाव डालकर उस मन को सुरापान किये बन्दर की नाई बनाता है । इस तरह की मानसिक अवस्था के कारण मायाग्रस्त बसवण्णा अत्यन्त दुःखी होकर रोता है—यह दुःखोद्गार सुनिये—"जनितक्कें तायागि हॅत्तळु मायॅ, मोहक्कें मगळागि हुट्टिदळु मायॅ, कूटक्कें स्त्रीयागि कूडिदळु मायॅ, इदावाव परियल्लु काडिहित्तु मायॅ, ई मायॅय कळॅवरॅ यॅन्नळवल्ल", "ई हाळुमायॅ-नानॉन्द नॅनॅदरॅ तानॉन्द नॅनॅवुदु; नानित्तलॅळॅदरॅ तानत्तलेळॅवुदु"—तात्पर्य यह कि—"यह माया जन कर माँ बनी; बेटी बनकर मोहग्रस्त बनाया, पत्नी बन कर साथ ही जुड़ गई यह माया; इस तरह यह माया सब तरह से सता रही है; और यह माया ऐसी छलिया है कि मैं एक सोचता हूँ तो वह कुछ दूसरा ही सोचती है, मैं इधर खींचूँ तो वह उधर खींचती है ।"—यों सता-सता कर यह माया मन को शान्त रहने नहीं देती । इस तरह विचार करने वाले यह भक्त यों अनुभव करता है "ऍन्न चित्तवु अत्तिय हण्णु नोडय्या, विचारिसि नोडिदॉडेनु हुरुळिल्लवय्या" कि "मेरा चित्त गूलर के फल जैसा है, विचार कर समझने पर उसमें कुछ भी नहीं है ।" —ऐसा समझकर मन पर काबू रखने के लिए उस पर लगाम लगाने की कोशिश करता है तो अनुभव करता है—"अंदणवनेरिद सोणगनंतें, कंडडॅ बिडदु मुन्निन स्वभाववनु, सुडु सुडु, मनविदु विषयक्कें हरिवुदु"—कि "पालकी पर चढ़ाये हुए कुत्ते की तरह इस मन की स्थिति है, यह मन विषय वासना की ही ओर दौड़ता रहता है, लगाओ आग इसे; देखने पर लगता ऐसा है कि यह (मन) अपने स्वभाव को नहीं छोड़ने वाला है ।"—इस स्थिति को पहचान कर यह भक्त साधक बसवण्णा किंकर्तव्यविमूढ़ होकर कहते हैं—"विषयवॅम्ब हसुरनॅम्न मुंदॆ तंदु पसरिसिदॅयय्या; पशुवेन बल्लुदु, हसुरॅन्दॆळॅसुवुदु"—कि "विषय रूपी हरी हरी घास सामने फैला दिया तो पशु क्या जानता है,

उसे घास चरना सहज है ।" मतलब यह कि वासना हरी घास है तो यह मानव मन पशु-समान है । यह पशु सहज ही हरी घास की ओर दौड़ता है । इसलिए भगवान् से प्रार्थना करते हैं—"अत्तलित्त होगदंतें हॆळवन माडय्या तंदें । सुत्ति सुळिदु नोडदंतें अंधकन माडय्या तंदें । मत्तॊन्द केळदंतें किवुडन माडय्या तंदें । निम्म शरणर पादवल्लदें अन्य विषयक्कॆळसदंतें इरिसु कूडल संगमदेवा"—कि "हे जगत्पिता कूडल संगमदेव ! मुझे ऐसा लंगड़ा बनाओ कि मैं इधर-उधर न भटकूं; यहाँ-वहाँ भटक कर न देख सकूं-ऐसा अन्धा बनाओ, हे पिता, मुझे ऐसा बहरा बनाओ कि तेरे चरणभक्त शरणों की बातों के बिना अन्य कोई बात न सुनाई पड़े ।"—यों यह भक्ति भण्डारी भगवान् से हाथ पसार कर कृपा-भिक्षा माँगते हैं । उन्हें इस बात का विश्वास होने के पूर्व कि विषय-भोगों की ओर दौड़ने वाले मन को जीतना ईश्वर की कृपा के बिना सम्भव नहीं । अपने मानसिक दौर्बल्य को छिपाये बिना प्रकट करना उनकी महत्ता का परिचायक है, उनके इस महान् गुण के लिए प्रत्यक्ष साक्षी है ।

कर्म मार्ग का त्याग कर भक्ति मार्ग को अपनाने वाले बसवण्णा को शीघ्र ही इस बात का अनुभव हो गया कि यह मार्ग (भक्तिमार्ग) बहुत ही कठिन मार्ग है । अहंकार, ममत्व आदि जीव से लगी बीमारियाँ हैं ; इनसे मुक्त हुए बिना भक्तिमार्ग में निश्चल होना संभव नहीं । केवल यह कहने मात्र से कि मैंने सर्वसंग परित्याग किया है—होता क्या है ? कहते हैं—"नॆच्चिदॆनॆन्दरॆं, मॆच्चिदॆं नॆन्दरॆं, सलॆं मारुवोदॆनॆन्दरॆं, तनुवनल्लाडिसिनोडुवें नीनु ! मनवनल्लाडिसि नोडुवें नीनु ! धनवनल्लाडिसि नोडुवें नीनु ! इवॆल्लकंजदिद्दरॆं भक्त कंपित नम्म कूडल संगमदेव"—कि "हे भगवन् ! यदि तुम ने कहा कि मैं तुम से प्रसन्न हूँ और तुम्हारी भक्ति पर मैं द्रवित हो गया हूँ, तो तुम काया को हिला-डुला कर देखोगे कि कहीं कुछ (वासना-भोग-विलास आदि) रह गया है क्या ? मन को हिला-डुलाकर परखोगे कि वहाँ (मन में ममता-मोह-अहंकार आदि) मैल तो नहीं है ? धन की लालच दिखा कर भी तुम परीक्षा लोगे कि (यह भक्ति) स्थिरता-निश्चलतापूर्ण भक्ति है कि नहीं । इन सब से निडर हो जाने पर, हे देव; तुम भक्त से डरोगे ।"—तात्पर्य यह कि भगवान् भक्त की तरह-तरह से परीक्षा करता है । भगवान् अपने भक्त को उनकी भक्ति-परीक्षा कर उसमें उत्तीर्ण होने पर उसका मूल्य आँकता है । इसीलिए यह भक्तिमार्ग असिधारा की तरह तेज धारा है जिस पर चलना असाध्य है । यह भक्तिमार्ग—"गरगस दंतें होगुत्त कोय्वुदु, बरुत्त कोय्वुदु । घट सर्पनल्लि कै दुडुकिदरॆं हिडियलुमाबुदॆं ?"—ऐसा है कि जैसा आरा होता है—"आरा जाते आते चीरता ही रहता है । यह छेड़ने पर घटसर्प जैसा होता है वैसा है, कहीं छेड़े हुए सर्प को पकड़ा जा सकता है ?" मतलब यह कि भक्तिमार्ग तलवार की धारा की तरह धारदार, आरे की तरह दुसह, छेड़े हुए घटसर्प की तरह उग्र और असाध्य है । इसलिए भक्त को सब तरह की चिंताओं से दूर होकर एकाग्र निष्ठा के साथ अपने भगवान् में लीन होना चाहिए । ऐसी तल्लीनावस्था में स्थित यह भक्त बसवण्णा कहते हैं—"परचिन्तॆं ऎंमगॆं ऎकय्या ? नम्म चिंतॆं नमगॆं सालदॆं ? कूडल संगय्य ऒलिदानो ऒलियनो ऎंम्ब चिंतॆं हासलुंटु हॊदियलुंटु"—कि "हमें दूसरों की चिन्ता क्यों ? हमारी ही चिंता हमारे लिए पर्याप्त है । भगवान् कूडल संगमदेव हम पर सन्तुष्ट हो कर अनुग्रह करेगा कि नहीं, यही चिंता बिछाने-ओढ़ने आदि सब के लिए पर्याप्त से अधिक

मात्रा में है।"—इस तरह निश्चिन्त होने पर बसवण्णा का मन स्थिर हुआ। इस तरह यह भक्त सांसारिक माया-मोह से निर्लिप्त हो अपने आराध्य देव के प्रति एकनिष्ठ हो सका। भक्तिमार्ग में कदम बढ़ाते हुए, और कदम-कदम पर उपस्थित होनेवाली विघ्न बाधाओं का निवारण करते हुए, सांसारिक आकर्षणों की ओर भागनेवाले मन की चंचलवृत्ति पर काबू रखकर मनोवाक् काय कर्म से अपने आराध्य देव का एकनिष्ठ भक्त बन सके। ऐसी एकाग्रतापूर्ण निष्ठायुक्त मनोदशा की स्थिति में यह भक्त भण्डारी कहने लगा—"वचनदल्लि नामामृत तुंबि, नयनदल्लि निम्म मूरुतितुंबि, मनदल्लि निम्मनॅनहु तुंबि, किवियल्लि निम्म कीरुति तुंबि, कूडल संगमदेव, निम्मचरण कमलदॉळगानु तुंबि"—कि "वचन में नामामृत को भरकर, आँखों में तेरे रूप को भरकर, मन में तेरे ही स्मरण को भरकर, कानों में तेरी कीर्ति को भरकर, हे परम पिता कूडल संगमदेव ! मैं तेरे चरण कमल का भ्रमर बना हूँ।" अर्थात् "अब मैं मन वाक् कार्य, कर्म, सब तरह से तुझ में तल्लीन हो गया हूँ।" कच्चा मन अब लगातार परिश्रम करने पर पूर्णतया पक्व हुआ था। "कर्त्ता, भर्त्ता, दाता, परिगृहीता, सब कुछ भगवान ही है"—ऐसे ज्ञान से इस भक्त का मन द्योतित हुआ तो उनकी भक्ति का भण्डार भरकर छलक पड़ा। इस तरह भगवद्भक्ति में ओतप्रोत यह भक्त भण्डारी बसवण्णा नित्यानन्दमग्न परमज्योतिस्वरूप प्रभुदेव के उपदेशामृत से आत्मज्ञान भरित हो स्वयं ज्योतिस्वरूप बना। यों नित्यानन्दमय होकर अपने उपदेशामृत से असंख्य शरणों को अमृत-पुत्र बनाने में समर्थ हुए। जिस मुक्तिमार्ग का उन्होंने अनुसरण किया और उस अनुसरण से प्राप्त स्वानुभव को अपने वचनों द्वारा अभिव्यक्त कर लोक कल्याण को साधा।

बसवण्णा अपने से पहले के वचनकारों के वचनों के बारे में कहते हैं :—"हाल तॉरॅगॅ बॅल्लद कॅसरु, सक्करॅय मळलु, तवराजद नॉरॅ तॅरॅ"—कि इन पूर्व वचनकारों के वचन "दूध की नदी के समान हैं और गुड ही इस नदी में कीचड़ है, इस नदी के तीर पर शक्कर ही रेत है, भगवान की स्तुति ही फेन और लहरें हैं।" अर्थात् वे वचन अमृत है और वे माधुर्य में गुड के समान हैं तथा अपने चारों ओर अपनी माधुरी के कारण शक्कर के समान सब के लिए मधुर बने हैं। इस के सेवन से होने वाला आनन्द लहरों के समान है। बसवण्णा की, अपने पूर्ववर्ती वचनकारों के वचनों के प्रति ये बातें, उनकी विनयशीलता का ही परिचय नहीं देतीं बल्कि उन के प्रति (वचनकारों के प्रति) हार्दिक आदर का भी परिचय देती है। निरहंकार होकर उन प्राचीन वचनकारों के आगे अपनी लघुता का भी परिचय कराती हैं। उनकी यह विनम्रता इस भक्त भण्डारी बसवण्णा के लिए बड़ी शोभादायक हैं। वे कहते हैं— "कळबेड, कॉलबेड, हुसिय नुडियलु बेड, मुनिय बेड, अन्यरिगॅ असह्य पडबेड, तन्न बण्णिसलु बेड, इदिर हळियलु बेड, इदे अन्तरंग शुद्धि, इदे बहिरंग शुद्धि, इदे नम्म कूडल संगमननॉलिसुव परि"—कि "चोरी मत करो, मारो मत, झूठ मत बोलो, क्रोध मत करो, दूसरों के प्रति घृणा मत दिखाओ, अपनी प्रशंसा आप मत करो, सामनेवाले की निन्दा मत करो, यही अन्तरंग शुद्धि और बहिरंग शुद्धि है, यही भगवान् कूडल संगमदेव को सन्तुष्ट करने की हमारी रीति है।"—इन वचनों की भाषा कितना सहज, सरल व सुन्दर है। इतना ही नहीं उनकी इस वाणी को सुनते समय उपनिषदों के ये वाक्य—

"सत्यंवद, धर्मंचर, मातृदेवोभव, पितृदेवोभव आदि-आदि सहज ही याद आते हैं। ये वाक्य जितने सरल हैं, संक्षिप्त होने पर भी उतने ही प्रभावशाली हैं। बसवण्णा की ये बातें सदाचार की स्मृतियाँ हैं। इन से समाज सदाचार युक्त होता है। बसवण्णा का सदुपदेश यह है कि सदाचार ही मुक्ति प्राप्ति के लिए सोपान (सीढ़ी) है। बौद्ध मत भी इसी नीति का उपदेश देता है। परन्तु दैवभाव रहित बौद्ध मत का यही उपदेश बसवण्णा के वचनों की तरह परिणामकारी नहीं हैं। बसवण्णा कहते हैं—मर्त्यलोक वेंम्बुदु कर्तारन कम्मटवय्या। इल्लि सलुवरु अल्लियू सलुवरय्या। इल्लि सल्लदवरु अल्लियू सल्लरय्या, कूडल संगमदेवा" —कि यह मर्त्यलोक सृष्टिकर्ता का टकसाल है। यहाँ जो चल सकता है, वह वहाँ (अर्थात् परलोक में) भी चलेगा। यहाँ न चल सके, (खोटा बने) तो वहाँ भी नही चल सकेगा।" कहने का का मतलब यह कि समाज-जीवी व्यक्ति अपने अड़ोस—पड़ोस के लोगों का उपकारी बने रहकर सभी के मुंह से अच्छा कहलाएगा तो वे व्यक्ति भगवान् के लिए भी प्यारे बन सकेंगे। इह-पर दोनों की साधना हो उसके लिए आसान उपाय है, दयावान् बन कर रहना। यही श्रेष्ठतम धर्म है। बसवण्णा कहते हैं—"दयविल्लद धर्मवावुदय्या ? दयवे बेकु सर्व प्रणिगळेल्लरल्लि। दयवे धर्मद मूलवय्या"—कि "निर्दय धर्म धर्म नहीं। सब पर दया दिखानी चाहिए। दया ही धर्म का मूल है।" स्वर्ग, नरक, देवलोक, मर्त्यलोक आदि सब बसवण्णा के मत से ये हैं, : "सत्य बोलना स्वर्गलोक है, मिथ्या (झूठ) बोलना ही नरक है, सदाचार ही स्वर्ग और अनाचार ही नरक है। इसी बात को और सरल ढंग से कहते हैं —"अय्या ऍन्दडॆ स्वर्ग, ऍलवो ऍन्दडॆ नरक। देवा भक्त जय जीय ऍम्ब नुडियॊळगॆ कैलासविर्दे"—कि "सब के साथ आदर युक्त व्यवाहर करो तो वही स्वर्ग है, निरादर करो तो नरक। हे देव ! तेरे भक्तों की जय हो, तू ही जगत्पालक और भक्तो हृदारक है। तेरे भक्तों की "जय करने पर वही कैलास है।"

बसवण्णा के उपदेश देने का ढंग भी देखिये कितना ललित और साहित्यिक है। कहते हैं—"नॆरॆ कॆन्नॆगॆ, तॆरॆ गल्लकॆ, शरीर गूडुवोगदमुन्न ; हल्लु होगि बॆन्नुबागि, अन्यरिगॆ हंगागदमुन्न मुप्पिन्दॊप्पवाळियद मुन्न, मृत्यु मुट्टदमुन्न पूजिसु कूडल संगमदेवन"—कि "गाल पर के बाल के पकने और ठुड्डी पर झुर्रियाँ पड़ने से तथा शरीर के ठठरी बनने के पहले ; दांत के झड़ने, कमर झुकने तथा पराधीन बनने एवं बुढ़ापे के कारण शरीर विकृत होने व मृत्यु के आने से पहले कूडल संगमदेव की पूजा करो।" —और बताते हैं कि यह है संसार, यह संसार क्षणभंगुर है। इस संसार के बारे में कहते हैं :— "ससारवॆम्बुदु गाळिय सोडरु सिरियॆम्बुदॊन्दु सन्तॆय मन्दि कंडॆय्या"—कि "यह संसार हवा में रखा दीपक जैसा है, इस संसार का ऐश्वर्य हाट में जमे लोगों की तरह है।" -और कहते हैं कि लौकिक अधिकार और गौरव भी अस्थिर हैं; इसलिए —'हंजर बल्लितॆन्दु अंजदॆ ओदुव गिळिये एन्दॆन्दू अळियॆनॆन्दु गुडिगट्टिदॆयल्ला निन्न मनदल्लि ! माया मंजर कॊलुवरॆ निन्न हंजर कावुदॆ ?"—पिंजरा मजबूत है समझकर, अरे पढ़ने वाला तोता ! ऐसा तू मान बैठा है कि यह पिंजरा कभी न टूटेगा, यह जानकर तूने अपने मनमन्दिर में कभी न टूटनेवाली भावना को बिठा लिया है। माया की सता फैल कर जब प्राण ले लेगी तब इस पंजर की रक्षा कौन कर सकेगा ?"—और कहते हैं इस तत्थको समझो।—जिसका मन नहीं उसे शिवदीक्षा देना व्यर्थ है। जैसे

—कुंबळकायिगें कब्बुनद कट्ट कोट्टरें कोळेंवुदल्लदें बलुहाग बल्लुदें ? अर्थात् "कुम्हड़े को लोहे से कसने पर सड़ेगा, बढ़ेगा नहीं" वैसे ही "सगणिय बेंनकगें संपिगेंयरळल्लि पूजिसिदरें रंजनेंयल्लदें अदर गंजळ बिडदण्णा", "मण्ण पुत्थळिय माणदें जलदल्लि तोळेंदरें निन्वक्कें निच्च कॅसरहुदल्लदें अदरच्चिग बिडदण्णा"—"जैसे गोबर के गणेश को चंपा के फूल से पूजने पर गोमूत्र के गंध से मुक्त हो सकेगा ?" "मिट्टी की पुतली कोलेकर जल से धोने पर पुतली गल कर कीचड़ ही बनेगी, यह बात सत्य है।"—मूर्ख को शिव दीक्षा देने से कोई प्रयोजन नहीं। उदाहरण देते हैं :—"ओडॅत्त बल्लुदबल-लिकय सविय ? कोडग बल्लुदे सेंळें मन्चद सुखव ?"—अर्थात् चिवुड़े का स्वाद तवा क्या जाने, सेज के सुख को बन्दर क्या जाने ?—(बन्दर क्या जाने अदरख का स्वाद) इसी तरह शिवदीक्षा देने पर उसके महत्व को न समझे तो ऐसे को दीक्षा देकर भी क्या प्रयोजन है ?

समाज में रहने वाली गन्दगी को हटाकर एक स्वस्थ तथा अच्छा समाज, मानवता की नींव पर संगठित करने के कठिन कार्य में संलग्न बसवण्णा को अपने इस मानव कल्याणकारी कार्य में कई प्रकार की रुकावटों, तथा विरोधी प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ा होगा; निन्दा-द्वेष आदि का भी शिकार होना पड़ा होगा; फिर भी धीरज के साथ इन सबका सामना करते हुए न्यायनिष्ठ होकर अपने समाज सुधार के काम में डटे रहे। किसी तरह की धमकी या अड़चन की उन्होंने परवाह नहीं की। क्यों न हो, जो व्यक्ति कठोर सत्यवादी है, न्यायी है, वह किसी से क्यों दबे ? वे कहते हैं—"आरु मुनिदु ऍम्मनेन माडुवरु ? ऊरु मुनिदु नम्मनॅन्तु माडुवरु ? नम्म कुन्निगॅं कूस कॉडबेड ! नम्म मॉणगगें तणिगॅयल्लिक्कबेड ! आनॅय मेलें होहन श्वान कच्च बल्लुदें ?"—कि "कोई गुस्सा करेगा तो हमारा क्या बिगाड़ेगा ? नगर का नगर भी हम पर गुस्सा करके हमें क्या कर सकेगा ? हमारे बच्चे को कोई अपनी न दे, हमारे बच्चों को कोई थाल में न परोसे ; हाथी पर सवार होकर जाने वाले को कुत्ता काट सकता है ?"—भाव यह कि सत्य-निष्ठ होकर न्यायमार्ग में धर्म का सहारा लेकर चलने वाले का कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा। बसवण्णा की इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है उनका स्वभाव कैसा था। और कहते हैं—"देवनॉब्ब नाम हलवु, परम पतिव्रतॅगें गंडनॉब्ब। मत्तॉन्दक्कॅरगिदडॅ किवि मूगकोय्वनु। हलवु देवर एंज्जल तिम्बरेनॅम्बॅनय्या"—तात्पर्य यह कि "भगवान् एक और नाम अनेक; पतिव्रता स्त्री के लिए पति एक, दूसरे के सामने सर झुकाने पर वह नाक-कान काट डालेगा। कई देवी-देवताओं के जूठन खाने वालों को क्या कहें।" उनकी ये बातें कठोर होती हुई भी कितनी उदार एवं भावपूर्ण हैं। कोई चाहे किसी भी नाम से भगवान् को पुकारे सब भगवान् ही के नाम हैं। उदार चरित व्यक्ति के लिए इस में झगड़ा क्या और कहाँ है। परन्तु गिरगिट की तरह रंग बदलने वालों को क्या कहे ? कैसे सहे ? इसलिए कहते हैं—"भक्तर कंडरें बोळप्पिरय्या; सवणर कंडरें बत्तलॅयथिरय्या; हारुवर कंडरें हरिनाम वॅम्बिरय्या; अवरवर कंडरें अवरवरंतें सूळॅगें हुट्टिदवर तोरदिरय्या"—कि "भक्तों को देखने पर उनके नंगे सिर को, श्रवणों को देखने पर उनके नंगे शरीर को आलिंगन करके प्रमाण करते हो; ब्राह्मण को देखने पर उनको खुश करने हरि का नाम लेते हो; जब जिसे देखोगे तब उसके अनुरूप व्यवहार करते हो—यह कुछ ऐसा

है कि जैसे वेश्या अपने पास आने वाले ग्राहकों के अनुसार अपना व्यवहार बदलती रहती है।"—जो एकनिष्ठ नहीं है उनके प्रति बसवण्णा के ऐसे विचार हैं। समय के अनुसार रंग बदलने वालों को वे दुतकारते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें इस तरह का वैपरीत्य भी सह्य नहीं जैसे—"गंड शिवलिंगदेवर भक्त, हॆण्डति मारि मसणिय भक्तॆ; गंड कॊम्बुदु पादोदक प्रसाद, हॆण्डति कॊम्बुदु, सरॆ-मांस"—कि "पति शिवभक्त तो पत्नी डाकिनी-शाकिनी आदि क्षुद्र शक्तियों की भक्ति करने वाली; पति पादोदक और प्रसाद लेता है तो पत्नी मद्य मांस को प्रसाद के रूप में स्वीकार करती है।"—इस तरह का वैपरीत्य एकनिष्ठ बसवण्णा को सह्य होगा कैसे ?

अपने चारों ओर के समाज में भरे अज्ञान को देखकर उन्हें समाज पर दया-पूर्ण क्रोध है। उन्हें लोगों के अज्ञान पर अनुकम्पा है, दुनिया भर के कूड़ा-करकट सबको भगवान् मान पूजने वाले समाज पर गुस्सा भी है;—वे कहते हैं—"मडिकॆ दैव, मॊर दैव, बीदिय कल्लु दैव, हणिगॆ दैव, बिल्ल नारि दैव काणिरो ! कॊळग दैव, गिण्णिलु दैव, काणिरो ! दैव दैववॆन्दु कालिडलिम्बिल्ल !'—कि "मटका, सूप, रास्ते में पड़ा पत्थर, कंघा, धनुष की डोरी, मापने का सेर या कान की बलियाँ, लोटा, न जाने और क्या-क्या ? दुनियाँ-भर की सब तरह की अंटसंट चीजें—सब कुछ भगवान् है—पूजनीय है।" और इन देवी-देवताओं के स्वरूप-स्वभाव आदि भी बड़ा विचित्र—कहते हैं—"हाळु मॊरडिगळल्लि, ऊर दारिगळल्लि, कॆरॆभावि हूगिडु मरंगळल्लि, ग्राम मध्यंगळल्लि, चौपथ पट्टण प्रवेशदल्लि, हिरियालयद मरदल्लि मनॆयमाडि; करॆवॆम्मॆय, हसुगूसु बसुरि बाणति कुमारी कॊडगूसॆम्बवर हिडिदुंब, तिरिदुंब, मारय्य, बीरय्य, खेचर गाविल, अन्तर बॆन्तर, काळय्य, मारय्य, माळय्य, केतय्य मळॆम्ब नूरु मडिकॆगॆ नम्म कूडल संगमदेव शरणॆम्बुदॊन्दॆ दडि सालॆद ?"—कि "उजले टीलों पर, गाँवों के रास्ताओं में, तालाब, कुआँ, फूलों के पौधे-पेड़ों आदि में, गाँवों के बीच चौराहों पर, नगर प्रवेश द्वार पर, बड़े मन्दिर के अन्दर रहने वाले किसी बड़े पेड़ पर (ये देव) बस कर दूध देने वाली भैंस, मासूम बच्चा, गर्भिणी स्त्री, प्रसूता स्त्री, कन्या, विवाह योग्य वधू आदि को पकड़ कर खाने वाले या ऐसों की माँग पेशकर खाने वाले—मारय्या, बीरय्या, गँवारू भूत-प्रेत, पिशाच, काळय्या, माळय्या, केतय्या (ये सब अज्ञानी समाज द्वारा पूजे जाने वाले देवी-देवता) आदि सैकड़ों अर्थहीन देवी-देवताओं की पूजा के बदले एक कूडल संगमदेव की शरण तारने के लिए पर्याप्त नहीं है ?"—ठीक ही तो है, ऐसे ऊटपटांट देवी-देवताओं पर के इस अन्ध-विश्वास को हटाकर इन अर्थहीन अनागरिक भावनाओं को निर्मूल करना हो तो अज्ञानांधकार में पड़े समाज को ज्ञान के प्रकाश में ला खड़ा करना आवश्यक होता है। इसके लिए समाज को सबसे पहले उसकी गलतियों को दिखाकर उसके अनाचार की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिए। तब जाकर सच्चे ईश्वर के स्वरूप का बोध होता है। इसी को लक्ष्य कर बसवण्णा ने जो वचन कहे वे उनके अपने समय के आचार-विचार, अन्ध-विश्वास एवं अनाचार व अज्ञान आदि पर बहुत अच्छा प्रकाश डालते हैं। सुनिये—"अरगु तिन्दरॆ करगुव दैवव उरिय कंडरॆ मुरुटुव दैवव, ऎन्तु सरियॆम्बॆनय्या ? अवसर बन्दरॆ मारुव दैववनॆन्तु सरियॆ-म्बॆनय्या ? अंजिकॆयादरॆ हूळुव दैववनॆन्तु सरियॆम्बॆनय्या ?" कहते हैं कि—"लाख खाने से पिघलने वाले, आग से मुरझाने वाले को भगवान् कैसे माना जा सकता है ?

डरने वाले को और डराकर गढ़े में गिरा देने वाले को देव कैसे माने ? मौका मिलने पर दबाने वाले-मारने वाले को भगवान् कैसे कहे ?"—अर्थात् अन्ध-विश्वास के कारण इन अर्थहीन देवी-देवताओं की मनौतियाँ मानने वाले धर्म के नाम पर अनाचार करने वाले अज्ञानियों को सच्चे ईश्वर का स्वरूप समझाते हैं। तत्त्व (आदर्श) और कृति (व्यवहार) में बरते जाने वाले अन्तर को देखकर बसवण्णा कहते हैं—"कल्ल नागर कंडरें हालनॆरॆयॆम्बरु, दिटद नागर कंडरें कॊल्लॆम्बरय्या, डंब जंगम बन्दरॆं नडॆं यॆम्बरु; उण्णद लिंगक्कॆं बोनव हिडि ऎंम्बरय्या"—कि "नाग सर्प खुदे पत्थर को दूध से अभिषेक करते हैं, सचमुच के साँप को देखने पर उसे मारने को कहते हैं; खाने वाले जंगम (शैव-भिक्षु) के आने पर हटाते हैं, न खाने वाले शिव लिंग से कहते हैं कि खाना लो व खाओ।" अर्थात् लोग कहते एक करते एक; तत्त्व बतलाते हैं और उसके अनुसार व्यवहार नहीं करते। यह कैसा ढकोसला है ! अनागरिक अज्ञानी गँवारों की बात छोड़िये, वेद-शास्त्रों में निष्णात ब्राह्मणों से यज्ञ-याग आदि के नाम से जो पशु वध होता रहा उसे देखकर बसवण्णा का हृदय आलोड़ित हुआ है। यज्ञ-पशु बनकर जाने वाले बकरे को देखकर जो बातें कहते हैं, वे कितने हृदय-विदारक हैं—सुनिये "मातिन मातिगॆं निन्न कोन्दहरॆन्दु ऎलॆ होता अळु कंडा ! वेदव नोदिदवर मुंदॆं अळु कंडा ! शास्त्रवनोदिदवर मुंदॆं अळु कंडा ! नीनत्तुदकॆं तक्कुद माडुव कूडल संगम देवा।"—कहते हैं कि "बात की बात में तुझे इन लोगों ने मारा, हे बकरा ! अब तुम अपनी जान के लिए रोओ। रोओ, उनके सामने जिन्होंने वेद पाठ किया है; रोओ उनके आगे जिन्होंने शास्त्र पढ़ा है। तुम्हारा रोना व्यर्थ न जाएगा, कूडल संगमदेव इस रोने का समुचित प्रतिफल देगा।"

सर्वसमता की भावना का उद्घोष करने वाले बसवण्णा की दृष्टि में जात-पाँत के ऊँचनीच भाव कोई माने नहीं रखता। वह कहते हैं—"जात-पाँत की खोज मत करो।" क्योंकि बड़े-बड़े प्रसिद्ध ख्याति महर्षियों के जात-पाँत की खोज करेंगे तो आश्चर्य से चकित होना पड़ेगा। "व्यास महर्षि शिकार खेलनेवाले व्याध-पुत्र, मार्कण्डेय मातंगी-पुत्र, मंडोदरि मेंढ़क की पुत्री-आदि-आदि अगस्त्य और कश्यप आदि भी वैसे ही निम्न जातियों की सन्तान है।" धोबी, लोहार, ब्राह्मण आदि भिन्न-भिन्न कुलोत्पन्न लोगों में कोई फरक नहीं। सब हर्ष-विषाद और आशा-प्रलोभन आदि-आदि गुणों की दृष्टि से बराबर हैं। "लोहे को गरम कर उससे उपकरण बनाने वाला लोहार बना, कपड़े धोकर कोई धोबी बना, ताना-बाना तैयार कर कोई बुनकर बना, वेद पाठ कर कोई ब्राह्मण हुआ।" एक-एक का एक-एक कर्म है, जीविकोपार्जन का तरीका है। इस कर्म में कोई कर्म उच्च या कोई नीच नहीं। सब कर्म बराबर हैं। कौन कर्म (कायक जो जीविकोपार्जन के लिए किया जाय वह) ऊँचा ? कौन नीच ? जन्म से कोई ऊँचा कोई नीचा नहीं होता। बरताव से, व्यवहार से कोई ऊँचा या नीचा होता है। वह कहते हैं—"कॊलुववनॆं मादिग, हॊलसु तिम्बुववनॆं हॊलॆय कुलवेनॊ ?" अर्थात्—'मार डालने वाला अछूत, मांस आदि और जूठन वगैरह खाने वाला अछूत-कुल किसे कहते हैं ?"—तात्पर्य यह कि अपेय पान, अभक्ष्य भक्षण आदि करने वाला नीच अधम होता है। जो यह सब नहीं करता हो और जो भगवान् का भक्त हो वही सत्कुल-जात योग्य है। व्यवहार को देख कर उत्तम-मध्यम-अधम का विवेचन होता है; किसी के

ान्म को मानकर विवेचन नहीं किया जा सकता, क्योंकि जन्म सबका एक-सा होता है, ाब बराबर हैं जन्म से। यही बात कर्म के बारे में भी है। चमार-मोची-लोहार-कुम्हार ान्म से नहीं कर्म से हैं। मानव-मानव में कोई अन्तर या भेद नहीं। चाहे कर्म कोई ी हो किसी रीति का हो, कर्म कर्म है। उसमें मूलतः कोई भेद नहीं। केवल कर्म के ही ाल से मानवता में अलगाव या भिन्नता कैसी? धर्मदीक्षा लेकर कोई भी धर्मसंगत र्म करता हो तो उनके कर्म में कोई ऊँच या नीच नहीं, सब बराबर ही हैं। सब र्म ईश-सेवा है। एक ही परिवार के चार लोग चार किस्म के काम करें तो काम ं भिन्नता हो सकती है, परन्तु व्यक्तियों में ऊँच-नीचभाव कैसे हो सकते हैं? इस ारह समझाकर समाज में सर्वसमानता का भी आदर्श उन्होंने स्थापित किया।

बसवण्णा की युक्तिसंगत बातें और कथनी व करनी में अभेद व्यवहार लोगों ो वीरशैव की ओर आकृष्ट करने में सफल हुए। परन्तु कुछ लोग अपने पूर्व संस्कार ं लगे रहकर अर्थहीन सम्प्रदायों का अनुसरण कर रहे थे। इसे देखकर वे आग- ाबूला हो जाते। कहते कि "परुष मुट्टिद बळिक कब्बुनवागदु नोडा ॥"—लोहा लोहा ी बना रहा तो उसे स्पर्शशिला से प्रभावित हो कर आकृष्ट होना ही चाहिए। इस ोहे में परिवर्तन लाना हो तो उसे गरम कर पिघला कर रासायनिक परिवर्तन द्वारा ी उस में परिवर्तन लाया जा सकता है। बसवण्णा के वचन ऐसे ही रासायनिक ायोग के समान हैं। वे कहते हैं "तळे बोळादरू मन बोळागद लिंगधारिगळन्नु भक्त- ल्लद वेषधारिगळन्नु, बहिराडंबरद अटमट भक्तरन्नु।" अर्थात्—सिर मुंडा होने ार भी जिसका मन मुंडा न हो, ऐसे लिंगधारियों को, भक्त न होने पर भी भक्त ैसे भेष धारण किये हुए ढोंगियों को, बाहरी आडम्बर दिखाने वाले भक्तों के ढकोसले को देख कर उनके प्रति वे बताते हैं—"कुळ्ळिद्दु लिंगव पूजिसि, अल्लदाट- ानाडुवरय्या, बॆळ्ळॆत्तिन मरॆयल्लिद्दु हुल्लॆगॆ अंबु तॊडुवंतॆ"—अर्थात् "बैठे हुए लिंग ी पूजा कर, तरह-तरह के खेल खेलते हैं, सफेद बैल की आड़ में रहकर हिरन पर ीर चलानेवालों की तरह ये लोग समाज के साथ खेलते हैं।" और कहते हैं— 'कुरिविंडु कब्बिन उलिवतोटव हॊक्कु तॆरननरियदे तनिरसद हॊरगणॆळॆयने मॆद्दुवु! नेम्मनरिव मदकरियल्लदॆ कुरिबल्लुदे कूडल संगमदेवा?" अर्थात् भेड़-बकरियों का ाुंड सुन्दर और अच्छे ढंग से बढ़े हुए गन्नों के खेत में जाकर इक्षुरस के स्वाद को ा समझ कर बाहर के पत्तों को ही खाकर रह गया। इक्षुरस का स्वाद मस्त हाथी ी समझ सकता है भेड़-बकरी क्या जाने। भाव यह कि उस परमेश्वर के स्वरूप को मस्त भक्त ही जान सकता है, बाहरी आडम्बर में ही अपना सब कुछ समझने वाला उस बकरे के समान है जो इक्षुरस के स्वाद को जाने बिना इक्षु दंड पर बाहर लगे ात्तों को ही खाकर रह जाता है।—यों ऐसे ढोंगी ढकोसला रचनेवाले भक्तों की ीका करते हैं। और "हॊरसि कोण्डु होदनायि मॊलननेन हिडिवुदय्या?"—शिकार खेलने के लिए आनेवाला कुत्ता अगर शिकारी के कंधे पर बैठकर जाता हो तो वह खरगोश का शिकार कर कैसे सकता है? भाव यह कि भक्ति में तन्मय होकर भगवान की खोज में भक्त को लगना चाहिये; जो स्वयं स्वभाव से भक्त नहीं उसे ठोंक-पीट कर भक्त बनावें तो उससे कौन-सी सिद्धि प्राप्त की जा सकती है? ऐसे भक्त उस कुत्ते की तरह होता है जो शिकारी के कन्धे पर चढ़कर खरगोश के शिकार

करने की कोशिश करता है । आगे कहते हैं—"एत तळॅवागिदरेनु, गुरुभक्तनागबल्लुदें ? इक्कुळ कै मुगिदरेनु, भृत्याचारियागबल्लुदें ? गिळियोदिदरेनु, लिंगवेदियागबल्लुदें ?" तात्पर्य यह कि ढेकुल झुकता है तो क्या गुरु भक्त हो सकता है ? सँडसी हाथ जोड़े तो क्या वह भृत्य हो सकती है ? तोता अगर पढ़ता है तो क्या वह लिंग (शिव) का ज्ञान पा सकता है ?—कहने का भाव यह कि कुएँ से पानी उठाने के लिए ढेकुल झुकता है, आग में पड़ी या अन्य किसी कारण से किसी चीज को पकड़ने के लिए सँडसी के हाथ जुड़ते हैं, सुग्गे को जो पढ़ाया जाय उससे अधिक वह कुछ नहीं जानता है । इसी तरह बाहरी आडम्बर केवल दिखावा मात्र है, इससे असली बात की सिद्धि कैसे हो सकती है ?—यों ढकोसला करने वाले इन ढोंगियों की हँसी उड़ाते हैं । अपने घर में दूसरों से भगवान की पूजा कराकर अपने को कृतकृत्य माननेवालों को देख कर बसवण्णा आग-बबूला हो उठते हैं । ऐसों को देखकर वे कहते हैं—"तन्नाश्रयद रति सुखवनु, तानुंब ऊटवनु बेरॉबबर कैयलु माडिस बहुदें ।" याने स्वयं अनुभव करनेवाले सुख को और खुद खाकर तृप्त होनेवाले के आनन्द को स्वयं करके सुखी होना चाहिए । दूसरों से करवाने पर आत्मतृप्ति का आनन्द कैसे मिल सकता है ?—उनकी इस बात को सुनने के बाद अपने घर में पूजा के लिए दूसरों को नियुक्त करना या ऐसी इच्छा भी करना संभव है ?

गुरु लिंग जंगमों में अभेद-भक्ति रखनेवाले बसवण्णा ने लोगों को उसी तरह की भक्ति का उपदेश दिया । शरणों (भगवद्भक्तों) के साथ उदासीनतापूर्ण व्यवहार करनेवालों के प्रति उनका कहना है कि "हाविन हॅडॅगळ कॉण्डु कॅन्नॅय तुरिसिकॉम्बन्तॅ, उरिव कॉळ्ळिय कॉण्डु मंडॅय सिक्कु बिडिसुवन्तॅ, हुलिय मीसय हिडिदुकॉण्डु ऑलॅ-दुय्यलनाडुवन्तॅ, कूडल संगन शरणरॉडनॅ मरॅदु सरसवाडिदरे सुण्णकल्ल मडलल्लि कट्टिकॉण्डु मडुव बिद्दन्तॅ !"—भाव यह कि "शरणों के साथ उदासीनतापूर्ण व्यवहार करना ऐसा है जैसा साँप के फन को लेकर गाल खुरचना है, या जलनेवाले लूक से सिर के बालों की गाँठ को सुलझाना है, अथवा शेर की मूँछ पकड़कर झूलना है । कहने का मतलब यह कि कूडल संगमदेव के शरणों के साथ छेड़खानी करना पानी के संपर्क से उभर कर खौलनेवाले चूने को आँचल में बाँधकर तालाब में कूदने जैसा है ।" तात्पर्य यह कि भगवान् के भक्त शिव शरणों के साथ कभी भी छेड़खानी नहीं करनी चाहिए । राजा बिज्जल के खजांची बने रहकर उनका अनुग्रह प्राप्त कर शिव भक्त जंगमों की भिक्षा (दासोह) अर्थात् खाने-पीने की व्यवस्था, करा रहा है—ऐसी जो धारणा जनता में प्रचलित थी उसे सुन कर ऐसा कहनेवाले लोगों को तड़ाके के साथ मुँह तोड़ जवाब देते हैं । कहते हैं कि "ऊर मुंदॅ हालहळ्ळ हरियुत्तिरलु ऑदॅयाविन बॅन्न हरियलदेकय्या ? लज्जॅ गॅडलेकॅ, नाणुगॅडलेकॅ ? कूडल संगम देवय्यनुळ्ळनक बिज्जळन भंडारवॅनगेकय्या ?"

भाव यह है कि "नगर के बिलकुल सामने जब दूध की नदी बह रही है तब लात मारनेवाली गाय की पीठ सहलाने की जरूरत क्या है ? अनुग्रह-भिक्षा पाने की चाह से अपनी लाज-शरम क्यों खोवें ? जब तक कूडल संगमदेव (परमेश्वर) साथ है तब तक बिज्जल राजा के खजाने की मुझे क्या जरूरत है ? बिलकुल ही नहीं ।" देखिये, इस भक्त भंडारी बसवण्णा की यह बात कितने मार्के की है । बिज्जल राजा

का खजांची वे बने तो सही, परन्तु किसी तरह के स्वार्थ को लेकर नहीं। वे स्वभाव से निडर और दाक्षिण्य रहित, निस्संदिग्ध-मनस्क, अपने निर्णय में अटल, कटु सत्य बोलनेवाले व्यक्ति थे। उनकी इस उक्ति से उनका यह स्वभाव बहुत ही स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है। वह यों है—"हॉत्तारें येंद्दु कण्ण हॉसॅवुत्त एन्न ऑडलिगें, ऍन्न ऑडवॆंयें, ऍन्न मडदि मक्कळिगेंन्दु कुदिदॅनादरें ऍन्नमनक्कें मनवे साक्षि!...भवि बिज्जलन गद्दुगॆय कळगें कुळ्ळिर्दु ओलैसिहॅनॅन्दु नुडिवरय्या प्रमथरु; कॉडुवॆंनुत्तर वनवरिगें कॉडलम्में। हॉलॅय हॉलॅयर मनॅय हॊक्कादरॆंयु, सलॆं कॆकूलिय माडियादरॆंयु, निम्म निलविगें कुदिवॆंनल्लदें, एन्न ऑडलवसरक्कें कुदिदॅनादरें तलॆंदंड कूडल संगम देवा"—तात्पर्य यह कि "सुबह उठकर आँखें मलते हुए अपने लिए, अपने प्रसाधन के लिए, अपनी पत्नी-पुत्र आदि के लिए, मैं कुछ भी चिंता नहीं करता, इसके लिए मेरा मन ही मेरे लिए साक्षी हैं।...राजा बिज्जल भवि हैं, उनकी गद्दी के नीचे बैठे रहकर मैं सुखी हूँ—ऐसा ये प्रमथ लोग कहते हैं; इनके इस कथन का मेरा यह जवाब है—अन्त्यजों के घर-घर जाकर मेहनत-मजदूरी करूँगा और उसीसे गुजर कर लूंगा। अगर मेरे अन्दर कोई चिंता है तो वह केवल अपने भगवान् को देखने की और अपने इस जीवन को कृतार्थ करने की है। अपने सुख-साधन के लिए मैं चिंतित होऊँ, यह कदापि हो नहीं सकता। हे भगवान् कूडल संगमदेव! अपने सिर की कसम, ऐसी चिन्ता जो स्वार्थप्रेरित है, वह मुझमें ईष-मात्र भी नहीं है।"—बसवण्णा की ये बातें सुनकर प्रमथ डरके मारे कांप गये होंगे।

बसवण्णा छलरहित भक्तियोगी है। वह सदाचारी, लिंगनिष्ठ और भक्ति-भंडारी हैं। अपने इन गुणों के लिए उन्हें दूसरों की प्रशंसा की अपेक्षा कतई नहीं है। दूसरों को खुश करने के लिए न वे सदाचारी बने अथवा लिंगनिष्ठ भक्त बने। यह आन्तरिक प्रेरणा और आत्म-सन्तोष की बात है। लौकिक बाधाओं व चिन्ताओं से मुक्त होकर ईश्वर की चित्कला का दर्शन पाना तथा ब्रह्मानन्द में विलीन होना—ये ही उनके लिए आदर्श और ये ही उनके जीवन की चरम आकांक्षाएँ हैं। इनकी प्राप्ति के लिए वे अपने साधनामय जीवन मं तीव्र-वेदना भुगतते रहे। यदि किसी के मुँह से अपनी प्रशंसा की बात सुनते हैं तो बहुत दुःखी होते हैं। वे कहते हैं, "ऍन्न-बरोलिदु हॉन्नशूलदलिक्किदरॆंन्न हॉगळि हॉगळि" यानी "लोग मेरी प्रशंसा कर-करके मुझे सोने की शूली पर चढ़ा संकट दे रहे हैं।" यह उनकी आत्मवेदना है। आत्म-विमर्श में संलग्न उन्होंने अपनी चित्तवृत्ति को बिलकुल निःस्पृहता के साथ अपनी वाणी में उडेलकर बहा दिया है। इसीलिए वह मानवातीत न होकर मानवत्व और देवत्व के संगम के रूप में विद्यमान हैं। उनकी वाणी स्वानुभूति की उज्ज्वल कान्ति से चकाचौंध करनेवाली है। उन्होंने जिस आदर्श की घोषणा की और जिसका अपने जीवन में अनुष्ठान किया—उस की अभिव्यक्ति यों की है—"नुडिदरॆं मुत्तिन हारदंतिरबेकु! नुडिदरॆं माणिक्यद दीप्तियंतिरबेकु; नुडिदरॆं पळिकद शलाकॆयंतिरबेकु! नुडिदरॆं लिंगमॆच्चि अहुदॆंनबेकु!"—अर्थात् "मुँह से निकलनेवाली बात कीमती मोतियों की लड़ी जैसी होनी चाहिए। वाणी को माणिक की भाँति तेजपूर्ण होना चाहिए। वाणी को स्फटिक-शलाका की तरह स्वच्छ और स्पष्ट बोलना चाहिए। बात कहेंगे तो भगवान् भी खुश हो जायं—ऐसी बात बोलनी चाहिए।"

बसवण्णा की वाणी ईश्वर को खुश कर सकी थी, इसीलिए वह अमृत-पुत्र बन सके, दैवीशक्तियों से सम्पन्न मानव बन सके; मानव से देवता हो सके। उनकी वाणी में धर्म और काव्य-धर्म दोनों समान रीति से समन्वति होकर स्वादिष्ट औषध की तरह मनोज्ञ और श्रेय-साधक हैं। परन्तु इस महापुरुष के जीवन के अन्तिम दिन धुन्धले और अस्पष्ट हैं। भारतीय शासन ने भारत को जात्यातीत राष्ट्र माना है; बसवण्णा के संगठन में भी ऐसी ही एक सामाजिक व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। कर्म के महत्व को दर्शाकर ब्राह्मण से लेकर अत्यंज तक सब मानव और उनके कर्म—सबमें समानता की प्रतिष्ठा कर सर्वसमता का उन्होंने उद्घोष किया। संभवतः उनका आदर्श सम्प्रदायवादियों के लिए निगलना सम्भव नहीं हुआ होगा। बसवण्णा और उनके द्वारा संगठित शरण-पंथियों ने इन सम्प्रदायवादियों की विचारधारा को न मानकर अपने ढंग से अपने काम में लगे रहकर अग्रसर हुए होंगे। समाज संस्करण की इस गर्मी में एक ब्राह्मण कन्या का अंत्यज लड़के के साथ विवाह भी सम्पन्न हुआ। इस तरह के क्रांतिकारक वर्ण संकर को देखकर सनातनी राजा आग-बबूला हो गये। इस नवविवाहित वधू और वर के पिता मधुवय्या और हरळय्या—दोनों को राजा ने कड़ी सजा दी। इसे देखकर सुधारवादी शिवशरणों ने क्रुद्ध होकर बड़ा भारी तहलका मचाया। जगदेव और ब्रह्मय्या नामक दो क्रांतिकारों ने वीरावेश के साथ राजा बिज्जल की राजसभा में घुसकर उसे (राजा को) छुरा भोंककर मार डाला। गुस्से से अन्धे जात्यांधों को वश में लाना बसवण्णा के लिए भी शायद असम्भव हुआ होगा। राजा को मार डालते ही सारी राजसेना ने इन शरणों को पकड़-पकड़कर दंड देना शुरू किया होगा। तब सारे शरण इधर-उधर अपनी जान लेकर भाग गये होंगे। बसवण्णा भी मगलवाड अथवा कल्याण से निकल कर कप्पडि नामक संगम स्थान में शिवैक्य हुए होंगे। अनेक महापुरुषों की तरह अपनी कथनी को करनी में उतारते समय इस महापुरुष को भी आत्म-बलिदान देना पड़ा। और शायद इस तरह वे हुतात्मा हुए हों, ऐसा प्रतीत होता है।

महादेवियक्का :

वीरशैव के उदारतत्त्व से प्रभावित होकर विकसित वचनकारों में महादेवियक्का का स्थान अग्रगण्य है। इनसे भी पहले कन्नड के एक कवयित्री थी जिसका नाम "कंति" है। विद्वानों का मत है कि यह कंति एक काल्पनिक व्यक्ति है। इसलिए यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि महादेवी कन्नड साहित्य के सर्वप्रथम कवयित्री होने के श्रेय की पात्री भी बनी है। उनकी जीवन-गाथा कौतुकपूर्ण जितनी है उतनी ही महान् भी है। उडुतडि नामक एक गाँव में निर्मल शेट्टी और सुमति नामक वीरशैव दम्पति थे। पति निर्मल और पत्नी सुमति दोनों नाम सार्थक हैं। इन्हीं की सुपुत्री अक्कमहादेवी है। यह बच्ची जैसे-जैसे बड़ी होती गयी तैसे-तैसे उनमें भक्ति भी बढ़ती गयी। जब यह बच्ची सोलह वर्ष की हुई तब उडुतडी के राजा कौशिक ने अचानक इस षोडशी के सौन्दर्य को देखो तो उसपर मोहित हो गया। राजा जैन थे, इसलिए निर्मल शेट्टी अपनी लड़की का विवाह उनसे करना नहीं चाहते थे। परन्तु राज-क्रोध से डरता था। पिता के मन की इस दुविधा को मिटाने के लिए स्वयं महादेवी अक्का

आगे बढ़ी और राजा के सामने एक शर्त रखी। अक्क महादेवी का यह नियम था कि नित्य प्रति गुरु-लिंग-जंगम इन तीनों की पूजा यथाविधि करना। अपने इस नियम में बाधा पड़े, ऐसी गल्तियाँ राजा न करें। अगर ऐसी गलती कभी राजा से हो जाय तो तीन गलतियों तक माफी मिल सकेगी। इस के बाद वह पति को त्याग देगी। इस तरह की शर्त पर वह राजा से विवाह करने को सहमत हुई। राजा कामी था, इसलिए किसी भी शर्त को मानने पर तैयार हो गया। महादेवियक्का के सौन्दर्य पर मोहित राजा का विवाह भी उसीके साथ सम्पन्न हुआ। कामुक राजा को शर्त के अनुसार रहना संभव नहीं हुआ। बहुत जल्दी तीन गल्तियाँ कर बैठा। महारानी महादेवियक्का अपने पद, ऐश्वर्य, अधिकार और सब तरह के भोग-भाग्यों को लात मारकर निर्वसना हो अपने लम्बे बालों से लाज ढँककर शिव शरणों का कैलास "कल्याण" की ओर चल पड़ी। सम्भवत रास्ते में उन्होंने तरह-तरह के कष्टों का भी सामना किया होगा। माता-पिता ने उनके मन में परिवर्तन लाने की बड़ी कोशिश भी की परन्तु अक्का के मन और उनके निश्चय को परिवर्तित न कर सके। उसके पति राजा ने शरणों का-सा भेष बनाकर पत्नी को लौटा लाने के इरादे से उनका पीछा किया। परन्तु उनके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। अब वह कल्याण में प्रवेश करने ही वाली थी कि इतने में किन्नर बोम्मय्या नामक शिवशरण ने उन्हें देखा और उनकी परीक्षा लेनी चाही। तो क्या, महादेवियक्का ने उनसे कहा :—

'ऍलॅ अण्णा अण्णा, नीवु मरुळल्ला ! अण्णा ऍन्न निन्नळवॅं, हदिनाल्कु लोकव नुंगिद कामन बाणदगुण ऍन्न निन्नळवॅ ? वारुव मुग्गिदडॅ मिडिय हरिय हॉय्वरॅ ? मुग्गिद भंगव मुंदॅ रणदल्लि तिळिवुदु निन्ननी संहरिसि कैदुव कॉळ्ळिरण्णा चॅन्न मल्लिकार्जुननॅम्ब हगॅगॅ बॅङगॉडदिरण्णा !"—तात्पर्य यह कि "हे भाई ! तुम एक स्त्री के शरीर और उस पर की कामदेव की मुद्राओं को देखकर चचल हो गये हो। कामदेव तो ऐसा है कि जिन्होंने चौदहों लोकों को अपने बाण की नोक से जला दिया है, उनकी शक्ति के सामने हम-तुम क्या चीज हैं ? सड़े हुए इस शरीर को देखकर तुम जैसे को ऐसा चंचल होना ठीक नहीं है। तुम अपने को समझने-बूझने की कोशिश करो। चॅन्न मल्लिकार्जुन के भक्तों को चाहिए कि वे अपना व्यवहार ऐसा रखें कि जिससे वह (चॅन्न मल्लिकार्जुन भगवान्) खुश हों। दुर्व्यवहार से उन्हें अपना शत्रु न बनावें जिससे तुम्हें पीठ दिखाना न पड़े।" महादेवियक्का की इन बातों को सुनकर अपने व्यवहार के कारण किन्नर बोम्मय्या बहुत पछताता है और पश्चात्ताप से तपकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करके अनुभव मंडप ले जाता है। वहाँ प्रभुदेव अल्लम, बसवण्णा आदि प्रमुख व्यक्ति उनकी (महादेवी) भक्ति की परीक्षा करते हैं। पहले प्रभुदेव उनसे प्रश्न करते हैं :— "अम्मा, नीनु हरिनारटर हरॅयद दिव्य सुन्दरि हीगॅ बन्दिरुवॅयल्ला ! निन्न पति यारॅम्बुद हेळा ऍलॅ अव्वा" माने "हे देवी ! तुम सोलहवर्ष की इस अवस्था में यों क्यों आयी हो ? तुम्हारे पतिदेव कौन है बताओ।"—उत्तर में महादेवी कहती हैं, "हरने, नीनेनॅगॅ गंडनागबेकॅन्दु अनंतकाल तपसिदॅं, नोडा ! हर्सय मेलण मातु बॅसगॉळलट्टिदरॅ शशिधरन हसिर कळुहिद रॅम्मयरु, भस्मवनॅ हूसि, कंकणवन कट्टि चॅन्न मल्लिकार्जुन तनगॅ नाना बेकॅन्दु"—"पच्चॅयद नॅलकॅट्टु, कनकद तोरण, वज्रदकंभ, पवळद चप्परविकिक मदुवॅय मडिदरॅम्मवरॅन्न मदुवॅय माडिदरु। कंकण, कैदारॅ, स्थिर सेसॅयनिक्क चॅन्नमल्लिकार्जुन

नॆम्ब मंडगॆन्न मदुवॆय माडिदरु"—"साविल्लद केडिल्लद रूहिल्लद चॆलुवंगॆ, भयविल्लद निर्भयद चॆलुवंगॆ नानॊलिदॆनव्वा । ऎडॆ इल्लद कडॆयिल्लद तॆरहिल्लद कुरुहिल्लद चॆलुवंगानॊलिदॆ ऎलॆ अव्वा। भवविल्लद भयविल्लद निर्भय चॆलुवंगॊलिदॆ नानु, कुलसीमॆ इल्लद निस्सीम चॆलुवंगॆ नानॊलिदॆ, इदुकारण चॆन्नमल्लिकार्जुन चॆलुव गंड नॆनगॆ, ई साव कॆडुव गंडरनॊय्दु ऒलॆयॊळगिक्कु"—कि "हर (शिव) ही मेरे पति हो, इसी विचार से अनन्त काल तक मैंने तप किया । विवाह वेदी पर मुझे शशिधर के सामने खड़ा किया । भस्म लगाकर कंकण बांधकर चॆन्नमल्लिकार्जुन ने मुझे अपना लिया ।—पन्नों की वेदी पर सोने का तोरण बनाकर हीरों के खम्भे से बांधा, मूंगों का छप्पर बनाकर अपने लोगों ने मेरा विवाह रचा । कंकण बांधकर धारापूर्वक आशीर्वचनों के साथ चॆन्नमल्लिकार्जुन नामक पति के साथ अपने लोगों ने मेरा विवाह किया ।—जरा-मरण रहित उस निराकार सुन्दर के साथ जो भयरहित, भवदूर हैं उन पर मैं मुग्ध हुई । उन्हीं पर मैं आसक्त हुई । वह मेरा पति सीमातीत, सर्वव्यापक, अजर और अमर हैं । ऐसे पति को छोड़ इन मरने के स्वभाववाले पतियों के साथ मेरा क्या वास्ता ?"—अक्का के इस उत्तर से प्रभुदेव बहुत सन्तुष्ट हुए और फिर सवाल किया—"बालों से अपने शरीर को ढँक रखा है—इससे क्या यह स्पष्ट नहीं होता कि तुम में शरीराभिमान का भाव अभी नहीं गया है ?"—इस का उत्तर अक्का देती हैं कि अन्तरंग शुद्ध होने पर और अपने इष्टदेव चॆन्नमल्लिकार्जुन के द्वारा स्वीकृत देह कैसी भी रहे उससे क्या होता है ?—इस बात की चिन्ता क्यों ? फल जब तक पूरा नहीं पकता तब तक ऊपर के छिलके का रंग बदलता नहीं । इस देह पर के काम-देव के चिह्नों को देखकर आप का मन दु:खी न हो इस कारण से इस देह को ढँक रखा है । यह देह चॆन्न मल्लिकार्जुन देव के लिए समर्पित है, इसलिए सताइये नहीं ।—महादेवी के इस उत्तर को सुनकर प्रभुदेव ने एक सन्देह और प्रगट किया और कहा कि "इन्द्रियों से प्रभावित और इन्द्रिय-बाधाओं के वशीभूत देही निष्काय निर्गुण ईश्वर के साथ सम्बन्ध कैसे बढ़ा सकेगा ?"—इस प्रश्न का उत्तर अक्का ने यों दिया :—"हविन हल्ल कळॆदु हावनाडिस बल्लडॆ हाविन संगवे लेसु कण्डय्या, कायद संगव विवरिसबल्लडॆ कायद संगवे लेसु कण्डय्या, तायि रक्कसियादंतॆ कायविकारवु, चॆन्नमल्लिकार्जुनय्या, नीनॊलिदवरु कायगॊण्डिद्दॆनबेड"—अर्थात् "सांप के दांतों को निकाल देने के बाद सांप कर क्या सकता है, उसके साथ आसानी से खेला जा सकता है । शरीर की भी यही दशा है । एक बार शरीर विकारों को वशवर्ती बना लेने पर शरीर क्या कर सकता है ? शरीर-विकार एक राक्षसी मां की तरह है । चॆन्न मल्लिकार्जुन के सन्तुष्ट होने पर विकारमुक्त यह शरीर क्या कर सकेगा ? ऐसे शरीर का रहना न रहना दोनों बराबर हैं ।"

अक्का की इन बातों को सुनकर प्रभुदेव बहुत सन्तुष्ट हुए और अनेक सवाल पूछ कर उनके द्वारा दिये गये उत्तरों से वहां उपस्थित अन्य लोगों को चकित बना दिया तथा अक्क महादेवी के महत्त्व को लोगों को जता दिया । महादेवी की सहन-शीलता सर्वसमता आदि को देख-समझ कर सन्तुष्ट हुए । महादेवी की इस उक्ति से उनका स्वभाव कैसा था, वह स्पष्ट होता है :—

"चन्दनव कडिदु कॊरॆदु तेदडॆ नॊन्दॆनॆन्दु कंपबिट्टिते ! तंदु सुवर्णव कडिदॊरॆ-

दर्दें बॅन्दु कळंक हिडिद्रित्तें ? संदु संदु कडिदु कब्बनु बन्दु गाणदलिक्कि बॅन्द पाकगळु सक्करॅयागि नॉन्दॅनॅन्दु सविय बिट्टित्तें ? ना हिन्दें माडिद हीनंगळॅल्लव तन्दु मुंदिळु-हलु निममें हानियें ? एन्न तंदे चॅन्नमल्लिकार्जुन देवय्य कॉन्दडें शरणॅम्बुद माणें ?"—

अर्थात् "चन्दन की लकड़ी को काटकर चीरकर घिसने पर चन्दन यह समझ-कर कि मुझे बहुत कष्ट हुआ, अपनी सुगन्धि को छोड़ देगा ? सोने को काटकर तपा-कर शुद्ध बनाने पर उस पर कलंक लग सकता है ? ईख को काट-काटकर घानी में पीस-पीसकर रस निकालें और उसे गरम कर खौलाकर शक्कर बनावें तो क्या वह (अपने को दुखी समझ कर) अपनी मिठास को छोड़ देगा ? यदि मैं अपने पूर्वकृत पापों की गठरी को सामने उतार दूं तो क्या आपका नुकसान होगा ? परम पिता चॅन्नमल्लिकार्जुन देव अगर मार भी डाले तो उनकी शरण में आश्रय पाने का प्रयत्न छोड़ूंगी नहीं।"

अक्कमहादेवी से कइयों ने कई तरह के सवाल किये। उन सभी प्रश्न करनेवालों को इस तरह का उत्तर, जो ऊपर बताया जा चुका है, उन्होंने दिया। उनके इस जवाब ने सबका मुंह बन्द ही नहीं किया बल्कि सब को मालूम भी हो गया कि यह अक्का कितने उच्च स्तर की ज्ञानावस्था में है। प्रश्नकर्ताओं को उत्तर देते-देते उस देवी ने अपनी कमी-खामियों को भी व्यक्त किया; तो भी इन प्रश्नकर्ताओं से उन्हें सहानुभूति नहीं मिली। इस साधिका शरण सन्त देवी के सौजन्य को देखकर हमें चकित होना पड़ता है। केवल हम ही चकित हैं सो बात नहीं। अनुभव मंडप में जितने बुजुर्ग थे वे सभी अक्का की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। बसवण्णा ने इस देवी के बारे में जो कहा है वह यों है :—

"अज कोटि वरुषदवरॅल्लरू हिरियरें ? हुत्तेरि बॅट्टबॅळॅद तपस्विगळॅल्लरू हिरियरें नडुमुरिदु, तलेनडुगि, नॅरॅतॅरें हॅच्चि, मतिगॅट्टु, ऑन्दनाडहोगि ऑम्बत्तनाडुव अज्ञानिग-ळॅल्लरू हिरियरें ? अनुवरिदु घनव बॅरॅसि, हिरिदु किरिदॅम्ब भेदव मरॅदु कूडल चॅन्न संगय्यनल्लि बॅरॅसि बेरिल्लदिप्प हिरियतन नम्म महादेवियक्कनिगायित्तु"—बसवण्णा कहते हैं कि—"करोड़ों बरस जिन्दा रहने वाला ज्ञान के क्षेत्र में बुजुर्ग होगा ? तप करने बैठे-बैठे यदि उन पर बांबी ही बढ़ने लगे तो ऐसा तप करने वाला तपस्वी बड़ा हो सकेगा ? कमर टूट जाय, सिर कांपने लगे, बाल पक जायें, दिमाग बिगड़कर एक बात कहने जा कर अटपटी कई बातें बोलने लग जाय, ऐसे अज्ञानी सब बड़े हो जाएंगे ? अपनी सीमाएँ समझकर, महत्त्वपूर्ण स्वानुभूति की सम्पत्ति से युक्त तथा बड़े-छोटे की भेद-बुद्धि को भूलकर अपने आराध्य कूडल संगमदेव के साथ एकाकार होकर अपनी स्थिति को इतना ऊँचा बना दिया है कि इस ऊँचाई का आरम्भ कहाँ और अन्त कहाँ इसका पता तक नहीं लगता। ऐसी स्थिति तक प्राप्त होने की यह महानता महादेवि-अक्का ने पायी है।"

सबके गौरव का पात्र बनकर, अनुभव संकट का प्रमुख पात्र बनकर, अपने भक्तिभाव से तथा अपनी स्वानुभूतियों को निरूपित कर अपने इर्द-गिर्द में रहने वालों की मार्गदर्शिका बने रहकर अक्कमहादेवी कुछ समय तक कल्याण में स्थित रहीं। कुछ समय के पश्चात् एकांत में रहने की इच्छा से श्रीशैल की तरफ गयी होंगी। ऐसा लगता है कि सभी शरणों ने बहुत संभ्रम के साथ उन्हें बिदा किया भी होगा। संभवतः

एकांत में रहने की इच्छा से एकाकी हो प्रस्थान करने वाली अक्का को देखकर कुछ संतों के मन में एक वेदना हुई होगी। इन संतों के साथ स्वयं भी उनकी उस वेदना का अनुभव करती है। कहती हैं कि—"हुट्टिदें श्रीगुरुविन हस्तदल्लि, बॅळॆदें असंख्यातरकरुण दॊळगॆ भाववॆम्ब हालु, सुज्ञानवॆम्ब तुप्पा, परमार्थवॆम्ब सक्करॆयनिनिक्कदरु नोडा ! इन्तिप्प त्रिविधामृतक दणियलॆरॆदु सलहिदरॆन्न विवाहव माडिदिरि सयवप्प (अनुरूप) मंडगॆ कॊट्टिरि, कॊट्टमनॆगॆ कळुहलॆन्दु असंख्यातरु नॆरॆदु बंदिरि, बसवण्ण मॆच्चलु ऒगॆतनव माडुवॆं, चॆन्न मल्लिकार्जुनन कैविडिदु निम्म मंडगॆ हूवताहॆनल्लदॆ हुल्ल तारॆनु, अव-धरिसि निम्नडिगळॆल्लरु, मरळि विजयंगैवुदु शरणार्थि"— इन शरण संतों को समझाती हुई बताती हैं कि—"मैं परमगुरु के करकमल से जन्मी और असंख्य संत भक्तों की दया से पालित-पोषित हुई; भावनारूपी दुग्धपान इन सब महानुभावों ने कराया; सुज्ञान रूपी घी और परमार्थ रूपी शर्करा दे-देकर मुझे प्रवृद्ध किया। इस तरह के त्रिविध अमृत से मैं अघा गयी। यों पाल-पोसकर बड़ा किया और मेरा विवाह किया। अनुरूप वर के साथ पाणि-पीडन करवा कर उन्हें मुझे सौंप दिया। जिस घर मैं ब्याही गयी वहाँ भेजने के वक्त मुझे विदा करने के लिए सब एकत्र हुए। जगत्पति चॅन्नमल्लिकार्जुन के साथ रहकर सहधर्मिणी का कर्तव्य निर्वहण करती हुई आप सब के लिए कीर्तिकारक ही बनूँगी, कभी अपकीर्तिकारक नहीं बनूँगी। अब आप सब लौट चलें, पुन: आकर मिल सकेंगे; प्रणाम।"—कहकर सभी से उन्होंने बिदा ली। श्रीशैल की तरफ चलती हुई अपने-आपसे बोलती है (या अपनी साथिनों से)—"क्या मोर पुष्प-फल-भरित पेड़-पौधों से आच्छादित सुन्दर शैल प्रदेश को छोड़कर अन्यत्र नाचेगा? क्या हंस सुन्दर सरोवर को छोड़कर किसी छोटी गढ़ैया की चाह करेगा? आम में जब तक अंकुर न निकले तब तक कोयल अपने मधुर स्वर से क्या गाना सुना सकेगी? भ्रमर गंधहीन पुष्प को चाहेगा? ऐसे ही चॅन्नमल्लिकार्जुन को छोड़ किसी दूसरे पर मेरा मन लगेगा?"

श्रीशैल पहुँचने के पश्चात् वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रभाव से अक्कमहा-देवी के अन्दर कविचेतना जागृत हुई होगी और अपने अन्दर "लिंगपति, अंगसति" (अपने आराध्य के साथ एकाकार होने का भाव) की भावना अच्छी तरह पनपकर दृढ़मूल हो जाने के कारण चॅन्नमल्लिकार्जुन के लिए तरस-तरस कर खोजती फिरती है। भक्ति-भरे सात्त्विक जीव महादेवी अक्का के लिए चारों ओर की सारी प्रकृति चेतनापूर्ण लगती है। वह प्रकृति में दिखने वाले प्रत्येक से सवाल करती है—"अळि संकुळवे, मामरवे, बॅळदिंगळे, कोगिलॆयॆ, निम्म निम्मनॆल्लरनु ऒन्दु बेडुवॆनु, ऎन्नॊडॆय चॅन्नमल्लिकार्जुन देवर कंडरॆ करॆदुतोरिरॆ"—"चिलिमिलियॆन्दोदुव गिळिगळिरा, नीवु काणिरे, नीवु काणिरे? सरवेत्तिपाडुव गिळिगळिरा, नीवु काणिरे, नीवु काणिरे? ऎरगि बन्दाडुव तुंबिगळिरा, नीवुकाणिरे, नीवुकाणिरे? कॊळन नॆडयाडुव हंसॆगळिरा, नीवु काणिरे, नीवु काणिरे? गिरि गह्वरदॊळगाडुव नविलुगळिरा, नीवुकाणिरे, नीवुकाणिरे? चॅन्न मल्लिकार्जुननॆल्लिदॆहनॆन्दु नीवु हेळिरे नीवु हेळिरे!"—कि "हे भ्रमर समूह, हे आम्र, हे कौमुदी, अरी कोयल, तुम सबसे मेरी एक प्रार्थना है—मेरे पति, मालिक, चॅन्नमल्लिकार्जुनदेव को यदि तुम देखो तो मुझे बुलाकर दर्शन करा दो। अरे गाने वाले, चहकने वाले तोते! तुमने नहीं देखा? मधुर गान करने वाले हे कीर

वृन्द ! तुमने देखा ? उड़-उड़कर खेलने वाले हे भ्रमर ! तुमने नहीं देखा ? सरोवर में चलते-फिरते खेलने वाले हंस ! तुमने नहीं देखा ? गिरिगह्वरों में खेलते हुए नाच करने वाले मयूर, क्या तुमने भी नहीं देखा ? क्या तुम यह नहीं बता सकते कि मेरा चॅन्नमल्लिकार्जुन कहाँ हैं ?"—यों बाहरी दिखावट के लिए यह अटपटा सा लगने पर भी उनके मन में अपने आराध्य के प्रति जो विरह-वेदना है उसके उन्माद में डूबी हुई महादेवी अपने उस विरह-ताप को सहन नहीं कर सकती है; तापतप्त होकर कहती है :

"किच्चिल्लद बेगॆयलि बॆन्दॆनव्वा ! एरिल्लद गायदलि नॊन्दॆनव्वा ! सुख-विल्लद घावतिगॊण्डॆनव्वा ! चॆन्नमल्लिकार्जुन देवरिगॊलिदु बारद भवंगळल्लि बन्दॆनव्वा !"—"अक्का केळव्वा, अक्कय्या नानॊन्दु कनसकंडॆ, अक्कियडकॆ तॆङ्गिनकायि कंडॆ, चिक्कचिक्क जडॆगळ सुलिपल्ल गॊरवनु भिक्षक्कॆ बन्दुद कंडॆनव्वा, मिक्कु-मीरि होहन बॆम्बत्ति कैविडिदॆनु, चॆन्नमल्लिकार्जुनन कंडु कण्दॆरॆदॆनु"—"हॊळॆव जडॆय-मेलॆ एळॆ बेळदिंगळु फणिमणि कुंडलदव नोडव्वा ! रुंडमालॆय कॊरळवन कंडरॆ बर-हेळव्वा, गोविन्दन नयन उंगुटदमेलिप्पुदु"—अर्थात्—"बिना आग के ही मैं ज्वाला की गर्मी से तप रही हूँ । बिना घाव के ही मैं घायल हुई हूँ । सुख रहित भवों में जन्म लेकर भगवान चॅन्नमल्लिकार्जुन के लिए अप्रिय अनेक जन्मों के चक्कर में पड़ी हूँ ।" "बहन सुनो तो, मैंने एक सपना देखा । उसमें चावल-सुपारी और नारियल देखा; और छोटी-छोटी जटा से युक्त एक भिक्षुक को भी देखा । इतना ही नहीं, उस वेग से जाने वाले भिक्षुक का मैंने हाथ भी पकड़ा । देखा, वह भिक्षुक मेरे आराध्य चॅन्न-मल्लिकार्जुन ही है, उसे देखकर मैंने आँखें खोलीं । देखती क्या हूँ—चमकने वाली जटाजूट पर बालचन्द्र और सर्पमणि के बने कर्णकुण्डल, और गले में रुण्डमाला है । उनको यदि कहीं देखो तो कृपया बुला लाओ बहन !"—यह महादेवियक्का की मानसिक स्थिति है । इसे देखने पर हमें भागवत की राधा के विरह की याद आती है ।

एकनिष्ठ भक्ति से भगवान् को पाने के लिए तरसने वाली अक्का को अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त हो गयी । आत्मसाक्षात्कार हुआ । इस साक्षात्कार से आनन्द-विभोर होकर गाने लगती है—"हॊळॆव कॆन्जडॆगळु, मणिमुकुट, ऒप्पव सुलिपल्ल, नगॆमॊगद कंगळ कांतियि ईरेळुभुवनमं बॆळगुव दिव्य स्वरूपन कंडॆ, नानु, कंडॆन्न कंगळ बर हिंगित्तिन्दुगंड गंडरॆल्ल हॆण्डहॆण्डिरागि आळुव गुरुवन कंडॆ नानु, जगदादि शक्तियॊळु बॆरॆसियॊडनाडुव परम गुरु चॆन्नमल्लिकार्जुनन निलव कंडु बदुकिदॆनु" । "कदळि ऎम्बुद दॆंल्दु सलॆ बदुकि बन्दु कदळिय बनदल्लि भवहरन कंडॆनु भवगॆट्ट मगळॆन्दु करुणदि तॆगॆदु बिगिदप्पिदरॆ चॆन्नमल्लिकार्जुनन हृदयदल्लि अडगिदॆनु" । "अवुदु, नीरु नीरिनल्लि तॆरॆदंतॆ, ज्योति ज्योतियल्लि बॆरॆदंतॆ"—अर्थात् "चमकने वाली ईषद्रक्तिम जटाएँ, मणिमुकुट, रूप के अनुरूप फबने वाली सजावट और हँसमुख तथा अपने नेत्रों की कांति के सातों लोकों को प्रकाशित करने वाले दिव्य स्वरूप को देखा । मेरी तरसने वाली आँखें तृप्त हो गयीं, समस्त चराचर को अनुशासित करने वाले शास्ता को मैंने देखा, आदिशक्ति शक्ति में सम्मिलित होकर खेलने वाले परम गुरु को मैंने देखा, देखा, शक्ति मिलित चॅन्नमल्लिकार्जुन के स्वरूप को । उसके दर्शन मात्र से मैं पुनीत हो गयी ।

विरह को जीतकर रंगावन में सहर्ष भगवान का साक्षात्कार किया। भगवान ने मुझ पर असीम कृपा की, मेरी अवस्था पर उन्हें दया आयी तो उन्होंने मुझे कस कर अपनी छाती से लगाया। मैं उनके दयार्द्र हृदय में समा गयी। ठीक ही तो है, पानी पानी में और ज्योति ज्योति में मिलकर एकाकार हो गयी।" यह अक्का की चरम स्थिति रही। उनकी कीर्ति अमर रह गयी।

बसवण्णा के वचनों की तरह अक्का के वचन भी सत्ययुक्त एवं साहित्यिक हैं। भावगीत के माधुर्य से युक्त हैं। उनके कुछ गीत तो हृदय-मंदिर में ज्योतिर्मय किरणें बखेरने वाली प्रज्वलित ज्योति के समान हैं जो कभी नहीं बुझता। साहस के साथ सत्य शोधन करने वाली इस धर्मवीर भक्तिन अक्कमहादेवी ने भावावेश-जन्य स्फूर्ति से जो गीत गाये, वे पाठकों के भी हृदयों को स्पंदित कर वहाँ आनंद की लहरें पैदा कर देते हैं। उन्होंने अपने जीवन में जिन कष्टों को भोगा और जिन रोक-रुकावटों का सामना किया, संघर्षों के साथ जूझा—इस सारे लोकानुभव को इन चंद बातों में स्पष्टता के साथ व्यक्त किया है। देखिये वे कहती हैं—"बेट्टद मेलॊन्दु मॆनयमाडि मृगगळिगंजिदॊडॆन्तय्या ! समुद्रद तडियल्लि मॆनयमाडिनॊरॆतॆरॆगंजिदॊडॆन्तय्या ! संतॆयॊळॊन्दु मनॆयमाडि शब्दक्कॆनाजिदडॆन्तय्या ! मल्लिकार्जुन देव ! केळय्या, लोकदोले हुट्टिदॆबळिक स्तुति निन्दॆगळु बन्दडॆ, मनदलि कोपव ताळदॆ समाधानियागिरबेकु !" तात्पर्य यह कि—पहाड़ पर घर बनाकर हिंस्र पशुओं से डरने से क्या होता है? समुद्र के तीर पर घर बनावें और लहरों व फेन आदि से डरने का क्या माने होता है? बाजार में घर बनाकर हल्ले-गुल्ले से डरने का कोई अर्थ नहीं। सुनो, हे देव ! चॆन्निमल्लिकार्जुन, दुनिया में पैदा होने के पश्चात् निंदा-स्तुति दोनों को भुगतना पड़ेगा ही। इन सब निंदा-स्तुति आदि होने पर क्रोध न करके शांतभाव से रहना होगा।"—अक्कमहादेवी का लोकानुभव कितना सारवान् होकर इन वचनों में अभिव्यक्त हुआ है। उनके जीवित काल में ही उनके वचन लोगों के आदर के पात्र बने होंगे—ऐसा ही लगता है। चॆन्नबसवण्णा उनके वचनों की महत्ता के बारे में कहते हैं :—

"आधर अरवत्तु वचनक्कॆ दण्णायकर इप्पत्तुवचन, दण्णायकर इप्पत्तुवचनक्के प्रभुदेवर हत्तुवचन, प्रभुदेवर हत्तुवचनक्कॆ अजगण्णन ऐदुवचन, अजगण्णन ऐदुवचनक्कॆ कूडल चॆन्न संगय्यनल्लि महादेवियक्कन ऒन्दुवचन काणा सिद्धरामय्या"—कि "पुरातनों के साठ वचनों के लिए दण्णायक (बसवण्णा) के बीस वचन बराबर हैं। दण्णायक (बसवण्णा) के बीस वचनों के लिए प्रभुदेव के दस और प्रभुदेव के दस वचनों के लिए अजगण्णा के पाँच वचन बराबर हैं, इस अजगण्णा के पाँच वचनों के लिए कूडल चॆन्न संगय्या से महादेवियक्का का एक वचन बराबर है—इसे अच्छी तरह जानो हे सिद्ध रामय्या "—यों चॆन्नबसवण्णा सिद्धरामय्या से कहते हैं। ठीक ही है, महादेवियक्का को यह गौरव मिलना ही चाहिए।

अक्कमहादेवी ने सड़सठ (67) त्रिपदियों (एक छंद) में "योगांगत्रिविधि" नामक एक तात्विक ग्रंथ की रचना की है। उनके वचनों की तरह ये त्रिपदी भी उनके अनुभावी जीवन पर प्रकाश डालती हैं। उनकी त्रिपदी का एक उदाहरण यह है—

"कोटि रवि शशिगळ्गें मीटाद प्रभॆ बन्दु, नाटितु एन्न मन दॊळगदरिन्द ? दाटिदॆनो भवद कॊळगळ ।" भाव यह कि "करोड़ों चन्द्र-सूर्यों की कांतिकिरण आकर मेरे हृदय में चुभे जिससे मैं दुनियां के भँवर-जाल से पार पा गयी ।" इस तरह की त्रिपदियों में लोकोक्तियों की छाया भी स्पष्ट दिखती है ।

मुक्तायक्का महदेवियम्मा, लक्कमा

साहित्य की दृष्टि से न भी हो, आध्यात्मिक दृष्टि से महादेवियक्का के साथ-साथ ज्ञान के उस स्तर में बराबरी कर सकने वाली और भी कुछ वचनकार स्त्रियाँ हैं। शून्य-संपादने में दिखाई देने वाली ऐसी देवियों में मुक्तायक्का, महादेवियम्मा और लक्कमा प्रमुख हैं। मुक्तायक्का परमज्ञानी अजगण्णा की बहन है। भाई के मरने पर वह बहुत दुखी होती है। परंतु भ्रातृ-वियोग के दुःख से निकली उनकी वाणी पहुँचे हुए ज्ञानी की वाणी है। भ्रमण करते-करते एक बार प्रभुदेव अल्लम उनके पास आते हैं और उनसे पूछते हैं कि तुम कौन हो? तब प्रभुदेव को मक्तायक्का उत्तर देती है—"ऑब्बरिग् हुट्टदें अयोनियल्लिबन्दु दुर्बुद्धियादवळनेनेंम्बनण्णा? तलॅयळिदु नॅलॅगॅट्टु बॅळगुव ज्योति ऍन्न अजगण्ण तंदॅय बॅन्नबळियवळानय्या"— अर्थात् किसी योनि में जन्म न पाने वाले अयोनिज होकर भी मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, मैं आपसे क्या कहूँ? जिन्दा रहकर भी गृहहीन जीवन-यापन करने वाली मैं परंज्योति-स्वरूप अजगण्णा की बहन हूँ। प्रभुदेव को यह बात अच्छी तरह मालूम है कि अजगण्णा परम ज्ञानी है। इसलिए वह कहते हैं—अजगण्णा की मृत्यु, मृत्यु नहीं, वह परात्पर वस्तु के साथ ऐक्य होने की स्थिति है, यों कहकर प्रभुदेव अल्लम उनकी प्रशंसा करते हैं। मुक्तायक्का अज्ञानी नहीं, परन्तु उनका भ्रातृ-प्रेम उनकी ज्ञान रूपी अग्नि पर राख बनकर उसे ढंक रखा है। वह प्रभुदेव अल्लम से चर्चा करके उनके द्वारा उपदेश पाकर अपनी साधना में निरत रहकर आगे बढ़ती हुई मुक्ति को प्राप्त करती है। महादेवियम्मा मोळिगॅ मारय्या नामक महान् शिवभक्त की धर्मपत्नी है। वह महान् पतिव्रता है। अपने पति की इच्छा के अनुसार उन्हें ऐक्यस्थल के रहस्य को विस्तार के साथ समझाती हैं कि—"कायवुळ्ळन्नक्क लिंगपूजॅ, आत्मवुळ्ळन्नक्क अरिविन भेद, पुरुष नी सतिनानॆंम्बल्लि उभयद बीज; नानीनॆंम्बन्नक्क अंगद लिंगदल्लियॆं निरंगवागबेकु ऍन्नय्य प्रिय इम्मडि निःकळंक मल्लिकार्जुन।"—"काय भ्रमॅयिंद कैलास, जीवभ्रमॅयिंद महद कूटवॆंम्बुदु, कायद जीवद भेदवनरितल्लि अत्तलित्तलॅन्दु मत्तॆं हलुबलिल्ल, इदु निश्चयद कूट"। "पुरुष पाषाणदन्तॆं भिन्नभावविल्दॆं अरिदरुहिसिकॊम्ब कुरुहु एकवादल्लि ऐक्यस्थल एन्नय्य, इदक्कॆं भिन्न भावविल्ल, अदुऍन्न निन्न कूटद सुखदन्तॆं, इद चन्नागि तिळिदुनोडि कॊळ्ळि, अल्लि इल्लि ऍम्ब गॅल्लगुळितनबेड, हागॆंम्बल्लियॆं बयलागबेकु,"—तात्पर्य यह कि "जब तक शरीर का अस्तित्व है और इस अस्तित्व का ज्ञान है तब तक लिंगपूजा चलेगी, आत्मा के पृथक् अस्तित्व का बोध जब तक है तब तक बुद्धिभेद बना रहेगा। तुम पुरुष मैं स्त्री, यह भावना जब तक बनी रहेगी तब तक द्वैत भावयुक्त भेदभाव है ही; मैं-तुम कहलाने के भेद जब तक हैं तब तक इस भेदभाव को मिटाने तथा अंग में ही लिंग भाव को पहचानने की साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न हो और अंगांगी भाव मिटकर निरालिंग भाव रह जाय तब निष्कलंक ईश्वरत्व की प्राप्ति होगी। शरीर भ्रम से कैलास-प्राप्ति का भ्रामक भाव और जीव के भ्रम से महत् तत्त्व संग की भ्रामक भावना बनी रहेगी। जब काय और

जीव के भेदभाव का ज्ञान होगा तब दुविधापन मिटकर परतत्व में ऐक्यभाव होगा, वही वास्तव में ऐक्य स्थल है।"—"कठोर प्रस्तर की तरह समझने-समझाने का चिह्न एक हो जाने पर वही ऐक्यस्थल है। इसमें भिन्न भाव नहीं हैं। वह मेरे-तेरे एकाकार होने जैसा है—इस बात को अच्छी तरह बूझकर समझो, इधर-उधर के भेदभाव के कारण भटकते फिरना नहीं, इसी अवस्था में शून्यता को प्राप्त करना और शून्य में लीन होना चाहिए।" यों बड़ी विनम्रता के साथ आत्मज्ञान की शिक्षा देने वाली इस भक्तिन की वाणी एवं उनके व्यक्तित्व को जब देखते हैं तो हमें ऐसा भान होने लगता है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषि मैत्रेयी और गार्गी आदि की तरह यह सन्त शरण-शिरोमणि महादेवियम्मरा है। यह शरण-शिरोमणि महादेवियम्मा हमें अनायास ही मैत्रेयी-गार्गी का स्मरण दिला देती है। लक्कम्मा आय्दक्कि मारय्या नामक महाशिवभक्त की पत्नी है। शरणों के खेतों में बालों से गिरे अनाज को चुनकर लाना और शरण समूह को दासोह अर्थात् खिलाना-पिलाना उनका नियम था। एक बार की घटना है कि यह आय्दक्कि मारय्या प्रभुदेव के पास वेदान्त विषयक चर्चा गोष्ठी में इस प्रकार तन्मय हुआ कि नित्य-नियम को भूल गया। इस दशा में उनकी पत्नी लक्कम्मा वहाँ गोष्ठी में बैठे अपने पति के पास गयी और उन्हें अपने नित्य-नियम की याद दिलायी। तब यह आय्दक्कि मारय्या वहाँ से उठकर अपने कर्त्तव्य कर्म करने के लिए भामा और बसवण्णा के घर के आँगन में बिखरे पड़े चावल को बटोर कर उसकी गठरी बाँध घर ले आया और अपनी पत्नी लक्कम्मा को दिया। लक्कम्मा ने आवश्यकता से अधिक चावल लाने पर आक्षेप किया तो पति ने पत्नी की बात को सही समझकर जितना आवश्यक था उतना अंश उसमें से निकाल कर बाकी चावल ले जाकर बसवण्णा के घर के आँगन में—जहाँ से चुन लाया था—ही बिखेर कर चला आया। फिर उन्होंने अपनी पत्नी से मुक्तिमार्ग का उपदेश देने के लिए प्रार्थना की। तब अपने पति से लक्कम्मा कहती है—"माडुव माटनुळ्ळन्नक बेरॊन्दु पदवनरसतक्कें ? दासोह-वॆंम्ब सेवॆय बिट्टु नीसलारदॆं कैलाशवॆंम्ब आसॆबेड, मारय्या प्रिय अमरेश्वर लिंगविद्दठावे कैलास"। "कैद कॊडुवरल्लदॆं कलितनव कॊडुवरुंटें मारय्या, हॆण्णु कॊडुवरल्लदॆं कूटक्कॊळगादवरुंटें मारय्या ? कळुव चोरगॆ बडवरॆंम्ब दयबुंटें मारय्या ? मानव नोडि भक्तिय नोडिहॆनॆंम्बवगॆ ऎंम्मल्लि गुणव संपादिसलिल्ल मारय्या, शूलव हाय बंदल्लि मत्तिन्नु साविगॆ हंगुपडलेकें ?" तात्पर्य यह कि "जब तक करने के लिए कर्त्तव्य कर्म है तब तक दूसरे काम की खोज क्योंकर करनी चाहिए ? जो शरण दासोह-सेवा करते आ रहे हैं उसे समुचित रीति से न चला कर कैलाश में जाने की आशा क्यों करें ? हे मारय्या ? प्रिय अमरेश्वर लिंग जहाँ हो वहीं कैलास है, समझो। हाथ में जो है सो देना चाहिए। अनावश्यक अर्थहीन साहस करके देने की कोशिश व्यर्थ है। अगर कोई देना चाहे तो कन्या का दान देते हैं न कि कन्या को भोगने देंगे। चोरी करने वाले चोर को जहाँ चोरी करने जाएँगे वहाँ "वे लोग गरीब हैं इस वजह से उनके यहाँ चोरी करना नहीं चाहिए"—इस तरह का दयाभाव होगा ? व्यक्ति को देखकर या लाज-शर्म का लिहाज करके कोई कहे कि मैं भक्त हूँ या भक्ति को मैंने समझा, देखा है ऐसे के पास गुण रूपी सम्पत्ति कहाँ ? उन्होंने गुणवान बनने का यत्न ही कहाँ किया ? जब त्रिशूल ही मारने आवें तो फरसे से डरना क्यों ?" यों उपदेश देकर

निरहंकार भाव से त्रिविध भिक्षा (दासोह देना) ही महघन लिंग में एकाकार होना है—यह बात समझा देती है अपने पतिदेव को। पति-पत्नी दोनों कथनी और करनी में एक रूप बनकर बसवण्णा आदि अनेक शिव भक्तों के आदर-प्रेम के पात्र बनकर अन्त में लिंगैक्य हुए।

चॅन्न बसवण्णा :

अनुभव मंटप के बुजुर्ग सदस्यों में बसवण्णा के भांजे चॅन्नवसवण्णा का विशिष्ट स्थान है। ज्ञान प्रभुदेव ज्ञानमार्ग के अग्रणी के रूप में प्रसिद्ध है तो बसवण्णा भक्ति-मार्ग के अग्रगामी के रूप में ख्यात हैं। इसी तरह वीरशैव धर्म के आचार निरूपण में चॅनबसवण्णा प्रख्यात व्यक्ति हैं। इनके वचन वीरशैवाचार के आधार ग्रन्थ हैं। कई स्थानों पर इन्होंने आगम ग्रन्थों के वाक्यों का उद्धरण देकर अपनी बात को पुष्ट किया है। अनुभव मंटप के बुजुर्ग शरणों तथा प्रभुदेव आदि महान भक्तों ने भी चॅन्नबसवण्णा के प्रति आदर दिखाया है। बसवण्णा को दंडनायक नाम से अभिहित कर उनके कार्यक्षेत्र में उनके दाहिने हाथ जैसे रहकर काम करने वाले चॅन्नबसवण्णा को छोटा दंडनायक कहकर गौरवान्वित किया है। परन्तु उनके वचनों में और "करण-हसुगॆ, मंत्रगोप्य, मित्रगोप्य" आदि ग्रन्थों में काव्यांश बहुत कम है। उनके वचनों में अभिव्यक्त आत्मज्ञान और स्पष्टकथन स्तुत्य होने पर भी अन्य मतों के प्रति जो असहिष्णुतापूर्ण कटुवचन हैं वे समन्वय दृष्टि के लिए अड़चन पैदा करने वाली कटूक्तियाँ बन गयी हैं। उनके वचनों में यत्र-तत्र दिखाने वाली प्रतिभा सुन्दर लगती है। उनके वचनों से उदाहरणार्थ उद्धृत यह वचन देखिए—"बट्ट बयलॆल्ल गट्टिगॊण्डॊडॆ स्वर्ग मर्त्य पाताळक्कॆ, ठाविन्नॆल्लिहुदो ? मेघ जलवॆल्ल मुत्तादडॆ सप्त सागरगळिगॆ उदक-विन्नॆल्लिहुदो ? कष्टजीवि मनुजरॆल्ल नॆट्टन शिवज्ञानि गळादडॆ, मुंदे भवद बळ्ळिगॆ बीज विन्नॊल्लिहुदो ?—गुरुभक्ति परित्यज्य सद्योपिनरकं व्रजेत्—इंतॆन्दुदागि नम्मकूडल संगय्यनल्लि साविरकॊब्ब सत्य, लक्षकॊब्बभक्त, कोटिगॊब्ब शरण,"—अर्थात् सारा शून्य घनीभूत हो जाय तो स्वर्ग-मर्त्य-पाताल के लिए जगह कहाँ ? मेघनिःसृत सारा जल मोती ही बन जाय तो सात समुन्दरों के लिए पानी रहेगा कहाँ ? मेहनत करके जीने वाले सब लोग यदि शिवभक्त हो जाय तो आगे संसार की सृष्टि के लिए आवश्यक बीज रहेगा कैसे ? "गुरु भक्ति को छोड़कर जीनेवाला तत्काल नरक को जाएगा" ऐसी जो नीति कही गयी है। हमारे कूडल संगमदेव को इस सृष्टि में हजारों में ढूंढो तो एक सत्यवादी मिलेगा, लाखों में एक भक्त और करोड़ों में एक शरण मिल सकेगा।" चॅन्नबसवण्णा के ऐसे वचनों से यह स्पष्ट विदित होता है कि वे कितने गम्भीर चिंतनशील रहे और कैसे प्रतिभावान् रहे। उनके वचन उनकी चिंतनशीलता एवं प्रतिभा के लिए गवाही देते हैं। प्रभुदेव अल्लम ने उन्हें "महाज्ञानी" कहकर गौरवान्वित किया है। ठीक ही है, उनके वचनों में विस्तार के साथ अपनी ज्ञानानुभूतियों को व्यक्त करके इस गौरव के लिए सर्वथा पात्र हैं। कार्य-कारण से समन्वित उनके वचन कहीं-कहीं काफी बड़े भी हो गये हैं।

सिद्धरामय्या :

मॉरडिय मुद्द-सुग्गव्वॆ नामक दंपती की संतान है सिद्धरामय्या। इनके माता-

पिता बड़े ही सात्विक जीव थे। लड़का सिद्धरामय्या बचपन में पगले से लगते थे देखने वालों को। इसी अर्धभ्रांत अवस्था में उनका बाल्यकाल बीता और ऐसी दशा में वे युवावस्था तक भी पहुँच गये। इस अवस्था में एक बार कुछ भक्तों की एक मंडली के साथ उन्होंने श्रीशैल की यात्रा की। वहाँ से लौटने पर शिवभक्ति से प्रभावित होकर तन्मयता के साथ संसार से विरक्त होकर अपना ही एक मठ बनाकर साधना-निरत होकर वहीं रहने। इस कर्मयोगी की कीर्ति ने चारों ओर फैलकर कई लोगों को प्रभावित किया और वह एक प्रबल आकर्षण का केन्द्र बना। इन लोगों की मदद से उन्होंने वहीं अपने मठ के पास सॉन्नलिगें नामक एक बस्ती बसायी और कई शिवालय बनवाये और एक बड़े तालाब का निर्माण भी कराया, लोकप्रिय बने। इस स्थिति में भ्रमण करते हुए प्रभुदेव सॉन्नलिगें ग्राम में आये, इस कर्मयोगी सिद्धरामय्या को "उजड्ड" कहकर उन्हें अपने साथ कल्याण ले आये। शिवदीक्षा में दीक्षित न होने पर भी इस महिमामय व्यक्ति को वहाँ के शिव शरणों ने आदर के साथ स्वागत किया। वहाँ सिद्धरामय्या ने चॅन्नबसवण्णा से वीरशैव की दीक्षा ली। अनुभ मंटप के शरणों की गोष्ठी में प्रतिष्ठित व्यक्ति भी बने। भक्ति-साधना में अपने शेष जीवन को गुज़ार दिया और शिवैक्य हुए।

गंभीर विषयों को सुलभ रीति से सौर सरल शब्दों में बताना उनके वचनों का वैशिष्ट्य है। उनकी भाषा व भाव दोनों ही बहुत स्पष्ट हैं, कहने में लुकाछिपी नहीं। इन वचनों में पारिभाषिक शब्दों की गड़बड़झाला भी नहीं है। यत्र-तत्र उनकी जीवनी पर भी प्रकाश डालने वाली सूचनाओं के कारण वे वचन कथात्मक रमणीयता से युक्त होकर सुन्दर लगते हैं। उनके वचन छोटे-छोटे और भाव के बोझ से लचकते हुए लता-से लगते हैं। उदाहरणार्थ कुछ वचन उद्धृत हैं—

(1) "वेषव धरिसि फलवेनय्या, वेषदंताचरणें इल्लदन्नॅक्क ? वेदांतवानोदि फलवेनय्या ब्रह्मतावागदन्नॅक्क ? नानु कॅरॅयतोडि फलवेनय्या पुण्यतीर्थगळु बरदन्नक्क ? कपिल सिद्ध मल्लिनाथा !"

(2) "भक्तिय बॅळसि हेळिदें नल्लदें भक्तियमाडि बॅळॅयलिल्ल नानु, भक्तिय शक्ति बसवण्णगायित्तु, ज्ञानद शक्ति चॅन्नबसवण्णगायित्तु, योगद सिद्धि सिद्धरामगायित्तु निम्मरमनॅयल्लि नोडय्या कपिलसिद्ध मल्लिकार्जुन !"

(3) "नदियनीरू होदय्या समुद्रक्कें समुद्रदनीरू बरवय्या नदिगें नानु होदें-नय्या लिंगद कडॅगें; लिंग बारदु नोडय्या नन्नवाडॅगें, भग मुनिदरें तदॅमुनियनु, ना मुनि-दरें नी मुनियें नोडय्या कपिलसिद्ध मल्लिनाथा !"

इन वचनों का क्रमशः भाव यह है कि—(1) "जब तक भेस आचरण के अनुरूप न हो तब तक भेस धारण करने का क्या प्रयोजन है ? जब तक परब्रह्म में ऐक्य न हो तब तक वेदांत का अध्ययन किस काम का ? मैंने तालाब बनाया सही, परंतु उसमें पुण्यतीर्थ जब तक समाविष्ट न हो तो वह किस फल के लिए ? बताओ, हे कपिल सिद्ध मल्लिनाथा !" (2) "अपने अन्दर भक्ति को विकसित करके मैंने कही, यह नहीं कि भक्ति करके उसे (भक्ति को) बढ़ाया। हे कपिल सिद्ध मल्लिकार्जुना ! तेरे भवन में भक्ति बसवण्णा की संपत्ति हो गयी, ज्ञान शक्ति चॅन्नबसवण्णा की बन गयी, योगसिद्धि सिद्धराम की बनी।" (3) "नदी का सारा जल समुद्र में विलीन

होता है, फिर लौटकर नदी में नहीं आता। मैं लिंग की तरफ हो गया, लिंग मेरी तरफ नहीं आता। बेटा क्रोध करे तो बाप उस पर गुस्सा नहीं करेगा। अगर मैं गुस्सा भी करूँ तो तुम गुस्सा नहीं करोगे। है न ? हे कपिल सिद्ध मल्लिनाथा !"

इस तरह के छोटे-छोटे भाव-भरे वाक्य ही इनके वचन हैं। अपनी स्थिति की ओर इंगित करने वाले उनके वचन देखिए—वह शिवजी से कहते हैं—"निन्न काट एँन्न प्राणदोट," "नीनिक्किद तॉड्क बिडबारदु, नीं बिडिसिद लॉडकविक्क वान्दु"—अर्थात् "हे भगवन्, आंख मिचौनी तुम्हारे लिए खेल है और वह मेरे लिए जान पर खेलना (कष्टदायक) बन गया है।" "हे ईश्वर ! तुमने जिस फंदे में डाला है उसे तो तोड़ना नहीं, मगर तुमने जिसे तोड़ा उसमें फँसना भी नहीं।"—और कहते हैं—"अंगवॅन्दरॅ अज्ञान, लिंग वॅदरॅ सुज्ञान।" "कायविडिदिह्न्नवक्क कामवे मूल, जिवविडिदिन्नक्क क्रोधवे मूल; व्याप्तियुळ्ळन्नक्क सकल विषयक्कॅ आशॅये मूल, एँन्न आशॅयपाश गासि माडुसिदॅ, शिवयोगद लेसिन ठाव तोरू कपिल सिद्ध मल्लिकार्जुना,"—अर्थात् "अंग (शरीर) अज्ञान है। लिंग सुज्ञान है। याने शरीर की मांग पूरा करने का सारा प्रयत्न अज्ञान, शरीर को भूलना परतत्व संबंधी ज्ञान सुज्ञान है। जब तक शरीर है तब तक काम (वासना) उसके मूल में है ही। जब तक जीव है तब तक क्रोध आदि साथ लगे ही रहेंगे। आकांक्षाएँ विस्तृत होंगी तो आशा बढ़ेगी ही। हे भगवान् ! हे कपिल सिद्ध मल्लिकार्जुना ! मेरे आशा-पाश को तोड़ो, इस पाश के कारण मैं बहुत दुःखों का सहन कर रहा हूँ। मुझे शिवयोग का वह निश्चिन्त स्थान दिखाओ जहाँ मैं सब कुछ से दूर होकर तदेकचित्त बनकर साधनारत रहूँ।" यों अरिषड्वर्ग के स्वरूप का दिग्दर्शन कराता है। कर्मभक्ति ज्ञानमार्गियों के स्वरूप का निरूपण भी देखिये—बताते हैं कि "कायनानॅन्दरॅ कर्मकांडि, सकलक्रिये ईशार्पणवॅन्दरॅ भक्तिकांडि; सकल कर्म साक्षि एँन्दरॅ ज्ञान कांडि," अर्थात् "शरीर ही मैं हूँ कहने पर वह कर्मकांडी है, समस्त कर्म को ईश्वरार्पण करने पर वह भक्तिकांडी है, सर्व कर्म साक्षी कहने पर ज्ञानकांडी है।"—देखिये तो यह विवेचन कितना मार्मिक है। उनके अनेक वचनों से यह विदित होता है कि प्रभुदेव अल्लम के वचनों की छाप उनपर गहरी पड़ी है। यह उदाहरण इस बात को स्पष्ट करता है, देखिये—"अल्लदय्यगळु इल्लदाटक्कं मॅगोट्टु केडु नोडा ! इल्लदय्यगळु अल्लदाटक्क मॅगॉडरु नोडा, इन्दॅल्ल अल्लमन बल्ल बोधॅयिन्द सल्लीलॅ यागित्तु वल्लभशिव कपिल सिद्ध मल्लिकार्जुनदेवा।" तात्पर्य यह कि—"जो काय की माँग को प्राधान्य देने वाले देही हैं वे अवांछित कृत्य करके कैसे सर्वनाश की ओर जाते हैं, देखो; जिन्होंने शरीर की सत्ता को न माना और उसे केवल लिंगदेह समझा वे अवांछित कृत्य करेंगे ही कैसे ? आज ज्ञानी अल्लम (प्रभुदेव) के ज्ञानोपदेश के कारण समस्त लीला ईश्वरीय सल्लीला के रूप में परिणत हो गयी है। सबका पालक पति स्वामी सब कुछ वही परमपिता शिव महादेव है।" इस तरह की उक्तियाँ भी उसके वचनों में यत्र-तत्र मिलते हैं जो प्रभुदेव से प्रभावित हैं। उन्होंने अपने को कई बार योग साधक और योगी कहा है। उनके वचनों से ऐसा लगता है कि उन्होंने पतंजलि के योगशास्त्र का अभ्यास भी किया होगा। यह कर्मयोगी के स्तर से ज्ञानयोगी के स्तर तक प्रभुदेव के प्रभाव से पहुँच गये होंगे। उनके वचन ही स्पष्ट बताते हैं उनका कैसा-कैसा विकास हुआ है।

आदय्या :

यह आदय्या गुजरात के द्वारिका नगर से व्यापार-धंधे के सिलसिले में कर्णाटक में आकर बसने वाले प्रतीत होते हैं। यह भी एक वचनकार हुए। इन्होंने धारवाड़ जिले के लक्ष्मेश्वर नामक स्थान में अपना व्यापार-धंधा शुरू किया और उसका निर्वाह किया। उसी लक्ष्मेश्वर के एक जैन व्यापारी थे पारिशेट्टी। इस पारिशेट्टी की लड़की पद्मावती थी जो बहुत सुन्दर थी। इस सुन्दरी पद्मावती का प्रेम आदय्या के प्रति था। यह प्रेमांकुर बढ़ता गया। अंततः इस व्यापारी आदय्या की इच्छा के अनुसार यह सुंदरी पद्मावती जैन धर्म से शैव धर्म में आई और यह प्रेम विवाह संपन्न हुआ। कालांतर में यह आदय्या बहुत प्रसिद्ध धनवान और प्रभावशाली व्यक्ति बना, इतना ही नहीं, बहुत बड़े भक्त के रूप में भी प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने लक्ष्मेश्वर के प्रसिद्ध जैन मंदिर में 'सोमेश्वर" नामक शिवलिंग की स्थापना की और जैन मंदिर को शिव देवालय के रूप में बदल दिया। अपनी शिवभक्ति के कारण शरणों में एक अग्रगण्य स्थान भी उन्होंने प्राप्त किया। उन्होंने कुछ वचन लिखे और उन्हें "सौराष्ट्रेश्वरा" के नाम से अंकित किया। उनके ये वचन साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण न होने पर भी इस बात की गवाही देते हैं कि वह एक श्रेष्ठ शिवशरण थे। एक गुजराती का उन दिनों कर्नाटक प्रदेश में आकर व्यापारी के रूप में बसना और यहाँ की भाषा कन्नड सीखकर शैव दीक्षा में दीक्षित होकर प्रसिद्ध शरण संत बनकर वचन साहित्य की रचना करना अभिनंदनीय अवश्य है। हडपद अप्पण्णा, मडिवाळ माचय्या, सॉड्डळ बाचरस, डोहर कक्कय्या, बहुरूपी चौडय्या, मोळिगे मारय्या, एकांतद रामय्या, मेदार केतय्या, वेंगल शांतय्या, गोरक्ष--आदि असंख्य शरणवचन-रचना के कार्य में लगकर कीर्तिवान बने हुए हैं। इन सब के वचनों का विवेचन इस कृति की परिमित सीमा में संभव नहीं पाता, इतना ही नहीं, सभी वचनकारों के नाम देना या उनकी बृहत् सूची देना भी इस पुस्तक की सीमा में साध्य नहीं है।

बारहवीं सदी के कल्याण का स्मरण ही रोमांचकारी है। प्रभुदेव, बसवण्णा, चॅन्नबसवण्णा—वैराग्य, भक्ति और ज्ञान – ये तीनों व्यक्ति इन तीनों बातों के लिए संकेत जैसे रहकर, इन त्रिमूर्तियों के द्वारा संचालित कार्यक्षेत्र और उनके प्रभाव से आवेष्टित उस प्रभावलय में उनके आगे-पीछे चलते-फिरते शरण समूह की कल्पना करेंगे और साथ ही वहाँ की धर्म-जिज्ञासा तथा वृद्ध ज्ञानी शरणों का अनुभाव निरूपण आदि बातों का चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। इस मानसिक हृत्पटल पर गुजरते हुए इन महानुभावों के व्यक्तित्व से हृदय प्रसन्न हो जाता है। कर्म को महत्त्व देकर सर्वसमता के आदर्श का उद्घोष किया। समाज के प्रत्येक स्तर के लोगों ने इन आदर्शों की छाया में प्रश्रय पाया।

प्रत्येक कर्म को शिवार्पण-बुद्धि से करने पर उन में ऊँच-नीच का भेदभाव कहाँ? कर्म को गौरवास्पद स्थान देकर समाज में रहनेवाले भेदों को मिटाने के लिए कटिबद्ध हो कर अनगिनत मत-मतांतरों व देवी-देवताओं के जाल को काटकर एक-मत और एक ईश्वर की भावना को स्थिर करने के लिए कमर कस कर, चरित्र की नींव पर धर्म संस्थापन करके सम्पूर्ण समाज का पुनः संगठन करने की प्रतिज्ञा से आगे बढ़नेवाले शरणों ने अपनी कथनी-करनी में एक रूप रहकर जन-मन को आकर्षित किया।

लोगों में नवीन दृष्टि आयी, नव समाज निर्माण की स्फूर्ति मिली। इसीलिए एक ही समय में अनगिनत लोग शरण पन्थ में सम्मिलित हो कर वचन-रचना की। इन सभी शरणों की आशा-आकांक्षाएँ और इन सभी का आदर्श एक होने पर भी उनकी बुद्धि, ज्ञान, संस्कार, संस्कृति, प्रतिभा-आदि में विभिन्नता का रहना सहज ही है। धोबी, कुम्हार, चमार आदि भिन्न-भिन्न व्यवसाय करनेवाले अनेक व्यक्ति वीरशैव के झंडे के नीचे सम्मिलित हुए और सब समान धर्म-भ्रातृ बने। परन्तु उनकी बुद्धि, प्रतिभा, संस्कार आदि में समानता का होना कैसे सम्भव है? प्रखर प्रतिभा और गहरा अनुभव न हो तो ऐसे व्यक्तियों की बातें सम्प्रदाय के घेरे मे बाहर की नहीं हो सकतीं अथवा केवल अनुकरण की छाया मात्र होती हैं। शरणों की स्तुति, समाज पर छींटा कशी, वीर शैवाचार और भक्ति, वैराग्य आदि का उपदेश—यह सब एक तरह से पिष्ट-पेषण बनते हैं। ऐसी स्थिति में कहीं कहीं और कभी-कभी ऐसे लोगों के वचन रूक्ष बनकर विकृत होकर ग्राम्य बनकर असहनीय हो जाते हैं। "कन्नड के उपनिषद्" कहलानेवाले ये वचन कलंकित भी कभी-कभी हो गये हैं। ऐसे भी वचन पाये जाते हैं जो केवल अनुकरण करने जाकर असफल हो गये हैं।

बसवण्णा के जीवित रहते उनके जीवन के अन्तिम समय में जो राजकीय क्रान्ति कल्याण में हुई उसके कारण वहाँ के वचनकार-शरणों को विभिन्न दिशाओं में बिखर जाना पड़ा। इस नये धर्म के अध्वर्यु थे बसवण्णा, प्रभुदेव, चॅन्न बसवण्णा। इन तीनों को क्रमशः सगम, श्रीशैल, उळिवि जाकर रहना पड़ा और वहीं वे तीनों शिवैक्य हुए। इनके साथ जो इनके अनुयायी गये वे और विभिन्न दिशाओं में बिखरे शरण अपने धर्म के आधारभूत ग्रन्थ वचन वाङमय को भी अपने साथ लेकर गये होंगे। अपने धर्म पर जो आघात पड़ा उसका निवारण करके फिर से शरणों ने वीर शैव को ऊँचे स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न भी किया होगा। बारहवीं सदी के अन्त में आदॅय्या और एकान्तद रामय्या ने पुनः धर्म-संस्थापन के कार्य में अग्रसर होकर नेतृत्व करने का साहस किया। इस काम में काफी हद तक वे विजयी हुए भी, तथापि वचन वाङमय की वृद्धि अवश्य ही रुक गयी। तेरहवीं सदी के पूर्वार्ध में होय्सल राजाओं के मन्त्री कॅरॅय पद्मरस ने वीरशैव धर्म के पुनरुद्धार कार्य में सहायता की। उसी समय में महाकवि हरिहर और राघवांक --इन दोनों ने काव्य रचना की और इस तरह वीरशैव धर्म के प्रचार में सहायक हुए। परन्तु ये मुख्यतः कवि थे, वचनकारों की तरह धर्मोपदेशक नहीं। इन कवियों ने वचनकारों के विषय में काव्य रचना की, वचन-रचना नही की। वैसे लिखते वक्त वचनकारों के वचनों को अपनी कृतियों में स्थान दिया है। इस तरह वचनकारों के वचनों को उद्दृत करते समय इन वचनों के निर्माण के समय के सन्दर्भ, मनिवेश आदि पर उन्होंने प्रकाश डाला है।

यों वीरशैव सिर उठाकर अपने को चैतन्ययुक्त बनाने का प्रयत्न कर ही रहा था कि इतने मे यानी तेरहवीं सदी के अन्तिम चरण में समूचे दक्षिण भारत पर अलाउद्दीन खिल्जी के भयंकर आक्रमण शुरू हो गये। शक्तिशाली हिन्दू राज्य मिट्टी में मिल गये। भयंकर लडाइयों के फलस्वरूप हिन्दुओं के खून की नदियाँ बह गयीं। इनके सारे ग्रन्थ अग्निदेव की आहुति बन गये। इस उथल-पुथल में सम्भवतः वचन साहित्य का बहुतांश नष्ट भी हुआ होगा। इस घटना के कुछ समय पश्चात् चौदहवीं

सदी में (करीब 1336 के आसपास) विजय नगर साम्राज्य की स्थापना हुई और तब वातावरण शान्त बना। विजय नगर साम्राज्य के राजाओं ने समय-समय पर मुसलमानों को हराया और अपने राज्य का विस्तार भी किया। उदार हृदय वाले ये राजालोग सब धर्मों को समान मानकर सबके आश्रयदाता बने रहे। पन्द्रहवीं सदी के प्रथम चरण में प्रौढ़ देवराया राजा थे। उन्होंने वीरशैव को बल दिया। इसी सदी के उत्तरार्ध में तोण्टद सिद्धलिंग यति ने (करीब 1470 में) आज के तुमकूर जिले के एडेयूर नामक ग्राम में अपना एक मठ स्थापित कर वीरशैवों की जागृति के लिए अपने उस मठ को केन्द्र बनाया। इस तरह राजाश्रय एवं गुरु का आश्रय दोनों को पाकर वचन वाङमय फिर से पनप उठा। उथल-पुथल के कारण और मुस्लिम आक्रमण के कारण जो सर्वनाश हुआ था, उस सर्वनाश के आघात से बचा-खुचा जो वचन वाङमय था—उसका संग्रह करके उन्हें षट्स्थलानुक्रम के अनुसार विभाजित करने का कार्य बड़े उत्साह के साथ चला। इतना ही नहीं, परिष्कृत वचन-वाङमय पर टीका टिप्पणी और व्याख्या भी होने लगी। कइयों के भाष्य भी प्रकाशित हुए। इस समस्त उत्साह पूर्ण कार्य का किरीटप्राय बना "शून्य संपादनें"। इस परिष्करण कार्य का सुफल है "शून्य संपादनें।"

यह "शून्य संपादनें" एक अत्यद्भुत ग्रन्थ है। बारहवीं सदी के शरणों की गोष्ठी और अनुभव मंटप का, तीन सदियों के पश्चात् छाया ग्रहण इसमें हुआ है। पक्षपातरहित दृष्टि से सर्वसाक्षी के रूप में शून्य-सिंहासन पर बैठे प्रभुदेव और उनके सामने अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए बसवण्णा, चॅन्न बसवण्णा, सिद्धरामय्या, मुक्तायक्क, महादेवियक्क, मोळिगय्या, मडिवाळय्या आदि असंख्यक शरण—और वहाँ इन के बीच में हो रही धर्म-स्वरूप निर्णय-सम्बन्धी चर्चा, इस विचार-मंथन में से उत्पन्न धर्म-नवनीत—इन सबको हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित करने वाला ग्रन्थ है यह "शून्य संपादनें"। वीरशैव धर्मावलंबियों के लिए यह एक प्रकाश स्तंभ है। बारहवीं सदी के सभी प्रमुख शरण यहाँ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उन शरणों में कुछ लोगों ने जो धार्मिक चर्चा की है, उस चर्चा का ही सार सर्वस्व यह महाग्रन्थ है।

"शून्य संपादनें" को देखकर ऐसा सोचना कि यह अनुभव मंटप की प्रतिकृति है—यह ठीक नहीं। ऐसा सोचना भी गलत होगा कि यह प्रभुदेव के द्वारा विरचित है। इस कृति का केन्द्र प्रभुदेव है, न कि इस कृति के कर्ता। ऐसा लगता है कि करीब चौदहवीं सदी के अन्त में या पन्द्रहवीं सदी के आरम्भ में सम्भवतः महादेवय्या नामक एक शिवगण प्रसादी व्यक्ति के द्वारा इस ग्रन्थ का सम्पादन कार्य सम्पन्न हुआ होगा—ऐसा प्रतीत होता है। बारहवीं सदी के कुछ बुजुर्ग शिवशरणों के वचनों का संकलन करके इस कृति का निर्माण किया गया है। इस ग्रन्थ में उपलब्ध होने वाले अनेक वचन आपसी संभाषण से लगते हैं जो प्रश्नोत्तर के रूप में हैं। इन्हें देखने से स्पष्ट होता है कि शिवशरणों में आपस में पर्याप्त चर्चा होती रही है। इस तरह के संभाषण किन प्रसंगों में और किन-किन के द्वारा तथा क्यों हुए होंगे—इसकी कल्पना करके तत्संबंधी शरणों के ही मुंह से जो वाक्य कहलाये गये हैं उन सबका संग्रहीत रूप यह "शून्य संपादनें" है। कोई एक शरण अपने कुछ वचनों के द्वारा ऐसा संभाषण शुरू करता हैं। दूसरा शरण अपने वचनों के द्वारा इस संभाषण को आगे बढ़ाता है, या प्रभुदेव

खुद सवाल के जवाब के रूप में अपने वचन द्वारा कुछ कहते हैं। इन वचनों के बीच सम्बन्ध अपने एक वचन के द्वारा स्थापित करता है संग्रहकर्ता। कभी-कभी तो यह संग्रहकर्ता इन सन्दर्भ वचनों के टीकाकार-से लगते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत कृति सहज ही कुतूहल पैदा कर पाठकों को पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। जिस तरह "पंचतंत्र" राजपुत्रों के लिए पाठ्य-पुस्तक बना वैसे ही यह "शून्य संपादनें" वीरशैव अनुभाव साहित्य के अध्ययन के लिए पाठ्य-पुस्तक बनने के लिए योग्य है। इसी कारण से बहुत जल्दी यह जनप्रिय बना। आधी या तीन चौथाई शतक के अन्दर इसके चार संस्करण प्रकाश में आये। अब जो प्रकाशित हुआ है वह चौथा परिष्कृत संस्करण है जो गूळूर वीरण्णा ओडेयर द्वारा हुआ है।

"शून्य सपादनें" का अर्थ है भगवान् का साक्षात्कार करना अथवा दिव्यानुभव को प्राप्त करना। अपना वचन ही ज्योतिलिंग बनकर प्रभुदेव के मुंह से निकलकर अज्ञानियों व अल्पज्ञानियों को अज्ञानांधकार से निकालकर सुज्ञान की ज्योति के प्रकाश में ला खड़ाकर अनेक शरणों को जैसे-मुक्तायक्का, सिद्धरामय्या, मरुळु शंकर, बसवण्णा, चॅन्न बसवण्णा, मडिवालय्या, आय्दक्कि मारय्या, मोळिगॅय्या, नुलिय चॅन्दय्या, घट्टिवाळय्या, महादेवियक्का, गोरक्ष आदि लोगों को अपने प्रभावलय के प्रभाव में लाकर शून्य संपादन के योग्य बनाया प्रभुदेव ने। यह बात इस ग्रन्थ से स्पष्ट होती है। फूल के संग से जैसे रेशा भी भगवान के सिर पर चढ़ जाता है वैसे ही इन शरणों के बीच हो रहे संभाषण के साक्षी रहकर अनेक शरणों ने शून्य-संपादनें के मार्ग को समझा होगा। इस बहुजनोपयोगी ग्रन्थ "शून्य संपादनें" के सम्बन्ध में श्री रानडे जी ने अपने path-way to God in Kannada literature नामक ग्रन्थ (पृष्ठ 6-7) में लिखा है—It is a very extraordinary work. The dialoques in shunya sampadana are planed very much on the lines of platonic dialogues. यों कहकर अपनी प्रशंसा के वाक्य प्रकट किये हैं। इसका भाव यह है कि—यह एक असाधारण ग्रन्थ है। इस शून्य संपादन ग्रन्थ के अन्दर जो संभाषण हैं वे दार्शनिक प्लेटो के संभाषणों की तरह लगते हैं। या यों कहिए कि उस ढंग से आयोजित संभाषण हैं। वहाँ के सोक्रेटीस की जगह यहाँ प्रभुदेव हैं। "शून्य संपादनें" (1958) के पृ० 1 में कहा गया है कि जैसे आकाश में अद्भुत दैवी कृतियाँ हैं वैसे ही इस पृथ्वी पर भी हैं। "शून्य संपादनें" ऐसी अद्भुत कृतियों में एक है। यह वास्तव में अत्युक्ति नहीं। इस कृति के सम्बन्ध में यह सचमुच ही ठीक है।

स्वतन्त्र युग के कवि

कन्नड साहित्य के लिए प्रेरणादायक एवं प्रबोधक तथा पोषक शक्ति निर्विवाद रूप से धर्म ही है। इस वजह से हमारे साहित्य में धर्म का अधिक प्रभाव होना सहज ही है। सूर्य एक है; उससे प्रकाश भी मिलता है, धूप से गर्मी भी मिलती है। परंतु प्रकाश को धूप और गर्मी को प्रकाश नहीं कहते। यद्यपि दोनों वैज्ञानिक दृष्टि से एक ही शक्ति के रूप हैं तो भी दोनों अलग-अलग हैं। इसी दृष्टि से जब हमने वचन वाङ्मय पर विचार किया तब इस बात को स्पष्ट बताया है। इन वचनों के कर्ता केवल सत्यान्वेषण करने वाले साधक थे न कि काव्य रचना करने वाले कवि। शक्कर के कारखाने में शक्कर के साथ अन्य कई चीजों का भी उत्पादन होता है। फिर भी हम उसे शक्कर का कारखाना ही कहेंगे न कि उन अन्य चीजों का। इस दृष्टि से हम इन वचनकारों को शास्त्रज्ञ, अनुभावी अथवा संत के नाम से अभिहित कर सकते है। भारत के समस्त वाङ्मय को काव्य और शास्त्र कहकर विभक्त करना कष्टसाध्य है, असाध्य नहीं। जिसमें धर्म ही विशिष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है और जो धर्म के लिए प्रमाणभूत आधार है वह शास्त्र है तथा जो धर्म की अपेक्षा आनंददायिनी अधिक है वह काव्य है। शास्त्र और काव्य के बीच एक विभाजक रेखा खींचना संभव नहीं। समग्र साहित्य राशि में कौन किस प्रकार है, यह जान लें, इतना पर्याप्त है। वचन-वाङ्मय वीरशैव मत के लिए धर्मग्रंथ के रूप में स्वीकृत है। इसलिए वह शास्त्र है। उत्तम काव्य के गुण उसमें दीखने पर भी, निम्न स्तर का साहित्य-गुण होने पर भी उसे साहित्य के नाम से अभिहित करें, तो भी वह धर्म-ग्रंथ ही है। कवि कु. वें. पु. (के. वी. पुट्टप्पा) बताते हैं—"जो संत बन सकता है वह धीरमति है, वह कवि बनना नहीं चाहता; क्योंकि सौ काव्यों का सार एक साक्षात्कार है।" वास्तविक जीवन एवं कला —इन दोनों में अंतर है। कला संस्कृति का विलास है, वास्तविक जीवन सृष्टि का विकास है। "अतः साक्षात्कार करने के लिए परिश्रम करने वाले वचनकारों को संत कहकर ही अभिहित करना चाहिए, न कि कवि। यदि कोई उन्हें कवि कहना चाहे या कवि कहकर ही पुकारना चाहे तो ऐसे लोगों के लिए हमारा यह आग्रह नहीं। परन्तु एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये वचनकार कवि न होने पर भी भावी कवियों के लिए प्रेरणा देने वालें अवश्य हैं। भावी कवियों के लिए पर्याप्त-प्रेरणा इन के द्वारा मिली है—इस बात में कोई संदेह नहीं है। इतना ही नहीं कई वचनकारों ने अपने जीवन ही को काव्य-वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है।

करीब-करीब इन वचनकारों के समय में ही वीरशैव तत्वों से युक्त काव्य-रचना भी आरंभ हुई होगी—ऐसा लगता है। ऐसे कृति-कर्ताओं में कॉण्डगुळि केशिराज प्रथम कवि हैं। इनका समय अभी अनिर्दिष्ट है। कवि हरिहर ने आदर के साथ इनका नाम लिया है। अतः यह निर्विवाद है कि यह कवि हरिहर से पूर्व का है। एक किंवदन्ती है कि यह कवि बसवण्णा से भी पचास वर्ष पहले का है। यह प्रतीति है कि केशिराज ने बहुत साहित्य का निर्माण किया है। परंतु अब केवल "षडक्षरिकंद" नामक

एक ही ग्रंथ प्राप्त है । "षडक्षरी मंत्र" की महत्ता और उसकी महिमा बताने वाली इस छोटी कृति को देखने से उनका कवि-हृदय बहुत साफ व्यक्त होता है । वे कहते हैं—

"तरियल् मोहद किच्चं,
परियल् भवपाशमं, मनोजन बिल्लं
मुरियल् मायेय बेरं
कॉरॅयल् जगमॊन्नमाशिशयॆम्ब पदं" —अर्थात् "मोहाग्नि को शांत करने के लिए, सांसारिक बंधन को काटकर मदन-चाप को तोड़ डालने के लिए और माया को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए यदि कोई शक्तिशाली है तो वह "ओ३म् नमः शिवाय" नामक महामंत्र ही है ।" इस मंत्र का जप करने से बढ़कर कोई शक्तिशाली मंत्र और नहीं । और कहते हैं—'अटमटद मातनाडियॆं, तुटिमिडुकलदेकॆं जनन मरणार्णवदा तटवं सार्चुव तॆप्पं दिटविदु केळॊन्नमशिशवायॆम्ब पदं'—याने 'बातों में ही लोगों को धोखे में डालकर, जप करने का ढोंग रचकर होंठ हिलाने से होता क्या है ? जन्म मरण रूपी समुद्र के पार उतारने में सशक्त तरनी के समान है यह मंत्र "ओ३म् नमः शिवाय" ।" इन पदों में ऐसी चीज़ बहुत कम है जो काव्य के लिए उपयुक्त वस्तु हो सके । परंतु वेदांत जैसे नीरस विषय को भी इस प्रतिभावान् कवि ने रसस्यंदिनी बनाया है । कदपद्य (कन्नड का एक छन्द) की रचना में भी यह कवि सिद्धहस्त है । मगर जिस उद्देश्य से इस युग को स्वतंत्र-युग के नाम से अभिहित किया है उसके अनुरूप वस्तु अथवा रीति आदि की नवीनता इस कवि में दिखती नहीं है । वचन शास्त्र के प्रभाव से जन्य कोई नवीन दृष्टि यहाँ नहीं है । इन्होंने उसी प्राचीन संप्रदाय को आगे बढ़ाया है । भाव, भाषा, रीति आदि की चिरनव्यता तथा एक बहुत बड़ी क्रांति को देखना हो तो हमें कवि हरिहरदेव में देखना चाहिए ।

हरिहरदेव—जिस श्रेष्ठ कवि के नाम से इस युग का नामकरण किया गया है वह महाकवि हरिहर है । इनका जन्म-स्थान कन्नड-प्रदेश का पवित्र क्षेत्र हंपे (पंपानगरी) है । इस क्षेत्र की एक ओर संसार की उन्नति-अवनति को समान दृष्टि से तल्लीनता के साथ ध्यानस्थ मूर्ति की तरह बैठे देखते रहने वाले ऋष्यमूक पर्वत है; दूसरी ओर लोककल्याणी कलकल स्वनी, दक्षिण की गंगा तुंगभद्रा नदी बह रही है । इन दोनों की सेवा तत्परता के साथ करने में संलग्न भक्तवृन्द-सी लगने वाली चारों ओर फैली प्राकृतिक सुन्दरता है—ऐसी प्रशांत प्रकृति की गोद में पुराण और इतिहास के लिए ख्यात वस्तु बनकर बैठा है यह पंपाक्षेत्र । देवाधिदेव विरूपाक्ष प्रकृति नटी की इस रंगभूमि में स्वयं अधिदेव बन बैठा है; इतना ही नहीं खुद भी इस लीला में भागी बना हुआ है । इस देवाधिदेव विरूपाक्ष के भक्त महादेव भट्ट और शर्वाणी देवी नामक दंपती के गर्भ-संभूत है यह हरिहरदेव । इनकी छोटी बहन का नाम रुद्राणी है । भाई और बहन दोनों माता-पिता के अत्यन्त प्रेम-पात्र बनकर बड़े हुए । रुद्राणी बहन हंपाक्षेत्र के एक शिवभक्त सज्जन का पाणिग्रहण कर सद्गृहिणी बनकर कीर्तिशालिनी हुयीं । इन्हीं देवी रुद्राणी का आत्मज है राघवांक नामक प्रसिद्ध कवि । हरिहर मायिदेव नामक गुरु के पास शिक्षा प्राप्त कर गणित शास्त्र में पारंगत हुए—ऐसा प्रतीत होता है । बाद को द्वारसमुद्र के होय्सल राजा नरसिंह बल्लाल के यहाँ हिसाब-

किताब लिखने के काम में नियुक्त हुए। स्वभाव से हरिहर भगवद्भक्त थे। जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ी वैसे-वैसे उनमें भक्ति भी बढ़ती गयी। इस हिसाब के प्रति एक अरुचि पैदा हो गयी। धीरे-धीरे मन भगवान विरूपाक्षदेव की तरफ खिचता गया। ऐसी अवस्था में एक विशिष्ट घटना घटी। इन्हीं दिनों में एक दिन यह हरिहरदेव राजा के दरबार में बैठकर हिसाब लिखते-लिखते कलम नीचे रखकर बड़ी चिन्तावस्था में अपने दोनों हाथ मलने लगे। उनकी इस स्थिति को देखकर राजा को बड़ा कुतूहल हुआ। उन्होंने पूछा कि यों हाथ मलने का कारण क्या है। तब हरिहरदेव ने बताया कि विरूपाक्षेश्वर के मन्दिर में मूर्ति के ऊपर छत के नीचे बंधा कपड़ा जलने लगा तो उसे बुझाने के ख्याल से यों हाथ मल रहा हूँ। उनके इस उत्तर को सुनकर इस बात की सत्यता की परीक्षा करने के लिए राजा ने हंपे को दूत भेजे। दूत वहाँ से लौटे और बताया कि हरिहरदेव की बात सत्य है। यह बात सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। अब हरिहरदेव को राजा के यहाँ नौकरी करना नागवार लगने लगा। इस राज-सेवा से दूर होकर हंपे लौटे तथा विरूपाक्षदेव की सेवा में निरत हुए। भगवान् की कृपा तथा प्रेरणा से वहीं भगवान् के आश्रय में रहकर सत्काव्य रचना करते रहे और वहीं शिवैक्य भी हुए।

वीरशैव पुराणों में उक्त उनकी इस जीवन-गाथा में कही गयी ये करामाती बातें चाहे सत्य न भी हों, इतना तो सत्य अवश्य है कि कुछ समय तक हरिहरदेव राजा के दरबार में नौकरी करते रहे और इस नौकरी मे ऊबकर हंपे लौटे—यह बात सत्य अवश्य है। उनकी आत्मकथा से मोटे तौर पर उनके जीवन की रूपरेखा पहचानी जा सकती है। एक स्पष्ट इतिहास के अभाव में कार्य-कारण समन्वय की दृष्टि से जीवन के इतिहास के विषय में ऊपापोह के आधार पर ही काम लिया जा सकता है। उन्होंने अपने पंपाशतक में कहा है—

"पोगॅनॅं पोप, बारॅलवॉ बारॅनॅं जीय हसादवॅम्दु बॅ
ळ्ळागुतॅं बर्प, माणॅलवॉ सुम्मनिरॅन्दडॅ सुम्मनिर्प, म
त्तागळॅ झकिसुत नडुगि बीळुव सेवॅय कष्ट वृत्तियं
नीगिदॅनिन्दु निम्म दॅशॅयिं करुणाकर हंपॅयाळ्दनॅं!"—कि "पंपापति विरूपाक्षदेव! "जा" कहने पर चुपचाप चले जाना पड़ता है; "यहाँ आओ" कहने पर "हुजूर, क्या हुआ" कहते हुए कांप-कांप कर आना पड़ता है; "मुँह बन्द कर" कहने पर मौन रहना होता है; हमेशा डर के मारे कांपते रहना पड़ता है।—इस तरह की सेवावृत्ति से आज आपकी कृपा से निवृत्त हो गया…।' हरिहरदेव की यह उक्ति इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उनके मन में सेवा-वृत्ति के बारे में कितनी असह्य भावना थी। इसी शतक में उन्होंने अपने जीवन के आदर्श का स्पष्ट उल्लेख भी किया है—

"मनुजर मेलॅं, साववर मेलॅं, कनिष्ठर मेलॅं अक्कटा
तनतनगिन्द्र चन्द्र, रवि, कर्ण, दधीचि, बलीन्द्ररॅन्दु मेण्
अनवरतं पॉगळ्दु कॅडबेडॅलॅं मानव, नीनहर्निशं
नॅनॅं पॉगळ्चिसम्म कडुसॉम्पिन पॅम्पिन हम्पॅयाळ्दनं"

अर्थात्—"हे मानव! किसी न किसी दिन सब मर्त्यों की तरह मैं भी मरने वाला एवं हीन मनुष्य हूँ—ऐसा समझो और अपने किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर ऐसे ही मृत्युधर्मा-

हीन मनुष्य को इंद्र-चंद्र-देवेन्द्र-सूर्य-दधीचि-कर्ण कहकर उसकी प्रशंसा करते-करते अपने जीवन को व्यर्थ मत गंवाओ। इस तरह की मानव-प्रशंसा के बदले महामहिम परमेश्वर पंपापति विरूपाक्षेश्वर का रात-दिन ध्यान करो, उस महादेव की पूजा करो।" इस उक्ति से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्हें राजा के दरबार से कितनी घृणा थी। हरिहर के द्वारा निर्देशित इस स्वतंत्र राजमार्ग का अनुसरण इस युग के अनेक कवियों ने किया और इस तरह एक स्वतंत्र संप्रदाय का ही प्रवर्तन किया। इसके बाद आगे के कवियों ने इस संप्रदाय को आगे बढ़ाया।

सेवावृत्ति के प्रति घृणा तथा अपने इष्टदेव के प्रति भक्ति, ये दोनों कवि हरिहरदेव के पंपाशतक काव्य में उमड़कर छलके हैं। पुराणों का कथन है कि यह कवि द्वारसमुद्र को छोड़कर हम्पें गया और वहाँ के सोमनाथेश्वर मंदिर में ठहरा। उसी रात को हम्पें के राजा के सपने मे भगवान् ने राजा को दर्शन दिये और आज्ञा दी कि कवि हरिहर को बुलाकर उनका आदर-सत्कार करो। भगवान् की आज्ञा के अनुसार दूसरे दिन प्रातःकाल राजा ने कवि को लिवा लाने के लिए पालकी भेजी तो कवि को उस पर बिठाकर राजा के महल की ओर ले आ रहे थे। उस समय कवि ने पालकी ही में बैठकर इस "पंपाशतक" को गाया। यदि यह बात सत्य हो तो यह कहना होगा कि इस कवि का काव्य-कर्म पंपाशतक से ही आरंभ होता है। वीरशैवों द्वारा निर्मित शतक साहित्य के लिए यही नांदी है अर्थात् यही शतक वीरशैव शतक साहित्य में सर्वप्रथम है। हरिहरदेव ने "रक्षा शतक" के नाम से एक और शतक का भी निर्माण किया है। इसमें इस कवि की भक्ति अधिक निर्मल और परिपक्व दशा में दिखाई देती है। वह कहते हैं—"हे परमेश्वर ! मैं कभी आपके चरणकमलों से पृथक् नहीं होऊँगा। चाहे मैं विदारित हो जाऊं, चाहे दो टुकड़े ही क्यों न होऊँ, भले ही मुझे क्रूर दंड मिले, चाहे कुछ भी हो जाय, मैं आपके चरणारविंदों से कभी अलग नहीं होऊंगा। जो कुछ भी होगा उसे आपकी ही आज्ञा मानकर तेरे चरणारविंदों की सेवा में अटल रहूँगा। भक्तों की भक्ति की प्रशंसा करने वाले हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा करें।"— यों भगवान् से याचना करने वाले इस कवि के हृदय में भरी भक्ति तथा उनकी काव्यशक्ति—दोनों की परिधि बहुत स्पष्ट है। काव्य प्रवाह, पद-गुंफन आदि पाठकों के मन पर कवि के मनोगत भावों की अमिट छाप लगाने में बहुत शक्ति-युक्त है।

हरिहर के शतक में भोगविरति और वैराग्य भावों को स्पष्ट करने वाले, तथा उनकी भक्ति का दिग्दर्शन कराने वाले स्पष्ट चित्र हैं। इतना ही नहीं, वे उत्तम साहित्यिक कृतियाँ भी हैं। केवल धर्म प्रतिपादन ही उनका उद्देश्य है तो भी वे नीरस नहीं हैं। भावगीतों की तरह हृदयस्पर्शी हैं। पंपाशतक में हरिहरदेव की भक्ति एक साधक के उद्वेग से युक्त है तो रक्षाशतक में वह एक सिद्ध-पुरुष की प्रशांतता है। ये दोनों शतक कन्नड के शतक-साहित्य के लिए चूड़ामणि के समान हैं।

हरिहर कवि ने उपर्युक्त शतकों के अलावा "मुडिगॆय अष्टक", "गिरिजा कल्याण", "शिवशरणर रगळगळु"—भी लिखे हैं। यह "मुडिगॆय अष्टक" नामक छोटा ग्रन्थ कवि हरिहर की करामातों के बारे में परिचय देता है। एक दिन कवि विरूपाक्षदेव के मंदिर की परिक्रमा करके नंदी को प्रणाम करने के लिए झुका तो

उनकी टोपी नीचे गिरी। इसे देखकर वहाँ के एक गुंडे ने हंस दिया। यह सुनकर कवि हरिहर ने कहा "शिव ही परदैव है—इस सवाल को स्वीकार करने वाले इस टोपी को उठावें"—इस मौके पर इस काव्य की रचना कवि ने की। इस आशु-काव्य में काव्य की दृष्टि से ध्यान देने योग्य विशिष्ट बात कुछ भी नहीं। इन आठों पदों में "क्ष" कार की तुकबंदी का निर्वहण प्रशंसनीय है।

हरिहर कवि स्वतंत्र-युग के कवियों में अग्रगण्य है। इस स्वतंत्र युग के प्रवर्तक कवि की कृतित्व शक्ति "शिव शरणों के रगळे" नामक कृतियों में पूर्ण रूप से विकसित हुई है। परन्तु उनकी 'गिरिजा कल्याण' को भी कोई निकृष्ट कृति नहीं कहा जा सकता। इस कृति के निर्माण के बारे में एक दंतकथा प्रचलित है जो आमतौर पर कन्नड साहित्य के सभी विद्यार्थियों को मालूम है। हरिहर देव ने शिवशरणों की कथाओं को शुद्ध कन्नड के छन्द ' रगळे" में लिखा। इस रचना को आमूलाग्र पढ़े बिना किसी ने कह दिया कि यह "रगळेय कवि" है। (कन्नड में रगळे का अर्थ है गड़बड़झाला)। इस तरह के मजाक को सुनकर झुंझलाये कवि ने लोगों को यह बताने के लिए कि मैं भी प्रौढ़ शैली में लिख सकता हूँ "गिरिजा कल्याण" नामक प्रौढ़ काव्य लिखा। यह दंतकथा कितना झूठ है—यह बात उनकी कृतियों को पढ़ने वाले पाठक साफ समझ सकते हैं। उनकी कृतित्व-शक्ति की चरम सीमा उनके इस "रगळे" में ही देखी जा सकती है।

'गिरिजा कल्याण' की कथावस्तु तथा निरूपित करने की रीति—दोनों ही पुराने ढंग की हैं। दक्ष-यज्ञ में अपमानित परमेश्वरी यज्ञाग्नि कुंड में कूद पड़ीं और उसी में उन्होंने प्राणत्याग किया। यह समाचार सुनकर परशिव दुःखी हुए और तपस्या में मग्न हो गये। परमेश्वरी इधर गिरिराज-पुत्री गिरिजा के रूप में जन्म लेकर बढ़ रही थी। इसी समय में तारकासुर नामक राक्षस जन्म लेकर तीनों लोकों के लिए एक मारक शक्ति के रूप में प्रबल बन रहा था। शिव-शिवानी दोनों का जब तक मिलन न होगा तब तक कुमार का जन्म भी नहीं होगा, और जब तक कुमार-जन्म न हो तब तक इस तारकासुर का हनन भी संभव नहीं। दुःखी देवता-गण ने किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर शिवजी की तपस्या का भंग करने के लिए कामदेव मन्मथ को नियुक्त किया। तब तक गिरिजा भी पर-शिव के पास ही रहकर पूजारत थी। उनकी सहायता से अपने कार्य को साधने में मंमथ लगा था। परंतु अपने काम में सफल होने के बदले हर की नेत्राग्नि से दग्ध हो गया। दिव्यालंकार भूषिता गिरिजा की तरफ शिवजी ने आँख उठाकर भी न देखा। इस बाहरी रूप-सौंदर्य पर हुई पराजय से दुःखी गिरिजा ने वैराग्य धारण कर कठोर तप करना आरंभ किया। बाहरी सौन्दर्य से जो काम साधा नहीं जा सका वह काम तप के प्रभाव से शुद्धांतरंग होने पर साध्य हो गया। शिवजी ने उनकी तपस्या पर प्रसन्न हो प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें अपनी अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया। इस तरह शिव-शिवानी के संयोग से कुमार स्वामी (कार्तिकेय) का जन्म हुआ और उन्होंने तारकासुर को मारकर तीनों लोकों में शांति स्थापित की। यह शैव पुराण की कथा है। इसी कथा को महाकवि कालिदास ने अपने 'कुमारसंभव' काव्य में बहुत ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। हरिहर कवि की कृति भी इसी परंपरा का एक काव्य है। इस कथावस्तु के निरूपण में जिस चंपूकाव्य की शैली का

अनुसरण किया है वह भी प्राचीन संप्रदाय ही है। महाकाव्य के लिए निर्दिष्ट लक्षण के अनुसार उन निर्दिष्ट अठारह नियमों का भी कवि ने पालन किया है। इसके लिए कवि ने अपने इस काव्य के अंदर एक वेश्या-वाटिका का भी निर्माण किया है और हिमवन्त के साथ नारद को भी चन्द्रिका-विहार करने के लिए नियोजित किया है; वसंत-वर्णन, समुद्र-वर्णन, पुर-वर्णन, मृगया-वर्णन आदि को इसमें सम्मिलित किया है। इस सारे के सारे को महाकाव्य के पद पर इसे बिठाने के लिए हैं। इन दीर्घ वर्णनों से यह स्पष्ट है उन्होंने महाकाव्य के लिए निर्दिष्ट सभी नियमों का पालन कवि के लिए अभीष्ट था।

कवि हरिहर संप्रदाय बद्ध होकर ही इस काव्य-कर्म में प्रवृत्त हुआ है तो भी उनकी काव्य-चेतना अव्यक्त होकर नवीनता की ओर अग्रसर हुआ है। अपनी इस काव्य-कृति का नामकरण ही इस बात का प्रमाण है। अपने इस काव्य को 'तारकासुर-संहार' नाम न दिया और न 'कुमारसंभव' ही कहा, बल्कि उन्होंने इसका नामकरण 'गिरिजा कल्याण' ही किया। इस काव्य का प्रधान पात्र कथानायिका 'गिरिजा' है। उसका जन्म, बाल-लीला, उसकी आशा-आकांक्षाएँ, उसका आशाभंग, उग्र तपस्या तथा तपस्या में सिद्धि एवं अंत में विवाह—इस तरह गिरिजा के जीवन का वृत्तांत इसमें है। अन्य सभी पात्र, यहाँ तक कि शिवजी का भी पात्र इस 'गिरिजा' के पात्र के लिए पोषक बने हुए हैं। सांप्रदायिक परिपाटी के अनुसार यदि इस कथा की 'कुमारसंभव' अथवा 'तारकासुर संहार' ही चरम-सीमा है तो यहाँ इस 'गिरिजा कल्याण' में गिरिजा कल्याण ही लक्ष्य एवं चरम सीमा है। कथावस्तु में भी कवि ने अपनी स्वतंत्रता के अनुसार कुछ परिवर्तन कर लिए हैं। उनके वे सारे परिवर्तन उचित हैं ऐसा भी कहा नहीं जा सकता। शिवजी के तप को भंग करने का उत्तरदायित्व नारायण को सौंपा गया है, और वहाँ उस पिता-पुत्र का संवाद अनुचित एवं अस्वाभाविक ही लगता है। ऐसे कुछ परिवर्तनों को छोड़कर कवि हरिहर के अन्य तरह के परिवर्तन उनका औचित्य एवं कवि की प्रतिभा का उत्तम प्रमाण लगता है।

कवि हरिहर की प्रसंगोद्भावना-कौशल अद्भुत है। काम-दहन का सन्निवेश इसके लिए एक अत्यंत उत्तम उदाहरण है। कामदेव अपने पुष्प-बाण का लक्ष्य शिव जी को बनाकर तैयार खड़ा है। उनकी सहायिका बनकर पुष्पालंकार विभूषित दिव्य सुंदरी गिरिजा स्थाणुमूर्ति के सामने खड़ी है। इक्षुचाप से निकल कर पुष्पबाण शिवजी को लगा ही था कि शिवजी की समाधि भंग हुई। और क्रोधाभिभूत शिवजी की आँख ईषन्मात्र खुली। कामदेव के पुष्प-बाण से भी अधिक मोहक गिरिजा को उन्होंने नहीं देखा। जिधर से वह तीर आया था उधर दृष्टि फिरी। तुरंत ही—

"इट्टणिसि घुडुघुडिसि किडि
गुट्टि कनल्दडसि सिडिल बळगद मुळिसं
तॉट्टुडु विसुगण्णुरि पॉर

मट्टुडु सुट्टुडु रतीशनं निमिषार्धं"—अर्थात् शिवजी की फालनेत्राग्नि ने बहुत सांद्र और ज्वालामयी होकर चिनगारियों को बरसाती हुई विद्युत् की तरह गरम होकर आधे क्षण के अन्दर कामदेव को जला दिया"—इस बात को कहने का ढंग ऐसा है कि पाठक के मनोनेत्र के सामने इस सारी प्रक्रिया को प्रत्यक्ष हो जाना चाहिए।

जब तक ऐसा न हो तब तक कवि को तृप्ति नहीं। इस कामदहन के वृत्तांत का वर्णन करते समय कवि ने प्रासयुक्त अनुकरण शब्दों का छन्दोबद्ध रीति से प्रयोग जो किया है वह स्वयं ही प्रसंग का अर्थ बताने में समर्थ है। इतना ही नहीं, इस कालनेत्र द्वारा निकलने वाली अग्नि की ज्वाला, उसकी भयंकरता, इससे भीत मन्मथ का भागना, ज्वाला का पीछा करना आदि-आदि बातों का चित्र पाठकों के सामने उपस्थित करने में कवि के शब्द पर्याप्त मात्रा में शक्त हैं। कवि यहाँ शब्दों का एक इन्द्रजाल ही रच देता है जिससे उस घटना का पूर्ण वातावरण ही पाठकों के सामने बंध जाता है। कालनेत्राग्नि द्वारा दग्ध कामदेव जल जाने पर भी ज्यों के त्यों हैं जैसे रस्सी के जलने पर भी ऐंठन बनी रहती है। छू ले तो भस्म हो जाय।

पति को प्राप्त इस दशा के कारण रतिदेवी का जीवन एक मरुभूमि-सा बना है। उधर सौन्दर्य की साकार मूर्ति गिरिजा के उन्हीं शिवजी की आराधना में दत्तचित्त होकर स्थित रहने पर उन तपोनिरत शिव की दृष्टि उस पर नहीं पड़ी। ऐसी दशा में शिवजी मन्मथ की पत्नी रती देवी का अनुनय-विनय सुने कैसे? काम-दहन के बाद दूसरे ही क्षण में शिवजी अंतर्धान हो गये। मन्मथ की पत्नी रतिदेवी इतनी जल्दी ही आने वाली इस सारी घटना को देखकर सन्न रह गयी और रोने लगी। इस प्रसंग को लिखते हुए कवि हरिहर ने करुणरस को बहा ही दिया है। रति विलाप करती हुई कहती है—"हे प्रेममय! हे कोमलांग! परिशुद्ध! हे सुखदायक! हे कल्पवृक्ष सदृश फल-दायक और अमृत समान सुस्वादु—इन सभी के समाहार जैसे रहने वाले देव (कामदेव)! तुमने अपनी शक्ति की सीमा को लांघकर शिवजी के कालनेत्र को खुलवा दिया, यह तुम्हारा अद्भुत साहस है।"—ऐसा कहती हुई वह छटपटाने लगी। सुख-सौन्दर्यों के अधिदेव मन्मथ के मरने से—

"लावण्यं लयमाय्तु, विभ्रम विळासं, मायमाय्तक्कटा
जीवं बॅन्दुदु, चॅल्वु सत्तुदु, सुखं हाळय्तु, कंदर्प स-
द्भावं भस्ममदाय्तु, मॅमॅ मडियित्तुत्ताह्मिगित्तदि
न्नेंवॅन्वॅ नॅडवॅत्त सार्वॅनिळॅन्निनर्णॅनॅगिन्तर्पॅनो"—रतिदेवी की दशा यों वर्णित है—"लावण्य का सर्वनाश हो गया, विलास काफूर हुआ, प्राण मृत्यु के अधीन हो गये, सुन्दरता की समाधि हो गयी, सुख समाप्त हुआ, सद्भाव भस्म हो गया, महिमा मर गयी, उत्साह खतम हुआ; और क्या कहूँ, कहाँ जाऊँ, क्या होऊँ, कैसे रहूँ?"—यों रोती हुई विलाप करती है। अपने पतिदेव (मन्मथ) की दिनचर्या का स्मरण कर विलापती हुई कहती है—

"बॅळगायसुप्पवडिसु
तॉळगुव मणिमुकुरमं निरीक्षिसु हंसा
वळियं नडपाडिसु को
किळ नादमनालिसुसिरविपुॅदॅ मदना"

कि "सवेरा हुआ, जागो, दर्पण में अपना चेहरा देख लो; हंसों को चलना सिखाओ, कोयलों का गाना सुनो—इस नित्य के कार्यक्रम को किये बिना कैसे रहा जाय? मन्मथ तो मेरा प्रेमी था! और आगे कहती है—

"ऍन्दु मुळिसॉडॅ लिळियं

मुंदिद्दुलवदं मदीश मुळिसिल्लली
यन्दं पौसतिन्दिन मुळि
सॅन्दिन मुळिसिनवोंलल्ल मदननृपाल"—कि "हे मेरे जीवितेश मदनमोहन राव ! तुम्हें यदि क्रोध भी आवे तो उसे न दिखाते हुए सहजभाव से विवेक की बात बातचीत से समझाते थे; कभी क्रोध न दिखाते थे। तुम्हारी आज की रीति ही भिन्न है, नवीन है। आज का तुम्हारा क्रोध पहले का-सा क्रोध नहीं। आज का क्रोध हमेशा के लिए मुझे छोड़कर जाने का है। रतिदेवी इस क्रोध को न सहकर कहती है—

"वनें देवतॅयरिरा, नं
दन देवतॅयरिर, दॅसॅय देवतॅयरिरा
वनपापं पुदिदिर्दी
वनितॅयनॉळकॉळ्ळिरे, अनाथॅयनॅन्नं"—कि "हे वन देवताओ ! हे दिग्देवताओ ! इस महापापिनी अनाथिनी को तुम सब अपने में समा लो।"—यों विलाप करती हुई रो-रोकर भूमि पर लोटने लगी। उसकी इस दशा को देखकर गिरिजा उसके पास आयी और उसे सहलाकर सांत्वना देने लगी। रतीदेवी का दुःख इस उपचार से दूना हो गया। वह गिरिजा के पैरों में लोटती हुई कहने लगी—

"करुणिसु तायॆ तवरॆ
परिरक्षिसु, दयॆयॉळीक्षिसुडुगिसु नोवं
परिहरिसु दुःखमं, वर
गिरिराजतनूजॆ, कादुकॉळ् ऍन्नसुवं"—कि "हे माता ! हे गिरिराज तनुजा ! मेरी रक्षा करो, मेरे दुःख को हरो। मेरे प्राणों की रक्षा करो"—कहकर गिड़गिड़ाने लगी। परमेश्वरी ने रतिदेवी को अभयदान देकर सांत्वना देने लगी।—जब हम काव्य के इस प्रसंग को पढ़ते हैं तो यहाँ के इस करुण दृश्य को देखकर आँसू बहाये बिना नहीं रह सकेंगे। स्वयं पार्वतीदेवी की भी यही दशा हुई होगी। उन्हें (गिरिजा को) शिवजी का यह काम कुछ भी अच्छा नहीं लगा। वह (गिरिजा) अपनी सखियों (जया और विजया) से कहती है—

"आनिन्तिर्न्तर्चिसुत्तुं, गति मति पति ऍन्नायु ऍन्नात्मतत्त्वं
तॉनॆन्दुत्साहदिंदिर्दॆचळ पतिय मेनाख्यॆयॉन्दळ्करं बि
ट्टानंदंगूडि कारुण्यमननवरतं पारुतिर्पॆल्लि पॆळि
तेनॆन्दुं नोडदुग्रं रजतगिरिगॆ पोदं निकृष्टात्मनादं"—कि "मैं अपना सर्वस्व यहाँ तक माता पिता के उस अपार प्रेम और वात्सल्य तक उनके चरणों में समर्पित कर केवल उनकी करुणामात्र की भिक्षा के लिए घोर तप करती रही फिर भी कुछ भी परवाह न कर मेरी तरफ देखे बिना ही वह अघोर तपस्वी अपने चाँदी के पर्वत की ओर चला गया। यह उनकी कैसी हृदयहीनता है।"—यों कहते हुए वह दिव्य सुन्दरी गिरिजा एक निष्ठभाव से फिर से उग्रतप में लीन हो जाने की अपनी प्रतिज्ञा करती है—

"तानिर्दल्लिगॆ नडॆतं
दानर्चिसॆ कामवैरि नुडिमिसदंत
र्ज्ञानिक्कं संदनदरि

दानिर्देल्सिर्गे समंतु तन्नर्गे तपे"—अर्थात् "जब मैं स्वयं उनके पास जाकर उनकी पूजा-अर्चा करके उन्हें संतृप्त करना चाहती थी तो वे मेरी तरफ़ देखे बिना ही चले गये। अब ऐसा करूंगी कि खुद जहाँ मैं होऊँगी वहाँ उनको आना पड़ता है।"

गिरिजा अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कर ले इतने में कवि हरिहरदेव की कविता शक्ति अपनी प्रतिभा एवं कल्पना के पंख फैलाकर उड़ने लगती है। गिरिजा एकदम खुले स्थान में सर्दी-गर्मी-ठंड-वर्षा आदि किसी की परवाह न करके तपोनिरत हो गयी। कहा जाता है कि उस तप का तेज इतना तीव्र हुआ कि सविता भी उसे सह नहीं सके। सूर्य भी गिरिजा की तपोग्नि की ज्वाला की गर्मी से डरकर जहाँ वह तपस्या कर रही थीं उस जगह को छोड़कर अगल-बगल से निकल जाते थे। वन्य मृग-पक्षी भी उस गर्मी से डरकर पास न फटकते थे। हवा भी वहाँ जाने से डरती थी। नभचर ऊपर उस स्थान से गुजर नहीं सकते थे। ऐसी दशा में ग्रीष्म का भी प्रवेश हुआ। ग्रीष्म ऋतु की भयंकर गरमी। स्थलचर और नभचर इस असह्य गरमी के कारण जल-भुनकर मर रहे हैं। पहाड़ भी जल उठे और समुद्र तक सूख गया। भूमि जलकर अंगारे की तरह लाल बन गयी। जहाँ देखो तहाँ झुलसाने वाली धूप ही धूप है। कवि वर्णन करते हैं—'वृक्षच्छाया छाया नहीं काली धूप है। इस धूप को जलने वाली धूप, चकमा देने वाली धूप, भयंकर धूप, अखंड उष्ण आदि यों इस धूप का विभाजन किया जा सकता है। कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ गरमी न हो। ऐसी गरमी में अन्य वन्य जीवों की स्थिति का क्या कहें; एक मस्त हाथी की दुरवस्था का वर्णन कवि ने कैसा किया है, देखिये—

"नडॅयलकॉन्दडियिट्टु, काय्दनॅलनं काल्मुट्टॅ चुद् ऍन्दु बें।
दॉडॆं मत्तॉन्दडियॆत्तलारदक्ति कण्मुच्चि हस्ताग्रमं
कडॆवायॉळ् सॆरॆगिट्टु, नैत्ति बिरिदॆत्तल् मुत्तुगळ् सुत्तलुं
सिडियुत्तिर्पिनमिर्दुदॉन्दति मदेभं भीष्मदॉळ् ग्रीष्मदॉळ्"—अर्थात्—"एक मस्त हाथी बेचारा आगे बढ़ने के लिए कदम आगे रखा; आग की तरह जलने वाली जमीन पर कदम लगते ही पैर जल गया; तब वह हाथी पैर उठा न सकने के कारण तड़प कर सूँड को मुँह में रखकर चुपचाप खड़ा हो गया। गरम लू के लगने से उसका मस्तक फटकर उसमें स्थित सब मोती बिखर कर फूट पड़े।" ऐसी भयंकर गरमी में गिरिजा पंचाग्नि के बीच बैठकर तपोलीन हो गयी है। कवि कहते हैं कि परशिव गंगाधर का स्मरण करती हुई उस ग्रीष्म को बिताया गिरिजा ने। हाँ; ठीक ही तो है, यदि गंगाधर शिव उसकी रक्षा न करता तो और कौन ऐसी झुलसाने वाली गरमी से गिरिजा को बचाता? जैसे ग्रीष्म-ऋतु की गरमी ने उसे सताया उसी तरह वर्षा ने बहुत कष्ट दिया। रात-दिन एकसा बरसकर बिजली और भयंकर गड़गड़ाहट के साथ ओले भी जोरशोर के साथ गिरने लगे तो भी ये सब गिरिजा के उग्र तपस्या के तेज के सामने फीके लगने लगे। फिर भी गिरिजा ने अपनी एकनिष्ठ तप को नहीं छोड़ा। फिर वर्षा के बाद सर्दी का मौसम आया। लोग दांत कटकटाते हुए ही ही हू हू करते हुए थरथर काँपते सिकुड़ गये। यहाँ तक कि आग भी इस सर्दी से डरकर काष्ठगर्भ में समा गयी। शिशिर का यह वर्णन बहुत ही अद्भुत है। इस तरह कवि ने ऋतु-वर्णन में अपनी सारी प्रतिभा एवं कल्पना की चरमसीमा दिखायी है।

ऐसी गरमी, सरदी, वर्षा आदि की परवाह न करके प्राण-पण से तपस्या में लीन गिरिजा की निष्ठा को देख (शिवजी) स्थाणु भी विचलित हो गये। वह बटुक वेष धारण कर वल्कलवस्त्र पहने तपस्यालीन गिरिजा के पास दौड़ पड़े। इस बटु के स्वरूप को न पहचानने वाली गिरिजा की सखियों ने अतिथि समझकर उसका उपचार किया। कोमल रंभापत्र पर कंद-मूल और जंबूफल आदि परोसकर कहने लगी कि हे अतिथि देव ! आप बहुत थके-माँदे हैं, मार्गयास के कारण आपको विश्राम चाहिए, अतः आप इस कंद-मूल-फल आदि को स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें और विश्राम लें। वह छली वटु कहने लगा कि हाँ, इन फलों को तो लूँगा, परंतु मुझे यह बताओ कि यह तपोनिरत ललना कौन है और किस भाग्यशाली को प्राप्त करने के लिए इस तरुणावस्था में ऐसे घोर तप में तल्लीन है ? सखियों ने उत्तर में यह पूछा, हे बटुक ! कंद-मूल-फल खाना छोड़कर कन्या की चिंता क्यों करने लगे ? यह सवाल सुन वह ब्राह्मण वटुक हँसते हुए बोले—"पूछने में क्या दोष ? यह नवयौवन और ऐसा घोर तप ! इसे देखकर सहन कैसे करें ? इस कन्या को ऐसे उग्र तप से विरत करने वाले कोई नहीं हैं ? ऐसी कोई सहायता भी इस कन्या के लिए नहीं है क्या ?" पास ही तपोनिरत गिरिजा को इस बटुक की बात सुनकर गुस्सा आया। जप करना रुक गया। जपमाला हाथ से सरक गयी। थोड़ी-सी खुली आँखों से उन्होंने उस वटुक को देखा। देखते ही उसे क्रोध के बदले कुछ हर्ष का ही भान हुआ। उस कन्या की मधुर दृष्टि को देख इस छली वटुक को भी अपार संतोष हुआ। अब क्या था—यह छली अपने स्वस्वरूप में प्रकट होना ही चाहते थे कि इतने में वटुक ने अपने को संभाल कर स्वस्वरूप को प्रकट होने से रोका। जटाजूट को विकसित होने से दबा रखा, आठों भुजाओं को प्रकट होने से रोक रखा। बाहर निकलने के लिए सन्नद्ध नंदी को रानों से दबाकर रोक दिया। प्रकट होने के लिए उत्सुक स्वस्वरूप को रोक रखा। उस वटुक को गिरिजा के साथ कुछ छेड़छाड़ करने की सूझी। वह कहने लगा—"कोमल चाँदनी के लगने से ही काँपने वाले शिरीष कुसुम की तरह कोमल शरीर पर यह वल्कल क्यों ? इतनी सुकुमारी होकर तुम किसके लिए ऐसा घोर तप कर रही हो ? ऐसे घोर तप करने के लिए तुम्हें प्रेरित करने वाला वह पापी कौन ?" इस बातूनी वटुक की ये बातें सुन संकोचशीला गिरिराज कुँवरी अब कहने में आगा-पीछा करती हुई अनमनी होकर कहा—"शंकर के लिए।" यह बात सुनकर वह छली वटु छेड़खानी करने लगा—"हाय ! हाय ! वह कामदेव को मारने वाला, तीन आँखों वाला, वेदशास्त्र से अतीत, सब कुछ छोड़-छाड़कर श्मशान में रहता है। और तुम अमृत स्वरूपिणी हो तो वह विष रूप है; तुम अत्यन्त कोमल हो तो वह बहुत कठोर; तुम अबला हो तो वह उग्र; तुम भीरु तो वह भयंकर सर्पभूषण,—यों तुम दोनों में दिन रात-सा अंतर है और उसका वस्त्र देखो—वह पहनता है बघंबर, सर्प शिरोभूषण, फाल में नेत्र, अस्थियों का बना आयुध, शव शिरों की माला, हाथ में त्रिशूल—ऐसे भयंकर रूप वाला वह शंकर तुम्हें कैसे पसंद आया ?"

इस छली वटुक की ये बातें सुनकर गिरिजा का क्रोध उमड़ पड़ा। अपने इष्ट देव पति की यह निन्दा सुनकर सह न सकी और अपने हाथ में जो भस्म था उसी को लेकर दे मारा। इस भस्म के लगते ही उसका वह बटुकवेष उड़ गया। झूठ सत्य के

सामने टिक सकेगा ? क्रोध से विक्षिप्त भस्म ही जीरक और गुड़ बना। (जीरक और गुड़ दोनों को मिलाकर विवाह के समय वर और वधू के परस्पर एक दूसरे के सिर पर डालने की प्रथा है। यह एक मांगलिक पद्धति है।) शिवजी प्रत्यक्ष सामने खड़े थे। उन्हें देखकर गिरिजा लज्जावनत वदन हो खड़ी है। तप:पूत गिरिजा की पवित्र-पाणि को शिवजी ने ग्रहण किया है। इसके पश्चात् गिरिजा कल्याण (विवाह महोत्सव) सम्पन्न होता है। शिवजी की तपस्साधना की सिद्धि गिरिजा है तो गिरिजा का तप:फल शिवजी हैं। इसी को महाकवि कालिदास ने "परस्पर तपस्संपत्फलायित परस्परौ।" कहकर वर्णन किया है। महाकवि हरिहर ने अपने इस पवित्र काव्य को अखिल जन सेव्य कहा है। उनका यह कथन सोलहों आने सार्थक है।

प्रस्तुत कृति 'गिरिजा कल्याण' एक अत्यंत सुन्दर चंपू काव्य है। इस तरह के काव्यों में इस कृति का एक विशिष्ट स्थान भी है। केवल इतने मात्र से यह कवि हरिहर युग-प्रवर्तक नहीं बने। उन्हें इस युग प्रवर्तक के स्थान पर उनके द्वारा रचित "शिवशरणों के जीवन-संबंधी काव्य (इसे रगळॆ कहते हैं)" ने पहुँचाया है। कवि ने संभवत: अपनी तरुणावस्था में 'गिरिजा कल्याण' लिखा है। मन और मस्तिष्क दोनों उस यौवनावस्था की गर्मी से प्रभावित भी होंगे। काव्य माधुर्य को न समझने वाले नीरस व्यक्तियों के सामने सरस काव्य-कृति का निवेदन व्यर्थ ही तो है। कवि हरिहर का गर्व था कि उनकी यह कृति राजसभा, ब्रह्म-सभा और देवसभाओं में समादृत होने लायक है। "गिरिजा कल्याण" काव्य को समाप्त करते-करते कवि की भक्ति परिपक्वावस्था को पहुँच गयी होगी। बहिराडंबर का खोखलापन भी अच्छी तरह मालूम पड़ गयी होगी। उस अवस्था में कवि पहले जिन लोगों को नीरस व्यक्ति मानकर निम्न स्तर के समझे हुए थे, ऐसों के प्रति अपार करुणा एवं ममता उनके मन में प्रकट होकर एक विशाल वृक्ष की तरह फैल गयी होगी। इसी मानसिक अवस्था का पक्व फल स्वरूप है यह "रगळॆ" साहित्य। इस काव्य-विधा में भाषा-भावों में कवि हरिहर की काव्यशक्ति ने एक क्रांतिकारी नूतन-मार्ग का अनुसरण किया है। उनके इस "रगळॆ" साहित्य के लिए प्रेरणा वचनवाङ्मय ही है ऐसा स्रोत समझना असंगत न होगा।

महत्ता की वास्तविकता इसी में है कि घिसी-पिटी रास्ते को छोड़कर एक ऐसे नूतन राजमार्ग का निर्माण करें जिसका अनुगमन सब लोग कर सकें। (True magnanimity consists in dyviating from the beaten path) ऐसे एक राजमार्ग के निर्माण के लिए कवि हरिहर समक्त हैं। स्वतंत्र मनोवृत्ति उनका जन्मजात गुण है। 'गिरिजा कल्याण' काव्य में ही उनका यह सहज गुण पर्याप्त मात्रा में व्यक्त हुआ है। (कन्नड भाषा के छन्दशास्त्र के नियम के अनुसार प्रास-स्थान पर "रळ, कुळ, क्षळ" को मिलाना नहीं चाहिए। कन्नड में तीन तरह के "ळ" कार है। "ड" के उच्चारण पर जोर देने पर उच्चरित् होने वाला "ळ" कार (जैसे हिन्दी में "ड़" है) "रळ" है। संस्कृत के "ल ळयोरभेद:" नियम के अनुसार "ल" के बदले प्रयोग किया जाने वाला "ळ" "क्षळ" है। कन्नड भाषा में सहज ही प्रयुक्त "ळ" "कुळ" है। इन तीन "ळ" कारों में "रळ" का उच्चारण कुछ क्लिष्ट है। जिह्वा को उठाकर अंदर की तरफ मोड़कर उच्चारण करना चाहिए। यह उच्चारण अब खत्म हो गया है। इस प्रा

बारे "रळ" के उच्चारण को बचाये रखने के लिए तेरहवीं सदी के सुप्रसिद्ध वैयाकरणी केशिराज ने अपने "शब्दमणि दर्पण" में कुछ नियम बनाकर प्रयत्न किया है। इस "रळ" की बीमारी ने कवि हरिहर के समय में सिर उठाया होगा, यों मालूम पड़ता है।) कवि लोग प्रास-स्थान में इस "रळ" का गलत-सलत प्रयोग कर रहे थे। परंतु इसे छोड़ दें—इतना साहस नहीं कर सकते थे। छोड़ने से डर रहे थे। यह विचित्र परिस्थिति इस "रळ" की थी।यह स्थिति कवि हरिहर की स्वतंत्र मनोवृत्ति के लिए अच्छी नहीं नहीं लग रही थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि विचार कर देखने पर यह स्पष्ट है "रळ" केवल "ळ" ही है। पर उसका उच्चारण क्लिष्ट है। इसलिए मेरे काव्य में "रळ, क्षळ, कुळ" का फरक देखने का प्रयत्न कोई न करे। और मैंने इससे संबंधित नियमों का पालन नहीं किया है। उनकी यह स्वतंत्र मनोवृत्ति इस "रगळें" काव्य में पूर्ण विकसित हुआ है।

बारहवीं सदी की धार्मिक क्रांति के कारण उपजाऊ बने उर्वर क्षेत्र में प्रवृद्ध विशाल और उन्नत वटवृक्ष। यह कवि हरिहरदेव जमीन के अंदर जड़ जमाकर आकाश में फैलकर ऊँचे और विशाल बने वट की जटाओं की तरह है उनके द्वारा निर्मित यह "रगळें" साहित्य। उनकी संख्या एक सौ छः है, ऐसा निश्चित किया गया है। प्रत्येक रगळें (छन्द) हर अर्थात् शिव को परम देव प्रमाणित करने में कृतकृत्य हुआ है। उनके इस "रंगळें" साहित्य को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—एक कथात्मक और दूसरा भावगीतात्मक। वीरशैवों में तिरसठ पुरातन भक्त प्रसिद्ध हैं। ये सभी पुरातन तमिल प्रदेश के हैं। ई० सदी 1145 के एक तमिल कवि शेक्किळार ने "पॅरियपुराणं" नामक अपनी कृति में इन तिरसठ पुरातनों की कथा का विस्तार के साथ वर्णन किया है। हरिहर कवि ने इस काव्य के आधार पर कुछ काव्यों (रगळें) का निर्माण किया है। परन्तु यह बताना कठिन है कि उस मूल ग्रन्थ से कितना अंश कवि ने लिया है कितना नहीं। मूल ग्रन्थ को देखने पर ही इसका पता लग सकता है। श्रीमान डी० एल० नरसिंहाचार्य जी ने अपनी "हंपॅय हरिहर" नामक पुस्तक में बताया है कि (पॅरिय पुराण) में उक्त नामों में कुछ नाम हरिहर की कृति में नहीं हैं और तिरसठ से अधिक नाम पाये जाते हैं। तिरसठ पुरातनों की कथा बताने के बाद हरिहर ने करिकाल, निंबियक्का, मादार चन्नय्या इन तीनों की कथा को जोड़कर कुल मिलाकर तिरसठ के बदले छियासठ पुरातन बनाया है। और उन्होंने यह भी बताया है कि हरिहर ने जिन कथा भागों को अपनी कृति में लिया है उनमें भी काफी रद्दोबदल किया है। हरिहर ने केवल पुरातनों का वृत्तांत ही अपनी कृतियों में कहा है बल्कि अल्लम प्रभु और बसवण्णा आदि अट्ठाईस नवीनों के वृत्तांत भी लिखा है। इन नवीनों में कुछ को उन्होंने प्रत्यक्ष भी देखा हो अन्यों के विषय में दूसरों से उनकी कथा को सुनकर उन्हीं सुनी-सुनाई बातों का आधार लिया हो। नवीन और पुरातनों के बारे में कहे गये वृत्तांत कथात्मक हैं। इनकी कथावस्तु चाहे तमिल ग्रन्थों के आधार पर बनी हो या चाहे सुनी-सुनाई बातों के आधार पर बनी हो—इतना तो निश्चित है कि उन कृतियों में हरिहर के व्यक्तित्व की गहरी छाप पड़ी है।

हरिहर के भावात्मक रगळें (गीत) करीब-करीब दस बारह हैं। इनमें पंचाक्षरी, रुद्राक्ष आदि की महिमा बताने वाले हैं। ये वस्तुनिष्ठ हैं। पिंडोत्पत्ति, पुष्प

इत्यादि कुछ व्यक्तिनिष्ठ हैं। इन व्यक्तिनिष्ठ (रगळे) गीतों में कवि हरिहर की आत्मकथा कुछ हद तक कथित है—ऐसा विद्वानों का अनुमान है। इस अनुमान के आधार पर यह कहना पड़ता है कि हरिहर गृहस्थ रहा और पत्नी-बच्चों के साथ सुख-दुःख का अनुभव भी करता रहा। उनका काव्य "पिंडोत्पत्ति रगळे" की इन पंक्तियों को तो देखिये, जीवाणु जब से मातृगर्भ में प्रविष्ट होता है तब से लेकर जन्म लेने के बाद बढ़कर युवावस्था को पहुँचने के पश्चात् सब तरह के सुख, दुःख एवं कष्टों का सहन कर जीवन से ऊबने पर वैराग्य धारण करने की अवस्था तक का वर्णन करते हैं,

"बळिक यौवनमार्गं ताय्-तंदॆगळ् कंडु
तिळिदॊन्दु मदुवॆयं माडल् मनंगॊण्डु
...   .

पशुविन कॆरळलॊन्दु पाशमं बिगिवंतॆ
मिसुकदंतल्लॊन्दु ऎळॆमरव बिगिवंतॆ
वैतॆयं तन्दॊबॆळं मदुवॆयं माडि"—अर्थात् "जीवी को सांसारिक बन्धनों में जकड़कर एक राक्षसी जैसी स्त्री के साथ विवाह करके, दाम्पत्य जीवन की अनबनी के कारण या चाहे यौवन-धन-रूप युक्त होने पर बुरी संगति के कारण हो—यों किसी कारण से वह सिड़ी की तरह दुर्मार्ग में प्रवृत्त होकर कुछ समय तक इंद्रियों का गुलाम बनकर आठों पहर यौवन की मस्ती में डूबे हुए हाथ का पैसा और शरीर की शक्ति दोनों को गवाँ बैठता है, यह जीवी। उसके साथ विलास करने में लीन कामिनियाँ जब उसे निकाल बाहर करती हैं तो तब अकल ठिकाने पर आती है। तब करें भी तो क्या करें ? चेतकर रहने का समय बीत गया है। घर खाली हो गया, चारों ओर सब का कर्जदार हुए। फलतः दूसरों को मुंह दिखाते हुए लज्जा और हाथ खाली होने पर भूख, इनसे दुखी बने। उन बच्चों के कारण उनके खाने-पहनने के लिए कृषि कर्म करने लगे तो उसमें भी असफलता मिली। तब व्यापार में लगे। इसमें मूल धन और मुनाफा दोनों न दिखने पर गुलामी करनी पड़ी। यह गुलामी इन सबसे अधिक दुःखदायी साबित हुई। जीवी इन सबसे हैरान हो अपने किये पर पछताते हुए भीख माँगने लगा। सारे पास-पड़ोस के परिचित-अपरिचित, बन्धु-बांधव आदि सभी के सामने व्यर्थ हाथ फैलाकर भी कुछ न मिलने पर यह जीवी अत्यन्त दुख का अनुभव करने लगता है।" सम्भवतः ऐसे कटु अनुभवों के कारण उन्हें संसार ही दुःख का मूल प्रतीत हुआ होगा। इसके कारण इस सबके प्रति घोर विरक्ति उनके मन में उत्पन्न हुई। तब उन्होंने भगवान् से गिड़गिड़ाकर उनकी करुणा की भिक्षा माँगी। कहने लगा—

"नित्यलिंगार्चनॆयॊळिरिसॆन्ननॆलॆ देव
सत्य शरणर नडुवॆ सलिसॆन्ननॆलॆ देव"— अर्थात् "हे भगवान् ! मेरे मन को ऐसा स्थिर करो जिससे कि हमेशा तेरी ही पूजा में वह लगा रहे और तेरे भक्त शरणों के ही सत्संग में आयु बीत जाय।"—भगवान् ने भक्त का आर्तनाद सुना। वह सर्व-संग परित्याग करके शिवपूजा और शिव-संकीर्तन में ही आनन्द से जीवन बिताने लगा।

यों अगर "पिंडोत्पत्ति रगळे" का यह उपर्युक्त चित्र कवि के पूर्वाश्रम का जीवन है तो इनके काव्यों में अभिव्यक्त जीवन का अपार विस्तार इस बात का

प्रमाण है कि उनका सांसारिक अनुभव बहुत विस्तृत है। "पुष्प रगळे" नामक कृति में उनके विरक्त जीवन का अच्छा दिग्दर्शन हो जाता है। वह कवि भक्ति में सराबोर होकर एकचित्त भगवान् का नाम स्मरण करते हुए बड़े सवेरे जाग जाते हैं, और भस्म धारण करके पूजा के लिए फूल लाने के लिए हाथ में पुष्प-पात्र लेकर शिवगीत गाते हुए, शिवभक्तों का कीर्ति-गान करते हुए, सुगन्धित पुष्पों से भरे उद्यान में प्रवेश करता है। मुंह गाता रहता है, मन भक्ति में परवश हो नाचता रहता है। इस अवस्था में सुन्दर सुगंधित पुष्पों को परमेश्वर के चरण-कमलों में अर्पित होने ही के लिए खिले हुए तैयार देखते हैं। प्रत्येक पुष्प-पौधे के पास जाकर उस पौधे से शिवार्पण के योग्य फूल की याचना कर प्रत्येक पुष्प वृक्ष और पौधे से सुगंधपूर्ण सुंदर फूलों का संग्रह कर उन सभी पुष्पदाता पेड़-पौधों को धन्यवाद देकर बालरसाल के नीचे स्थित चन्द्रकान्त शिला पर बैठकर नीचे केले के पत्ते को बिछाकर उस पर मांग कर लाये पुष्पों को हौले-हौले पात्र से निकालकर पत्ते पर रख बिस तन्तु से उन फूलों को माला-कार गूँथता है; तब तक फूलों को खिलाते हुए भ्रमर उद्यान में प्रवेश करते हैं। वहाँ देखते हैं तो एक भी फूल नहीं, इसलिए जहाँ से सुगन्ध आ रही थी उधर उड़कर हरिहर के पास पहुँचते हैं। वह उन्हें डांटकर हटाते हुए दो-तीन चम्पा कुसुम उनकी ओर फेंककर उन्हें भगा देते हैं। तब वहाँ से उठकर परमेश्वर के मन्दिर के पास पहुँचते हैं और वहाँ परमेश्वर के जागने तक प्रतीक्षा करते हैं। जागने पर धीरे से ईश्वर के पास जाकर पुष्प-जल से आँखें पोंछते हैं और पुष्प-पराग का भस्म लगाकर केवड़े के कोमल पत्ते से भगवान् के जटाजूट को सँवारते हैं। फिर चन्द्रकला को कष्ट न हो और गंगा छलके नहीं— ऐसे ढंग से जटाओं को सम्भालकर बाँध देते हैं। तब उसे फूलों से सजाकर उन भगवान् की पूजा-अर्चा में तल्लीन होकर भजन-ध्यान में डूब जाते हैं। कवि हरिहरदेव का यह पुष्प-चयन तथा अपने इष्टदेव का अलंकरण—इन दोनों ने वास्तव में कन्नड साहित्य देवी की भी सजावट का प्रसाधन बनकर अपने अस्तित्व को सार्थक बना लिया है।

हरिहर कवि के "कथनात्मक रगळे" में दिखनेवाला विश्व जितना विशाल है उतनी ही विविधता से भी पूर्ण है। इतना ही नहीं, वहाँ का सारा वातावरण ही भक्तिपूर्ण है। उस वातावरण में विचरने वाले सब शिवशरण हैं। उनमें बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी आयु के हैं। उनका स्वभाव, उनकी रुचि, उनकी जीवन-दृष्टि, उनका भक्ति मार्ग-आदि विषयों में बहुत भिन्नता है। "कर्तव्य कर्म है कैलास है।"— यह तत्व सबके लिए समान होने पर भी इन शरणों में कोई व्याध है तो कोई मछुआ है; कोई धोबी है तो कोई कुम्हार है; यों भिन्न-भिन्न वृत्तिवाले हैं। इनमें स्त्रियाँ भी हैं, पुरुष भी हैं, सद्योजात शिशु भी हैं। यहाँ के समस्त शरण निष्ठावान भक्त जैसे हैं, वैसे ही अपनी-अपनी वृत्ति में ही एक आदर्श की कल्पना कर उस कल्पना को क्रियान्वय कर उसी कर्म को अपने अध्यात्म के लिए अनुकूल बनाकर साधना में निरत रहनेवाले साधक हैं। अपनी आत्मोन्नति में सिद्धि प्राप्त हरिहरदेव जैसे कवि की काव्य-सृष्टि में वे सभी सजीव होकर विचरते हैं। कवि की आत्मा भगवान् की प्राप्ति के लिए उत्सुक थी। अपनी आत्मा के उद्धार के लिए साधन किया और सिद्धि भी प्राप्त की। अपनी ही तरह आत्मोन्नति की साधना में सिद्धि प्राप्त शिवशरणों के जीवन का चित्र उनकी

लेखनी सहज ही चित्रित कर सकती हैं। उनके जीवन का इतिवृत्त बताते वक्त कवि बहुत उत्साहित हो जाते हैं। इस उत्साह के पूर्ण प्रवाह में कथा बहती है और पाठकों को भी उस बहाव में बहा कर गन्तव्य स्थान पर पहुँचा देती है। कवि के कथनात्मक रगळें में किसी को भी पढ़े, यही अनुभव होता है। कवि की समस्त दृष्टि कथा के नायक पर केन्द्रित होकर अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक सीधा पहुँचता है।

आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त हरिहर कवि का मन सात्त्विक होकर, परिशुद्ध होकर बच्चे के मन के जैसे सरल बन गया है। इस तरह की सरलता पर परशिव बहुत जल्दी रीझ जाता है। ऐसी सरलता का दर्शन हरिहरकवि के "पुष्परगळें" में हुआ ही है। वह भगवान् शिवजी से बातें करते हैं, उनके सिर के बाल सँवारते हैं, फूल चढ़ाते हैं, खिलाते हैं। ऐसे सात्त्विक शिवभक्त की कविता-शक्ति ने जिन शिव-गरणों का सृजन किया है उनमें भी ऐसी ही मुग्ध सरलता का दिखना कोई आश्चर्य की बात नहीं। रुद्र पशुपति नामक मुग्ध भक्त परमेश्वर के हालाहल विषपान की बात सुनकर एकदम रोने लगता है और पंचाक्षरी का जप करके विषपान से हो सकने-वाली अपमृत्यु का निवारण करने की प्रतिज्ञा करता है। इसके लिए वह समुद्र आकर आकंठ जलमग्न हो एकाग्रभाव से पंचाक्षरी का जप करने में लीन हो जाता है। इसे देखकर, इस मुग्ध भक्त पर कौन हँसे बिना चुप रह सकता है? कवि हरिहर कहता है कि मृत्यु तक का संहार करनेवाले शिव की रक्षा करने चला यह रुद्र पशुपति। बाहरी दुनिया उनकी दृष्टि में एकदम शून्य हो गयी है। जलचर इस स्व-विस्मृत आकंठ जलमग्न भक्त की देह को खा डालते हैं। कंकाल बनकर खड़ा है मानो वे पंजर की हड्डियाँ अस्थि मालाधर (शिवजी) के लिए समर्पित हैं। फिर भी उनकी वह निष्ठा न हिली न डुली। शिवजी कपट वेषधारी होकर उन्हें दिखाई पड़ता है और उन्हें छेड़कर क्रोधित कर अन्त में दर्शन देता है। ऐसी मुग्ध भक्ति उनकी कृति "कोळूर कॊडगूसु" में बहुत ही अच्छी तरह निरूपित हुई है। यह "कॊडगूसु" दस वर्ष की बालिका है। उसकी माँ प्रतिदिन शिवजी को जो दूध का भोग लगाती थी उसे भगवान् शिवजी पी लेते हैं—ऐसा ही समझती थी, यही उस बच्ची की धारणा थी। उसके मन में यह इच्छा हुई कि वह खुद अपने हाथ से शिवजी को एक बार दूध पिलावें। मौका मिला। एक दिन दूध लेकर शिवजी के मन्दिर गयी। वहाँ शिव की वह प्रस्तर मूर्ति दूध पिये भी तो कैसे पिये। परन्तु इस "कॊडगूसु" के लिए वह प्रस्तर नहीं। साक्षात् परमेश्वर हो हैं। उसके मन में प्रश्न उठा कि यह शिव बिना बोले मौन क्यों है? वह कहने लगी—

"ऎम्मव्वॆ कळुहिदळदेकॆ, उसिरदिर्दप्पॆ
ऎम्मय्य दम्मय्य सुम्मनेकिर्दप्पॆ
नॊरॆयारि बिसिगुन्दि सविगॆडुवुदॆलॆ देव
नॊरॆवॆरसि सविवालनारोगिसॆलॆ देव"—अर्थात् "हे देव! मुझे अपनी माता ने तुम्हारे पास भेजा है, तुम चुपचाप मौन बैठे हो। हे पिता! मैं गरम दूध तुझे पिलाने ही के लिए लाया हूँ। यह ठंडा हो जाएगा। इसे पीओ। मैं गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करती हूँ।" यों मिन्नत करती है। शिवजी को इस दश दर्षीया बालिका की ऐसी मुग्ध बातें सुनने में आनन्द आ रहा है। उस बच्ची से और भी बातें सुनने की चाह

है शिवजी को । इसीलिए वह मौन बैठा है । उसके इस मौन को देखकर वह मुग्ध बालिका रोने लगती है, गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करती हुई मिन्नतें करती है—

"हाल्गुडियदिदॊंडॆम्मव्वॆ बडिदपळय्य
हाल्गुडियदिरॆ मनॆगॆ होगलंजुवॆनय्य
हालनॆरॆयदॆ तायनॆन्तु नोडुवॆनय्य
हालनॆन्तादॊडं कुडियय्य, कुडियय्य"—याने "हे देव ! यदि तुम यह दूध नहीं पीओगे तो मेरी माँ मुझे मारेगी । इस कारण से तुम्हें दूध पिलाये बिना घर जाने से डर रही हूँ । तुम्हें बिना दूध पिलाये मैं माँ को कैसे देख सकूंगी ? किसी भी तरह से दूध पीने की कृपा करो ।" बच्ची की ये बातें सुन उसकी इस मुग्ध सरलता पर शिवजी रीझ गये । और दूध पी लिया । इतना ही नहीं, उसको मुक्ति भी दी ।

ऐसी कथाओं को केवल कथा की दृष्टि से देखने के बजाय इन कथाओं के अन्तर्गत निहित तत्त्व की ओर विशेष ध्यान देकर देखना ज्यादा उचित है । मुग्ध सरलता कितनी शीघ्रता के साथ भगवान् को भी वशीभूत कर लेती है, यह इस कथानक का महान् संदेश है । एकनिष्ठ भक्ति, शुद्ध मन, एकाग्र विश्वास, अनन्य शरण निष्ठा, ये सब अनजान और शिशु हृदय के लिए अथवा लम्बी साधना के द्वारा पुष्ट होकर विकसित मन के लिए मात्र साध्य है ।

कर्म को अध्यात्म के साथ समन्वित करने वाले कुछ शरणों का दर्शन कवि हरिहर ने हमें कराया है । ऐसे शरणों में कुंबारगुंडय्या (कुम्हार) का चित्र बड़ा ही मनोहर है । इस गुंडय्या का धन्धा ही मिट्टी के बरतन बनाना है । अपने इस धन्धे में जो भी कमाई वह करता उस सबका विनियोग शिव भक्तों की सेवा में कर देता । इस तरह भक्तों की सेवा में तन्मय रहकर वह भगवान् का प्रिय पात्र भक्त बना । भगवान् भी उनकी भक्ति से प्रसन्न हुआ । भगवान् शिव भक्त पराधीन है, इसलिए इस गुंडय्या के के माटी थपथपाने के ताल पर नाचने लगते । इस कुम्भकार भक्त की जीवन-गाथा इतनी-सी है । इसी को लेकर कवि हरिहर ने बहुत ही रोचक ढंग से वर्णन किया है । कवि का वर्णन ऐसा है मानो स्वयं कवि प्रत्यक्ष साक्षी होकर इस पर शिव को नाचते हुए देख रहा है । इस प्रसंग के वर्णन को पढ़कर कोई भी पाठक अपने को भूल जाता है । इस कुम्भकार के माटी-थपथपाने के ताल पर नाचनेवाले शिव के नृत्य पर तुंबुर नारदादि देवलोक के वाद्य-विशेषों को साथ लेकर बजाते आये । तब शिवजी ने उन सुरलोक वाद्यों को बजाने से मना किया और कहा कि मुझे मेरे कुम्भकार का कुम्भ बनाते समय मिट्टी थपथपाने के ताल ही पर्याप्त हैं । इसी से मैं संतुष्ट हूँ । शिवजी को इस प्रकार भक्त पर संतुष्ट और उनके ताल पर नाचते देखकर कुम्भकार गुंडय्या भी शिवजी के साथ नाचते सुध-बुध भूलकर तल्लीन हो जाता है । कवि हरिहर का यह वर्णन बहुत ही कवित्व-पूर्ण एवं रसपूर्ण है ।

हरिहरदेव भक्त है, कवि है । भक्त-कवि है । उनकी दृष्टि आध्यात्मिक है । परन्तु लौकिकता के प्रति वह उदासीन नहीं है । जमीन को छोड़कर आसमानी बातें बताने वाले नहीं । उदाहरण केलिए मलहण-मलुहणी की गाथा सुनिये—मलहण काश्मीर के सुवर्ण भट्ट का पुत्र है, सुवर्णभट्ट केवल व्यक्तिवाचक ही नहीं वह अन्वर्थ नाम भी है । उन्होंने इतना सुवर्ण जमाकर रखा था कि उनका बेटा एक दिन में हजार स्वर्ण मुद्राएँ

खर्च करें तो भी एक सौ वर्ष तक पर्याप्त हो सके। मलहण कामदेव की तरह सुन्दर युवा बना। मलुहणी सौन्दर्य सागर में तैरनेवाली देवदासी पद्मावती की बेटी है। इस सौन्दर्य को देखकर मलहण आकृष्ट हुआ। क्यों न हो। सौन्दर्य का सुन्दरता के प्रति आकर्षित होना सहज ही है। दोनों परस्पर आकृष्ट हुए। दोनों मिले। प्रणय सागर में गोता लगाते रहे। इस सुन्दर-युगल की सुन्दरता का बड़े ही रोचक एवं मनोज्ञ ढंग से कवि ने वर्णन किया है। श्री एस.एस. मालवाड़ ने अपनी कृति "हरिहर के काव्य (रगळें) में जीवन दर्शन" में इस प्रसंग पर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं—"विकसित पुष्प के प्रति भ्रमर, कौमुदी से चकोर, कोंपल पर तोता जैसे आकृष्ट होते हैं वैसे ही मलुहण-मलहणी का परस्पर आकर्षण है।" हरिहर कवि का इन दोनों के प्रणय-जीवन का वर्णन एक सुन्दर प्रणय-सूक्त सा है।

यह प्रेमी-युगल इस तरह प्रणय केलि में मग्न हुए थे कि उन्हें संसार की चिन्ता ही न रही। इस संयोगानन्द में उन्हें समय का भी विचार न रहा। एक-एक युग एक-एक क्षण-सा व्यतीत होने लगा। सुवर्णभट्ट ने एक सौ वर्ष के लिए संग्रह कर जो सुवर्ण रखा था वह दस वर्ष के अन्दर ही अन्दर खर्च हो गया। वेश्या पद्मावती ने सुवर्ण रहित मलहण को घर से भगा दिया। कामी मलहण के लिए उसी प्रेयसी की चिन्ता बनी रही। वह रात-दिन मलुहणी के घर के पास कूड़े पर बैठकर वहीं समय बिताने लगा। उसी अपनी प्रेयसी के नाम का जप करते-करते दिन गुजारने लगा। इस अवस्था में उनके ऊपर गिरने वाला ओस जमकर वह एक हिम-प्रतिमा-सा बन गया। उनकी इस दशा को देखकर मलुहणी का मन द्रवित हो गया। उसने अपनी सखियों से कहकर उस पर जमे हिम को निकलवाकर बहुत ममता-पूर्ण प्रेम के साथ उपचार किया और कहा कि जो प्रेम मेरे प्रति तेरे चित्त में है उसे उस पन्नगाभरण शिवजी पर रखोगे तो मुझ जैसी करोड़ों मलुहणियाँ मिल जाएँगी। इस बात को सुनते ही मलहण का चित्त एकदम बदल गया। मलुहणी पर जो एकाग्रचित्त प्रेम रहा वह परशिव पर केन्द्रित हुआ। यह कैसा अद्भुत परिवर्तन, और कितनी तीव्र गति। भगवान् शिवजी की कृपा से मलहण-मलुहणी पति-पत्नी बन जाते हैं। तीव्र कामेच्छा एकदम परिपक्व भक्ति में परिणत हो गयी। उन दोनों ने अपना सर्वस्व ईश्वरार्पण करके अन्त में (सायुज्य) भगवान् की सन्निधि को प्राप्त किया। मानव सुखापेक्षी अवश्य है। परन्तु वह सुख मरीचिका मात्र है। इस मरीचिका से उपलब्ध होनेवाले स्वल्प सुख का अनुभव करने के लिए भी ईश्वरानुग्रह की आवश्यकता होती है। भगवान् का अनुग्रह जब हो जाता है तब उस स्वल्प सुख की इच्छा भी खतम हो जाती है। और "भूमा" का अनुभव करने लगता है। यों तृप्त हो जाते हैं। कवि हरिहरदेव का लोकानुभव भी काफी गहरा होगा। उनकी एक अन्य कृति "पिडरगळें" में उन्होंने वेश्याओं की कुटिलता एवं कठिनता व हृदय-हीनता का चित्र संक्षिप्त होने पर भी सारवान् ढंग से चित्रित किया है। "मलुहणरगळें" में की पद्मावती का चित्र और चरित्र एक और उदाहरण है। परन्तु वेश्याओं में भी सज्जनों का अभाव नहीं है। कवि हरिहरदेव के जीवन से सम्बन्धित एक ऐसी सज्जन-वेश्या की गाथा भी अनुस्यूत है। आन्ध्र देश की एक दिव्य सुन्दरी वेश्या कवि हरिहरदेव की कृति "नंबियण्णन रगळें" को पढ़कर उस कृति में अभिव्यक्त कवि की रसिकता पर रीझ गयी और उनसे मिलने तथा उन्हें अपने जीवन-

शाधी बना लेने की इच्छा से उनके पास आयी। परन्तु यहाँ देखती क्या है ? रुद्राक्ष माला और भस्म धारण किये हुए काषाय वस्त्रधारी विरागी को देख उस सुन्दरी की अनुरक्ति विरक्ति में बदल गयी। वह सुन्दरी हरिहरदेव से दीक्षा लेकर उनकी शिष्या बन गयी। इस तरह के अनुभव के फलस्वरूप ही, हो सकता है कि मलहण-मलुहणी के जीवन को एकदम प्रणय-जीवन से विरक्त-जीवन में प्रविष्ट करा दिया है। इनकी इस तरह की परिणति आकस्मिक न होकर सहज लगती है।

हरिहरदेव की कृतियों में "बसवराज देवन रगळे" मकुट प्राय है। इस कृति में नायक बसवण्णा हैं जो कवि के समसामयिक न होने पर भी पुरातनों की तरह केवल पुराण-पुरुष नहीं हैं। बसवण्णा के समसामयिक एवं प्रत्यक्षदर्शी अनेक व्यक्ति हरिहर-देव के समय में जीवित रहे। इनके द्वारा कवि ने उस महापुरुष के जीवन-चरित्र को जानकर, उनके अलौकिक धार्मिक जीवन को बहुत ही उत्तम रीति से चित्रित किया है। सोलह वर्ष की अवस्थावाले बसवण्णा कर्मलता की तरह देह पर लगे यज्ञोपवीत को निकाल फेंककर, गृहत्याग करके कप्पड़ि संगम नामक स्थान पर चले आये। यहाँ कप्पड़ि में उन्हें ईशान्य गुरु का आश्रय मिला। बसवण्णा संगमेश्वर की पूजा में तत्पर हुआ। बसवण्णा का पुष्प चयन का वर्णन, अभिषेकार्थ शुद्ध जल लाना आदि सभी बातों का वर्णन बिलकुल कवि हरिहरदेव के "पुष्परगले" में जैसा वर्णित है वैसा है। ऐसा लगता है कि इस 'बसवराज रगळे' के कवि स्वयं बसवण्णा में प्रविष्ट हुआ है। अस्तु, बसवण्णा पूजा के लिए आवश्यक तैयारी के पश्चात् शिवजी के सान्निध्य में पहुँचते हैं। वहाँ शिव (संगमेश्वर) जी की प्रार्थना के बाद सुगन्धित जल से अभि-षेक करके विविध सुगन्धित पुष्पों से अलंकृत करते हैं; कर्पूरमिश्रित सुगन्धपूर्ण गन्ध का लेप करते हैं। फिर अपनी रुचि एवं इच्छा के अनुसार शिवजी का सिंगार कर धूप-दीप-नैवेद्य आदि से संतृप्त कर सुगन्धित तांबूल समर्पण के बाद आरती करते हैं; तत्पश्चात् दर्पण, चामर आदि से भगवान् की सेवा करने के बाद यह भक्त बसवण्णा शिवजी से प्रार्थना करते हैं—"हे भगवन् ! मेरे तन-मन में तुम रम जाओ।" इसके बाद एकाग्र भाव से अपने आराध्य के चरणों में दंडवत् प्रणाम करते हैं। इस सारी प्रक्रिया का वर्णन कवि ने ऐसे किया है कि मानो इस ईश्वरार्चन का पूर्ण चित्र पाठकों की आँखों के सामने प्रत्यक्ष लगता है। दिवंगत प्रोफेसर श्री वेंकण्णय्या जी इस चित्र के विषय में कहते हैं कि "यह वर्णन इतना उज्ज्वल है कि नास्तिक के मन में भी भक्तिभाव को जागृत कर देता है।"—कवि हरिहर जब वर्णन करने लगते हैं तो पाठक या श्रोता के हृदयों में सम्पूर्ण चित्र को बैठा देते हैं। परन्तु इस तरह के वर्णन में औचित्य की सीमा नहीं लांघते। उनका लक्ष्य बसवण्णा के धार्मिक जीवन का निरू-पण करना है। इस अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए आवश्यक घटनाओं को—जैसे गुरु लिंग जंगमाराधन तथा उनके दैवी कृत्य आदि—ही चुनकर उसका मन-भर वर्णन किया है। उनका जन्म-स्थान, माता-पिता, विवाह आदि के विषय में उनका वर्णन-कौशल निर्लिप्त और मौन है। एक बार एक शिवभक्त किन्नरि बोम्मय्या उनके यहाँ आये और उनके सामने बसवण्णा ने प्याज की निन्दा की तो वह किन्नरि बोम्मय्या क्रोधित होकर चले गये। उन्हें वापस बुला लाने के लिए प्याज का ही एक त्योहार मना-कर उसका स्थान ऊँचा बनाया। इस प्रसंग का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है।

ऐसा मार्मिक वर्णन करने वाले कवि बसवण्णा के वैवाहिक जीवन का वर्णन न करके मौन रहकर उचित ही किया है। उनका वर्ण्य विषय बसवण्णा का धार्मिक जीवन है न कि वैवाहिक जीवन। कथानक को बढ़ाने में भी उनकी यही दृष्टि रही है। उन्होंने बसवण्णा के धार्मिक जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को ही चुना है। इतना ही नहीं, उनकी किसी भी कृति (रगळें) को लें, कथानायक के जीवन-वृत्तान्त को छोड़कर अनावश्यक कथाओं को सम्मिलित किये बगैर ही कृति का निर्माण किया है। सम्भवत: इसी कारण से हरिहर के काव्य को पुराण का गौरव प्राप्त नहीं हुआ। इसीलिए हरिहर की कृति पर परदा-सा पड़ा है। इसे प्रकाश में लाकर कन्नड जनता को इसका परिचय कराने का श्रेय दिवंगत प्रो० वेंकण्णय्या जी को है। वे कहते हैं, 'बसव-पुराण' के निर्माण के पश्चात् हरिहर कवि की इस कृति (रगळें) के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। दूसरों की बात छोड़ दीजिये, बसवण्णा के इतिवृत्त को निर्माण करनेवाले भीम कवि, षडक्षरि आदि ने भी अपनी कृतियों में इस कृति का स्मरण तक नहीं किया है। इस तरह कालगति के क्रम में लोग इसे भूल गये। जब यह हाल है तो आज इस बात पर विश्वास करना भी कठिन है कि इस कृति के कर्ता हरिहर थे।" काव्य निर्माण में एकनिष्ठता की साधना करना एक बड़ा ही कठिन कार्य है। यह कवि साधना का एक मुख्य काव्य-गुण है। रंगीन चश्मा पहने इस गुण को न देख सके और समुचित आदर न कर सके तो वह लेखक का दुर्भाग्य है; और जिनके लिए लिखा उन पाठकों की विवेचना का दारिद्र्य है।

कवि हरिहर ने अपनी कृति में बसवण्णा का जो व्यक्ति-चित्र प्रस्तुत किया है वह महान् है। उन्होंने अपना सर्वस्व गुरु लिंग जंगमों (भिक्षाटक भक्त) पर समर्पण कर सब तरह से निष्कामी, अपरिग्रही बनकर सबके लिए पूज्य और आदरणीय हो गये। इसी के लिए अप्रयासजन्य उनकी कीर्ति व्याप गयी। बसवण्णा के जीवन में ऐसी कई घटनाएँ आयीं जबकि उनकी वह कीर्ति खराद पर चढ़कर खरी निकली। उदाहरण के लिए एक घटना का उल्लेख करना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा। एक बार स्वयं शिवजी ने एक जंगम का वेश धारण कर बसवण्णा से कहा कि हम कभी बिना स्त्री के रहने वाले नहीं हैं। बसवण्णा की यह प्रतिज्ञा थी कि भगवद्-भक्त शरण जो भी माँगे ना न कहेंगे। अब क्या करें? इस जंगम के लिए स्त्री कहाँ से लावें? बसवण्णा ने प्रयत्न किया। शहर-भर की वारांगनाओं में तालाश हुई। कोई भी वारांगना नहीं मिली। बसवण्णा को आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने अपनी ही सुन्दरी पत्नी मायादेवी को इस जंगम को अर्पित करने का निश्चय किया। नियत समय पर जंगम के लिए तैयार सेज के पास मायादेवी पहुँची। यहाँ यह विट-वेशधारी जंगम शिव प्रतीक्षा में लेटा था। मायादेवी के छूते ही वह वेशधारी जंगम शिवजी के रूप में प्रकट हुआ। इस अद्भुत बात को देखकर मायादेवी आश्चर्य-चकित होकर पुकार उठी—"यह जंगमदेव संगमदेव (संगमेश्वर भगवान्) बन गया। इसे सुनकर बसवेश्वर को कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। कहा, "माँ! यह विट-जंगम साक्षात् शिव ही है समझकर ही मैंने भेजा।" और समझाया कि "जो यहाँ ठीक उतरेंगे वे वहाँ भी ठीक उतरेंगे।" अर्थात् जो इस संसार की परीक्षा में खरे निकलेंगे वे भगवान् के पास भी खरे उतरेंगे। यों वह मानव देवमानव बना।

हरिहर कवि ने आम जनता के हित के लिए ही इस "रगळॆ" नामक शुद्ध कन्नड छन्द में कृति का निर्माण किया। शिव-शरणों (भक्तों) का पुण्य-चरित्र विशाल जनता का स्वत्व बने इसी उदार और विशाल दृष्टि से इस छन्द को चुना। चंपू पद्धति से काव्य-निर्माण में सिद्धहस्त होने पर भी उसे छोड़कर जन-जीवन से निकट सम्बन्ध रखनेवाले शुद्ध कन्नड के इस देशी छन्द को अपनाया। इस कवि के "गिरिजा कल्याण" को पढ़ेंगे तो कवि की प्रौढ़ता, विद्वत्ता आदि का अच्छा परिचय मिल जाता है। इनके काव्यांशों को प्रसिद्ध वैयाकरणी केशिराज ने अपने व्याकरण-सूत्रों के उदाहरणों के रूप में उद्धृत किया है। इससे स्पष्ट है कि इनकी प्रौढ़ता कितनी ऊँची है। "गिरिजा कल्याण" के पद्य भागों को तेरहवीं सदी के मल्लिकार्जुन कवि ने अपनी कृति "सूक्ति सुधार्णव" में सम्मिलित किया है जो हरिहर कवि की प्रौढिमा के लिए एक बहुत उच्च-स्तर की गवाही देता है। यह "सूक्ति-सुधार्णव" पूर्व कवि काव्य-संग्रह है। यदि यह कवि चंपू-काव्यों का ही निर्माण करता तो सम्भवत: यह भी रन्न और पंप की तरह पंडितम्मन्य हो ही जाते। परन्तु हरिहर कवि की प्रवृत्ति कीर्तिकामी नहीं बनी, बल्कि लोक-कल्याण की ओर हुई। इसीलिए उन्होंने अपने पंडिताऊपन को दबाकर लोक-भाषा में, देशी छन्द में काव्य निर्माण में हाथ लगाया। कई जगह उन्होंने व्याकरण के नियमों का भी उल्लंघन किया है। कवि कु.वें.पु. ने कहा है—"काव्यकॆ प्रमाणं कर्णं, व्याकरणमल्तु, व्याकरणमेकॆम्बॆयेन् ? मरॆवुदकॆ कल्तु"—अर्थात् काव्य का प्रमाण कर्ण-सुख है, व्याकरण नहीं; तो फिर व्याकरण ही क्यों चाहिए ? सीखकर भूलने के लिए।" ऐसी ही निरंकुश मति कवि हरिहर की भी।

यह देशी छन्द "रगळॆ" कन्नड साहित्य में पहले ही से प्रचलित छन्द है। परन्तु बहुत कम। उसी छन्द में समग्र ग्रन्थ-रचना करने की धृष्टता हरिहर ने ही की है। उन्हें यह छन्द अपनी उद्दिष्ट वस्तु के कथन के लिए उपयुक्त छन्द लगा। और काव्य-धारा इस छन्द में अबाध गति से बह निकली। आदि-अन्त्य प्रास का नियम पालन करने के कारण इन लम्बी कथाओं में पाठकों व श्रोतागण को रोचकता का अभाव लगता अवश्य होगा। एक कदम आगे बढ़कर इस आदि-अन्त्य प्रास का भी नियम न पालता वर्तमान समय के "सरल रगळॆ" नामक छन्द के बराबर होता। इसके बदले हरिहर कवि दीर्घ जीवन-चरित्रों को अलग-अलग अध्यायों में विभाजित कर एक अध्याय को "रगळॆ" छन्द में और दूसरे अध्याय को गद्य में लिखने लगे। कन्नड साहित्य में गद्य-काव्य बहुत ही कम हैं। चंपू काव्यों में यत्र-तत्र कथासूत्र को जोड़ने की कड़ी के रूप में गद्य का प्रयोग अवश्य मिलता है। परन्तु हरिहर कवि ने समूचे एक अध्याय को गद्य ही में लिखा है। उनके 'रगळॆ' छन्द की तरह गद्य भी कथा-निरूपण करने में अच्छी तरह खप कर काम दे सका है। इस कवि के लिए वचनकारों का गद्य अनुकरणीय हुआ न कि चंपूगत गद्य। हरिहर के हाथ में गद्य मांसल होकर पुष्ट बना। कन्नड के गद्य साहित्य के इतिहास में हरिहर एक मील का पत्थर हैं।

हरिहर कवि ने एक नवीन धारा का प्रवर्तन कन्नड साहित्य में किया और युग-प्रवर्तक बने। इस दिशा में उनके काव्य भी रसवान् हैं। इससे भी बढ़कर उन्होंने लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर संत-महात्माओं की जीवनियों का निर्माण कर पाठकों के आत्मकल्याण के लिए भी मार्ग प्रशस्त किया। प्रो० डी० एल्०

नरसिंहाचार्य जी कहते हैं कि "इस कवि के संसर्ग से हमारा मन गंगा स्नान करने से जैसा पवित्र होता है वैसे ही पवित्र हो जाता है।" इसीलिए सभी वीरशैव कवि अपनी कृतियों के आरम्भ में उन्हें पुष्पांजलि अर्पित कर बाद को काव्य-निर्माण कार्य में प्रवृत्त होते हैं। बारहवीं सदी के अन्त में और तेरहवीं सदी के पूर्वार्ध में स्थित यह कवि अपने समय का सीमा-पुरुष है। इस कारण से षडक्षर कवि का यह वचन "हरीश्वरस्तेन कविः कः" काल-गर्त को भेदकर उत्तर के अभाव में अनुरणित होता रहा है। कवि हरिहर की कृतियाँ (रगळे) कुल एक सौ छः हैं। उनका विवरण एक विस्तृत सूची होगा। संक्षेप में यह विवरण पर्याप्त होगा। पुरातनों (शिवभक्त सन्त) के विषय में निर्मित काव्य(रगळे छन्द में) चौंसठ (64);नवीनों (भक्त सन्त) के विषयक अट्ठाईस (28); संकीर्ण कृतियाँ बारह (12)तथा कैलास की कथाओं से सम्बन्धित काव्य दो (2) इस तरह उन्होंने कुल 106 (एक सौ छः) कृतियों का निर्माण किया है और ये विषय के अनुसार चार भागों में विभक्त हैं।

कवि राघवांक—दसवीं सदी के पंप और रन्न, तेरहवीं सदी के हरिहर राघवांक ये दोनों जोड़े कन्नड भाषा माता के मन्दिर के कलश हैं। पांडित्य, प्रतिभा एवं श्रीमंत जीवन के प्रतीक हैं रन्न और पंप; तो ईश्वर भक्ति, मानव-प्रेम एवं स्वतन्त्र मनोवृत्ति के प्रतोक हैं हरिहर और राघवांक। पहली जोड़ी (रन्न और पंप) राजास्थान में संम्मान्य हैं तो दूसरी जोड़ी (हरिहर और राघवांक) जनता जनार्दन के गौरव का पात्र हैं। कवि रन्न ने आदिकवि से स्फूर्ति पायी तो राघवांक ने शिव कवि से केवल स्फूर्ति-मात्र नहीं बल्कि स्वयं हरिहर कवि के वरपुत्र कहने लायक मार्गदर्शन भी पाया। यह तो सहज ही है। राघवांक हरिहर का भानजा ही तो हैं! उनकी बहन रुद्राणी का बेटा ही तो हैं। सूक्ष्ममति प्रतिभावान् इस भानजे पर हरिहर की अपार ममता थी। स्वयं उन्होंने इस बच्चे की शिक्षा-रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और उन्हें प्रगतिशील विद्वान् बनाया। खान में उत्पन्न रत्न सान पर चढ़ाया जाकर उज्ज्वल कांति से चमकने लगा। ईश्वरदत्त प्रतिभा से गुरु के द्वारा विद्वत्ता मिली तो सोने में सुगन्धि आ गयी। शिव-सान्निध्य, शिव कवि का सहवास एवं शिवभक्त शरणों का साहचर्य—इन सबके योग के फलस्वरूप राघवांक में धर्म एवं काव्यधर्म दोनों जुड़ुओं की तरह प्रबुद्ध हुए। उनकी काव्य-कर्तृत्व-शक्ति अंकुरित और विकसित हुई। इस विकसित कुसुम की सुगंधि सारे देश में व्याप गयी। पुष्प की सुगंधि की ओर भ्रमर जैसे आकर्षित होते हैं वैसे ही इनकी कीर्ति राजास्थान का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित कर सकी। उन्होंने अपनी अमर कृति "हरिश्चन्द्र काव्य" को हंपी के राजा देवराज के दरबार में पढ़कर "कवि शरभ भेरुंड" के विरुद से अभिभूषित हुआ। वह "उभय कवि कमल रवि" अर्थात् कन्नड और संस्कृत दोनों भाषाओं के उत्कृष्ट कवि हैं। "उभय कवि शरभ भेरुंड" याने कन्नड तथा संस्कृत के कवियों में शरभ की तरह रहनेवाले उद्दाम कवियों से भी ऊँचे गंडभेरुंड जैसे महोन्नत कवि हैं। वह "अदट कवि निकर चौदंत" अर्थात् सूर कवियों में ऐरावत के समान श्रेष्ठ कवि हैं। ये सब उनकी विरुदावलियाँ हैं।

कवि हरिहर बड़े भाग्यवान् हैं। इनके विषय में "शिष्यादिच्छेत् पराजयं" यह सूक्ति सार्थक और चरितार्थ हुई है। कवि हरिहर ने "रगळे" के प्रयोग में

सीमोल्लंघन किया; चंपू पद्धति को त्यागकर "रगळे" (छन्द) पद्धति को अपनाकर काव्य रचना की। कवि राघवांक ने अपने गुरु की निरंकुशता को काव्य जगत् में आगे बढ़ाया और "षट्पदी ब्रह्म" कहलवाकर कीर्ति पायी। राघवांक से भी पहले यह षट्पदी छन्द तो प्रचलित था, परन्तु "शर षट्पदी" का प्रयोग कुछ सीमा तक काव्यों में यत्र-तत्र प्रयुक्त होता था। ऐसा लगता है कि राघवांक ने इस षट्पदी छन्द में वैविध्य लाने के लिए अनेक तरह के प्रयोग किये। उन्होंने अपने काव्यों की वार्धक षट्पदी नामक षट्पदी छन्द के एक प्रकार को लेकर उसी में रचना की —ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु उनके "वीरेश्वर चरिते" नामक काव्य में जिस तरह की षट्पदी छन्द का प्रयोग हुआ है वह कुछ विलक्षण है। उसके चरणों में मात्रा-संख्या अन्य षट्पदियों की ही तरह है तो भी गण पाँच मात्राओं के बदले चार मात्रावाले हैं। राघवांक के काव्यों में "शरभ चारित्र", "हरिहर महत्त्व" ये दो ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। कवि ने इन दोनों को भी वार्धक षट्पदी ही में लिखकर इस छन्द पर कुछ दूसरे ढंग का प्रयोग भी किया हो, यह सम्भव है। साहित्य के विद्यार्थी के मन में ऐसा कुतूहल उत्पन्न होना सहज ही है।

कवि राघवांक की अब तक उपलब्ध कृतियाँ चार हैं। वे ये हैं—(1) हरिश्चन्द्र काव्य (2) वीरेश चरित, (3) सिद्धराम पुराण, (4) सोमनाथ चरित। इनमें काव्य की दृष्टि से हरिश्चन्द्र काव्य अग्रगण्य है। इस काव्य की महत्ता बताते हुए कवि काव्यगत विषय का निरूपण यों करते हैं—

> "वसुधाधिपति हरिश्चन्द्र घनसत्यनें
> न्दोसॅदु वासिष्ठनिन्द्रंगॅनलु कौशिकं
> हुसि माळ्पॅनॅन्दु भाषॅय नित्तु धरॅगॅ बन्दवनिपन सति पुत्रर
> असुवंत्यवॅनॅ निग्रहं माडॅ तप्पदिरॅ
> शशिमौळि श्री विश्वनाथ भूपंगॅ करु
> णिसि सकल साम्राज्यवित्तातनं मॅरॅद कृति पुण्यदा कृतियिदु।"

इसका तात्पर्य यह कि—ऋषि "वसिष्ठ ने देवेन्द्र से कहा कि राजा हरिश्चन्द्र परम सत्यवान् हैं। विश्वामित्र ऋषि ने इस बात को सुनकर वसिष्ठ ऋषि की बात को असत्य ठहराने की प्रतिज्ञा की। उस प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने राज दम्पति को प्राणांतक कष्ट दिया तो भी हरिश्चन्द्र सत्य से डिगे नहीं। राजा की इस सत्यनिष्ठा से भगवान् ने संतुष्ट होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन्हें उनकी पूर्व पदवी (राजा की) देकर अन्तर्धान हुए। इस पुण्य कथा का यह वृत्तान्त है।" इस कथा को काव्यबद्ध करने वाले कवि चतुर कविराय हंपॅ के हरीश्वर का वरसुत उभय कवि कमल रवि राघवांक पंडित है। अपने मामा की तरह यह भानजा भी परम शिवभक्त हैं। पंपापति विरूपाक्षेश्वर का गुणगान करने में प्रयुक्त जिह्वा का अन्य देव या भवियों (सांसारिक जीवी) का गुणगान करने के लिए दुरुपयोग न करने की प्रतिज्ञा से आबद्ध महाभक्त है यह कवि राघवांक। अपनी काव्य-कन्या को जन्म देकर विरूपाक्ष महादेव को उन्होंने समर्पित किया। उस काव्य-कन्या की सुन्दरता तो देखिये। कवि की ही वाणी में उस कन्या का सौन्दर्य यों हैं—

> "रसजीव भावबॉडलर्थवयव शब्द

विसरवे नुडियलंकार तॉडिपॅयु त
वे सुलक्षणवें लक्षण विमळपदन्यास नडॅ रीति सुकुमारते
रसिकतन सुळि सुखं निळयवंतप्प यी
पॉस काव्य कन्निकॅय पडॅदु पंपांबिकॅय
रस विरूपाक्षंगॆं कॊट्ट हंपॅय राघवांकनें कृत कृत्यनो ।"

अर्थात्—'नव रस ही इस काव्य-कन्या का जीव है, भाव ही देह, अर्थ ही शरीर के अंगांग और शब्द समूह ही वाणी, काव्यालंकार ही उसका अलंकार तथा काव्य लक्षण ही उस कन्या का सुलक्षण है, शब्द चयन और गुंफन ही उसकी गति, काव्य रीति ही उसका सौकुमार्य इत्यादि-इत्यादि—ऐसे नव नवीन काव्य-कन्या को जन्म देकर पंपांबिका के पति विरूपाक्ष महादेव को अर्पित करनेवाले राघवांक धन्य हैं।" हाँ, धन्य ही तो हैं। काव्य रस ही जीव है—इस रहस्य को समझनेवाले रसऋषि हैं राघवांक अपने काव्य को कन्या कहकर उसे भगवदर्पण करने की उनकी यह कल्पना बड़ा मार्मिक और सुन्दर है। वह काव्य-कन्या रवि के भावों के समावेश से निर्मित शरीर में रसयुक्त होकर सजीव है। उसके सर्वांग सुसंपुष्ट और मांसल होकर सुन्दर दिखने के लिए शब्दों को अर्थ-भरा होना चाहिए। उसमें प्रयुक्त शब्द सजीव होकर स्वयं काव्य-कन्या ही बोल रही हो—ऐसा लगना चाहिए। जो स्वभाव से ही सुन्दर है वह यदि आभूषणों से सज जाय तो सोने में सुगन्ध जैसे शोभायमान होगी। यह काव्य-कन्या काव्यालंकारों से सजी है। शब्द गुंफन भी सुन्दर, सौकुमार्यादि स्त्री सहज गुण भी भरे हैं। ऐसी सर्वांग सुन्दर काव्य-कन्या को परमेश्वरार्पण कर सकनेवाले कवि से बढ़कर सुकृति और कौन हो सकता है।

राघवांक का "हरिश्चन्द्र काव्य" रन्न कवि के "गदायुद्ध" को तरह अपनी परिधि में एक (नाटक) दृश्य काव्य को लिये बैठा। 'गदायुद्ध' की तरह थोड़े-से परिवर्तन करके इसे भी नाटक के रूप में परिवर्तित किया जा चुका है। इस काव्य रूपी नाटक का आरम्भ मंगलमय देवेन्द्र-सभा से आरम्भ होता है। इन्द्र ने एक रात को दरबार बैठाया है। सभासदों के बीच में ऋषिगण विराजमान हैं। इस बीच में गंगा-तुंगा की तरह विश्वामित्र एवं वसिष्ठ उपस्थित हैं। इन्द्र ने अपने सिंहासन पर बैठकर एक बार समस्त सभा की ओर दृष्टि फेरी। ऋषियों के पास आकर उनकी दृष्टि फिर गयी। उन्होंने ऋषियों से पूछा—"इक्ष्वाकु के वंशियों में महापराक्रमी एवं कभी एक भी (झूठ) असत्य वचन न बोलनेवाला सत्यवान् तथा कथनी के अनुसार करनी में भी प्रसिद्ध वीर कौन है?" यह बात सुनकर वसिष्ठ ने उत्तर दिया—"अपने पूर्वजों की कीर्ति को अक्षुण्ण रखकर उनका उद्धार करने के लिए कटिबद्ध भूपति हरिश्चन्द्र हैं जिनकी सत्यवादिता की प्रशंसा मैं नहीं कर सकता! शेषनाग भी अपने हजार मुंह से नहीं कर पाता। ईश्वर की सौगंध खाकर कह सकता हूँ।" यह बात विदित ही है कि विश्वामित्र वसिष्ठ का हमेशा से विरोधी हैं। भरी सभा में वसिष्ठ से सर्वप्रथम प्रश्न करना विश्वामित्र से सहा न गया। इसपर वसिष्ठ "हाँ" कहें तो विश्वामित्र "नहीं" ही कहेंगे। इतना ही नहीं, विश्वामित्र का स्वभाव ही है छिद्रान्वेषण करना। इसलिए उन्हें गुस्सा आया। उन्होंने क्रोधित होकर कहा—"ठहरो, बोलो (बको) मत, तुम जो भी कहो उसे शांतिपूर्वक सुनने के लिए इन्द्र तैयार बैठा है—

यह समझकर जो मन में आया वही सुनाने चले हो।" वसिष्ठ ने कहा—"क्यों! वह महान् नहीं है?" विश्वामित्र बोले—"अपार धनराशि जिसके पास है, वह बड़ा होगा ही।" वसिष्ठ ने उत्तर दिया—"इस सभा में धन की बात क्यों? सत्य की बात कहो।" विश्वामित्र बोले—"उनके राज्य में किंचित् भी सत्य वचन मैंने सुना नहीं।" इतना ही नहीं, हरिश्चन्द्र असत्यवादी है—इसे प्रमाणित करने के लिए एक सबूत भी पेश किया। यह बात सुनकर वसिष्ठ का मुंह बन्द हो गया। फिर भी उन्होंने कहा—"इस भूतल पर हरिश्चन्द्र में असत्यवादिता दर्शानेवाले इसके पहले न कोई जन्मा और न आगे भी जन्मेगा। इसे मैं जानती हूं। दूसरों की बात क्यों?" वसिष्ठ की यह बात सुन विश्वामित्र आग-बबूला हो उठे, और बोले—"मुंह बन्द कर, अब अधिक मत बोलो, मुंह बड़ा है समझकर मनमाने बोलने लगे? वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राजा है, अपार धनराशि का मालिक है, और वह तुम्हारा शिष्य है। तुम्हें वह अपार धन देता है तथा तुम उससे पोषित हो। इसीलिए तुम उसकी इतनी बड़ाई करते हो। यह तुम्हारे लिए ठीक नहीं है। क्या तुम्हें इतना उनके बारे में कहना उचित है?" इस बात से दोनों की शान्ति आलोड़ित हुई। "हरिश्चन्द्र कभी झूठ न बोलेंगे। यह मेरी प्रतिज्ञा है"—वसिष्ठ ने कहा। विश्वामित्र बोले—"मैं उनसे असत्य वचन कहलाऊँगा"—कह कर घोर प्रतिज्ञा की। यों दोनों ने कसम खायी। उस समय की देवसभा का चित्र यों रहा—

"धरॅगगनवडसि कादुवडॅडॅयलिह चरा
चरवॅल्लि हॉगलि मुनिदखिळमं सुट्टॉसदु
मरळि हुट्टिसबल्ल मुनिगळिब्बर शांतिसवॅद कदनद मुखदलि
इरबारदेळबारदु नुडियबारदं
तिरबारदहुदॅनलु बारदल्लॅन बार
दॅरडुं निरोधदिदॉड्डोलगं चिन्तॅ मुसुकि सैबॅरगादुदु"

अर्थात्—"भूमि और आकाश दोनों परस्पर विद्वेष से आपस में लड़ने लगे तो इन दोनों के बीच में फँसकर समस्त चराचर जगत् कहीं भी छिपकर बचने की कोशिश करें, उसे छोड़े बिना इस समूचे सचराचर को भस्मसात् कर नयी सृष्टि रच डालने की शक्ति रखनेवाले वे दोनों ऋषि रणाग्र में खड़े हैं। ऐसी दशा में उस देवसभा के सदस्य वहाँ रह भी नहीं सकते, जा भी नहीं सकते; बोल भी नहीं सकते, न तो मौन ही रह सकते। (हाँ-नहीं) कुछ भी नहीं कर सकते। इस हालत में, (हाँ नहीं के बीच) सारे सभासद किंकर्तव्यविमूढ़ हो चक्कर में पड़ गये हैं।" इन दोनों ऋषियों (वसिष्ठ-विश्वामित्र) का वाग्वाद आगे बढ़कर कथा की नींव का काम कर देता है। दृश्य काव्य के रूप में परिवर्तित करने पर यह एक सुन्दर दृश्य बन जाता है।

वसिष्ठ-विश्वामित्र का झगड़ा ही हरिश्चन्द्र के सारे कष्टों की जड़ बन जाता है। चक्की के पाटों के बीच में जो फँस जाता है वह बच कैसे सकता है? एक तरफ विश्वामित्र अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हरिश्चन्द्र को झूठा साबित करने के लिए कमर कसे खड़े हैं और दूसरी ओर वसिष्ठ अपने प्रण के अनुसार सत्यवादी प्रमाणित होते देखने की प्रतीक्षा में हैं। विश्वामित्र को अपनी प्रतिज्ञा को प्रमाणित करना है इसलिए अब कार्यरंग स्वर्गलोक से उतरकर मर्त्यलोक बनता है। भूलोक में आकर विश्वा-

मित्र कुछ ऋषियों को, जो उनकी इस रहस्यमयी योजना के बारे में कुछ नहीं जानते, उकसाता है। और उनके द्वारा सुवर्णयाग करवाने की योजना बनाता है। यज्ञकर्ता हरिश्चन्द्र यह प्रतिज्ञा करता है कि जो भी आयें और जो कुछ माँगे वह मैं दूंगा। उनकी इस प्रतिज्ञा को भंग करने के इरादे से विश्वामित्र उनके पास आते हैं और उनसे इतनी बड़ी धनराशि माँगते हैं कि कोई हाथी पर बैठकर एक कौड़ी ऊपर की तरफ ओर से फेंके तो वह जितना ऊँचा जाएगी, उतनी ऊँची वह धनराशि हो। हरिश्चन्द्र ने निः-संकोच कह दिया "तथास्तु"। उतनी ऊँची धनराशि तैयार हो गयी। विश्वामित्र ने यह कहकर कि जब जरूरत हो लूंगा—उस धनराशि को उन्हीं के यहाँ धरोहर रखा। इस तरह उनका कार्य प्रथम ग्रासे मक्षिकापातः बन गया जिससे वह दुःखी हुआ। प्रथम प्रयत्न ही विफल हुआ, तब उन्होंने तरह-तरह के खग-मृगों की सृष्टि की और तद्द्वारा सारे देश में क्षोभ पैदा कर दिया। इसके फलस्वरूप राजा को मृगया के लिए तैयार होना पड़ा। तब विश्वामित्र ने एक मायावराह की सृष्टि की और उसे राजा के यहाँ भेज दिया। वह वराह राजा की सारी सेना को मारकर बहुत तहलका मचाता रहा। आखेटक सेना का एक सैनिक प्राणभय के कारण किसी तरह उस वराह से अपने को बचाता हुआ राजा के पास भागा-भागा आ रहा है—इस दृश्य का राघवांक ने यों वर्णन किया है—

> "बिट्टतलॅ, गिडुहिडिदु कळॅदुडुगॅ, काडमुळ्ळु
> नट्टु कुंटुवपदं बॅन्न बिगुहळिदॅळल्व
> मॉट्टॅ गॉळॅडहि कॅडॅदॉडॅद मॉळकाल् तेकुवळ्ळॅगळु वॅरसॉरलुत
> कॅट्टोडुतिरलॉबॅनवन कंडिदिरहड
> गट्टि केळलु हु हु हु हुलियल्ल हंदियरॅ
> यट्टि बरुतिर्दुदॅनॅयॅल्लि तोरॅनलु नीवे अरसिकॉम्बुदॅन्द ॥"

अर्थात्—"बिखरे बाल, छोटी झाड़ियों में उलझकर उखड़े हुए वस्त्र, जंगली काँटों के लगने से लंगड़ाते पैर, पीठ पर कसे भोजन सामग्री की ढीली पड़ी गठरी लटकती हुई, ठोकर खाने से गिर पड़ने के कारण खुरचकर जखमी हुए घुटने, दौड़ने के कारण फूले हुए फेफड़े जिससे साँस लेना भी मुशकिल है, हाँफते-भागते, डर के मारे चीखते-चिल्लाते वह व्याध सैनिक भाग रहा है। यों भागते को देखकर एक दूसरा सैनिक उससे पूछता है— 'अरे भाई, तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई ?" भीत और भागता सैनिक थके-माँदे हाँफते मुशकिल से कहता है—'ब-ब-ब-बाघ नहीं, शूकर पीछा कर रहा है।' कहते-कहते उसकी घिग्घी बँध जाती है। दूसरा सैनिक पूछता है कि 'कहाँ है शूकर' तो वह डरते हुए यह बात 'तुम ही खोजो'—भागते-भागते कहता है।" यह है उस भीत व्याध का चित्र जिसे कवि राघवांक ने प्रस्तुत किया है। पाठक के हृदय पर यह वर्णन उसी भीत व्याध के चित्र की अमिट छाप अंकित हो जाती है। यही कवि की वर्णन-शैली है। राघवांक ऐसे स्वाभाविक वर्णन करने में सिद्धहस्त हैं।

उस माया-वराह को मार डालने के लिए स्वयं राजा को ही धनुर्धारी होकर सन्नद्ध होना पड़ा। इस वराह का पीछा करते-करते अनजाने विश्वामित्र के आश्रम में पहुँचे। वहाँ राजा को एक ऋषि दिखे। राजा उस तपस्वी को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। अब ऋषि ने यह कहा कि यह विश्वामित्र का आश्रम है, राजा हरिश्चन्द्र का

सारा उत्साह समाप्त हो गया। गुरुवर्य वसिष्ठ ने उनसे कहा था कि वह भूलकर भी विश्वामित्र से आश्रम में न जायें। परन्तु विधि उसे वहीं घसीटकर ले गयी। इससे राजा की दशा सांप के डसनेवाले की-सी हो गयी। मन किसी आशंका से आलोड़ित हुआ, राजा खिन्न हुए। चिन्तामग्न राजा ने अपनी पत्नी की गोद में सिर रखकर उष्ण मस्तिष्क को ठंडा करना चाहा। आँख लगी। भावी अमंगल की भूमिका की तरह राजा ने एक भयंकर सपना देखा। उस सपने की बातों को राजा रानी से कहने लगा। सपने का विवरण यों है—"एक ऋषि गरजते हुए राज-सभा में प्रविष्ट हुए। वहाँ सभा-सदन के रत्न-खचित स्तम्भों को काट फेंका। स्वर्ण-कलशों को नीचे गिराया। राजा को सिंहासन से नीचे गिराकर धराशायी बना दिया और सिंहासन को उठा ले गये। जमीन पर गिरे राजा की छाती पर कौआ बैठा बोलने लगा। इसके पश्चात् वह राजा एक ऊँचे पर्वत पर चढ़कर उसके ऊँचे शिखर पर पहुँच कर वहाँ स्थित रत्नखचित एक राज महल में प्रवेश किया।"—इस सपने की बात को सुनकर रानी भी काँप गयी। तो भी उन्होंने राजा से कहा—"चाहे जो भी हो जाय, प्राणों पर आपत्ति कितनी ही बड़ी आ पड़े, प्राण निकल भी जायँ तो भी सत्यवचन से आप विमुख न होवें।" इतने में शूकर के मरने के व्याज से क्रोधित हो हुंकारते हुए कहने लगे—"आज राजा मेरे हाथ लगा है; चाहे जो हो, मैं उन्हें सत्य-च्युत किये बगैर नहीं रहूँगा।" इस तरह उनके क्रोध भरे हुँकार से दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं। जो ऋषि है उनके लिए क्रोध, द्वेष और अनित्य बैर—ये अस्पृश्य हैं। इस तरह की अस्पृश्यता से उत्पन्न कन्याएँ भी अस्पृश्य हैं। विश्वामित्र ने इन कन्याओं से कहा—"हरिश्चन्द्र राजा हमारे आश्रम में आया है, तुम दोनों सब तरह से वहाँ जाकर उन्हें अपने जाल में फंसा लो।"—और उन्हें भेज दिया। दोनों कन्याएँ राजा के पास आयी और अपने मधुर संगीत से उन्हें खुश किया। राजा ने उनके गायन से सन्तुष्ट होकर अपने आभूषणों को निकालकर पुरस्कार के रूप में उन्हें दिया। कन्याओं ने उसे स्वीकार नहीं किया और बदले में उनसे चर्चा करना शुरू कर दी। राघवांक ने इस प्रसंग को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। इस प्रसंग को लिखते समय उनकी यह शैली चरमोत्कर्ष पर पहुँची है। पढ़ते ही बनता है। यहाँ केवल उस उक्त संभाषण के भाव मात्र दिया है। वह यों है—(केवल नमूने के लिए थोड़ा अंश मात्र है यह।) कन्याएँ—"गरीब को हाथी मिले तो क्या फायदा? प्यासे की प्यास घी से बुझेगी? रुग्णावस्था में रम्भा जैसी सुन्दरी के मिलने से क्या फायदा? मरते वक्त सारी पृथ्वी का राजत्व भी मिले तो उसे लेकर क्या करना? मदन ज्वर से पीड़ित और विरहताप-तप्त हमसे खुश होकर यदि मोतियों की मालाएँ देंगे तो उससे हमारा यह मदन-ज्वर मिट सकेगा? यह मोती हमें नहीं चाहिए, हमें चाहिए इस प्यासी सीपी में स्वाती की बूंद जैसे तुम्हारा चुम्बन। हमें वह चुम्बन देकर रक्षा करो।"

राजा - सूर्य वंश के राजाओं की पीढ़ियों में अभिषिक्त किसी भी राजा या अन्य सूर्य वंशियों को इस तरह का काम कभी उचित नहीं रहा है न रहेगा ही। ये इतने पराक्रमी हैं कि कोई बैरी इनके सामने ठहर नहीं सकते। इनके अधीन राज्य में रहनेवाले किसी भी व्यक्ति को गरीबी, बीमारी और किसी तरह की अपकीर्ति नहीं रहेगी। और न कोई डर ही रहेगा। सभी स्वस्थ, अच्छे और सुखी तथा निडर होकर

रहे और रहेंगे। इसे समझ-बूझकर ऐसा अप-कीर्तिकर काम किया जा सकता है ?

कन्याएँ—अनुनय-विनय से सभी दे सकते हैं और सभी छोड़ भी सकते हैं।

राजा—माता, पिता, पत्नी, भगवान्, अवलम्बित और विश्वास पात्र समस्त बन्धु-बांधवों को छोड़ सकनेवाले धीर मनुष्यों में पैदा नहीं हो सकता।

कन्याएँ—जिन लोगों के विषय में आपने बतलाया उनमें से कोई किसी को माँगे तो न दें तब कोई बात नहीं। जो आकर अनुनय-विनय से माँगते हैं तो ऐसा लोभ क्यों ?

राजा—अन्यों को नहीं देना चाहिए—इसलिए सती को, वंश की परम्परा के पालक होने के नाते पिता, अभिव्यक्त होते समय पूजा ग्रहण करने के कारण दैव, सदा छाया जैसी रक्षा देनेवाली होने के कारण माता, युद्ध में शत्रुओं को भयभीत करने वाली स्वसेना—इन सबको त्याग कर, इस बात को जानकर भी माँगनेवालों को तीनों लोकों में लोग मूर्ख नहीं कहेंगे ?

बालिकाएँ—संसार में लोगों में महादानी और सत्यनिष्ठ रूप में प्रसिद्ध हैं आप। आपकी इसी कीर्ति को सुनकर बड़ी आशा लेकर हम आयीं। माँगा और निष्फल हो गयीं। कम से कम हमें पछतावा न हो, आह न भरें—इस बात को समझ कर हमारे दुःख को मिटावें, हे ! हरिश्चन्द्र महाराज !

राजा—(स्वगत) यह सुन्दर धरती जब जन्मी तभी यह सूर्यवंश जन्मा। इस वंश में जन्मे राजाओं की कीर्ति, शौर्य आदि प्रख्यात हैं। इस तरह प्रसिद्ध राजाओं को कन्याएँ दान में दे सकनेवाले राजा-महाराजा आज तक नहीं हुए। आज ये अस्पृश्य कन्याएँ आकर ऐसे सूर्यवंशी चक्रवर्ती की सती होकर रहने की बात कह रही हैं। क्या कालगति की महिमा है या जिस धरती पर खड़ी हैं उस धरती का ही प्रभाव है ? (राजा क्रोधित होता है।)

कन्याएँ—(राजा के मनोभावों को समझ कर) हे राजन् ! पवित्र दूध देनेवाले थन का मांस क्या पवित्र है ? मधुर मधु तैयार करनेवाली मक्खी क्या श्रेष्ठ है ? अपनी नाभि में कस्तूरी को भरकर विचरनेवाले मृग की नाभि क्या परिशुद्ध है ? क्या यह सब ईश्वर के लिए समर्पित नहीं किये जाते ? उत्तम गुणों के होने पर किसी कमी की ओर, हे राजन् ! कोई ध्यान नहीं देता है। अब हमारे रूप, यौवन के होते कुल की बात क्यों करते हैं ?

राजा—हाँ-हाँ ! नाले में बहनेवाला गंदा पानी छँटकर साफ हो जाय तो वह किसी के नहाने लायक थोड़े ही होता है। शव की समाधि पर खिला-फूल किसके लिए उपयोगी होता है ? कुत्ते के थन में दूध भरा हो तो वह किसके खाने योग्य होता है ? अछूतों में श्रेष्ठ कहनेवाली तुम लोगों में अपनी जवानी का गर्व और अपने रूप का अहंकार तथा अपनी होशियारी का व्यवहार आदि-आदि किसके लिए उपयोगी होंगे ? तुम लोगों के संसर्ग में रहकर भोग भोगा जाय ? शिव, शिव, शिव—ऐसी बात भी मुँह से नहीं निकलनी चाहिए। ईश्वर ही रक्षा करें।

कन्याएँ—हमारा गाना प्रेम से सुना, तब कानों के लिए छूत नहीं लगी; हम से बोले तो मुँह पर छूत नहीं लगी; हमारे रूप-सौन्दर्य को आँखों ने देखा, इससे आँखों को छूत नहीं लगी। हमारे शरीर पर से बहनेवाली हवा लगी तो उससे छूत नहीं लगी।

इस हवा में मिलकर बहनेवाली सुगन्धि का आघ्राण किया तो नाक को भी छूत नहीं लगी। हम यदि छू जाँय तो छूत लग जाएगी ? शरीर के पंच इन्द्रियों में चार छूत और एक इन्द्रिय अछूत कैसे ?

राजा—देखकर समझने के लिए आँख, सूँघ कर जानने के लिए नाक, सुन कर जानने के लिए कान हैं। ये सब दूर से ही समझने के लिए हैं। वे छूने के लिए नहीं। वे इन्द्रिय छूते नहीं। तुम लोगों की यह बात केवल बकवास है, अंटसंट है। छूने पर आग का काम जलाना है। देख सुनने से या घ्राण करने से जलेंगे ?—अब तुम लोग व्यर्थ समय न गंवाकर यहाँ से निकल जाओ।

कन्याएँ—किसी शाप के कारण हमारा जन्म दुष्कुल में हुआ है और अब आपके संग हो जाने से वह शुद्ध हो जायगा।

राजा—तुम्हारे लिए मैं अपने कुल को क्यों बिगाड़ूँ ?

कन्याएँ—सबके सब पाप धोनेवाली गंगा को सबके समस्त पाप लग जाएँगे।

राजा—मेरे कुल-धर्म का यह मार्ग नहीं है। घड़े भर दूध को बिगाड़ने के लिए थोड़ी-सी खटाई ही पर्याप्त है न ?

कन्याएँ—प्रश्न का उत्तर दिये बिना रहा नहीं जा सकता। आपकी प्रसिद्धि कीर्ति, पराक्रम, सौंदर्य, तथा सद्गुण, यौवन, गौरव, आदि विशिष्ट बातों पर रीझ कर आपके प्रति आकृष्ट हुए। यह बड़ा धोखा हुआ। आपके गुणगणों पर रीझ कर, बड़ी आशा लेकर आयी हुई इन विरहतापतप्त दुखीजनों को सान्त्वना देना और समाधान करना ही नीतिसंगत है। यों तिरस्कार करना नीति नहीं। चाहे कुछ भी करें हमारा यह दुख-दर्द मिटनेवाला नहीं। हमें पत्नी के रूप में परिग्रह करो तो यह ताप मिट सकता है। जैसा चाहें करें। हम आपको छोड़ेंगे नहीं।

राजा—हमारे पीछे लगकर क्या करेंगी। हमारे यहाँ कितनी अस्पृश्या हैं मालूम ?

कन्याएँ—होंगी, चाहे कुछ भी हो, कितनी भी हों, हम तो आपको नहीं छोड़ेंगी। हम आपका पीछा करेंगी ही। हमें चाहकर, विश्वास दिलाकर, मोहित कर इनकार करनेवाले हैं यह महाराज हरिश्चन्द्र; यह कहती हुई संसार में आपकी शिकायत करती हुई, उसी की घोषणा करती हुई आपका पीछा करती हुई आएँगी।

इन विश्वामित्र हुंकार-जन्य कन्याओं को देखकर राजा को गुस्सा आया। अपने हाथ के चाबुक से उन्हें मार कर वहां से भगा दिया। यह ऊपर का संवाद बहुत अच्छी तरह स्पष्ट करता है कि कवि राघवांक बहुत ही अच्छे दर्जे के नाटककार थे। काव्य के आरम्भ से अन्त तक ऐसे ही संवाद देख सकते हैं। इससे प्रतीत होता है कि कवि बहुत बड़े संभाषणाचार्य होंगे। कवि राघवांक ने अपनी काव्य-कन्या को सुन्दर शब्द समूह से सजाया है। सुन्दर संवाद, चतुर शैली में बढ़ायी हुई इस काव्य की कथावस्तु बड़ी सजीव एवं पात्र व्यक्तित्वपूर्ण हैं। कवि का यह कथन कि यह काव्य-कन्या सजीव और सुन्दर है, वास्तव में ध्यान देने योग्य है।

राजा से मार खाकर अछूत कन्याएँ विश्वामित्र के पास भाग आयीं। इसी को कारण बनाकर विश्वामित्र राजा से राज्य कोश आदि सब छीन लेता है और ऊपर

से दक्षिणा में प्राप्त धनराशि को जिसे धरोहर रखा था उसे भी चुका देने को कहता है। इसे चुकाने की अवधि एक महीना निर्धारित कर राजा को राज्यभ्रष्ट कर के हटा देता है। हरिश्चन्द्र की कथा और सत्य-संधता तथा सत्य पालन करने के लिए जो कष्ट उन्होंने झेला यह सब कवि राघवांक के कपोल-कल्पित नहीं है। पुराणेतिहासों में जन्म लेकर प्राचीन काल से लोगों में प्रचलित व परिचित कथा ही है। यह पुरानी कथा कवि की प्रतिभा में गलकर कल्पना में ढलकर नव्य रूप में फिर से रूप धारण किया है। और वह सबके गौरव एवं प्रेम का पात्र भी बनी हुई है। कथा का ढांचा मोटे तौर पर वही पुराना है। कवि की तूलिका ने इन रेखाओं में नवीन एवं विविध तरह के रंग भर दिए हैं। वीर और करुण रसों से यह कथा चिरनूतन लगती है। कवि ने अपनी इस काव्य-कन्या के विषय में उसे रसजीवी बताया है। इस रस के कारण वह काव्य-कन्या संपूर्ण सजीव है। हरिश्चन्द्र राज्य-भ्रष्ट होकर जा रहे हैं, इसे देखकर देश की प्रजा दुख से कातर हो रही है। कवि प्रजा-जन के इस दुख का वर्णन करते हैं—

> "पुरद पुण्यं पुरुषरूपिदें पोगुतिदें
> पुरजनद भाग्यवडविगें नडॆयुतिदें सप्त
> शरधिपरिवृत धरॆय सिरिय सॉवगज्ञात वासक्कें पोगुतिदॆंको
> ऎरॆव दीनानाथरानन्द वडगुतिदें
> वर मुनीन्द्रर यागरक्षॆ बळवळियुतिदें
> निरुतनॆन्दॉन्दागि बन्दु संदिसि निंद मंदि नॆरॆ मॉरॆ यिट्ट्दु"

कि—"शहर का समस्त पुण्य पुरुष रूप धारण कर जा रहा है। शहर के निवासियों की भाग्यदेवता कानन की ओर जा रही है। आसमुद्रांत पृथ्वी का समस्त ऐश्वर्य अज्ञातवास करने जा रहा है। दीन हीन और भिक्षा मांगनेवाले दरिद्र जो भिक्षा पाकर खुश रहते थे, उनकी सारी खुशी खतम हो गयी। ऋषि-मुनियों की यज्ञ-रक्षा का कार्य बहुत शिथिल हो गयी। यह सत्य है।" यों समस्त पौर दुख से रो रहे हैं। यहाँ रूपक अलंकार का प्रयोग बहुत उत्कृष्ट है, और इस अलंकार के द्वारा व्यक्त होने वाला करुण रस हृदयस्पर्शी है। पाठक पुरजन के प्रतिनिधि बनकर विश्वामित्र को जो शाप देते हैं वह भी बहुत हार्दिक और सहज है। यों बाह्य-जगत असह्य-वेदना से आलोड़ित होकर अल्लोल-कल्लोल हो रहा है। फिर भी सत्य का मूर्तिवंत स्वरूप हरिश्चन्द्र एकदम शांत हैं और अपने संतुलित मनोभावों में निश्चित होकर महर्षि विश्वामित्र का उपचार करने में और उनका सत्कार करने में दत्तचित्त हैं। दुखी प्रजाजन को सांत्वना देते हुए कहते हैं कि अब ऋषिराज विश्वामित्र राजा हैं, जैसे आप लोग मेरे साथ बर्ताव करते थे वैसे ही बल्कि उससे अधिक विनम्रता एवं भक्ति से पूर्ण तुम लोगों का व्यवहार उनके प्रति होना चाहिए। ऐसे महानुभाव राजा हरिश्चन्द्र के उक्त अवधि के अन्दर धरोहर के रूप में रखी धनराशि को वसूल करने के लिए अपने शिष्य नक्षत्रिक को ऋषि उनके पीछे लगा देता है। यह नक्षत्रिक पठानों-से कठोर-हृदयी है। वह अपने मालिक विश्वामित्र से कहता है—

> बिसिलागि, बिरुगाळियागि, कल्मॆलनागि;
> विषवाग्नियागि, नाना क्रूरमृगवागि; मसगि घोरारण्यवागि,

गर्जिसि कविव भूतभेताळरागि, हसिवुनीरडिके निद्रालस्य
वागि, संदिसि होगि, होक्कलिल होक्कु, धावति गोळिसि
हुसिगे हुंकोळिसुवें भूभुजन नॅम्निन्द बल्लिदरदारॅन्दनु"

अर्थात्—"धूप बनकर, झंझा होकर, पत्थर बनकर, भयंकर आग होकर, दरिद्र बनकर, सान्द्र कानन की तरह डरावना होकर, गरज कर आक्रमण करने वाले भूत-प्रेत बनकर, भूख-प्यास से थकाकर, साथ लगे रहकर जहाँ जाय वहाँ पहुँचकर, सता-सताकर इस राजा से झूठ कहवाऊँगा। इस काम के करने में मुझसे बढ़कर शक्तिशाली और कौन है?"

हरिश्चन्द्र की तरह यह नक्षत्रिक भी सत्यसंध है। कर्जदार को तकलीफ देने में इससे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। अपने वचन के अनुसार ही उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र को सब तरह से कष्ट दिये। चाहे वह कुछ भी करें। इतनी बड़ी धनराशि का संग्रह कहाँ से करे? इसे कवि कु. वें. पु. कहते हैं—'कर्ज वसूल करने के लिए नक्षत्रिक को लगाने वाले विश्वामित्र स्वयं कर्ज चुकाने के लिए आवश्यक धन भी देकर हरिश्चन्द्र को खरीदकर उन्हें वचन-भ्रष्ट न होने देने का उत्तरदायित्व भी अपने ऊपर लेते हैं।" उनके आदेश के अनुसार साक्षात् अग्निदेव ही ब्राह्मण वेश धारण कर आता है और राजा के परिवार को खरीद लेता है। स्वयं यमराज वीरबाहुक के वेष में खुद राजा को खरीद लेता है। इतना होने पर वह धनराशि संपूर्ण होती है और उनका सत्य भी रक्षित हो जाता है।

हरिश्चन्द्र सत्य परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये, अब उनकी सत्य-परीक्षा करना बाकी है। वह भी शुरू हो गयी। पाणिगृहीता पत्नी एवं कोख का पुत्र दोनों ब्राह्मण के घर में असह्य वेदना सह रहे हैं। उनके कष्ट की इति-मिति नहीं है। किसी तरह जी रहे हैं और साँस ले रहे हैं। इतना भी दैव को सह्य नहीं हुआ। ब्राह्मण के घर के लिए घास और समिधा आदि लाने के लिए राजकुमार गया था तो वहीं साँप के डसने से मर गया। पुत्र-मरण की बात सुनकर चन्द्रमती माता ठगी-सी अनाथ-सी रोती हुई अपने क्रूर मालिक ब्राह्मण के पास जाकर गिड़गिड़ाती हुई प्रार्थना करती है और अपने पुत्र की मृत देह की तलाश करने के लिए जंगल की तरफ जाने की अनुमति माँगती है। मालिक की आज्ञा पाकर मृत देह की खोज करने जंगल की तरफ जाती है। कवि राघवांक ने इस प्रसंग पर करुण रस की धारा ही बहा दी है। मृत पुत्र को खोजती हुई रानी चन्द्रमति जंगल में आ रही है और बेटे का नाम ले-लेकर पुकार रही है। कहती है "बेटे, हरिश्चन्द्र कुमार! कहाँ हो? इस दीनावस्था में तुम्हारा नाम ले-लेकर पुकार रही हूँ। कम से कम उत्तर तो दो, बेटे!" ऐसे ही तरह-तरह से पुकारती हुई रोती-बिलखती हुई बीहड़ जंगल में घूमती-फिरती खोजती आगे बढ़ती है। आखिर अभागिन माँ को बेटे का मृत कलेवर मिलता है। कवि राघवांक के शब्दों में राजकुमार के कलेवर की हालत सुनिये—

"विषद होगें होय्दु हसुराद मै, मीरिनॉरें
यॉ सर्व गल्लं,कंदिदुगुगळ्, अरॅदॅरॅदगु
बिसुव कण्, हरिदुहुलुहिड़िद हरहिद कैगळ्, उंब होत्तुण हॅडयदॅ
होसद्र बॅंडगदर्द बसुर कटकट, मडिद गोण्

वॅसॅगुरुळि हुडि हॉक्कु बरत बाय् बॅरसंडु
वसबळिद निज सुतन कंडळु हरिश्चन्द्रनरसि हुत्तिन मोदळॉळु"

अर्थात्—"बांबी के पास बेटा मरा पड़ा है । सर्प विष के व्यापने से सारा शरीर हरा बन गया है; मुंह से फेन उफनकर बह गया है । नाखून बदरंग होकर कड़े बन गये हैं । अधखुली आंखें यह बता रही हैं कि बच्चा कितना डर गया था; घास बटोरते हाथ उसी दशा में फैले पड़े हैं; समय पर भोजन न मिलने के कारण पेट पीठ से सट गया है । हाय ! हाय ! गर्दन लटक गयी है । जमीन पर लुढ़क आने के कारण मिट्टी लगकर मुँह सूख गया है, इस रूप में रानी चन्द्रमति ने अपने पुत्र को देखा ।" बेचारी माता को "हरिश्चन्द्र कुमार" कहती हुई पुकार-पुकार कर आयी तो देखा पीठ से सटे क्षीण काय बेटे को । देखिए यह कैसा विरोधाभास है । कवि पाठक के अंतरंग की चेतना को जागृत करने में कितना चतुर है ! हाय बेचारी माँ चन्द्रमति अपने पुत्र के साथ रहकर उसके लिए अपने समस्त दुखों को सह लेती थी । अब जीना भी मरने के समान है उसके लिए । शोकतप्त हृदय को लेकर पुत्र के लिए बिलखती हुई रोती है । माता के इस दुःख के आवेग का वर्णन करने के लिए षट्पदी छन्द से कवि को "रगळॅ" छन्द ज्यादा उचित जँचा होगा । इसी से इस प्रसंग का वर्णन बहुत ही सहज बन पड़ा है । इस प्रसंग का यह "रगळॅ" छन्द इस प्रकार है :

"एबॅनेबॅनॅलॅ मगने मगने
सावेकायित्तॅलॅ चॅन्निगने
इरिदॅयला ऍन्ननु सुकुमारा
कॉरॅदॅयला कॉरळनु जितमारा
ऍत्तण बरसिडिलॅरगितॉ निन्न
हुत्तिन हत्तिरॅ ऑरगिदॅ चॅन्न
हावु हिडियॅ हा ए ँन्दॉरलिदॅया ?
सावागव्वा ए ँन्दळलिदॅया ?
रन्नद कन्नडि सिडिदुदॉ देवा !"

—अर्थात् "बेटे ! तुम्हें देखकर सब कष्ट सह लेती और आपने दुःख-दरद को भूल जाती । अब तुम्हारे बिना मैं कैसे जीवूँगी ? मृत्यु ने आकर तुम्हें तो ले ही लिया, साथ ही मुझे जीवनमृत बनाया । यह भयंकर गाज मुझ पर कहाँ से आ गिरी । बेटे, पता नहीं मरते वक्त तुमने कितनी बार माँ कहकर मुझे पुकारा होगा । यह अभागिन अब तुम्हें कैसे पाएगी ?" आदि-आदि ।

यों रोती-बिलखती शोकसागर में निमग्न हुई ।

कवि राघवांक ने करुणा का प्रवाह जो यहाँ बताया है इस धारा में बाद के अनेक कवियों ने भी अवगाहन किया है । और अपने काव्यक्षेत्र को बहुत ही उर्वरा किया है । सत्रहवीं सदी के षडक्षर कवि ने अपने 'राजशेखर विलास' में 'तिरुकॉळ-विनाचि' का जो प्रलाप का वर्णन किया है वह इस का एक अच्छा उदाहरण है । राघवांक ने चन्द्रमति के मुँह से जो बातें कहलवायी हैं सरल होने पर भी कितना सारवान् हैं । कहती है—

"हॅस हॉट्टॅयुरियुत्तिदॅ मगनॅ

ऍत्तिद तोळ्नु कॅत्तिदॅ मगनॅ
हाडुव बायलि मण्णनु हॉय्दॅ
नोडुव कण्णलि सुण्णव हॉय्दॅ
पापियॅन्न नीनॉम्मॅगॆ नोडा
कोपवनुळिदॉय्यनॅ माताडा
नुडिदडॆ पापवॆ हॅत्तवरॉडनॆ
कडुमुळिसे मगने ऍन्नॉडनॆ,"

अर्थात्—"जिस कोख से जन्म दिया वह जल रही है, जिन हाथों से तुम्हें उठाया उन्हें तुमने आज काट ही डाला, गा-गाकर जो तुम्हें खिलाती उस मुँह में मिट्टी भर दिया, जिन आँखों से तुम्हें देख खुश होती थी उनमें चूना डाल दिया, परमपापिनी मुझको तुम एक बार तो देखो, गुस्से को छोड़कर एक बार मुझसे बोलो; जन्म देने वाली माँ से एक बार बोलना पाप है ? बेटे ! मुझपर इतना गुस्सा क्यों ?"—पुत्र मरा जानकर भी इस तरह मृतक से पूछना जनने वाली माँ के लिए सहज ही है, फिर भी इसे भ्रान्ति कहें या क्या कहें ? चन्द्रमति यों रोती-विलखती थक गई, और अन्त में उसे अपने सामयिक कर्त्तव्य का बोध हुआ । अब बेटे के मृत शरीर को उठा लाकर अग्नि संस्कार करना चाहिए । उस समय शव-संस्कार के लिए आवश्यक जलावन का भी अभाव है वहाँ । तब उन्होंने अधजले जलावन इधर-उधर से उस श्मशान में से बटोर लाई और उसीको चुन दिया, उसपर शव को रखा, बेटे को आशीर्वाद दिया और जोर से रोने लगी । चिता में आग लगा दी । यह रोने की आवाज श्मशान-रक्षक हरिश्चन्द्र के कानों में पड़ी । शवदाह के लिए नियत रकम न देकर इस तरह शव को जलाने वाले के प्रति क्रोधित होकर हरिश्चन्द्र वहाँ आये । कहने लगे—"इस तरह शुल्क चुकाये बिना जलाना मना है । पहले शुल्क दो, बाद को जलाओ" यों कहते-कहते वह जलती चिता से पैर पकड़ कर शव को खींच कर फेंका । यह देखकर माँ चन्द्रमती कहने लगी—"यों पैर पकड़कर मत खींचो और फेंको, बेचारे बच्चे को इससे दर्द होगा ।" यों कहती-कहती उस फेंकने से गिरने वाले बच्चे को गोद में लेकर फिर बोली—"यह मेरा बच्चा नहीं, तुम्हारा ही बच्चा मानो, जलाने के लिए अनुमति देकर दया करो ।"—यों मिन्नत करने लगी । यह कैसा कठोर सत्य है ! कितना हृदयविदारक है ! "बच्चे को कष्ट होगा ।" इस बात में माँ के हृदय का कितना मार्मिक चित्र है । करुणरस का फव्वारा ही छूट निकला है । ठीक इस मौके पर पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे को पहचान लेते हैं । हरिश्चन्द्र भी मृत पुत्र को देखकर असह्य वेदना का अनुभव करता है। परन्तु क्या ? जलाने के लिए नियत शुल्क चुकाए बिना शवदाह मना है । अगर निश्चित शुल्क देकर शवदाह करना नहीं हो सका तो बेटे को शवसंस्कार ही नहीं चाहिए । हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा इतनी निष्ठुर है । यहाँ सत्यवान-हरिश्चन्द्र की सत्य-परीक्षा चरम सीमा तक पहुँच गयी है । चन्द्रमती की हत्या कर इस हत्या के भार को अपने ऊपर ही लेकर उसका शिरच्छेद करने का काम भी अब हरिश्चन्द्र पर पड़ा । वध्यस्थल पर मरने के लिए तैयार बैठी चन्द्रमती का चित्र यों है—

"बलिद पद्मासनं, मुगिदक्षि, मुग्विदं
जलिबेंरसि, गुरु वसिष्ठं गॅरगि, शिवन नि
मंल रूप नॅनॅडु मेलं तिरुगि नोडि भूचंद्रार्कतारंबरं
कलि हरिश्चन्द्ररायं सत्यवॅरसि बा
ळलि मगं मुक्तनागलि, मंत्रि नॅनॅदुदा
गालि राज्य दॉडॅय विश्वामित्र नित्यनागलि ह्रॉडॅयॅन्दळ् "

अर्थात्—"पाल्थी मारकर, आँख मूंदकर, हाथ जोड़कर, गुरु वसिष्ठ को नमस्कार कर, ईश्वर का स्मरण कर, फिर पति को, भू-माता को, चंद्र-सूर्य-नक्षत्र सबको देखकर कहने लगी—"वीर राजा हरिश्चन्द्र सत्यवान होवें, बेटे को मुक्ति प्राप्त होवे, मन्त्री ने जो सोचा वह होवे, राज्य के मालिक विश्वामित्र शाश्वत होवें, फिर कहा—अब मुझे मारो।"

हरिश्चन्द्र के लिए योग्य पत्नी है चन्द्रमती, और चन्द्रमती के लिए ठीक योग्य पति है, हरिश्चन्द्र। अब पत्नी को मार डालने के लिए पति तैयार हुआ। ठीक इस मौके पर विश्वामित्र दिखायी पड़े, राजा को प्रलोभन देने का प्रयत्न किया। परन्तु हरिश्चन्द्र उनके इस मायाजाल में फँसने वाले थोड़े ही हैं। भगवान् का नाम लेकर तलवार उठायी और पत्नी चन्द्रमती की गर्दन पर तलवार पड़ने ही वाली थी कि इतने में तलवार की धार के अग्र भाग से स्वयं शिवजी प्रत्यक्ष होकर निकले, साथ ही अनेक देवाधिदेव सब उस वध्यस्थान पर प्रत्यक्ष हुए। कवि कहते हैं—

"कुडिदौषधं बाय्गॆ निग्रहं माडि ता
ळ्दॉडॅलिगॆ सुखवनीवंतॆ, लोकद कण्गॆ
कडु मुळिदरंतॆ तोरिसि, सत्यशुद्धवचन्नॅगं काडि नोडि
कडॆ यॊळु हरिश्चन्द्र रायंगॆ गणवॅरसि
मूडनॅळॆतन्दित्तु, कीर्तियं मूजगद
कडॆगॆ हरहिद मुनिवरेण्य विश्वामित्र बन्दनु वसिष्ठ सहित"

अर्थात्—"कडुवी दवा पीकर मुंह कड़ुवाहट का अनुभव भले ही करें, पीछे शरीर को निरोग बनाकर सुखी बनाती है; इसी तरह भयंकर क्रोध का दिखावा करके सत्य की सत्यता की परख सब तरह की रीतियों से पहचानकर बाद को स्वयं शिवजी ही प्रत्यक्ष होकर, हरिश्चन्द्र महाराज की सत्यपरायणता की कीर्ति को तीनों लोकों में प्रसारित करने वाले महर्षि विश्वामित्र वसिष्ठ समेत वहां आये।" अन्त में सब मंगलमय हुआ, मृत पुत्र रोहिताश्व जी उठा. भगवान शिवजी ने हरिश्चन्द्र महाराज को सहलाकर कहा—"असत्य बोलने वाला यति भी अस्पृश्य है सत्य बोलने-वाला अस्पृश्य पूज्य और यति समान है।" यों कहकर शिवजी ने हरिश्चन्द्र की सत्य-निष्ठता को घोषित किया। विश्वामित्र ने अपने पचास करोड़ वर्षों की तपस्या के फल को हरिश्चन्द्र को धारापूर्वक देकर फिर से उन्हें सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। हरिश्चन्द्र की कीर्ति तीनों लोकों में व्याप गयी। "ईश्वर ही सत्य है, सत्य ही ईश्वर है।" यह परम सत्य हरिश्चन्द्र से स्थापित हो गया।

बिल्कुल निरपराधी हरिश्चन्द्र महाराज जैसे सत्यसंध महापुरुष भयंकर संकट का शिकार बना। सम्भवतः इस जैसी कथा विश्वसाहित्य में कहीं भी नहीं

दिखाई पड़ती होगी। कवि कु. वें. पु. ने जो बात कही है वह जैसे इस कथानक पर लागू होती है वैसे ही कवि राघवांक के विषय में और उनकी कविताशक्ति के सम्बन्ध में भी लागू होती है। उनकी उक्ति कवि राघवांक के प्रति समर्पित पुष्पांजलि है। वे कहते हैं—"वरकवि राघवांक का 'हरिश्चन्द्र काव्य' पूर्णतया 'अपृथग्यत्न निर्वर्तित' होकर प्रतिमा-विधान एवं दर्शन-ध्वनि दोनों के लिए एक उत्तम निदर्शन है। मर्त्य लोक की भूमिका में परिपक्व होकर परम सिद्धि की ओर अग्रसर होने वाली हरिश्चन्द्र की सत्य-चेतना के विकास के ही लिए ऊर्ध्व लोक की अमर्त्य-शक्तियों के संकल्प एवं व्यूह के प्रतीक इन्द्र के आस्थान में घटित वसिष्ठ-विश्वामित्र के वाग्युद्ध से आरम्भ होकर समस्त अहंकार के समूल विनाश के प्रतीकस्वरूप श्मशान में सम्भव होने वाले ईश्वर साक्षात्कार की घटना तक—वह कथा-प्रतिमा पग-पग पर प्रत्येक बात व घटना पर पूर्णरूप से विचार-विमर्श करके निर्मित यह रचना—इस तरह के संदेह के लिए कि रचना कृतक है मौका देते हुए भी बड़ा ही आश्चर्यजनक दर्शन-ध्वनि से निनादित होकर गतिमान है।"

कवि राघवांक अपने गुरु की ही तरह निष्ठावान शिवभक्त है। उनका हरिश्चन्द्र काव्य इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि "ईश्वर ही सत्य है और सत्य ही ईश्वर है।" इसी सत्य के उदात्त स्वरूप की घोषणा इस कथा के द्वारा हुई है। इस तत्त्व का निरन्तर पालन राजा हरिश्चन्द्र ने किया जो परम शिवभक्त थे। कवि का मंतव्य था कि हरिश्चन्द्र का यशोगान करके लोग पुनीत हो जायें। फिर भी कवि के गुरु हरिहर देव इन पर नरस्तुति का आरोप कर उस पर क्रोधित होकर भानजे के दांत मारकर गिरा दिये—ऐसा कहा जाता है। इसके बाद कवि ने गुरु की आज्ञा के अनुसार अन्य काव्यों को लिखकर फिर से दांत पाये—ऐसी प्रतीति है। इस कहानी को केवल दन्त-कथा मानकर विचार किये बिना ही छोड़ देना उचित है। यह केवल कपोल-कल्पित होगी।

कवि राघवांक अपने समय के बहुत बड़े और ख्यातिप्राप्त कवि थे। इतना ही नहीं, शैव धर्म प्रतिपादकों में लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति भी थे। कई राजास्थान अर्थात् राजसभाओं का भी सम्पर्क रहा, ऐसा प्रतीत होता है। ऐसा भी लगता है कि वह दोरसमुद्र के राजा नरसिंह बल्लाळ के मंत्री कॅरॅय पद्मरस के पास कुछ समय तक रहे। यह कॅरॅय पद्मरस प्रसिद्ध वचनकार सकलेश मादरस के वंशज हैं। त्रिभुवन लाल नामक वैष्णव से वाक्यार्थ करके उन्हें हराकर और उन्हें शैव धर्म की दीक्षा भी दी। बेलूर में एक बड़ा तालाब बनवाकर "कॅरॅय पद्मरस" नामक विरुद पाया था। यह समाज में गण्य-मान्य व्यक्ति भी थे और विद्वान् भी। धार्मिक क्षेत्र में श्रद्धाभाजन भी थे। इन्होंने "शिवाद्वैत सानन्द चारित्र" नामक संस्कृत ग्रन्थ तथा "दीक्षा बोध" नामक कन्नड ग्रन्थ की रचना की। ऐसा लगता है कि इनके प्रति हरिहर एवं राघवांक की पूज्यभावना थी। राघवांक के "सिद्धराम पुराण" के प्रति इस कॅरॅय पद्मरस के अत्यन्त प्रशंसापूर्ण भाव रहे—ऐसा लगता है। (राघवांक की कथा को ई० सन् १६५० में स्थित चिक्कनंजार्य नामक कवि ने "राघवांक काव्य" के नाम से विस्तार के साथ लिखा है। परन्तु उसमें ऐतिहासिकता की अपेक्षा पौराणिकता ही अधिक है। राघवांक कथा और भी अनेक वीरशैव पुराणों में उपलब्ध होती है।

परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से ये भी निरर्थक ही हैं।) राघवांक की कृति "सिद्धराम पुराण की प्रशंसा पद्मरस ने की तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस काव्य की रचना का कौशल, कथन कला की निपुणता, रोचक और आवश्यकतानुसार नियमित और सीमित वर्णनचातुर्य, संवाद शैली, शान्तरस प्रधान इस कथा नायक का उदात्त जीवनादर्श—आदि इस काव्य में प्रशंसार्ह अवश्य हैं। यह 'सिद्धराम पुराण' वीरशैव-पुराणों के लिए आदर्श है। अन्य वीरशैव पुराणों में प्रधान कथा की अपेक्षा आनुषंगिक कथानक ही ज्यादा हैं, और मत धर्म प्रचार और उपदेशात्मकता अधिक होकर कथा-प्रवाह को रोक देते हैं। इस 'सिद्धरामपुराण' में ऐसा कोई दोष नजर नहीं आता।

सुप्रसिद्ध वचनकार सिद्धराम ही इस "सिद्धराम चरित" का कथानायक है। कहा जाता है कि 'मॉरडिय मुद्द—सुग्गव्वे' नामक शैव दम्पति की वृद्धावस्था में जन्मे यह सिद्धराम मातृगर्भ से पाँचवें महीने में ही उत्पन्न हुआ। माता को प्रसव-वेदना के बदले आराम की नींद लगी थी। ऐसे समय में उत्पन्न शिशु उढ़ाये हुए वस्त्र को हटाने पर कैसा था—इसका वर्णन यों है—

"मुसुकु सरियलु मोडवोडि दिन बिम्बदं
तॅमॅव मॅय्वॅळगॅद्दु, बीदिवरिदॉळगॅ धव
ळिसॅ सॉडर्गळॅय्दॅ मसुळिसि मब्बळियॅ दन्तवॅसॅद पुत्तळियॉ, अल्ल
शशिकांतद प्रतिमॅ, बेड, बॅळ्ळिय बोम्बॅ,
हुसि, शख साल भंजिकॅयल्ल, मौक्तिकद
शिशुवॅन्दु मुट्टि मृदुवं कंडु मनुजनहनॅन्दु भाविसि बगॅदरु।"

अर्थात्—"वस्त्र हटाने पर मेघ निर्मुक्त सूर्य की तरह प्रकाशमान बच्चे के शरीर की छटा प्रस्फुटित होकर जब फैलने लगी तो वहाँ सुलगता हुआ दीप प्रभा-हीन हो गया। तब वह बच्चा हस्तिदन्त की प्रतिमा की तरह, नहीं, चन्द्रकान्ति से बनी प्रतिमा की तरह, नहीं. चांदी की प्रतिमा की तरह, वह भी झूठ, शंख की बनी मूर्ति, वह भी नहीं, आवदार मोती से बनी प्रतिमा की तरह वह शिशु दिखता था। उसके शरीर को छूने पर मृदुता का बोध होने से लोगों ने समझा कि वह मानव शिशु है।" एक तरफ उस बच्चे के असदृश शरीर कान्ति, दूसरी ओर उसका सुन्दर आकार, इसके साथ बच्चे की वह जड़ता—हाँ, जड़ता ही, न वह बच्चा रोता या हँसता, बचपन की आड़ लिए हुए वह परब्रह्म—यह सुस्पष्ट रूप से बोध होता है।

दुनिया के सामने जड़ लगने वाला यह सिद्धराम अपनी भक्ति के बल से ईश्वर को प्रत्यक्ष देखकर उनकी आज्ञा से श्रीशैल गया। उनकी निष्ठा से सन्तुष्ट शिव-पार्वती समेत प्रत्यक्ष होकर उन्हें यह विश्वास दिलाकर कि "जहाँ वह हो वहां हम होंगे"—वापस भेज दिया। साक्षात् परमेश्वर से यों विश्वस्त होकर वह (सिद्धराम) अपना जन्मस्थान हॉन्नलिगॅ नामक स्थान में ही रहकर वहाँ अनेक मन्दिर एवं तालाब, पोखर बनाकर दैवी शक्ति से अनेक करामात दिखाकर, लोकोपकारी बनकर कीर्तिवान हुए। उनकी कीर्ति चारों और फैली। परन्तु सिद्धराम ने इस "कीर्ति शैतान" को पास फटकने न दिया। इस कारण से वह कीर्ति इस महापुरुष की शिकायत करने लगी। कीर्ति पिशाच की शिकायत यों है—

"हिरिदु भक्त्यंगनेंयनुरदॉळं, जय सतिय
वर भुजदॉळु, रमा सतिय मुखदॉळति शान्ति
तरुणियं मनदॉळॆडॆविडदप्पि नेरॆवुदल्लदॆ पर नारियॆ
तेरॆवनट्टु वनिबन बेटदॉळु कण्णाण
दिरदॆ कैविडिदॆन्न नूंकि कळॆदं महा
पुरुषररिदिरि सिद्धरामनॆन्दा कीर्तिवधुदूरिदळु जगदॉळु"

तात्पर्य यह है कि—"भक्ति कन्या को हृदय में, विजय श्री को बाहुओं में, रमा को मुख में, शान्ति को मन में स्थान देकर इनके सतत आलिंगन में आसक्त होकर मुक्ति कन्या को स्थान देकर उसे भी बुलवाया है। उनकी इस प्रेम-क्रीड़ा में आसक्त होकर इनसे वरण करने वाली मुझको दूर हटा कर मुझे नगण्य बना रखा है, यह सिद्धराम। सभी महापुरुष इस बात को जान ले।"—यों यह कीर्ति-कन्या इस सिद्धराम पर शिकायत की घोषणा करती है। श्रेय का भी सिद्धराम कीर्ति-कामी न बना। इस बात का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से करके कवि ने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है।

सिद्धराम ने अनेक दैवी करामात करके दिखाया है। उन सभी कृत्यों में वह करुणामूर्ति के ही रूप में चित्रित है। डी० एल० नरसिंहाचार्य जी ने अपने "सिद्धराम चरित संग्रह" के प्राक्कथन में बताया है कि "प्रत्येक व्यक्ति यदि सिद्ध-राम की तरह अपने-अपने ग्राम की सेवा कर उसे उत्तम बनाने लगे तो सारा देश उन्नति के शिखर पर विराजने लगेगा। सिद्धराम जैसे जननायक के चित्र को प्रस्तुत करके राघवांक ने हमारे सामने एक आदर्श को उपस्थित किया है। उनकी तरह कार्य करने पर देश बहुत ही शीघ्र उन्नति कर सकता है, यह सन्देश हमें दिया है।" यह बात गौर करने योग्य है। आध्यात्मिक क्षेत्र में देदीप्यमान यह महापुरुष सिद्धराम लौकिक सांसारिक क्षेत्र में भी निष्काम सेवा का एक बहुत बड़ा उदाहरण प्रस्तुत कर गया है।

राघवांक के "सोमनाथ चरित" में आदय्य नामक एक वीर-शैव शरण के जीवनवृत्त है। इसका कथानायक है उग्रवीरशैव उसने पारशेट्टि नामक एक जैन मतानु-यायी की पुत्री पद्मवती नामक कन्या से विवाह कर लिया था और उस जैन कन्या (पत्नी) को शैव की दीक्षा दी। किसी कारण से अपने ससुर से अनबन हो गयी। इसके परिणामस्वरूप हुलिगेरे के जैन (बसदी) मन्दिर में सोमेश्वर की स्थापना हुई।

आदय्या एक वचनकार हैं। इनकी कथा को वचनकारों की कथाओं के साथ दिया है। अपने मत के प्रति अभिमान को छोड़कर उनके काव्यों में और किसी तरह का कोई उत्तम गुण नहीं दिखता। श्रीमान ए० आर० कृष्णशास्त्री जी ने हरिश्चन्द्र काव्य संग्रह के प्राक्कथन में कहा है—"सोमनाथ चरित से अधिक गम्भीर है सिद्धराम पुराण का विषय, यह गुरुभक्ति गौरव से परिपूर्ण है: इसमें कोई हीन भावना नहीं है, ढीली-ढाली रचना भी नहीं। मतवैषम्य-सम्बन्धी भावनाएँ भी नहीं हैं। अतिशयोक्ति भी विशेष नहीं। इसका कथानायक घुटिका जड़ी-बूटी, अंजन वाद, वश्य, कालवंचन, मारण, परकाय प्रवेश आदि-आदि की अपेक्षा करने वाला

"विकारी सिद्ध" नहीं। इस चरित में जो सिद्ध, साधु, अवतारी पुरुष चित्रित हुए हैं वे साधारण जनता के लिए भी आदरणीय हैं। लोगों के आदर के पात्र बन सके ऐसे ही विषयों को चुनकर काव्य प्रस्तुत किया गया है। आदय्या अवतारी पुरुष तथा शिवभक्त के रूप में वर्णित होने पर भी, सोमनाथेश्वर की स्तुति में अनवरत लगे रहने पर भी सिद्धराम की घनता और गुरुता इनमें नहीं है। सिद्धराम का स्वार्थत्याग, परोपकार बुद्धि, पारलौकिक विचार, नित्यानित्य विवेक आदि महापुरुष के गुण इसमें नहीं दिखते इसके प्रति वह पूज्य भाव नहीं उत्पन्न होती है जो सिद्धराम के प्रति होती है।" श्री ए० आर० कृष्णशास्त्री जी का यह कथन सर्वात्मना सत्य है।

राघवांक ने "वीरेश चरित" के नाम से एक ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ इस ग्रन्थ में प्रतिपाद्य कथावस्तु है दक्षयज्ञ का ध्वंस जो वीरभद्र द्वारा हुआ। इसका एक दूसरा नाम है—"मीसलुगवितें।" वारंगल के राजा प्रतापरुद्र महाराज के आस्थान पण्डितों में एकदंडि, द्विदंडि, त्रिदंडि—कहलाने वाले तीन कुकवि रहते थे। ये तीनों वैष्णव थे। राजा के आस्थान में आने वाले कवियों से उनके काव्यों को तीन बार पढ़वाकर अपनी स्मरण शक्ति से उन्हें आमूलाग्र सुनाकर कहते कि "मेरी कविता तुमने कहाँ सीखी ?" इस तरह उन आए हुए कवियों का तेजोवध करके अपमानित कर भेज देते थे। यह समाचार वारंगल से आने वाले चतुर कवि नामक विद्वान् से राघवांक ने मालूम कर लिया था। अपने गुरु हरिहर देव से आशीर्वाद लेकर राघवांक इन तीनों (एकदंडी, द्विदंडी, त्रिदंडी) कुकवियों के गर्वभंग करने के इरादे से वारंगल के लिए रवाना हुए। वहाँ एक वीरभद्र देव का मन्दिर था, उस मन्दिर के पीछे बैठकर राघवांक ने इस "वीरेश चरित" की रचना की। भगवान उनकी भक्ति से सन्तुष्ट होकर जहाँ यह भक्त कवि बैठकर काव्य निर्माण कर रहा था उस तरफ फिरकर खड़े हो गये। यों भगवान् के पीछे मुड़ जाने की बात इन कुकवियों को मालूम हुआ तो वे तीनों डरकर उनके शरणागत हो गये। राजा प्रताप रुद्र ने राघ-वांक को अपने दरबार में बुलाकर उन्हें सम्मानित किया—यों कहा जाता है। पुराणोक्त इस कथा में थोड़-सा तथ्य है—ऐसा प्रतीत होता है। कवि ने इस काव्य का नायक वारंगल के विश्वेश्वर है—ऐसा बताया है। वे लिखते हैं "कृतिपति वारंगल का विश्वेश्वर है।"

यह "वीरेश चरित" एक सौ सत्ताईस पद्यों वाला दो सन्धियों (प्रकरण) वाला छोटा ग्रन्थ है। इस काव्य में प्रयुक्त छन्द वार्धक षट्पदी की ही तरह है, मात्रा संख्या की दृष्टि से। गण पांच मात्राओं के बदले चार मात्राओं का है। इसे "उद्दण्ड षट्पदी" कहा है। इसका उल्लेख 'वीरेश चरित' के प्राक्कथन में है। अन्य षट्पदी भेदों की तरह यह राग-प्रधान नहीं बल्कि ताल-प्रधान बतलाया गया है। उदाहरण के तौर पर एक छन्द नीचे उद्धृत किया जाता है। यह पद्य उस प्रसंग का है जहाँ कवि ने अपने गुरु के बारे में वर्णन किया है। वह यों है—

"परिणामद कणि शान्तिय निधि भक्तिय सा
गरनेको निष्ठेय हरनति सामर्थ्यद
तव नीतिय कडलु दयागारं पुण्यद पुंजं सत्यद सदनं
हरुषद मडु सर्वज्ञत्वद शासन लु

स्थिरदास्थल युक्तं हृदय हरिहर दे
वर कारुण्यद सुप्रभे बॆळगुवॆ विडदॆम्म मनोमन्दिरकॆन्दु"

[यह छन्द केवल उदाहरण के लिए ही उद्धृत है । केवल छन्द का स्वरूप मात्र समझने के लिए है । इसे "उद्दंड षट्पदी" कहा है । लक्षण (मात्रा आदि और गण) ऊपर बताया है ।]

राघवांक की शैली सौवर्णमध्यगामी है । इन्होंने "हळॆगन्नड" के साथ "होस गन्नड तथा नडुगन्नड" शब्द रूपों का भी प्रयोग किया है । शुद्ध कन्नड के प्रयोग की ही तरह संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग किया है । परन्तु वह संस्कृत सुलभग्राह्य है । उनकी देशी शैली बहुत ही मनोहर है । कहीं-कहीं उनके प्रयोग लोकोक्ति की तरह लगते हैं । और बहुत सारवान् भी हैं । उनका काव्य बन्ध चंपू-काव्य-बन्ध की चुस्ती को थोड़ा-बहुत लेकर भी सरल, सुलभ, ललित और सुन्दर है ।

हरिहर और राघवांक लोकप्रिय कवि हुए । अल्लम, बसवण्णा, सिद्धराम आदि प्रथम श्रेणी के वचनकार सन्तों के समय के वातावरण में ही सांस लेने वाले ये दोनों कवि कर्नाटकियों की संस्कृति को ऊँचे स्तर पर उठाने के महत्कार्य में लगे रहकर कृत-कृत्य हुए । साहित्यिक दृष्टि से महाकवि पंप जैसे चंपू काव्य के प्रवर्तक होकर आदि कवि कहलाये उसी तरह हरिहर देव "रगळॆ" छन्द के लिए तथा राघवांक-षट्पदी छन्द के लिए प्रवर्तक बन कर आदिकवि कहलाये ।

हरिहर और राघवांक—इन दोनों के आदर का पात्र "कॆरॆय पद्मरस" की कृति "दीक्षाबोध" त्रिविध रगळॆ (छन्द) से युक्त है । परन्तु वह केवल धर्मग्रन्थ है, न कि काव्य । इनके पुत्र कुमार पद्मरस ने अपने पिता की कृति "सानन्द चरित्र" को संस्कृत से कन्नड में षट्पदी छन्द में अनुवाद प्रस्तुत किया है । इस कृति में कुसुम षट्पदी, भामिनी षट्पदी (छन्द) प्रयुक्त हुए हैं । इस कृति में कथावस्तु सानन्द नामक एक ऋषि के जीवन से सम्बन्धित है । सानन्द ऋषि ने 'पंचाक्षरी' की महिमा से नारकीय जीवों का उद्धार किया । यही बात इसमें वर्णित है । इसमें स्पष्ट दिखने वाला कोई विशिष्ट काव्यगुण नहीं है । षट्पदी छन्द में काव्य-निर्माण करने वालों में यह कवि प्राचीन है । यही इनकी विशिष्टता है ।

हरिहर और राघवांक के समकालीन कवि हैं पाल्कुरिके सोमनाथ । यह सुप्रसिद्ध आन्ध्र कवि भी हैं । इस सोमनाथ की तेलुगु कृतियों में प्रसिद्ध कृति "बसव-पुराणमु" है । कन्नड के बसवपुराण का आकरग्रन्थ यही है । इस सोमनाथ कवि ने न केवल तेलुगु में बल्कि संस्कृत, प्राकृत और कन्नड में भी प्रावीण्य पाया था । इन सभी भाषाओं में उन्होंने काव्य रचना की है । 'बसवराजीय', 'अन्यवाद कोलाहल', 'बसवण्णन पंचगद्य'—ये तीन संस्कृत ग्रन्थ हैं । "सद्गुरुरगळॆ, 'चन्न बसव रगळॆ', 'गंगोत्पत्ति रगळॆ','शील सम्पादनॆ' 'गण सहस्रनाम', 'पंचरत्न'—ये इनकी कन्नड कृतियाँ हैं । साहित्यिक दृष्टि से ये काव्य कोई विशेष महत्त्व के नहीं हैं । सभी छोटी-छोटी पुस्तकें हैं । और स्तोत्र के रूप में लिखी गयी हैं । "शील सम्पादनॆ" में चौंसठ शीलों का वर्णन वचन रूप में है । "गण सहस्रनाम" में हजार से भी अधिक गणों की सूची है । 'गंगोत्पत्ति रगळॆ' में गंगावतरण और शिव-जटाजूट में गंगा-धारण की कथा है । बाकी दोनों में वर्णित विषय नाम से ही स्पष्ट है, ये स्तोत्र ग्रंथ हैं । "तत्त्व विचा

कलाप, अन्य दैव कोलाहल, कवितासार"—इन विरुदों से ये विभूषित भी हैं। इनमें प्रथम दो विरुद कुछ हद तक ठीक जंचते हैं। शेष एक एक विरुद की सार्थकता उनकी तेलुगु कृतियों से सम्भवतः निर्धारित की जा सकेगी। यह पालकुरिके सोमनाथ कवि सुप्रसिद्ध तेलुगु कवि वेमना की शिष्यपरम्परा के और भृंगीश्वर का अवतार माने जाते हैं। इन्होंने चक्रपाणि रंगनाथ नामक वैष्णव को वाद में हराकर उन्हें वीरशैव की दीक्षा दी—ऐसा तोंटदार्य विरचित "पाल्कुरिके सोमनाथ पुराण" से मालूम पड़ता है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि हरिहर-राघवांक ने कन्नड भाषा साहित्य के क्षेत्र में जिस क्रान्ति का प्रवर्तन किया उसी तरह का क्रान्ति-प्रवर्तन तेलुगु भाषा-साहित्य में इस सोमनाथ ने किया। यह सोमनाथ गुब्बि नामक स्थान के मल्लणार्य आदि कन्नड कवियों के प्रेम भाजन और आदर का पात्र रहा है।

हरिहर और राघवांक ने जिस नये मार्ग का प्रवर्तन किया उसका अनुसरण उनके बाद के कवियों ने नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है। बारह-तेरहवीं सदियों में जो देशी शैली शुरू हुई वह पन्द्रहवीं सदी तक तटस्थ ही रही—ऐसा लगता है। इस अवधि में देशी छन्द में काव्य-निर्माण करने वाले केवल तीन ही कवि—कुमुदेन्दु, भीमकवि, पद्मणांक हुए। इन तीनों में कुमुदेन्दु की काव्य-वस्तु सांप्रदायिक हैं। इसने जैन संप्रदायानुसार रामायण लिखीं। षट्पदी छन्द को अपनी कृति के लिए उपयोग करने वाले प्रथम जैन कवि यही है। इसकी कथा अधिकतर पम्प रामायण के ही अनुसार है। परन्तु यह षट्पदी छन्द के अनेक विधाओं से निर्मित कृति है। एक-एक सन्धि (प्रकरण) में षट्पदी की एक एक विधा का प्रयोग हुआ है। इस षट्पदी के प्रयोग में इस कुमुदेन्दु ने राघवांक का ही अनुकरण किया है। ऐसा लगता है कि इन्होंने षट्पदी छन्द के कई तरह के प्रयोग परीक्षा की दृष्टि से किये हैं। इन्हें "परवादि गिरिवज्र" तथा "सरस कवि तिलक"—ये विरुद प्राप्त थे। इनमें प्रथम विरुद तो ठीक है परन्तु दूसरा कुछ अतिशयोक्ति मालूम पड़ता है। इस कवि कुमुदेन्दु ने अपनी कविता की श्रेष्ठता का यों बयान किया है—

"ऍळसदरार् शरदिंदुव चन्द्रिकॆं
गॆळसदरार् हरिचन्दनदर्प्पं
गॆळसदरार् नव विकसित विचकिललतिका मंजरिगॆं
ऍळसदरार् नवयौवन लक्ष्मिगॆं
यॆळसदरार् नव युवती निवहकॆं
यॆळसदरार् कुमुदेन्दुमुनीश्वर विरचित काव्य कथा रसकॆं"

इसका भाव यह है कि—"शरत्कालीन चांद की चांदनी को कौन नहीं चाहेगा? चन्दन के लेप को कौन पसन्द नहीं करेगा? सद्यःविकसित पुष्प-गुच्छ की चाह कौन न करेगा? षोडशी के यौवन की कान्ति को कौन प्रेम नहीं करेगा? यौवनवती स्त्रियों को कौन पसन्द नहीं करेगा। इसी तरह कुमुदेन्दु मुनीश्वर द्वारा विरचित काव्य-कथा का रसास्वादन करना कौन नहीं चाहेगा?" स्वयं कवि अपनी कविता की प्रशंसा इस तरह करते हैं।

ठीक तो है, सभी सबको पसन्द करेंगे। ऐसा सौभाग्य मिलना तो सुकृत से ही सम्भव है। कवि का काव्य-बन्ध प्रौढ़ होने पर भी ललित है। परन्तु कल्पना-

विलास से अधिक कवि-समय चमत्कृति ही अधिक है। इनका समय करीब १३२० के लगभग का है।

भीम कवि—यह कवि चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम भाग में रहा। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह कवि 'बसव पुराण' "भीम कवीश्वर रगळॆ" और "भृंगिदंडक" नामक कृतियों के रचयिता है। इन तीनों में अन्तिम कृति उपलब्ध नहीं है। शेष दो में "भीमकवीश्वर रगळॆ" एक सौ आठ चरणों वाला "रगळॆ" का एक छोटा स्तोत्र ग्रन्थ है। इनका "बसवपुराण" इकसठ सन्धियों का आठ आश्वासों वाला बृहदाकार ग्रन्थ है, इतना ही नहीं इनके बाद वीरशैव पुराण निर्माताओं तथा वीरशैव धर्माभिमानियों के लिए अत्यन्त प्रिय ग्रन्थ है। पद्मणांक, विरूपाक्षपण्डित, षडक्षरि आदि कवियों ने आदर के साथ इनका नाम लिया है और इनकी बड़ी प्रशंसा की है। भीम कवि की अवतार पुरुष बसवण्णा के जीवनवृत्त को लेकर पुराण रचना करने की बड़ी इच्छा रही। परन्तु वह सोचने लगे कि क्या मुझ जैसा मंदबुद्धि वाला सामान्य व्यक्ति इतने बड़े महापुरुष को लेकर पुराण लिख सकेगा? इसी चिन्ता में मग्न हो एक दिन योगनिन्द्रा में समाधिस्थ स्थिति से स्वप्नावस्था को पहुँच गये। इस अवस्था में अनघ देवार्य और पाल्कुरिके सोमनाथेश्वर प्रत्यक्ष हुए और कहा—"आप उनकी आत्मा में स्थित रहकर काव्य रचना करें और भीम कवि लिखें।" इस बात के अनुसार उन्होंने काव्य रचना आरम्भ की। इस कथन को जब हम पढ़ते हैं तो हमें कुमार व्यास की बात याद आती है। कुमार व्यास ने अपने काव्य के आरम्भ में बताया है, "वीरनारायण कवि है, लेखक कुमारव्यास।" भीम कवि के इस कथन से यह तात्पर्य निकलता है कि उनके काव्य प्रवाह का उत्तम स्थान दैवानुग्रह है। भीम कवि के बारे में उनका खुद का यह कथन "कवि सोमनाथ द्वारा निःसृत काव्य रसधारा जिसने तेलुगु भाषा के क्षेत्र को प्लावित किया है उसे कन्नड भाषाक्षेत्र में बहाने का यत्न किया है।"—बहुत ही स्पष्ट एवं अर्थवान् है। सुप्रसिद्ध तेलुगु कवि पाल्कुरिके सोमनाथ ने "बसवपुराणमु" का कन्नड भाषांतर किया है। यह केवल अनुवादक नहीं, कविहृदयी भी हैं।

कवि ने अपने को उभय भाषा कवि बतलाया है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी कृति के सम्बन्ध में इन बातों का आश्वासन भी दिया है—वैरिपद (आदि समास), अपशब्द, नीचोपमा, पदपूरक, दुःसन्धि आदि दोषों को हटाकर शुद्ध सरल पद प्रयोग, व्याकरण के नियमों का पालन, छन्दों-नियमों के अनुसार लक्षणयुक्त, भावपूर्ण और लालित्यपूर्ण काव्यनिर्माण किया है। काव्यारम्भ में पूर्व कवि हरिहर, राघवांक को भक्तिपूर्वक पुष्पांजलि समर्पित किया है।

षट्पदी छन्द का एक भेद भामिनीषट्पदी है। भीम कवि ने इसी षट्पदी-भेद भामिनी षट्पदी में कृति रचना की। हम यह बात भूल नहीं सकते कि भामिनी षट्पदी छन्द में सम्पूर्ण काव्य रचने वाले प्रथम व्यक्ति यही भीम कवि हैं। कवि की कल्पना शक्ति कहने लायक बहुत ऊँचे स्तर की नहीं है। उनके वर्णन कवि समय का आश्रय लेकर भी बहुत हृदयंगम है। कर्ममार्ग से भक्तिमार्ग श्रेष्ठ है—यह बताने के लिए उन्होंने जिन उपमाओं का आश्रय लिया है वे बहुत ही मनोहर हैं, प्रभावशाली भी हैं।

यह भीम कवि पुराण के निर्माता हैं। उन्हें कथा की एकाग्रता से अधिक शिवशरणों की कथाओं को अपने पुराण में स्थान देने के विषय में अधिक आसक्ति है—ऐसा प्रतीत होता है। इन शरण-कथाओं को बहुत ही सुन्दर ढंग से निरूपण किया है। चारों ओर फैली हुई इन शरणों की कथाओं के कारण बसवण्णा का व्यक्ति-चित्र खिलने के बदले धुंधला-सा हो गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हरिहर कवि के 'बसवराज देवर रगळे' में दिखने वाले काव्यांश यहाँ दृष्टिगोचर नहीं होते। कवि हरिहर देव के समक्ष यह सूरज के सामने रखे दीपक जैसा है।

पद्मणांक—पन्द्रहवीं सदी के पूर्वार्ध से विद्यमान यह कवि पद्मणांक सुप्रसिद्ध केरॅय पद्मरस के वंशज हैं। उन्होंने अपने को उभय भाषा कवि बतलाने के साथ-साथ अपनी कविता करने की शक्ति की प्रशंसा भी बहुत की है। अपनी कविता के बारे में उन्होंने स्वयं लिखा है कि 'यह कविता इक्षु-रस से भी अधिक मधुर, मधु के समान स्निग्ध मधुर, पूर्णिमा की चन्द्रमा की अमृत किरणों से प्रवाहित होने वाली अमृतधारा के समान, क्षीरसागर की सीमा पार कर उमड़ती हुई बहने वाली लहरों के समान है पद्मणांक की काव्य धारा।"—और भी बताते हैं— "काव्य रसिक आनन्द विभोर हो जाय, ऐसा ही आदर्श है।" परन्तु काव्य हम जब पढ़ते हैं तो लगता है कि यह आदर्श केवल आदर्श ही है। और आदर्श चरितार्थ नहीं हुआ है।

पद्मणांक का काव्य 'पद्मराज पुराण' वार्धक षट्पदी में लिखित तेरह संधि (प्रकरणों) वाला काव्य है। केरॅय पद्मरस का जीवनवृत्त इस काव्य की कथा-वस्तु है। केरॅय पद्मरस ने परसमयियों को वाद में खण्डन करने के प्रसंग में श्रुति-स्मृतियों के वाक्यों को षट्पदी छन्दों में प्रस्तुत किया है। कवि ने अपने काव्य की रचना के विषय में कहा है कि "मैंने इस काव्य को "पापक्षयार्थं भक्तियिं विरचिसिदें" अर्थात् पापक्षय के उद्देश्य से भक्तिपूर्वक रचा है। कवि की यह उक्ति उनकी धर्म-दृष्टि को दिग्दर्शित करती है। उनके ग्रन्थ को पढ़ते समय इसी दृष्टि से पढ़ना चाहिए। इसमें काव्यांशों की अपेक्षा करेंगे तो निराश ही होना पड़ेगा। अपने इस काव्य की श्रेष्ठता कवि यों बताते हैं—

"सति सप्तमिय भेदमं र ळ कुळक्षळम
नति शयद गमक क्रिया समासंगळं
श्रुति सह्य संधियं तद्धित पदमनपभ्रंश देशीयंगळं
नुतमार्गे योगिप समासमं सं
स्कृतमं विरहिताव्योरू संस्कृत लिंग
तति शिथिलपद मुखाद्युक्त लक्षणमरिव चतुररीकृतिगॊलियरे"

और यह सवाल करते हैं—"इस पद्य में उक्त व्याकरण-विशेषताओं का सम्यक् पालन करके अपभ्रंश देशी तथा व्यवहार सुलभ संस्कृत पदावली का समुचित प्रयोग करके भावपूर्ण ढंग से शुद्ध सरल एवं काव्य लक्षणों से सुसंयुक्त इस रचना को सभी काव्य लक्षण व भाषा मर्यादा को समझने वाले चतुर व्यक्ति इस कृति को पसन्द नहीं करेंगे ?" उनके इस सवाल को पढ़ने से सुप्रसिद्ध वैयाकरणी केशिराज के शब्दमणि दर्पण के अन्त में "गमक समास" से आरम्भ होने वाले

उदाहरण पद्य की याद आती है। इसमें सन्देह नहीं कि पद्मणांक बहुत बड़े पंडित थे। वह सवाल और करते हैं—"यह कृति-युवती को विदों को हराये बिना रहेगी ?" ठीक ही तो है, ऐसी कृति जरूर हराएगी।

इनके श्लेषयुक्त पद्य, जहाँ कथानायक का वर्णन करते हैं, पढ़ेंगे तो हमें कवि ने जिस मार्ग का अनुसरण किया है जिस दिशा में अपनी काव्य गंगा बहाई है, यह बात स्पष्ट रूप से मालूम हो जाती है। उनका "गतप्रत्यागत पद्य"—(कविमुख कवाट पद्य) एक तरह से पांडित्य के ही लिए समस्यात्मक है। कुछ स्थानों पर संस्कृत शब्द संस्कृत के विद्वानों को भी चक्कर में डालने वाले हैं। देशी छन्द में ऐसी मार्गी शैली कैसा बिकृत लग सकती है—इस बात के लिए पद्यों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

चाहे कैसे लोप दोष युक्त हो, पद्मणांक स्तुत्य है। वह एक ऐतिहासिक है। पद्मरस का इतिहास उन्होंने हमें दिया है। हरिहर के जीवनचरित्र पर भी प्रकाश डाला है।

स्वतन्त्र युग के चंपू कवि

बारहवीं सदी में कन्नड साहित्य का स्वतन्त्रयुग आरम्भ हुआ। देशी छन्द प्रयुक्त होने लगा, यह ठीक है। परन्तु काव्यकार एवं काव्यप्रिय व्यक्ति प्राचीन परिपाटी पर विशेष आदर रखते थे। उनकी इस प्राचीनता के प्रति आसक्ति, आदर अभिरुचि गौरव निर्बाध गति से बना ही रहा। प्राचीन काव्य-सम्प्रदाय अक्षुण्ण ही बना रहा—ऐसा प्रतीत होता है। नये छन्दों के विषय में लोगों में आदर-भाव नहीं था। इस बात का प्रमाण यह है कि हरिहर के "रगळॆ" छन्द को देखकर लोग इन्हें "रगळॆय कवि" अर्थात्—(रगळॆ—गड़बड़झाला), काव्यक्षेत्र में गड़बड़ करने वाला कवि, कहकर इनकी हँसी-उड़ायी थी। इसी वजह से लोगों को यह बताने के लिए कि केवल "रगळॆ" ही नहीं चंपू काव्य आदि अन्य तरह की काव्य विधाओं और छन्दों को भी लिख सकता हूँ—उन्होंने चंपू बंध में 'गिरिजा कल्याण' लिखा। यों एक दन्त-कथा प्रचलित है। यह कथा भले ही कुछ भी हो, मगर इतना तो निश्चित रूप से कहा ही जा सकता है कि लोगों की रुचि किस ओर थी। इस तरह प्राचीनता के प्रति लोगों का आग्रह होना सहज बात है। प्रचलित सम्प्रदाय की वज्रमुष्टि से छूटना भी इतना आसान नहीं। अन्य मतीयों की बात छोड़ दीजिये, वीरशैव कवियों में भी कुछ ने प्राचीन मार्गी शैली ही का आश्रय लिया है। पन्द्रहवीं सदी में "कुमार व्यासयुग" के आरम्भ होने के पश्चात् प्राचीन सम्प्रदाय की इतिश्री हो गयी। इनके बाद काव्य-रचना में लगे सभी कवियों ने सांगत्य (छन्द) और षट्पदी—इन्हीं छन्दों को अपने काव्य के लिए प्रयोग किया।

बारहवीं सदी के बाद भी चंपू शैली आगे बढ़ी, तो भी उसमें वह पहले का महत्त्व या सत्त्व वच नहीं रहा, ऐसा प्रतीत होता है। पम्प युग के काव्यों में जो वीर-रस वाहिनी काव्यधारा फेनिल होकर बह रही थी उसने अपने क्षात्र को खो दिया था। तेरहवीं सदी के बाद निर्मित चम्पू काव्यों में साधारण तथा शृंगार रस ही प्रधान रहा है। पम्प युग के "विक्रमार्जुन विजय" और "साहस भीम विजय" आदि के बदले अब "लीलावती" और "सोबगिन सोने"—अर्थात् "सौन्दर्य वर्षा"—ऐसे काव्यों की प्रचुरता रही है। शृंगार रस निरूपण करना ही आदर्श मानकर लिखे गये काव्यों की बात छोड़िये, धर्म-निरूपण के लिए रचित काव्य भी शृंगार रस की पुष्करिणी बनाकर उसमें डुबकी लगाने लगे हैं। यों लोकजीवन अपने साहस को खोकर निर्वीर्य हो गया और भोग लालसा में मग्न रह गया। इसीलिए विदेशियों के आक्रमण हुए और देश का सर्वनाश हुआ।

इस समय के कवियों ने चम्पू पद्धति से काव्य रचा, तो भी स्वतन्त्र युग का प्रभाव इन पर अवश्य रहा। संस्कृत पद प्रयोग में औचित्य के होने के विषय में नयसेन ने उपदेश दिया। हरिहर ने "रळ, कुळ, क्षळ" के प्रयोग को निरर्थक बतलाया। कवि जन्न ने हरिहर के ही मार्ग में आगे बढ़कर अलंकारों के बाहुल्य पर रोक लगाया। इसी मार्ग पर आगे बढ़ने वाले आंडय्या ने अपने काव्य में संस्कृत शब्दों का

प्रयोग न करके शुद्ध लोकभाषा कन्नड (जनभाषा) का प्रयोग किया। इस तरह की स्थिति होने के कारण काव्य के क्षेत्र को जो नफा-नुकसान हुआ, इस संबंध में यहाँ विचार करना अस्थानीय होगा। चाहे यह जो भी हो, इन सभी प्रयत्नों से यह निष्कर्ष निकलता है कि धीरे-धीरे कवि लोक-जीवन के निकट पहुंचने लगे हैं।

स्वतन्त्र युग की क्रांति का कन्नड साहित्य पर एक और परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण कवियों ने कन्नड में काव्य निर्माण का कार्य किया। इसके पूर्व ब्राह्मण कवियों ने एकाध लौकिक काव्यों का भी निर्माण किया भी होगा। परन्तु धर्म-निरूपण के लिए कन्नड का आश्रय नहीं लिया। बारहवीं सदी के कवि रुद्रभट्ट ने धर्म निरूपण के लिए कन्नड को माध्यम बनाया। सम्भवतः यही सर्वप्रथम ब्राह्मण कवि है जिसने कन्नड में धर्म-निरूपण का प्रयत्न किया। चौदहवीं सदी से आरम्भ होने वाला दास-साहित्य स्वतन्त्र युग के उदात्त तत्वों का बोझ अपने कन्धों पर लेकर ही कार्यरंग में उतरा था। इस सम्बन्ध में अलग प्रकरण में विवेचना करेंगे। प्रस्तुत, पन्द्रहवीं सदी तक निर्मित चंपू कृतियों का स्थूल रूप से समीक्षा करेंगे। नेमिचन्द्र :—हरिहर कवि के समकालीन है यह कवि नेमिचन्द्र। इसने पंप युग के महाकवियों के सम्प्रदाय का अनुसरण कर "लीलावती" नामक लौकिक काव्य का एवं "नेमिनाथ पुराण" नामक धार्मिक काव्य का निर्माण किया है। "लीलावती" के अन्त में सौदन्त्य रट्टवंश के राजा लक्ष्मणराज (ई० सन् करीब ११९०) और उनकी पत्नी चंचला देवी का, "नेमिनाथ पुराण" के आरम्भ में वीरबल्लाल के (ई० सन् ११९३-१२२०) प्रधान सज्जेवल्ल पद्मनाभ का स्मरण किया है। इससे ऐसा लगता है कि यह कवि इन दोनों राजाओं के आस्थान में गण्यमान्य था। इसके अलावा उसने पहले "लीलावती" बाद को "नेमिनाथ पुराण" लिखा। ऐसा मालूम पड़ता है। इनकी कृतियों का अनुशीलन करने पर "लीलावती" से अधिक सब दृष्टियों से "नेमिनाथ पुराण" श्रेष्ठ दिखता है।

इसमें सन्देह नहीं कि नेमिनाथ बहुत बड़े कवि हैं। चौदहवीं सदी के अन्तिम चरण में स्थित मधुर कवि ने कहा है—"नेमिचन्द्र और जन्नकवि—ये दोनों, लौकिक धार्मिक ग्रंथों को कन्नड भाषा के माध्यम से लिखने वालों में 'सीमा पुरुष' हैं। यह केवल अहंकार की बात नहीं बल्कि सर्वसम्मत भावना है।" नेमिचन्द्र को सीमा-पुरुष कहना कुछ गर्व की बात हो सकती है; मगर इस बात को मानने में कोई दोष नहीं कि वह एक बड़े प्रतिष्ठित कवि थे। यह कवि "कवि धवल, कवि राजमल्ल, विद्यावधूवल्लभ, कलाकांत, शृंगार कारागृह, चतुर्भाषा चक्रवर्ति', इत्यादि कई विरुदावलियों से विभूषित थे। कवि ने अपनी कविता-शक्ति की प्रशंसा स्वयं इस प्रकार की है—

"युवति सरसति पुरातन
कविविरहमनरिदळिल्ल निर्मल दशन
च्छवि कुसुमित रसना प
ल्लव तल्पदोळिर्दु सुकर कवि शेखरना।"

अर्थात्—"सरस्वती पुरातन कवियों के विरह दुःख को, नेमिचन्द्र की दंतकांति से विकसित कुसुम की तरह रहने वाली जिह्वा की कोमल शय्या पर विराजमान

होकर, मूक गयी।" उन कवियों की श्रेष्ठता एवं उनकी शक्तिसंपन्नता के विषय में कही बातें बहुत प्रसिद्ध हैं। वे कहते हैं—(भाव) "वानरों ने मिलकर पुल बनाया हो या न बनाया हो, वामन का चरण आसमान को चाहे छुआ हो या न हो, शिव की गर्दन को अर्जुन के दबाया हो या न हो—कवियों ने अपने काव्य-प्रबन्धों में वानर-वामन आदि से वह कार्य करवाकर लोगों से स्वीकृत करवाया है। कवियों की शक्ति कितनी बड़ी है।" और आगे सुनिये, कहते हैं कि संसार के पुण्य प्रताप से ही महाकवि का जन्म हुआ करता हैं। कहते हैं—"देने से काव्य नहीं मिलता। अरे मूर्ख ! संसार के पुण्य प्रताप से काव्य का जन्म होता है। देखें तो सही, धन देकर वसंत को, मन्दमारुत और मन्मथ को, चांदिनी को खरीद लाओ।" पता नहीं कि राजास्थान में रहने वाले इस नेमिचन्द्र को किस अविवेकी ने छेड़ दिया ! उन्होंने बड़ा तगड़ा जवाब देकर उसका मुंह बन्द करा दिया।

कवि का यह काव्य "लीलावती" शृंगार काव्य है। काव्य कारागार में शृंगार को बांध रखना नेमिनाथ की विशेषता है। इसीलिए वह 'शृंगार कारागृह" विरुद-भूषित हैं। ठीक है, "लीलावती" की कथा में शृंगार रस बन्दी बनकर दुखी है। बनवासी के युवराजकुमार कंदर्पदेव ने स्वप्न में एक सुन्दरी को देखा और अपने मित्र मंत्रिकुमार के साथ मकरन्द को साथ लेकर देशांतर में उस स्वप्नसुन्दरी की खोज करने निकला। यह लीलावती वही है जिसे राजकुमार ने स्वप्न में देखा था। वह कुसुमपुर के राजा शृंगारशेखर की कन्या है। जैसे राजकुमार कंदर्पदेव ने सपना देखा उसी तरह लीलावती ने भी सपना देखा। उसने अपने सपने में जिस सुन्दर कंदर्प को देखा, उसे खोजने के लिए भटों को भेजती है। इस काम में कई तरह के कष्ट सहने पड़ते हैं और अनेक अड़चनों का सामना करना पड़ता है। यह सब भुगतने के बाद नायक-नायिका आपस में मिलते हैं। ऐसी कथावस्तु में शृंगार रस निरूपण में अभाव क्यों होगा ? भरपूर शृंगार रस का प्रवाह बहा दिया है। कहीं-कहीं यह रसधारा मटमैला भी हो गया है। कवि का भावावेश रस-समाधि की अवस्था को बिरला ही पहुंच सकता है। कवि ने इस कथा की वस्तु को सुबंधु की "वासवदत्ता" से लिया है—ऐसा पण्डितों का कहना है; यह भी कहना है कि यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन भी किये गये हैं। यह चाहे जैसा हो, कथा रोचक है। कन्नड में उपलब्ध होने वाली सर्वप्रथम शृंगारकथा यही है। इसके लेखक नेमिचन्द्र "चतुर्भाषा चक्रवर्ति" हैं, महान् पण्डित हैं। उनके इस पांडित्य के फलस्वरूप प्रयुक्त शब्दभंडार, कहने का ढंग, वर्णना-वैखरी, काव्य-चमत्कृति—इन सबने मिलकर कथा की गति को थोड़ा कुंठित किया है। फिर भी कवि की प्रतिभा यत्र-यत्र चमक उठी है। कंदर्पदेव अपने मित्र मकरंद से छूटकर भटक जाता है, आखिर एक पेड़ के नीचे बैठकर विश्राम करता है। उसी पेड़ पर एक सारिका बैठी-बैठी अपने प्रेमी वल्लभ की प्रतीक्षा में छटपटा रही है। अपने वल्लभ की प्रतीक्षा में नीड़ के चारों ओर चक्कर लगा रही है, आने की आवाज सुनने के लिए कान लगाती है, रास्ता देखती है, रोती है, फिर उठकर नीड़ के अन्दर जाती है, बिछे हुए कोमल पत्तों पर लुढ़कती है, गरम सांस छोड़ती है। श्वास की गरम हवा लगने के कारण कोमल पत्तों का बिछावन झुलस जाता है। वह है वल्लभ-विरहित

सारिका की दशा। वल्लभ के लौटने पर प्रणयी-प्रणयिनी के बीच होने वाला प्रेम-कलह और प्रणयी का प्रणयिनी के समझाने-बुझाने के व्याज से लीलावती का वृत्तांत कंदर्पदेव को मालूम होना—ये सारी बातें चमत्कारपूर्ण होने के साथ-साथ रसवान भी हैं। ऐसा लगता है कि यह काव्य बहुत समय तक जन-प्रिय रहा होगा। इसी कारण से, शायद 'कादंबरी' को जलाकर 'लीलावती' का तिलक किया—ऐसी दन्त-कथा बहुत समय तक प्रचलित रही। इसके सम्बन्ध में ई० सन् १५०० में बाहुबलि ने अपने 'नागकुमार चरित' में ई० सन् १५५० में अपने 'चन्द्रप्रभ चरित' में, ई० सन् १८३८ में देवचन्द्र ने अपनी 'राजावली कथा' में उल्लेख किया है। 'लीलावती' काव्य की महिमा को दर्शाने वाली कथा है। कवि ने बताया है कि उन्होंने इस काव्य को एक ही वर्ष में लिखकर पूर्ण किया। अपने को कृतिकुल-दीपक कहकर बड़े गर्व से बताया है। कवि की बुद्धि तीक्ष्ण अवश्य है और प्रतिभा का दूसरा स्थान है।

नेमिचन्द्र का "नेमिनाथ पुराण" धर्म व काव्यधर्म दोनों से संयुक्त श्रेष्ठ काव्य है। बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की कथा इस काव्य का विषय है, परन्तु कवि ने बताया है इसमें वसुदेव, अच्युत, कंदर्प की कथाओं को सम्मिलित करके लिखूंगा। यों कहकर काव्य रचना आरम्भ करके कंसवध तक लिखा है। काव्य पूर्ण होने के पहले ही संभवतः कवि का देहांत हुआ होगा। इस तरह यह काव्य अधूरा ही रह गया है। शायद इसी वजह से इस काव्य का नाम "अर्धनेमि" हुआ जो अन्वर्थ है। कवि ने अपने इस धार्मिक काव्य की श्रेष्ठता इन शब्दों में बताया है—'नेमिचन्द्र की शब्दावली ही रस है या रसायन है अथवा काव्य रूपी वसंत है या क्या है; यह श्रवण के लिए अमृत की तरह मनोहर है। इसके प्रभाव के कारण उनका नेमिनाथ पुराण दुनियाँ के सामने बिलकुल नवीन लगा। ठीक है, कवि ने श्रीकृष्ण की कथा के प्रसंग को बताकर काव्य रसायन ही संसार को दिया है। उसमें भी वामन त्रिविक्रम बनकर बलि को पाताल भेजने के सन्निवेश का वर्णन बड़ा ही भव्य है। कवि के लिए कीर्तिदायक बना है। वामन के त्रिविक्रम बनने के चित्र की ही तरह त्रिविक्रम के पैर ऊपर उठाने का चित्र भी बड़ा भव्य बना है। इस प्रसंग में चित्रित यह भव्य रूप कवि की प्रतिभा, कल्पना-सामर्थ्य, एवं अलौकिक दृष्टि—इन्हें द्योतित करने वाला दीपस्तंभ जैसा है। श्रीकृष्ण के गोवर्धनोद्धारण का, चाणूर के साथ के मल्ल युद्ध का चित्र भी हृद्य है। कवि की प्रतिभा और दृष्टि बहुत उदात्त बन पड़ी हैं। "लीलावती" के लिखने के बाद "नेमिनाथ पुराण" के निर्माण करने के बीच की अवधि में प्रतिभा-विकास के साथ कल्पना प्रौढ़ होकर दृष्टि भी उदात्त बनी है।

रुद्रभट्ट :—एक वैदिक पुराण के कन्नड में काव्य के रूप में प्रस्तुत करने वालों में यह रुद्रभट्ट सर्वप्रथम व्यक्ति हैं। इनका "जगन्नाथ विजय", विष्णु पुराण के पांचवें एवं छठे अंशों में दीखने वाले श्रीकृष्णचरित्र को लिए हुए बना है। साळ्व ने 'रस रत्नाकर' में बताया है कि इन्होंने "रस कलिके" नामक एक लक्षण ग्रन्थ को लिखा है। परन्तु यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

"रुद्रभट्ट ने षडक्षरी पर स्पर्धा करके अपने काव्य का निर्माण किया और इस स्पर्धा में पराजित होकर अपनी समस्त विरुदावली को प्रतिस्पर्धी के हवाले कर दिया। इसे देखकर कवि लक्ष्मीश ने ब्राह्मण को हुए इस अपमान से व्यथित होकर इसे दूर

करने के उद्देश्य से जैमिनी भारत लिख कर कृतकृत्य हुआ।"—यों एक दन्तकथा प्रचलित है भी—ऐसा प्रतीत होता है। इस कथा में कोई सार नहीं, यह केवल झूठी कहानी है। रुद्रभट्ट का समय बारहवीं शती का अन्तिम काल है। षडक्षरी सत्रहवीं सदी का है, लक्ष्मीश प्राय: षडक्षरी से पचास वर्ष अर्वाचीन है। इन तीनों में स्पर्धा की कल्पना करना कोई उत्तम रुचि का द्योतक नहीं। ऐसी कथाओं के प्रति उदासीन रहना ही अच्छा है।

रुद्रभट्ट-नेमिचन्द्र ये दोनों समकालीन हैं। दोनों वीर बल्लाल के समसामयिक हैं। नेमिचन्द्र के आश्रयदाता वीर बल्लाळ के मन्त्री पद्मनाभ थे तो रुद्रभट्ट के आश्रयदाता इन्हीं राजा के एक दूसरे मंत्री चन्द्रमौली थे। उन्होंने अपने स्वामी को सन्तुष्ट करने के लिए "नेमिनाथ पुराण" का निर्माण किया तो इन्होंने अपने पोषक को सन्तुष्ट करने के लिए "जगन्नाथ विजय" की रचना की। ये दोनों कवि अपने मत की भिन्नता या भेदभाव को भूलकर साहित्य-संसार के चक्रवाक् जैसे रहे—यों कहना अधिक युक्तिसंगत होगा। नेमिचन्द्र ने अपने पुराण में कृष्ण-कथा कही, रुद्रभट्ट का पूर्ण काव्य ही कृष्ण कथा है। दोनों की दृष्टि पृथक् होने पर भी, दोनों कवि परस्पर एक दूसरे की कृतियों को पढ़कर प्रशंसा करने से चूकते न थे—यों कल्पना करना कितना अच्छा होगा। रुद्रभट्ट में काफी उदारता का दर्शन हम करते हैं। वह ब्राह्मण होने पर भी शंखवर्मा, शांतिवर्मा, गुणवर्मा, कण्णपा, पम्प, चन्द्रभट्ट, पॉन्नपा, गजांशुक (इनमें कुछ कवि किस मत का अवलम्बन करते थे—सो मालूम नहीं) आदि जैन कवियों का स्मरण करके उनके विशिष्ट काव्यगुण अपने काव्य में हो—ऐसी इच्छा प्रकट की है। (इससे यह दिखता है कि रुद्रभट्ट हरिहर-राघवांक के समकालीन हैं या इनसे कुछ पूर्व के हैं।)

रुद्रभट्ट "कविराज, कृतिशारदाभ्रचन्द्रातप" विरुदांकित थे—ऐसा स्वयं लिखते हैं। वे अपने काव्य का वर्णन यों करते हैं। उनकी ही बातों में यों है—

> "इनियळ सोंकिनंतें, पॉस माविन पूविन जॉम्पदंतें, चं
> दन रसदळिपनन्तें, ननॅयेरिद मल्लिगॅयंतें पूर्ण चं
> द्रन सिरियंतें, बन्दॅसप तॅङ्कण तम्बॅलरंतें, रुद्र भ
> ट्टन कवितारसं मन मनिर्कुळिगॉळ्बुदु सज्जनर्कळा"

अर्थात्—कवि अपनी कविता की प्रशंसा इस तरह करते हैं कि—"मेरी कवितासुन्दरी के स्पर्श की तरह, नव विकसित चूतांकुर जैसे, चन्दन रस की सुगन्धि-सी, सद्योविकसित मल्लिका की भांति, पूर्ण चन्द्र की चन्द्रिका की तरह, हितकर और सुखदायक मंदमारुत जैसे रुद्रभट्ट की कविता सहृदयों को आनन्द देगी।" कवि का यह कथन सम्पूर्ण सत्य न होने पर भी अर्ध सत्य अवश्य है। कवि के काव्य में आनन्द देनेवाली वस्तु अवश्य है। उसे पाने के लिए परिश्रम की आवश्यकता है। रुद्रभट्ट की कविता नारिकेल-पाक है, द्राक्षापाक नहीं। उनके संस्कृत-पांडित्य का यह फल है। काव्यगत आनन्ददायक वस्तु को प्राप्त करने के लिए उस पर का छिलका उतारना चाहिए। उनके काव्य के प्रथम पांच पद्य "पंच पाषाण" (पांच पत्थर) के नाम से अभिहित हैं और संस्कृत में उनकी व्याख्या की गयी है। इससे ही हम समझ सकते हैं कि कवि प्रकाण्ड पंडित था।

कवि की कृति "जगन्नाथ विजय" की कथा श्री कृष्ण-जन्म से आरम्भ होकर बाणासुर वध तक, काव्य के अन्त में बताये हुए "एकोत्तर शतकृत्यों" के छप्पर पर फैली हुई है। इस कथा का मूल विष्णुपुराण है। परन्तु कवि अनुवादक नहीं; कथा के विवरणों में और वर्णना-भागों में कवि का व्यक्तित्व खूब विकसित हुआ है। कवि पग-पग पर अपनी कृष्णभक्ति का दर्शन कराते हैं। कभी-कभी कवि की यह भक्ति रसावेश के कारण शुष्क-भक्ति न होकर सरस भक्ति बन गयी है। मुरलीधर के मुरलीनाद से आकृष्ट होकर परवश होकर गोपियाँ कृष्ण के पास भागी-भागी आती हैं, इस प्रसंग का वर्णन बड़ा ही मनोहर है। श्रीकृष्ण का वेणुवादन कवि के शब्दों में "नारिकेलरसधारावृष्टि, मधु-माधुर्य वर्षा, और सुधारस प्रवाह" है। मुरलीधर के ऐसे वेणुवादन को सुनकर देवेन्द्र अपने सहस्र नेत्रों की सार्थकता, मुरलीधर को देखते रहने के कारण, मानता है। परन्तु वेणुनाद सुनने के लिए हजार कान न होने के कारण पछताता है। इस वेणुनाद को सुनकर गोपिकाएँ कृष्ण को चारों ओर घेरकर रास मंडल बना लेती हैं। इन गोपिकाओं के बीच मे श्रीकृष्ण पूर्ण चन्द्र की तरह लगते थे, और ये गोपिकाएँ वसन्त पवन में हिलने वाली नवलतिकाओं की तरह नृत्य में लीन रहीं। इस प्रसंग का वर्णन बहुत ही हृदयंगम है। कवि की वाणी में ही सुनिए—

नगॆ मॊगदि मुगुळ्नगॆ तुळुंकॆ, बळल्मुडियिंदुरल्गळ
ल्लुगॆ, निडुगण्गाळि पॊळ्पु सालिडॆ, नीळ चळाळकाळियि
मृगमदरेणुसूसॆ, लतॆ तम्बॆलगॊय्यनॆ नर्तिपंददि
सॊगयिसॆ, गोपि इक्कॆय लयक्कॆ पॆरळ् जति मॆट्टु ताडिदळ्"

अर्थात्—"हँसमुख पर मुस्कुराहट खेल रही है, ढीली वेणी में लगे फूल हिल-डुल कर खेल रहे हैं, बड़ी-बड़ी आँखों से छलकानेवाली कांति की पंक्ति (कतार) सीधी लगी है और हल्की-हल्की हवा लगने से बिखरी अलकावली कस्तूरी बिखेर कर मुखकांति को बढ़ा रही है; इस तरह सुन्दर लगने वाली गोपिकाएँ हवा के झोंकों से नाचने वाली लताओं की तरह मृदंग-ताल के लय के अनुसार नाच रही हैं। उस समय एक "सुरत प्रवीण गोपी वीणा वादन करती है, एक सुकुमार गोपी कंदुक-क्रीड़ा के आनन्द में श्रीकृष्ण को डुबोकर आनन्दित करती है। ठीक ऐसे समय पर श्रीकृष्ण दूसरी जगह जाते हैं; उस समय एक-दूसरी गोपी स्वयं कृष्ण की तरह चलने का अनुकरण करती है। दूसरी कोई गोपी कोमल वृक्ष शाखा को कमर से लटकाकर स्निग्ध-हास्य करती है, दूसरी अन्य कोई गोपिका मृणाल को हाथ में लेकर कालीय नाग पर नाचने का अभिनय करती है। इतने में अन्य कोई गोपिका वर्षा का भय निवारण करने के निमित्त गोवर्धन नर्वत को उठाने वाले कृष्ण की भंगिमा का प्रदर्शन करती हुई एक गेंद को उठाकर त्रिभंगी में खड़ी होती है।" यों ऐसे चित्र कवि के काव्य में बड़े मनोहर हैं।

रुद्रभट्ट नेमिचन्द्र की ही तरह कवि से बढ़कर पंडित हैं। नेमिचन्द्र "स्त्रीरूप ही रूप है और शृंगार रस ही रस है।" इस आदर्श को मानने वाले हैं तो रुद्रभट्ट "वैष्णव काव्य रसार्णव" में डुबकी लगाने वाले हैं। इन दोनों का आदर्श भिन्न-भिन्न होने पर भी काव्यरसास्वादन करने वाले के लिए मिलने वाला फल एक ही

है। और वह है—पांडित्य-प्रचुर नारिकेल पाक। भाषा के बोझ को वहन कर सके, ऐसा पुष्ट-भाव नहीं। ये दोनों कवि अपनी वर्णात्मकता में कवि समय का उपयोग करते हैं। परन्तु उनकी वर्णनात्मक रीति में नवीनता लक्षित होती है। इनके काव्य-बन्ध में चुस्ती है और ओज है, परन्तु प्रसाद गुण की कमी है। कहीं-कहीं उथला भी हो गया है। रुद्रभट्ट का ग्रीष्म-वर्णन उदाहरण के लिए उद्धृत है—

"उरिवरिव बिसिल बॅङ्कॅय
भरदॅं मळल्दिटॅं काय्दु सिडियुत्तिरॅं पं
करुह भवांडद हुंचिन
हुरिगडलॅवॉलॉडॅदु पारिदवु बॅट्टंगळ्"

अर्थात्—"झुलसाने वाली धूप की भयंकर उष्णता से रेत के कण छिटक रहे हैं और इस ब्रह्माण्ड-रूपी कढ़ाह के अन्दर पहाड़ भुने जाकर छिटक-छिटक कर उछल रहे हैं।" यह वर्णन सरल और सुन्दर है। परन्तु ऐसे वर्णन कहीं-कहीं एकाध मिलते हैं। जरासंध का, कृष्ण की निंदा करने का प्रसंग, रसपूर्ण है। यह काव्यांश श्री कृष्ण के विषय में की गयी निन्दा-स्तुति होने के कारण रसयुक्त बन पड़ा है। दूसरा कारण यह भी है कि यह प्रसंग पम्प कवि के विक्रमार्जुन विजय से उपकृत भी हुआ है। पम्प कवि ने जिस सारतत्त्व को निचोड़कर रखा उसके साथ पानी मिला-कर पेय बनाया रुद्रभट्ट ने।

काव्य रसास्वादन की दृष्टि से तथा पांडित्य संपादन की भी दृष्टि से नेमिचन्द्र एवं रुद्रभट्ट दोनों की कृतियों का अध्ययन सर्वथा उपयुक्त है।

बॉप्पण्ण पंडित—यह कवि नेमिचन्द्र व रुद्रभट्ट के समकालीन हैं। इन्होंने "निर्वाण लक्ष्मीपति नक्षत्र मालिका" और "श्रवण बॅळगोळ के गोम्मटेश्वर के बारे में सत्ताईस वृत्तों वाला एक छोटा काव्य"—ये दो कृतियां रचीं। ये "सुजनोत्तंस" नामक विरुद-भूषित थे। कवि बताते हैं—"सुजनर् भव्यरे तनगवर जस्तमुत्तंसमप्प पुदरिं बॉप्पं सुजनोत्तंसनॅनिप्पं" अर्थात्—"भव्य सज्जन सदा अपने से श्रेष्ठ होने के कारण सुजनोत्तंस कहलाया, मैं उनसे श्रेष्ठ हूँ, इस कारण से मैं सुजनोत्तंस नहीं हूँ;" यह विनम्रता उनकी प्रशंसनीय है। अध-जल गगरी ही तो छलकती है। सज्जनों के प्रति उनकी विनम्रता उनके बड़प्पन का ही तो द्योतक है। उनकी 'गॉम्मटस्तुति' एक मनोहर भावगीत है। कवि ने बाहुबलि की स्तुति पूर्ण मन से भक्ति के साथ किया है। इसे पढ़ते-पढ़ते पाठक विस्मृत स्वयं हो जाते हैं। कवि के द्वारा वर्णित गोम्मट का यह चित्र देखिये—

"अति तुंगाकृतियादॉडागददरॉळ् सौन्दर्यं मौन्नत्यमुं
नुत सौन्दर्यमुमागॆ मत्ततिशयं तानागदौन्नत्य मुं
नुत सौन्दर्यमुमूर्जितातिशयमुं तम्नल्लि निन्दिर्दुवॆ
क्षिति संपूज्यमों गॉम्मटेश्वर जिन श्री रूपमात्मोपमं"

अर्थात्—"मूर्ति बड़ी हो तो उसमें सुन्दरता नहीं होती, औन्नत्य और सौन्दर्य दोनों रहे तो उसमें अतिशयता नहीं होती, मगर गॉम्मट में औन्नत्य, सौन्दर्य और अतिशयता—ये तीनों गुण हैं। गॉम्मटेश्वर का श्रीरूप आत्मोपम है। यह कब संसार में कितना पूज्य है!"

बोप्पण्ण का "निर्वाण लक्ष्मीपति नक्षत्र मालिका" सत्ताईस वृत्तों वाला एक छोटा ग्रन्थ है। इसका प्रत्येक पद्य 'निर्वाण लक्ष्मीपति' के अंकित से समाप्त होता है; और यह सत्ताईस नक्षत्रों के संख्या-क्रम से रचित है; इस कारण से इस कृति का नाम "निर्वाण लक्ष्मीपति नक्षत्र मालिका" है। यहाँ निर्वाण लक्ष्मी का पति "जिन" है। जैन मत और जैन ऋषियों के महत्त्व का वर्णन इस छोटे काव्य की काव्यवस्तु है। भव्य सज्जनों ने भव-बन्धन विध्वंस करने वाले स्तोत्र की रचना करने के लिए कहा। इसलिए उन्होंने इस "भ्राजित भव्यकंठ कलितं नक्षत्र मालोपमं" कृति का निर्माण किया।—यह स्वयं कवि का कथन है। यह केवल धर्म-ग्रन्थ है, परन्तु काव्यमय है।

"सुजनोत्तंस" अंकित अनेक कंद (एक छन्द) पद्य प्रचलित है। इन पद्यों के कर्ता बोप्पण्ण ही हो—ऐसा हो सकता है। कुछ कवियों ने इस कवि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और केशिराज ने अपने "शब्दमणि दर्पण" में "सुजनोत्तंसन सुमार्गमिद-रोळॅ लक्ष्यं"—(सुजनोत्तंस का सुमार्ग इसका लक्षण है)—कहा है और इनकी उप-लब्ध कृतियों में असाधारण कविता-शक्ति दिखती है—इन सब कारणों से लगता है कि इन्होंने बड़े-बड़े काव्यों का भी सम्भवतः निर्माण किया होगा।

अग्गळ—इंगळेश्वर नामक ग्राम के निवासी शान्तीश-पोचांबिका नामक दम्पति का पुत्र है यह कवि अग्गळ। "भारती भालनेत्र", "काव्य नौकर्णधार", "साहित्य विद्याविनोद"—आदि इनकी विरुदावली है। उन्होंने "चन्द्रप्रभ पुराण" लिखा है। यह सोलह आश्वासोंवाली एक कृति है। इस कृति की कथा-वस्तु आठवें तीर्थंकर चन्द्र प्रभ जिन का जीवनवृत्त है। समस्त कलाओं में उत्तम कहलानेवालों में श्रेष्ठ है अग्गळ यों स्वयं बताते हैं और यह भी बताते हैं कि राजसभा में भी गण्य व्यक्ति थे।

"असहायतॅयिं संसा
र समुद्रमनीसिदं शशिप्रभनॅन्तं
त सहायतॅयिं तच्चरि
त समुद्रमनीसि जसमनग्गळनांतं।"

अर्थात्—"चन्द्रप्रभ तीर्थंकर ने जिस तरह असहाय शूर होकर संसार-सागर को तैरकर पार किया उसी तरह अग्गळ ने उस तीर्थंकर के कथासागर को असहाय होकर भी तैरकर कीर्तिशाली बना।" अब तक उपलब्ध चन्द्रप्रभ जिन की कथाओं में यही सर्वप्रथम है। कहा जाता है कि "पम्प, पॉन्न, रन्न—इनके धार्मिक काव्यों का मूल्य तीन लोक है; इन तीनों के पश्चात् के इस कवि अग्गळ का "चन्द्रप्रभ पुराण" अमूल्य है! बारहवीं सदी के अन्य चंपू ग्रन्थों की तरह यह भी संस्कृत भूयिष्ठ एवं प्रौढ़काव्य-बन्ध युक्त है। अग्गळ कल्पना-विलास युक्त सहृदय कवि हैं। इनके वर्णन उनकी कल्पना शक्ति का अच्छा परिचय देते हैं। इसके साथ ही उन्होंने अपने समय के वीर जीवन पर भी प्रकाश डाला है। उनके पुराण में जन्म-जन्मांतरों का (भवावली का) गडबड़झाला नहीं है। चन्द्रप्रभ जिन का एक पूर्वजन्म की कथा बतलाकर मुख्य कथानक शुरू कर देते हैं। परन्तु शैली क्लिष्ट है। यह कवि बारहवीं सदी के उत्तरार्ध के अन्त में रहा।

आचण्ण—पुलिगॅरॅ के केशिराज-मल्लांबिका नामक दम्पती का पुत्र है आचण्ण

इन्होंने सेनानायक रेचण के आश्रय में रहकर "वर्धमान पुराण" लिखा। आचण्ण के पिता अपने मित्र तिक्कण चावण के साथ मिलकर-'वर्धमान पुराण' को लिखने लगा। परन्तु कृति सम्पूर्ण होने के पूर्व ही वे दिवंगत हो गये। बेटे ने पिता की इस कृति को सोलह आश्वासों वाला बृहदाकार देकर पूर्ण किया। यह वर्धमान जिन के सम्बन्ध में लिखित प्रथम कन्नड कृति है। बारहवीं सदी के अन्य चंपू काव्यों की ही शैली में इस कृति का भी निर्माण हुआ है और इसमें शब्दालंकारों की भरमार है। यही इस कृति की विशेषता है कि कन्नड में वर्धमान जिन के बारे में यही प्रथम है। आचण्ण ने "श्रीपदाशीति" नामक और एक ग्रन्थ भी लिखा है। ग्रन्थ में पच परमेष्ठियों के विषय में, अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—इन सबकी नाम-महिमा से युक्त चौरानबे कंद-पद्य हैं।

कवि-काम—तेरहवीं सदी के आरम्भ में स्थित ये कवि केवल कवि ही नहीं, बहुमुखी प्रतिभावाले व्यक्ति भी हैं। उनके चारों ओर चार व्यक्ति एकसाथ बैठकर लिखने लगे तो चारों को कविता बना कर एकसाथ लिखा सकने की प्रतिभा रखते थे; साथ ही पासा चलाकर अक्ष-क्रीड़ा भी खेलते। एक तरफ लेखन की अशुद्धियों को ठीक करते तो दूसरी तरफ संगीत आस्वादन भी करते। बीच-बीच में हास्य भी करते और हँसाते। इस तरह वह सर्वतोमुखी प्रज्ञावान् थे। अपने बारे में उन्होंने स्वयं यों बताया है। इन्होंने "शृंगार-रत्नाकर" नामक एक शास्त्र ग्रन्थ रचा है। पार्श्व कवि बताते हैं कि इन्होंने 'स्तनशतक' नामक एक और ग्रन्थ भी लिखा है। उन्होंने स्वयं यह भी बताया है वह सामन्त, मांडलिक, चक्रवर्ति आदियों की सभाओं में भी प्रमुख तथा प्रसिद्ध था और वह "कविमुख मुकुर" अपने को बताते हैं। "शृंगार रत्नाकर" "कवि मुख मुकुर" इनकी विरुदावली थी। अपनी कृतियों में लोकोक्तियों का बड़ी निपुणता के साथ प्रयोग करने की इनको चतुरता अद्वितीय है। सुन्दर पद-बन्ध में सुन्दर भावनाओं को अभिव्यक्त करने की प्रतिभा-सम्पन्नता इस कवि में है। उनके 'शृंगार-रत्नाकर' का एक दूसरा नाम 'रस विवेक' भी है। इस कृति में चार अध्याय हैं—(१) नवरस व्यावर्णन, (२) भावभेद निर्णय, (३) नायक-नायिका विकल्प विस्तार, और (४) सख-सखी सम्भोग विप्रलंभ प्रमावस्थाति विस्तर। कवि अपने से पूर्व संस्कृत में कथित शृंगार का कन्नड में प्रतिपादन करते हैं। कन्नड में इस प्रकरण का विस्तार के साथ विवेचन करने वाला यही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। ये संभवतः शैव ब्राह्मण हैं। इनकी दूसरी कृति "स्तन शतक" उपलब्ध नहीं है।

बन्धु वर्मा—चौदहवीं शती के नागराज नामक कवि ने अपने "पुण्यास्रव" नामक कृति में बन्धुवर्मा के बारे में यों कहा है—

"कविगळॊळॆ बन्धुवर्म
कवि यातन मुंदे कविगळॆम्बवॆरल्लं
छवि गॆट्टिर्पर् ताॊळगुव
रवियं बळसिर्द बहुळ भगणंगळवॊल्"

अर्थात्—"कवियों में बन्धुवर्मा ही कवि हैं। उनके सामने अन्य सब कवि सूर्य के चारों ओर फैले हुए नक्षत्रों की तरह कान्तिहीन हैं।" बारहवीं सदी के चंपू काव्यकारों (हरिहर को छोड़) की तुलना में निस्सन्देह यह माना जा सकता है

कि नागराज का कथन सत्य है। इस समय के चंपूकारों की शैली भी उसी ढाँचे में ढली है।—यों कहा जा सकता है। परन्तु बन्धुवर्मा इसके अपवाद हैं। काव्यदेवी संस्कृत भूयिष्ठ शब्द-बन्ध में कसी आकर जो मुश्किल से साँस लेती रही, वह बन्धु-वर्मा की कृतियों में आराम से साँस लेने लगी है। उनकी कृति "हरिवंशाभ्युदय" में अहिंसा का यह वर्णन उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

"कावरारुमिल्ल दनमॅम्बुदु सीरनितिल्ल दोषमॅम्
बावुदुमिल्ल बुर्चुवुदु मॅय्मुळिसिल्लद मूगुजातिगळ्
मेवुदु पुल् जलं कुडिवुदिर्पडॅ युं पळुवन्तुमिष्ट सं
सेवनॅ यल्लि मॅय्यरियदिर्दुवनॅ गळकॉल्वुदॉळ्ळिते।"

इसका भावार्थ यों है—"बेचारों का कोई रक्षक नहीं, दोष कुछ भी नहीं—निर्दोष प्राणी हैं, डर-डर के अपना जीवन-यापन करते हैं, क्रोध-अहंकार आदि से मुक्त हैं, मूक पशु हैं, वे घास खाते हैं, जल पीते हैं, जंगल में वास करते हैं, दूसरों की सेवा में ही निरत रहकर अपने को भूले रहते हैं, ऐसे साधु जीवों को मारना उचित है?"—कवि का सारा वर्णन इसी तरह सरल है, और आसान कन्नड शब्दों का प्रयोग है, प्रसाद गुण है। हरिवंश की कथावस्तु वही पुरानी है जो दूसरे साहित्यकारों द्वारा वर्णित है। वह चर्वित चर्वण है। केवल काव्य बन्ध ललित है। सुन्दर कल्पना है। कवि का एक और ग्रन्थ "जीव सम्बोधन" है। बारह अध्यायों वाला यह ग्रन्थ नीति वैराग्य बोधक होने पर भी सरल और सुन्दर है। वे अपनी इस कृति में बताते हैं—

"कुडलार्पु दॉडॅयनप्पुदु।
कुडलारदॅ बेडिदवर्गळं मरुगिसुति
पॅडिमॅयनार्गं मरुकम
नॉडरिसदिपोंदु बडतनं लेसल्लॅ"

भाव यह है कि—"दान करने की शक्ति हो तब धनी बनना चाहिए, माँगने वालों को दे नहीं सकते और उन्हें दुःखी बनाते रहे ऐसा धनी होने से, दूसरों को न सताने वाली गरीबी का जीवन अच्छा है।"

लेखन शैली में चुस्ती रहने पर भी पद-लालित्य के कारण यह कवि सबके प्रियपात्र हैं। कवि ने जैन-तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। मानव के लिए आवश्यक एवं आदरणीय हैं। इन्हीं तत्त्वों का प्रतिपादन कवि ने "जीव" को सम्बोधित करते हुए किया है।

देव कवि—"कुसुमावली" नामक एक काल्पनिक कथानक को चंपू-काव्य के रूप में लिखनेवाले इस कवि ने कहीं भी अपना नाम स्पष्ट रूप से नहीं बताया है। इस नाम की ओर केवल संकेत किया है। अपने इस ग्रन्थ का नायक "चिक्कराज चमूप" बतलाया है, परन्तु यह चमूप चिक्कराज कौन था और किस राजा के यहाँ चमूप (सेनापति) था—इस विषय में कुछ भी पता नहीं लगता। कवि ने अपने को "कवि कमलज सूक्ति सुधार्णव सोमं" बताया है। इससे यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि "शांतीश्वर पुराण" के रचयिता कमलभव कवि का सहायक या पोषक रहा होगा। इस अनुमान को "कुसुमावली" के अन्तर्गत कुछ पद्य जो वर्णनात्मक हैं वे

प्रमाणित करते हैं और ये पद्य "शान्तीश्वर पुराण" में भी दिखाई पड़ते हैं। इनकी "कवि-रति-रमण" "भारतीभूषण" आदि विरुदावली है। कवि ने अपनी प्रशंसा "सुकृति श्रीभामिनी मंगलमणि मुकुर" और "बुधस्तुत्य साहित्य कला संदोहसीम"—कहकर स्वयं की है।

"कुसुमावली" नेमिचन्द्र की "लीलावती" की तरह एक शृंगारपूर्ण काल्पनिक कथा है। नेमिचन्द्र की तरह देवकवि भी वर्णना-प्रिय है। नेमिचन्द्र जैसी विद्वत्प्रतिभा देव कवि में न होने पर भी दोनों का मार्ग एक है। वर्णनाप्रियता और पांडित्य प्रदर्शन की रुचि के कारण कथाप्रवाह कुंठित हो गया है। मनोरंजन की दृष्टि से लिखी जाने वाली कथा प्रौढ़ शैली का लिबास पहने हुए अपनी सरलता को खो बैठी है; ऐसा न होता तो कथा सुलभ, सरल एवं सुन्दर होकर अच्छी लग सकती थी। इस देव कवि की विशेषता यही है कि यह ब्राह्मण कवि है और एक स्वतन्त्र कथन-काव्य का निर्माता है।

पार्श्व पण्डित : यह कवि तेरहवीं सदी के आरम्भ काल का है। "पार्श्वनाथ पुराण" इनकी कृति है। 'कविकुल तिलक", "विबुध जन मनः पद्मिनी पद्मित्र" इत्यादि इनकी विरुदावली है। "पार्श्वनाथ पुराण" सोलह आश्वासों की कृति है। उनका विचार था कि पहेली बुझाने वाला कवि नहीं हो सकता। इस लिए स्पष्ट-वादिता उनका माना हुआ आदर्श था। उन्होंने अपनी कृति में इस आदर्श को निभाया है। यह काव्य तेईसवें तीर्थंकर के चरित को लेकर बना है। कवि अपने काव्य के बारे में यों कहते हैं:—"यह मेरा काव्य सत्कीर्ति रमणी को आनन्दित कर उसे अपने वशवर्ती बनानेवाला वशीकरण मन्त्र है, कांतियुक्त, प्रसिद्ध और निर्दृष्ट है और काव्य परीक्षण की खराद पर ठीक उतरने वाला मनोरत्न है; गुणरत्नों से सुशोभित, सरस, सारवान्, उत्तम वर्णना संयुक्त, श्रोत्र-प्रिय, हृदय के लिए आह्लाददायक, आभरण-प्राय है; ऐसा काव्य विद्वद्वृन्द के लिए आनन्ददायक क्यों नहीं होगा?"—ठीक है; कवि अपनी कृति के संबंध में जो कहते हैं, वह बहुत हद तक स्वीकृत किया जा सकता है। सरस कथा, सुन्दरवर्णन, श्रवण-मधुर, मन के लिए आनन्ददायक शैली—इन सब-से युक्त इनकी कृति विद्वज्जन-प्रिय अवश्य है। उनके वर्णन बहुत ऊंचे दर्जे के न होने पर भी, वे जो वर्णन प्रस्तुत करते हैं वह आँखों के सामने एक स्पष्ट चित्र उपस्थित करने में समर्थ है। सहज सुन्दर है। पार्श्वनाथ चरित्र को कन्नड में लिखने वाले कवियों में यही सर्वप्रथम है। कवि ने अपनी कृति में "कमठ-कथा" प्रसंग में स्वविषय में "सुकवि जन मनोहर्ष सस्य प्रवर्ष" कहा है। यह कहने में कोई दोष प्रतीत नहीं होता।

जन्न : बारहवीं सदी में काव्य-कर्म में लगे अनेक चम्पूकारों ने अपने पांडित्य से पाठकों को मोहित किया जरूर; परन्तु काव्य-सौंदर्य से आनन्दित नहीं किया। पंप-रन्नादि कवियों में लक्षित होने वाली लोकोत्तर प्रतिभा, कल्पना शक्ति करीब दो सदियों तक सुप्त पड़ी थी। तेरहवीं सदी में फिर से वह शक्ति कालगर्भ से फूट निकली। इसका आश्रयदाता जन्न है। ये बहुत बड़े सुकृति है। यह जन्म से ही बड़े सपन्न घराने के थे। इनके पिता होय्सल नारसिंह के यहाँ कटकोपाध्याय थे। इनका नाम शंकर था। ऐसा लगता है कि वह बड़े कवि के रूप में प्रसिद्ध थे। और

"सुकलोबाण" नामक विरुद-भूषित थे। उन्होंने अपने पुत्र के लिए शिक्षक की अच्छी व्यवस्था की थी। जगदेकमल्ल के यहाँ कटकोपाध्याय होकर "अभिनव शर्मवर्म" नामक विरुदभूषित दूसरे नागवर्म कवि जन्न का अध्यापक बना। पिता से प्राप्त कविताशक्ति पुत्र जन्न में अंकुरित हुआ। उनकी कीर्ति फैली। कई स्थानों से "शासन पद्य" (शिलोत्कीर्ण करने के लिखे पद्य) लिखने के लिए इन्हें आह्वान मिला। ऐसे पद्य लिखते-लिखते उनकी कविता शक्ति विकसित होती गयी-सी लगती है। कवि ने अपनेको बहुत सुन्दर बताया है। बड़े प्रतिष्ठित घराने में जन्मे, अच्छे पढ़े-लिखे विद्वान् बने सौन्दर्ययुक्त यौवन प्राप्त तरुण कवि जन्न ने अपने अनुरूप कन्या के साथ विवाह किया था। इनकी बहिन "सूक्ति सुधार्णव" के कर्ता मल्लिकार्जुन से ब्याही गयी थी। इसी मल्लिकार्जुन का ही पुत्र प्रसिद्ध वैयाकरणी केशिराज था। ऐसे सारस्वत वातावरण में जन्न की कविता करने की शक्ति पूर्ण रूप से विकसित हुई प्रतीत होती है। स्वयं उच्च घराने का था, उनके बन्धु-बांधव भी वैसे ही उच्चवंशीय थे; अतः कवि जन्न का नाम राजास्थान तक सहज ही पहुंचा; वह आस्थान कवि बने। सरस्वती की कृपा के साथ लक्ष्मी-कटाक्ष भी प्राप्त हुआ। यह कवि जनार्दन देव अथवा जन्न चोळ वंशोद्धारक नरसिंह बल्लाळ के आस्थान में उठ खड़े हो जाय तो सेनानायक; बैठे तो मन्त्री; कार्यासक्त हो तो कवि—यों जन्न कवि कविचक्रवर्ती बना। उसने अपने पूर्व कविचक्रियों का स्मरण कर बहुत खुशी से उनका गौरव गान किया है। कन्नड के कवि-चक्रवर्तियों में वह (जन्न) भी एक है। "चक्रवर्ती कृष्ण ने आदर के साथ पॉन्न को कविचक्रवर्ती बनाया; चक्रवर्ती तैलप से समादृत होकर रन्न कविचक्रवर्ती बने; और बल्लाळ चक्रवर्ती ने गौरवान्वित कर जन्न को कविचक्रवर्ती बनाया। योग्यता की दृष्टि से पॉन्न और रन्न से जन्न किसी भी तरह कम नहीं।—इतना ही नहीं, रन्न बड़ा व्याकरण पण्डित है, जन्न कवियों में बहुत बड़ा वैयाकरणी है, पॉन्न असहाय कवि है, जन्न असहाय कवि मात्र ही नहीं, बल्कि सुकवि है। उन दोनों कवियों से कुछ अधिक है, जन्न कवि।"—यों कवि जन्न स्वयं अपने विषय में बतलाते हैं।

कवि को इस बात का आत्मप्रत्यय है कि वह असाधारण कविता शक्ति से युक्त है। वे कहते हैं कि—"राजसभा में अखिल कलानिपुण पण्डितों के बीच खड़े होकर सबको जीत सकने की शक्ति रखने वाला चतुर्विध पण्डित (सब तरह से पण्डित) मैं अकेला हूँ। पद, वाक्य और अर्थ-सम्बन्धी दोष एवं अलंकार, रस, भाव, रीति आदि में किसी तरह का आभास मुझ उभय कविचक्रवर्ती की काव्य सभा में प्रवेश पा ही नहीं सकते; स्फटिक की तरह निर्मल और पारदर्शी, कर्पूर की तरह शुभ्र, हरिचन्दन जैसे रसयुक्त, क्षीरसागर की तरह गम्भीर, मोती की तरह आबदार, चाँदिनी की तरह आह्लादक है मेरी वाणी; हरिचन्दन की सुगन्धि की तरह मेरे काव्यबन्ध में प्रयुक्त शब्द रसस्यंदिनी हैं।" और पूछते हैं कि—"लता के पाश में वर्णों (अक्षरों) को जकड़नेवाले कठिन हृदयी गण्य हो सकते हैं?" सब तरह से समृद्ध एवं सुखी व्यक्ति स्वविषय में यों डींग हाँके तो कोई अस्वाभाविक बात नहीं है न? यह कवि के लौकिक जीवन का चित्र है। कवि के जीवन का एक दूसरा भी मुख है। वह जन्म से ही आरम्भ होता है। कवि का जन्म आषाढ़ कृष्ण रेवती नक्षत्र युक्त त्रयोदशी के दिन

सिद्धयोग में हुआ। उनके आराध्यदेव अनन्तनाथ तीर्थंकर का जन्म भी ठीक इसी मंगल मुहूर्त में हुआ था। इनके माता-पिता (शंकर-गंगादेवी) ने बड़े लाड़ से बच्चे का नामकरण किया और अनन्तनाथ नाम रखा। उसी समय से ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता गया त्यों-त्यों उसमें सात्त्विक भाव भी बढ़ते गये। और यह सात्त्विक भाव उनके धर्मगुरु "काणूरगण के चिंतामणी" रामचन्द्रदेव मुनीन्द्र जी के पढ़ाने से पुष्ट हुए होंगे। इनका धर्मानुराग, गंडरादित्य के निवेशन में निर्मित अनन्तनाथ बसदी (अनन्तनाथ-मंदिर) तथा द्वारा समुद्र के पार्श्वनाथ जिनेश्वर मन्दिर के द्वार के बनवाने से ही व्यक्त होता है। कवि जन्न लौकिक एवं पारलौकिक दोनों में आसक्त रहकर इह-पर दोनों को साधने वाले सुकृति हैं।

जन्न कवि ने अपनेको अपनेसे पूर्व कविचक्रियों से उत्कृष्ट जो बताया वह कोई अहंकार की बात नहीं। उनके काव्य का उद्देश्य एवं काव्य—इनके देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि अपने पूर्व कवियों से उत्कृष्ट है। अन्य कवियों ने पंप कवि का अनुसरण करते हुए एक लौकिक काव्य तथा एक धार्मिक काव्य रचा। लौकिक काव्य में अपने आश्रयदाता को ही नायक बनाया। परन्तु जन्न इनसे भिन्न है। कवि ने अपनी रचना को केवल मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि "मानव जीवन के मार्गदर्शी" के रूप में निर्माण किया। अपने काव्य निर्माण के उद्देश्य के विषय में कवि स्वयं कहते हैं—

"कविता शक्ति सुरेन्द्रधेनुवदु पुण्यायत्तमा कायदे
नुवें कैसार्दोऽमा वचस्सुधॆयनन्यर्गित्तु काळ्नॆक्किगू
डुव वॊल्तुय्यलनिन्द्र वंदितननर्हद्देवनं भर्तृ मा
डुवुदातं करॆदातनल्तॆ तळॆयॊल्पालं भवद्वंद्वदा"—

भाव यह है कि —"कविताशक्ति कामधेनु की तरह है। वह पूर्व-पुण्य से ही प्राप्त होती है। कामधेनु अब वश में है तो उसकी वाक्सुधा को जंगली बिलाव को खीर पिलाने जैसा ऐरेगैरे को न पिला कर देवेन्द्र वंदित अर्हन्त देव को ही अर्पण करना चाहिए। वह देव भवद्वन्द्वरूपी घोरारण्य पर अमृतवर्षा कराने वाले हैं।" मानवों की प्रशंसा करने पर धन-कनक आदि के साथ विरुदावली भी मिलेगी न? ठीक है, मिलेगी। परन्तु "देवदेव का वर्णन एक बार करेंगे तो मन-वाक्-काय परिशुद्ध होकर देवेन्द्रत्व को ही प्राप्त कर सकते हैं।"—इस लिए काव्यशक्ति का उपयोग ईश्वर पूजन के लिए अर्पित होना चाहिए—यही कवि जन्न का ध्येय है। ऐसा लगता है कि इन कवि महाशय ने सीधे नहीं तो प्रकारांतर से कवि पंप-रन्न आदि के कृतिकर्म पर अपनी असम्मति दर्शाया हो। यह कवि जन्न भी उन कवियों की तरह "काव्य-कला एवं खड्गकला" में परिणत है। स्वयं कवि "कवि भाललोचन" और "साहित्य रत्नाकर" विरुदांकित है। इतना ही नहीं :—

"चतुरंनीरनुदारनुज्ज्वलयशं सौभाग्य संपन्ननू
र्जित पुण्योदयनी जनार्दनन वक्षोंभोजमं सार्दु सु
स्थितॆं यागिर्दुवरिर्दॆ तां सॊबगॆयादळ् जाणॆयादळ् सर
स्वति सम्मोहितळादळग्गळमॆयादळ् विश्व भूचक्रदॊळ्"

वह कहते हैं :—"चतुर, सुंदर, उदार, उज्ज्वल कीर्ति संपन्न, सौभाग्यशाली,

पुण्यवान् कवि जन्न के मुखारविन्द में आकर स्थित होने के कारण वाग्देवी सरस्वती समस्त भूमण्ड में अत्यन्त सुन्दरी, चतुर मनोहारिणी होकर सबके लिए पूजनीय हुई।"—कवि की ये बातें अहंकारपूर्ण लगने पर भी, बातें (वाक्) अर्हन्त चरित्र के निरूपण में प्रयुक्त होने के कारण गौरवान्वित हैं—ऐसा बोध होने पर इन बातों के विषय में एक समाधानकर उत्तर मिल जाता है।

कवि ने दो प्रमुख कृतियों का निर्माण किया है—"यशोधार चरित" और "अनन्तनाथ पुराण"—क्रमश: ई० सन् १२०९ तथा १२३० में निर्मित हैं। कहा जाता है कि उन्होंने "स्मरतन्त्र" नामक ग्रन्थ भी लिखा है, परन्तु वह उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध ये दोनों ग्रन्थ जैनधर्म-संबंधी धार्मिक कृतियाँ हैं। "अनन्तनाथ पुराण" एक तीर्थंकर का जीवनचरित है। "यशोधर चरित" जीवदयाष्टमी के दिन जैन श्रावक व्रत रखकर दूसरे दिन इसे पढ़ने या सुनने के बाद उपवास तोड़ना चाहिए। जैन श्रावकों की यह जीवदयाष्टमी दुर्गा माता को प्राणि बलि दी जाने वाली दुर्गाष्टमी है। यही दुर्गाष्टमी जैनियों के लिए जीवदयाष्टमी है। इस अष्टमी के दिन श्रावक व्रत रखते हैं और दूसरे दिन यशोधर चरित्र का पाठकर या श्रवण कर व्रत तोड़ते हैं। यह कथा जैनियों के लिए बहुत प्रिय है। इसीलिए संस्कृत, प्राकृत, कन्नड आदि अन्य देशी भाषाओं में यह कथा रचित और प्रचलित है। जन्न कवि ने अपने इस काव्य को वादिराज नामक कवि द्वारा रचित संस्कृत यशोधर चरित के आधार पर कन्नड में प्रस्तुत किया है।

यशोधर चरित्र चार अवतारों (पीढ़ियों) का एक छोटा काव्य है। प्रत्येक आश्वास (अध्याय) के अन्त में मिलने वाले आठ-दस वृत्तों को छोड़कर सम्पूर्ण काव्य में करीब तीन सौ कंद (चार कड़ियों वाला देशी छन्द) पद्य हैं। इस कथा का सारांश यह है—"अभयरुचि नामक एक राजकुमार था। उसने अत्यधिक प्राणि हिंसा करने वाले मारिदत्त को धर्मोपदेश देकर उसे सन्मार्ग में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित किया।"—यही सारी कथा का केन्द्रबिन्दु और सारांश है। हिंसारत मारिदत्त की कथा अहिंसा का उपदेश देने वाली आगे की कथा के लिए बहुत अच्छी पार्श्वभूमि बनी है। मारिदत्त राजपुर का राजा था और "मारि" नामक देवी का भक्त था। चैत्र मास में (वसंत ऋतु में) इस देवी तारी का मेला लगता था जब कि इस देवी को तृप्त करने के लिए अनेक प्राणियों की बलि दी जाती थी। यदि मेले के समय में बलि नहीं दी जाय तो देवी रुष्ट होकर प्रलय ही कर देगी—यह डर था। इसी लिए असंख्य प्राणियों की बलि दी जाती थी। कवि ने इस कथा को चैत्रमास-वर्णन के साथ शुरू किया है। यह चैत्र सब सुख-सन्तोष के लिए आकर है। ऐसा मनोहर समय मारिदत्त के राज्य में कुछ और ही ढंग से नजर आ रहा है। आकाश में उदित अर्धचन्द्र बिंब प्राणियों के सिर पर लगे शूल की तरह लगता है। विकसित अशोक ज्वाला के झूले की तरह दीखता है। कोयल की मधुर ध्वनि बलि पशु के क्रन्दनका-सा लग रहा है। ढाक के पेड़ नीचे गिरे पुष्प अपने लाल रंग के कारण मारी देवी को तृप्त करने के उद्देश्य से छोटे-छोटे टुकड़ों में कटे मांस की तरह लग रहे हैं। "भयंकर मलयानिल कमल वन रूपी अग्निकुण्ड में दण्डवत् करता हुआ इधर आ रहा है"—यों वहां के तोते कह रहे हैं "ऐसी लगती है तोते की वाणी।" यह मारिदत्त के राज्य की प्रकृति

श्री का रूप है। यह प्रकृति व्यापार वास्तविक जीवन की प्रतिकृति है। मारिदत्त के यहां का यह दृश्य हृदय में कंपन पैदा करने वाला है। वहां का वह देवी-मन्दिर भूखे यमराज का रसोई-घर बना हुआ है। वहां प्राणियों के पैर काटने वाले, उनकी आंखों की माला पिरोने वाले, अंतड़ियों का तोरण बांधने वाले, प्राणियों के पैरों का ईंधन बनाकर रक्तान्न पकाने वाले लोग ही सर्वत्र दिखाई दे रहे हैं। वहां मनौती मानने वाले भक्तों की कतारें हैं जिनके हाथों में शूल से लगे पशुकपाल हैं जो पाप रूपी फसल पर से पक्षियों को डराकर भगाने के लिए लगाये हुए बिजूके की तरह लग रहे हैं। भेड़-बकरी और भैंसों की गिनती हो नहीं सकती जिनकी बलि दी जा रही है। इन प्राणियों का क्रन्दन प्रतिध्वनित होकर ऐसा लग रहा है कि सारा वन प्रान्त ही रो रहा है। इन मूक प्राणियों का आर्तनाद सुनकर माता मेदिनी की छाती फट पड़ी है। मन्दिर के चारों ओर के छज्जे पर की दीवार पर बने नरशिर ऐसे लग रहे हैं मानो चंडी स्वयं मांस लोलुप होकर संसार को कई मुखों से एक साथ देख रही हो— कवि जन्न का यह वर्णन एक भयंकर दृश्य उपस्थित करता है। ऐसी भयंकर स्थिति में ऐसे रौद्र सन्निवेश में भैरव, यम और मारीदेवी के वाहन की तरह नंगी तलवार हाथ में लिए हुए राजा मारिदत्त देवी को बलि चढ़ाने के लिए छोटी उमर के मानव शिशु युगल को खोज लाने की आज्ञा अपने चंडकर्म नामक दूत को देता है। उस समय उस नगर के बाहर के एक उपवन में सुदत्ताचार्य नामक एक ऋषि आकर रहने लगे थे। उनके पास अभयरुचि और अभयमति नामक दो भाई-बहन रहते थे। ऋषि ने इन दोनों बच्चों को भिक्षा लाने के लिए भेजा। दोनों बच्चे नगर की तरफ आ रहे थे। राजा के नौकर चण्डकर्म ने इन बच्चों को देखते ही हिरन पर आक्रमण करने वाले भूखे शेर की तरह उन पर झपटा। उन्हें मारीदेवी के मन्दिर की तरफ ले गया। छोटे अबोध बच्चे बिलकुल निडर थे। भाई ने बहन को और बहन ने भाई को समझाया; कहा यह शरीर सब तरह के भय और कष्टों का घर है। इसलिए इस संसार में रहकर सुख की खोज करने का प्रयत्न बालू से तेल निकालने का-सा है। जन्म और मरण इनके लिए साधारण और निश्चित बात थी। देखी जान-बूझी बात थी। इसलिए राजा के इर्द-गिर्द के लोगों के डराने पर भी वे निर्भय होकर रहे। राजा मारिदत्त को देखकर अभयरुचि ने कहा, "हे राजन्, शुद्ध धर्म भावना से राज्य पालन करो।" यह राजा के लिए अभयरुचि का आशीर्वाद था। राजा यह बात सुनकर आश्चर्य से चकित रह गये। देवी के मन्दिर का दर्शन होते ही डर के कारण हृदय-स्पंदन ही बन्द हो जाना चाहिए। ऐसे वातावरण में इन अबोध छोटे बच्चों की बात सुनकर राजा मारिदत्त ने अपने-आप से कहा—"नंगी तलवार लेकर खड़े मुझसे या मृत्यु देवी मारी से भी न डरकर मुझे मंगलमय उपदेश देने वाले इन बच्चों का महत्त्व बहुत बड़ा है। ये बच्चे सचमुच धीर पुरुष हैं।" इस कारण से इन्हें बलि चढ़ाने के पहले इनके वंश-गोत्र आदि के बारे में पूछा। पहले तो बच्चों ने कहा नहीं। बदले में बच्चों ने यह कहा—"हे राजन्, धर्म तुमसे बहुत दूर है। यह सब जानने का कोई प्रयोजन नहीं। तुम्हें जो अच्छा लगे करो।" और बताया—"हे राजन्! सद्गुणियों का आभूषण सद्गुण है। यह सद्गुण रूपी आभूषण पापियों के लिए अच्छा कब लगेगा? तेल लगे दर्पण में प्रतिबिम्ब कैसे दीख सकता है? बताओ तो?" अभयरुचि

कुमार के यह कहते ही मारिदत्त का पाप समूह दूर हो गया। नंगी तलवार वाले हाथ जुड़ गये। सपरिवार राजा ने सिर झुकाकर बालक को प्रणाम किया।

इसे देखकर कुमार प्रसन्न हुआ और राजा से बोला—"हे राजेन्द्र! जैसे धीरज के साथ तुमने प्रश्न किया वैसे अब मेरी बात सुनने के लिए भी तैयार हो जाओ। जो कथानक मैं तुम्हें अब सुनाऊँगा वह जयलक्ष्मी और मोक्षलक्ष्मी दोनों का अनुग्रह एक साथ तुमपर करायेगा।" यों कहकर अपनी कथा सुनाना शुरू कर देते हैं। आगे 'अहिंसा' के बारे में कही जानेवाली कथानक के लिए मारिदत्त की यह कथा बहुत अच्छी पार्श्वभूमि तैयार करती है। यह अहिंसा की कथा अभयरुचि एवं अभयमति के जन्मांतरों की कथा है।

उज्जयिनी के यशोधराज-चन्द्रमती रानी के गर्भ से कामदेव की तरह सुन्दर राजकुमार का जन्म हुआ। माता-पिता की आँखों का तारा, प्रजाजन का प्यारा बनकर वह कुमार बाल्य और किशोरावस्था को पारकर यौवन की देहरी पर पहुँचा। सुन्दर, अच्छा, पढ़ा-लिखा, योग्य और स्वस्थ राजकुमार का विवाह अमृतमति नामक सुन्दर गुणवती और योग्य कुमारी के साथ सम्पन्न हुआ। कुछ समय के बाद वृद्ध पिता तप करने के लिए तपोवन गये। यह राजकुमार यशोधर राज गद्दी पर बैठा। यह राज्य उनकी भुजाओं पर कस्तूरी-तिलक-सा शोभित था। वह अमृतमती के मुख रूपी दर्पण में देखकर अपने यौवन-रूपी आभरण को ठीक कर लेता था। कवि ने इन दोनों के दाम्पत्य जीवन को बहुत ही सुन्दर ढंग से संक्षेप में वर्णन किया है। यह बहुत ही मनोहर वर्णन है। पढ़ते ही बनता है। ऐसी सुन्दर जोड़ी के सुखी दाम्पत्य जीवन का यह कैसा दुरन्त! एक दिन यह प्रेमी युगल बाहुपाश में आबद्ध हो कर अपने को भूलकर लेट रहा था। तब बगल की गजशाला से मधुर संगीत सुन पड़ा। यह गान निद्रा में बाधक हुआ। रानी जाग पड़ी। गाना सुनकर रानी ने गायक को अपना मान अर्पित किया। क्रमशः गायक से मिलने और उनके साथ रहने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। प्रातःकाल होते ही अपनी एक दूती को गायक के पास भेजा। वह दूती उस गायक के पास गयी और देख आयी। वह रानी के पास आकर गायक के रूप का यों आँखों देखा वर्णन करती है—'बड़ा सिर, दबा हुआ माथा, धँसी आँखें, दबी नाक, फेनिल-मुख-विवर, लपेटे हुए कान, तने हुए जबड़े, एकदम धड़ पर बैठा गला, धँसी झुकी छाती, कूबड़ निकला पीठ, बढ़ी हुई तोंद, धँसके हुए जघन, और सड़े हुए काले चमड़े के गढ़े को खोलने पर निकलने वाली दुर्गन्ध की-सी दुर्गन्ध उसके मुंह से निकलती है, बूढ़े भालू के बूढ़े चमड़े की तरह दिखनेवाला उसके शरीर का रंग, साड़ के फल की तरह की मोटी-मोटी गाँठ उनके शरीर पर, जड़-सूखे-टेढ़े-मेढ़े ठूंठ की तरह लगने वाली आकृति, कूबड़ निकला हुआ, टूटी कमरवाले गधे के पैर जैसे पैर यह है उस गायक का रूप। इस तरह के व्यक्ति पर दिव्य सुन्दरी रानी कामदेव की तरह सुन्दर पति के रहते हुए कहीं मोहित हो सकती है? परन्तु रानी के सोचने की रीति ने अपमार्ग पकड़ा। उनकी विचार-सरणी ने दूसरा ही रास्ता चुना। उन्होंने दासी का यह सारा वर्णन सुना और कहा—"अरी भोली! सुन, प्रेम जिस पर हो वह कुरूप हो भी तो क्या?" इतना ही नहीं आगे और कहती है—"प्रेम हो जाने पर रूप की चिन्ता ही क्यों करें? जब कार्य प्रत्यक्ष हो तो कारण की खोज क्यों किया

जाय ? अब यही अष्टावक्र व्यक्ति मेरा इष्टदेव, कामदेव, इन्द्र, चन्द्र, सब कुछ है।" फिर दासी को उत्कोच देकर रात-दिन उसी अष्टावक्र के साथ आराम से रहने लगी। नीम पर मोहित कौवे के लिए आम कभी अच्छा लगता है ? राजा के मन में रानी के प्रति उदासीनता उत्पन्न हो गयी। रानी के इस कुकृत्य को जानकर राजा एक रात को नींद का बहाना करके लेट रहे, और रानी अपने पति को निद्रामग्न समझकर जार-पति के पास निकली। राजा धीरे से उसके पीछे-पीछे चले। वहाँ जाने पर राजा देखते क्या हैं ? देरी से आनेवाली रानी पर क्रुद्ध होकर उस अष्टावक्र ने उसके हाथ से गन्ध-पुष्प-तांबूल आदि, जो कुछ वह लायी थी, को छीनकर फेंक दिया और उसे ऐसा मारने लगा जैसे छिलके को कूट-कूटकर रेशा निकाला जाता है। रानी के सारे शरीर पर सूजन आ गयी। मार खाकर जैसे सांप लोटता है वैसे रानी उस कुरूप अष्टावक्र के पैरों पर लोटती हुई क्षमा माँगने लगी तथा देरी के कारण बननेवाले राजा को कोसने लगी। और कहने लगी—"हे हस्तिप्रिय ! तुम्हारी आवाज कर्ण-मधुर है। तुम्हारा रूप आँखों के लिए सुन्दर है, यदि तुम मुझे छोड़ दोगे तो मैं मर जाऊँगी। इस दुनियाँ में तेरे सिवाय अन्य सब पुरुष मेरे लिए भाई के समान हैं"—यों कहकर उसे विश्वास दिलाकर समाधान किया। इसे देखने वाले राजा यशोधर को इतना क्रोध आया कि दोनों को उसी क्षण वहीं टुकड़े-टुकड़े कर डालें। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। हाथी हाथी पर ही आक्रमण करेगा न कि चिउँटी पर। रणधौत असिधारा से कदर्थ कृष्णकाय कुरूप को मारकर अपनी तलवार को कलंकित करना राजा यशोधर को अच्छा नहीं लगा। उसी हालत में उन कीड़ों को वहीं छोड़कर राजमहल को लौटा।

राजकुमार यशोधर अपनी पत्नी के इस बुरे व्यवहार से दुःखी होकर अपनी माता के पास गया। सूखे सरोवर की तरह की कान्तिहत पुत्र के मुख को देखकर माता दुःखी हुयीं और उसकी इस हालत का कारण जानने के लिए उन्होंने पूछा—"बेटा, तुम इतने दुःखी क्यों हो ?" बेचारा क्या जवाब दे। कहा—"माँ ! सपने में कमल पुष्पों के सरोवर में खेलने वाली राजहंसी को घोड़ों के खुरों से गंदला बने पोखरे में खेलती हुई देखा।" माता ने बेटे के इस इशारे को नहीं समझा। बेटे की इन बातों का वाच्यार्थ मात्र ग्रहण किया। ऐसा सपना बुरा होता है। इसलिए इस सपने के दोष निवारण करने के लिए मारीदेवी को बकरी की बलि देने की बात माता ने कही। राजा ने इसे स्वीकार नहीं किया। माता का वात्सल्य अमंगल-दायक सपने की बात सुनकर चुप कैसे रह सकता है ? बेटे को बहुत समझा-बुझाकर आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाकर अमंगल निवारण के लिए देवी से प्रार्थना करने की बात पर राजी किया। एक सुन्दर मुर्गा आटे का बनकर आया। उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर एक भूत ने उसमें प्रवेश किया। इस घटना को जाने बिना माँ का आशीर्वाद पाकर मारी देवी को बेटे ने उस मुर्गे की बलि चढ़ायी। तुरन्त उस कटने वाले आटे के मुर्गे ने बांग दिया और नीचे गिरा। माँ-बेटे दोनों इसे देखकर चकित हो गये। राजा ने बेटे को अभिषिक्त करके तपस्या करने के लिए जाने की तैयारी की। परन्तु रानी अमृतमति ने ऐसा करने नहीं दिया। माता ने बेटे को भोजन के लिए निमन्त्रित किया और उन दोनों को विषमिला आहार देकर मार डाला। ये दोनों मरकर सात

बार अन्धे और असहनीय कष्ट भोगकर अन्त में अभयरुचि और अभयमति होकर बने। यों आटे के मुर्गे की बलि देने के कारण किस तरह की कष्ट-परम्परामें फँसे और क्या-क्या भुगता—यह सारी कथा सुनकर मारिदत्त ने अपने राज्य में प्राणिहिंसा बन्द कर दी, और स्वयं धार्मिक बने।

इस कहानी के द्वारा कवि ने मानव जगत् के लिए एक दिव्य संदेश दिया है। "विधि विलास भी मन्मथ माया का साथ दे तो वह मानव का अन्त ही कर देता है।"—यही वह संदेश है। अनंग-माया से होने वाले भयंकर परिणामों का परिणामकारी चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। इस कथानक को कवि ने वादिराज के संस्कृत ग्रन्थ से उद्धृत किया है, तो भी यह उसका अनुवाद नहीं। जन्न कवि के पद्य पुष्ट भावों से छलक रहे हैं। शैली सरल, सुलभ एवं ललित है। पात्र सजीव हैं। अमृतमती की पात्र-सृष्टि कुशल कला परिणतमति से ही संभव है। कवि जन्न की कुशल कला परिणति का अच्छा उदाहरण है। इस कृति में दुरंत प्रणय का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। वह भाग्य के हाथ की कठपुतली है। कामवासना के कारण दुर्भाग्य के भयंकर प्रवाह में बहते हुए आवर्त में फँसकर तिनके की तरह निस्सहाय हो गयी है। उसकी दशा देखकर हमें पश्चात्ताप होता है, हम आह भरते हैं। भाग्य की प्रबल शक्ति हममें कंपन पैदा कर देती है। यशोधर के चित्तस्थैर्य और मनोनिग्रह देखकर हम चकित रह जाते हैं। सन्निवेश-रचना-शक्ति एवं वर्णना-सामर्थ्य जन्न का बहुत उन्नत स्तर का है। उनका प्रकृति-वर्णन बहुत सुन्दर है। यशोधर मरने के बाद मयूर होकर जन्म लेता है। इस मयूर का वर्णन कवि जन्न की वाणी में ही सुनिये—

"नवरत्नदपंजर दॉळ्
दिविजशरासनद मरियनिरिसिदवोळॅ
त्तुव सोगॅय सुत्तिनॉळा
डुव केकिय भंगि लोकमं सोलिसुगुं।"

भाव यह है कि—"नवरत्न के पिंजड़े में मन्मथ-बाण के बच्चे को रखा हो—ऐसा लगता है इस मयूर का पंख फैलाकर नाचना। नाचने की भंगिमा ऐसी है मानो वह संसार को ही हरा देगी।"—यह वर्णन सुन्दर और मनोहर है।

कवि की दूसरी कृति "अनन्तनाथ पुराण" है। इसकी रचना "यशोधर चरित्र" के लिखने के बीस वर्ष बाद हुई है। इस अवधि में कवि की आयु के साथ-साथ बुद्धि परिणत और मन पक्वावस्था तक पहुंचा है। उनकी धर्मासक्ति भी स्थिर बनी है। आत्मोद्धार की दृष्टि से जिन चरित्र को लिखकर कृतार्थ बनने का प्रयत्न करने चले हैं। अन्य "जिन" चरित्र-लेखकों की तरह जन्न कवि के लिए भी गुणभद्र का "उत्तर-पुराण" ही अपने काव्य की कथा का मूल है। चावुंडराय के "त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित" को भी उन्होंने पढ़ा होगा। कवि ने चौदहवें तीर्थंकर अनंतनाथ के जीवन चरित्र को अपने काव्य की वस्तु बनाई है। विषय धार्मिक है। अतः अपनी कथा के निर्माण में कवि को निरंकुश होना संभव नहीं है। निर्दिष्ट चौखट के अन्दर अपनी स्वतन्त्रता को सीमित रखना पड़ा है। अन्य तीर्थंकरों के जीवन चरित की तरह "गर्भावतरण, जन्माभिषवण, परिनिष्क्रमण, केवलज्ञान, परिनिर्वाण"—इन्हीं पंचकल्याण के छप्पर पर अनंतनाथ जिन के जीवन-चरित को फैलाना है। इसमें जैन

तत्त्व निरूपण, निर्वाण साधक व्रत-तप आदि का भी समावेश होना अनिवार्य है। केवल इतना हो तो अनंतनाथ-पुराण सिर्फ जैन धर्म ग्रंथ ही हो सकता था। परन्तु जन्न कवि ने, जिस तरह आदि कवि पंप ने धर्म और काव्य धर्म दोनों को समन्वित कर अपने काव्य का निर्माण किया, उसी तरह रचकर अपने काव्य को लोगों के लिए आदर का पात्र बनाया है। इसमें कथित जैन मत तत्त्व जिनमतानुयायियों के लिए आकर्षक है तो अनंतजिन का बाल्य-जीवन, बाललीला, यौवन-विलास, विवाह, वैराग्य, तप इत्यादि मानव जीवन के मूल्य बनकर सबको तृप्त करने वाले हैं। पूर्व कवियों की कृतियों का अनुसरण करने पर भी अद्भुत प्रतिभा वाले जन्न कवि ने अनेक नवीन प्रसंगों को कल्पित करके अपनी कृति को गौरवान्वित बनाया है।

"अनंतनाथ पुराण" चौदह आश्वासों का बृहत्काय चंपू ग्रन्थ है और इसमें एक हजार चार सौ पद्य हैं। कवि ने बताया है कि उन्होंने अपने इस महाकाव्य की "सुप्रतिष्ठा" शक संवत् ११५२ चैत्र सुदी दशमी के दिन दोरसमुद्र के पार्श्व-जिनेश्वर के द्वार के सामने की। इस तरह की अन्य जैन-पुराण-कथाओं की तरह इसमें भी अनंत तीर्थंकर की भवावलियों एवं पंच कल्याणों का सांप्रदायिक वर्णन है। इसकी शैली भी संस्कृत भूयिष्ठ होकर प्रौढ़ है। 'यशोधर चरित" को लिखने वाले कवि की सरल-सहज शैली को देखने के बाद "अनंतनाथ पुराण" को देखकर संदेह में पड़ जाएंगे कि इसके कर्ता भी वही है क्या ?—इतना प्रौढ़ है यह "अनंतनाथ पुराण"। अगर कवि चाहते तो इसे भी सरल, सुंदर तथा ललित शैली में लिख सकते थे। 'अनंतनाथ-पुराण' में कुछ वर्णनाभाग दिखाई पड़ते हैं। संभवतः कवि ने इस काव्य को "महाकाव्य" बनाने के ही लिए अपने संपूर्ण पांडित्य को उड़ेल दिया है। इसके फल-स्वरूप यह काव्य क्लिष्ट ही नहीं अष्टादश वर्णनों का प्रभाव बढ़ कर कहीं-कहीं औचित्य भंग हो गया है। तीर्थंकर बनने वाले बेचारे को वेश्या-वाटिका में चंद्रिका-विहार करने जाना पड़ता है। यह कैसा रसाभास! संप्रदायशरण होने पर कितना ही बड़ा कवि क्यों न हो, कहीं न कहीं टक्कर खाना ही पड़ता है—इसका एक बहुत बड़ा उदाहरण है, यह कृति।

जन्न कवि ने "अनंतनाथ-पुराण" को "जीवन मार्ग दर्शक शास्त्र" कहकर लिखना शुरू किया। उसमें "शृंगार रस" का निरूपण इतना अधिक न होकर एक सीमा के अंदर होता तो अच्छा था। क्या करें, कवि को "शृंगार रस" अत्यन्त प्रिय है। उन्होंने अपने को "सौन्दर्य के लिए अभिनव कामदेव" कहकर बड़े गर्व के साथ बताया है। और बताते हैं कि बालिकाओं, युवतियों और भद्रमहिलाओं-सबसे उन्होंने प्रेम पाया, सबके प्रेम का खिलौना बनकर बढ़े और बहुत विलासपूर्ण जीवन है उनका, ऐसा रसिक जीवन बिताने वाले रसकवि जब काव्य कर्म में हाथ लगावें तो शृंगार-रस निरूपण में अपनी प्रतिभा का विनियोग करें—यह बात सहज ही है। बेचारे कवि भी क्या करें ? कन्नड साहित्य का वीर-युग समाप्त हो गया था। "स्त्री रूप ही रूप है, शृंगार रस ही रस है"—यह नेमिचन्द्र का एक सूत्रप्राय वाक्य है। यह लोकरुचि का प्रतिबिम्ब मात्र है। कवि जन्न भी लोकरुचि की पहचान कर ही कार्यरंग में उतरा है। वह बताते हैं—"माली फूलों की माला बनावें और उसे धारण कर उसके आनन्द का अनुभव करने वाले रसिक अगर न हों तो माला कुम्हला ही तो जायगी ?"

जनमन को प्रिय लगे, ऐसा काव्य लिखना चाहिए और लोगों के लिए शृंगार प्रिय है; इसलिए अपनी कृति में यथेच्छा शृंगार रस का निरूपण होना चाहिए। और ऐसा ही हुआ है। वह कहते हैं कि "भक्ति नित्तंबिनी" की प्रेरणा से ही मैं भक्तिपूर्वक काव्यकर्म कर रहा हूँ। कवि का सौन्दर्यवर्णन भी बहुत मनोज्ञ है। एक उदाहरण सुनिये; कोसलराज की महिषी जयश्यामा अनुपम सुंदरी है। हाथ के छू जाने पर सुंदरता कलंकित हो जाएगी—इस डर से कामदेव ने अनंग होकर अपने मन से ही उस रानी का निर्माण किया है—उस सुंदरी का वर्णन कवि की ही वाणी में यों है—

"अलरॅम्ब शशिबिंबदॊळ् मसॆदवॊळ् कूर्पिगउर्पाद क
ण्मलर्गळ् दर्पणरत्नमं लिरुळमिंचिदॊप्पमिट्टंतिर
उवलिपास्यं पॊसमुत्तनाय्द मदिनॊळ् तॊय्दन्तॆ नॆर्पट्ट नि
र्मलदंतच्छवि बेडिदर्ग वरवीवन्तिर्पुवा कांतॆया "—यानी

"पुष्पचाप को चन्द्रबिम्ब पर ही तेज किया हो—ऐसा दीप्तियुक्त कमल के समान नेत्र, हीरे के दर्पण पर विद्युत् का ओप लगाया हो—ऐसा लगने वाला प्रभापूर्ण मुखमंडल, चुने हुए नव और अमृत में सने मौक्तिक की पंक्ति की तरह लगने वाली दन्तपंक्ति—यह माँगने वालों को जो भी वर माँगे दे देने वाले हैं—ऐसा सुंदर रूप उस सुंदरी रानी जयश्यामा का था।"—इस तरह के वर्णन जन्न कवि की कृति में जितना चाहे मिल सकते हैं। अन्य कवियों में ऐसे वर्णन बिरले ही मिलते हैं। जन्न कवि के काव्य की वृहत् काया में पामर स्त्रियाँ, प्रपाप्रमदाएँ, मालिनें, गणिकाएँ, अप्सरियाँ—आदि ने बहुत बड़ी जगह घेर रखी है। जन्न के पश्चात् के अनेक कवियों के लिए समझ में न आने वाला, कभी कम न पड़ने वाला खजाना है।

तीर्थंकरों के जीवन-चरित लिखने वाले सभी लेखकों में उस तीर्थंकर के समय के बलदेव-वासुदेवों की कथा का वर्णन करना एक प्रथा बन गयी है। इस संप्रदाय का अनुसरण करके जन्न ने भी अनंतनाथ के समसामयिक चौथे बलदेव वासुदेवों की कथा "अनंतनाथ पुराण" के अन्त में दिया है। इस कथा में जिस वासुदेव का पूर्वजन्म वृत्तांत वर्णित है, वह काव्य-दृष्टि से मुख्य कथा से भी अधिक मनोहर है। जैसे "यशोधर चरित" में कामदेव की माया के साथ भाग्य भी मिलकर सुंदरी अमृतमती दुर्मार्ग में प्रवृत्त हुई और दुरंत का कारण बनी वैसे ही यहाँ पुरुष परस्त्री कामी होकर दुरंत का कारण बना हुआ है। वासुदेव पूर्वजन्म में सुषेण नाम से पोदनपुर का राजा बना हुआ था। दिव्य सुंदरी सुनंदादेवी उसकी पट्टमहिषी थी। राजा के प्राणप्रिय मित्र चंडशासन मित्र से मिलने के बहाने आकर उनकी पत्नी पर मोहित हो उसका अपहरण कर भाग जाता है। इसके फलस्वरूप दोनों में घोर युद्ध होता है। उस युद्ध के बीच में चंडशासन सुनंदादेवी को अपने वश में करने के लिए सुषेण की झूठी मरणवार्ता सुनाकर रक्तपूरित माया-सिर को उसके सामने ला रखता है। इसे देखकर देवी सुनंदा सच मानकर स्वयं भी मर जाती है। उस सौन्दर्य प्रतिमा से अलग होकर जीवित न रह सकने के कारण उसके मृत कलेवर के साथ सहगमन करता है। यह वृत्तांत सुनकर सुषेण विरक्त होकर तप करने चला जाता है। वही दूसरे जन्म में चौथे वासुदेव के रूप में पैदा होकर मधु-कैटभ के नाम से राक्षस

होकर अपने चंडशासन को मार डालता है । इस वृत्तांत में वसुषेण की मैत्री, चंडशासन का मित्रद्रोह, सुनंदा का पातिव्रत्य बहुत ही हृदयंगम रीति से वर्णित है ।

महाराजा सुषेण के रानीवास में रंभा, उर्वशी, मेनका, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं के सौन्दर्य को भी मात कर सकने वाली पांच सौ सुंदरियाँ थीं । उनमें बड़ी और परम सुंदरी थी सुनंदा । उनके मंदहास रूपी चाँदनी में, उनके लावण्य-सरोवर में, उनके यौवन रूपी पुष्पगुच्छ में राजा की आँखें भ्रमर बनकर, मछली बनकर, चकोर बनकर आनन्द पाती थीं । राजा के अनंत राज्य-वैभव के लिए वह शिरोमणि जैसे रही । महाराजा वसुषेण अपने बाहुपाश में जयलक्ष्मी की तरह सोई हुई सुनंदा को और अपनी बाहुओं को देखकर खुश होता है, मन को अत्यन्त प्रिय लगने वाली प्रेयसी का मंदहास देख-देख कर उस सौन्दर्य सागर में डूबता-उतरता है । भाग्यलक्ष्मी के गले में झूलने वाली मौक्तिकमाला में अपनी विशाल छाती को और सुनन्दा के चन्द्रमा सदृश रत्नजटित दर्पण रूपी मुखमण्डल में अपने को देख-देखकर मुग्ध होता है । उनकी विजय परंपरा और वह महान् सौभाग्य, ये दोनों इस सौन्दर्य की मूर्ति सुनंदा की रूपमाधुरी से धन्य हो गये हैं ।

एक दिन राजा वसुषेण के बाल्यमित्र मकरग्राहपुरवराधीश्वर चंडशासन अपने मित्र को देखने के लिए आया । मित्र को आया देखकर वसुषेण बहुत खुश हुआ । तरह-तरह के आनंद विहार में समय व्यतीत करते हुए मित्र के साथ कुछ समय तक रहने की इच्छा से उन्हें अपने यहाँ रोक रखा । इस अवधि में मदनदेव की तलवार-सी लगने वाली सुनंदा के सौंदर्य पर वह मुग्ध हो गया । उन्होंने सुदर्शन नामक एक दूसरे मित्र से अपनी हालत बतायी कि "हे मित्र ! मुझे ऐसी बात अपने मुँह से नहीं कहनी चाहिए, मगर कहे बिना रहना भी सम्भव नहीं । मेरा यह द्रोही मन जिस प्रदेश में प्रविष्ट हुआ है उसे तुम्हें बताये देता हूँ । छिपाऊंगा नहीं । मेरे आत्मीय इस मित्र सुषेण की पत्नी सुनन्दा के सौन्दर्य ने मुझे सब तरह से पराजित किया है । इस हृत्शल्य (दिल की टीस) के लिए एक ही दवा है और वह है "रमणी लोचन चुंबन" । उस सुंदरी का कृपाकटाक्ष चुंबक है । वह पति के साथ हैं । वह जैसी दशा में है वैसे ही उसे पाना कठिन है । उस सुंदरी की करधनी बनकर नितंब का, हार बनकर कुच प्रदेश का, आखिर साड़ी की तह बनकर जघन प्रदेश का—किसी भी तरह क्यों न हो स्पर्श, संभोग-सुख यदि प्राप्त हो जाय"—यों अपने मानसिक उद्वेग को खुलकर बताया । यह सब सुनकर मित्र ने उसे यह कह कर समाधान किया --"दौड़ने वाले मन पर कोई अंकुश नहीं और देखने वाली आँखों के लिए कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं ।"—और एक झूठी कहानी सुनाकर विश्वास दिलाया कि सुनंदा के मन में उनके प्रति प्रेम अंकुरित हुआ है । इस तरह कामवासना रूपी विकार को उकसाकर भड़काया । इसके फलस्वरूप मृगया-विहार करने के लिए गये हुए पति एवं उनके मित्र दोनों के लिए भोजन लेकर जाने वाली सुनन्दा को चंडशासन ने बीच रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिया और अपने नगर की तरफ रवाना हुआ । दुष्ट चंडशासन ने ऐसा नीच कर्म, मित्र द्रोह किया । अचानक हुई इस दुर्घटना के कारण सुनंदा चकित और भीत हुई । रोती हुई मिन्नत की; कठोर वाणी से निंदा भी की; निर्जन गृह में रखे घृतपात्र को उठा ले [illegible] कह कर उसे दुत्कारा ।

पूछा—परस्त्री को चोर की तरह उठा ले जाना वीरों का धर्म है ? इस हालत में वह रुदन ध्वनि सुनकर उनकी मदद करने के लिए आने वाले सुषेण का सामंत सिंहकूट चंडशासन की तलवार की आहुति बना। इसके बाद चंडशासन अपने रथ को वायु-वेग से दौड़ाता हुआ सुनंदा के साथ अपने नगर में पहुंचा।

इधर सुनंदा के इस अपहरण का वृत्तांत सुनकर सुषेण बहुत दुखी हुआ, न खा सका न ही अपने घर लौट सका। प्रियतमा के बिना निर्जीव शरीर कैसे खा सकेगा ? पत्नी का अपहरण करने वाले शत्रु को अपनी तलवार से मारकर उसका खून तलवार को पिलाकर तृप्त किये बिना वह कैसे खा सकता है ? यों सोच कर वहीं से सेना समेत चंडशासन के नगर पर आक्रमण करने निकला। मकरग्राहपुर पर हमला हुआ। दोनों तरफ के सैनिक एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे। घोर युद्ध हुआ। उस समय बंदिनी सुनंदा की दशा, वसुषेण राजा के राजमहल रूपी सरोवर में खिलने वाले कमल पर मस्त हाथी के द्वारा उखाड़ फेंके हुए बाल मृणाल की-सी हो गयी थी। चण्डशासन ऐसी स्थिति में रहने वाली सुनंदा के पास आकर बहुत विनीत भाव से कहने लगा—"हे कमलनेत्री ! तुम्हारी सम्मति के बिना उत्सुकता के कारण मैं तुम्हें उठा लाया। मुझे क्षमा करो; कामी अन्धा होता है। मैं तुम्हारा दास हूँ; मेरा रानीवास और नौकर-चाकर, समस्त राज्य—इन सबकी मालकिन बन कर (तुम) रहो।"—चण्डशासन की ऐसी बातें सुनकर रानी सुनंदा क्रोध से जलती हुई बोली—"यद्यपि मैं तुम्हारी बन्दिनी हूँ सही, परन्तु अनाथ नहीं हूँ। तुम्हारे भोग-भाग्यों को मैं तुच्छ समझती हूँ। मैं तुम्हारे भोग-भाग्य से कई गुना अधिक भोग-भाग्य का अनुभव कर चुकी हूँ, इससे अधिक भाग्य मेरे पास है। इस तरह की लालच दिखाने वाले जार नरपशु को धिक्कारती हूँ। जब कल प्रातः तुम्हारा कटा सिर मेरे सामने प्रदर्शित होगा तब जो सत्कार मेरा करना चाहोगे करो। कमल दिनपति सूर्य के सामने उसके बराबर विकसित हो खड़ा होगा; क्या कभी कलंकी चन्द्रमा के सामने खिलेगा ?—मूर्ख ! सुनंदादेवी की क्रोधभरी और तिरस्कारपूर्ण बातें सुनकर भी वह मित्रद्रोही जाराग्रणी चंडशासन कुछ भी क्रोध न दिखाकर उनसे यह कहा, "खुद समाप्त होकर अच्छा फल देने वाला केला (रंभावृक्ष) न बनो।" सुनंदादेवी ने भी ठीक ऐसा ही उत्तर दिया, कहा—"आम्रशाखा पर नाचने वाली कोयल गोंद की-सी चिपचिपाहट वाली नीम की डाली पर बैठेगी ?" और कहा—"अरे मूर्ख ! तुमने क्या समझ रखा है ? मेरा भुजरज, वीरों की तलवार को और नाई के उस्तरे को—दोनों को एक-सा मानकर सान धरने के लिए नहीं है।" (अर्थात् उस जार चंडशासन को नाई और उसकी तलवार को उस्तरा कहकर अप-मानित किया)।—यों उस द्रोही नीच की कटु आलोचना की। इस तरह की कड़वी आलोचना सुनकर चंडशासन बहुत दुखी हुआ। फिर भी वह उससे अलग होना नहीं चाहता था। उसने कहा—"हे कमलनेत्री ! मैं तुम्हें तो छोड़ नहीं सकता। तुम मर भी जाओ तो मैं तुम्हारे साथ मरूँगा, मगर तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूंगा। तुम मुझसे प्रेम करो या न करो, मुझे उसकी परवाह नहीं। मैंने तो एकाग्र भाव से तुमसे प्रेम किया है। इसलिए तुम्हारे सिवाय दूसरे किसी से रति-सुख की कल्पना तक मैं नहीं कर सकता। बंदिनी बनकर ही सही, तुम मेरे घर में हो, यही मेरे लिए पर्याप्त है।

अब आगे युद्ध में चाहे जो भी हो जाय, उसकी मुझे जरा भी परवाह नहीं—इतना कह-कर वह चंडशासन चला गया। मगर जब तक सुनंदा उसकी अपनी नहीं बने तब तक उसे शांति कहाँ ? उसके मन में एक भ्रम बैठा था कि जब तक उसका पति जीवित रहेगा तब तक वह (इस चंडशासन) मेरी वशवर्तिनी नहीं होगी। इस लिए उसने वसुषेण का-सा आकार वाला एक माया सिर मंगवाया और सुनंदा के सामने फेंकवा-कर कहा—"तुम बहुत हठपूर्वक कहती हो कि वसुषेण ही मेरा पति है, उसके सिवाय अन्य किसी का स्मरण भी नहीं करूंगी। अब देखो यह तेरे पति का सिर है जिससे खून बह रहा है, तुम जो भी उपचार अपने पति के लिए करना चाहती हो वह सब इसे करो।" इस हालत को देखकर सदा अपने हृदय में पति का ध्यान करने वाली सुनंदा बन्द आँखों से पतिदेव का ध्यान करती हुई, हाथ जोड़कर वैसे ही बेहोश हो लुढ़क पड़ी, दुर्भर दुःख को सहन न कर सकने के कारण उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

इस घटना को देखकर चंडशासन बहुत दुखी हुआ और बेहोश होकर गिर पड़ा। दुख के कारण अपने को कोसता हुआ विरहाग्नि में तप्त चंडशासन सुनन्दा के उस मृत कलेवर को देखकर कहने लगा—"हे देवी ! मुझ पर कुपित हो मौन रहकर मेरे मन की परीक्षा क्यों ले रही हो ? मृत्यु के साथ ऐसा खेल कोई खेल सकता है ? हे कमल-नेत्री ! अगले जन्म में ही सही, तुमसे मिले बिना नहीं रहूँगा; आज तुम्हारे अंग से अंग मिलाकर धुएँ के महल में ज्वाला के कोंपलों की शय्या पर लेटूंगा।" यों कहकर जैसे पतिव्रता स्त्री पति के साथ सहगमन करती है। वैसे चंडशासन ने सुनन्दा के साथ सहगमन किया। किसी जमाने में इस सहगमन की प्रथा हमारे यहाँ रही। परन्तु एक पुरुष के अपनी प्रेमिका के साथ सहगमन करने की यह कल्पना केवल जन्न कवि के कृति-साम्राज्य में ही मिलती है।

जन्न कवि के दोनों काव्यों में (यशोधर चरित और अनंतनाथ पुराण) की नायिकाओं (अमृतमती और सुनन्दादेवी) को ही लेकर विचार करेंगे तो दोनों में जमीन-आसमान का फरक है। अमृतमति संगीत सुनते ही अष्टवंक पर मोहित होकर तन-मन अर्पण कर देती है। यह सही है कि संगीत में वशीकरण शक्ति है। मगर अष्टवंक जैसे भयंकर और कुरूप व्यक्ति का वर्णन सुनते ही उसके प्रति असह्य भावना का बहुत बड़े परिमाण में उत्पन्न होना बिलकुल सहज बात है। उसके बदले अमृतमती के मन में एक दूसरे ही ढंग का विचार उठा; केवल एक संगीत मात्र को सुनकर मुग्ध हो गयी, अन्य बातों के लिए उसके विचार में कोई स्थान ही नहीं रहा। यों वह अष्टवंक की बनी। काम-देव जैसे सुन्दर पति को छोड़कर भयंकर कुरूप और दुर्गन्धपूर्ण सड़ाइंध अष्टवंक को देखकर भी उसके प्रति अनुरक्त हुई। सौन्दर्य का उपयोग और उपभोग कर सकने की योग्यता तक न रखने वाले अरसिक द्वारा मार खाकर भी उसके प्रति अनुरक्ति के कारण उसी दुर्गन्धपूर्ण कीचड़ में लुढ़कती रही कीड़े की तरह। यह कितना अस्वाभाविक है ! वह स्वयं अधर्म के मार्ग पर चली, खुद भी कहीं की न रही और अमृत के समान पवित्र चरित्र सुन्दर पति के साथ अत्युत्तम गुणवती प्रेममयी सास को भी खो बैठी। अष्टवंक के संग के कारण रोगग्रस्त हुई, सारे शरीर में कीड़े पड़े, पीब बहने लगा, सड़-गलकर बुरी दशा को पहुँची, तब भी उसका मन शुद्ध नहीं बना।

ऐसे नारकीय जीवन बिताकर अन्त में मरकर नरक में गिरी। सुनन्दा ने परपुरुष की तरफ स्वप्न में भी आँख उठाकर नहीं देखा। उसे चुराकर ले भागने वाले नारकीय चंडशासन के विरुद्ध उठ खड़ी हुई, उसका खंडन किया, उसके इस तरह के कार्य की निन्दा की, उसका अवहेलन किया। अन्त तक अपने पातिव्रत्य को निभाती हुई मृत्यु का आलिंगन किया, मगर उस द्रोही की वशवर्तिनी नहीं बनी। यों सुनन्दादेवी ने अपने पातिव्रत्य का झंडा फहराया। उन्नत आदर्श बनी।

इन दोनों नायिकाओं के चरित्र में असमानता दिखने पर भी दोनों काव्यों का मूल तत्त्व एक है। एक सिक्के के दो मुंह हैं। दुष्ट-प्रणय के ये दो चित्र हैं, दोनों में निरंकुश और मुक्त कामुकता का दर्शन होता है। परन्तु अमृतमती के प्रणय जीवन से अधिक स्वाभाविक लगता है चंडशासन का प्रणय जीवन। उसने प्राण-प्रिय मित्र के साथ द्रोह करके उसकी पत्नी से प्रेम किया—फिर भी उसके मन में यह भावना बनी रही कि वह जो कर रहा है सो सही नहीं, वह अन्याय है। मित्र सुदर्शन से अपने प्रणय की बात इच्छा के न होते हुए भी बड़े संकोच के साथ कहता है और कहते-कहते रुक जाता है। मित्र की पत्नी के सौन्दर्य ने उसे पराजित किया है। पापी सुदर्शन अगर नहीं उकसाता तो उसकी कामवासना इतनी उद्रिक्त होती या नहीं, कहा नहीं जा सकता। इतना तो निश्चित है कि उसका प्रेम कलंकपूर्ण होने पर भी निश्चल है। सुनन्दा के साथ वह सहगमन कर मर सकता है—इतना निश्चल है उसका प्रेम। वह अपराधी है जरूर। उसका अन्त देखकर हममें उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है। और उसका अपराध भारी होने पर भी इस निश्छल प्रेम के कारण और सहगमन कर अपने को सुनन्दा की चिताग्नि को अर्पण करने से, वह क्षम्य हो जाता है।

स्त्री-पुरुष की समस्या अनादि और अनन्त है। मोहपाश में फँसा व्यक्ति पाप-पाप का विचार नहीं करता, मान-मर्यादा को फिक्र नहीं करता, न उसे पाप-पुण्य का ख्याल ही होता है। यह व्यक्ति की एक ऐसी दुर्बलता है कि जिसके लिए कोई दवा नहीं। इस समस्या के सम्बन्ध में कवि का यही सन्देश है कि "मनसिज माया का भाग्य भी साथ दें तो व्यक्ति मारा जाता है।"

कवि जन्न को प्रणय निरूपण करने में अपार आसक्ति है। इस कारण से ही उन्होंने "महापुराण" के चार-पाँच पद्यों में कथित चंडशासनोपाख्यान को विस्तृत किया है। इस उपाख्यान के शुष्क मूल रूप को मांसल बनाकर सजीव कर दिया है।

सोमराज—कवि ने अपने समय का निर्देश निर्दिष्ट रूप से बताया है जरूर; मगर हस्तलिखित प्रति में एक अक्षर के लोप हो जाने के कारण इस सोमराज का काल निर्णय पचड़े में पड़ा है। फिर भी कविचरितकारों ने इनका समय तेरहवीं सदी (ई० सन् १२२२) के पूर्वार्ध बतलाया है। सम्भवतः यह कवि पश्चिमी तीर पर के किसी छोटे राज्य का राजा रहा—ऐसा अनुमान किया जाता है। इनके पिता चन्द्रवंशी था, इनका नाम इन्दुशेखरराज था।

सोमराज ने वीरशैव शरणों में से एक उद्भटदेव नामक शरण की कथा को चौदह आश्वासों में चंपू काव्य के रूप में लिखा है। उन्होंने अपनी इस कृति की प्रशंसा इस तरह की है कि "यह मेरा काव्य चांदनी की तरह सुन्दर, तत्काल वृक्ष से निकला

हुआ आम्र-फल-गुच्छ जैसे मनोहर, मलयानिल-सा आप्यायमान, वसन्त की तरह सुखद, मुक्ताफल की तरह स्वच्छ, गम्भीर और नव चंपक मंजरी की तरह भाव रूपी सुगंधि से परिपूर्ण है तथा विद्वानों के लिए आनन्द देनेवाला है।" इतना ही नहीं—"वह गिरिजा का रति सल्लाप जैसे, शुक मधुर ध्वनि जैसे, सरस्वती की वीणा की झंकार की तरह, वसन्त की कोकिला के गान की तरह, कामदेव के पुष्पबाण के निनाद की तरह अथवा सोमराज के वचनामृत जैसे, विद्वानों का अनुराग रूप होकर सर्वप्रिय है।" यह है उनके काव्य के बारे में स्वयं कवि की की हुई प्रशंसा। अस्तु, इस काव्य की कथावस्तु शिवभक्ति का निरूपण है, परन्तु वह कथा फैली भी तो है प्रणय पर अवलंबित होकर।

इस कथा का नायक है उद्भट देव। वह गुजरात के मल्लकीपुर नामक एक रियासत के राजा थे। वह देवल ऋषि के आह्वान पर अपनी सेना के साथ ऋषि के यज्ञ में बाधा उपस्थित करने वाले निघर्जासुर नामक राक्षस को मारकर यज्ञ को निर्विघ्न सम्पन्न कराकर लौटा। इस अवधि में व्याध के हाथ मरने की हालत में रहने वाले एक तोते की रक्षा की और उसे बन्धन से मुक्त किया। उपचार से स्वस्थ होने के बाद तोते ने अपना पूर्वजन्म-वृत्तांत सुनाया और बताया कि वह चोल राजा की पुत्री के यहाँ रहता था और उस सुन्दर युवती राजकुमारी के लिए अनुरूप सुन्दर पति की खोज में उद्भटदेव के ही पास आ रहा था। यह बात सुनकर राजा उद्भट देव उस तोते की इच्छा के अनुसार चोल देश जाकर राजकुमारी सौन्दर्यवल्ली के साथ विवाह कर नव विवाहिता के साथ अपनी राजधानी गया। एक बार रानी सौन्दर्यवल्ली के साथ बैठकर पासा खेल रहे थे तो अचानक हँस पड़ा। रानी ने आग्रह किया कि उनके उस तरह हँसने का कारण क्या है? तब उद्भट देव ने बताया कि शिवभक्त ओहिल अकेले विमान में बैठकर कैलास गया—इसे देखकर हँसी आयी। इसे सुनने के पश्चात् पति-पत्नी में वाग्वाद छिड़ा। तब उद्भट राजा ने यह प्रतिज्ञा की अपने नगर के सम्पूर्ण जन समूह को कैलास ले जाऊँगा और वैसा ही किया।

इस कवि के कथानक का उद्गम-स्थान हरिहर कवि का 'उद्भट रगळे' है। सोमराज ने अपने काव्य को महाकाव्य बनाने जाकर वस्तु का विस्तार करके अष्टादश वर्णन सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है और औचित्य की ओर ध्यान न दे पाया है। शृंगाररस निरूपण करने के लिए वेश्या गृह का वर्णन सांगोपांग चला है। कवि का मनोभाव है शृंगार ही काव्य का सार है। इसीलिए कवि काव्य को "शृंगार सार" कहकर ही सन्तुष्ट हुआ है। परन्तु यह कहा नहीं जा सकता कि यह शृंगार भी प्रमाद नहीं। सोमराज की शैली ललित है और उनके वर्णन नवीनता से युक्त है। उदाहरण के लिए उनका वर्षा-वर्णन उन्हीं की वाणी में सुनिये—

"गगनांगनें कुडुमिचॅम्
बुधुर्गॅनियॅ मुगिलॅनिण्य मुडियं पिक्कल्
मिगॅ मुंगुरिन्बिदॉळ्ळम
चगुव बॉलुदिर्बु करकनिकरमदिळॅपॉळ्,"

अर्थात्—"गगनांगना विद्युल्लताप्रकी अपने नवारम्भ से प्रेम रूपी अपने प्रिय-पात्र को बुलवाने पर पहले ही अपने बालों में गुंथे फूल मानो ओले के रूप में झुकि

पर स्थिर रहे हो।"—कवि की इस तरह की यह कल्पना काफी मनोहर है।

कवि ने अपने काव्य का नायक पंपानगरीश्वर बताया है; और गुरु अल्लमांक की कृपा से अपनी कृति का निर्माण किया है। किसी न किसी रूप में उनका नाम-स्मरण किया है। यही नहीं, अपनी कृति के प्रत्येक आश्वास (अध्याय) के अन्त में शिव स्तुति करते समय उन्हें "अल्लम प्रिय" कहकर सम्बोधित किया है। अल्लम को आदर्श मानकर सर्वधर्म समन्वय की दृष्टि से कृति निर्माण करने की उनकी दृष्टि प्रशंसनीय है। उनका समन्वय देखिए—

"शिवनेन्दुत्तम शैवरंबुरुहगॅत्तु तां वैष्णवर्
हरिरन्नप्रियनेन्दु भूमिदिविजर् जैनर्जिनंगॅत्तु त
म्मवॅन्दर्चिसलोल्दु सर्व मुखदिदं पूजॅगॉण्डावगं
सुविलासंबडॅदॉप्पवनल्लमनॅ बॅच्चिकॅन्न चित्ताब्जदॉळ्।"

अर्थात्—"उत्तम शैव शिव कहकर, वैष्णव विष्णु कहकर, ब्राह्मण यज्ञेश्वर (अग्नि) कहकर, जैन जिन कह कर जिसे पूजा करते हैं—ऐसे सबसे पूजा स्वीकार कर संतुष्ट होने वाले अल्लम मेरे मन में स्थिर होकर रहे।" इस कवि की जैसी उदार भावना और समन्वय बुद्धि यदि हमारे सब कवियों में हुई होती तो हमारी जनता का (समस्त भारतीयों का) जीवन कितना अच्छा और आदर्शप्राय हुआ होता।

गुणवर्मा, दूसरा—इस गुणवर्मा से पहले एक गुणवर्मा हो गया था जिन्होंने "हरिवंश और शूद्रक" नामक काव्य लिखे थे। यह गुणवर्मा दूसरा है। "कवि-तिलक, सरवस्ती कर्णपूर, मानमेरु"—आदि इस कवि की विरुदावली हैं। यह तेरहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में रहा। इसके समकालीन एक राजा था जिसका नाम वज्रदेवनरनाथ था। इनके दरबार में बड़े-बड़े विद्वान् थे। उन विद्वानों की इच्छा हुई गुणवर्मा की कविता सुनें। इन लोगों ने अपनी इस इच्छा को प्रकट किया तो सेनानायक शान्तिवर्मा ने विद्वानों का प्रतिनिधि बनकर गुणवर्मा से प्रार्थना की। यह प्रार्थना सुनकर गुणवर्मा ने नवम तीर्थंकर पुष्पदन्त के चरित को चंपू काव्य बन्ध में रचा। भगवान् विष्णु ने अपने-आपको सौंपकर जैसे लक्ष्मी और कौस्तुभ को समुद्र-राज से पाया वैसे ही शान्तिवर्मा ने अपने-आपको सौंपकर कीर्ति के साथ "पुष्पदन्त पुराण" को भी पाया—यों कहा जाता है। यह कृति गुणवर्मा की पुत्री है और शान्ति वर्मा इसी कृति का वरण करने वाले होने के कारण जामाता है। कवि ने अपनी कविता-चातुरी के सम्बन्ध में यों बताया है—

"प्रकटं सुकविमधुव्रत
निकरमनॅरगिसुव चूतमंजरि, कुकवि
प्रकर मधुकरकॅ कृति चं
पक मंजरियॅनिसॅ पेळ्दपं गुणवर्मं।"—

अर्थात् "प्रसिद्ध सुकवियों के लिए यह काव्य माधुर्य चूतांकुर युक्त आम्र मंजरी की तरह है, ये सुकवि आम्रमंजरी पर मंडराने वाले भ्रमर समूह जैसे मधुकर (वह जो पुष्परस चखता फिरता है) जैसे कुकवियों के लिए चंपक पुष्प-गुच्छ (चंपा के फूल पर मधुकर बैठ नहीं सकता—पास फटकने तक नहीं आता) की तरह है—मेरी कविता चातुरी।"—यों गुणवर्मा अपने कृति-कर्म के विषय में बताते हैं। सुकवि उसके काव्य-

भावुकों का रसास्वादन करते हैं, कुकवि इसके महत्व के सामने ठहर नहीं सकते किन्तु भाग जाते हैं । इस ग्रंथ से हमें स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि कवि की रुचि किस तरफ है । इस 'पुष्पदंत पुराण' में कथा नहीं के बराबर है। ऐसी छोटी कथा को चौदह आश्वासों में कहना है । यह इसलिए कि कवि को इसे महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करना है । इस वजह से अत्यल्प कथा सामग्री को विस्तृत करना है । अतः इस काव्य में अत्यधिक वर्णन भरे पड़े हैं। वृत्यनुप्रास यमक आदि शब्दालंकार भी पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हैं। महाकाव्य कहलाने पर भी इसमें अन्य जैन पुराणों से भिन्न कोई विशेषता नहीं लक्षित होती । वही परंपरा, वही पंच कल्याण आदि-आदि हैं । कवि ने बताया है कि यहां शांत रस ही प्रधान है । "मोक्ष सुख के प्रति अनासक्त अथवा कम आसक्त लोगों के लिए—जिस तरह बच्चों को कड़वी दवा शक्कर मिला कर पिलायी जाती है—वैसे ही शृंगार रस इसमें मिलाया गया है ।"—यही कवि कहते हैं । यह ठीक भी है कि इस कृति में शृंगार निरूपण रसवान् नहीं है, ऐसा रसाभास भी नहीं । कवि का कथन वास्तव में आदरणीय अवश्य है । कथा छोटी होने पर भी काव्य जिस नायक का आश्रय लेकर निर्मित हुआ है वह उच्चवंशीय और महापौरुषशाली तथा महिमायुक्त होने के कारण कृति गौरवान्वित हुई है ।

इनका "चन्द्रनाथाष्टक" अस्सी पद्यों का ग्रंथ है । ये सारे पद्य महा स्रग्धरा वृत्त में हैं । कवि ने अपनी गंभीर शैली में जिन भक्ति गायी है ।

कमलभव—करीब तेरहवीं सदी के बीच में यह कवि रहा । इन्होंने "शांतीश्वर पुराण" लिखा है । यह सोलहवें तीर्थंकर का चरित है । और यह सोलह आश्वासों में फैला है । अन्य कवियों की तरह इन्होंने भी अपनी कविता की बड़ाई की है । कहते हैं कि "मेरी कविता अमृत की धारा है, कामदेव का मोहनास्त्र है, रमणीय गान है, बाल हंसों की प्रणय-केलि है, प्रेयसी के साथ संगम-सा मधुर है ।"—यह कथन अतिशयोक्ति लगती है । इसी वस्तु को लेकर कवि चक्रवर्ती पोन्न ने भी लिखा है । परंतु काव्यशक्ति की दृष्टि से इन (कमलभव) की काव्य-शक्ति कुछ ऊंचे दर्जे की है । इनकी शैली सरल और ललित है । परन्तु कथा वही है, चर्वित चर्वण; वही पंच कल्याण, वही अष्टादश वर्णन, वही ढंग-ढर्रा । इस पुराण की कथाओं में से अश्वग्रीव की कथा थोड़ी अच्छी है ।

देव कवि की "कुसुमावली" के कुछ पद्य कमल भव के 'शांतीश्वर पुराण' में भी हैं । यह बात पहले कही जा चुकी है ।

आंडय्या—पंडित कवियों के पुराण काव्यों तथा उनके पिष्टपेषण को पढ़कर थके मन को एक नवीनता की ओर ले जाकर नये उत्साह से पाठकों को प्रोत्साहित करने का काम आंडय्या ने किया है । इनके दादा के मरने के थोड़े समय के अंदर ही इनका जन्म हुआ होगा, शायद इसीलिए इनका नाम भी इनके दादा का नाम है । दादा आंडय्या थे और 'गणक' के रूप में प्रसिद्ध थे और यह गणकों का राजा कहलाकर प्रसिद्ध हुए । दादा आंडय्या के तीन बच्चे थे । उनमें बड़ा था 'सांत' । सांत—बल्लव्वा-दंपती का पुत्र है यह आंडय्या । ऐसा लगता है यह कन्नड भाषा पर बड़े अभिमान रखनेवाले कन्नड भाषाप्रेम से ओतप्रोत व्यक्ति था । संस्कृत की मिलावट बिना शुद्ध कन्नड में काव्य रचना करने की ओर प्रवृत्त हुआ है यह महारथी

आंडय्या । वह बताते हैं कि "सभी पूर्व कवि संस्कृत को मिलाये बिना सुन्दर काव्य की सृष्टि करने में असमर्थ रहे । बोल-चाल की तरह सुस्पष्ट वाणी में सुन्दर ढंग के काव्य रचना कर सकने की शक्ति इनमें नहीं तो और किनमें उपलब्ध होगी ? इस बात की जानकारी रखने वाले सन्मित्रों के कहने से उनकी इच्छा सम्पूर्ण करने के इरादे से शुद्ध कन्नड के काव्य ग्रन्थ में "कब्बिगर काव" (कवियों का रक्षक) को बड़े आनंद के साथ कहने निकला हूँ ।" अपने कथन के अनुसार उन्होंने संस्कृत शब्दावली का प्रयोग न करके केवल देशी और तद्भव शब्दावली का प्रयोग करके ही अपनी कृति का निर्माण बड़ी दक्षता के साथ किया है । संस्कृत पद-प्रयोग के कारण कवियों पर जो कलंक की कालिमा लगी थी, वह आंडय्या के इस काव्य ने निवारण कर दिया । शायद इसीलिए अपनी कृति का नाम "कब्बिगर काव" अर्थात् "कवियों का रक्षक" रखा—ऐसा प्रतीत होता है । यह काव्य मनोहर है इसलिए इसका एक दूसरा भी नाम है "सौबगिन सुग्गि" अर्थात् सुंदरता की समृद्धि ।

"कब्बिगर काव" की कथावस्तु कवि का कपोल कल्पित है । कर्बुविल्ल (इक्षुचाप अर्थात् मन्मथ) नामक राजा अपनी रानी इच्चैमार्ति (इच्छा) के साथ सुगंध कानन में राज कर रहे थे । उस समय समाचार मिला कि शिवजी ने चन्द्र को बन्दी बनाया है । इस बात से राजा रुष्ट हुआ और अपने दूत मंदमारुत को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम जाकर शिवजी के बन्धन से चंद्र को छुड़ाकर लावो । परन्तु राजदूत अपने काम में असफल हुआ । इसमें यह राजा स्वयं सेना लेकर शिवजी पर आक्रमण करने निकला । रास्ते में तपोनिरत एक सवण (श्रमण) दिखाई पड़ा । अपनी दिग्विजय-यात्रा के मार्ग में आड़े आने वाले श्रमण तपस्वी को ध्वंस करने का विचार राजा ने किया । राजा के इस विचार को समझकर वसन्त ने आकर उनको उपदेश दिया । और उन्हें इस ध्वंस कृत्य से रोका । वसन्त के उपदेश से राजा के मन में विवेक जगा और वह अपने अविचार के कारण डर के मारे काँपते हुए श्रवण के पास गया, उन्हें प्रणाम किया । हिमगिरि के पास गया वहाँ इस राजा ने शिवजी के साथ युद्ध किया । कर्बुविल्ल (इक्षुचाप=मन्मथ) राजा के पुष्प बाणों ने शिवजी का स्पर्श करके उन्हें आधा स्त्री बना दिया । इस तरह शिवजी को अर्द्धनारी बनाने के कारण राजा विजयी हुआ और उस पर देवताओं ने फूलों की वर्षा की । इस घटना से क्रुद्ध शिव ने उसे शाप दिया । इस शाप के कारण इक्षुचाप राजा पत्नी से अलग होकर उसके विरह में आपने स्वस्वरूप ज्ञान तक को भूलकर कन्नडनाडु (कन्नड प्रदेश) के "पूविन पॉळलि" अर्थात् पुष्पतूणीर नामक स्थान में "नॅनॆव (सानी मनसिज) के रूप में जन्म लेकर राज्य करने लगा । इस तरह राज्य करते समय एक दिन उद्यान में एक अप्सरा स्त्री को देखा । उस अप्सरा से अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत सुना तो वह शाप मुक्त हो गया । फिर अपनी पत्नी के साथ मिलकर सुख-पूर्वक राज्य करने लगा ।—यह इस "कब्बिगर काव" की कथा है । मन्मथ का शिवजी पर विजय पाना ही काव्य की कथावस्तु होने के कारण इस काव्य का एक दूसरा भी नाम "कावन गॆल्ल" अर्थात् "पालनहार परमेश्वर की पराजय" है । संस्कृत विद्वान इसे "मदन विजय" कहते हैं । इसका एक और नाम "संस्कृत सहोदरी" भी है । इस कथा में जैन-धर्म की महिमा को बहुत ही उज्वल बनाया है, यह स्पष्ट है । शिवजी को एक ही तीर से

अर्धनारी बनाने वाले महापराक्रमी है यह मन्मथ। ऐसा पराक्रमशाली एक श्रमण तपस्वी की महिमा सुनकर थरथर कांपते हुए भयभीत होकर उनके पास आता है और उन तपस्वी को प्रणाम करता है; इससे यह साफ मालूम हो जाता है कि उस श्रमण की महिमा कितनी बड़ी है। और स्वयं तीर्थंकर की महिमा कितनी बड़ी-बड़ी है ? शिव और जिन में जमीन-आसमान का अंतर है। परमत का अवहेलन किंचिन्मात्र भी न करके जैन मत का महत्त्व बताने की आंडय्या की चतुरता सराहनीय है।

"कब्बिगर काव" की कथा का आरंभ शिव शाप के बाद मन्मथ का "ननॆयंब" के नाम से पुनर्जन्म लेने के बाद के प्रसंग से होता है। शिव के शाप से ग्रस्त मन्मथ उस समय कवि की कल्पना के अनुसार कर्नाटक में रहता था। इस प्रसंग में कन्नड प्रदेश की मन भर प्रशंसा की है। समस्त हृदय प्रेम कन्नड प्रदेश पर उंडेल दिया है। अपनी मातृभूमि की प्रशंसा इतनी सुंदर रीति से करने वाले पंप के बाद यही दूसरा कवि है। वे बताते हैं—

"पलवुं नालगॆयुळ्ळवं बर्णिसलारना
नॆलनॆं मल्लिग मानिसर् पॊगळलेनं बल्लरॆम्बॊन्दु ब
ल्लुलियं नॆट्टनॆ ताळ्दु कन्नडमॆनिप्पा नाडु चॆल्वाय्तु मॆ
ल्लॆलरि पूत कॊळंगळिं कॆरॆगळिं काल्र्वॆळि कॆय्गळिं."—

कि "सहस्र मुंहवाले आदिशेष से भी इस प्रदेश का वर्णन संभव नहीं; ऐसी दशा में साधारण मानव इसका वर्णन कर कैसे सकते हैं ? ऐसा और इतना सुंदर है यह प्रदेश जो कर्नाटक के नाम से विख्यात है। यह कन्नड देश ठंडे मलय पवन से पुष्प-भरे तालाब, सरोवर आदियों से, सुन्दर ग्रामों से, लहलहाते धान के खेतों से सुन्दर और रमणीय है।" इस प्रदेश में मल्लिका, चम्पा आदि के अलावा अनार, नारियल, आम, सुपारी को छोड़ अन्य कोई पेड़ ही नहीं; तात्पर्य यह कि इन जातियों के पेड़ों की ही अधिकता है। और वानर नारियल के पेड़ पर चढ़कर गिराते वाले डाभ के पानी से ही इस प्रदेश के जंगल पोषित हैं। यदि डाभ से ही जंगल सींचा जाता है तो समझिये कि नारियल की समृद्धि कितनी होगी ? धान के खेतों में बालियों के भार से सारे पौधे जमीन तक झुक गये हैं। यह बालियों के भार से झुके धान के खेतों का दृश्य ऐसा लग रहा है मानो झुलसानेवाली धूप में हमारी सुरक्षा की ओर ध्यान देकर हमारा पोषण करने वाली भूमाता को दंडवत् प्रणाम कर रहे हो, और अपनी कृतज्ञता दर्शा रहे हो। कन्नड़ प्रदेश के शस्य वर्ग में भी यदि ऐसी कृतज्ञता भरी हो तो यहां के लोगों की मनोवृत्ति कैसी होगी ! इस प्रदेश के जल-पंछी आपस में जब लड़ते हैं तो एक दूसरे पर पानी उछालते हैं; इस तरह उछालने से पानी की छींटें जो उड़ती हैं उनके भार से मनस्वी बहने वाला पवन भी अपनी गति को मंद करके धीरे-धीरे बहता है। यह इन पंछियों के झगड़े का फल है। इस सब को समझने से ऐसा मालूम होता है कि यहां का जीवन कितना समन्वित और संतुलित है। और मधुर तथा मनोहर है। इस तरह के सुन्दर वातावरण में यहां का जन-जीवन कितना सम्पन्न होगा ! इसका अत्यन्त सुन्दर चित्र कवि ने बड़े ही आकर्षक ढंग से चित्रित किया है। इतना ही नहीं, और भी अपने इस कन्नड देश के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए अघाते नहीं। कहते हैं— यहां ऐसा कोई पेड़ नहीं जो फूल-पत्तों के सभी अवस्थाओं के

लिपटा न हो। प्रत्येक पेड़ मृदुल लताओं से आलिंगित है। कोई बाग ऐसा नहीं जिसमें पोखरे न हो, और वे पोखरे भी ऐसे नहीं जिनमें कमल न हो। कोयल से शोभित न हो—ऐसा कोई आम्रवृक्ष नहीं, ये आम्र भी ऐसे नहीं जो फल-फूलों से लदे न हो। कोई ऐसी नदी नहीं जिससे नहरें निकली न हों। ऐसा पुष्प नहीं जिस पर भ्रमर न बैठता हो। कोई ऐसा सरोवर नहीं जिसमें हंस न हो। कोई ऐसी वेश्या भी नहीं जो प्रेमी के संग न रहती हो। कोई ऐसा मनुष्य नहीं जो कीर्तिशाली न हो। इस राजधानी का नाम "पूविन पॉळल्" (पुष्प तूणीर) कितना अन्वर्थ है—यह सारा वर्णन को पढ़ते हैं तो हमें स्पष्ट मालूम हो जाता है कि कवि को अपनी जन्मभूमि के प्रति कितना गहरा, अटल और निर्मल प्रेम था। यह अत्यंत सराहनीय है।

कथा की रचना, सन्निवेश निर्माण आदि कोई बहुत ऊँचे दर्जे का तो नहीं है। परन्तु कवि के काव्य में लालित्य और माधुर्य मनोज्ञ अवश्य हैं। कामदेव ने शिवजी पर बाण प्रयोग किया; तब नदी-नाले, खेत-पहाड़, आकाश और दिशाएँ आदि सब में अचानक ही रौनक आ गयी। क्यों न हो, ये स्मरशर ही तो हैं! ये स्मर-शर जगत् में प्रसिद्ध हैं। पहले कामदेव के इन तीरों ने कैसे कैसों को क्या-क्या नहीं बनाया था। कितनों को डिगा नहीं दिया था! कितनों को हरा कर कैसे-कैसे काम ऐसों से नहीं कराया था। ये स्मर-शर जब इक्षुचाप से निकले तो ऐसे लगते थे मानो यह आसमान पर विचरनेवाली सुरसुन्दरियों की आँखों का प्रकाश है या तारे झलक रहे हैं अथवा बिजली ही चमक रही हो या चन्द्र अपना मार्ग भूल कर भटक गया हो। ऐसे पांच बाण शिवजी के भाल, गाल, हथेली, जांघ, भुजाओं पर लगे। इससे महादेव आधा स्त्री बना। और क्या? आंडय्या की कल्पना में शिवजी का अर्धनारीश्वर होना, इस प्रकार से है।

शिवजी ने मन्मथ को शाप दिया। रती देवी इस बात को नहीं जानती थी। वह पति-विरह सह न सकी। सुन्दर और नये कोंपल की शय्या पर लेटी-लेटी विरह ताप के कारण आह भरती और करवटें बदलती यही सोचती कि पतिदेव कब लौटेंगे? अपनी दासियों से (तोता आदि) से बार-बार पूछती। असह्य विरहताप से तप्त होकर तोते को ताजा फल देने की लालच दिखाकर, भ्रमर को ताजे पुष्प-गुच्छ की रिश्वत देने का प्रलोभन देकर, हंस को लाल कमल की कली का लोभ दिखा कर, मंद पवन को सुगंधि देने की आशा दिखा कर सबसे प्रार्थना करती है कि वे सब उनके पति को खोज लावें।

शापमुक्त होने पर एक तोता भाग कर उनके शाप-विमोचन की खबर वसंत को देता है और वह यह संतोष समाचार मन्मथ पत्नी रति को देता है। तब रतीदेवी विश्वविजयी पति के स्वागत के लिए जाती है। फिर दोनों परस्पर मिलते हैं। तब रति की दृष्टि ने पतिदेव मन्मथ के चरणों को, और फिर मुलायम जांघों को, वहाँ से ऊपर पसार कर कामदेव की बाहुओं को अपने पाश में जोर से जकड़ लिया। अपने पति को देखने की लालसा के कारण आकर्णायित कमल सदृश नेत्र सद्योविकसित कमल रस को आकंठ पी लेने की लालसा से जैसे भ्रमर कमल पर जमकर बैठता है वैसे ही रतिदेवी के नेत्र पतिदेव मन्मथ के मुंह पर जमे और अधर अधर से मिलें और अधरामृत का पान करने लगे।

आंडय्या की यह बात "कन्नड की वाणी में जो माधुर्य है उसे पहले इस काव्य में पढ़कर समझें,"—उनके काव्य को पढ़ने के बाद मालूम होता है कि कितनी सार्थक है। स्व० मुळिय तिम्मप्पय्या ने यह कथा पढ़कर ऐसा अन्दाज लगाया है कि यह काव्य एक ऐतिहासिक वस्तु पर निरूपित है। वे कहते हैं कि कन्नड कहलानेवाला प्रदेश एक था और यहाँ कदंब वंशी कामदेव नामक राजा राज कर रहा था, और उसने होय्सलों से युद्ध किया, और विजयी हुए। इस घटना का रूपक ही यह काव्य है। यह विचारणीय विषय है। कविवर्य बेन्द्रे ने इस काव्य में तीन तत्त्वों को दर्शाने का प्रयत्न किया है। मन्मथ-विजय काव्य-तत्त्व है और शिवजी की जीत सृष्टि तत्त्व तथा श्रमण की विरक्ति मुक्ति तत्त्व है।

जो भी हो, इस काव्य की वस्तु शैली, भाषा में नवीनता है। चम्पू काव्य रुके पानी की तरह काई से भरा था। आंडय्या ने एक नया नहर निकालकर इस रुके पानी में बहाव लाकर सेव्य बनाया। इसके लिए यह अभिनन्दनीय है। खलिहान के मौसम में जैसी समृद्धि सर्वत्र दिखती है, वैसे ही आंडय्या की कृति में काव्य सौंदर्य काफी समृद्ध है।

मल्लिकार्जुन केशिराज : तेहरवीं सदी के बीच में ये दोनों पिता-पुत्र रहे और कन्नड साहित्य के इतिहास में इनका अपना ही एक विशिष्ट स्थान है। ये दोनों ख्यातिप्राप्त कवि हैं। परन्तु इन दोनों के द्वारा निर्मित कोई भी काव्य अब तक उपलब्ध नहीं हुआ है। इस मल्लिकार्जुन के "मल्ल, मल्लप्पा तथा चिदानन्द" के नाम भी रहे ऐसा, प्रतीत होता है। इन्होंने अपने समय तक जितना साहित्य निर्माण हुआ था, उस सम्पूर्ण साहित्य में से चुने हुए पद्यों का एक संग्रह "सूक्ति सुधार्णव" के नाम से रचा है। यह ग्रन्थ उन्नीस आश्वासों में विभक्त है। इसका प्रथम आश्वास पीठिका प्रकरण है। इस प्रकरण में अपने खास कुछ पद्य उपलब्ध होते हैं; इन पद्यों से कवि की दृष्टि क्या थी—इसका पता लगता है। इस पीठिका में अपना विचार बताते हुए वे कहते हैं—

"सरस कवीश्वर सभॆयॊळ्
सरस कवीशं विशिष्ट मुनिगळ सभॆयॊळ्
परम मुनि बुधर सभॆयॊळ्
परम बुधनॆनिप्पनी चिदानंदबुधं"—

कि "रसज्ञ कवियों की सभा में कवि, मुनियों की गोष्ठी में परम श्रेष्ठ मुनि, विद्वानों की सभा में श्रेष्ठ विद्वान् है यह पण्डित चिदानन्द।"—यों अपने बारे में बताया है। यह कथन उनके द्वारा रचे गये शासन पद्यों (शिलोत्कीर्ण या ताम्र पट्ट पर लिखे पद्य) से सत्य प्रमाणित होता है। ये शासन पद्य भी इस पीठिका प्रकरण में दिखाई पड़ते हैं। परन्तु उन्होंने कौन-कौन-से काव्य लिखे—इसका उल्लेख नहीं किया है। कोई भी काव्य उपलब्ध नहीं है। केशिराज जिन्होंने अपने को "योगिप्रवर चिदानंद मल्लिकार्जुन सुत" बताया है— अपने "शब्दमणिदर्पण" नामक ग्रन्थ में यह बताया है कि उन्होंने "चोल पाल चरित", "सुभद्राहरण", "प्रबोधचन्द्र", "किरात" नामक ग्रन्थ लिखे हैं। परन्तु इनमें से एक भी उपलब्ध नहीं है। इनमें "प्रबोधचन्द्र" संभवतः नाटक होगा—ऐसा अनुमान किया जाता है। हळगन्नड (पुरानी कन्नड) के

साहित्य में नाटक "[illegible]" है। अगर वह "प्रबोधचन्द्र" इस अनुवाद के अनुसार नाटक हो तो इसका बहुत अमूल्य स्थान है। श्रीमान् अनंन्त रंगाचार्य ने इस "सूक्ति सुधार्णव" का सम्पादन किया है। वे बताते हैं कि "चोलपाल चरित" में से उद्धृत कुछ पद्य इस "सूक्ति सुधार्णव" में हैं—यह उनका अनुमान है। परन्तु निश्चित रूप से "इदमित्थं" कह नहीं सकते। इस "सूक्ति सुधार्णव" में अब तक अनुपलब्ध कई कवि-काव्य के उद्धरण मिलते हैं। इन पद्यों में मल्लिकार्जुन और केशिराज के भी पद्य हो सकते हैं। इनके काव्य उत्तम स्तर के न होकर जनता के लिए आदरणीय न बन सकने के कारण मर ही गये होंगे।

मल्लिकार्जुन के (सूक्ति सुधार्णव) के पीठिका भाग को छोड़कर अन्य अठारह आश्वासों में अठारह तरह के वर्णन दिखाई पड़ते हैं। इन अठारह प्रकार के भिन्न-भिन्न वर्णनों में जितना मिल सके उतना रसवान् वर्णन भागों को उद्धृत कर इसमें सम्मिलित किया है। संस्कृत में संकलित संग्रह पर्याप्त प्रमाण में उपलब्ध होते हैं, परन्तु कन्नड में यही सर्वप्रथम ऐसा संकलित ग्रन्थ है।

इस संग्रह में कंद और वृत्त ही समादृत हैं। इस समय तक देशी भाषा में पर्याप्त मात्रा में साहित्य निर्माण हुआ अवश्य था परन्तु वह पण्डितमान्य नहीं हो पाया था। हरिहर के "गिरजा कल्याण" से पद्य उद्धृत किया है संग्रहकर्ता ने। परन्तु उसी कवि के "रगळें" या राघवांक के काव्यांश इस संग्रह में नहीं हैं।

यह "सूक्ति सुधार्णव" कन्नड साहित्य के निर्माण में बहुत ही अनमोल सहायक है। अज्ञात और अनुपलब्ध अप्रकाशित अनेक कवि-काव्यों की कृतियों के अंश इस संकलन में उद्धृत हैं। इससे भी अधिक उपयोगी विषय जो इस संकलन से प्राप्त है वह कवि-काल निर्णय संबंधी है। इससे पर्याप्त आधार कवि-काल-निर्णय करने के विषय में उपलब्ध होते हैं। इस ग्रंथ में उदाहृत पद्य काव्यों के कर्ता ई० सन् १२५० से पहले के हैं और अन्य उदाहरण इसके बाद के कवि के हैं। यह ग्रन्थ इस दिशा में एक सीमारेखा है। इसके संग्रहकर्ता ने बहुत विवेक के साथ सुरुचिपूर्ण ढंग से संग्रह किया है। इसमें कोई शक नहीं।

"सूक्ति सुधार्णव" के संकलन के काम में अपने पिता के साथ केशिराज ने भी बहुत परिश्रम किया होगा। पूर्व-कवियों की कृतियों को इस संग्रह के संपादन की दृष्टि से आमूलाग्र पढ़ना पड़ा होगा। यों पढ़ने के अवसर पर पण्डित पिता ने अपने बेटे का ध्यान उन कृतियों में प्रयुक्त विशिष्ट व्याकरण प्रयोगों की ओर आकृष्ट कर व्याकरण का प्रायोगिक पाठ पढ़ाया होगा। इस तरह व्याकरण के नियमों के अनुकूल प्रमाणों को चुनने में उन्हें बहुत अच्छा अवसर भी प्राप्त हुआ होगा। इन सब कारणों से "शब्दमणि दर्पण" नामक सुंदर व्याकरण इनके द्वारा निर्मित हुआ होगा। इस व्याकरण ग्रन्थ में उक्त सभी सूत्र केशिराज विरचित कंद-पद्य हैं। इन सूत्र-पद्यों की वृत्ति भी उन्होंने स्वयं गद्य में लिखा है और उनके उदाहरण पूर्व-कवि-प्रयोगों से उद्धृत किया है। इसमें के कंद-पद्य व्याकरण के नियम बताने के लिए ही लिखे गये हैं, तो भी बहुत ललित और सरल हैं। इसमें उद्धृत उदाहरण बहुत सुन्दर होने के कारण यह व्याकरण काव्य बन गया है। इनकी प्रामाणिकता स्तुत्य है। प्रमाण के बिना वह कोई बात कहेंगे ही नहीं। हळेगन्नड के प्रयोगों में दिखने वाली अशुद्धियों का निवा-

[illegible] कन्नड़ भाषा का परिमार्जन किया। भाषा परिशुद्धता का उनका यह विचार प्रशंसनीय है। कन्नड़ के लिए शुद्ध पाठ तैयार करने का श्रेय भी इन्हीं को मिलना चाहिए।

केशिराज के पिता कवि थे, बड़े विद्वान् थे; माँ कवि सुमनोबाण की पुत्री थी; कवि जन्न इनके मामा थे; बचपन से ऐसे ही सारस्वत वातावरण में पले होने के कारण उनका व्यक्तित्व विकसित हुआ होगा। उन्हें अपने निष्कृष्ट ज्ञान पर अटल विश्वास है। यह केशिराज जो भी कहना चाहते हैं उसे निर्भीक होकर कहते हैं। यह गुण गर्व के कारण नहीं बल्कि विषय का स्पष्ट ज्ञान और आत्म-विश्वास के कारण है। कविमल्ल (ई० सन् १४००) ने अपने "मन्मथ विजय" में केशिराज की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है कि यदि कर्नाटक में कोई सच्चा शाब्दिक है तो वह केशिराज है। केशिराज बताते हैं कि शब्द और अर्थ-तत्त्व के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। यही व्याकरण की सार्थकता है। चाहे मोक्ष प्राप्ति हो या न हो, यह निश्चित है कि अच्छा पांडित्य प्राप्त करने में केशिराज का व्याकरण सहायक अवश्य होता है।

महाबल : यह कवि (ई० सन् १२५४) तेरहवीं सदी के बीच में रहा। इन्होंने बाईसवें तीर्थंकर "नेमिनाथ पुराण" लिखा है। यह नेमिनाथ बाईसवाँ तीर्थंकर था। यह पुराण सोलह आश्वासों का ग्रन्थ है। राचिदेव-राचियक्क नामक जैन दंपतियों का पुत्र है यह महाबल कवि। मेघचन्द्र इनके धर्मगुरु और माधवचंद्र इनके विद्यागुरु थे। कवि ने बतलाया है कि क्षेमंकर जिनांकित केतयनायक की कृपा से इस ग्रन्थ की रचना की है। यह कवि "सहज कवि, मनोमेहमाणिक्य, विश्वविद्या विरिंचि" नामक बिरुदावली से भूषित हैं। कवि अपने काव्य के विषय में बताते हैं कि "नवयुवती के दृग्-बाण, मलय-मारुत का स्पर्श, शरत्काल की चाँदनी—ये तीनों किस चतुर के मन पर चोट नहीं करते? ऐसी है इस महाबल की कविता।" उनका यह कथन अतिशयोक्ति है, चर्वित चर्वण है। कथा पुरानी, वर्णन कवि समय-प्रेरित; इनका काव्यबन्ध प्रौढ़ होने के कारण औचित्य का विचार नहीं रखा गया है—ऐसा लगता है।

नरहरितीर्थ : तेरहवीं सदी के उत्तरार्ध (ई० सन् १२८१) में स्थित यह नरहरितीर्थ हरिदासों में बहुत प्राचीन है। इन हरिदासों में सर्वप्रथम थे अचलानंद दास जो नवम शती में रहे। नरहरितीर्थ इस परंपरा में दूसरे हैं—ऐसा कहा जाता है। "दास वाङ्मय" के विषय में अगले अध्याय में इनकी कृतियों के संबंध में विचार किया जाता है; अतः अब यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं।

चौण्डरस : संस्कृत के उद्दाम पंडित और कवि दंडी के "दशकुमार चरित" को कन्नड़ में प्रस्तुत करने वाले यही चौण्डरस हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पंढरपुर प्रदेश के रहने वाले थे; क्योंकि इन्होंने अपने काव्य के आरम्भ में "विट्ठल" की स्तुति की है, और अपने काव्य के नायक को पंढरपुर बुला लाकर विट्ठल मंदिर का विस्तार के साथ वर्णन करके उससे विट्ठल की स्तुति करायी है। इन्होंने "नल चरित" नामक एक और प्रौढ़ चंपू काव्य की भी रचना की है। इसके सिवा [illegible] और [illegible] और इनकी [illegible], [illegible] "[illegible]" [illegible]

पता नहीं इस सरस कवीश्वर का असली नाम क्या है और इनकी कृतियाँ कौन-कौन-सी हैं। इनका समय भी निश्चित नहीं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह करीब १३०० में रहा।

दंडिन् का "दशकुमार चरित" एक चित्र कथा है। कहानी-प्रधान अवांतर कथानकों से युक्त एक पद्य-काव्य है यह। दस राजकुमारों के साहस और साहसयुक्त प्रेम के वर्णनों से भरपूर होकर मदन साम्राज्य में ही यह कथा विहार करती है। स्त्री-पुरुषों की भोगदृष्टि और संभोगदृष्टि—इनका दिग्दर्शन इस कृति में स्पष्ट दीखता है। इस कृति की महत्ता केवल दंडी के पांडित्य प्रदर्शन में है। बाणभट्ट को आत्मसात् कर सकने वाली संस्कृत भाषा दंडी को भी अपना सकती है। परन्तु कन्नड में इतनी भाषा-प्रौढ़िमा हजम कैसे हो सकती है? केवल कथानक मात्र का वर्णन करने वाली कृति में यह प्रौढतायुक्त कठिन शैली लोहे के चने के समान है। मूल में संक्षिप्त रूप में तथा प्रभावशाली ढंग से कथित कथानक को चौण्डरस ने चौगुना बढ़ाकर लिखा है। वहाँ थोड़े में और सांकेतिक रूप से उक्त बातों को सारे विवरणों के साथ विस्तृत किया है। जहाँ स्त्री का वर्णन करना पड़ा है वहाँ यह चौण्डरस अपने-आपको भूल गया है। स्त्री के नख-शिखांत तक का वर्णन निस्संकोच होकर करता है; सो भी बड़े विस्तार के साथ। अपनी सारी कल्पना-शक्ति तथा अभिरुचि के भण्डार को ही उंड़ेल दिया है। औचित्यरहित वर्णन, भावाभिव्यक्ति के लिए आवश्यकता से अधिक प्रौढ़ और अयुक्त भाषा, कुरुचियुक्त अभिरुचि—यह है इस काव्य का स्वरूप। इन आरोपों की सफाई कवि स्वयं इस तरह देते हैं—

> "सकलांतर्यामि, जीवप्रकर विविध चैतन्य रूपं जगद्व्या
> पक भावं विष्णुवॅन्दागमतति सततं सार्वं संबंधदिं कौ
> तुकदिंदानावुदं बण्णिसिदॉडदु हरिस्तोत्रमॅन्दीगळी चि
> त्र कथा विस्तारमं बण्णिसलॉडरिसिदॅम् सत्कविश्रेणि मॅच्चल्"

अर्थात् "विष्णु भगवान् सब के अन्तरंग में बसता है। भिन्न-भिन्न जीवों में चेतना-स्वरूप है। समस्त जगत् में व्याप्त है—यों वेद बखान करता है। अत: मैं जिसे हार्दिक इच्छा से एवं पूर्ण मनोवेग से वर्णन करूंगा वही भगवान की स्तुति होगी यों मानकर इस चित्र कथा को सत्कवि व्रात की संतुष्टि के लिए लिखने लगा हूँ।" कवि का यह नियत आदर्श वेद और सत्कवि, इन दोनों की प्रतिष्ठा के ख्याल से उतना संगत नहीं होता।

कवि के प्रति सहृदयता न दिखाकर उनकी आलोचना करना एक बहुत अप्रिय कार्य है। फिर भी साहित्याभ्यासियों के लिए कवि की कृति का स्वरूप दर्शाना भी तो एक अनिवार्य कार्य है। ऐसा नहीं कि कवि में कथन-कौशल की कमी है; इस कृति में से कथानकों को पृथक्-पृथक् कथाओं के रूप में पढ़ेंगे तो विचित्र तथा रम्य कथाएँ यहां मिलेंगी। धूमिनी की कथा, मरीचि ऋषि की कथा—आदि कथानक कवि की दृष्टि यदि परिशुद्ध हुई होती तो रुद्र-काव्य हो सकते थे। इसके बदले अब यहां बात उल्टी हो गयी है। एक बहुत बड़ा और पहुँचा हुआ जीव उन्नत स्तर से जब एकदम नीचे गिरता है तो उसके उस पतन पर कवि हँसने लगता है ताली बजा-बजाकर। यह नैष्य वृत्ति योग्य नहीं कही जा सकती। एकाध स्थान पर कवि के वर्णन बड़े ही

सुन्दर है। उनका गाढ़ांधकार-वर्णन, संध्या-र्णन, चन्द्र-ताराओं का वर्णन, प्रातःकाल का वर्णन आदि बहुत ही सुन्दर है। हजार पद्यों के बृहत् काव्य की काया को प्रकाशित कर सके, ऐसी शक्ति यत्र-तत्र जुगनू-से चमकने वाले वर्णनात्मक पद्यों में नहीं है।

चौण्डरस का "नल चरित्र" करीब आठ सौ पद्यों का चंपू-काव्य है। यह अध्यायों में विभक्त नहीं है। कथावस्तु की दृष्टि से उनके "अभिनव दशकुमार चरित्र" से यह श्रेष्ठ काव्य है। परन्तु यहाँ भी वर्णनात्मकता अधिक होने के कारण कथा-निरूपण में अड़चन पैदा हो गयी है। चरित्र-चित्रण में कोई कहने लायक कौशल लक्षित नहीं होता।

नागराज : यह कवि चौदहवीं सदी के पूर्वार्ध (ई० सन् 1313 के करीब) में रहा। इनके पिता विवेक विट्ठलदेव और माता भागीरथी देवी, भाई तिप्परस, गुरु अनन्तवीर केवली थे। "भारती भालनेत्र, सरस्वती मुखतिलक"—आदि बिरुदावली इनके अपने स्वारोपित हैं। इन्होंने "पुण्यास्रव" नामक काव्य का निर्माण किया है। उनका कहना है कि अपने गुरु की आज्ञा से सगर नगर के लोगों के लिए उन्होंने इस काव्य की रचना की। अपने काव्य के विषय में बताते हैं कि यह कविता विद्वानों के लिए मिश्री के समान है। उनका यह कथन कुछ हद तक सत्य भी है। इसमें पूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, दान, तप—इन गृहस्थ-धर्मों के बारे में विवरण देकर, इस धर्म के आचरण के द्वारा स्वर्ग और अपवर्ग को प्राप्त करने वाले पुराण-पुरुषों की कथाओं का वर्णन किया है। नयसेन और वृत्तविलास की तरह इन्होंने सीधा पर मत पर टीका-टिप्पणी न करके, जैन धर्म की श्रेष्ठता को इन कथाओं के द्वारा बताने की कोशिश की है। इनके काव्य में "वड्डाराधने" (शायद "वड्ड कहा") की कुछ कहानियाँ मिलती हैं। इनके कथा निरूपण में कुशलता है और शैली देशी तथा सरल है, वर्णन में सहजता है।

चौदहवीं सदी के और दो जैन पुराण स्रष्टा कवि हैं। इनमें एक बाहुबलि पंडित (करीब ई० सन् 1352) दूसरा मधुर कवि (करीब ई० सन्० 1385) हैं। दोनों की काव्य वस्तु एक ही है। बाहुबलि पंडित ने अपने को "उभय भाषा चक्रवर्ती" कहा है। इन्होंने पंद्रहवें तीर्थंकर के जीवन चरित्र को "धर्मनाथ पुराण" के नाम से लिखा है। यह सोलह आश्वसोंवाला प्रौढ़ काव्य है। मधुर कवि के काव्य में से केवल चार आश्वास मात्र उपलब्ध हुए हैं। इन्होंने अपनी प्रशंसा स्वयं की है; यह प्रशंसा भी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर की है। सम्भवतः इस तरह की अहंकार-पूर्ण आत्म-प्रशंसा इसलिए की होगी कि यह कवि आस्थान कवि था। विजय नगर के हरिहर राजा के आस्थान का, कवि रहा—ऐसा लगता है। आस्थान पंडित का लिबास इनके शरीर पर हो तो शरीर के अन्दर अहम्मन्यता का संचार हो जाता; ऐसे वक्त पर आत्म-प्रशंसायुक्त गर्वोक्ति कही है। उनकी इस आत्म-प्रशंसा में कुछ सहजता भी है। इनके काव्य से अभिनव विद्यानन्द और भट्टाकलंक इन दोनों ने इनके पद्यों का उपयोग किया है। परन्तु उनके कथा-निरूपण में कोई नवीनता नहीं है। इन्होंने गोम्मट का स्तोत्र भी आठ पद्यों में किया है। बाहुबलि और मधुर कवि—दोनों का मार्ग वही पुराने संप्रदाय का अनुगामी है। जैन पुराणों का वही रूप इन दोनों ने अपनाया है। वही

पुरानी लीक है, ढंग-ढर्रा वही है। जैन-चंपू-पुराणकर्ताओं में मधुर कवि ही अन्तिम है।

चौदहवीं सदी (ई० सन् 1360) में जो चंपू कवि हुए उनमें उल्लेखनीय कवि मंगराज हैं। इन्होंने "खगेन्द्र मणि दर्पण" नामक विष-वैद्य सम्बंधी ग्रंथ लिखा है। इनकी कृति से यह मालूम पड़ता है कि यह हॉय्सलदेश के देवळिगेनाडु के अन्तर्गत मुगुळि-पुर नामक स्थान के राजा थे, और यह पूज्यपाद का शिष्य था। इनकी पत्नी कामलता थी और इनके तीन बच्चे रहे। इन्होंने विजयनगर के राजा हरिहर की प्रशंसा की है; इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह इनके समकालीन होगा। "सुललित कवि पिकवसंत", "विभुवंशललाम" आदि विरुदावली से यह विभूषित भी है। एक बार जब यह विद्वानों की गोष्ठी में बैठा रहा तब पंडितों ने इनसे अनुनय किया कि सभी लोगों की समझ में आने लायक सरल कन्नड में कुछ कहें। उन लोगों की इस प्रार्थना को मान कर उन्होंने इस ग्रंथ की रचना की। वह स्वय यह समझते हैं कि अन्य कवियों की तरह पेड़-पौधे, हवा-धूल, रात, जलक्रीडा, कामकेली, सुरा, वेश्या, विट आदियों का वर्णन करना निरर्थक है; इसलिए इन निरर्थक बातों को काव्यबद्ध करके समय, शक्ति और योग्यता का दुरुपयोग करने से सर्वजनोपयोगी, लोकोपकारी मंत्रौष-धियों के बारे में कहना उपयुक्त एवं उचित है। उनकी मान्यता है कि वैद्यकीय शास्त्र मोक्ष-साधक है। उनका यह विचार है कि मानवों के लिए दवा से आरोग्य, स्वास्थ्य से शरीर रक्षा, शरीर के द्वारा ज्ञानार्जन, ज्ञान के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति—इसलिए वैद्यकीय ज्ञान मोक्ष-साधन के लिए उपयुक्त है। इसी कारण से मैं इस औषधि शास्त्र के ही बारे में लिखूंगा—यही उनका निर्णय है। इन्होंने स्थावर-जंगम सब तरह के विषों के लिए दवा बतायी है। "खगेन्द्र मणिदर्पण"—शास्त्रग्रंथ होने पर भी काव्य-गुणों से युक्त है। इनकी रचना सरल, ललित एवं प्रभावपूर्ण है।

मंगराज नाम वाले चार कवि हुए हैं। अत: "खगेन्द्र मणि दर्पण" का लेखक मंगरस नं० 1 है। दूसरा अभिनव मंगराज है (ई० सन् 1398)। इन्होंने "अभिनव निघंटु" अथवा 'कवि मंगाभिधान" नामक एक कोशग्रंथ लिखा है। कवि चरित्रकार बताते हैं कि यह "बालशारदे", "अभिनव सरस्वति"—नामक बिरुदावली से विभूषित थे। और इन्होंने 'चिंतामणि प्रतिपदा" नामक एक और ग्रंथ भी लिखा है। मंगराज तृतीय "सम्यक्त्व कौमुदी, जयनृप काव्य, नेमि जिन सेन संगति" आदि के कर्ता है। मंगराज चतुर्थ के विषय में डी० एल० नरसिंहाचार्य जी ने परिषत् पत्रिका में एक लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने बताया कि यह अठारहवीं सदी का है और उन्होंने "नागकुमारकथा" नामक काव्य षट्पदी छन्द में लिखा है।

कुमारव्यास युग अथवा षट्पदी युग

बारहवीं सदी में हरिहर और राघवांक ने देशी छन्द का प्रयोग करके कन्नड साहित्य में स्वतन्त्र युग का प्रवर्तन किया और वे इस युग की स्थापना के कारण बने। परन्तु उन्होंने जिस नवीन युग का बीज बोया, वह फूला-फला पंद्रहवीं सदी में। इस बीच की अवधि में जितने लोगों ने काव्य के क्षेत्र में साहित्य निर्माण का कार्य किया, वे सब के सब करीब करीब संप्रदायशरण थे और उन लोगों ने देशी छन्द को साहित्य के क्षेत्र में न तो स्थान दिया, न ही उन छन्दों के प्रति आदर दिखाया। उनकी दृष्टि में देशी छन्द निरे ग्राम्य और साहित्य के सिंहासन पर बिठाने योग्य नहीं थे। इसीलिए तेरहवीं सदी की कृति "सूक्ति सुधार्णव" में हरिहर के "गिरिजा कल्याण" को जो पुरस्कार मिला वह काव्य की दृष्टि से उससे भी अधिक अच्छा "रगळे" को नहीं मिला, राघवांक के षट्पदी काव्यों को भी नहीं मिला। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संप्रदाय का प्रभुत्व कितना प्रभावशाली है और उसका उल्लंघन करना कितना कष्ट साध्य है। आरम्भ में कन्नड साहित्य का जन्म तथा उसका परिवर्धन राजाओं के आश्रय तथा प्रोत्साहन से, राज दरबार के पंडितों से हुआ। संस्कृत साहित्य से चिरपरिचित ये पंडित भाव, भाषा तथा शैली की दृष्टि से संस्कृत का ही अनुसरण करते रहे तो कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। इसलिए उनके द्वारा जो चंपूशैली आरम्भ हुई थी वह अच्छी तरह जड़ जमा चुकी थी। और एक बृहत् वृक्ष बन गयी थी। उसके स्थान पर आम लोगों में प्रचलित ग्राम गीत जैसे छन्दों और गीतों को साहित्य के सिंहासन पर बिठाना तथा आम जनता की ग्राम्य भाषा को पुरस्कृत करना, इन संप्रदायशरण पंडितों के लिए नागवर लगा होगा। कुमारव्यास जैसे अद्वितीय महाकवि ने जन्म लेकर सांप्रदायिकता के इन पुजारियों की इस मूढ़ता को दूर किया।

हरिहर और राघवांक की साहित्य-सृष्टि की पार्श्वभूमि वचन वाङमय थी। यह वचन वाङ्मय वीरशैव धर्म का आधार ग्रन्थ है। वीरशैव वैदिक धर्म के सामने एक सवाल बनकर खड़ा था। उस समय के समसामयिक जैनवाद-साहित्य का अनुशीलन करने पर ऐसा लगता है उनके विचार में इस नवीन मत के प्रति काफी असहिष्णुता रही। इस नव्य साहित्य के लिए वीरशैवेतर साहित्यिकों के द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन न भी मिला हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। कल्याण की क्रांति से वीरशैव धर्म को काफी धक्का लगा। इस क्रांति के कारण वीरशैव के प्रमुख नेता तितर-बितर हो गये थे। इससे उनके साहित्य की सृष्टि कुंठित हो गयी थी, रुक-सी गयी थी। देशी छन्द पर "वीरशैव धार्मिक साहित्य" की मुद्रा लगाकर उसे ताक पर रख दिया होगा। इस सम्बन्ध में एक निश्चित राय देने के लिए कोई आधार नहीं। यह अनुमान मात्र है। हरिहर और राघवांक के साहित्य ने, क्षेत्र में जो क्रांति पैदा की उसका प्रचार होने के पूर्व ही मुसलमानों का आक्रमण हुआ और देश की शांति आलोडित हो गयी थी। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना होकर देश में शांति स्थापित होने के पश्चात् ही कला, साहित्य आदि पुनरुज्जीवित हुए। तब तक की इस

मध्यावधि में मामूली तौर से कन्नड साहित्य छोटे-मोटे राजाओं के आश्रम में इसी सांप्रदायिकता की पुरानी लीक पर आगे बढ़ता जा रहा था। देशी छन्द में जो स्वतन्त्र भावना प्रस्फुटित हुई थी, वह तात्कालिक रूप से रुकी ही रही। राजाश्रय से मुक्त तथा उनकी प्रशंसा से दूर रहकर स्वतंत्र भावना कैसे बढ़ सकती थी ? इसीलिए वीरशैव धर्म का प्रतिनिधि काव्य होकर भी "उद्भट काव्य" चंपू काव्य-बंध की पोशाक ही पहन कर प्रकाश में आया है।

बारहवीं सदी में जो वचन वाङ्मय विकसित हुआ था, उसने बहुत बड़ी तादाद में लोगों को आकर्षित किया था। इसे देखकर ऐसे ही एक दूसरे ढंग से सामान्य जनता को वैदिक धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए ही दास-वाङ्मय का विकास हुआ। इसका जन्म तेरहवीं सदी में हुआ। वैदिक पथियों ने कन्नड भाषा को धार्मिक साहित्य के निर्माण का माध्यम बनाया—यही एक बहुत बड़ी क्रांति थी। अनादिकाल से उनका समस्त धार्मिक साहित्य संस्कृत ही में था। उनका विचार था कि यह धर्म और धार्मिक भाषा संस्कृत—ये दोनों उन्हीं का स्वत्व हैं। संस्कृत को छोड़कर जनता की भाषा में धर्म को उतार लाने से धर्म का प्राशस्त्य घट जाएगा और साथ ही लोकभाषा में कहने से धार्मिक साहित्य के प्रति अपचार होगा, उनकी ऐसी धारणाएँ थीं। संभवतः ऐसी अन्ध-श्रद्धा के कारण इन संस्कृत-निष्ठ धार्मिक भावनाओं को कन्नड के माध्यम से कहने का प्रयत्न किया नहीं गया था। वीरशैव के प्रभाव के बढ़ने के कारण जब वैदिक धर्म के मरने जीने की समस्या उठ खड़ी हुई तब कन्नड का आश्रय लेना अनिवार्य हुआ। संभवतः इसी अनिवार्य स्थिति का परिणाम है यह "दास-वाङ्मय"। एक बार समस्या हल हो गयी तो आगे का कार्य सुगम हो जाता है। इस दास-वाङ्मय ने कन्नड भाषा में वैदिक धर्म-धारा को बहाया तो अब वैदिक वाङ्मय को कन्नड में प्रस्तुत करना सुगम हो गया। मुसलमानों के आक्रमण के कारण देशी छन्द में काव्य निर्माण न होने पर भी रुद्र भट्ट का "जगन्नाथ-विजय" चंपू काव्य के रूप में प्रकट हुआ। विजयनगर राज्य की स्थापना के पश्चात् जब देश में शांत वातावरण स्थापित हुआ, तो देशी छन्दों में वैदिक काव्य ग्रंथों का निर्माण होने लगा। वचन वाङ्मय ने यदि हरिहर को प्रेरणा दी तो दास वाङ्मय से कुमारव्यास को स्फूर्ति मिली।

पन्द्रहवीं सदी के यह कवि कुमारव्यास, एक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति हुए जिनका प्रभाव पन्द्रहवीं सदी के साहित्य से लेकर आगे के पांच सौ साल तक के कन्नड साहित्य पर अक्षुण्ण रहा है। इनके बाद के कवियों ने भले ही उनका स्मरण किया हो या न किया हो, उनके साहित्य का अध्ययन अवश्य किया है। भाव और भाषा उनसे ली अवश्य है। कुमारव्यास से प्रभावित अवश्य ही हुए हैं—किसी न किसी तरह से। पन्द्रहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक काव्य-रचना के क्षेत्र में जिस किसी ने साहित्य सर्जन किया उन सैकड़ो छोटे-बड़े कवियों में एक भी ऐसा नहीं निकला जो इनकी बराबरी कर सके। वह इस दीर्घकाल तक साहित्य-क्षेत्र में एकमेव अद्वितीय कवि बना रहा। एक तरह से पाँच सौ वर्षों के साहित्य पर इनके प्रभाव का अखंड साम्राज्य रहा।

इन पाँच सौ वर्षों का साहित्य कन्नड भाषा के लिए किरीट प्रायः है। इस

लिए इस युग का नाम "कुमारव्यास युग" पड़ा। यह ठीक भी है। इस कवि का व्यक्तित्व और प्रभाव दोनों ने भाषा-भाव और कृतिकर्ता, सब को अपनी आभा के कारण चमका दिया। सम्भवतः ऐसे एक महाकवि के काव्य-कर्म में प्रवृत्त होने के कारण ही, अन्य धर्मियों से अधिक न होने पर भी करीब-करीब उतने ही प्रमाण में वैदिक धर्मियों ने भी विपुल मात्रा में, कन्नड में देशी छन्द में साहित्य निर्माण किया। यह भी देखने को मिलता है कि कभी-कभी वैदिक एवं वीरशैव पंथियों में काव्य-सर्जन के क्षेत्र में स्पर्धा भी चली है।

कुमारव्यास का यह युग एक तरह से संकीर्ण युग है। इस युग में सभी धर्मों के कवियों ने काव्य निर्माण किया है, और सभी छन्दों का प्रयोग काव्यों में हुआ है। कुमारव्यास का अनुकरण करके और अनुसरण करके भी सैकड़ों वैदिक पंथी कवियों ने काव्य रचना की; इतना ही नहीं, दास वाङ्मय भी पद, सुळादि और उगाभोग आदि विभिन्न शैलियों और रूपों में प्रभूत मात्रा में विकसित हुआ, वचन वाङ्मय की तरह इस दास वाङमय ने साहित्य के रूप में शास्त्र एवं धर्म का, खास कर द्वैत धर्म का प्रतिपादन किया। मैसूर के राजघराने के ओडयर के समय में और उसके बाद श्री वैष्णव धर्म ग्रंथों का भी पर्याप्त मात्रा में प्रणयन हुआ। वैदिक साहित्य ही की तरह वीरशैव और जैन धार्मिक ग्रंथ भी काफी मात्रा में, इस युग में, प्रकाश में आये। जैनियों ने अपने चंपू-काव्य-बध का मोह छोड़कर देशी छन्दों को अपनाया। इस युग में वीरशैव साहित्य जैन साहित्य से मात्रा में अधिक बढ़ा। वीरशैव पुराण आकार में बृहत् और परिमाण में महान् होकर समृद्ध रूप में बढ़े। वचन वाङमय भी काफी परिमाण में विकसित हुआ अवश्य, परन्तु उसमें वह नव-नवीन कल्पना नहीं है जो पहले दिखाई पड़ी थी। नवीन वचन साहित्य के निर्माण से भी अधिक प्राचीन वचनों की टीकाएँ ही अधिक प्रकाश में आयीं। कुछ शतक साहित्य का निर्माण हुआ। इस युग का अन्त होते-होते कुछ ऐतिहासिक ग्रंथों का प्रणयन भी हुआ है। यत्र-तत्र कुछ चंपू ग्रंथों का सृजन होने पर भी देशी छन्दों की ही प्रचुरता, इस युग के साहित्य में, है। इन देशी छन्दों में "सांगत्य और षट्पदी" छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। उसमें भी षट्पदी का विशिष्ट स्थान है। इस युग के प्रमुख काव्य हैं—कुमारव्यास भारत, तॉरवे रामायण, प्रभुलिंगलीले, जैमिनी भारत, चन्नबसवपुराण, अनुभवामृत, हरिकथामृतसार—इत्यादि। भामिनि, वार्धक षट्पदियों में ये काव्य निर्मित हैं। इनके अलावा षट्पदी छन्द के अन्य उपभेदों में भी कई काव्य ग्रन्थ रचित हुए हैं। संख्या की दृष्टि से ही नहीं, महत्ता की दृष्टि से भी श्रेष्ठ इन काव्यों को देखकर इसे षट्पदी युग भी कहा जाता है। इस तरह विविधतापूर्ण कुमारव्यास युगीन साहित्य का अभ्यास करने की सहूलियत के लिए इस युग के साहित्य को भिन्न-भिन्न भागों में विभक्त करना अनिवार्य है। इसी अनुशीलन को दृष्टि में रखकर इस युग के साहित्य को वैदिक, वीरशैव एव जैन—यों तीन भागों में विभाजित किया है। आगे के अध्यायों में इन धाराओं पर विचार करेंगे।

कुमारव्यास युग : वैदिक कवि

कुमारव्यास : कन्नड प्रदेश में ऐसा कोई गाँव नहीं जहाँ कुमारव्यास के भारत का पाठ न होता हो; भारत का पाठ सुनकर खुश न हो, ऐसा कोई कर्नाटकी नहीं। राजमहल से लेकर गरीब की झोंपड़ी तक, इस भारत की कीर्ति फैली हुई है। परन्तु इसके लेखक का परिचय लोगों को नहीं है, और उनका समय भी लोगों को निर्दिष्ट रूप से विदित नहीं है। अपने परिचय और समय के सम्बन्ध में कवि मौन है। उन्होंने व्यास भारत के प्रथम दस पर्वों को कन्नड में लिखा है। प्रत्येक पर्व के अन्त में जो गद्यांश लिखा है, उससे यह स्पष्ट होता है कि कवि कर्नाटक राज्य के गदग के वीरनारायण स्वामी का परम भक्त है, और कवि का नाम कुमारव्यास तथा कृति का नाम "कर्नाट भारत कथा मंजरी" है। कवि ने अपने को "कुमारव्यास योगीन्द्र", "कुमारव्यास मुनि", "शुकरूप" कहा है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि वह संन्यासी रहे होंगे। संभवत: "कुमारव्यास" नाम भी माता-पिता के द्वारा दिया न होकर कवि के संन्यास आश्रम-ग्रहण करने के पश्चात् का अथवा काव्यनाम हो सकता है। उनका लौकिक नाम "नारणप्पा" है और उनकी कृति का नाम "गदुगिन भारत" है। रूढ़िगत होकर प्रचलित इस नाम से ऐसा लगता है कि उनका नाम "नारणप्पा" ही होगा। गदग तथा उसके आस-पास के निवासियों का कहना है कि यह नारणप्पा गदग के निकटस्थ "कोळिवाड" नामक गाँव के निवासी हैं। यह गाँव कवि के वंशजों को विजयनगर राजाओं के द्वारा प्रदत्त जागीर है। इस वंश के मूल पुरुष का नाम "चिन्नद कैय माधवरस" है; इनका पुत्र "तिरुमलय्या"; इस तिरुमलय्या का बेटा "लक्ष्मणदेव या लक्करस" है। इसी लक्ष्मणदेव या लक्करस का पुत्र है "वीरनारायण"। यह लक्करस विजयनगर के राजा देवराय प्रथम (1406-1422) के यहाँ मंत्री रहा। उनके पाँच लड़कों में वीरनारायण ही ज्येष्ठ है। यह वीरनारायण गदग के वीरनारायण-स्वामी का प्रासादिक पुत्र है। यही "भारत" का लेखक कुमारव्यास है—ऐसा कहा गया है। (कुमारव्यास प्रशस्ति, कालविचार-अनुबंध, पृष्ठ 22-23 देखें)

कुमारव्यास का समय बारह और सोलहवीं सदियों के बीच झूल रहा है। कवि राघवांक के "हरिहर महत्त्व" को कुमार व्यास ने सुना था—ऐसी एक दंतकथा प्रचलित है। इस दंतकथा पर यदि विश्वास करें तो यह मानना पड़ता है कि कुमार-व्यास बारहवीं सदी का है। परंतु उनके काव्य की भाषा का अनुशीलन करने से लगता है कि यह सम्भव नहीं हो सकता। यदि यह बात सत्य हो कि उन्होंने व्यासराय और पुरंदरदास को देखा था तो यह मानना पड़ता है कि वह सोलहवीं सदी के मध्य में रहे। मगर ई० सन् 1500 के करीब के कुमार वाल्मीकि और ई० सन् 1510 के तिम्मण्ण कवि—इन लोगों ने कुमारव्यास की प्रशंसा की है। इससे यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि यह कवि ई० सन् 1500 से पूर्व का है। "गुरु बसव चरित्र", "चोर बसव चरित्र" आदि वीरशैव पुराण ग्रन्थों में कुमारव्यास की पत्नी चामरस नामक कवि की बहन थी—ऐसा कहा गया है। इसी को आधार मान कर कवि

चरित्र के लेखकों ने कुमारव्यास का काल निर्णय ई० सन् 1430 माना है। परन्तु ई० सन् 1424 के करीब के भास्कर कवि पर, जिन्होंने "जीवंधर चरित्र" लिखा है और उसमें कुमार व्यास के भारत का स्पष्ट अनुकरण लक्षित होता है, इन कारणों से यह माना जा सकता है कि कुमारव्यास का समय ई० सन् 1400 के करीब का है।

कुमारव्यास किस जाति (मत) का था—इस सम्बन्ध में काफी वाद-विवाद चले हैं। कुमारव्यास को किसी ने वीरशैव माना है तो किसी ने ब्राह्मण माना है और किसी ने ब्राह्मणों में स्मार्त ब्राह्मण कहा है तो किसी और ने वैष्णव कहा है; किसी ने उन्हें भागवत संप्रदाय का माना। इस तरह कुमारव्यास की जाति के सम्बन्ध में काफी चर्चा चली है। जिस तरह वेद उपनिषद् और गीता की व्याख्या भिन्न-भिन्न मतावलंबी द्वारा अपने-अपने पंथ या संप्रदाय या सिद्धांत के अनुसार की जाती है वैसे ही कुमार-व्यास के भारत की भी भिन्न-भिन्न मत संप्रदायों के अनुसार व्याख्या की जा सकती है। उदार मनोवृत्ति रखनेवाले सहृदयों के लिए "कुमारव्यास भारत" में सर्वधर्म सम्मेलन दृष्टिगत होता है। अनन्य भक्ति से विष्णु की स्तुति और उसी निष्ठा से शिव की स्तुति भी उन्होंने की है। उनके काव्य में द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, ज्ञान-भक्ति-कर्म मार्ग सभी कुछ है। वीरनारायण का अंकित देकर काव्य रचने के कारण हो सकता है कि यह ब्राह्मण ही हो। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि उनकी जाति के विषय में वाद-विवाद करें। सभी ओर से पौष्टिक खाद्य लेकर पुष्ट और प्रबुद्ध गगनचुंबी महावृक्ष की तरह समस्त धर्म-मतों का सारसर्वस्व ग्रहण कर सारस्वत-भंडार में भरने वाले इस कवि के मत-धर्म आदि के बारे में चर्चा व्यर्थ है। वह सब का है, सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। समस्त शास्त्र आगम पुराणों को करतलामक्त बनानेवाले महाव्यक्ति हैं—कुमारव्यास। ऐसे महाव्यक्ति के विषय में मत या धर्म का निदेश आवश्यक नहीं है। अपने महाकाव्य के द्वारा कर्नाटकियों की कीर्ति-पताका को गगनचुम्बी बनाकर फहराने वाला यह कवि कन्नड-कुल का है और यह कवि एवं उनकी कृति दोनों कर्नाटकियों के लिए बहुत बड़ी सम्पत्ति है। गर्व का विषय है।

कुमारव्यास की असाधारण कविता शक्ति के मूल में, अलौकिक शक्ति की ओर संकेत करने वाली, एक दंत-कथा प्रचलित है। वह यों है: "उनके (कुमार-व्यास के) गाँव कोळिवाड के पास के एक गाँव में ब्राह्मण-भोजन चल रहा है। उस समय ब्रह्मणों की पंक्ति में एक बालक दोने के लिए जिद् कर रहा है। पास में बैठे दूसरे ब्राह्मण ने यह कहते हुए कि "इसका हठ दुर्योधन का हठ है"—कह कर डांटा। इसे सुनकर पास में बैठा एक दूसरा ब्राह्मण आँसू बहाता हुआ वहाँ से उठा और चला गया। इसे देखकर नारणप्पा ने उस ब्राह्मण का पीछा किया। वह ब्राह्मण कोई साधारण नहीं था, वही चिरंजीवी अश्वत्थामा था। यह अश्वत्थामा अपने मित्र दुर्योधन की ऐसी निंदा सुनकर रो पड़ा। उस ब्राह्मण ने नारणप्पा को भारत का उपदेश दिया और कहा कि "यदि तुमने दूसरों से तेरे-मेरे इस मिलन की बात को प्रकट किया तो तेरा सिर हजार टुकड़े होकर फट जाएगा और तुम मर जाओगे।" —यह बात कह वह ब्राह्मण अदृश्य हो गया। उस दिन से नारणप्पा सुबह स्नान आदि से निवृत्त होकर गीले कपड़े पहन कर, अप्रयास ही उनके मुँह से निःसृत होने वाली

भारत कथा को, लिखने लगता। तब तक लिखता जब तक तक गीला कपड़ा शरीर पर नहीं सूख जाता। जब तक कपड़ा गीला रहता तब तक नारणप्पा भावाविष्ट रहता। कहा जाता है कि कपड़े के सूखने के साथ-साथ उनका कवितावेश शांत हो जाता। आज भी गदग के वीरनारायण स्वामी के मंदिर में "महाभारत खंभा" (स्तंभ) और "वीरनारायण खंभा" (स्तंभ) के नाम से विख्यात दो पत्थर के स्तंभों को स्थानीय लोग दिखाते हैं। कहा जाता है कि इन्हीं खंभों के पास बैठकर नारणप्पा भारत कथा को लिखा करते थे। यह कथा चाहे सच हो या न हो, इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कवि ने भगवान् की सन्निधि में बैठकर, अपनी भक्ति एवं तन्मयता से, भगवान की प्रेरणा से आविष्ट होकर इस महाकाव्य का निर्माण किया है। कवि अपने काव्य के आरम्भ में स्वयं बताते हैं कि "वीरनारायण स्वामी ही कवि हैं और लिपिकार कुमारव्यास है।" ऐसा कहना उनकी विनम्रता मात्र नहीं बल्कि जैसे स्वयं वीरनारायण भगवान का प्रासादिक पुत्र है वैसे ही उनकी वाणी भी उस भगवान ही का प्रसाद है। यह भगवद्वाणी-सा पवित्र, भव्य और दिव्य है—यह बात भी इससे ध्वनित होती है। इस भावनापूर्ण आवेश की भूमि पर इस महाकाव्य की भूमिका कवि ने लिखी है। उन्होंने पीठिका (भूमिका) संधि के इस पद्य में यों लिखा है—

"हलगॆ बळपव पिडियदॊन्द
ग्गळिकॆ पदविट्टळुपदॊन्द
ग्गळिकॆ पररॊड्डवद रीतिय कॊळ्ळदग्गळिकॆ
बळसि बरॆयल् कंठ पत्रद
उलुहु गॆडदग्गळिकॆयॆम्बी
बलुहु गदुगिन वीरनारायणन किंकरगॆ."—

अर्थात्—"खड़िया-पाटा (मतिकागद) छुआ नहीं, एक शब्द लिखने के बाद उसे काटा नहीं, दूसरों की बातों को लिया नहीं, लिखते समय ताड़ पत्र को फाड़ा नहीं—यह सारा अनुग्रह इस सेवक पर भगवान् वीरनारायण देव का है।" यह उनकी गर्वोक्ति नहीं है। उनकी कविता शक्ति केवल पांडित्य प्रदर्शन नहीं, केवल प्रतिभा का विलास नहीं, केवल कल्पना का खेल नहीं केवल लोकानुभव नहीं, मगर इन सब का समाहार है और यह ईश्वरानुग्रह है।

कुमारव्यास भारत-रचना के कार्य में हाथ लगाने के बारे में अपना ही एक विशिष्ट कारण बताते हैं। वे कहते हैं कि "आदिशेष अपने सहस्र मुखों से भी श्रीरामचंद्र की कथा का वर्णन कर नहीं सकते, ऐसी हालत में कोई कवि रामायण में हाथ कैसे लगावे? इसलिए भारत कथा के लेखन में हाथ लगाया।" केवल यही एक कारण नहीं हो सकता। उनका यह भी एक कथन है—"व्यास महर्षि रचित महाभारत के विषय में एक सूक्ति प्रचलित है—यन्न भारते तन्न भारते।" अर्थात् जो भारत में नहीं वह दुनियाँ में ही नहीं। इतना गरिमामय है यह ग्रंथ। अनेक क्लिष्ट धार्मिक समस्यओं के लिए समुचित उत्तर इस भारत में मिलता है धर्म विषयक आधार ग्रंथ है यह। इसलिए यह पंचमवेद है। जितना यह धर्म ग्रंथ है उतना ही यह इतिहास भी है। तत्कालीन भारत की संस्कृति, और सभ्यता का तथा समग्र भारतीय जीवन का इतिहास इससे मालूम होता है। इस कृति के कर्ता

महर्षि व्यास कुरुवंश को सर्वनाश से बचाने वाले हैं। एक तरह से उस वंश का मूल पुरुष होकर उसकी तीन पीढ़ियों की उन्नति-अवनति का प्रत्यक्ष साक्षी हैं। एक अच्छे और सत्यवादी इतिहासकार की तरह हमेशा सत्य ही को दृष्टि में रखकर किसी तरह का पक्षपात किये बिना स्वानुभव के आधार पर जैसा देखा वैसे ही लिख कर कृतकृत्य हुआ है यह महापुरुष। इनकी कृति को "पुराण" की मुद्रा लगाकर वाल्मिकीय रामायण को "आदिकाव्य" का सेहरा पहनाया है—ऐसा प्रतीत होता है। अपौरुषेय कहलाने वाले वेदों मे जड़ जमाकर, वेद की ही तरह श्रुति परम्परा में प्रवाहित होकर सैकड़ों धर्म जिज्ञासाओं और उपाख्यानों को आत्मसात् करते हुए एक लाख श्लोकों वाले एक महासागर-सा है, यह ग्रंथ। महत्त्व की दृष्टि से तथा आकार की दृष्टि से भी इससे महान् ग्रथ आज तक पैदा नहीं हुआ है। यह भारतीयों के लिए एक सन्मान्य तथा पूज्य ग्रंथ है। इसकी बराबरी कर सकने वाला और जनप्रिय ग्रंथ यदि कोई और है तो वह रामायण है। रामायण का सम्बन्ध त्रेतायुग से है जबकि धर्मधेनु तीन पैरों पर खड़ा था। इसके (रामायण के) पात्र ऐसे आदर्श-व्यक्ति हैं जिनका अनुकरण आज असाध्य है। ये पात्र "दूरतः पर्वतो रम्यः"—याने दूर के ढोल की तरह सुहावने हैं। परन्तु भारत की बात ऐसी नहीं। भारत के पात्र हमारे निकट के व्यक्ति हैं। इनका अनुकरण साध्य है। कुमारव्यास ने सम्भवतः भारत की रचना करने का कार्य इसी कारण से अपने हाथ में लिया होगा।

कुमारव्यास ने व्यास भारत को आमूलाग्र बार-बार पढ़कर उसका रसास्वादन ही नहीं किया है बल्कि उसे करतलामलक समान वाचोविधेय बना लिया है—इसमें कोई संदेह नहीं। इस (भारत) के विशालकाय को संक्षिप्त बनाने का प्रयत्न पग-पग पर किया ही नहीं, कई स्थानों पर मूल संस्कृत का अनुवाद भी किया है। कहीं-कहीं किसी-किसी प्रसंग का निचोड़ ही सग्रह में दिया है। ऐसा विधान युद्ध-पंचक से आदि-पंचक में विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। फिर भी हम उन्हें केवल अनुवादक अथवा संग्रहकर्ता नहीं कह सकते। वह एक विशिष्ट शक्तिशाली स्वतंत्र कवि हैं। अपनी सूझ-बूझ के अनुसार मूल कथा के कुछ अंशों को अनावश्यक समझ कर छोड़ भी दिया है। कुछ स्थानों पर मूल कथानक में परिवर्तन भी कर डाला है। कुछ नवीन विषयों को, जो मूल में नहीं हैं, अपने काव्य में सम्मिलित किया है। कभी-कभी मूलकथा में से "अंबोपाख्यान, विदुलोपाख्यान, हरिश्चन्द्र याग, सांदीपिनी कथा, नरकासुरवध" सम्बन्धी उपाख्यानों को छोड़ दिया है। यदि कहीं कथा प्रवाह की दृष्टि आवश्यक प्रतीत होने पर किसी उपाख्यान को एक-आध पद्य में संग्रह रूप से कह दिया है। दुर्योधन के साथ अनिवार्य रूप से सम्मिलित होने वाले शल्य की बहन के बच्चों को देखने तथा उन्हें सांत्वना देने के इरादे से पांडवों के पास आये नहुष की कथा को विस्तृत रूप से दस पर्वों (अध्यायों) में फैलाया है, व्यास भारत में। कुमारव्यास ने इतनी विस्तृत नहुष कथा को आधे पद्य में ही समाप्त कर दिया है। कभी-कभी किसी कथा को मूल में जहाँ स्थान दिया है वहाँ से स्थानच्युत करके कहीं अन्यत्र दे दिया है। याने संधि पर्व में आने वाली "कर्ण का शस्त्र-संन्यास एवं उलूक दौत्य" के उपाख्यानों को कवि ने भीष्म पर्व की प्रथम संधि में दिया है। यों भारत की कथा के उपयोग में कवि ने जिस स्वतन्त्रता का व्यवहार किया है उतनी ही स्वतंत्रता उनके

कथा निरूपण के विधान में भी है। इस कारण से उनका काव्य चिरनूतन बना हुआ है।

महर्षि व्यास के 'भारत' को सर्वप्रथम कन्नड में प्रस्तुत करनेवाले हैं आदिकवि पंप। सभी पूर्व-कवियों की कृतियों की परवाह न करके महाकवि पंप लिखित उसी भारत को पुन: कन्नड में लिखने का साहस करना साधारण व्यक्ति से सम्भव नहीं। ऐसे ही असाधारण व्यक्ति यह कवि कुमारव्यास है। यदि हिमालय पर गौरीशंकर हो तो उस पर एक धवलगिरि को रहना नहीं चाहिए ? कुमारव्यास ने पंप महाकवि के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर उनकी बराबरी में खड़े हैं। उसी भारत को अपने ढंग से प्रस्तुत करके प्रशंसा के पात्र बने हुए हैं। ये दोनों महाकवि हैं; वर कवि हैं; दोनों ने व्यास महर्षि को पुष्पांजलि समर्पित करके काव्य निर्माण में हाथ लगाया है। दोनों ने अपने काव्य-कर्म का निर्वहण अत्यंत स्तुत्य रीति से किया है। आदरणीय बने हुए हैं। परन्तु कृति-वस्तु को दोनों ने अपनी-अपनी दृष्टि से देखा है। वस्तु निरूपण का ढंग भी दोनों का भिन्न है। महाकवि पंप अरिकेसरी के दरबारी कवि, सेनापति तथा मित्र था। उन्होंने काव्य निर्माण किया भारत देश के वीरयुग में। उनकी कृति में कवि की काव्य-शक्ति के साथ पौरुष भी समाविष्ट है, इसलिए उनके काव्य में वीररस की धारा फेनिल होकर बही है। कुमारव्यास का स्वभाव भिन्न है और सन्निवेश अलग है। उनका काल भक्तियुग है। शिव शरणों एवं हरिदासों ने देश के कोने-कोने में भक्ति गंगा बहाकर हरा-भरा कर दिया था। कुमारव्यास ने राजाओं का आश्रय नहीं लिया। उन्होंने राजाओं को देखा भी नहीं था। उनकी काव्य-रचना की प्रेरक-शक्ति गदग के वीरनारायण भगवान् है। इसलिए उनके काव्य में भक्ति गंगा भरपूर बही है।

कवि पंप के श्रोता राजदरबार के दरबारी और सभासद् हैं। इसलिए उनके काव्य में प्रौढ़ता, पांडित्य और गांभीर्य, दृष्टिगोचर होते हैं। दस वाक्य कहने की जहाँ आवश्यकता हो वहाँ एक ही वाक्य कहेंगे। ऐसी ही उनकी प्रवृत्ति है, इतनी गंभीर-प्रकृति उनकी है। उनकी बातें सूत्रवत् हैं, सग्रह एवं सारवान् हैं। कवि कु० वें० पु० के कथनानुसार पप कवि "काव्य-रसिकों का कल्पतरु" हैं; कुमारव्यास की रीति ही अलग है। वह साधारण पढ़े-लिखों के लिए भी "कामधेनु" हैं। कुमार-व्यास के श्रोता "जनता-जनार्दन" हैं। जनता-जनार्दन की पहुँच की भाषा, लिखने की रीति और छन्द हैं कुमारव्यास की। साधारण पाठक अच्छी तरह समझ जाय-- यह विश्वास जब तक न हो तब तक उन्हें शांति नहीं। कुमारव्यास का भारत परिमाण में पंप-भारत से चौगुना बड़ा है। जहाँ पंप कवि ने जरासंधवध के प्रसंग को एक पद्य में कहकर समाप्त किया है वहाँ नारणप्पा (कुमारव्यास) ने 129 पद्यों में इस प्रकरण को समाप्त किया है। पंप कवि ने शिशुपालवध के प्रकरण को 12 पद्यों में समाप्त किया है तो नारणप्पा (कुमारव्यास) ने इस प्रसंग को चार संधियों में फैलाया है।

पंप कवि और कवि कुमारव्यास इन दोनों की काव्य दृष्टि में बहुत बड़ा अन्तर एक और है। पंप कवि की काव्य-वाहिनी की एक शाखा है भारत। उनकी दो प्रसिद्ध कृतियाँ हैं; एक, "आदि पुराण", और दूसरा "भारत"। उनकी प्रतिज्ञा

के अनुसार काव्यधर्म और धर्म दोनों से परिपुष्ट कृति "आदि पुराण" है। भारत की रचना का आरम्भ ही "बेंळगुवेंनिल्लि लौकिकमं" अर्थात् "यहाँ लौकिक धर्म कहूँगा" —इस निश्चय के साथ हुआ है। भारत में कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें एक जैन कवि हजम नहीं कर सकता। वह व्यास रचित भारत को कन्नड में लिखने बैठा है। उस भारत का आंतरिक रूप समस्त भारत है, विक्रमार्जुन विजय है। पांच पतियों की पत्नी पांचाली यहाँ अर्जुन की धर्म-पत्नी बनने चली है। परन्तु अपने प्रयत्न में असफल हो कर कथा-प्रवाह की लपेट में आकर लाचार हो पांचों का आश्रय ग्रहण करती है। श्रीकृष्ण पूर्णतया अज्ञात न होने पर भी अल्पज्ञात होकर अपनी गरिमा व महिमा पर कैंची लगने पर भी चुपचाप इस अपमान को सह गया है। कवि ने जहाँ अनिवार्य हो वहाँ श्रीकृष्ण का क्वचित् उपयोग किया है और जहाँ ऐसा उपयोग हुआ है वहाँ कृष्ण के व्यक्तित्व और महत्त्व के प्रति समुचित आदर दिखाया भी है। इस कारण से कवि की यह कृति 'भारत', धर्म और दर्शन की दृष्टि से वंचित हुआ है। नारणप्पा (कुमारव्यास) की दृष्टि इससे भिन्न है। काव्य शक्ति के साथ समन्वित धर्म-दृष्टि का पूर्ण प्रवाह इनकी कृति में बह चला है। इस वजह से कुमारव्यास का 'भारत' एक अलौकिक प्रभावलय से आवेष्टित होकर दैदीप्यमान है। इस कवि के लिए 'भारत' कौरव-पांडवों के इतिहास से भी अधिक "श्रीकृष्णचरित" बन गया है। कुमारव्यास भक्त कवि हैं; भक्ति भाव के आवेश में आकर उफनने वाली गगनचुंबी भावों के साथ उमड़ने वाली उनकी काव्य-सरिता से तुलना कर सके, ऐसी कोई काव्य कन्नड में नहीं है।

पंप और कुमारव्यास दोनों के अलग-अलग किस्म के व्यक्तित्व है; कुमार-व्यास ने अपने से प्राचीन कवि पंप का अनुसरण नहीं किया है, तो भी उनकी कृति का पर्याप्त मात्रा में परिचय प्राप्त कर लिया था—ऐसा लगता है। महर्षि व्यास के 'भारत' में दिखने वाले एक-दो सुन्दर प्रसंग पंप भारत में दिखते हैं; और वे ही प्रसंग कुमारव्यास के भारत में भी दिखते हैं। श्रीकृष्ण संधि-सधान के निमित्त हस्तिनापुर जाते हैं, तब राजा दुर्योधन के आतिथ्य को स्वीकार न करके दरिद्र विदुर के घर जाता है। इससे दुर्योधन कुपित होता है और जब संधि-सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित होता है तब साफ इनकार करते हुए कहता है कि "इस दासी पुत्र के घर का खाना तुमसे ऐसी बातें कहलवा रहा है।" इस बात को सुनकर विदुर कुपित होकर कहता है—"क्रुद्ध भीम तुम पर झटपट कर जब तुम्हारी जांघों को तोड़ने का प्रयत्न करेगा—उस विषम परिस्थिति में तुम्हारी रक्षा करने के निमित्त इस धनुष को रखा था। अब इस धनुष को छूऊंगा तक नहीं।" यों कहकर भरी सभा में अपने उस धनुष को तोड़ डालता है। पंप भारत के इस प्रसंग को कुमार व्यास ने सरल बनाकर कहा है—ऐसा लगता है। कौरव कृष्ण की बातों की हँसी उड़ाता हुआ कहता है—

"ई कृपन ई द्रोणनी गं
गा कुमार न मनेंय हॊगदवि
वेकि तॊत्तिन मगन मनेंयलि हसिव नूकिदिरि."
निमगेक रायर ठीवि—"

कि "कृपाचार्य, द्रोण यह गंगापुत्र आदि के होते हुए उस दासी-पुत्र के घर में आकर भूख बुझायी; राजाओं का-सा बड़प्पन आपको क्यों ?"—कुरुराज की इन कटूक्तियों को सुनकर विदुर कहते हैं—

> "कुरुपतिय बिरुनुडिय केळिदु
> करणदलि कोपाग्नियुक्कलु
> कॆरळि निर्भीतियलि नुडियनु विदुर नरसंगॆ."—

कुरुपति की ऐसी क्रोधभरी बातें सुनकर बहुत दुखी होकर गुस्से से विदुर ने निडर होकर यों कहा—

> "कडु मुळिदु कलि भीम निन्नय
> तॊडॆगळनु मुरिवा समयदलि
> बिडदॆ निन्ननु कायबेकॆन्दुळुहिदॆनु शरव,
> कॆडॆनुडिसिकॊण्डिन्नु कावॆनॆ
> पॊडविपति बेळॆन्दु विदुरनु
> हिडिद बिल्लनु मुरिदना कुरुसेनॆ कळवळिसॆ।"

कि—"क्रोधित होकर जब भीम तुम्हारी जांघों को जब तोड़ने लगेगा उस वक्त तुम्हारी रक्षा करने के लिए इस धनुष को मैंने अपने हाथ में ले रखा था; तुम्हारे मुँह से ऐसी कड़वी बातें सुनकर अब मेरी वह इच्छा नहीं होती। लो, इस धनुष को तोड़ दूँगा। यों कहते हुए भरी सभा में अपने उस धनुष को तोड़ ही डाला।"

पंप कवि के एक छोटे कंद (चार पंक्तियों वाला एक छोटा देशी छंद) पद्य के स्थान पर कुमारव्यास के डेढ़ भामिनी षट्पदी है। (उपर्युक्त 9 पंक्तियाँ भामिनी षट्पदी के हैं।) संधि-संधान में असफल होने पर श्रीकृष्ण कर्ण से मिलते हैं और उनसे उनके जन्म वृत्तांत के बारे में कहते हैं। यह वृत्तांत सुनने के बाद कर्ण अपनी माता कुंती देवी से गंगा तीर पर मिलते हैं। उसी समय गंगा देवी प्रत्यक्ष होती है और बेटे को माता के सुपुर्द करती है। पिता सूर्य देव भी प्रत्यक्ष होते हैं। सूर्यदेव पुत्र कर्ण से कहते हैं कि "कृष्ण के आदेश के अनुसार माता कुंतीदेवी तुमसे कुछ मांगने आयेगी, तब माँ की बातें सुनकर बहक नहीं जाना।"—व्यास महर्षि के 'भारत' में न दिखने वाला यह प्रसंग पंप 'भारत' में है और कुमारव्यास के भारत में भी है। इन सबको देखने पर ऐसा लगता है कि कुमारव्यास ने पंप भारत को अवश्य ही पढ़ा होगा। उनकी भाषा-समृद्धि को देखने पर ऐसा लगता है कि उनका काव्याभ्यास भी काफी विस्तृत है। संस्कृत और कन्नड के भारतों में अन्यत्र कहीं न दिखने वाले कुछ प्रसंग नारणप्पा (कुमारव्यास) के भारत में दिखाई पड़ते हैं। संधि-संधान के लिए आये हुए श्रीकृष्ण जब कौरव सभा में प्रवेश करते हैं तब कुमति (दुर्योधन) कौरव उनकी परवाह न कर सिंहासन पर बैठे ही रहते हैं। तब

> "सॊणसु सेरद देवनिदिरलि
> मणियदातन काणुतवॆ धा
> रिणियनॊत्तिदनुंगुटद तुदियिन्द नसुनगुत."—

अर्थात्—"लापरवाही को बर्दाश्त न करने वाले, प्रत्यक्ष खड़े श्री कृष्ण ने दुर्योधन के इस बरताव को देखकर मंदहास के साथ अपने पैर के अंगूठे से भूमि को दबाया।"

इस तरह दबाने से कौरव के सिंहासन का पैर टूटा और लुढ़ककर वह श्री कृष्ण के पैरों पर गिरा। श्री कृष्ण के इस महिमा-प्रसंग के लिए महाकवि भास का 'दूतवाक्य' प्रेरक रहा होगा। उनका काव्य जितना विस्तृत है उतना ही विस्तृत है उनके प्रज्ञा-वलय के अन्दर का वस्तु संग्रह। कवि के वस्तु ज्ञान की व्याप्ति का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

कन्नड के आधुनिक कवि कु० वें० पु० ने कुमारव्यास के बारे में कहा है—"कुमारव्यास गाने लगे तो कलियुग द्वापर बनेगा और भारत आँखों के सामने नाचने लगेगा एवं देह के अन्दर विद्युत का वेग उत्पन्न होगा यानी साहसपूर्ण स्फूर्ति पैदा होगी।"—कु० वें० पु० की यह बात अत्युक्ति-सी लगने पर भी काव्य का आमूलाग्र अध्ययन करने पर उनकी यह बात सत्य प्रतीत होगी। कुमारव्यास अपनी कविता शक्ति के जाल में पाठक को फंसाकर आत्म विस्मृत करके द्वापर युग के वातावरण में ले जाकर खड़ा कर देता है। महाभारत के सारे पात्र हमारे अंतश्चक्षु के सामने सजीव होकर नाचने लगते हैं। इस दिव्य झांकी से हम रोमांचित हो उठते हैं। कुमारव्यास अपनी कविता शक्ति के प्रभाव से रस भावों की अमृतवाहिनी बहाकर द्वारपयुग के जीव-जगत् में एक नवीन चेतना को उत्पन्न कर देता है। परकाय प्रवेश करने वाले की तरह द्वापर के उन सभी व्यक्तियों के स्वभाव की सूक्ष्मता, भावावेग, विचार सरणि आदि प्रत्येक पहलू से परिचित कराता ही नहीं बल्कि उनकी मौनवाणी को संगीत का जामा पहनाकर श्रुतिमधुर एवं हृदयंगम रीति से कवि गाता है।

कुमारव्यास का 'भारत' भिन्न-भिन्न स्वभाव के मानवों की एक प्रदर्शन शाला है। ऐसा कोई चरित्र नहीं जो इस महाकाव्य में न हो। देव, दानव, मानव, गंधर्व सभी इस महाकाव्य के पात्र हैं; इतना ही नहीं इनमें चक्रवर्ती-राजा से लेकर साधारण नौकर-चाकर तक के सभी स्तरों के, सभी तरह के गुणों वाले, स्त्री, पुरुष और बच्चे भी—सभी का चरित्र इसमें चित्रित है। भीष्म-द्रोण जैसे उन्नत स्तर के महामहिमाशाली, कर्ण जैसे त्यागी परन्तु दुर्दैवी, शल्य और भीम जैसे महान पराक्रमी, अर्जुन, अभिमन्यु और अश्वत्थामा जैसे वीर पुरुष, युधिष्ठर जैसे निर्मल चित्त व्यक्ति, विदुर जैसे ज्ञानी, दुर्योधन जैसे अभिमानधनी शूरवीर, कीचक जैसे नीच, शकुनि के जैसे कुतंत्री, उत्तर कुमार जैसे बातूनी, कुंति द्रौपदी गांधारी जैसी शीलवती क्षत्राणियाँ—इसमें देखने को मिलेंगे। इन सभी पात्रों का सूत्रधार है श्रीकृष्ण। कवि ने अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण को केन्द्र बनाकर उनकी चारों ओर इन सभी भारत के पात्रों की रुद्र एवं रमणीय लास्यलीला का सृजन किया है। कृष्णभक्ति के आवेश में अपने को विस्मृत करके कवि इस बात को भूल गया है कि वह जो लिख रहा है सो कुरुवंश की कथा है। "कृष्ण कथा को समझाकर कहूंगा"—कहकर उन्होंने अपने काव्य का आरम्भ किया है। उनकी दृष्टि में श्रीकृष्ण ही उनकी कथा का नायक है, वही सम्पूर्ण भारत की प्रेरक शक्ति है, सब कुछ वही है। श्रीमान् एस. वी. रंगण्णा की राय में वही भारत का नायक, वस्तु, जीव और सौंदर्य सब कुछ है।

कुमारव्यास के भारत में हमें द्रौपदी-स्वयंवर के अवसर पर श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं सबसे पहले। स्वयंवर के समय आये हुए सभी राजाओं का परिचय

धृष्टद्युम्न अपनी बहन द्रौपदी से कराते हैं; तब श्रीकृष्ण का भी परिचय कराते हैं। कहते हैं कि यह श्रीकृष्ण अन्य सब राजाओं की तरह साधारण व्यक्ति नहीं राक्षस रूपी रंभावन के लिए मस्त हाथी और वेद वन्द्य हैं, भगवत्-स्वरूप हैं। यह सुनकर द्रौपदी के मन में उनके प्रति भक्तिभाव उत्पन्न हुआ, और भक्ति के उद्रेक से रोमांचित होकर उसने मन ही मन प्रणाम किया। कृष्ण को देख प्रणय के भाव न जगे। उस दिन द्रौपदी पांच पांडवों की धर्म-पत्नी बनी। उसी दिन रात को श्रीकृष्ण पांडवों से मिले और उनके अपने बीच का बांधव्य समझाया। माता कुंति ने उसी दिन अपने बच्चों को श्रीकृष्ण के हाथ सौंपा। श्रीकृष्ण ने उन्हें अभयदान दिया। उसी दिन से पांचों पांडव श्रीकृष्ण के दुष्ट शिक्षण और शिष्ट रक्षण के कार्य में लगे।

पांडवों से परिचित होने के बाद श्रीकृष्ण सर्वदा उनके दुख-सुख में साथ बने रहे। इन्द्रप्रस्थ में जब युधिष्ठिर सिंहासनारूढ होते हैं तब श्रीकृष्ण उपस्थित रहते हैं; अर्जुन देश-भ्रमण के लिए जब निकलता है तब सुभद्रा पर मोहित हो उससे विवाह करते हैं; तब भी कृष्ण हाजिर हो जाते हैं; असल में अर्जुन और सुभद्रा के विवाह में उन्हीं का हाथ है। खांडववनदहन के प्रसंग में अर्जुन को प्रोत्साहन देने वाले हैं श्रीकृष्ण। मय से सभा भवन का निर्माण कराना भी उन्हीं की सलाह से होता है। नारद ने आकर युधिष्ठर को राजसूय यज्ञ करने के लिए प्रेरित करता है, इस मुनि नारद के जाल में फँसे युधिष्ठिर को बचाने का काम भी श्रीकृष्ण ही का है। भीमार्जुन यज्ञ के इस कार्य मे कटिबद्ध होकर मुस्तैद थे, फिर भी श्रीकृष्ण को कहला भेजा। श्रीकृष्ण इस आह्वान को स्वीकार करने के पहले यह सोचता है कि यदि कंस और शिशुपाल इस यज्ञ मे बाधा उपस्थित तो करेंगे ही। ऐसी हालत में जो करना हो सो तो किया जायगा। फिर भी यह जगन्नाटक सूत्रधारी है, कुछ तमाशा देखना चाहते है। इसलिए भीमार्जुन के क्षात्र की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उन्हें छेड़ते हैं। श्रीकृष्ण का अनुमान ठीक निकला। जैसा उन्होंने समझा था वैसा ही हुआ। कंस के मामा जरासंध के संहार के लिए रंग तैयार हो गया। कुपित भीम गरजने लगा। अर्जुन हुंकारने लगा। यह देखकर युधिष्ठिर चिंतित हुआ, श्रीकृष्ण ने उनकी चिन्ता का निवारण किया; और भीम और अर्जुन को जरासंध के पास ले गये; मल्लयुद्ध शुरू हुआ; श्रीकृष्ण ने इशारे से जरासंध को मारने का उपाय सुझाया। उनको मरवाकर अपने आगमन के उद्देश्य का एक आधा अंश पूरा कर लिया।

अगर श्रीकृष्ण संतुष्ट हो तो कौन-सा कार्य दुःसाध्य है? पांडवों ने समस्त भूमंडल को जीतकर राजसूय यज्ञ को पूरा किया, बड़े वैभव के साथ। यज्ञ की समाप्ति पर अग्रपूजा का प्रसंग आया। श्रीकृष्ण की अग्रपूजा की तैयारी हुई। शिशुपाल ने घोर विरोध किया। वह क्रोधाभिभूत हो तलवार खींचकर खड़ा हो गया। शिशुपाल को कठोर वचन सुनकर सारी सभा में खलबली मच गयी। तब वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध भीष्म ने उठ खड़े होकर उपस्थित सभी सभासदों को संबोधित करके श्रीकृष्ण की महिमा बतायी। फिर भी शिशुपाल ठीक रास्ते पर नहीं आये। ज्ञानवृद्धों के वचनों की कोई परवाह ही नहीं की। शिशुपाल और उनके अनुयायी यज्ञ-नाश करने के लिए तैयार हो गये। इसे देखकर युधिष्ठिर कांप गये। भीष्म ने उन्हें समाधान किया और कहा—भयभीत होकर कांपने की जरूरत नहीं, समय पर

श्रीकृष्ण सब ठीक करेंगे। अन्तिम क्षण तक शांत और गंभीर मुद्रा में श्रीकृष्ण बैठे रहे। अन्त में सभी सभासदों को अभयदान देकर सिंहासन से उतरे। अपने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी। चक्र ने अपना काम किया। शिशुपाल का शिरच्छेद कर दिया। इस काम के साथ श्रीकृष्ण के आने का उद्देश्य सम्पूर्ण हुआ और सफल भी।

कुमारव्यास ने काव्यारंभ में ही अपने काव्य को "काव्यगुरु" बताया है।—

"अरसुगळिगिदु वीर द्विजरिगॆ
परमवेदद सार, योगी
श्वरर तत्त्वविचार मंत्रीजनके बुद्धिगुण
विरहिगळ शृंगार विद्या
परिणतरलंकार काव्यकॆ
गुरुवॆनल् रचिसिद कुमारव्यास भारतव."

तात्पर्य है कि कुमारव्यास का भारत "राजाओं के लिए क्षात्र धर्म, ब्राह्मणों के लिए वेदोंका सार सर्वस्व, योगियों के लिए तत्त्व विचार, मन्त्रियों के लिए बुद्धि प्रचोदक, विरहियों के लिए शृंगार, पंडितों के लिए अलंकार-प्राय,—यों यह 'काव्यगुरु' बना है। इसी उद्देश्य से कुमार व्यास ने इसकी रचना की।" कवि का यह कथन सब तरह से सत्य है। काव्य नवरसभरित हैं और पाठकों के लिए आस्वाद्य तथा आनंददायक है। इसका एक-एक रसभरा प्रसंग कृष्ण भगवान् की महिमा बताने के लिए पार्श्वभूमि तैयार करता है। यह कृतिकर्ता की खूबी है। उदाहरण के लिए द्रौपदी-वस्त्रापहरण का प्रसंग देखिये। युधिष्ठिर द्यूत में पराजित हुए हैं। अपना सर्वस्व यहां तक कि परम सुंदरी पत्नी द्रौपदी को भी हार चुका है। दुर्योधन द्रौपदी को भरी सभा में बुला लाने के लिए विदुर को आज्ञा देता है। इस आज्ञा को सुनकर विदुर खिन्न होकर कहते हैं—

"सिडिल पॊट्टण गट्टि सेकव
कॊडुवरे हरनेत्र वह्नियॊ
ळडबळव सुडबगॆदॆला मरुळे मही पतियॆ
हॆडतलॆय तुरिसुवरॆ हाविन
हॆडॆयलकटा पांडुपुत्रर
मडदि तॊत्तहळे शिवायॆन्दळलिदनु,
काळकूटद तॊरॆगळलि जल
केळिये कालांतकन दं
ष्ट्राळियलि नविलुय्यलॆय नीवाडलापिरल
काळरुद्रन ललिय नाट्यद
केळिकॆगॆ नीर्वतिकाररॆ
होलदॆ शिवयॆनुत कंबनिदुंबिदनु."—कि "बिजली की पोटली बनाकर कोई सेंकता है? शिवाजी के कालनेत्र की आग से कोई खेल सकता है? फणी के फैले फन को कोई खुजा सकता है? पांडुपुत्रों की पत्नी कहीं दासी हो सकती है? क्या कोई कालकूट से जलक्रीड़ा कर सकने का साहस करेगा? अंतक की

दंष्ट्रावली पर कोई झूलने का प्रयत्न कर सकता है? प्रलय तांडव करने वाले रुद्र के साथ खेलने का दु:साहस कोई करेगा ?—यह काम कहीं होने वाला है ?" विदुर की ये बातें सुनकर कौरव ने उसे मना करके प्रातिकामी को भेजता है। वह द्रौपदी को न लाकर धर्म सूक्ष्म का संदेश लाया। इससे क्रुद्ध होकर कौरव ने दु:शासन को इस काम के लिए भेजा। पहले ही वह दुर्मार्गी है। ऊपर से यह दुष्ट कार्य करने के लिए राजाज्ञा भी मिल गयी। अब पूछना ही क्या है? वह झंझा की तरह बाल बिखेरे भागा भागा निकला। जहाँ द्रौपदी थी वहाँ पहुँचा। कहा, "उतरो, खाट से।" द्रौपदी ने उससे कहा "भाई ! मैं मासिक ऋतु धर्म के कारण अशुद्ध हूँ; मुझे ऐसी स्थिति में राजसभा में प्रवेश मना है।" द्रौपदी का यह उत्तर सुनकर दु:शासन ने कहा— "यह क्या बक रही हो दूसरी बात मत कहो, यहाँ पुष्पवती बनो, चलो, वहाँ कुरु राजा के महल में फलवती होओ।"—यों कहते हुए द्रौपदी के केश पकड़कर उन्हें राजसभा में खींच लाया। उनकी इस बुरी हालत को देखकर भीम और अर्जुन मन ही मन अत्यंत कुपित हुए और उनका खून खौलने लगा। परन्तु क्या करें? युधिष्ठिर के सामने उन्हें चुप रहना पड़ा। मगर कौरव पक्ष के लोगों ने बार-बार बुरी-बुरी बातें कहकर द्रौपदी को छेड़ना शुरू कर दिया था। बेचारी द्रौपदी नि:सहाय होकर सबसे सहायता की प्रार्थना करने लगी। दिल पिघलानेवाली उनकी प्रार्थना सुनकर भीम के मन में असह्य वेदना पैदा हो गयी; उन्होंने भाई सहदेव को पास बुलाकर कहा—"आग ले आओ, राजा युधिष्ठिर की भुजाओं को सभी के सामने जला दूँगा।" अर्जुन भी गुस्से से जल-भुन गया। इनका गुस्सा निष्फल हो रहा है। कोई कुछ नहीं कर पा रहा है। कौरव लोग द्रौपदी को तरह-तरह के अपमानसूचक शब्दों से छेड़छाड़ करके, अपमानित करके उसका वस्त्रापहरण भरी सभा में, पतियों के सामने ही करने को उद्यत हुए। भरी सभा में, पतियों के सामने हो रहे इस अन्याय और अपमान के कारण वह रोने लगी। वहाँ की सभा में उपस्थित प्रत्येक से मान संरक्षण करने के लिए दयनीय गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की। कोई उसकी सहायता के लिए तैयार नहीं हो सकते थे। अन्त में कहने लगी—"पाँचों पतियों ने मुझे बेचकर धर्म को खरीदा; आगे कैसी गति होगी? मुझ अनाथिनी के लिए अनाथरक्षक श्रीकृष्ण के सिवा कोई दूसरा रक्षक नहीं। इनकी निंदा करके भी क्या फल मिलेगा? हे भगवान् ! तुम्हारे इन साले लोगों की बेवकूफी के कारण मेरी यह दुर्दशा हो रही है। हे प्रभो ! तुम्हारे सिवा मेरा कोई रक्षक नहीं। बचाओ भगवान् !"—कहती हुई बेचारी द्रौपदी प्रार्थना करने लगी। इस प्रसंग पर कवि कुमारव्यास ने भक्ति रस की गंगा ही बहा दी है। द्रौपदी का श्रीकृष्ण स्तोत्र एक बहुत ही प्रभावपूर्ण तथा भक्तिभरा प्रसंग है। रस प्रवाह है।

द्रौपदी के इस करुणार्द्र क्रंदन को रुक्मिणी के साथ शतरंज के खेल में मग्न भगवान श्रीकृष्ण ने सुना। क्रंदन सुनकर चकित हुआ। ऐसा वरदान दिया कि वस्त्र अक्षय हो। इस तरह द्रौपदी की मानरक्षा हो गयी। द्रौपदी की अनन्य भक्ति ने एक भयंकर संकट से उसे बचाया। इससे कौरव दुर्योधन का तेजोभंग हुआ। अपमानित-दुर्योधन ने अपनी जांघ दिखाकर निम्न स्तरीय व्यवहार किया और संतुष्ट हुआ।

श्रीकृष्ण की कृपा और रक्षा में सभी पांडव सुरक्षित हैं; फिर भी उनके क्षात्र

में कहीं कोई कमी नहीं। कौरव के इस नीच कर्म से क्रुद्ध द्रौपदी ने उसे शाप दिया—जिस जांघ को दिखाकर तुमने अपनी नीचता दिखाई उसी में तुम्हारी मृत्यु होगी। उस स्थिति में भीम समुद्र की उत्तुंग तरंगावली के अन्दर बाडव की तरह बिजली की कड़कड़ाहट जैसे गरजते हुए बोला—

"कडल तॅरॅगळ तरुबि तुरुकुव
वडबनंतिरॅ मेघपटलव
नॉडॅदु सूसुव सिडिलिनंतिरॅ सभॅयॉळडहाय्दु
कुडि कुठारन रकुतवनु तडॅ
गडि सुयोधननूरुगळ नि
म्मडिसि मुनियलि धर्मसुतनॅन्दॅद्दना भीम."—

अर्थात्—"समुद्र के उत्ताल-वीचि-घर्षण के बीच से निकलने वाले बाडव की तरह, मेघपटल को भेदकर गिरने वाले वज्र की तरह भीम उस सभा में गरज उठा और बोला—इस वंशघाती के रक्त का पान करके, गदा प्रहार से इस सुयोधन का ऊरुभंग करूँगा। भले ही धर्मनंदन गुस्सा करें, कोई परवाह नहीं करूँगा।"—यों कहते हुए वह आगे बढ़ा। भीम की इस प्रतिज्ञा को सुन सारी सभा स्तब्ध हो गयी; दुःशासन डर के मारे कौरव दुर्योधन के पीछे छिप गया। भीम की उस भीषण प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व भी कृष्ण ही का था।

भीमार्जुन श्रीकृष्ण की दैवी शक्ति के दो हाथ हैं। दोनों अपने अद्वितीय पराक्रम से भूभार को उतारने में कृष्ण भगवान् के सहायक रहे। फिर भी अर्जुन भीम से अधिक भगवान के भक्त था। भीम की बात दूसरी है, उसे भगवान् से अधिक अपने बाहु-बल पर विश्वास था। उसके व्यवहार में जरा खुरदरापन और उजड्डपन था। द्रौपदी के वस्त्रापहरण के समय गुस्से में आकर युधिष्ठिर के बाहुओं में आग लगाने निकला था। उस समय यदि अर्जुन उसे समझा बुझाकर समाधान न करता तो पता नहीं क्या-क्या अनर्थ हो जाता। अर्जुन भीम जैसे शरीर से पुष्ट न होने पर भी धनुर्विद्या में अनन्य वीर के रूप में प्रसिद्ध था; अपने सत्वगुण तथा एकनिष्ठ भक्ति के कारण वह भगवान् कृष्ण के कृपापात्र बने थे। सबसे अधिक साख्य भक्ति अर्जुन की भगवान् के प्रति थी; वह भीम से अधिक संयमी भी था। उसके इस संयम की परा-काष्ठा का दिग्दर्शन होता है, महाभारत के अरण्यपर्व के ऊर्वशी के प्रसंग में।

शिवजी से पाशुपत अस्त्र पाने के लिए निकला अर्जुन इंद्रकील पर्वत पर रहकर तप करने लगा। उसकी निष्ठापूर्ण तपस्या की उग्रता एवं तेज इतना प्रबल था कि देवराज इंद्र खुश होकर उसे देखने आये। देखकर उसे हृदय-पूर्वक आशीर्वाद देकर कहा—"शिवजी यहाँ आकर तुम्हें दर्शन दें और तुम्हारा इष्टार्थ पूरा करें।"—फिर वहाँ से लौटे। अर्जुन की तपस्या की ज्वाला इतनी तीव्र थी कि वह उस प्रदेश में तपोलीन ऋषि-मुनियों को अपनी गरमी से झुलसाने लगी। तप-ताप से तप्त ऋषि-गण कैलासगिरि पर चढ़े और उन्होंने शिवजी के दर्शन किये, और उनसे निवेदन किया। उन्होंने ये अर्जुन की इस उग्र तपस्या की बात सुनकर उन ऋषियों को सांत्वना देकर भेज दिया। स्वयं शिवजी किरात वेष धारण कर अर्जुन के पास गये। शूकर वेषधारी मूक दानव का मारने के व्याज से हर-नर दोनों में (किरात रूपी शिव और अर्जुन)

भयंकर युद्ध हुआ। अर्जुन हारा, तो भी क्या ?

"मंजु मुसुकिदॆडॆनु पर्वत
वंजुवुदे ? हालाहलव नॊण
नॆन्जलिसुवुदे ? वडवशिखिनॆनॆवुदे तुषारदलि ?
कंजनाळदि कट्टुवडॆवुदे
कुंजरनु ? नरशरद जोडिन
जुंजुवळॆयलि जाह्नवीधर जारुवनॆ ?"—

भावार्थ यह है "हिमाच्छादित होने पर पहाड़ डरेगा ? हालहल के पास मक्खी जाएगी ? बडबाग्नि-शिखा तुषारपात से भीगेगी ? बिस तंतु से हाथी को बांधा जा सकता है ? अर्जुन की शरधारा से गंगाधर बंधा जा सकेगा ?"

किरात वेषधारी शिव ने अर्जुन को हरा दिया; परन्तु अर्जुन हारकर चुप बैठने वाला नहीं था। उसने एक वालुका लिंग बनाया और शिव की पूजा की। फिर कहा—"सुनो हे किरात! तुम्हारे प्राण मेरे अधीन है, अच्छी तरह जान लो; भगवान् शिव (स्थाणु) मेरे साथ हैं; तुम्हारी जान निकाल लूँगा। तुम्हें जिन्दा नहीं छोड़ूँगा।"—कहते-कहते किरात वेषधारी शिवजी पर वह चढ़ बैठा। देखता क्या है ? बालुका लिंग की पूजा में अर्जुन के द्वारा समर्पित पुष्प उस किरात के सिर पर दिखाई दे रहे हैं! उसे देखकर पार्थ चकित हो गया। वह सम्पूर्ण पुष्पराशि, जो पार्थ ने बालुकालिंग पर पूजा में अर्पण की थी, इस किरात के सिर पर विराज रही हैं। तब अर्जुन को मालूम हो गया कि वह किरात ही शिव है; तो वह—

"स्वेद जलदलि मिन्दु पुनरपि
खेद पंकदॊळद्दु बहळ वि
षाद रजदलि हॊरळि भयद्सनदियनीसाडि
मैदॆगॆडु मरनागि दॆसॆयलि
बीदिवरिवुत विविध भावद
भेददलि मनमुंदुगॆडुतिर्दुदु धनंजयन."—

अर्थात्—"वह प्रस्वेद से तरबतर हो गया, फिर बहुत खेद और विषाद से प्रत्यक्ष शिव को देखने के कारण मन ही मन भयभीत भी हुआ। उनके मन में तरह-तरह के भाव उत्पन्न होने लगे। इस भाव-संघर्ष ने अर्जुन को किंकर्तव्यमूढ़ बना दिया था।" पश्चात्ताप के कारण अत्यंत दुःखी होकर वह तरह-तरह से शिवजी की स्तुति करने लगा। अर्जुन के तप से एवं पराक्रम से शिवजी केवल प्रभावित ही नहीं हुए बल्कि बहुत संतुष्ट भी हुए। तब शिवजी ने अर्जुन की इच्छा पूर्ण की और उसके मानसिक दुःख को भी दूर किया। इस प्रसंग का अत्यंत सुंदर वर्णन किया है, कुमार व्यास ने। यह एक रसघट्ट है।

शिवजी को प्रत्यक्ष अपने चर्मचक्षु से देखकर वांछितार्थ में सिद्धि प्राप्त करने वाले अर्जुन को स्वर्गलोक से बुलावा मिला। वहाँ देवराज के सिंहासन पर देवेन्द्र के साथ बैठा पार्थ पहले से भी अधिक सौगुने तेज से प्रकाशमान् हो रहा था। उस तपस्वी, महापराक्रमी, सिद्ध पुरुष महान् अर्जुन के स्वागतार्थ सुरसुंदरियाँ नाच-गान की तैयारियाँ करने देवराज की सभा में पधारीं। उनके आते ही सारी इन्द्र सभा

सुगंधि से भर गयी। अर्जुन उनके दिव्य सौन्दर्य से घिरा हुआ था, फिर भी वह अपने संयम में अडिग रहा। उन देव नर्तकियों में एक ऐसी थी जिसने अर्जुन को अपनी ओर आकृष्ट किया। अर्जुन को भी वह परम सुंदरी लगी। नाच-गाने के कार्यक्रम के सम्पूर्ण होने के बाद उस परम सुंदरी ऊर्वशी के पास इंद्र ने समाचार भेजा—"तुम उस महल में जाओ जहाँ अर्जुन ठहरा हुआ है।"—दूत ने आकर इंद्र का संदेश ऊर्वशी को दिया। ऊर्वशी ने सर झुकाकर सुरराज की आज्ञा को स्वीकार किया। सजधज कर वह अर्जुन के उस निवास पर पहुँची। जब वह वहाँ पहुँची तो अर्जुन निद्रामग्न था। उसके वहाँ पहुँचते ही सारा शयन गृह सुगंधि से भर गया और उस अप्सरा की देहकांति के कारण अर्जुन की निद्रा टूटी। सामने देखता क्या है ? दिव्या भरण भूषिता मदालसा ऊर्वशी सामने खड़ी है। देखते ही उसके मन में उस सुरसुंदरी के प्रति एक पूज्य भावना उत्पन्न हुई। उसने समझा यह अनिंद्य-सुन्दरी अभिनंदनीय है। यह चंद्रवंश की जन्मदात्री है। तुरंत पर्यंक से उतरा, और पूछा—"माँ मैं आपका पुत्र हूँ। मुझे यह आदर क्यों ? यहाँ तक आने का कष्ट क्यों किया ?" यों बड़ी विनम्रता से वह बोला। इंद्र ने यह कहकर भेजा कि अर्जुन मेरा पुत्र है और तुम आज मेरी पुत्र-वधू बनकर मेरे पुत्र को संतुष्ट करो। वहाँ आते ही बात कुछ और हो गयी। वह ऊर्वशी अर्जुन के व्यवहार से संतुष्ट हुई तो सही, परन्तु मदनास्त्र से त्रस्त होकर चकित भी हुई। तब उसने सच्ची बात कह दी। अर्जुन ऊर्वशी की बात सुनकर चौंका और कहा—"मेरे वंश के मूल पुरुष पुरूरवा की आप पत्नी हैं।" यों कहते हुए अर्जुन ऊर्वशी के मन को बदलने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु ऊर्वशी ने उसकी दलीलों को स्वीकार नहीं किया। उसने कहा "मर्त्यलोक का नियम स्वर्ग लोक के लिए लागू नहीं किया जा सकता। मर्त्य लोक के सम्बन्ध इंद्रलोक में नहीं चलते। यह स्वर्ग की भोगभूमि है। यहाँ स्वर्ग भोग्या सुर सुंदरियों में अग्रगण्या हूँ मैं। जो मानिनी की मनोभावनाओं को और संकेतों को नहीं समझ सकता वह चाहे इंद्र हो या चंद्र, वह बिलकुल बकरा है।" ऊर्वशी की उन सब बातों को सुनकर भी अर्जुन का चित्त स्थैर्य डिगा नहीं। मन पर संयम का कवच हो तो कुसुम बाण लगे कैसे ? अर्जुन के स्थैर्य को देखकर ऊर्वशी का क्रोध जगा; उसकी आँखें केसर (लाल) उगलने लगीं, क्रोध रूपी तलवार को अश्रुजल से तेज करने लगी। उस समय ऊर्वशी का मुँह मनोहर और भयंकर लग रहा था। क्रोध और दुख से मिश्रित वह सौन्दर्य ऐसा लग रहा था कि वह राहु ग्रस्त चंद्रबिंब है, अथवा, भयंकर सर्प के सिर पर की मणि है या क्रुद्ध सिंहिनी की गुफा है ? (कवि ने इस सुन्दर-भयंकर रूप का बड़े ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया है।) ऊर्वशी के उस क्रोध का परिणाम यह हुआ कि अर्जुन को एक वर्ष तक भूलोक में नपुंसक बन कर रहना पड़ा। यह ऊर्वशी के शाप का फल था। शिवजी का वर-प्रसाद या पशुपतास्त्र, जो (शत्रु) कौरवों को नाश करने के कार्य में सहायक बना। कौरव रक्त से सने हाथों से द्रौपदी अब वेणीबंधन कर ले सकती थी; परंतु यह क्या ? धर्म-सूक्ष्म को समझकर धर्म मार्ग पर चलने वाले को "हिजड़ेपन" का यह शाप क्यों ? द्रौपदी के लिए यही संदेश है ?—आदि-आदि बातें सोच कर अर्जुन बहुत दुःखी हुआ। परन्तु देवेंद्र ने उसे समझाया कि यह ऊर्वशी का शाप अज्ञातवास के समय में वरदान होगा।

किरातार्जुनीय में और ऊर्वशी के प्रसंग में अर्जुन के पात्र के स्वरूप को हम स्पष्ट समझ सकते हैं। किरातार्जुनीय में अर्जुन के पौरुष का तथा उसकी दैवभक्ति का स्पष्ट चित्र हमारी आँखों के सामने अभिव्यक्त होता है तथा इस शक्ति, भक्ति से भी अधिक उनके (जितेंद्रियत्व) संयम की शक्ति ऊर्वशी के प्रसंग से स्पष्ट होती है। इस प्रसंग में विश्वमोहक शृंगार रस का निरूपण कवि कुमार व्यास ने। बहुत ही मनोहर एवं आकर्षक ढंग से किया है, इसी तरह के प्रणय-प्रसंग का एक दूसरा मुख कीचकोपाख्यान में वर्णित है जहाँ भीमसेन का पात्र सजीव होकर हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष होता है। वनवास के पश्चात् पांडव अज्ञातवास की अवधि में विराट नगरी में आश्रय पाकर वहीं रहने लगते हैं। उस समय द्रौपदी की सत्व-परीक्षा का प्रसंग उपस्थित होता है। सैरन्ध्री के वेष में देवी सुदेष्णा के पास द्रौपदी थी। कीचक ने उसे देख लिया। वह देवी सुदेष्णा का भाई था। इतना ही नहीं, वह विराटनगरी का सर्वाधिकारी भी था। द्रौपदी अनिन्द्य सुंदरी थी। बारह वर्ष के वनवास की अवधि ने उसके सौन्दर्य को अधिक निखार दिया था। बहन के रानिवास में उसे देखते ही कीचक की आँखें उस महासौंदर्य में गड़ गयीं। उस पर कामदेव का पुष्पबाण भी चल गया। उसने सोचा कि यह ऐसा सौन्दर्य है जो तीनों लोकों में दुर्लभ है। उसकी कामुकता मर्यादा लांघ गयी। लाज-शरम गयी, निर्लज्जता ने उसकी हस्ती-हैसियत तक को मिटा दिया। वह उस सुंदरी द्रौपदी को अपनी आँखों में कैद कर उसके अनुपम सौंदर्य का पान आँखों ही आँखों में करने लगा। वह उस सुन्दरता के सामने हार गया। भाई के मनोभाव को बहन ने समझा। उसने भाई कीचक को चेतावनी दी। कहा कि सैरन्ध्री के संरक्षक गंधर्व हैं जो सदा उसकी रक्षा में तत्पर रहते हैं। तो भी उसने परवाह नहीं की। राजमहल के दरवाजे पर वह द्रौपदी से मिला और अपनी व्यथा बतायी। उससे प्रार्थना की कि किसी तरह कामबाण से विद्ध और काम-ज्वर पीडित की रक्षा करे। कीचक की ऐसी नीचता-पूर्ण बातें सुनकर द्रौपदी ने कहा कि मेरे संरक्षक गंधर्व तुम्हारे इस व्यवहार को देखेंगे या सुनेंगे तो तुम्हारे वंश को ही जड़ समेत उखाड़ फेकेंगे। कीचक ने परवाह नहीं की। फिर कहा—"मैं तुम्हारी नजर के तीर से घायल हो गया हूँ। मेरे दिल के इस दर्द को दूर करो। साथ ही एक तरफ़ से कामदेव मुझे तीर मार-मार कर और घायल बना रहा है। किसी तरह से मुझ घायल की रक्षा तुम्हीं को करनी होगी।" यों कीचक उसके सामने गिड़गिड़ाने लगा। द्रौपदी ने अपने पतियों के पराक्रम का परिचय दिया। यह सुनकर कीचक ने बड़ी लापरवाही से कहा—"बेचारे उन गरीबों से मेरा क्या बिगड़ेगा? उनके गुस्से की मैं परवाह नहीं करता।"—इतना कहकर उस नीच ने अपना अन्तिम निश्चय सुना दिया बोला—"इस कामज्वर की तीव्रता से मैं मर रहा हूँ। अगर मरना ही पड़े तो तुम्हारे बाहुपाश में मरूँगा, पर मदन-बाणाहतहोकर नहीं मरूँगा।" द्रौपदी ने किसी भी तरह से स्वीकार नहीं किया। इसलिए वह स्वयं गया बहन के पास, और उससे अपने मन की सारी राम कहानी सुनायी और अपनी मनोकामना बतायी। बहन से प्रार्थना की कि किसी तरह से कामना पूर्ण कर रक्षा करे। उसकी दयनीय दशा देखकर देवी सुदेष्णा दयार्द्र हुई। दूसरे दिन द्रौपदी को बुलाकर कहा—"सुनो सैरन्ध्री! तुम मेरे भाई के घर जाओ और वहाँ से मधु लाओ।" महारानी की

आज्ञा की; जाना अनिवार्य हो गया। वह मस्त हाथी की तरह चलती हुई चारों ओर सुगंधि बखेरती हुई कीचक के घर की तरफ जा रही थी। उसे आते देखकर कीचक आनन्द के मारे उछल पड़ा; वह रोमांचित होकर उससे कहने लगा—"तुम प्रसन्न हो जाओगी तो मैं मारशर से क्यों डरूँ ?"—यों कहते-कहते वह सैरन्ध्री का हाथ पकड़ने लगा। वह उस नीच के हाथ से छूट कर सीधे राजसभा में पहुँची। जाती हुई सैरन्ध्री को रोकता हुआ नीच कीचक उसका पीछा करने लगा और उसकी वेणी पकड़ कर खींचते हुए उसे नीचे गिराया। पाँचों पति इस दृश्य को आँखों को सामने देख रहे थे। कोई कुछ करने की दशा में नहीं था। भीम ने महल के सामने के एक महावृक्ष को अर्थ भरी दृष्टि से देखा। पर युधिष्ठिर ने अर्थपूर्ण वचन कहा—"इस महावृक्ष को तोड़ो मत, यह सज्जनों के लिए सहारा देता है।"

कौरव की सभा में वस्त्रापहरण के समय जिस तरह वह अनाथ हुई थी, वही दशा राजा विराट की सभा में भी हुई। परन्तु अब उसने श्रीकृष्ण की शरण नहीं ली। भीम की शरण में गयी। उसने सोचा—भीम ही इन में पाँचों विशेष पराक्रमी पति है। वह किसी की परवाह नहीं करेगा। उसमें प्रति क्रियात्मक शक्ति है। वह ऐसी बातों को सहन नहीं करेगा। यों सोचकर भीम जहाँ वलल बनकर काम करता था वहाँ उस रसोई-घर में गयी। भीम तब सो रहा था। उसे निद्रावस्था में देखकर ऐसे संकट के समय में भी द्रौपदी को हँसी आयी। सोचने लगी कि यह पाक-विद्या इस भीम ने कहाँ से और किससे सीखी होगी ? यों विचारती हुई धीरे-धीरे भीम के पास गयी और उसकी ठुड्डी पकड़ कर उसे हिलाती हुई उसे जगाया। द्रौपदी की करुण-कथा सुनकर भीम बड़ा दुखी हुआ। उसने कहा—युधिष्ठिर की आज्ञा है, मैं बंधा हुपा हूँ। इसलिए असमर्थ हूँ। भीम से इस तरह की असमर्थता की बात सुनकर द्रौपदी रोने लगी। पांचाल राजापुत्री होकर भी मेरी ऐसी दशा हुई,—कहती हुई वह अपनी हृदय-वेदना को हृदय विदारक ढंग से सुनाने लगी। अपने पतियों की निंदा करने लगी। एक भीम ही का सहारा लेकर आयी थी। उससे भी निराश हुई। अब मरने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं—कहती हुई उसके पैरों पर पड़ी। भीम वे बातें सुनकर असह्य वेदना का अनुभव करने लगा। भीम की भी आँखें सजल हुईं। उसकी व्यथा ने क्रोध का रूप धारण किया। पत्नी के आँसू पोंछे। समाधान किया। तब कहा—"नीच कीचक का पेट चीर डालूँगा, अगर वह कुछ प्रतिक्रिया दिखाएगा तो जड़ समेत विराट वंश को ही उखाड़ दूंगा। यदि कौरवों ने पहचान लिया तो उन कौरवों का सर्वनाश करूँगा।" आदि-आदि, और बताया—"यदि भाई लोग मुझ पर गुस्सा करेंगे तो उसका नाता छोड़ दूंगा। यदि स्वयं श्रीकृष्ण बीच में आवें तो मैं उनकी भी परवाह नहीं करूँगा।"—यों उसने अपना सारा क्रोध उतारा। नीच कीचक को मार डालने के लिए एक युक्तियुक्त योजना बनायी। नाट्य मंदिर को संकेत-स्थान बनाया। कीचक को उसी दिन रात के समय बुला लाने के लिए कहा। द्रौपदी को यह कहकर आश्वासन दिया कि उस मूर्ख कीचक का पेट चीर कर उसके गरम रक्त से शाकिनी डाकिनी को तृप्त कराएगा। भीम की आज्ञा से द्रौपदी ने कीचक को उस सांकेतिक स्थान पर आने के लिए आह्वान दिया और भीमसेन को स्त्रीवेष पहना कर तैयार किया। वह भी उस स्त्रीवेष में नाज-नखरे के साथ उस सांकेतिक

स्थान पर पहुँचा। कीचक भी सज-धज कर मृत्यु के मुँह में प्रवेश करने गया। अंधेरे में स्त्रीवेषधारी भीम के शरीर को द्रौपदी समझकर सहलाने लगा। पूछा—वह कोमल शरीर कहाँ और यह पत्थर-सी देह कैसी? भीम ने कहा—पर स्त्री को प्रेम करने वाले के लिए अमृत भी विष है, और कोमलता भी कर्कशता बन जाती है।—यों कहते-कहते भीम ने कीचक के केश पकड़ कर खींचे और उसकी छाती पर दे मारा। उस मार से छाती जर्जप्ति हो गयी। आँतडियों के साथ खून का वमन करने लगा। मर गया। मरे हुए उस पापी कीचक के सिर को उसकी उस फटी छाती में और हाथ-पैर को चिरे हुए पेट में घुसेड़ कर भीम ने द्रौपदी को दिखाया। उस पापी की उस दशा को देखकर द्रौपदी खुश हुई और पति को सराहा।

यह है कुमार व्यास का भीम। इस वायुसूत के लिए योग्य पत्नी है वह अग्नि-पुत्री द्रौपदी। *इन दोनों के संयोग से ही शत्रु-दहन हो सकता है। द्रौपदी प्रेरक-शक्ति* है तो यह भीम कारक शक्ति। कौरव-पांडवों की अठारह अक्षौहिणी सेना में यदि कोई पौरुषशाली है तो वह अकेला भीम ही है। वह असहाय शूर और अपरिमित पराक्रमी। निष्कपट हृदय और स्पष्ट बोलने वाला व्यक्ति, परन्तु उसका व्यवहार कर्कश है। व्यवहार में मार्दव नहीं। कभी-कभी वह हास्य-प्रिय भी हो जाता है। शांति के समय वह गुरुओं तथा बुजुर्गों के प्रति विनीत भी रहता है। परन्तु, उसका नाम सुनते ही जो चित्र हमारी आँखों के सामने उपस्थित होता है वह उसकी भीमकाय, अदम्य साहस, धैर्य, पराक्रम एवं मर्दानगी—इन सबसे युक्त मूर्ति। ऐसे मर्द के लिए योग्य पत्नी है वह द्रौपदी। वह पंच वल्लभा है तो भी जवाँ मर्द भीम ही उसके लिए ठीक है। उसके दो सहायक हैं, एक भगवान् श्रीकृष्ण और दूसरा मर्दों में जवाँ मर्द भीम। जैसी सुन्दरता की मूर्ति वह है वैसे ही अनुपम शीलवती है। फिर भी वह क्षत्राणी है। उसके आत्म गौरव को जब धक्का लगे तब उसके अन्दर का क्षात्र फन-फैलाकर उठ खड़ा हो जाता है। कीचक से बचानेवाले भीम से कहती है—"पति तो पाँच हैं जो तीनों लोकों में अपने पराक्रम के लिए प्रसिद्ध हैं, मगर एक स्त्री की रक्षा करने में असमर्थ है—क्या तुम लोग पति हो या निर्लज्ज पुरुष हो?" श्रीकृष्ण संधि-संधान के लिए जब जाने लगता है तब सुलह कर लेने की सलाह देने वाले अपने पतियों से कहती है—"तुम लोग मूर्ख हो, अपनी उन्नति की जड़ को आप ही काटने वाले हो। अपनी उन्नति एवं प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए तैयार नही, तुम लोग पति हो? परम शत्रु हो।" इतना ही नहीं, वह कहती है—

"तनयरैवरु वीर सहदे
वनु घटोत्कचनी सुभद्रा
तनय नम्मय तन्दे मूरक्षोहिणीसेने
इनिबरे कदुवरु दुइया
सनन रकुतव कुडिदु कुरुकुल
वनव सुडुवरु निम्न हंगे के?"—कि

"पाँच बेटे, वीर सहदेव घटोत्कच और यह सुभद्रा-पुत्र तथा मेरे पिता की तीन अक्षौहिणी सेना—ये ही युद्ध करेंगे और उस दुष्ट दुश्यासन के रक्त का पान करेंगे कुरुवंश को भस्म करेंगे। इस काम के लिए तुम लोगों का आश्रय क्यों?" यह कहती

हुई वह अपना गुस्सा दिखाती है और चिढ़ाती है। ऐसे सभी मौकों पर भीम उसकी मदद के लिए तैयार हो जाता है। भीम से कार्य न सध सके तब श्रीकृष्ण ही सहायक होता है। उसमें अपने पतियों, गुरुओं एवं बुजुर्गों के प्रति आदर भी है। परन्तु जब क्रोध आवे, असहनीय दुख हो तब गुरु, बुजुर्ग या पति किसी की भी परवाह नहीं करती।

नारणप्पा (कुमार व्यास) के सभी पात्र सजीव है। उनके काव्य के किसी भी अंश को ले यह बात स्पष्ट होती है। श्रीकृष्ण के पात्र में कभी-कभी आलौकिकता के दर्शन होने पर भी लौकिक मर्यादा की सीमा में साधारण मानव की ही तरह चित्रित हैं। अर्जुन अपनी ही सेवा में जब निरत हो तब वह साक्षात् भगवान् ही माना जाता है, पर इस तरह का मानना अर्जुन को ठीक नहीं लगता। जब श्रीकृष्ण यह बात माने कि अर्जुन भगवान् है तो अर्जुन श्रीकृष्ण को देवाधिदेव मानकर चलता है। नर-नारायण का यह भाव इस समूचे काव्य में ताना-बाना बना हुआ है। भूभार अधिक होने के कारण दुखी भू-देवी ने उस भार को कम करने की प्रार्थना की तो भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार लिया। दुष्ट-शिक्षण और शिष्ट रक्षण द्वारा भूभार को उतारना है। भगवान् श्रीकृष्ण भक्त पराधीन है। "जिनपर प्रसन्न होंगे उनका उद्धार करेंगे जो विवाद करेंगे उनसे अप्रसन्न ही रहेंगे।"—यही संदेश कौरवों के पास श्रीकृष्ण भेजते हैं। कौरवों के साथ व्यवहार करते समय संधि-संधान के प्रयत्न में भी श्रीकृष्ण साम-दानादि उपायों का प्रयोग करते हैं। जब कौरव श्रीकृष्ण को बंधित करने जाता है तब विश्व रूप धारण कर अंधे राजा को भी दृष्टि दान देते हैं। संधि-संधान में असफल होने पर कर्ण और कृष्ण के बीच विचार विनिमय होता है; इस संभाषण को पढ़ेंगे तो लगता है कि श्रीकृष्ण एक बहुत कुशल राजनीतिज्ञ हैं। वे देवाधिदेव भी हैं, बहुत चतुर व्यावहारिक भी हैं। यद्धपंचक का भगवद्गीता प्रसंग, सैन्धववध का प्रसंग, कर्णवध का प्रसंग—आदि ऐसे प्रसंगों में श्रीकृष्ण बिलकुल भगवान् ही लगते हैं; ऐसे मौकों पर उनका देवतात्व स्पष्ट ही दिखता है। महाभारत युद्ध की समाप्ति पर अर्जुन को पहले रथ से उतार कर बाद को स्वयं कृष्ण उतरते हैं। कृष्ण के उतरने के तुरन्त बाद रथ जलने लगता है और भस्म हो जाता है। उसे देखकर अर्जुन कहते हैं—"हे ! भगवान् ! आपकी माया आप ही जाने। हम माया पाशबद्ध जीव है; आपको हम कैसे समझेंगे ?"—पांडवों ने कौरवों को जीता, फिर भी शत्रु शेष रहा हो। धृतराष्ट्र का भीम पर और गांधारी को युधिष्ठिर पर कभी न मिटने वाला द्वेष था। सर्वज्ञ श्रीकृष्ण इस बात को जानता था। जब धृतराष्ट्र ने चाहा कि वह भीम का आलिंगन करे तो श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र के आलिंगनार्थ भीम की एक फौलादी मूर्ति तैयार करवाई। धृतराष्ट्र के आलिंगन करते ही वह मूर्ति टूट-फूट कर चकनाचूर हो गयी। भीम जी गया। युधिष्ठिर पर गांधारी की नजर लगी, तो उनके नाखूनों में से आग निकलने लगी। भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से वह बच गये। यों श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष भगवान् की तरह ऐसे प्रसंगों में दिखने पर भी उनकी अति-मानवता साधारण मानवीयता से हटकर दूर नहीं रही। उनकी असाधारणता साधारण व्यक्तित्व की बाधक नहीं बनी।

कुमार व्यास का भारत "कृष्ण चरित" है, तो भी वह पुराण नहीं। वह एक सुन्दर काव्य है। इस काव्य में दिखने वाली सन्निवेश-रचना, इसकी पात्र-सृष्टि, रस निरूपण आदि से स्पष्ट हो जाता है कि यह काव्य सुन्दर भी है दिव्य भी। अठारह अक्षोहिणी सेना का अठारह दिनों के युद्धमें खतम हो जाने वाले महाभारत युद्धका इतिहास सहज ही वीररस प्रधान होगा ही। मगर अन्य रसों का भी अभाव नहीं, उनका भी समुचित प्रयोग हुआ है। कुमार व्यास का काव्य नवरस भरित है। अन्य निम्न स्तर के कवियों की तरह अष्टादश वर्णन आदि को अपने काव्य में सम्मिलित करने के लिए ही पद्य रचना करने का प्रयत्न नहीं किया है। उनका समस्त काव्य सौन्दर्य कथा की वस्तु में ही समन्वित होकर आया है। काव्य में सौन्दर्य के समावेश के लिए उसका अनावश्यक विस्तार नहीं किया है। वीररस प्रधान इस काव्य में शृंगार, हास्य आदि अप्रधान रस हैं। ये रस अप्रधान होते हुए भी इस काव्य में इनका निरूपण बहुत ही सुन्दर हुआ है। रस भरित प्रत्येक पर्व में रसों का जितना सुन्दर समावेश हुआ है, उसी सुन्दरता और भव्यता के साथ हास्य रस भी प्रयुक्त हुआ है जो बहुत ही मनोज्ञ है "राजाओं के लिए यह क्षात्र" का उपदेश देने वाला है यह काव्य—यों कवि ने कहा है। उनके क्षात्र के लिए एक सवाल बनकर खड़ा है उत्तर कुमार। युद्ध भीरू इस उत्तर कुमार की वीरवाणी सुनकर हमें हँसी आती है। सरकस कम्पनी के मसखरे की तरह गोग्रहण की बात सुनते ही मूँछ मरोड़ता हुआ अंतःपुर की स्त्रियों की ओर देख देखकर डींग मारने लगता है। कहता है - "अगर मैं गुस्सा हो जाऊँ तो मेरे सामने कौन ठहर सकता है? स्वयं देवता युद्ध के लिए सामने आवें तो उनकी भी मैं परवाह नहीं करूँगा। इतना ही नहीं, स्वयं यमराज सामने आवें तो उनकी मूँछ पकड़कर हिला दूँ, कालभैरव की दाढ़ी पकड़ कर झकझोर दूँ। मुझे छेड़ना और सिंह को छेड़ना दोनों बराबर है।"—यों वह अपने पौरुष की डींग हांकता है। और उसी रुख में कहता है कि कौरव सेना में मेरे सामने खड़े होकर मुझसे लड़ सके ऐसा योद्धा ही कौन है? कुरु सेना में कोई ब्राह्मण है, कोई मरने के लिए तैयार होकर आया है तो कोई नीच जनमा है। ऐसे लोग हैं; मैं क्षत्रिय राजकुमार किस के साथ युद्ध करूँगा?" ये वचन भीष्म, द्रोण, कर्ण—ऐसे वीरों के प्रति कहे गये हैं। वह रनिवास की स्त्रियों के सामने अपनी मर्दानगी बघारते हुए डींग मारता है कि "मैं इन मूर्खों को मार डालूंगा, हस्तिनापुर में एक फौजी अड्डा ही जमा दूंगा।" और आगे बोलता है इन कौरवों ने क्या मुझे बेचारा युधिष्ठिर जैसा समझ रखा है? मैं इन कौरवों के छक्के छुड़ा दूंगा। इन लोगों ने मुझे क्या समझ रखा है?—यों रानिवास की स्त्रियों के सामने पौरुष की बातें कह कर अपने इस पौरुष के योग्य रथ संचालन करने के लिए लायक सारथी के अभाव पर चिंता प्रकट करता है। बहन योग्य सार थी की व्यवस्था करती है। बृहन्नला उत्तरकुमार का सारथी बनकर जाता है। इस अपने डींग मारने वाले बातूनी भाई की आरती उतारकर उसे सब रानिवास की स्त्रियाँ युद्ध क्षेत्र में भेज देती है। अट्टहास के साथ रथ पर चढ़कर वह युद्ध क्षेत्र की तरफ़ रवाना होता है। दूर से ही कौरव सेना को देख लेता है। देखते ही कमर टूटने लगती है। डर के मारे थर-थर कांपने लगता है। कौरव सेना के चलने से जो धूल उड़ रही थी वह उसे दावाग्नि की तरह लग रही थी जो उसे

निगलने ही के लिए आ रही हो। उस अनगिनत कौरव सेना को देखकर उसे लग रहा था कि समस्त संसार को आपने में लीन करने के लिए उमड़ा हुआ महासागर हो। ऐसी बड़ी सेना के साथ स्वयं महाकाल ही लड़ सकता है—मैं (उत्तर कुमार) नहीं—यों महसूस हो रहा था, उसे। तब वह अपने साथी बृहन्नला से कहने लगा—"भूखे भेड़ियों के झुंड में भूल से घुसी बकरी की सी मेरी दशा हो गयी है। अब घोड़ों को दौड़ाओ मत, चाबुक फेंक दो।" सारथी बृहन्नला उसकी बातों को क्यों मानने लगा? वह तेजी से घोड़ों को दौड़ाता आगे बढ़ा। उसे देखकर उत्तर कुमार का गुस्सा और बढ़ा—वह गुस्से में आकर कहने लगा—"अरे सारथी! रथ को आगे बढ़ाकर मेरा गला क्यों काट रहे हो? रथ को आगे न बढ़ाओ, घोड़ों को लौटाओ।" सारथी ने उसकी आज्ञा को अमान्य कर दिया। अपनी बात को न मानते देख कर उत्तर कुमार रथ से कूद कर भागने लगा। भागते-भागते समझने लगा—जान बची। मगर वह सारथी ऐसा नहीं था जो उसे ऐसे भागने दे। उसने उसे पकड़ा, फिर से रथ में बिठाया। उत्तर कुमार ने बहुत गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की; पर सब व्यर्थ। सारथी बृहन्नला ने उत्तर कुमार को समझाया—"अरे! सुनो, युद्ध क्षेत्र में आकर वहाँ से पीठ दिखाकर भागना महा पाप है। आगे धीरज के साथ बढ़ने में अश्वमेध यज्ञ करने पर जो फल होगा उसके बराबर फल मिलेगा। मरने पर वीर स्वर्ग की प्राप्ति होगी।" उत्तर कुमार ने उत्तर दिया—"युद्ध क्षेत्र से भागने के कारण जो पाप लगे उसका निवारण ब्राह्मण लोग प्रायश्चित्त करवाकर मिटायेंगे। अश्वमेघ को हम यहीं पृथ्वी पर कर सकते हैं। इस अश्वमेघ के फलस्वरूप जो स्वर्ग सुन्दरियों का सुखभोग मिलेगा वह मुझे नहीं चाहिए। मेरे लिए अपनी रनिवास की रमणियाँ ही पर्याप्त हैं।"—कुमार व्यास ने कन्नड साहित्य के इतिहास में एक अपूर्व एवं अद्वितीय पात्र के रूप में इस उत्तर-कुमार के चरित्र को बढ़ाकर तैयार किया है। ऐसा पात्र अन्यत्र दुर्लभ है।

कुमार व्यास की भाषा और शैली अद्वितीय है और अनुकरणीय भी। एक बार एक शब्द लिख दिया तो फिर उसे हटाकर उसकी जगह दूसरे शब्द को रखने की आदत नहीं, इस कवि महाशय की। एक बार एक शब्द का प्रयोग किया, चाहे वह संस्कृत का हो या चाहे कन्नड या मराठी ही हो - वह सजीव और सार्थक है। "वाचमर्थो-नुधावति"—अर्थ उनके शब्दों के पीछे-पीछे दौड़ता है। यह कवि शब्दार्थों की सजीवता के बहुत अच्छे पारखी हैं, कहीं-कहीं उनके वाक्य सरस होने के साथ सार्वकालिक सत्य के प्रतिपादक हैं और वे लोकोक्तियों की तरह प्रचलित हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो कुमार व्यास ने कन्नड भाषा की श्रीवृद्धि में चार-चांद लगा दिये हैं। स्वतंत्र मनो-वृत्ति वाले इस कवि ने भाषा विकास के काम में अमूल्य योग दिया है। उनके काव्य प्रवाह में व्याकरण कहीं बह जाता है। उनकी कृति में जो असाधु प्रयोग हैं, उनकी ओर पाठक का ध्यान जाता ही नहीं; क्योंकि काव्य-माधुरी के बहाव में पाठक डूबता उत-रता अपने को ही भूल जाता है। ऐसी दशा में साधु-असाधु प्रयोगों की ओर ध्यान ही कैसे होगा? कुमार व्यास अपनी भाषा के आप ही पाणिनी हैं। कवि कु० वें० पु० ने कहा है "काव्य सौष्ठव एवं माधुर्यानुभूति का बोध कानों द्वारा होता है, व्याकरण से नहीं; व्याकरण सीखना चाहिए, परन्तु क्यों? सीखकर भूलने के लिए।"—यह कथन कितना सत्य है! कुमार व्यास के काव्य में पर्याप्त मात्रा में अनुप्रास हैं; परंतु वे

अप्रयास-सजन्य और सहज हैं। बिना प्रयत्न के अनायास ही शब्द कवि की भावना के साथ-साथ अपने आप दौड़ पड़ते हैं। पत्तों के पीछे छिपे फूल की सुगन्धि की तरह इस कवि के शब्दों में छिपे भाव मनोहारी हैं।

कुमार व्यास "रूपक साम्राज्य चक्रवर्ती" के रूप में प्रसिद्ध हैं। वह बोलते हैं तो रूपक में ही। वह जो भी लिखें वही चित्र है जो भी कहें वही संगीत। उनके काव्य में अनगिनत रूपक हैं, जो अत्यन्त कला पूर्ण ही नहीं भावपूर्ण भी हैं। उदाहरण के रूप में कुछ रूपक यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :—(भाव मात्र) "अकीर्ति कामिनी तीनों लोकों की जिह्वा पर नाचने लगेंगी"; "अंधकार पूर्ण नगर में चंद्रमा के तोरण लगाने की तरह"; "बुद्धि का पल्ला उड़ गया"; "संसार रूपी वृक्ष का फल है बन्धु-दर्शन; "अश्रु बिन्दुओं से क्रोध रूपी हथियार को तेज़ किया"; "मेरा पुण्य तेज़ हवा में रखा दीपक है"; "अन्धकार रूपी राक्षसी ने आँखों को निगल लिया"; "लज्जा ने विदा ली";—आदि आदि। ऐसे रूपकों आदि अन्त कहाँ? नारणप्पा (कुमारव्यास) का उक्ति-वैचित्र्य मोहक शब्दों का इन्द्रजाल, सुन्दर सीमित वर्णन,—यह सब वर्णनातीत है; शब्द सक्षम नहीं हैं।

कुमार व्यास के विषय में दिवंगत बी० एम० श्री कण्ठय्या ने कहा कि यह कन्नड साहित्य के बहुत बड़े कवि ही नहीं, कवियों में सिरमौर हैं; रत्न तुल्य हैं। यह बहुत सही है।

कुमार व्यास के बाद कुछ कन्नड कवियों ने भारत रचना के काम में हाथ लगाया है। तिम्मण्ण कवि (ई० सन् 1515) ने शान्ति पर्व से लेकर आगे के सात पर्वों की कथा जो, कुमारव्यास ने नहीं लिखी थी, लिखी है। चाटु विट्ठलनाथ (ई० सन् 1530) ने एक भारत लिखा है—ऐसी प्रतीति है; इस भारत के पौलोम पर्व और आस्तिक पर्व मात्र उपलब्ध हैं। सुकुमार भारती (ई० सन् 1550) ने एक भारत लिखा है। जो "चायण भारत" के नाम से प्रचलित है। श्री निवास कवि (ई० सन् 1700) ने भारत के स्त्री पर्व को लिखा है और लक्ष्मण कवि (ई० सन् 1723) ने भारत के प्रथम आठ पर्वों को लिखा है। परमदेव (ई० सन् 1777) ने "तुरंग भारत" नामक एक भारत लिखा है। कळले नंजराज (ई० सन् 1740) ने "चित्र भारत" के नाम से एक भारत लिखा है—ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु ये सब भारत कुमार व्यास भारत के सामने सूरज के सामने दीपक के समान हैं।

कुमार वाल्मीकि : कुमारव्यास ने जिस तरह महाभारत का संग्रह करके अपना भारत लिखा उसी तरह कुमार वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य को संग्रह करके लिखा हैं। कुमारव्यास का इष्टदेव यदि गदग के वीरनारायण स्वामी है, तो कुमार वाल्मीकि का इष्टदेव तोरवे का नरसिंह स्वामी है। वह गदग का भारत है वह तोरवे की रामायण है। इन दोनों कवियों ने अपनी रचना के लिए दो ऐसे महाकाव्य चुने हैं जो भारतीयों के लिए परम पवित्र हैं। दोनों कवियों ने मूल कृतियों को संगत करके भामिनी षट्पदी में प्रस्तुत किया है। दोनों की काव्य-सृष्टि के मूल में भक्ति प्रेरक शक्ति है। दोनों ने अपने-अपने काव्यों के नायकों को भगवान् मानकर भक्ति भाव में विभोर होकर तन्मयता से लिखा है। यही इन दोनों की समानता है। परन्तु कुमार वाल्मीकि कहते हैं—"सरस सुन्दर वर्णन करने वाले कवियों में सूरज की तरह देदी-

प्यमान कवि कुमारण्णा है और दूसरा मैं हूँ । बात परख कर देखने पर भी यही सही लगती है ।"—इसलिए जैसे कुमारव्यास ने कहा है वैसे ही इन्होंने भी कहा—"अन्य कवि वंध्या के समान हैं, इनकी गिनती ही क्या ?" कुमार वाल्मीकि की दृष्टि में ये दोनों कृतियाँ बराबर हैं । अपने को और कुमारव्यास को छोड़कर अन्य सब कवियों को शब्दाक्षर दरिद्र और कविता करना न जानने वाले रस भावहीन कहता है, यह कुमार वाल्मीकि उनके गर्व-पूर्ण वचनों में सत्य है कुमार व्यास के विषय में । यदि इन बातों की दृष्टि से कुमार वाल्मीकि की कृति को परखेंगे तो यह केवल उत्प्रेक्षा मात्र है । बड़ों के साथ अपने को भी सम्मिलित कर अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनाने वाले सामान्य व्यक्तियों की तरह इस कवि का वर्तन है ।

यह तोरवे रामायण पाँच हजार से भी अधिक पद्यों वाला एक बृहत् काव्य है । रामायण के छः कांडों में से पांच कांडों की कथा इस काव्य के पूर्वार्ध में निरूपित है । शेष आधा युद्ध कांड है । इसकी (कुमार वाल्मीकी) भाषा सरल है, कथा निरूपण शैली में प्रवाह है, शैली में प्रसाद गुण है । कुमार वाल्मीकि ने कुमार व्यास के भण्डार पर हाथ लगाया है, अतः वह पुष्ट है; परन्तु कुमार व्यास की कृति में जो दर्शन और ध्वनि हैं वह यहाँ नहीं है । इसकी काव्य वाहिनी समतल भूमि पर बहने वाली छोटी नदी मात्र है, महानदी नहीं । आभूषण सुंदर कलापूर्ण न होने पर भी बना है, सोने से बना है, सोने का तो मूल्य है ही । यह कवि महाकवि न होने पर भी भक्त कवि जरूर है । वाल्मीकी ने एक अद्वितीय श्रेष्ठ मानव के आदर्श को श्रीरामचंद्र में देखा है तो कुमार वाल्मीकि ने उस अद्वितीय श्रेष्ठ मानव में देवत्व का आवाहन किया है । इस कथा को शिवजी ने पार्वती से कहा है । उसमें शिवजी ने "परम मंगल नाम, निरूपम निगम विश्राम" कहकर श्रीरामचन्द्र का परिचय पार्वती जी से कराया है । वे शिवजी द्वारा कथित इस रामकथा को बड़े आनंद के साथ पुलकित होकर चाव से सुनती है । कुमार व्यास ही की तरह कुमार वाल्मीकी भी कहता है कि भक्ति के साथ इस काव्य का एक अक्षर भी कोई सुनेंगे तो उनके पाप कट जाते हैं और सुनने वाले को मोक्ष-प्राप्ति होती है । इस कारण से उसके काव्य के पठन से पाठकों का मंगल होगा—इसमें संदेह न हों । जैसे श्री कृष्ण का नाम लेते ही कुमार व्यास अपने को भूलकर आत्म-विस्तृत हो भक्ति विभोर हो जाता है वैसे राम या सीता का नाम सुनते ही भक्ति भाव में परवश हो जाता है, और इसी दशा में आत्म-विस्मृत होकर गाने लगता है । यह प्रसंग देखिये—हनुमान अशोक वन में रहने वाली सीताजी को देखता है; इस प्रसंग पर कवि कहता है—

"मंदगमनेॅ यनमलतर पू
र्णेन्दुवदनेॅय पूर्व हरियर
बिन्द सदनेॅ सकल सुरकुल इक्ति देवतेॅय
इन्दु भास्कर कमलभव सं
क्रन्दनादि समस्त सुरमुनि
वंदितेॅय वर विश्वमातेॅय कंडनाहनुम ।"

और

"बिसज संभव जनित जननिय
कुसुमशरनंबिकेॅय भुवन
प्रसरभरितेॅय पुण्य चरितेॅयनधिक सुव्रतेॅय
पशुपति ब्रह्मामरेन्द्रर
शशिवदनेॅयर भाग्यलक्ष्मिय
नसदळद मायाविनोदेॅय कंडनाहनुम ।"—

भाव यह है कि "हनुमान ने पूर्णचंद के समान साक्षात् महालक्ष्मी जग-माता सीताजी को अशोक वाटिका में देखा।" [ये दोनों पद्य एकाध कन्नड प्रत्ययों को छोड़कर बाकी सब संस्कृति पदावली से युक्त हैं। ध्यान से पढ़ने पर अर्थ स्पष्ट हो जाता है; अतः विस्तार के साथ समझाने का यत्न नहीं किया है।] कवि ने सीताजी को केवल राजकुमारी नहीं माना है। सीताजी कवि के लिए साक्षात् लक्ष्मी है, विश्व माता है। श्रीरामचन्द्र के विषय में कहना ही क्या ? कवि के लिए अजन्मा जन्मा है इक्ष्वांकुवंश में। जब राम तक मातृगर्भ में रहे तब तक स्वर्ग के देवता प्रतिदिन आकर उस गर्भस्थ भगवान् का उपचार करते रहे—यों श्री रामचन्द्र जी का पात्र एक अलौकिक प्रभा वलय के घेरे में ही विकसित होता आया है। ऐसे पुण्यचरित्र पुरुषोत्तम के चरित्र संबंधी काव्य श्रवण या पठन करने से साधारण जनता तृप्त होगी और अलौकिक सुख प्राप्ति करेगी ही।

कुमारवाल्मीकी ने (ई० सन् 1970) कुमार व्यास की प्रशंसा की है। बोब्बूर रंग कवि ने (ई० सन्० 1770) कुमार वाल्मीकी की प्रशंसा की है। इसलिए इस कवि का समय इन दोनों के बीच का है। कुमार व्यास का असली जैसे नाम 'नारणप्पा' कहा जाता है, वैसे ही कुमारवाल्मीकी कानाम 'नरहरि' कहकर निर्देशित किया जाता है। "कवि राजहंस" इसकी विरुदावली थी—ऐसा प्रतीत होता है। कविचरितकार बताते हैं कि इसने "मैरावण ळाळग—(मैरावण युद्ध)" नामक एक काव्य भी लिखा है। इस बात के न मानने वाले पंडित भी हैं। इस विषय में इदमित्थं "कहकर निश्चित रूप से कहने के लिए उपयुक्त आधार नहीं।

तिम्मण्ण कवि : पदवाक्य प्रमाणज भास्कर कवि का पुत्र है यह तिम्मण्ण कवि। इसने महाभारत के उत्तर भाग को अर्थात् शान्तिपर्व और आगे के सात पर्वों को—जिन्हें कुमार व्यास ने नहीं लिखा है—भामिनी षट्टादी में कन्नड-अनुवाद करके प्रस्तुत किया है। यह कविविजयनगर के कृष्णदेवराय (1509-1529) के आस्थान में था। राजा ने इस कवि से कहा मालूम होता है कि महाभारत के जिन पर्वों की कथा को बिना लिखे कुमारव्यास ने छोड़ दिया है उन्हें लिखें। तिम्मण्ण कवि ने राजाज्ञा को "प्रसाद" मानकर ग्रंथ रचना की। इस कवि का यह ग्रंथ बड़ा अवश्य है; इसमें इसमें 3736 पद्य हैं। प्रत्येक पर्व के अन्त में जो पर्व समाप्ति-सूचक वाक्य हैं, उनसे पता लगता है कि इस ग्रंथ का नाम "कृष्णराय भारत कथा मंजरी" है।

यह 'कर्नाटक कविकुल सार्वभौम' नामक विरुद से विभूषित भी रहा—ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु यह विरुदावली उसके काव्य-सामर्थ्य के लिए न होकर राज-कृपा प्रभाव के कारण होगी। तिम्मण्ण कवि कवि-हृदयी अवश्य है, परंतु कुमार व्यास की

बराबरी में खड़े हो सके, ऐसा महाकवि नहीं। कुमार व्यास की-सी प्रतिभा, कल्पना-शक्ति, प्रासादिक वाणी— आदि की खोज इस (तिम्मण्ण कवि) कवि की कृति में खोजना विवेक का काम नहीं; व्यर्थ का प्रयास है। उस सूर्य के सामने यह एक साधारण दीपक है। इतना ही नहीं, तिम्मण्ण कवि ने अपनी काव्य-कृति के लिए जिस वस्तु को चुना वही रसभरित नहीं। इस वस्तु में आने वाले पात्र राजा और ऋषि-मुनि हैं। इन राजाओं और ऋषि-मुनियों के उपाख्यानों में लौकिक या पारलौकिक धर्म जिज्ञासा, राजनीति और वेदांत विचार—ये ही बातें अधिक हैं। हृदय के रस भावों को छेड़ सके ऐसे प्रसंग ही अपूर्व हैं। अपनी कृति के लिए ऐसे नीरस वस्तु का चयन ही ठीक नहीं था। यदि चुना भी तो संस्कृति से सीधा कन्नड में लाने के बदले तेलुगु कवियों का आश्रय लिया है-- इस कवि ने। तेलुगु का चंपू भारत कवि नन्नय से आरम्भ किया जाकर कवि तिम्कना से समाप्त किया गया है। वह बहुत सुंदर रस भरित काव्य है— इसमें कोई संदेह नहीं। परंतु तिम्मण्ण कवि ने संस्कृतमूल का उपयोग न करके इस तेलुगु भारत का उपयोग करने के कारण उसका व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाया है। राजा कृष्णदेवराय ने कुमार व्यास के भारत को "देवगंगा" का नाम दिया और तिम्मणा कवि से कहा कि शेष भारत के भाग को लिखकर उस गंगा में अपनी यमुना नदी के साथ प्रवाह का संगम करो। कुमार व्यास की गंगा के इस तिम्मण्ण कवि की यमुना का संगम तो हुआ। परंतु यह संगम तीर्थराज प्रयाग के पास के संगम का-सा है। वह शुभ्र श्वेत है और यह कृष्ण (वर्ण) है।

कुमार व्यास युग के वैदिक कवि

चाटु विट्ठलनाथ : यह सर्वविदित है कि भारतीय जनता के लिए रामायण और महाभारत अत्यन्त प्रिय हैं वैसे शुकमुनि रचित भागवत भी अत्यंत प्रिय हैं। इस भागवत को कन्नड में प्रस्तुत करने का श्रेय चाटु विट्ठलनाथ को है। इसने अपनी कृति में कई जगहों पर बताया है कि "यह सदानंदाख्य योगी की तोतली बोली है, गोपीनाथ सदानंदाख्य मुनिवर का मंगल करेंगे।" इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इनका असली नाम सदानंद योगी होगा। जैसे गदग का नारणप्पा "कुमारव्यास" बना और रामायण के लेखक नरहरि "कुमार वाल्मीकी" बना वैसे ही भागवत का लेखक सदानंद "नित्यात्म शिवयोगी" के विरुद से अथवा काव्य नाम से व्यवहृत है। इस काव्य के कर्तृत्व के विषय में अनेक मत हैं। "नित्यात्मनाथ, विद्यानाथ, सदानंद योगी, निर्वाणनाथ, चाटुविट्ठलनाथ,— इन पाँच भिन्न-भिन्न कवियों ने इस भागवत के भिन्न-भिन्न भागों को लिखा है और ये पांचों नाथपंथी संन्यासी थे,"— ऐसा कन्नड साहित्य परिषद् पत्रिका में श्री वेटगेरी कृष्ण शर्मा ने अपने एक लेख में राय जाहिर की है। श्री० आर० एस० मुगली ने बताया है कि भागवत के दस स्कंधों को आराध्येन्द्र ने बारहवें स्कंध को निर्वाणनाथ ने, ग्यारहवें स्कंध को सदानंद योगी ने लिखा है। वे बताते यह भी है कि आराध्येन्द्र, सदानंद योगी और निर्वाणनाथ इन तीनों के द्वारा लिखित इस ग्रंथ के भागों को इकट्ठा कर संग्रह करने का श्रेय चाटु विट्ठलनाथ का है। यह एक बृहत्काय ग्रंथ है। इस ग्रंथमें बारह हजार से भी अधिक पद्य हैं। इधर के कवियों ने इस ग्रंथ का नामोल्लेख भी नहीं किया है। कन्नड भागवत के कर्ता ने भी पूर्व कवियों का स्मरण नहीं किया है। इसलिए इस कवि के समय का निर्दिष्ट रूप से निश्चित करने के लिए आधार अपर्याप्त है। वह भारत जिसे चाटु विट्ठलनाथ ने ही लिखा कहा जाता है उसमें पौलोम और आस्तिक पर्वों की कथा है जिसे कुमारव्यास ने बिना लिखे छोड़ दिया है। इस पर कुमारव्यास का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। परंतु उसकी प्रतिभा और कल्पना शक्ति किंचिन्मात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होती। व्याकरण की अशुद्धियाँ बहुत हैं। काव्य की दृष्टि से यहाँ देखने लायक कुछ भी नहीं है। ऐसा लगता है कि यह कवि कुमारव्यास के बाद का ही हैं; यह निर्विवाद है। कवि ने भागवत काव्य में अपने गुरु की स्तुति की है। इस प्रसंग में गुरु अच्युतारण्य यति की स्तुति के साथ विजयनगर के कृष्णदेव राय (1508-15 9) एवं अच्युतराय (1530-1542) के नामों का उल्लेख किया है। इससे लगता है कि इसका समय ई० सन् 1530 का है—ऐसा कविचरितकारों ने निर्धारित किया है।

कवि ने भागवत काव्य लेखन के काम में यह समझकर ही हाथ लगाया है कि यह समस्त भवरोगों को हरण करने वाला है। यह भागवत कन्नड में है तो भी संस्कृत भागवत जितना ही पूज्य है। इसमें "हरिगुण स्तुति, हरिपरायण शरणजन सत्कीर्ति संस्तुति, हरि पदांबुज भक्ति, तत्साधन विस्तार; हरि निजज्ञानोपलालित परतरानंदा-नुभव"—इन सबसे युक्त हरिभक्ति-कोश है—यह कृति। कवि अपने आदर्श "धर्म-

निरूपण" को अपनी कृति के द्वारा अभिव्यक्ति करके कृतकृत्य हुआ है। परंतु काव्य-गुण साधन की दृष्टि से उसी तरह की कृतकृत्यता नहीं पा सका है। कवि की रचना सरल और सत्वशाली अवश्य है। वस्तु निरूपण में निरर्गल धारा है। कहीं-कहीं सुंदर समयोचित वर्णन भी हैं। कंस देवकी को मारने जाता है, इसे देख कवि कहता है— पैर में कांटा लगा तो कांटे को निकालना छोड़कर उस घास को ही जला देंगे, जिससे कांटा पैदा होता है ? कैसी मूर्खता है ?" देवकी ने बच्चों को जन्म दिया, व्यर्थ के लिए। महाविष्णु ने बच्चों के रूप में जन्म लिया। यह महाविष्णु कोई सामान्य नहीं। वह "श्रुतिशिरस्सी मंत मुकामणि। महामहिम है।" इन्द्र ने पानी बरसाया। सारा गोकुल क्षणमात्र में भींज गया। कृष्ण को मार डालने के लिए पूतना नामक राक्षसी आयी। बलराम और कृष्ण "भूमि भारायित नृपान्वय धूमकेतुओं" की तरह बढ़ रहे थे। उधर अक्रूर कृष्ण-दर्शन के के लिए कातर है। लोग सुंदर बालक बलराम और कृष्ण-दोनों को देख-देखकर खुश हो रहे हैं। कंस वध का वृत्तांत सुनकर जरासंध क्रोध से अग्निवर्षा कर रहा है। हलधर के साथ युद्ध करने के लिए जरासंध मूंछें मरोडता हुआ क्रोध से दीप्ति लाल-लाल आँखों से तरेरता हुआ, बलराम के सामने उपस्थित होता है।"—आदि आदि प्रसंगों का वर्णन पढने लगते हैं तो कुमारव्यास का स्मरण सहज ही होने लगता है। कन्नड भागवत कुराव्यास के भारत की ही तरह भामिनी षट्पदी छन्द में है। परंतु काव्य गुण के विषय में भारतकार और भागवतकार दोनों में महान् अंतर है। कुमारव्यास भारत दुग्ध-मधुर है तो चाटु विट्ठलनाथ का भागवत जल-सदृश है। दूध कहां, जल कहां ? इस कवि के बृहत्काय काव्य में श्रीकृष्ण-चरित से युक्त दशमस्कंध की कथा खासकर कृष्ण की बाललीला, रुक्मिणी कल्याण, कुचेलो-पाख्यान आदि आदि प्रसंग बहुत ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी हैं।

लक्ष्मीश : महाकवि पंप के लिए रन्न, हरिहर के लिए राघवांक जैसे महाकवि कुमारव्यास की जोड़ में लक्ष्मीश है। यह कवि-युग्म की तुलना उनकी काव्तशक्ति से अधिक उनकी काव्यदृष्टि को लेकर है। कुमारव्यास और लक्ष्मीश दोनों ने भारत को पांडवों की कथा को— काव्य वस्तु के रूप में स्वीकार किया है। दोनों का कथानायक श्रीकृष्ण है। भारत का इतिहास इनके हाथ में पड़कर कृष्णचरितामृत के रूप में परि-वर्तित हुआ है। एक व्यास भारत है तो दूसरा जैमिनीभारत है। इनका मूल संस्कृत ने बड़ी विनम्रता से कहा है कि 'गदग का होनेपर भी कन्नड में ये दोनों बिलकुल स्वतन्त्र कृतियों की तरह बने हैं। कुमारव्यास वीर नारायण ही कवि है और लिपिकार कुमारव्यास है।" लक्ष्मीश ने कहा है कि —"गीर्वाणपुर निलय, संगीत सुकला निपुण, लक्ष्मीवर ने (भगवान् ने) स्वयं अपनी वीणा को मेरे मुंह से कहलवाया है।" इन दोनों कवियों ने हरिहर भेद बुद्धिरहित होकर (इस भेद के भँवर में न पड़कर) अपने को बचाते हुए समन्वय-बुद्धि से निर्माण किया है। इन दोनों की कृतित्व शक्ति में आज गजां-तर रहने पर भी दोनों समान रूप से जनप्रिय हैं और पंडितपामर दोनों तरह के लोगों के लिए प्यारे हैं। दोनों एक तरह से समान कीर्तिशाली हैं। कुमारव्यास की हिमालय सी उन्नत प्रतिभा भामिनी षट्पदी(छन्द)में प्रवहित हुई है तो लक्ष्मीश कवि की प्रतिभा वार्धक षट्पदी (छन्द) में अद्वितीय नाद-माधुरी के साथ साथ झंकृत (षट्पदीझंकृत) हुई है।

कवि लक्ष्मीश के देश-काल अनिर्दिष्ट हैं। कवि ने स्वयं अपने विषय में जितना बताया है उससे इतना विदित होता है कि "वह अण्णमांक का पुत्र है, और वह "कवि चूतवन चैत्र" नामक विरुद भूषित है। वह देवपुर के लक्ष्मीरमण भगवान् का आराधक है।" इस काव्य के बीच कभी-कभी देवपुर नाम के बदले सुरपुर नाम को पर्यायवाची पद के रूप में प्रयोग किया है। इससे यह संदेह उत्पन्न होता है कि वह मैसूर संस्थान (पुराने) के कडूर के पास रहने वाला "देवनूर" है या रायचूर के पास का 'सुरपुर' है ? यह प्रश्न उठता है। अनेक विद्वानों की राय है कि इस कवि का निवास स्थान कडूर के पास का देवनूर ही होगा। कृति के अंदर मिलने वाले प्रमाणों से यही ठीक मालूम पड़ता है। कवि ने यौवनाश्व की भद्रावती का जैसा वर्णन किया है उसे देखने पर ऐसा लगता है कि कवि ने खुद अपनी आँखों से भद्रावती नगर को देखा है। उस वर्णन के अनुसार मलेनाडु का प्रकृति-सौन्दर्य आदि इस देवनूर के परिसर क्षेत्रों में है। इसके अलावा 'सुरपुर' का प्रयोग कम है और "देवपुर" का नाम ही बार-बार प्रयुक्त हुआ है। इन कारणों से कवि का जन्म-स्थान कडूर के पास का "देवनूर' ही हो सकता है। अस्तु; अब इसके काल के संबंध में विचार करेंगे। इस विषय में एक निर्दिष्ट मत तो नहीं दिया जा सकता। नंदी महात्म्य के लेखक गोप कवि ने (ई० सन् 1600) इस कवि की प्रशंसा की है; इससे यह निर्विवाद है कि यह ई० सन् 1600 से भी पूर्व का होगा। परंतु कितना प्राचीन है यह बताने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। कवि ने भद्रावली का जो वर्णन किया है उससे विजयनगर का वर्णन आँखों के सामने प्रत्यक्ष होता है। इससे यह कवि विजयनगर के राजाओं के समकालीन होगा—ऐसा मत श्रीमान् तिरुमले ताताचार्य शर्माजी का है। उसमें ऐसा अनुमान किया जाता है कि वह कृष्णदेव राय के समकालीन होगा। "कृष्णदेव राय के दिग्विजय" में अर्जुन के "दिग्विजय" की छाया लक्षित होना कोई कठिन बात नहीं है; और लक्ष्मीश ने जिस द्वारिका का वर्णन किया है वह विजयनगर का चित्र तथा कृष्ण की राजसभा का चित्र कृष्णदेवराय के नवरात्र्युत्सव के संदर्भ की राजसभा के चित्र को उपस्थित करता है।"—ऐसा कहा जा सकता है। यदि इस बात को स्वीकार करें तो लक्ष्मीश का समय ई० सन् 1530 माना जा सकता है।

लक्ष्मीश का "जैमिनी भारत' हमारी पिछली पीढ़ी में बहुत जनप्रिय काव्य बना हुआ था। कन्नड प्रदेश की जनता के कन्नड पांडित्य को जानने समझने की स्पर्शशिला माना जाता था यह "जैमिनी भारत"। "राजशेखर विलास" और "जैमिनी भारत"—इन कृतियों को पढ़कर समझ सकने वाले तथा इनका अर्थ अच्छी तरह तथा सुंदर ढंग से बता सकने वाले ही उन दिनों में महापंडित माने जा सकते थे। इसके अत्यंत जनप्रिय होने के कई कारण हैं। कवि बताते हैं—

"पुण्यमिदु कृष्णचरितामृतं, सुकवीन्द्र
गण्यमिदु; शृंगार कुसुमतरु तुरुगिदा
रण्यमिदु, नवरस प्रौढि लालित्य नाना विचित्रार्थंगळ
भण्यमिदु, शारदेय सम्मोहनांग ला
वण्यमिदु, भावकर किविदोंडविनोद विद हि
रण्यमिदु, भूतलदोळेनें विराजिपुदु लक्ष्मीपतिय काव्यरचनें।"

कि "यह कृष्ण चरितामृत पुण्यकथा है, सत्कवि कृतियों में परमोत्कृष्ट कृति है यह; यह शृंगारकुसुमतरुओं से भरा अरण्य है; नवरस भरित, लक्षित नानार्थों का भंडार है यह; विद्याधिदेवी शारदामाता का सौन्दर्य है यह; भावुकों के कर्णाभरण के लिए सिद्ध सुवर्ण है—लक्ष्मीपति की काव्य-कृति।"—इस तरह कवि की दृष्टि में यह पुण्यदायक "कृष्ण चरितामृत है, जिसे पढ़कर लोग पुण्यवान् बने—यह कवि का आशय है, इसी कारण से यह काव्य लोकप्रिय बना। लक्ष्मीश ने भी कुमार व्यास की तरह जब कभी अवकाश मिला तब महाविष्णु के पूर्णावतार स्वरूप श्रीकृष्ण की स्तुति अनन्य भक्ति से की है। हर कहीं श्रीकृष्ण की महिमा और उनकी भक्त-वत्सलता आदि कल्याण गुणों का ही वर्णन इस कृति में पाया जाता है। युद्ध भूमि में सुधन्वा कृष्ण को देखते हैं; देखते ही वह भगवान् की स्तुति करने लगते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का वह दिव्य सौन्दर्य तथा उनकी भक्त-वत्सलता स्तोत्र बनकर काव्य में अव्याहत होकर बहने लगते हैं, कवि भाव-विभोर हो मस्त होकर गाने लगता है। उनका महाविष्णु स्तोत्र जितना हृदय-स्पर्शी है उतना ही हृदय-स्पर्शी उनका शिव स्तोत्र भी है; उनका शक्ति स्तोत्र भी उतना ही हृदय-स्पर्शी है। एक ही श्वास में हरि और हर की स्तुति करना इनके विषय में सर्व-सामान्य बात है। इस कवि की दृष्टि में हरिहर भेद एक महान् पाप है। अर्जुन सुधन्व से युद्ध करता है, अर्जुन के दो बाण व्यर्थ हो जाते हैं, तो अर्जुन से कवि प्रतिज्ञा कराते हैं—"इस तीसरे बाण से इसका सिर न उड़ा दूं तो हरिहर भेद करने तिवा करने वाले की जो गति होगी वही दुर्गति मेरी हो।" इससे यह स्पष्ट है कि कवि हरिहर भेद करने को कितना बड़ा अपराध और पाप मानते हैं। कवि अपने काव्य की फलश्रुति के विषय में बताते हैं—"हरिहरार्चन से समस्त सन्मंगलों की प्राप्ति होगी।"—इससे कवि की दार्शनिक दृष्टि स्पष्ट हो जाती है। इसी कारण से इस कवि का यह काव्य (जैमिनि भारत) जाति-मतों के भेदभाव से परे रहकर सर्वप्रिय बना है।

लक्ष्मीश का काव्य पंडित-पामर, आबालवृद्ध सब के लिए प्रिय बना है। उसके अंतर्गत कथा और अवांतर कथारस का कारण है। कवि ने वाग्देवी सरस्वती से प्रार्थना की कि—"हे देवी! मेरा यह काव्य लोगों के लिए सुश्राव्य होकर लोकप्रिय बने, मेरी जिह्वा पर बस कर मुझे सद्बुद्धि देकर स्मितवदनी होकर मुझ पर अनुग्रह करो।" वाक्देवी सरस्वती ने "तथास्तु" कहकर आशीर्वाद दिया है—ऐसा प्रतीत होता है। इससे यह कवि महान् कलाकार और बहुत ही अच्छे कथाकार होकर अपने इष्टार्थ की सिद्धि पा सका है। यवनाश्व, नीलध्वज, चंडी, सुधन्व, प्रमीला, बभ्रुवाहन, मयूरध्वज, चंद्रहास, बकदाल्भ्य और सीतादेवी—आदि आदि की कथाएँ एक के बाद एक काव्य में आदि से लेकर अंत तक भरी पड़ी हैं। उनका यह काव्य "जैमिनि भारत" एक "कथा सरित् सागर" सा बना हुआ है। कहानी का आरंभ, विकास और समाप्ति इन सब में उनकी कुशलता बहुत ही प्रशंसनीय है। कथा का कहना आरंभ करते हैं तो आरंभ से अंत तक पाठक के कुतूहल को कदम-कदम पर छेड़ते हुए आगे बढ़ते हैं, अंत तक कहीं रुकते नहीं। पाठक का कुतूहल भी घटता नहीं। एक कथा यह है—"उद्दालक एक ब्राह्मण था। वह अपने समय-समय पर के जपानुष्ठान में सहायक बने—इस उद्देश्य से चंडी के साथ विवाह किया। परंतु वह नाम के अनुसार चंडी ही

थी, नाम अन्वर्थ था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह पति की बात रत्ती भर न मानेगी। ऐसे विरस दांपत्य जीवन के कारण बेचारा ब्राह्मण बड़ा दुःखी था। इस दुःखी स्थिति को देखकर कौण्डिन्य ऋषि को उन पर दया आयी। उन्होंने सलाह दी कि तुम अपनी पत्नी से अपनी इच्छा के अनुसार काम कराना चाहो तो उससे हमेशा अपनी इच्छा के विरुद्ध बात कहो। तब वह वही करेगी जो तुम चाहोगे। उद्दालक ऋषि कौण्डिन्य की सलाह के अनुसार करने लगा। इस तरह सुख से रहता था। ऐसी दशा में एक बार उद्दालक के पिता का श्राद्ध आया। तब उन्होंने पत्नी (चंडी) से कहा कि कल पिता का श्राद्ध है, वह नहीं करेंगे, आवश्यक शाक-भाजी नहीं लायेंगे, चावल-जौ आदि नहीं लायेंगे, अपात्र ब्राह्मणों को बुलायेंगे, वस्त्र दक्षिण नहीं देंगे—आदि आदि। ऐसी विरुद्ध बातें कह कर पत्नी से वांछित कार्य करा लिया। परंतु भूल से पितृपिंड को पोखरे के जल में डाल आने के लिए कहा। सो उस पत्नी ने पोखर में डालने के बदले पिंड उठाकर रास्ते में फेंक दिया। इससे रुष्ट होकर उसे शाप दिया कि तुम पत्थर हो जाओ; और चला गया। कवि ने कथा को संग्रह करके सारवान् बनाकर बहुत ही सरस ढंग से कहा है। कथा के आरंभ से अंत तक हास्य रस की नदी बहायी है। परन्तु अन्त में पत्नी को पत्थर बनने का शाप पति से दिलाकर एक निठुर घटना पाठकों के सामने कवि ने उपस्थित किया है। माता सरस्वती ने प्रसन्नवदन होकर कवि पर कटाक्ष किया है।

जैमिनि भारत एक वीररस प्रधान काव्य है। भारत युद्ध के प्रसंग में जो भाई-बन्धुओं की हत्या हुई, इससे युधिष्ठिर-निर्वात ग्रीष्म की झुलसाने वाली गर्मी के कारण कुम्हलाये हुए बाल रसाल जैसे व्याकुल हो बैठे हैं; युधिष्ठिर की इस दशा को देखकर वेदव्यास ने युद्धजन्य बन्धु-भ्रातृ-वध के दोष से मुक्त होने के लिए अश्वमेघ यज्ञ करने की प्रेरणा दी। यज्ञाश्व एक वर्ष भर भू-प्रदक्षिण करने निकला। इस यज्ञाश्व को पकड़कर बांध रखने वाले महारथियों को युद्ध में हराकर अर्जुन ने बड़े भाई के इस यज्ञ कर्म को सम्पन्न किया। यही जैमिनि भारत की कथावस्तु है। इसलिए हम इस काव्य में एक के बाद एक युद्ध का वर्णन देखते हैं। कृति कर्ता महान् प्रतिभाशाली होने के कारण इन युद्धों के वर्णन में काफी विविधता है। जैमिनि भारत युद्ध विद्या का एक विश्व कोश ही है। अपने स्त्रीधन, गोधन की रक्षा के लिए किले बांध कर सदा युद्ध निरत कन्नड प्रदेश के वीरों के लिए सहज ही यह जैमिनि भारत प्रिय लगा है; ठीक ही तो है। लक्ष्मीश उत्तर कुमार जैसे युद्ध भीरु को भी संग्राम शूर बनाने की शक्ति रखता है। उत्तर कुमार कहता है—"सिर कटकर गिरे तो धड़ ही लड़ेंगे, जमीन पर कट कर गिरे सिर ऊठकर लड़ेंगे।"—आदि आदि; लक्ष्मीश का यह रण-रंग-चित्र है। यह भीषण जितना है उतना ही सुन्दर है। आधुनिक सभ्यता के आक्रमण के कारण निर्वीर्य बनी आज की जनता इस काव्य को पढ़कर फिर से अपनी खोई हुई वीरता को प्राप्त कर सकेगी।

कथावस्तु की दृष्टि से यह सहज ही ठीक लगता है कि लक्ष्मीश के इस काव्य में आधा भाग युद्ध-वर्णन के लिए ही सुरक्षित हो गया है। कवि जितना वीर है उतना ही रसिक भी है। विश्वमोहक शृंगार के निरूपण में पाठकों को हर्ष पुलकित कर भुला देने में सिद्धहस्त है, यह कवि। कभी-कभी उनका स्त्रीवर्णन मर्यादा को

लांघ गया हो—ऐसा लगता है। कभी वेश्यावाटिका का अथवा रतिक्रीडा का वर्णन करते समय मर्यादित सीमा का उल्लंघन, कवि की रुचि शुद्धि के सामने एक प्रश्नार्थक चिह्न-सा उठ खड़ा हो जाता है। पर आम तौर पर उनका स्त्रीवर्णन मनोज्ञ ही होता है। कुंतलपुर की राजकुमारी चंपक मालिनी मंत्रिपुत्री विषया के साथ उद्यानवन में जाती हैं और वहाँ मस्त हथिनियों की तरह जलकेली करने के पश्चात् अपनी सखियों के साथ सरोवर की सीढ़ियों पर खड़ी है। उस सुकुमारी का वर्णन मनोहर ढंग से किया है। "सद्यः स्नाता, आर्द्र-वसना, स्निग्ध-केशी, शुभ्रवर्णा, बिंबाधरी राजकुमारी स्फटिक शिला निर्मित साल भंजिका की तरह तपस्वियों के मनों को स्थिरता से डिगाने वाली मोहनमूर्ति-से उन सखियों के बीच में सरोवर के मणिमय सोपान पर रसाल पल्लव-पाणि होकर खड़ी थी।"—(यह लक्ष्मीश के मूल-वर्णन का भाव है।—कभी-कभी उनके वर्णन में प्रतिभा से भी पांडित्य अधिक दिखता है। वर्णानुप्रास, अक्षरवर्ति, किसी अक्षर की बारह कडी (क० का० कि० जैसे क्रम से शब्द का आरंभ कर उसी क्रम से कविता उन्हीं में रचना) आदि से चमत्कारपूर्ण कविता रचना—इत्यादि में निष्णात जादूगर हैं, यह कवि। संभवतः उस समय के समकालीन जनता की रुचि ऐसे प्रास अनुप्रास आदि की ओर रही होगी। इस तरह साधारण व्यक्तियों को तृप्त कर सके—ऐसी रीति, तथा पंडितों को आनंद दे सके—ऐसे ढंग—इस तरह यह कवि सबके के लिए आनंददायक काव्य सृजन करने में बड़े पटु हैं, ऐंद्रजालिक हैं। भिन्न-भिन्न रुचि के लोगों को उन उनकी रुचि के अनुसार तथा उन उनके स्तर के अनुसार संतुष्ट करने की शक्ति इनके काव्य में है। "भिन्न रुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनं"—यह उक्ति नाटक साहित्य पर जैसा लागू है वैसे ही लक्ष्मीश कवि के काव्य के लिए भी लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए कवि लक्ष्मीश के द्वारा चित्रित एक सुन्दर शृंगार का चित्र देखिये—"अश्वमेघ का घोड़ा चंपकापुर पहुँचा; वहाँ के राजा हंसध्वज ने घोड़े को बांध रखा। अर्जुन उनसे युद्ध करने के लिए तैयार हुआ। राजा का प्रिय पुत्र सुधन्वा अर्जुन से लड़ने के लिए सैन्य के साथ निकला। उसके माता-पिता ने आशीर्वाद दिया। उसकी बहन कमला ने आरती उतारी, बीड़ा देकर विदा किया। वहाँ से सुधन्वा अपने अंतःपुर में आया। अपनी पत्नी प्रभावती से विदा लेना है। पत्नी प्रभावती ने अपने प्रिय-पति को आते हुए दूर से ही देख लिया। पुष्प थाल में सुगंध-पूर्ण चंपाकुसुम और गंध कर्पूर तांबूल आदि लेकर मदन श्री की तरह पति से मिलने आयी। चतुर्थ स्नाता वह सुन्दरी म्यान से निकाली हुई तलवार से चमक रही थी। नव मल्लिका-कुसुमालंकृता उस सुन्दरी का मंदहास, बोलते समय चमकने वाली उसकी दंत पंक्ति, अपांग दृष्टि तथा कंठ शोभित मुक्ताहार, पहनी हुई रेशम की साड़ी,—यह सब मिलकर वह सुन्दरी चंद्रकांत शिला निर्मित पुतली-सी लग रही थी। उस सुन्दरी के शरीर की कांति के सामने चंपक पुष्पों का वह आकर्षक वर्ण भी फीका लग रहा है। सुधन्वा अपनी पत्नी के इस सौंदर्य को मंत्र-मुग्ध की तरह देखते हुए मंदस्मित के साथ में से सुगंधित पुष्प अपने हाथ में लेकर युद्ध में जाने के लिए अनुमति मांगता है। तब पत्नी प्रश्न करती है कि समरोद्युक्त योद्धा के लिए निस्संतान होना कहीं उचित है? ठीक इसी वक्त, जबकि वह पति से सवाल कर रही है, रणभेरी बज उठती है। यदि युद्ध में जाने के लिए विलंब

हो तो राजदंड मिलेगा। बेचारा सुधन्वा अब क्या करें ? उसे समझाता है—कम-नियमों को तो तुम जानती ही हो, मैं भी कैसे सह लूं ? अब तो युद्धक्षेत्र में जाने के लिए मुझे अनुमति दो। – यह कहते हुए उसकी ठोडी पकड़कर चुंबन किया। पति के स्पर्श से वह अपने को भूल कर परवश हो गयीं, और जोर से अपने बाहुपाश में कस कर आलिंगन किया। इससे युद्धक्षेत्र में देरी से जाना हुआ, जिससे सुधन्वा को कठोर राजदंड का शिकार बनना पड़ा। प्रभावती का अपने पति सुधन्वा का आलिंगन कवि के द्वारा बहुत ही मार्मिक ढंग से वर्णित है। वाग्देवी सरस्वती की कृपा से कवि को हँसने-हँसाने की शक्ति वरदान के रूप में प्रभूत मात्रा में प्राप्त है। चंडी की कथा से कवि की इस शक्ति का परिचय होता ही है। परन्तु यहाँ हास्य विवाद की लहरों पर, अश्रु सागर पर तिरता है। लघु हास्य का एक और प्रसंग यह देखिये :—
श्रीकृष्ण और भीम के मिलन का एक प्रसंग है। भीम कृष्ण की द्वारिका जाता है। श्रीकृष्ण भोजन करने बैठा है। देवकी और यशोधरा तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन व्यंजन-खीर, घी आदि आदि परोस रही हैं। भोजद का स्वाद लेते हुए श्रीकृष्ण पास बैठी हुई पत्नी सत्यभामा के साथ सरल संल्लाप में लगे हैं। इस अवसर पर भीम को आते हुए श्रीकृष्ण दूर से देख लेते हैं। उनके मन में इस बहनोई भीम से मजाक करने की इच्छा होती है। तब श्रीकृष्ण पहरे पर रहनेवाली स्त्री को आज्ञा देते हैं। वह स्त्री दरवाजे पर ही भीम से कह देती है—"भोजन कर रहे हैं, इस समय अन्दर जाना उचित नहीं।"—और भीम को दरवाजे पर ही रोक देती है। भोजन के समय खाने के लिए आह्वान न देकर दरवाजे पर ही रोक दिये जाने के कारण भीम को क्रोध आया, यह तो सहज बात है। वह क्रोध से गरजने लगा—"किसके लिए भोजन का समय है ? इस घर में किसे भूत लगा है ? ऐसा मौन क्यों ? यह कैसा अकाल है ? मुझे ऐसा रोकने वाला कौन ?"—आदि आदि कहते हुए चिल्लाने लगा। भीम के इस गरजन को सुना, श्रीकृण ने। उन्होंने रुक्मिणी और सत्यभामा की तरफ हँसते हुए देख कर जोर से डकार लिया। इस डकार को भीम ने सुना और अन्दर पक्वान्नों की सुगंधी ने भीम की भूख को जगा दिया। इससे वह पागल-सा हो गया। उसने श्रीकृष्ण को कोसना शुरू कर दिया। यह सब सुनकर भी न सुनने वाले की तरह कृष्ण ने अन्दर से पूछा—"वायुसुनु (भीम) कब आये ? उन्हें अन्दर बुलाओ। उन्हें किसने रोका ?" —भीम कृष्ण को देखते ही बोलने लगा—"हे देव ! आपके अर्जुन जैसा नि.संकोच व्यवहार हम कैसे करें ? यहाँ हमारी प्रतिष्ठा का विचार कौन करें ?',—मगर आकंठ परिपूर्ण भोजन करने के बाद भीम का सारा गुस्सा काफूर हो गया।

कवि ने भीम का चित्र कितने सहज और सजीव ढंग से चित्रित किया है ! कवि लक्ष्मीश के सभी पात्र इसी ढंग से चित्रित हैं। कथा का केन्द्र श्रीकृष्ण से लेकर पाँचों पांडव, द्रौपदी, वृषकेतु, तथा भारत के अन्य वीर पुरुष सभी सम-सामयिक समाज से निकाल कर हमारे सामने उठ खड़े होतें हैं। मानव के रूप में अवतरित भगवान् श्रीकृष्ण अलौकिक महत्व रखने पर भी साधारण लौकिक व्यवहार की दृष्टि से अपवाद नहीं बना है। अपने से बड़े युधिष्ठिर के प्रति गौरव, समान वयस्क भीम के साथ स्वतंत्रापूर्ण सरस व्यवहार, अपने से छोटे अर्जुन से प्रेम, परमभक्त द्रौपदी पर वात्सल्य,—इस तरह श्रीकृष्ण का व्यवहार है। श्रीमान् मास्ती वेंकटेश अय्यंगार जी

कहते हैं कि जैमिनि भारत के कृष्ण सर्व सम दृष्टि रखने वाले, सबके साथ शांत रीति से बरतने वाले ग्राम के एक मुखिया की तरह लगते हैं।—यह कथन बहुत ही ठीक है। "साहित्य जीवन का प्रतिबिंब है"—इस कथन को लक्ष्मीश ने चरितार्थ किया है। कवि की पात्र-सृष्टि ही इस बात का प्रमाण है। अपने इर्द-गिर्द के सामाजिक जीवन में दृष्टिगोचर होने वाले व्यक्ति कवि की प्रतिभा-गंगा में नहा कर पवित्र हुए हैं।

कुमार व्यास के ही जैसे लक्ष्मीश ने भी अपने काव्य के लिए संस्कृत से वस्तु चुनी है; फिर भी कुमार व्यास की कृति की तरह लक्ष्मीश की भी कृति कन्नड भाषा की एक स्वतंत्र कृति की तरह लगती है। लक्ष्मीश ने पुराण के रूप में रहने वाले विशाल काय संस्कृत मूल कथा वस्तु को संग्रह करके आधार बनाया है और अपनी रुचि के अनुसार कहीं घटाया है तो कहीं बढ़ाया है; इस तरह का घटाव बढ़ाव उनके हित-मितज्ञान का साक्षी होने पर भी यही उनकी गरिमा का कारण नहीं। वह मूल बृहत् काय पुराण लक्ष्मीश के हाथ में पड़कर काव्य के रूप में परिवर्तित हुआ है और वह सरस वर्णन चातुर्य से आकर्षक बना हुआ है। इस वजह से कवि की गरिमा बढ़ी-चढ़ी है। स्त्री पुरुषों के रूप और शीलों का खासकर श्रीकृष्ण के रूप-शील का वर्णन कवि ने आत्म-विस्मृत होकर गान किया हैं। उनका प्रकृति-वर्णन भी उतना ही मनोरम है। काव्य में प्रयुक्त अनुप्रासयुक्त शब्दावली, अनुस्वारांत मृदुवर्णों का प्रयोग और पुनरावर्तन आदि आदि ने कविता को सरस और सुन्दर ही नहीं, नादमय बनाया है। कवि के पात्र-चित्र एवं प्रकृति-चित्र जितना हृद्य है उतना ही हृद्य और मनोहर उनका काव्य भी है। लक्ष्मीश की प्रतिभा संयत है प्रज्ञा-वलय का मधुर लास्य है। पाठकों के हृदय तंत्री को छेड़कर उन्हें रस मग्न कर देता है, कवि। उनका नाद सौन्दर्य गेरुसोप्पा के जलपात का ऊँकार नहीं; अच्छे संगीत कला निष्णात नादज्ञ का वीणा निनाद है। कवि का वर्ण-विज्ञान भी अद्भुत है। उनका सांध्यवर्णन उनके वर्ण-विज्ञान का साक्षी है। यह कवि उपमा देने में बड़े चतुर हैं।" इनकी उपमाएँ सद्योजात सविता के सुवर्णमय मयूखच्छवि में मंदपवन वीचियों से लोलायित हरित तृणावृत प्रकृति पर इंद्रधनु-सा पिछ फैलाकर नृत्यलीन मयूरों-सी लगती हैं"—ऐसा कवि कु० वें० पु० कहते हैं। इस कवि की उपमाएँ ही सुन्दर नहीं, इनके रूपक भी बड़े मनोहर है। इसलिए यह "उपमालोक" हैं जबकि कुमार व्यास "रूपक साम्राज्य चक्रवर्ती है"।

वस्तु, पात्र और रस—इन तीनों दृष्टियों से कवि लक्ष्मीश का काव्य श्रेष्ठ है। उनका काव्य पुष्प समुदाय में गुलाब की तरह है। कवि समुदाय में लक्ष्मीश विशिष्ट गुण सम्पन्न कवि है। गुलाब से भी अधिक सुन्दर पुष्प हो सकते हैं, परन्तु उनमें गुलाब की सुगंधि नहीं होती; गुलाब से अधिक रक्तिम पुष्प हो सकते हैं, परन्तु उनमें गुलाब की-सी सुन्दरता नहीं होती; गुलाब की विशिष्टता इसी में है कि सौन्दर्य और सुगंध—दोनों बराबर-बराबर प्रमाण में गुलाब में हैं। कवि लक्ष्मीश भी इसी तरह का कवि है। इनसे अधिक प्रभावशाली महा-कवि हैं, परन्तु ऐसे कवियों में लक्ष्मीश का पांडित्य, हित-मित ज्ञान, नादमाधुर्य (ध्वनि सौष्ठव) [illegible] ही पाया जाता है। कन्नड में लक्ष्मीश से भी ज्यादा पांडित्य रखने वाले कवियों की कमी नहीं है। परन्तु लक्ष्मीश का पदलालित्य, प्रज्ञापूर्ण प्रतिभा—दूसरों में दुर्लभ है। वह एक अनन्य साधारण कवि है। वह प्रतिभाशाली हैं, उनकी प्रतिभा के खेल की रंगभूमि उनका प्रज्ञा-वलय है।

उनकी कविता मनमानी बहनेवाली नदी नहीं है; वह निर्दिष्ट प्रमाण में प्रवहित होने वाली नदी की धारा है। लक्ष्मीश का काव्य स्वेच्छा-प्रवृद्ध जंगल नहीं; वह चतुर माली के द्वारा कटा-छँटा सुन्दर सुरुचि-पूर्ण उपवन है जो विद्युद्दीप रंजित आह्लादमय विहार वाटिका-सा लगता है।

गोविन्द : सोलहवीं सदी के अन्त में गोविन्द या गोप कवि ने "नंदी महामात्म्य" नामक कृति को वार्धक-षट्पदी में लिखा है। शिवजी की आज्ञा से पार्वती देवी को आस्थान में बुला लाने के लिए इंदुधर का-सा रूप धारण कर नंदी पार्वती जी के पास जाता है। पर शिव के सदृश लगने वाले नंदी को देख पार्वती जी को शिव का ही भ्रम हुआ। इसलिए देवी जी पति ही आये समझ कर अपने आसन के उठ कर उसे सम्मानित करने आगे बढ़ीं। इससे नंदी बहुत दु:खी हुआ। पर शिव की आज्ञा के अनुसार देवीजी को उनके आस्थान में लेजा कर छोड़ दिया और तुरन्त ही अपने पूर्व रूप को प्राप्त करने के लिए तप करने जाने का निश्चय किया। अपनी तपस्या के लिए उपयुक्त स्थान के सम्बन्ध में गणनाथ कूष्मांड से सलाह-मशविरा किया। उस गणनाथ ने श्री शैलक्षेत्र, केदार, वाराणसी, कांचि आदि शैवक्षेत्रों की महिमा बतायी।—यही "नंदी महात्म्य" की कथावस्तु है। यह पचास संधियों (प्रकरणों) वाला विशालकाय ग्रंथ है। कवि ने अपने काव्य के विषय में बताया है कि– "यह काव्य मिश्री मिश्रित नारिकेल जल की तरह, रसगंधी कदली के साथ मिश्रित मधु की तरह सुस्वादु है।" परंतु यह वास्तव में नारिकेल पाक है, द्राक्षापाक नहीं। "हाथी जिधर से जाय वही रास्ता बनता है। कवियों की महत्ता भी ऐसी ही है। परंतु यह गोविंद गज जिस रास्ते से गया है उसी रास्ते का अनुसरण करना कष्ट साध्य है। कष्ट उठाकर अनुसरण करने पर भी हम पाठकों को वह मत्तगज हमें गन्ने के खेत में न ले जाकर गीले और पंकिल सन के जंगल में ले जाता है। कभी-कभी गन्ने खेत भी नजर आता है। पुष्पसंचय करने तथा जलक्रीडा करने निकली देवांगनाओं का वर्णन मनोहर है।

श्री रं० श्री मुगली जी अपने कन्नड साहित्य चरित में बताते हैं कि "इस कवि की "चित्र भारत" नामक एक और कृति भी है जिसमें तीस संधि हैं और हजार से अधिक वार्धक-षट् पदियाँ हैं। यह कृति एक भक्ति काव्य है, इसमें चमत्कार है, मध्यम काव्य के गुण हैं। मगर कवि जैसा बताते हैं वैसी कोई महान् कृति नहीं है। इस कवि का "नंदी महात्म्य" अधिक परिपक्व काव्य है।"—इसे सुनने के बाद "चित्र भारत" पढ़ने के लिए उत्साह नहीं रह जाता।

उन्होंने अपने काव्य में अपने बारे में बताया है कि वह कारिंदा ज्योति के बेटे हैं और मदनगोपाल का भक्त हैं; भीमरथी नदी के तीर पर रहने वाले बुय्यर नामक ग्राम के निवासी है। इस विवरण से मालूम पड़ता है कि यह जिला सोलापुर के रहने वाले तथा पंढरपुर के पांडुरंग के भक्त रहे होंगे।" इस "चित्र भारत" में कवि ने ई० सन् 1581 को अपना समय बताया है और अपनी कृति को "हरिकथामृत सार" कहा है जिससे इनकी भागवत दृष्टि मालूम पड़ती है।"—यह बात श्री रं० श्री० मुगली के कन्नड साहित्य चरित" से मालूम पड़ती है।

रंगनाथ : ये कवि सत्रहवीं सदी के उत्तरार्ध (ई० सन् 1675 के करीब) में रहा; इन्होंने अद्वैत सिद्धांत का निरूपण करने वाला अनुभवामृत नामक ग्रंथ लिखा है।

रंगावधूत, महलिंग रंग ये दोनों इनके पर्याय नाम भी रहे। इनके पिता का नाम महलिं देव और गुरु सहजानंद थे। ये "सहवासी" वंश के थे। संभवतः अपने पिता का ना अपने नाम के साथ जोड़कर इन्होंने अपना नाम "महलिंग रंग" रख लिया होगा। इनके वंश का नाम "सहवासी" संभवतः "सवाशे" से निकला होगा। "सवाशे" मराठी शब है जिसका अर्थ 125 है। श्री होसकेरे चिदंबरय्या जी ने "अनुभवामृत" की भूमिक में यह बताया है कि वह रंगनाथ धारवाड़ जिले में रहनेवाले इन सवासौ घरानों से किसी एक में पैदा हुए होंगे और ये सवासौ घराने श्री शंकराचार्य के शिष्य हैं माया के स्वरूप का वर्णन करते हुए बताते हैं कि "माया का मूल झूठ है, विचार क देखने पर वह तत्त्वहीन और निस्सार है। माया का क्षेत्र बहुत विशाल है और कभी न बूझनेवाली पहेली है। जिस तरह उच्चंगि का दुर्ग एक के बाद एक प्राकार भित्ति से घिरा हुआ है, यह माया भी वैसे ही एक के बाद एक और एक दूसरे से बढ़क आकर्षक परदों से ढकी हुई है। उसके अन्दर प्रवेश कर छानबीन करते जायें तं अन्दर कुछ नहीं।"—कवि ने उच्चंगि दुर्ग का नाम लेकर इस अनुमान के लिए अवकाश दिया है वह उस दुर्ग के इर्द-गिर्द का ही निवासी है। यह दुर्ग चितल दुर्ग के दावणगेरे से दस मील के फासले पर कर्नाटक और महाराष्ट्र की सीमा पर है कवि के अपनी कृति में प्रयुक्त कुछ शब्दों के आधार भी यह सोचने के लिए अवकाश मिल जाता है कि यह उस दुर्ग के आसपास का ही निवासी है। ये कवि रंगनाथ शिवो- पासक एवं अद्वैती थे। यह बात उनकी कृति से ही व्यक्त होती है। कवि ने अपने इस ग्रंथ को श्री शैल के मल्लिकार्जुन स्वामी के नाम पर (अंकित) समर्पित किया है।

"अनुभवामृत" आठ सौ पद्यों का ग्रंथ है। यह भामिनी षट्पदी में है। कवि के कथनानुसार अखिल वेदांतार्थ संग्रहीत करके गूढतम तत्त्वों का निरूपण उन्होंने सुलभ–सरल शैली में किया है। कवि का कन्नड भाषाभिमान स्तुत्य है। कन्नड भाषा के विषय में उनका यह कथन हृदयंगम ही नहीं युक्तियुक्त भी है; उन्हीं की भाषा में उनका कथन सुनिये :—

> "सुलिद बाळॆय हण्णिनंददि
> कळॆद सिगुरिन कब्बिनंद द
> लिळिसिदुष्णद हालिनंददि सुलभवागिर्प
> ललितवह कन्नडद नुडियलि
> तिळिदु तन्नॊळु तन्न मोक्षव
> गळिसि कॊण्डरॆ सालदे ? संस्कृत दॊलिन्नेनु ?"

अर्थात्—कहते हैं कि "कन्नड छिलका उतारे हुए केल के फल की तरह, और छीले हुए ईख जैसे, औंटाने के बाद उतारे हुए सुखोष्ण दुग्ध की नाईं सेवन करने के लिए योग्य एवं सुलभ है। ऐसी सुललित कन्नड भाषा में ही ज्ञान की बात समझकर अपनी मुक्ति का मार्ग आप निकालें—यह हो सकता है। जब कन्नड से ही वांछितार्थ सिद्ध हो सकता है तब संस्कृत का आश्रय ही क्यों लिया जाये ?"—मनुष्य का उद्धार संस्कृत से नहीं कन्नड से भी हो सकता है। यह ठीक है संस्कृत में ज्ञान की बातों का भंडार भरा है। वह ज्ञान भंडार कन्नड में मिलता हो तो संस्कृत का सहारा क्यों? पोषण के लिए बच्चे को स्तन्य जब मिलता हो तो गोक्षीर की प्रशस्ति का गान क्यों करें ?

रंगनाथ अच्छे भावुक-कवि हैं । गहरे दार्शनिक विषयों को भी "कांता सम्मित" बनाकर प्रस्तुत कर सकने की शक्ति रंगनाथ की प्रतिभा की विशेषता है । "यौवनं धनसंपत्तिः" जहाँ हो वहाँ दर्शन के लिए स्थान कहाँ ? कवि कहते हैं :—

"मोंदलॅ मर्कट मेलॅं मद्यद
मदवेंदॅय हिडिदिरलु वृश्चिक
तुदिय कालनु कच्चिदरॅ कुणिदाडुवंददलि
अधिक धन संपत्तु यौवन
बाँदगिरलु वनितादि विषया
स्पननॅनिसियोडलरियदवगध्यात्मवेकॅन्द्र ।।"—कि

"मन पहले ही बंदर-सा चंचल है । इस बंदरको सुरापान दरावें और उस मस्त हालत में पैर की उंगली पर बिच्छू डंक मारे तो जैसे बन्दर नाचता है वैसे ही धन-संपत्ति के साथ यौवन भी हो तो मनुष्य अपने आपको भूल कर सुन्दरियों के साथ विषय भोग में निरत हो जाता है । ऐसी हालत में रहनेवाले के लिए अध्यात्म चिंता क्यों ?"—और कहते हैं—"सुज्ञान के विना खाली स्नान, जप, मौन आदि बाहरी ढकोसले से क्या फायदा ?"—कहते हैं—

"मीनु नीरॉळगिद्दॉडेनै
ध्यानवनु बक माडलेनदु
काननवना श्रयिसि कर्कट विद्यॉडेनल्लि ।
मौनदलि कोगिळॅयिरल्कद
केनु फल सुज्ञान विल्लदॅ
मौनमोंदलादवरॉळॆनॆलॅ मगनॅ केळॅन्द ।।"—कि

"मछली हमेशा ही पानी में रहता है, बकपक्षी ध्यानस्थ-सा ही रहता है, बदर जंगल ही में रहता है, कोयल मौन ही रहता है—इससे फल क्या मिलेगा ? बिना सुज्ञान के स्नान, ध्यान, एकांत और मौन सब व्यर्थ है ।" और;

जब तक धन-संपत्ति है तब तक बंधु-बांधव, पत्नी-पुत्र सभी प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं । जब कुछ नहीं रह जाता तब एक-एक करके सब फिसल जाने लगते हैं ।—कहते हैं—"बिडदुकरु हालिरलु तायनु, कडॅगॅ होहुदु बत्तिदडॅता, कॅडुव कालककारिगारै मगनॅ हेळॅन्दा ।"—अर्थात् "जब तक दूध है तब तक बछड़ा माँ को नहीं छोड़ता । दूध खतम होने पर अपने आप छोड़ भागता है । ऐसे ही अच्छी हालत बिगड़ जाय और गरीबी में आदमी पड़ जाये तो उसे कोई पूछता ही नहीं ।" कटु सत्य को भी मधुर ढंग से "सुहृत् सम्मित" बनाकर कहते हैं ।

इस कवि के दृष्टांत, उपमा, रूपक आदि अलंकार विषय निरूण में जैसे दक्ष हैं वैसे काव्यानंद देने में सहायक भी हैं । उदाहरण के लिए कुछ नीचे दिये जाते हैं—"क्षेत्र अच्छा हो तो बोने पर फसल भी अच्छी होगी ।";—"मर्कट के हाथ में मानिक जैसा"; "कुत्ते को षड्रस भोजना क्यों ?"; "गीदड़ गाँव में रहेंगे ?"; "गधे को क्या मालूम कस्तूरी की गंध ?"; "सियार को सुरलोक !"; "नपुंसक (हिजडा) को नारी क्यों ?"—आदि आदि ।

रंगनाथ कवि विषय निरूपण में जैसे कीर्तिमान बने है वैसे ही अपने पांडित्य और प्रतिभा में भी महान् हैं। इसीलिए इस कवि का (कन्नड कृति) "अनुभवामृत" संस्कृत में भी अनूदित है। श्रीमत्परमहंस बालकृष्ण ब्रह्मानंद राजयोगी ने इसे संस्कृत म प्रस्तुत किया है। कन्नड भाषी के लिए यह गर्व का विषय है।

नागरस : भगवद्गीता को कन्नड के भामिनी षट्पदी छन्द में प्रस्तुत करनेवाले यह नागरस कवि अपने देश काल के बारे में मौन हैं। इन्होंने इतना अवश्य बताया है कि यह कशयप गोत्र के विश्वेश्वर के पुत्र हैं तथा शंकर गुरू के शिष्य हैं। अपने ग्रंथ के आरंभ में इन्होंने पंढरपुर के विट्ठल का स्मरण किया है, इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह विट्ठल का भक्त था। संभवतः यह उसी प्रदेश के रहने वाले होंगे। अपने ग्रंथ को इन्होंने "वासुदेव कथामृत" कहा है। कृति को पढ़ने से लगता है कि यह "भागवत पंथ" के होंगे। कवि ने यह बताकर कि "गीतामाई" के एक-एक श्लोक का अनुवाद एक-एक षट्पदी में लिखूंगा, उन्होंने कुल सात सौ सैंतीस षट्पदी छन्द के पद्य लिखे हैं। पद्य सरल और ललित तथा प्रवाहमय हैं। उदाहरण के लिए —"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चेनं क्लेदयंत्यापो न शोणयति मारुतः ॥" का अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है --

"नित्यनात्मनु सर्वगतन
त्युत्तमनु तानचलनर्दरि
सुस्थिरनु तानाद कारण कडिवॉडळवल्ल।
मत्तॅ सुडलळवल्ल नीरिन
लॉत्ति नॅ नॅयिसबार दॉण गिसि
सत्व गुंदिसबारदॅ कलिपार्थ केळॅन्द ॥" —अर्थ

तो मूल से ही स्पष्ट है। भाव समझाने की आवश्यकता नहीं है। मूल संस्कृत की चुस्ती अनुवाद में संभव नहीं होती। बहुधा अनुवाद धुनी हुई रूई की तरह होता है। भाव समझाने के लिए मूल का विस्तार अनुवाद में करना पड़ता है। ऐसा होने पर भी कहीं अर्थाभिव्यक्ति में कहीं कोई भूल नहीं हुई है। काव्य की दृष्टि से यहाँ कोई विशेषता लक्षित नहीं होती।. शास्त्रीय विषय को सरल रीति से सुबोध बनाने में कवि सफल है। यह श्रेय नागरस को मिलना चाहिए। कवि चरितकार बताते हैं कि यह कवि ई० सन् 1650 के करीब का है।

रंगाचार्य : इस कवि ने "श्रीरंग माहात्म्य" लिखा है। संस्कृत के ब्रह्मांड पुराणांतर्गत महेश्वर-नारद संवाद रूप इस अंश को सभी के समझने लायक हों—इस दृष्टि से कन्नड में प्रस्तुत किया है। कन्नड में ग्रंथ रचना करनेवाले श्रीवैष्णव कवि संभवतः यही प्रथम हैं। इनका समय सोलहवीं सदी का उत्तरार्ध (ई० सन् 1570 के करीब) है।

तिरमल भट्ट : अपने को "उभय सत्कवि शिरोमणि" बतलानेवाले यह कवि केळदी के राजा वेंकटप्पनायक (1582—1629) के आश्रित थे। ई० सन् 1.00 के करीब के इस कवि ने वार्धक षट्पदी में "शिवगीत" नामक काव्य 377 पद्यों में रचा। पद्म-पुराण के उत्तरकांड के अन्तर्गत इस "शिवगीत" को अपने आश्रयदाता की

आज्ञा के अनुसार आंध्र भाषा में उपलब्ध होनेवाली सभी टीकाओं को देखकर लिखा—ऐसा कवि ने बताया है। काव्य के आरंभ में अपने आश्रयदाता राजा की सारी वंशावली देकर उनके द्वारा जो दान-धर्म किया गया है उसका और उसके पराक्रम आदि का वर्णन किया है। "ऊपर के मोटे कड़े छिलके को देखकर डरनेवाले फल के अन्दर के अमृत के कैसे जान सकेंगे ? इस तरह के भीरु काव्य रसिकों को समझने लायक गहनतत्वों को आसान बना कर सभी की समझ में आ सके—इस ढंग से मैंने इस कृति को रचकर प्रस्तुत किया है।" वह बताते हैं कि (उनकी) "यह कृति" भगवत्गीता से भी श्रेष्ठ है। बंधु-बांधवों की हत्या करने के लिए निकले अर्जुन को रणरंग में उनका सारथी बन कर उपदिष्ट वह भगवत्गीता कहाँ ? और लोकोपकार करने की दृष्टि से मानव रूप धारण करनेवाले हरि को शिवजी के द्वारा उपदिष्ट यह "शिवगीता" कहाँ ?—इन दोनों की कहीं बराबरी हो सकती है ?" इस कवि की तर्क सरणि विलक्षण होने पर भी उनकी कविता में प्रसादगुण है। आत्मा के स्वरूप का वर्णन इस तरह करते हैं—

"घट मनॅल्लॅल्लिगं कॉण्डॉय्यलदरल्लि
घटिसिदाकाशमावगमिर्प कारणदें
घटदॉडनें पूर्वप्रदेशदाकाश में पोय्तॅन्दु तिळिवतॅर्रदि।
पटुकर्म वशदिनी लिंग दे हं महो
त्कटदेहमं बिट्टु लोकांतरकॅ पोग
लटनविल्लद पूर्णनादात्मनं दोदनॅम्बुदुपचारमात्रां॥"—

अर्थात्—"*आकाश सर्वत्र व्याप्त अविभाज्य तथा नित्य है। घट में व्याप्त आकाश चाहे* घट को कहीं भी ले जाय आकाश घट से पृथक् नहीं होता। इस तथ्य को समझे बगैर नित्य आत्मा को देहपात (मृत्यु) के साथ गया मानते हैं। स्थूल-देहस्थ आत्मा कर्म-वश होकर देहकर्म की समाप्ति पर सूक्ष्म देह फिर लिंग देह में प्रविष्ट हो रहता है। जैसे नित्याकाश से घटाकाश भिन्न नहीं वैसे ही नित्यात्मा से घटस्थ आत्मा पृथक् नहीं। वह तो "अजोनित्य. शाश्वत:" है; और यह "न हन्यते हन्यमाने शरीर" है। इसे लोग अज्ञान के कारण नहीं समझते; सुज्ञान से भ्रम निरसन हो जाता है। आत्मा सदा पूर्ण है, उसे गया कहना भ्रम-जन्य उपचार मात्र है।"—इस तत्त्व को समझाना और समझना दोनों कठिन है।

ऐसे कठिन विषय को भी सही उपमाओं के द्वारा अच्छी तरह समझाने का प्रयत्न कवि ने किया है। उनकी कल्पनाशक्ति कोई साधारण स्तर की नहीं। ईश्वर के वाहन नंदी का बहुत ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। जन्म के घोर दुख के हृदयग्राही चित्र को उपस्थित करने के साथ सुज्ञानी के जीवन्मुक्त होने का मार्मिक वर्णन बड़ा प्रभावशाली है।

सोमनाथ कवि : इस कवि ने "अक्रूर चरित" नामक काव्य लिखा है। इसमें श्रीकृष्ण-बलराम के जन्म से लेकर कंसवध तक का "कृष्ण चरितामृत" सम्मिलित है। पूर्व कवियों में भागवत पंथ की काव्यपरंपरा के प्रवर्तक कुमार व्यास की स्तुति अपने काव्य ने आरंभ में की है। इस कवि के काल देश को निर्धारित करने के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता। पूर्व कवियों में इन्होंने कुमार व्यास (ई० सन् 1430) का

स्मरण किया है। कवि चरितकार ने इस आधार पर इस कवि के समय को ई० सन् 1600 के करीब का बताया है। संभवत: इसी को अन्य आधारों के अभाव के कारण मानना पड़ेगा। काव्य के आरंभ में लक्ष्मीपति नारायण का स्मरण किया है और उसके बाद क्रमश: ईश्वर, विघ्नेश्वर, शारदा, गजानन, मन्मथ और वेदव्यास—इस सब की स्तुति की है; इन सब की स्तुति के पश्चात् अपने आदर्श कवि कुमार व्यास को पुष्पांजलि समर्पित की है। इन सब को श्रद्धा भक्ति के साथ प्रणाम करने के बाद अपने काव्य के स्वरूप को बताते हैं—

"धरॆयरियला कृष्णचरितद
शरधियॊळगक्रूर चरितॆय
नॊरॆवॆनच्युत भक्त रॆल्लर चरणकभिनमिसि।"

कि—"सुप्रसिद्ध कृष्ण चरित रूपी महासागर में से "अक्रूर चरित" को, समस्त कृष्ण भक्तों के चरणों को भक्ति के साथ अभिवादन करके कहूँगा।" इस काव्य में आदि से अन्त तक श्रीकृष्ण ही की कथा है। कवि ने अनन्य भक्ति के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की है। कोई भी भगवान् की इस स्तुति को पढ़कर धन्य हो सकते हैं। काव्य को सुन्दर और मनोहर बनाने के प्रसंग भी अच्छे हैं। परंतु इन प्रसंगों का उपयोग करके रसवत्काव्य बनाने की प्रतिभा और कल्पना शक्ति कवि में नहीं है। कुमार व्यास की ही शब्दावली का उपयोग इस सोमनाथ कवि ने भी किया है। फिर भी "काक: काक: पिक: पिक:" ही कहना पड़ता है।

नरहरि : नरहरि कवि ने "प्रह्लाद चरित" को भामिनी षट्पदी में लिखा है। इसमें ग्यारह सौ से भी अधिक पद्य हैं। ये कावेरी नदी के तीर पर रहनेवाले कसबा बल्लळपुर के प्रभु थे उन्होंने बड़ी विनम्रता के साथ बताया है कि मैं कोई बहुत बड़ा विद्वान् नहीं हूँ। नवीन रीति से रस-अलंकार आदि का प्रयोग कर सकूँ ऐसा कवि भी नहीं हूँ, काव्य में कैसी शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए—यह भी नहीं जानता हूँ।"—यों विनम्र होकर जिस तरह लक्ष्मीश कवि ने अपने इष्ट देव की प्रार्थना की है वैसे अपने इष्ट देव 'गरुडगिरिवास" भगवान् से प्रार्थना की है कि वह काव्य कहलवावें। इनके समय के सम्बन्ध में कवि चरितकार का अनुमान है कि यह ई० सन् 1650 के करीब के रहनेवाले थे। अपने काव्य के सम्बन्ध में कवि बताते हैं कि—"मेरी यह कविता "हरिभक्त सार" -- सुगंध भरित नवविकसित पुष्प जैसा, अभी-अभी खिले पुष्प रस की तरह, मेघमाला को देख नाचनेवाले मयूर की तरह, चंद्रमा को देख खिलने वाले कुमुद की तरह—श्रोताओं को सुखदायक है।"

उनका कथन सारहीन नहीं है। कवि में अच्छी कल्पना शक्ति है। भाषा सरल; शैली चुस्त, कविता भावपूर्ण हैं। "प्रह्लाद चारित" में पिता-पुत्र (हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद) का संवाद बहुत सरल है। पिता पुत्र से कहते हैं कि "मधुसूदन पर विश्वास मत रखो। मधुसूदन के साथ मैत्री का अन्तिम परिणाम अंधकार और सूरज की मैत्री जैसा होगा।" इसे सुनकर भागवतोत्तम पुत्र प्रह्लाद कहते हैं—

"अरसुनिह लतॆ काल तॊडकलु
हरिवुबिसुडुवरॆटॆ सिरि बर

लरिदरिदु पददोंदॆ दु नूकुवरुंटॆ, हसिदिरलु
करॆदु क्षीरान्नवनु बडिसलु
हॉरगॆ सूसुवरुंटॆ सिरिधर
स्मरणॆ बायिगॆ बरलु नानदनॆन्तु बिडलॆन्द ।"

कि—"जिस लता की खोज होती है वही यदि पैरों में लपट जाय तो क्या उसे तोड़कर फेंका जा सकता है ?, लक्ष्मी जब अनुग्रह करके स्वयं आवें तो उसे लात मारकर कोई ढकेल देंगे ?, भूखे को बुलाकर दूध-भात परोसे तो क्या उसे बाहर फेंके ?, भगवान् लक्ष्मीपति का नाम अपने आप जिह्वा पर आता रहे, अपने आप मुँह से निकले तो मैं उसे छोड़ कैसे सकूँगा ?— यह नहीं होगा ।"

इस कवि की वर्णना—वैखरी में कुमार व्यास की छाया स्पष्ट है । भामिनी षट्पदी में लिखनेवाला कवि कोई भी हो उस महाकवि कुमार व्यास की प्रासादिक वाणी से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता है !

वेंककवि : यह कवि नरहरि कवि के सम-सामयिक हैं । इन्होंने "वेंकटेश्वर प्रबंध" नामक चंपू काव्य लिखा है । इस कृति में कवि ने "बॆट्टद कोटॆ राय" भगवान् का स्मरण किया है । जिला मैसूर के "हिमवद्गोपाल स्वामी का पर्वत" है । इस प्रांत को "बॆट्टदकोटॆ" कहा करते थे । संभवतः यह कवि उस प्रदेश के रहने वाले और उस "हिमयद्गोपाल स्वामी" के भक्त होंगे । कवि चरित में उद्धृत इन के पद्यों को देखने से ऐसा लगता है कवि का काव्य बन्ध प्रौढ तथा निसर्ग-वर्णन रम्य है । कवि-समय-शरण होने पर भी प्रकृति की गोद में पला होने के कारण उस निसर्ग सौन्दर्य से विशेष प्रभावित है, कहा जाता है कि काव्य असंपूर्ण है । कम से कम इस असंपूर्ण को आमूलाग्र देखे बिना इसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता ।

इसी समय के अन्य कवियों में "पंपा बिरूपाक्ष शतक" के लेखक हिरियूरूरंग है जिसने भामिनी षट्पदी में इसे रचा, और "मार्कंडेय रामायण" को वार्धक षट्पदी में लिखने वाले अच्युतदास, "रुक्मांगद चरित" को सांगत्य (छन्द) में लिखने वाले सोमनाथ - ये कवि स्मरणार्ह अवश्य हैं ।

बब्बूरु रंग : यह कवि संभवतः "पंपा विरूपाक्ष शतक" के लेखक हिरियूरु रंग कवि के पुत्र होंगे । कवि ने स्वयं बताया है कि वह घनपुरि (हिरियूरु) के करणिकाग्रणी रंग और उनकी धर्मपत्नी रुक्मिणी के पुत्र है । यदि इस बात को मान लें तो यह कहना पड़ता है कि यह कवि सत्रहवीं सदी के अन्त अथवा अठारहवीं सदी के आरंभ का है । हिरियूर के पास के बब्बूर के "रंगनाथ भगवान्" के ये भक्त ये और यही उनका कुलदेव है । इन्होंने अपने आपको "सुकवि कर मुकुर" और "कुकवि हृदय शूल" आदि आदि कहकर अपनी प्रशंसा आप की है । कुमार व्यास, कुमार बाल्मीकि, लक्ष्मीश और आप स्वयं—ये चार ही कन्नड में "काव्य रचना करने वाले चार दिग्गज" मानते हैं और सवाल करते हैं कि इस भूमंडल में हमारी बराबरी कौन कर सकता है । इन्होंने "अंबिका विजय, परशुराम रामायण"—इन दो ग्रंथों की रचना की है । जिस तरह कुमार व्यास ने स्व-विषय में बताया है कि खड़िया-पटिया लेकर दूसरों के बताये मार्ग का अनुसरण करूंगा नहीं, वैसे ही इस रंग कवि ने भी कहा है

कि दूसरों का अनुकरण कर अपने ही ढंग से भामिनी षट्पदी में अपनी कृति की रचना की था। इस कवि में प्रतिभा और कल्पना शक्ति है अवश्य। परन्तु कुमार व्यास से बराबरी कर सके—इतनी नहीं। कुमार व्यास कहाँ और यह बब्बूरु रंग कहाँ? दोनों में आकाश-पाताल-सा अन्तर है। शेर और बिल्ली का वंश एक होने पर भी शेर शेर है, बिल्ली बिल्ली ही।

"अंबिका विजय" करीब तीन हजार भामिनी षट्पदियों का एक बृहत्काय काव्य है। आदि शक्ति अंबिका के द्वारा रक्तबीजासुर के वध का वृत्तांत इस काव्य की कथावस्तु है। इसमें शिवभक्त मार्कण्डेय की कथा भी शामिल है। आदि शक्ति (अंबिका) का सौंदर्य वर्णन कवि की ही वाणी में सुनिये—

"अंबुजवु मसुळिसिदुवा शशि
बिंबवदनॆय वदन कांतिगॆ
तुंबिगळु चीरिदुवु भृंगाळकद सुंदरकॆ
कंबुकंठिय रदनकुरॆ दा
ळिंब वायूविडुतिहुवु तॊडॆगळ
संभ्रम के शिरवागि निंदुवु बाळॆ वनदॊळगॆ।"—

कहते हैं कि "आदिशक्ति के मुख कमल की कांति के सामने कमल लज्जित होकर कुम्हिला गये, अलकावली की सुन्दरता के आगे भ्रमर हाय हाय करने लगे, दंतकांति दाडिम को भी जलानेवाली है, ऊरु प्रदेश का सौंदर्य रंभावन को ही शर्मिन्दा कर रहा है।"—यह वर्णन सम-सामयिक काव्य रीति के चौखटे में होने पर भी कुछ नवीनता है। जलकेलि मग्न खचरी की नेत्रज्योति देख मछलियाँ डूबने लगी; उसके मुख की स्निग्ध-कांति को देखकर कमल कांपने लगे; उसे जलक्रीडा सक्त खचरी की त्रिवली को देखकर छोटी-छोटी लहरे लज्जित होकर पीछे हटने लगी।—इस तरह के वर्णनों में भी कुछ नवीन-से रूप दिखते हैं। कवि का "परशुराम रामायण" डेढ़ हजार से भी अधिक वर्धक षट्पदियों का ग्रंथ है। इसमें परशुराम का जीवन वृत्तांत है। काव्य गुण की दृष्टि से *"अंबिका विजय, और परशुराम रामायण"*—इन दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं। एक भामिनी षट्पदी में है और दूसर वार्धक षट्पदी में है। कवि-कथन के अनुसार यही दोनों में अन्तर है। इन दोनों काव्यों में उनके बृहत् काया के प्रमाण के अनुसार कथा-वस्तु नहीं है। वर्णन बहुत हैं। कवि की भाषा सरल, सुलभ और कविता की धारा में गति है।

कोनय्या : इस कवि के भामिनी षट्पदी के करीब ट720 पद्यों का कृष्णार्जुन (संग्राम) "संगर"—नामक ग्रंथ की रचना की है। ऐसा अनुमान किया गया है कि यह कवि ई० सन् 1750 के करीब रहा। उनकी कृति से विदित होता है कि यह होतूरु नामक ग्राम के बॆट्टरस नामक सज्जन का पुत्र था और "सरस भारती" बिरुद-भूषित था। इस "कृष्णार्जुन संगर" की कथावस्तु यों है—"गय नामक गंधर्व ने श्री कृष्ण के साथ द्रोह किया। यह गय प्राण भय के कारण अर्जुन की शरण गया। कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि गय को सौंप दो। अर्जुन ने इनकार किया। इस कारण से हरि और नर (श्रीकृष्ण और अर्जुन) में परस्पर युद्ध [द्वैतवन में] हुआ। अन्त में शिवजी प्रत्यक्ष हुए और दोनों को समझा-बुझाकर समाधान किया"—यही कथावस्तु

है। यह "गय चरित" के नाम से प्रचलित है। कवि ने बताया है कि अपने काव्य के लिए वस्तु भारत के वन पर्व से चुनी है। व्यास भारत के वन पर्व में यह कथा नहीं है। कवि ने इस वस्तु को कौन से भारत से लिया है वह मूल ज्ञात नहीं। मगर यह कथा लोकप्रिय अवश्य है। इस कथावस्तु के आधार पर अनेक काव्य यक्षगान, नाटक आदि बने हैं। कवि का काव्य सरस, सुलभ, और जनप्रिय है।

हॅळवनकट्टॅ गिरियम्मा : करीब दो सौ साल पहले जिला चितल दुर्ग के हरिहर के पास कोमारन हळ्ळी नामक गांव में यह कवयित्री रही—ऐसी प्रतीति है। इस ग्राम के "हॅळवनकट्टॅ रंगनाथ" भववान् इनका आराध्य देव है। इसी भगवान् को अंकित करके इस कवयित्री ने "चंद्रहास की कथा, सीता कल्याण, उद्दालक की कथा"—इन ग्रंथों की रचना की है; इनके अलावा कई गीत भी रचे हैं। इस कवयित्री के तीनों ग्रंथ पौरणिक हैं। कवयित्री ने बताया है कि "चंद्रहास की कथा" को लक्ष्मीश के जैमिनि भारत से उद्धृत करके सांगत्य में लिखा है। काव्य में लक्ष्मीश का प्रभाव स्पष्ट है। काव्य के आरंभ में आरंभ में अपने कुलदेव का स्मरण करके भारतीय साध्वी के स्वभाव के अनुरूप अपने पतिदेव का स्मरण किया है और अन्त में अपने को "नित्य निर्मल हृदय" कहा है। इस कवयित्री का "सीता-कल्याण" गानों के रूप में है और "उद्दालक की कथा" सांगत्य में है। इसमें उद्दालक नामक ऋषि कुमार की कथा है। स्त्रियों के लिए गाने योग्य रीति से रचित इस कवयित्री की कृतियाँ बहुत जन प्रिय है। ये काव्य और गीत तत्त्व तथा नीति युक्त होकर भावपूर्ण एवं चरित्र निर्माण में बहुत ही उपयुक्त और जनप्रिय है। गिरियम्मा के गीत हरिदासों के पदों की तरह जन प्रिय होने के साथ नीति बोधक है; खासकर स्त्री समाज के लिए बहुत ही उत्तम चरित्र निर्माण में सहायक अवश्य है; इसमें ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं।

तिरुमामात्य : इस कवि ने भामिनी षट्पदी में "रामा भ्युदज कथा मंजरी" नामक ग्रंथ लिखा हैं। करीब साढ़े तीन सौ पद्योंवाले इस ग्रंथ का नाम "आनंद रामायण" भी है। यह सभी रामायण कथाओं का सार सर्वस्व लेकर महाविष्णु के वराह और नरसिंह अवतारों की कथा, श्रीराम राज्य, दिग्विजय, अश्वमेघ की कथा —आदि सब कथानक इनकी इस कृति में समाहित है।—ऐसा कहा जाता है। ऐसा मालूम पड़ता है यह कवि बेंगलार जिले के अगर नामक ग्राम के निवासी है और इसी जिले के सहदेवपुर या सादनहळ्ळी नामक ग्राम के "तिरुमलदेव भगवान्" इनके कुलदेव है। इन्ही कुलदेव को अंकित करके इन्होंने अपने काव्य की रचना की है। कवि चरितकार का मत है कि यह कवि ई० सन् 17.0 के करीब का रहनेवाला है। इनकी भाषा सरल और ललित है। इनकी एक कविता पर लक्ष्मीश का काफ़ी प्रभाव पड़ा है। यह कृति रामायण की विविध कथाओं का एक रामायण कोश है। सुलभ ग्राह्य होने के साथ लोकप्रिय रामकथा के कारण यह काव्य अत्यंत जनप्रिय है।

चिदानंदावधूत : इन्होंने भामिनी षट्पदी में "ज्ञान सिंधु, देवी महात्म्य" नामक दो ग्रंथ, "पंचीकरण" नामक वचन ग्रंथ, "तत्त्वचिंतामणी" नामक गद्य ग्रंथ, "नवचक्र कुल रेखालक्षण" नामक टीका ग्रंथ, "बगळांबा स्तोत्र" "काम विडंबन" नामक पदों के ग्रंथ, 'चिदानंद वचन" नामक गेय पद्य—इन सबको रचा है। इनमें इस कवि के प्रथम दो ग्रंथ "ज्ञानसिंधु", और "देवी महात्म्य" ध्यान देने योग्य हैं। "ज्ञानसिंधु"

अद्वैत वेदान्त को प्रतिपादित करनेवाला तीन हजार छै सौ बीस पद्यों का बृहत्काय ग्रंथ है। कहा जाता है कि इसका उपदेश शिवाजी ने षण्मुख को किया। स्वात्मानुभूति से युक्त अद्वैत भाव से कथित होने के कारण यह "ज्ञानसिंधु" है। यह ग्रंथ रंगनाथ कवि के "अनुभवामृत" की बहुत हद तक अनुकृति है। उसी की तरह यह ललित भी है। नीरस वेदांत को सरल सुलभ एवं सुललित बनाकर कहने में यह कवि समर्थ एवं अभिनंदनीय है।

इस कवि को "देवी महात्म्य" संस्कृत का अनुवाद है। अपने गुरु चिदानंद की आज्ञा से उन्होंने यह काव्य लिखा—ऐसा बताया जाता है। तुंगभद्रा तीरवासी अपने गुरु की इसमें स्तुति की है। इनकी कविता पर कुमार व्यास की छाया स्पष्ट है। कुमार व्यास का अनुकरण करने जाकर कवि ने अपनेपन को भुला दिया है। इनकी कल्पना शक्ति, संतुलित शैली, अर्थपूर्ण भाषा—ये स्तुत्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कवि तुंगातीर वासी कोई अवधूत या संन्यासी होंगे।

वेंकामात्य : यह कवि अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध (ई० सन् 1770 के करीब) में रहा। इन्होंने "रामायण", "इंदिराभ्युदय", "हनुमद्विलास" नामक कृतियों को कन्नड में लिखा है। अनेक संस्कृत ग्रंथ भी इन्होंने लिखे हैं। यह रामपुर केहंपेयामात्य-वाबांबा नामक दंपती का पुत्र हैं। इन्होंने अपने विषय में बताया है कि यह आंजनेयवर प्रसादोत्पन्न पुत्र मात्र नहीं बल्कि आंजनेय के वर प्रसाद से कविता शक्ति एवं गांधर्व विद्या भी प्राप्त की है। इस कवि ने अपने अलंकार मणिदर्पण में अपने को "षड्दर्शनीवल्लभ", घटिका प्रबंध रचना विदग्ध" बतलाया है। इनकी रामायण वार्धक षट्पदी में है और इसमें नौ हजार आठ सौ पैंसठ पद्य हैं। इनकी रचना लक्षणबद्ध और प्रौढ है। इस कवि का "इंदिराभ्युदय" चंपु काव्य है, इसमें इसमें लक्ष्मीदेवी अवतारों की कथा वर्णित है।

मुद्दण : "मुद्दण" काव्य नाम से ग्रंथ रचना करने वाले यह कवि कुमार व्यास युग और आधुनिक युग के बीच कड़ी मिलाकर सेतु-बंधन करने वाले महाव्यक्ति है। इनका नाम लक्ष्मीनारायण है। यह उडपी के पास के नंदलि के नामक एक ग्राम में जनमे। तिम्मप्पय्या-महलक्ष्मम्मा नामक दंपति इनके माता-पिता थे। एक गरीबपरिवार में जन्म लेने कारण सहूलियतों का अभाव रहा। साधारण शिक्षा पायी थी; अंग्रेजी-शिक्षा पाने के लिए आवश्यक अनुकूलताएं न होने के कारण इन्होंने अंग्रेजी नहीं सीखी। जीविकोपार्जन के लिए उडपी के किसी एक पाठशाला में व्यायाम-शिक्षक का काम करने लगे। बाल्य से ही इन्हें यक्षगान (वीथि नाटक) में अभिरुचि थी और इन यक्षगान नाटकों में अभिनय भी किया करते थे। इस अभिरुचि के कारण उन्होंने "रत्नावली कल्याण" और "कुमार विजय" नामक दो यक्षगान भी रचे। कन्नड का नाम सुन कर ही लोग नाक-भौंह सिकोड़ते थे। ऐसे जमाने में इस लक्ष्मीनारायणप्पा को कन्नड भाषा पर अत्यंत प्रेम और अभिमान था। उन्होंने स्वप्रयत्न से कन्नड भाषा एवं साहित्य में अद्वितीय पांडित्य प्राप्त किया। इस पांडित्य-प्राप्ति के लिए उन्होंने सारस्वत-तपस्या एक निष्ठ होकर की है। इसके पश्चात् क्रमश: "अद्भुत रामायण", "रामपट्टाभिषेक", "रामाश्वमेध"—इन तीन कृति रत्नों की रचना की। रामायण पर की भक्ति और प्रीति इससे स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए

वस्तु उसी से चुनी है। कवि का आदर्श है "जिये-मरे, काव्य को मानव जीवन का मार्गदर्शी बनना चाहिए और उसे रस भरित होना चाहिए।" इसी आदर्श को उन्होंने अपनी कृतियों में चरितार्थ किया है। आदर्श को साधा जरूर है, परन्तु कवि को इस बात का आत्म-प्रत्यय नहीं कि उन्होंने अपने आदर्श को चरितार्थ किया है। जो वस्तु उन्होंने अपनी कृतियों के लिए चुनी है, वह पुरानी है। परन्तु उसका निरूपण एकदम नवीन ढंग से किया है। कवि को यह शंका है कि लोग इसे पसंद करेंगे या नहीं। इसलिए स्वलिखित तीनों कृतियों को अन्यलिखित कहकर प्रकट किया है। उन्होंने बताया कि "अद्भुत रामायण" पुरातन ग्रंथसंग्रह से प्राप्त है, और इसके कर्ता अनामक है; "राम पट्टाभिषेक" की लेखिका कोई अज्ञात कवयित्री लक्ष्मी है; "रामाश्वमेध" मुद्दण नामक किसी पूर्व कवि की रचना है।" इन तीनों के अलावा "गोदावरी" नामक एक काल्पनिक उपन्यास भी असम्पूर्ण लिखा रख। अपनी कृतियों को प्रकाशित होकर असदृश गौरव एवं आदर प्राप्त करना। देखने के पहले ही यह कवि अपनी पूर्व वय में ही दिवंगत हुए।

कवि की कृतियों में "अद्भुत रामायण" और "रामाश्वमेध" पुराने कन्नड के गद्य में हैं। "राम पट्टाभिषेक" वार्धक षट्पदी में है। चौदह वर्ष का वनवास समाप्त कर सीता, राम और लक्ष्मण अयोध्या लौटते हैं। उनकी खुशी का ठिकाना नहीं। उनके आगमन की प्रतीक्षा करने वालों की खुशी आने वालों की खुशी से कम नहीं। भारत का कुतूहल देखिये। संदेश लाने वाले से पूछते हैं—"अटविर्यिं पॉरटिहरें? बंहरें? दारियॊळें पॉरदु दिल्लवे? रामनॊळिळसागिहनें? पर्यटनदिं बाडिहरें? बळतुमिर्परें? बहरें? बन्दरें?"— अर्थात् "जंगल से निकले? आएंगे? पथ पर हैं क्या? राम अच्छे हैं? वनवास के समय जंगल में घूमते-घामते कहीं थके-मांदे-से तो नहीं हैं? आ रहे हैं? आएंगे? आये?"—यह भरत के कुतूहलपूर्ण उत्सुकता का चित्र है। राम और कौशल्या के परस्पर समागम से जो संतोष दोनों को हुआ वह "गगनं गगनाकारं सागर एसागरोपम:" है। इस संतोष को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं। वह केवल अनुभूति है। माँ बच्चों का वह संतोष उपमातीत है। रामचंद्र जी के राजतिलक के दिन सारा संसार आनंद सागर में निमग्न है। उस दिन सवेरे कौआ भी श्रीराम की प्रार्थना-स्तुति में निमग्न है। अपने अपराध को क्षमा कर प्राणदान देने वाले श्रीरामचंद्र से "का—का" कहता हुआ प्रार्थना कर रहा है। [कन्नड में "का" का अर्थ रक्षा करो है।] जिस तरह महा कवि रन्न ने "गदायुद्ध" प्रकरण को लेकर सारे भारत का सिंहावलोकन किया है वैसे ही कवि लक्ष्मीनारणप्पा ने "राम पट्टाभिषेक" के प्रसंग को लेकर सम्पूर्ण रामायण को ही चित्रित किया है। पुष्पक विमानारूढ श्रीराम चंद्र जी रास्ते में उन स्थानों का परिचय देते हुए सीता जी से जो बातें कहते हैं वह सम्पूर्ण रामायण की कथा को ही अभिव्यक्त करती हैं। इस प्रसंग को पढ़ते समय हमें कालिदास के "मेघ संदेश" का स्मरण हो आता है।

अद्भुत रामायण कवि की प्रथम कृति है। श्रीराम सहस्रकंठ रावण को छेड़कर अधमरा छोड़कर लौटता है। तब सीता शक्ति का रूप लेकर राक्षस को मारकर राम की रक्षा करती है। शक्तियों की रामायण में पुराण-पुरुष श्रीरामचन्द्र से भी अधिक महिमान्वित है प्रकृति-स्वरूपिनी माता सीता। सुरसुन्दरी सीता यहाँ विकराल रूप

धारण करती है और राक्षस को मारने आती है। इस विकराल सीता का यह वर्णन कवि के ही शब्दों में देखिये, कितना भयंकर चित्र है, यह :—

"तिदिद कूंदल निगुर्दु कॅर्दरें, पेरे नॉसलु पॅर्नोसलागें,
ऍसॅल्गण् मुळिमण्णागें, नगॅमॉगं डरिमॉगमागें, सुलिपलु
निडुवल्लागें, तळिर्नालगें जोल्नालिमॅयागें, सीतॅ कराळ
मुखियादळु "..." इंतु लोकोत्तर सुंदरियप्पासीतॅयॉडनें
अद्भुत रूपदिं माकाळियागि दिम्मनें तिरॅगें धुम्मिक्कुतें,
कोरॅवल्गळु मिनुगें, तुटियलुगे, नालिगे नीडॅ, कण्पापें राटदळ
दंतॅ सुलॅ, सूलं, कडुगं, तलॅयोडु इंतिवुगळं पिडिदु पक्कि
वेगदिं रक्कसनॅडॅगें सार्तन्दळु,"—सीता जी का यह भयंकर

चित्र है। भाव यह है कि "सीता जी के बाल बिखर कर सिर पर खड़े हो गये हैं, माथा बड़ा हो गया है, सुन्दर आँखें गढ़े बनी हुई हैं, हँसमुख ज्वालामयी भयंकर होकर डरावना बन गया है, सुन्दर दंतपक्ति भयंकर डाढ़ बन गयी हैं, कोमल जिह्वा लटककर लंबी हो गयी है यों सीता कराल रूपिणी हुई...इस तरह सुन्दरमुखी सीता अद्भुत रूप धारण करके महाकाली बनकर कूद-फांद करती हुई डाढ़ चमकाती हुई, होंठ हिलाती हुई, जीभ लटकाकर, आँखों के तारों को घुमाती हुई, शूल, खड्ग, खप्पर—लेकर पक्षिवेग से उस राक्षस के पास आयी।" सीता जी का ऐसा रूप !

कवि के काव्यों में "रामाश्व मेघ" अंतिम काव्य होने पर भी अग्रगण्य है। कवि की काव्य-शक्ति इस कृति में बहुत परिमार्जित एवं परिणत होकर पक्वावस्था में है। यह कृति प्राचीन और अर्वाचीन का संगम क्षेत्र है। यह पौरणिक कथा है तो ठीक। परन्तु प्राचीन काव्यों में कहीं न दिखनेवाली नवीनता यहाँ हमें दृष्टिगोचर होती है। काव्य का आरंभ ही हमें चकित कर देनेवाली उपन्यास-शैली में होता है। यों आरंभ होता है—"ओ कालपुरुषंगें गुणमण मिल्ल. गड, निस्तेजं गड, जडं गड."—अर्थात् इस काल पुरुष को समय-कुसुम कुछ नहीं, (वर्षाकाल होने के कारण) दिन निस्तेज और जड़ है।"—आदि आदि—वर्षाकाल के मनोहर वर्णन से हम काव्यानंद में लीन अपने को विस्मृत अवस्था में पाते हैं। परन्तु हमें यह कवि पूर्ण विस्मृत होने तक नहीं छोड़ता। वर्षा वर्णन के साथ ही मुद्दण-मनोरमा नामक नव युगल के नवीन दांपत्यजीवन का मनोरम दृश्य कवि उपस्थित करते हैं। पति रसिक है, पत्नी धर्म-परायणा और रसज्ञ है। इस धर्मपरायणा रसज्ञ पत्नी को कथा-श्रवण कराने ही के लिए यहाँ वर्षाकाल आरंभ हुआ है। इस लगातार फुहार से थककर पत्नी पति से एक रसभरी कथा सुनाने के लिए कहती है। वह बताती है कि वह पहले ही सीता स्वयंवर की कथा सुन चुकी है। सीतापहरण की कथा सुनना नहीं चाहती। कहती है "रामश्वमेघ" की कथा कह सकते हैं। और अब सुनाने के लिए कथा को तो चुन लिया। फिर पति से सुनाने की रीति के विषय में कहती है कि कथा को पद्मरूप में नहीं कहना चाहिए। वह बताती है—"पद्यं वर्ज्यं, गद्यं हृद्यं, हृद्यमप्प गद्यदॊळु पेळ्वुदु"—अर्थात् "पद्य वर्जित है, गद्य ही हृद्य होता है, इसलिए मनोहर गद्य में ही कहना चाहिए। पति अपनी स्वीकृति देने के साथ-साथ पूछते हैं कि कथा सुनाने के लिए परिश्रमिक क्या होगा ?

(पत्नी) मनोरमा : अपने को ही दे दूँगी।

(पति) मुद्दण : तुम बड़ी चतुर हो; क्या तुमको मालूम नहीं कि तुम्हारे माता पिता ने तुम्हें पहले ही मुझे दे दिया है। ?

मनोरमा : यह कैसी बात है ? जाने दीजिए; हाँ, मैं तो पराधीन हूँ ! पुरान श्रवण कराने के बाद न, दक्षिणा देने की बात ?···मैं भी कथा श्रवण करूंगी, बाद में अपनी शक्ति के अनुसार सन्मानित करूँगी।

मुद्दण : कथा सुनने के बाद नहीं दोगी तो यों ही छोड़ने वाला नहीं।

मनोरमा : मैं भी देखूँगी, कथा सुनने के बाद उसमें तत्त्व कितना और कैसा है।

इतना संभाषण होने के बाद कथा सुनाने लगते हैं। लंबे संस्कृत समास पद से कथा आरंभ होती है। इस संस्कृत के लंबे समास पद को सुनकर पत्नी मनोरमा पति (मुद्दण) से कहती है—"जरा ठहरिये तो सही; पानी-सी तरल वस्तु भी जिस गले में नहीं उतर सकती, उसमें यह मोटा-सा मोदक ठूँस दें तो गले में उतरेगा कैसे ? इसलिए सुललित कन्नड के स्पष्ट शब्दों में कथावस्तु का सारतत्त्व लेकर बतावें।" कन्नड में अत्यधिक संस्कृत का मिश्रण मनोरमा के लिए सह्य नहीं। वह कहती है—"काली मणियों की माला में यत्र-तत्र लाल प्रवाल पिरोया हुआ हो।"—ऐसा होना चाहिए। यह सब समझाकर मुन्दर और सुचलित कन्नड भाषा में कथा कहने को तैयार कराती है। इसके पश्चात् कथा आरंभ होती है।

यह "रामाश्वमेघ" की कथा पद्मपुराणांतर्गत एक कथा भाग है। परन्तु कवि पर जैमिनि भारत का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। फिर भी कवि प्रतिभावान् होने के साथ लोकरुचि को भी समझने वाले हैं और हृत्तंत्री को छेड़कर झंकृत करा देने की कला जानते हैं। इसलिए मूल कथा को पर्याप्त मात्रा में परिवर्तित करके कथा को नवीन चैतन्य दिया है, नये ढंग से प्रस्तुत किया है। "रामाश्वमेघ" की सीता का दोहद प्रसंग, सीता को वनवास का दंड मिलने पर उन्हें ले जाकर जंगल में छोड़ आने की आज्ञा के बाद लक्ष्मण का (अन्तर्द्वन्द्व) आंतरिक संघर्ष, रामचंद्र जी के द्वारा परित्यक्त होने पर सीता जी की प्रतिक्रिया आदि प्रसंगों के वर्णन में कवि की प्रतिभा बहुत प्रखर होकर चरम सीमा तक पहुंच गयी है। एक-एक प्रसंग रसभरित है। रामाश्वमेघ की कथा होने के कारण यह ज़रूरी है कि यज्ञाश्व को देश भ्रमण करना चाहिए ही। कथा कहीं श्रृंखलित कथा जाल-सा बनकर पाठकों का मन उचट न जाय—इसका ध्यान रखते हुए पाठकों का मन रखने के लिए ही स्वयं अपने काव्य का विमर्शक बनकर अपनी कल्पना प्रसूत मनोरमा को बीच में लाकर कुछ हास्यरस युक्त प्रसंग प्रस्तुत करते हैं। यह यज्ञाश्व एक बार आरण्यक नामक ऋषि के आश्रम में, अपने देश भ्रमण के सिलसिले में पहुँचता है ऋषि ने राम की असंख्य सेना को राजोपचार करके संतुष्ट किया।—इस सन्निवेश में कथा को रोक कर कवि मनोरमा को आगे करता है। कथा सुन रही मनोरमा पूछती है कि इतनी बड़ी सेना को संतुष्ट कर सके इतना धन ऋषि के पास कहाँ से आया। क्या यह खाली बातों का सत्कार है ?

इस सवाल के जवाब में मुद्दण (पति) कहते हैं कि यह उन ऋषियों ने तपस्या करके जो मंत्र सिद्धि पायी है उसका फल है। यह मंत्र की महिमा है। यह सुन कर

मनोरमा कहती है—किस्से कहानी सुनाते फिरने वाले ये कवि ऐसे मंत्र का उपदेश क्यों न ले ? इसका जवाब देते हुए मुद्दण कहते हैं—

मुद्दण : जंगल में मंगल करनेवाले, राज्यों को बनाने बिगाड़नेवाले, शक्तिमान् हैं कवि। क्या ऐसे कवि इन बूढ़े तपस्वियों से बड़े नहीं ?

मनोरमा : यदि कवि ऐसे हों तो उनको मंत्र सिद्धि होगी न ?

मुद्दण : (मंत्र सिद्धि में) न कोई बाधा है न शंका ही।

मनोरमा : आप में वह (मंत्र) सिद्धि है ?

मुद्दण : वह मंत्र मेरे जीवन का ताना बाना है।

मनोरमा : ओहो ओह ! आप भी बड़े चतुर हैं, उस मंत्र का उपदेश आपने किससे, कब लिया ?

मुद्दण : गुरु से, बचपन में ही।

मनोरमा : वह मंत्र कौन-सा है, मुझे भी तो बतावें।

मुद्दण : आह-हा, अच्छा, मंत्र, बता दें; छिः छिः, (औरतों को) स्त्रियों को कहीं मंत्रोपदेश दिया जाता है ?

मनोरमा : क्या मुझे मालूम नहीं ? आपसे उपदेश देने के लिए गिड़गिड़ाऊँ ? मैं पूछूंगी कि जिस मंत्र के बारे में आपने कहा था वह कौन-सा है और उसका नाम क्या है ?

मुद्दण : मैंने जिन मुनियों के मंत्र के बारे में कहा वह अलग है; यह मंत्र ही दूसरा है। हमारे मंत्रों का ढंग ही दूसरा है। दो-तीन अक्षरों के मंत्र हमारे लिए काफ़ी होंगे ? हमारा तंत्र छोटा नहीं। बहुत बड़ा है। एक अक्षर का नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, चार नहीं, पाँच नहीं, छः भी नहीं; वह सात अक्षरोंवाला बीज मंत्र है; वह सभी मंत्रों का शीर्ष मंत्र है। उस मंत्र का नाम है सप्ताक्षरी मंत्र।

मनोरमा : ह-ह-हा ! उस मंत्र का अभिमान देवता कौन है ? इस मंत्र का जप करके पहले सिद्धि किसने पायी थी ?

मुद्दण : इस मंत्र की अभिमानिनी देवी का नाम ज्येष्ठा देवी है। पहले भगवान् ईश्वर (शिव जी) ने अपनी एक लीला में इस मंत्र का जाप करके उन्होंने सिद्धि पायी थी। इसलिए वही ऋषि है।

इतना सुनने के बाद मनोरमा उस मूल मंत्र को कहने के लिए बार-बार गिड़गिड़ाती है, मिन्नत करती है। पति कहते हैं—इस मंत्र को स्त्रियाँ सुनेंगी तो उनके लिए यह मंत्र हानिकर होगा। यह सुनकर भी मनोरमा ज़िद्द करने लगती है। इसे देख कर मुद्दण कहते हैं—"छोटी उम्र की पत्नी के हाथ में कवियों की दशा बड़ा दयनीय होती है।" तब पत्नी से वादा कराकर कि वह किसी से यह मंत्र नहीं कहेगी फिर कंजूस अपनी गाँठ धीरे-धीरे खोलता है वैसे एक-एक अक्षर कह-कह कर उसे जैसे सताते हुए उसके कुतूहल को छेड़ देते हैं। अंत में वह मंत्र कहते हैं—भवति भिक्षां देहि"।

और बताते हैं कि यही कवियों की तपस्या में प्राप्त सिद्धि है, यह महामंत्र

है; इसे किसी से नहीं कहना। ऐसे सुन्दर, सरस, पारिवारिक जीवन के चौखट में कवि मुद्दण के रामाश्वमेध का चित्र चित्रित है। इसलिए उस पुरानी कथावस्तु में एक नये जीवन का संचार हुआ है। वह चिरनूतन बन गया है।

काव्य की भाषा के विषय में उनकी भावना सब के लिए आदरणीय है। काव्यों में बहुत अधिक संस्कृत शब्दावली के लिए प्रयोग के विरुद्ध भावना पहले से ही दिखाई देती है। फिर भी हमारे कवियों ने संस्कृत के शब्दों के प्रयोग में सीमित व्यवहार किया है—ऐसा कहा नहीं जा सकता। कवि मुद्दण ने जो कहा—"काली मणियों के बीच लाल प्रवालों के पिरोने जैसे" संस्कृत का प्रयोग करना चाहिए। —यह कितना अर्थपूर्ण है। मांगल्य सूत्र में काली मणियों की ही श्रेष्ठता और पवित्रता मुख्य है,—ऐसी मान्यता है; यही प्रमुख स्थान होना चाहिए कन्नड का। लाल प्रवाल काली मणियों की माला के बीच-बीच में कहीं-कहीं एक हो तो वह शोभादायक होता है। संस्कृत का स्थान इस तरह निर्दिष्ट होना चाहिए। कवि के काव्यारंभ की रीति में ही एक विशेषता है। पौराणिक काव्य का आरंभ इस नवीन ढंग से करनेवाले सर्व-प्रथम कवि यही हैं। उनका हास्य मार्दवयुक्त और सुन्दर है। इतना ही नहीं अर्थ पूर्ण और ध्वनियुक्त है। कवियों की सिद्धि है यह सप्ताक्षरी मंत्र। यह कवि के द्वारा प्रस्तुत हास्य का कितना अच्छा उदाहरण है इन सबसे बढ़कर इन कवि के काव्य से एक बहुत बड़ा संदेश ध्वनित होता है। धनी बनना सबके लिए साध्य नहीं हो सकता है। परन्तु प्रत्येक को प्रयत्न से रसिक बनना साध्य है। मुद्दण-मनोरमा की तरह सत्कथा विनोद में जीवन यापन करना साध्य है। इतना अगर कर लें तो जीवन की सभी इच्छाएँ पूर्ण होंगी।—ऐसा मानना चाहिए।

दास वाङ्मय

बारहवीं सदी में वीरशैवमत ने सिर उठाया और बहुत जोरदार ढंग से उसने प्रगति भी की। इसने वर्णाश्रमों की नींव पर स्थित सनातन वैदिकमत को जड़ से हिला कर झकझोर दिया था। सर्वसमानता की घोषणा करनेवाले नये मत की ओर आकृष्ट वैदिक मतानुयायी जत्थे के जत्थे इस नये मत के झंडे के नीचे आश्रय पाने लगे। इसी समय में विकसित श्रीवैष्णवमत वैदिक धर्म के चौखट में जन्म लेकर विकसित होने पर भी वर्णभेद को तोड़-फेंककर सब मानवों के उद्धार के समानाधिकार का मार्ग प्रशस्त किया। इससे वर्ण-संकर से वैदिक मत के सर्वनाश हो जाने का भय वैदिक धर्मानुयायियों को होने लगा—ऐसा प्रतीत होता है। श्रीवैष्णव मत के तत्त्व बतानेवाले ग्रंथ कन्नड में सत्रहवीं सदी तक भी लिखे नहीं गये—ऐसा दिखता है। परन्तु वीरशैव ने "शून्य सिंहासन" और "अनुभव मंडप" की स्थापना करके अच्छा संगठन करने के साथ लोकमानस को अपनी तरफ आकर्षित किया था और अपने वचन वाङ्मय का प्रचार-प्रसार करके एक अद्‌भुत विजय को प्राप्त किया था। उस समय जो वैदिक मतानुयायी अद्वैत सिद्धांत विद्यमान थे वे इस मत के जोरदार प्रवाह को रोक सके—इतना ध्यान इस ओर नहीं दे सके—ऐसा प्रतीत होता है। "अहं ब्रह्मास्मि", "ब्रह्म सत्यं", "जगन्मिथ्या"—इन आदर्श वाक्यों का विपरीतार्थ करके संभवतः इस वैदिक अद्वैत के अनुयायी वैदिक संप्रदाय शरण बिलकुल जड़ निष्क्रिय हुए होंगे। आदर्श और व्यवहार—इन दोनों में परस्पर समन्वय न होने के कारण और आदर्श और व्यवहार में असंगतता के कारण भी यह वैदिकाद्वैत निस्तेज हो गया होगा। इसके अनुयायी अपनी-अपनी विचार सरणि को लेकर तरह-तरह के तर्क-वितर्क में लगे रहकर इस नये मत के प्रवाह को रोकने में एक तरह जड़-से हो गये थे। इस हालत में कुछ विचारवान् वैदिक-पंथियों ने अपने वैदिक-धर्म को बचाने के ख्याल से एक नवीन सिद्धांत की स्थापना करने निकले होंगे। संभवतः इन विचारवान् वैदिक पंथियों के प्रयत्न का ही फल है "द्वैत मत" की स्थापना। इस मत की स्थापना करनेवाले मध्वाचार्य थे, इसलिए इस मत का एक नाम मध्वमत भी है।

बारहवीं सदी के उत्तरार्ध के अंत में उडुपि के पास के शिवळ्ळि नामक एक गाँव में मध्वाचार्य का जन्म हुआ। इसके पिता का नाम मध्यगेह भट्ट था। ये बड़े सात्विक थे। बालक मध्वाचार्य बड़ा तेजस्वी, असाधारण व्यक्तित्व और अलौकिक शक्ति से सम्पन्न था। ब्रह्मचर्याश्रम से ही सीधे संन्यास ले लिया इन्होंने। इस मेधावी महापुरुष ने अपने समय में प्रचलित अद्वैतमत का खंडन करके, द्वैतमत की स्थापना की। असंख्य परिवारी और अनेक संन्यासी इनके उपदेश को स्वीकार करके इनके अनुयायी बने। मध्वाचार्य ने सारे देश का दौरा किया और अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया, और द्वैतमत का प्रसार किया। इतना ही नहीं कई करामात करके प्रसिद्ध बने। इन्होंने उडपी में आठ मठ स्थापित करके वहाँ सतत श्रीकृष्ण पूजा चलाते रहने की व्यवस्था की। आज भी उडपी द्वैतमत का प्रमुख केन्द्र है।

मध्वाचार्य की शिष्य परम्परा में प्रमुख और द्वैतमत प्रचारकों में प्रसिद्ध व्यासराज ने द्वैतमत के सिद्धांतों का सार संग्रह करके उसका इस तरह निरूपण किया है—

"श्रमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्त्वतो
भिन्ना जीवगणाः हरेरनुचराः नीचोच्च भावंगताः ।
मुक्तिर्नैज सुखानुभूतिरमला भक्तिश्चतत्साधनं
ह्यपादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः ॥"

अर्थात्—"श्री मन्मध्वमत में हरि ही सर्वोत्तम है; जगत् सत्य है । जीवियों में (जीवों में) तारतम्य है; सभी जीव हरि के अनुचर हैं; सभी में तर तम भाव है; नैज सुख का अनुभव करना ही मुक्ति है; इस मुक्ति का साधन है भक्ति; प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द - ये तीन प्रमाण है; हरि केवल वेद वेद्य है"—ये नौ तत्त्व हैं । इन तत्त्वों का आम जनता में प्रचार करके द्वैत धर्म का प्रसार करने ही के लिए दासवाङ्मय का जन्म हुआ ।

हर (शिव) पारम्य की घोषणा करके वीरशैव का पोषण तथा प्रचार करने वाले बसवण्णा के ही जैसे हरि (विष्णु) के सर्वोत्तमत्व की घोषणा करके वैष्णव का पोषण कर उसे विकसित करने वाले मध्वाचार्य भी कन्नड भाषा भाषी ही है । दोनों का कार्यक्षेत्र अधिकतर कर्नाटक ही है । दोनों ने भक्ति को सर्वप्रथम स्थान दिया । अपने मत के प्रचार के लिए दोनों ने करीब-करीब एक ही तरह के मार्ग का अनुरण किया है । वीरशैव का स्वागत लोगों ने किया तो उसके उदात्त तत्त्वों के कारण और वह फैला इसलिए कि इन तत्त्वों का माध्यम कन्नड था । इस रहस्य को समझकर ही द्वैत-मत ने लोगों की भाषा को ही उपयुक्त माना । इसलिए कन्नड ही इसके प्रचार का माध्यम बना । शिव शरणों ने कन्नड के काव्यमय गद्य में वचनों की रचना करके जनमत को आकर्षित किया तो हरिदासों ने वचनों से भी अधिक प्रभावशाली और परिणामकारी गेय-पदों की रचना करके गा गा कर लोक मानस को आकर्षित किया । कालांतर में गान के साथ इन हरिदासों ने इसमें नृत्य का भी समन्वय किया । भगवान् की आराधना के लिए संगीत बहुत ही अच्छा साधन हो सकता है—इस बात को अनादिकाल से हमारे लोग जानते हैं । सामवेद इसके लिए साक्षी है । कहते हैं—भगवान् सामगान प्रिय है । संगीत से मन एकाग्र होता है और तद्वारा भगवान् के साक्षात्कार में सहायक बनता है । यही नहीं, लोकमानस को वशवर्ती बनाने में भी एक अद्वितीय साधन का काम देता है । दास पंथियों के इस प्रयोग की सफलता को देखकर संभवतः शैव काव्यमय गद्य रूप वचनों को गेय पदों की तरह गाना शुरू किया होगा—ऐसा प्रतीत होता है । वचनकारों ने भी गेय-पदों की रचना की है; मगर वे वचन स्तोत्रों के रूप में हैं । इन गेय रूप पदों को इन लोगों ने मत-प्रचार के लिए उपयोग नहीं किया । इन हरिदासों ने तो गीतों को गाने तथा मत-प्रचार करने—दोनों कार्यों के लिए एक साथ उपयोग किया ।

वीरशैव ने अपने संगठन के मार्गदर्शन के लिए "शून्य सिंहासन" और "अनुभव मंटपों" का सहारा लिया था । इन हरिदासों ने "व्यासकूट" और "दासकूट" का

सहारा लिया बाहरी दृष्टि से दोनों अलग-अलग दिखने पर भी दोनों का आदर्श एक —और वह वेदविहित तत्त्वों का द्वैतमागानुकूल रीति से जनता को समझाना। समस्त वैदिक आधार ग्रंथ व्यासकृत ही हैं न? इन ग्रंथों को मूल संस्कृत में ही पढ़कर विस्तार के साथ विवरण देकर बता सकनेवाले पंडितों का समाज "व्यासकूट" है; व्यासकूट के विद्वान् अध्यात्म तत्त्व को संस्कृत-श्लोकों के रूपों में बताते हैं; मूलग्रंथों के विवरणों में दिखनेवाली जटिल समस्याओं और शंकाओं का समाधान कर सकने वाले दिग्गज विद्वान् हैं ये पंडित। इन पंडितों के द्वारा निर्णीत तत्त्वों एवं धार्मिक रीति-नीतियों का आम जनता में, पदों—कीर्तनों के द्वारा प्रचार करना "दासकूट" कहलाता है। ऐसा कोई बन्धन नहीं कि जो व्यासकूट का सदस्य हो उसे दासकूट का सदस्य नहीं होना चाहिए। दासकूट के अनेक सदस्य व्यासकूट में भी बड़े दक्ष एवं निष्णात विद्वान् माने जाते थे। इन दोनों संस्थाओं (व्यास और दासकूट) में यदि कोई अन्तर था तो वह यह कि एक का माध्यम संस्कृत और दूसरे का माध्यम कन्नड था; यह अन्तर भी व्यासराज और पुरंदर के ससय से ही चला आया।

हर-पारम्य और हरि-पारम्य—इस फरक को छोड़ दें तो दास-साहित्य और वचन वाङ्मय इन दोनों में निहित तत्त्व बहुत हद तक एक है—ऐसा कहा जा सकता है। दोनों का लक्ष्य अपने-अपने मत तत्त्वों का प्रतिपादन और प्रचार है। जब यह अपने-अपने मत तत्त्व के प्रचार की बात है तो अन्य मतों से अपने मत को श्रेष्ठ बताकर अपने देवी-देवताओं से भिन्न अन्य मतीय देवी-देवताओं की अवहेलना करना, अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए एक सहज-सी बात हो जाती है। परन्तु इस संकुचित भावना से ऊपर उठकर नित्य शाश्वत तत्त्वों का प्रतिपादन इन दोनों में समान रूप से हुआ है। उन दोनों की धार्मिक-दु:स्थिति को प्रतिबिंबित करने में और संस्कृत में जमकर बैठे हुए आध्यात्मिक तत्त्वों को जनता की आम भाषा में लाकर घर-घर के दरवाजे तक पहुँचाने में जो महत्कार्य हुआ है उसका श्रेय दोनों वाङ्मयों को समान रूप से मिलना चाहिए। वीरशैव वचनकारों की तरह इन हरिदासों ने भी नैतिकता की नींव पर अपने उपदेशों को उन्नत बनाये रखा। गहरे अध्यात्म चिंतन के द्वारा अनुभूत सत्य का जनता में प्रेम के साथ वितरण करने वाले उदारचेता महानुभाव हैं ये वचन-कार और दासपंथी। सामाजिक दुराचार एवं लोप दोषों का खंडन करने में ये लोग "वज्रादपि कठोराणि" होते हुए भी उनका वह क्रोध सात्विक है। लोगों के दु:ख-दरद को सहानुभूति के साथ निवारण करने में और सदुपदेश देकर उन्हें समाधान करने में वे "मृदूनि कुसुमादपि" थे। ये दोनों (वचनकार और दासपंथी) समान रूप से आदर-रूप से आदरणीय हैं। कथनी और करनी में एक रूप रहकर उन्नत सात्विक जीवन-यापन करने वाले ये संत, लोगों में दैवभक्ति का संचार कर सामाजिक नैतिक स्तर को ऊपर उठाने में कृतकृत्यता पाकर स्तुत्य हुए हैं। हाथ में एकतारा लेकर या तंबूरा लेकर घर-घर गाते जाने वाले इन विरक्त जीवियों का स्मरण होते ही उनकी चलती-फिरती मूर्ति आँखों के सामने गुजरती हुई सी नजर आती हैं। इनके स्मरण मात्र से हम पुलकित हो जाते हैं।

वचन वाङ्मय की ही तरह दासवाङ्मय भी बहुत विस्तृत है। जिस तरह प्रत्येक वचनकार के विषय में यह प्रतीति है कि उन्होंने हजारों वचन लिखे, उसी तरह प्रत्येक

हरिदास के विषय में भी प्रतीति है कि उन्होंने हजारों कृतियों का निर्माण किया है। पुरन्दरदास के ही पद चार लाख पचहत्तर हजार हैं—ऐसा कहा जाता है। यह प्रतीति है कि व्यास मुनि ने उनसे इतने पद कहलवाये। पता नहीं इस कथन में सत्य कितना है ! स्वयं पुरन्दरदास ने ही बताया ऐसा भी कहा जाता है। अथवा यह भी संभव है कि किन्हीं औरों ने लिखकर पुरन्दरदास के नाम से जोड़ दिया हो। इतने अकेले उन्होंने लिखा—इस बात को मानना भी असंभव-सा लगता है। अबतक करीब दो सौ दास पंथियों के नाम और उनकी कृतियाँ प्रकाश में आयी हैं। अब कुछ और कृतियाँ भी उपलब्ध हुई होंगी। जिस तरह वचन वाङ्मय में कुछ अनुपलब्ध होकर नष्ट हो गये हैं वैसे ही दासवाङ्मय की भी दशा हुई होगी। छापने की व्यवस्था के अभाव के उन दिनों में उत्तम कृतियाँ जनप्रिय होकर प्रचलित हुई हो तो यह सर्वथा सहज ही है।

वीरशैवों के वचन और हरिदासों के कीर्तन—इन दोनों में दिखने वाली एक समानता यह भी है कि इन वचन और कीर्तनों के अंत में दिखने वाला "अंकित"। वचनकार अपने इष्टदेव का नाम अपने वचनों के अंत में "अंकित" करते थे। इन हरिदासों ने भी आरम्भ में इसी क्रम का अनुसरण कर अपने इष्टदैव का नाम "अंकित" किया है,—ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु पुरन्दरदास के समय में हरिदास बनने वालों को गुरु के द्वारा "अंकित" स्वीकार करवाकर गुरु का अनुग्रह पाना चाहिए—यह नियम बन गया। गुरु शिष्य को "अंकित" का अनुग्रह करने के पहले एक "अंकित" युक्त पद की रचना करके, आरम्भ में शिष्य का नाम और अंत में अपना (गुरु का) नाम "अंकित" करने का संप्रदाय बना। कालांतर में यह पद्धति एक अनिवार्य नियम के रूप में बदल गयी, और जिसने गुरु से अंकित पाकर अनुग्रहीत नहीं हुआ है उसकी कृति अमान्य मानी गयी, ऐसी कृति श्रीहरि को प्रिय कर नहीं—ऐसा विश्वास लोगों का बना। ऐसा माना जाता है कि पंढरपुर का विट्ठल भगवान् नाद ब्रह्म के रूप में विख्यात है। इसलिए यह विट्ठल इन दासपंथियों का उपास्य दैव है;' यही कारण है कि इन दासपंथ के हरिदासों ने अपने पदों को उन्ही विट्ठल के नाम से अंकित किया। यों इनके पदों में विट्ठल का नाम सम्मिलित हो गया है।

"दासकूट" शब्द का वाच्यार्थ है "सेवकों का दल"। द्वैतमत के अनुसार इस शब्द का अर्थ "हरिदासों के पंथ में दीक्षित" है। इस मत के अनुसार जगत के समस्त जीव हरिदास है। देव और दोनों द्वैतमत के अनुसार नित्य है, अत. यह दासकूट भी अनादि है। साक्षात् लक्ष्मी ही श्रीहरि की प्रथमदासी है। उनके बाद ब्रह्मा, वायु, सरस्वती आदि देव-देवी नारद, शुक आदि ऋषि, लव-कुश आदि पुराण पुरुष—ये सब हरिदास पंथी है—ऐसी भावना है द्वैतियों की। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर, ऐसा कहना पड़ता है कि द्वैतमत के संस्थापक मध्वाचार्य ही इस दासपंथ के भी मूल-पुरुष है। और यह दास वाङ्मय भी उन्हीं से आरम्भ हुआ है। मध्वाचार्य पश्चिमी समुद्रतीर से उडपीतक तीन गोपीचन्दन के ढेले उठा लाये; लाते लाते "द्वादशस्तोत्र" की रचना कर उसे गाते हुए ले आये; इसी से दासमाङ्मय का आरम्भ हुआ माना जाता है। 'द्वाशस्तोत्र' का नमूना यह प्रस्तुत है—

"आनन्द मुकुन्द अरविन्द नयन

आनन्दतीर्थ परमानन्द वरद
सुन्दर मन्दिर गोविन्द वन्दे

आनन्दतीर्थ परमानन्द वरद"—यह श्रीमध्वाचार्य ही की भाषा है। अर्थ स्पष्ट है।—ऐसे बारह पंक्तियों में भी "आनन्दतीर्थ" अंकित है। यह "आनन्द-तीर्थ" श्री आचार्य जी का "आश्रय नाम" भी है। यह स्तोत्र ऐसा है कि इसे कई रागों में गाया जा सकता है; इसे लोरी कीं तरह गाया भी जाता है। कहा जाता है कि यह स्तोत्र आज भी उडपी और उसके आसपास के प्रदेशों में लोरी ही का काम दे रहा है। लोग इसे खुशी के अवसरों पर ताल दे देकर गाते नाचते भी हैं। श्री मध्वाचार्य जी ने साधारण लोगों के लिए "तुळु" भाषा में (यह पंच द्राविड भाषाओं में मानी जाती है और उडपी तथा उसके आसपास के प्रदेशों में दक्षिण कन्नड जिले में प्रचलित बोली है, आज भी) कुछ पद बनाये हैं—ऐसा कहा जाता है। परन्तु उन्होंने कन्नड़ में कुछ कीर्तन के पद बनाये—ऐसा नहीं दिखता। यह कार्य उनके शिष्य और प्रशिष्यों के द्वारा सम्पन्न हुआ।

श्री केशवदास जी ने अपने "भक्त विजय" में बताया है कि श्री मध्वाचार्य जी से भी पहले [नवम शतक में] अचलानन्द दास ने दासवाङ्मय का आरम्भ किया था। परन्तु इस कथन को पर्याप्त आधारों के अभाव में सत्य मानना समीचीन प्रतीत नहीं होता। "अचलानन्द विट्ठल" के अंकित उनके कुछ पद उपलब्ध है। उन्हें पढ़ने से लगता है कि इन पदों की भाषा इतनी प्राचीन नहीं लगती। उनके पदों की भाषा शब्द प्रयोग, आदि से यह कतई नवम शतक की भाषा मानी ही नहीं जा सकती। इतना ही नहीं ऐसा भी कहा जाता है कि इस अचलानन्द दास ने पुरन्दरदास से "अंकित" लिया। संभवतः यह सत्य हो सकता है। इन सबसे भी प्रधान एक और कारण है इन्होंने अपने एक पद्य में श्री मध्वाचार्य जी के नाम का उल्लेख किया है। इन सब कारणों से निस्संदेह कहा जा जा सकता है यह अचलानन्द दास मध्वाचार्य जी के बाद के ही हैं।

हरिदासों के कीर्तन (पद) द्वैतमत के तत्त्वों का प्रमार करने वाले अवश्य है; परन्तु ये द्वैत सिद्धान्त के आधार ग्रंथ नहीं। द्वैत वैदिक मत है, अतः वेदादि वैदिक ग्रंथ ही इस द्वैत मत के लिए आधार (ग्रंथ) हैं। इस दृष्टि से यह वाङ्मय वीरशैव वचन वाङ्मय से भिन्न है। इसके अलावा सूत्रवत् दिखने वाले संग्रह वाक्य वचन वाङ्मय में बहुत हैं, जो दासवाङ्मय में अर्थात्-उनके कीर्तनों, पदों में उतना नहीं। फिर भी इस दास-साहित्य से कन्नड भाषा साहित्य को जो तुष्टि और पुष्टि मिली है वह कम महत्वपूर्ण नहीं। "संगीतमपि साहित्यं सरस्वत्यास्तन द्वयं" इन हरिदासों ने जैसी साहित्य सेवा की उससे भी अधिक संगीत की श्रीवृद्धि की है। इन हरिदासों ने कीर्तनों और पदों के रूप में जो गेय हो सके—ऐसी कविता की ओर अपनी इस कविता को राग-रागनियों में गाने योग्य बनाया। इस तरह साहित्य एवं संगीत दोनों का समन्वय एक दूसरे के साथ किया। इन लोगों के परिश्रम के कारण कन्नड संगीत की भाषा बनी। इसका सारा श्रेय पुरन्दरदास को है जिन्होंने अपने समय तक प्रचलित

संगीत-पाठ पद्धति का परिवर्तन करके आज संगीत संसार में सुप्रसिद्ध "पिळ्ळारी गीत"[1] और रसानुगुण तालभेद युक्त हजारों अन्य कृतियों की रचना की है। आज दक्षिण भारत के प्रचलित समस्त संगीत—चाहे वह कन्नड, तेलुगु या तमिल किसी में हो—सामान्यतया कर्नाटक संगीत ही के नाम से प्रसिद्ध है। संगीत संसार में पुरन्दरदास एक "ध्रुवतारा" हैं, इनका संगीत जगत् में जो स्थान-मान है उसे समझने के लिए इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इन्होंने (पुरन्दरदास ने) त्यागराज को स्फूर्ति दी। भक्त त्यागराज पर पुरन्दरदास का गहरा प्रभाव पड़ा है।

हरिदासों के पद कई तरह के छन्दों में हैं। ये प्रधानतया तीन रूपों में हैं।—"कीर्तन", "सुळादि", "उगाभोग"—ये तीन रूप हैं। "कीर्तन"—उसे कहते हैं जो राग तालयुक्त होकर पल्लवि (हिन्दी में धृव), अनुपल्लवि और नुडि (दो चरणों वाले पद्यांश) इन तीनों अंगों से युक्त होता है। यह कोई नियम नहीं कि ये "नुडि" इतने ही हों, चाहे जितने हो सकते हैं। यहाँ "मात्रा" से अधिक "लय" की प्रधानता है। पहले बता चुके हैं कि इस तरह के कीर्तनों (पद) की रचना शिव शरणों से ही शुरू हो चुकी थी, परन्तु इन पदों (कीर्तनों) को संगीत में निर्दिष्ट स्वरूप देने का श्रेय इन हरिदासों को ही मिलना चाहिए।

"सुळादि"—वचन और कीर्तन के मध्यवर्ती तथा लयान्वित होते हैं। संगीतज्ञों का मत है कि इन्हें सप्त तालों में किसी एक ताल के अनुसार ये गाये जा सकते हैं। श्रीमान् मुगली साहब बताते हैं कि यह "सुळादि" शब्द "सूडालि" शब्द का पर्याय-वाची है और "धृव" आदि आठ तालों को सूडादि (सुळादि) कहकर पुण्डरीक विट्ठल के "नर्तन निर्णय" में अभिहित किया है।

"उगाभोग"—यह शब्द "उद्गाह" और "आभोग"—इन दोनों के मिलने से बना हुआ है। इसके स्वरूप का विवरण देते हुए श्रीमान् मुगली साहब बताते हैं कि उत्तर भारत में "स्थायी ठायी आस्तायी" कहाने वाली कृति हरिदास साहित्य की प्रथम कृति बनी। "उध्ग्राह, मेलापक, धृव, अन्तर, आभोग" ये पाँच 'उगाभोग' के पाँच धातु हैं। इनका तात्पर्य बेलूर केशवदास जी ने अपने "हरिदास साहित्य" में ऐसा बताया है कि "एक राग को लेकर उस राग में पद को बिठाकर धृव को स्थाई ठहरा कर उस चुने हुए राग के आसपास की राग-रागनियों के साथ विन्यस्त कर राग समा-रोपण करना और इस सबको मूकराग में विन्यस्त न करके ललित साहित्य युक्त बनाने पर वह "उगाभोग" कहलाता है।"—[यह सब विवरण संगीत शास्त्र संबंधी पारिभाषिक विषय होने के कारण इस शास्त्र से अनभिज्ञ "उगाभोग" की परिभाषा को समझ नहीं सकते।] स्थूल रूप से इस विद्या का यानी "उगाभोग" का स्वरूप

---

1. संगीत का अभ्यास करने वालों को सबसे पहले सिखाये जाने वाले गीतों को "पिळ्-ळारी गीत" कहते हैं। पहले इन गीतों को सिखाकर संगीत के छात्रों को संगीत में प्रवेश कराया जाता है। इन गीतों के द्वारा गणेश जी आदि देवताओं की प्रार्थना की जाती है। संगीत का विद्यार्थी चाहे तेलुगुभाषी आंध्र निवासी है चाहे तमिल प्रदेश का हो—इन्हीं पुरन्दरदास से कन्नड में रचित इन गीतों के द्वारा ही छात्रों की संगीत शिक्षा दी जाती है, यह क्रम आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है।

समझने के लिए इतना जानना पर्याप्त होगा कि यह वीरशैव संत शिव शरणों के वचनों के ही जैसे लगते हैं। बहुत हद तक शरणों के वचनों में और हरिदासों के उगाभोगों में समानता है। इन पर वचन साहित्य का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। ऐसा दिखता है।

हरिदासों के कीर्तन वीरशैव वचनों के ही जैसे मत तत्त्वों के प्रचार कार्य मे प्रयुक्त होने पर भी ये द्वैत सिद्धांत के आधार ग्रंथ नहीं। वेद आदि वैदिक ग्रंथ ही द्वैत मत के लिए प्रमाण ग्रंथ हैं। इस दृष्टि से दास वाङमय से भिन्न है। परन्तु वचन वाङ्मय जैसे सूत्रवत् संग्रह वाक्यों में है वैसा यह हरिदास वाङ्मय नहीं। दास साहित्य से भी पहले वचन वाङ्मय का जन्म हो चुका था, इसलिए दास साहित्य पर इसका गहरा प्रभाव भी पड़ा है।

हरिदासों के कीर्तनों (पदों) का अंकुरार्पण श्री मध्वाचार्य जी से ही होने पर भी उन्हें कन्नड में सर्वप्रथम रचना करके गाने का श्रेय श्री नरहरितीर्थ को मिलना चाहिए। इस नरहरितीर्थ के पश्चात् एक शतक से भी अधिक समय तक ऐसा कीर्तन साहित्य दिखाई नहीं पड़ता; केवल दो कीर्तन (पद) इस नरहरितीर्थ के उपलब्ध हैं। अतः लोग इन्हें भूल-से गये। इसके पश्चात् पन्द्रहवीं सदी में श्रीपादराय ने इस पंथ को पुनरुज्जीवित किया। इसलिए दासपंथी इन्हीं श्रीपादराय को अपने पंथ का मूल-पुरुष मानते आये हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि इस पंथ के मूल पुरुष होने का श्रेय श्री नरहरि तीर्थ ही को मिलना चाहिए।

नरहरितीर्थ : यह नरहरितीर्थ तेरहवीं सदी के अंत में (ई० सन् 1280 के करीब) रहे। ये मध्वाचार्य के शिष्यों में अग्रगण्य थे। यह नरहरितीर्थ अपने पूर्वाश्रम में स्वामिशास्त्री थे। यह उड़ीसा के राजा गजपति के यहाँ अधिकारी थे। श्री मध्वाचार्य बदरी यात्रा से लौटते हुए उड़ीसा आये तो यहाँ स्वामिशास्त्री श्री आचार्य से मिले, और उनके पांडित्य से प्रभावित होने के साथ-साथ उनके उपदेश से भी प्रभावित हुए और शिष्य बने; उसके बाद संन्यास स्वीकार किया। इस प्रसिद्ध पंडित स्वामिशास्त्री के साथ और भी अनेक व्यक्तियों ने द्वैतमत का अवलंबन किया। नरहरितीर्थ ने गुरु की आज्ञा के अनुसार उड़ीसा की राजधानी में ही ठहरे। इसके कुछ समय बाद गर्भिणी रानी को छोड़कर राजा मर गये। इस अवधि में राजा के पुत्र का जन्म होकर और उसके प्राप्त वयस्क होने तक नरहरितीर्थ वहीं रहकर राजकाज संभालते रहे। उसके बाद राज्य को उसके उत्तराधिकारी के हाथ में सौंपकर अपने गुरु मध्वाचार्य की इच्छा के अनुसार राजा के खजाने में सुरक्षित राम-सीता की मूल-मूर्तियों को राजा से प्राप्त करके उन्हें गुरु को समर्पित किया—ऐसी प्रतीति है। उस समय के कुछ शिलालेख भी दिखाई पड़ते हैं जबकि ये राज प्रतिनिधि बनकर राज्य चलाते थे।

यह नरहरितीर्थ संस्कृत के उद्दाम पंडित थे। इन्होंने कन्नड में हरिकीर्तन रचकर उनके द्वारा जनता में द्वैतमत का प्रचार करते हुए अनेक क्षेत्रों की यात्रा की। ऐसी प्रतीति होने पर भी कि इन्होंने बहुत से कीर्तन रचे, केवल दो कीर्तन अब उपलब्ध हैं। इनमें प्रथम—हरिदास कीर्तनों में प्रथम— कीर्तन में नरहरितीर्थ ने भगवान् से अपनी गलतियों का निवेदन किया है। इस कीर्तन के अनेक पाठ भेद मिलते हैं। इसमें अंकित नाम भिन्न-भिन्न हैं। कहीं नरहरि, तो कहीं "रघुपति" और कहीं

"श्री रघुपति"—नाम हैं । इससे इनके "अंकित" के संबंध में संदेह उत्पन्न हो जाता है । इनके इस प्रथम कीर्तन के अंतिम अंश में "श्री श्री श्री रघुपति" का नाम है; ऐसा लगता है कि यही उनका "अंकित" होगा । उनके दूसरे कीर्तन के अंतिम अंश में "नर-हरि" का अंकित है । इससे यह भी लगता कि इनका अंकित "नरहरि" होगा । इद-मित्थं कहकर निर्णय करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं । इनके इन दोनों कीर्तन पदों को देखने से ऐसा लगता है कि ये अच्छे कवि हैं । परन्तु केवल इन दो पदों के ही आधार पर इनकी कृतित्व शक्ति को मापना ठीक नहीं मालूम होता ।

यह नरहरितीर्थ ई० सन् 1333 में थे—ऐसा मालूम पड़ता है । इनके बाद वेदांतपीठ की गद्दी पर बैठने वाले द्वैत वेदांत संबंधी ग्रंथों की रचना में और वादि-निग्रह कार्य में लगे । यह जरूरी था । इस कारण से एक सदी से भी अधिक समय तक दासपंथ का कार्यरंग स्थगित हुआ मालूम पड़ता है । इस कार्य को आगे बढ़ाते, कन्नड (प्राकृत) भाषा में धर्मोपदेश देने के इस काम को समर्पक ढंग से व्यवस्थित करने आदि का श्रेय पन्द्रहवीं सदी (ई० सन् 1450) की बीच में इस वेदांत पीठ पर बैठने वाले श्रीपादराज को ही मिलना चाहिए ।

श्रीपादराज : सर्वसंग परित्याग कर संन्यासी होने पर भी राजवैभव के साथ विजृंभित भाग्यवान् थे—यह महात्मा श्रीपादराज । कहा जाता है कि सवेरे बिस्तर से जागते हुए श्रीपादराज का सिर्फ नाम स्मरण करे तो उस दिन मिष्ठान भोजन मिलता है । ऐसे भाग्यवान् का जन्म निपट दारिद्रय में हुआ । बेंगलूर जिले में अब्बर नामक एक गाँव है । इस गाँव में शेषगिरि-गिरियम्मा नामक एक गरीब दंपति रहते थे । उनका इकलौता बेटा था लक्ष्मीनारायण । लड़का बड़ा होशियार और होनहार था । परन्तु गरीब पिता शेषगिरि ने बेटे को गाय चराने के काम में लगाया था । अचा-नक एक बार यह लड़का स्वर्णतीर्थ की नजर में पड़ा । लड़के को वे श्रीरंगम् ले गये । अपने मठ में रखकर बालक को शिक्षा दी । लड़का महान् पण्डित बना । स्वामी स्वर्णतीर्थ के वृन्दावनस्थ (समाधि) होने के बाद लक्ष्मीनारायण मुनि के नाम से मठाधि-पति बने । उम्र में छोटे होने पर भी विद्या-विनय संपन्न थे । इसलिए उत्तरादिमठ के उन दिनों के पीठाधिपति महाज्ञानी रघुनाथ तीर्थ महाराज ने इस बाल संन्यासी की भूरि-भूरि प्रशंसा की । उन्होंने कहा "यदि हम श्रीपाद हैं तो तुम श्रीपादराज हो ।" उस दिन से इस लक्ष्मीनारायण मुनि "श्रीपादराज" के नाम मे प्रसिद्ध हुए । यह मुळबागल मठ के पद्मनाभतीर्थ महाराज के मठ के मठाधिपति भी हुए । उस मठ में शिक्षण केन्द्र की व्यवस्था करके संस्कृत के प्रौढ़ विद्याभ्यास के लिए आवश्यक अच्छा इंतजाम भी किया । उन दिनों साळुव नरसिंह विजयनगर के राजा थे । उन्हों तिरुपति के पुजारी लोगों को उनके अत्याचारों के कारण समूल नाश करवाया । इस पाप के प्रायश्चित्त करने के उद्देश्य से राजा ने श्रीपादराज की शरण ली । तब श्रीपादराज ने राजा से शांति करवायी । इससे राजा खुश हुए और श्रीपादराज को सिंहासन पर बिठाकर कनकाभिषेक किया । इसके बाद श्रीपादराज ने तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा की और कई करामात करके दिखाये । इससे वे देवांश संभूत माने जाने लगे । इन्होंने "वाग्वज्र" आदि संस्कृत प्रौढ़ ग्रंथ तथा "रंग विठल" के अंकित से अनेक स्तोत्र रचे । कहा जाता है कि यह ई० सन् 1486 में वृन्दावनस्थ (समाधिस्थ) हुए । मुळबागल

में स्थित इनके बृन्दावन की पूजा-अर्चना आज भी हो रही है; और प्रतिवर्ष इनके नाम से रथोत्सव (मेला) होता है।

दासकूट के इतिहास में श्रीपादराय का नाम चिरस्मरणीय है। ब्राह्मणों के मठों में कन्नड में बोलना ही अब्रह्मण्य माने जाने वाले उन दिनों से मठाधिपति बने रहकर श्रीपादराज ने कन्नड में भगवत्-स्तुति के गीतों (कीर्तन) की रचना ही नहीं की बल्कि पूजा के समय में उन्हें भगवान् के सामने गाने की भी परिपाटी चलायी। उन्हीं के द्वारा रचित "भ्रमर गीत, वेणुगीत, गोपीगीत"—इन्हें हरिदास वेद-पारायण जैसे इनको गाया करते थे। यह श्रीपादराज बहुत समय तक श्रीरंग में रहे; वहाँ के तमिल् भाषी भक्त वैष्णव प्रबंधों को तामिल भाषा में ही गाया करते थे। इसे सुन-सुनकर श्रीपादराज में मातृभाषा प्रेम जाग्रत हुआ होगा। इन्होंने कन्नड के भक्ति गीतों (कीर्तनों) को आध्यात्मिक तत्त्वों के प्रतिपादन का माध्यम बनाकर कन्नड भाषा की प्रतिष्ठा बढ़ायी; इतना ही नहीं इन गीतों के द्वैत-मत तत्त्वों को आम जनता में प्रचार कर सकने वाले हरिदासों की एक टोली ही तैयार की। संस्कृत भाषा के भण्डार से वेदांतज्ञान को कन्नड भाषा के सांचे में ढालकर नर्तन और संगीत के साथ मेल बिठा-कर भाषा और साहित्य की श्रीवृद्धि की। इनके समय में भगवत्-स्तुति के इन गीतों को गाते हुए नाचने की परम्परा ही चली। भगवान् की सन्निधि में नर्तन सेवा का समर्पण करने के ही विचार से अलग से कृतियों का ही निर्माण, इन्होंने किया।

श्रीपादराज का "अंकित" रंगविठल है। कावेरी नदी के तीर पर का रंगनाथ और पंढरपुर का विट्ठल - इन दोनों को संयुक्त करके अपनी कृतियों की "रंगविठल" के अंकित से इन्होंने रचना की। इनमें बहुत ऊंचे दर्जे की कविता शक्ति तो नहीं है, फिर भी भक्ति एवं वैराग्य के प्रतिपादन में - उसमें भी भागवत के दशमस्कंधांतर्गत श्रीकृष्ण की बाललीलाओं के निरूपण में उनका आध्यात्मानुराग महान् है। "मुक्ति चाहने वाले के लिए भक्ति, विरक्ति और शक्ति तीनों चाहिए।"—यह उनका (श्रीपादराज का) आध्यात्मिक आदर्श है। जाप-तपस्या आदि समस्त कर्म भगवदर्पण होने से हर ही सार्थक बनते हैं। समस्त इंद्रियों को भगवत्कैंकर्य में ही तल्लीन होना चाहिए। यही स्थिति हरिदास की है इस स्थिति को प्राप्त करने पर ही भवसागर से उद्धार सध्य हो सकता है। इस रहस्य को जानने वाले श्रीपादराज भगवान् से प्रार्थना करते हैं -"हे भगवान् श्रीहरि ! मैं तुम से और कुछ नहीं माँगूंगा, तुम मेरे हृदय में सदा बसे रहो। मेरा सिर तुम्हारे चरण-कमलों में सदा नत हो रहे; मेरी आँखें हमेशा तुम्हारे ही दर्शन करती रहे; कान तुम्हारा ही कीर्तन सुनते रहे; नाक तुम्हारे निर्माल्य पुष्प का ही आघ्राण करें; हे कृष्ण-यही मैं चाहता हूँ।"—इससे स्पष्ट है कि वे क्या इच्छा करते हैं। अपनी बुद्धि कभी-कभी कुमार्ग की ओर जाती है; मगर इतने से ही भगवान् दूर करें क्यों ? वह भगवान् से पूछते हैं—"बच्चे पागल हो या पतित, जन्म देने वाले माता-पिता उस बच्चे को जमीन पर फेंक देंगे ? हे गोविंद कहो तो ?" यह सवाल भी कैसा है। प्रश्न कितना मार्मिक है; और कहते हैं कि यदि पतित को ऊपर उठा न सके तो जन्म ही क्यों दिया ?" उनका यह प्रश्न कितना हृदय स्पर्शी है। भगवान् का साक्षात्कार जब नहीं हुआ तो उनके हृदय की वेदना सीमातीत हो जाती है—तब कहते हैं—"हे भगवन् कृष्ण ! क्या मैं आग में कूदकर अपने को भस्म कर

लूँ या किसी ऊँचे पहाड़ पर से लुढ़क कर प्राणत्याग कर लूँ ?—जहर पी लूँ या आसमान से सिर टकरा लूँ अथवा गले में फांसी डालकर मरूँ ? हे करुणानिधि ! हे भगवन् श्रीहरि ! अगर तुम बाँह पकड़कर उद्धार न करोगे तो इस दुनियाँ में उद्धार करने वाले और कौन हैं ?"—"अन्यथा शरणं नास्थि, त्वमेव शरणं मम"— की दशा में स्थिति भक्त हृदय का यह दर्द कितना मर्मस्पर्शी है।

श्रीपादराज की कृतियाँ लोगों के नैतिक जीवन को प्रशस्त करके उनमें धार्मिक केतना को जागृत करने में समर्थ हैं। इनके शिष्य व्यासराय ने इनके बारे में कहा है कि यह महात्मा "शेपनाग-सा मुनि" हैं और पुरन्दरदास के पुत्र मध्वपतिदास ने श्रीपादराज के विपय में कहा "श्रीपादराज साक्षात् ध्रुव का हो अवतार है। इनका कथन बहुत सही और सार्थक है।

व्यासराय : मैसूर जिले में बन्नूर नामक एक स्थान है। यहाँ बालण्ण—और मुमति अक्कव्व नामक दंपति रहते थे। ये बड़े सात्विक थे। श्री मध्वाचार्य के मूलपीठस्थ ब्रह्मण्यतीर्थ स्वामी जी के आशीर्वाद से इनके एक पुत्र हुआ। यह पहले ही निश्चित था कि जन्मते ही बच्चे को स्वामी ब्रह्मण्यतीर्थ को सौंप देना चाहिए। पीछे चलकर यति बनने वाले इस पुत्र का नाम यतिराज ही रखा गया। भूस्पर्श से पूर्व ही बच्चे को माता-पिता के पास से स्वामी ब्रह्मण्यतीर्थ अपने साथ ले गये और बच्चे का पालन-पोषण वह दूध पिलाकर किया जो अपने पूजामूर्ति श्री रामचन्द्र को अभिषिक्त होता था। अर्थात् अभिषिक्त दूध (तीर्थ) से बच्चे का पालन-पोषण स्वामी जी ने किया। बच्चा जब पाँच वर्ष का हुआ तो उन्हें यज्ञोपवीत संस्कार किया और सातवें वर्ष की आयु में उन्हें संन्यास दिया और "व्यासराय" के नाम से अभिहित किया। व्यासराय श्रीपादराय जी के पास शिक्षा प्राप्त करके स्वयं गुरु से भी बड़े पंडित बने। ब्रह्मण्यतीर्थ स्वामी के समाधिस्थ होने के पश्चात् इन्होंने तीर्थयात्रा करते हुए कांची आदि पुण्यक्षेत्रों में रहने वाले पंडितों को शास्त्रार्थ में जीतकर द्वैतमत का प्रचार किया और व्यासराय मठ के मठाधीश बने। विजयनगर के राजा साळुव नरसिंह ने श्री पादराज स्वामी जी से राजगुरु बनने की प्रार्थना की तो स्वामी जी ने स्वीकार नहीं किया और बदले में व्यासराय को यह काम सौंपा। इसके पश्चात् यह व्यासराय स्वामी करीब साठ वर्ष तक—पाँच राजाओं के राज्यकाल में—विजयनगर साम्राज्य के राजगुरु, संरक्षक, और लौकिक-पारलौकिक दोनों बातों में मार्गदर्शी बने रहे। एक बार कृष्णदेवराय को "कुहु" नामक एक दुर्योग प्राप्त हुआ जो राजा के लिए अमंगल-दायक था। इसका निवारण करने के लिए इन्हें कुछ काल तक विजयनगर के सिंहासन पर आरूढ़ होकर राज-काज का निर्वहण भी करना पड़ा। इनके राजत्वकाल में बहुत दान-धर्म भी किया गया मालूम होता है। जब ये राजगुरु बने इससे पूर्व ही राजा साळुव नरसिंह के क्रोध का फल बनकर तिरुपति के बालाजी के पुजारी समूल नष्ट कर दिये जा चुके थे। इसलिए स्वयं व्यासराय ने बालाजी की पूजा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और बारह साल तक इस काम को निभाया। यह नब्बे साल से भी अधिक जीवित रहे; हजारों मठ-मन्दिर और तालाब-पोखरे आदि का निर्माण करके लोगों के लौकिक जीवन के सहायक भी बने और व्यासत्रय के नाम से प्रसिद्ध "न्यायामृत, तर्क-तांडव, तात्पर्यचन्द्रिका" इन ग्रंथों की तथा अन्य अनेक ग्रंथों की संस्कृत में रचना की;

इस तरह लोगों के आध्यात्मिक जीवन को उत्तम बनाने के लिए भी सहायक बने रहे। इनका अंकित—"कृष्ण, श्रीकृष्ण अथवा सिरिकृष्ण" है।

व्यासराय के कीर्तनों में कुछ ललित, मनोहर, भावपूर्ण और रसभरे कीर्तन हैं। वात्सल्य भरे इस सुन्दर पद को देखिये। यह केवल भावमात्र से सुन्दर नहीं, व्यासराय का वात्सल्य, यहाँ प्रस्फुटित होकर मधुर शब्दों की सुभग सलिल धारा में बहकर गायक और श्रोता दोनों को प्लावित करता हुआ आत्म-विस्मृति के अज्ञात क्षेत्र में ले जाकर उस बाँसुरी के नाद में लीन कर देता है। वह पद यों है—इसे पल्लवि कहते हैं।

> कॉळलनूदुव चदुरनारॅ पेळम्मय्या ! (पल्लवि)
> माळिरंददि ना पॉळॅव करदि पिडिदु ॥धृ०॥

ये तीन "नुडि" कहाते हैं। प्रत्येक "नुडि" के बाद "पल्लवि" को दुहराते हैं।

> नादंदि तुंबितु गोवर्धन गिरि ।
> यादव कुलजन ऑरॅदितु खगकुल ॥
> साधिसि नोडॅलु कृष्णन ।
> ईगले साध्यवेने बृन्दावन दॉळु ।१।
> मेव मरॅतवु गोवुगळॅल्ल ।
> सावधानदि हरिदळु यमुना ॥
> आव कावुतलि गोवळरॅल्लर ।
> हावभावदलि बृन्दावनदलि ॥२॥
> सुररू सुरिदराकाशदि सुमगल ।
> परिदु पोगि नोडॅ बृन्दावनदॉळु ॥
> सारि सारि श्रीकृष्णनु ईगलॅ ।
> नुलगळ कायुव कदंबवनदॉळु ॥३॥

इस पद का भाव यों है—

"हे मैया ! नव विकसित कोंपल की तरह चमकने वाले मृदुल हाथों में बाँसुरी पकड़ कर बजाने वाले यह कौन है—कहो तो

1. मुरली नाद से गोवर्धन गिरि भर गयी। समस्त यदुवंशी लोग और खग-वृन्द नाद सुनकर जहाँ के तहाँ रह गये। सबके मन में उत्सुकता बढ़ी। गोकुल की गोपियाँ आपस में पूछने लगीं कि अभी इस मुरली बजाने वाले को बृन्दावन में पाना साध्य है ?
2. बाँसुरी की ध्वनि सुनते ही गैयों ने चरना छोड़ दिया, वे चरना भूल गयीं। यमुना ने चाल धीमी कर धीरे-धीरे बहना शुरू कर दिया। गैयों के चराने वाले ग्वाले मुरली नाद के अनुसार भावविभोर होकर नाचने लगे।
3. देवता लोग अन्तरिक्ष से पुष्पवृष्टि करने लगे। "चलो, दौड़ो, बृंदावन में देखो; गैयों को चरानेवाले उस कृष्ण को देखने के लिए चलो, जल्दी चलो वहाँ उस कंदब बन को।"

(यह भावार्थ उस गीत का अर्थ मात्र है। उपर्युक्त राग में इस गीत-साहित्य को गायक गावें तो श्रोता भाव विभोर होकर उसके पद-लालित्य एवं धारा का आनन्द अनुभव कर सकेंगे।)

अन्य हरिदासों की तरह व्यासराय भी यही उपदेश देते हैं कि संसार अनित्य है; इस संसार के दुःख दरद से पार पाने का एक एक ही रास्ता है और वह श्री हरि की करुणा है। एक निष्ठ भक्ति से श्री हरि की शरण में जाना ही एक मार्ग है। इन की कृतियों में रूपकों की विशेषता है। वह कहते हैं "संसार रूपी पिशाचिनी के हाथ से मुझे बचाओ, हे हरि ! कृपा करो। सप्तावरणों से वेष्टित देह यमदूतों के हाथ लगने से पहले उनसे इसे बचाओ"। और भगवान् हरि से प्रार्थना करते हैं—" "हे भगवान् ! सांसारिक माया से मेरा उद्धार करो। यह माया महादुष्ट राजा की तरह है, अभिमान उसके योग्य दुष्ट मंत्री है। इंद्रिय उस राजा के परिवार हैं जो इस माया रूपी राजा के अधीन मुझे फँसाती हैं, कामादि शत्रु मुझ पर आक्रमण करते हैं, इन शत्रुओं को दंड देकर मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो, हे भगवान् "सिरिकृष्ण (श्रीकृष्ण)।"—और आजिजी से गिड़गिड़ाते हुए उस मुरलीधर से मिन्नत करते हैं—"हे मुरलीधर ! हे मोहन ! तुम मेरे कानों में बाँसुरी बजाकर प्रेमसुधा बरसाओ और सांसारिक दुःख का निवारण कर ज्ञान-ज्योति की कोमल लता को विकसाओ, यह ज्ञानलता ऐसी फैले कि वह मुझे अपने में कस कर समा ले; मेरे मन में उस ज्योतिर्लता का प्रकाश फैले।" [यह व्यासराय के कुछ पदों का भाव है। मूल कन्नड के ये पद रूपक माला-से हैं। कहीं संसार को पिशाचिनी के रूपक बांधा है तो मुक्ति को कन्या बनाया तो, और कहीं सप्तावरण युक्त शरीर को सात-प्राकारों वाले किले के रूपक में बांधा तो माया को राजा बनाया, अभिमान (गर्व) को मन्त्री इंद्रियों को राज परिवार और काम क्रोधादि अरिषड्वर्ग को दुष्ट शत्रु बनाया। कहीं मुरली नाद को सुधावृष्टि तो ज्ञान को ज्योतिर्लता का रूपक दिया। —इस तरह इनके पदों में रूपकों की एक राशि ही मिलती है।]

संसार से तरने के लिए परमात्मा की कृपा चाहिए। वह परमात्मा भक्ताधीन है। इसलिए भक्तों की संगति आवश्यक है। भक्तों की संगति में रहने पर डर क्या ? "करि (हाथी) का डर केसरी (सिंह) के निवास में रहनेवाले को क्यों होगा ?" ऐसे ही भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों के संग में रहनेवाले को पाप का भय क्यों लगेगा ? क्योंकि पाप रूपी अंधकार को निवारण करनेवाले स्वयं भगवान् ही न है ?- यह व्यासराय का अटल विश्वास है। लौकिक हित साधने की दृष्टि से मानव स्तुति में निरत होकर उनके आश्रय में जाकर तलुवे चाटनेवालों को देख कर व्यासराय अत्यंत क्रोध से कहते हैं—"सुरधेनुविरलागि श्वानत पाल करेदू कुडिय बेडवो ! करितुरगवु इरलागि कंडुबंथ खर येरलिबेडवो।"—अर्थात् "कामधेनु के रहते कुत्ते का दूध दुह कर क्यों पीओगे ? हाथी-घोड़ों के रहते गधे पर क्यों सवारी करोगे ?"—इसे पढ़ते हैं तो हिन्दी भक्त कवि शिरोमणि सूरदास की यह पंक्ति "कामधेनु तजि छेरी कौन दुहवे" याद आती है। चखने के लिए अंबुजरस जब मौजूद है तो मधुकर को करील फल क्यों भाना चाहिए ? इस तरह की समानताएँ सूरदास और व्यासराय में हैं। समस्त मनोकामनाएँ भगवान् श्री हरि तभी पूर्ण करेंगे जबकि आराधक भक्त को

एकनिष्ठ होना चाहिए। बिना एकनिष्ठता के कृत कोई कर्म व्रत नियम आदि सब कुछ व्यर्थ ही हैं। इसलिए व्यासराय कहते हैं—"अमरेश श्रीकृष्ण को जो कर्म समर्पित न हो वह कर्म व्यभिचारिणी के गले के मंगलसूत्र जैसा है; अर्थात् एकनिष्ठा से हीन व्यभिचारिणी के व्रतानुष्ठान जैसा निष्फल है। रमापति श्री हरि की स्तुति से हीन संगीत गधे के रेंगने के समान है; प्रेम से हरिचरणों में साष्टांग-प्रणिपात न करनेवाला मनुष्य नहीं, पशु है।" व्यासराय की इन बातों में कटुता होने पर भी श्रोताओं के हृदयों पर गहरा असर पड़ता है। क्यों न हो, जो बात दिल से निकली हो उसकी असर सीधे दिल पर पड़ेगा ही।

श्री व्यासराय से व्यासपंथ और दासपंथ दोनों का महान् उपकार हुआ। आपने दोनों की महती सेवा की। ऐसा लगता है कि इस महापुरुष के कारण दासपंथ का सर्वतोमुखी विकास हुआ। वह राजगुरु थे, विद्यानगरी की राजगद्दी के अधिपति थे; अपने बुद्धिबल एवं स्थानबल अर्थात् अधिकार बल से धर्म-प्रचार कार्य में दिग्विजयी हुए। इससे भी बढ़कर काम इनके शिष्य वादिराज, विजयीन्द्र, पुरंदर, कनाक, वैकुंठ-दास, आदि आदि ने लोकजीवन में भक्ति का विकास करके आध्यात्मिक जागृति कर भक्ति और अध्यात्म को देश के कोने-कोने तक पहुंचाया। इस दास वाङ्मय के इतिहास में इन महाभक्त संतों में प्रत्येक का अपना स्थान है और प्रत्येक चिरस्मरणीय है। जिस तरह बारहवीं सदी में कल्याण वीरशैव वातावरण से भरापूरा होकर छलक रहा था, वैसे ही इस व्यासराय के समय में विजयनगर हरिनाम संकीर्तन से प्रतिध्वनित हो रहा था। शून्य सिंहासनारूढ़ प्रभुदेव के नेतृत्व में बसवण्ण, सिद्धराम, अक्कमहादेवी आदि शरण संतों ने अपने वचनामृत से लोकमानस को मंगलमय बनाया था। विद्या-सिंहासनीन होकर व्यासराय ने व्यासकूट और दासकूट दोनों के हृदय स्वरूप बनकर पुरंदरदास, कनकदास, वादिराज, वैकुंठदास आदि का नेतृत्व किया और इन लोगों ने हरिसंकीर्तानामृत से लोगों की मानस भूमि में आध्यत्मिक जीवन का बीज बोया और उसे अच्छी तरह प्रवर्धन किया। इस महापुरुष व्यासराज के वैराग्य की प्रशंसा सहस्र मुख आदि शेष ही कर सकता है—कहकर इनके गुरु श्रीपादराज ने की है। व्यासराय के शिष्य पुरंदरदास ने अपने गुरु की प्रशंसा "शेषावेश प्रह्लाद का अवतार" कहकर की है।

व्यासराय पंद्रहवीं सदी के मध्य से लेकर सोलहवीं सदी के मध्य भाग तक करीब नब्बे वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहकर वैदिक एवं लौकिक साम्राज्यों में असाधारण कीर्ति शाली बने और सार्थक जीवन बिताकर अमृत पुत्र हुए। इनका समय संसार के धार्मिक इतिहास में चिर स्मरणीय है। यह वही समय है जबकि चैतन्य, कबीर, तुलसीदास आदि संत भारत में धार्मिक जागृति का शंखवाद गुंजा रहे थे; और पाश्चात्य संसार में मार्टिन लूथर ईसाई मत का संशोधन कर कीर्ति-मान हुए थे। ऐसा लगता है कि उस समय समस्त संसार में धार्मिक जागृति का समां-सा बंध गया था।

वादिराज : दक्षिण कन्नड जिले में "हूविनकेरे" नामक एक गांव है। इस गांव में देवर रामभट्ट और गौरीदेवी नामक सात्विक ब्राह्मण दंपती रहते थे। इन्हीं का पुत्र था "भूवर"। उडपी के आठ मठों में एक स्वादी मठ है। उन दिनों इस मठ के

स्वामी थे वागीश तीर्थ। इन स्वामी वागीश तीर्थ ने इस बालक भूवर को अपने पास रखकर शिक्षा-दीक्षा दी। बचपन में ही संन्यास दीक्षा देकर "वादिराज" कहकर संन्यास दीक्षा के बाद आश्रम का नाम रखा। स्वामी वागीश तीर्थ के बृंदावनस्थ होने के पश्चात् यही "वादिराज" पीठाधिपति हुए। इनका प्रौढ़ विद्याभ्यास व्यासराय के पास हुआ। व्यासराय जैसे अद्वितीय गुरु के पास प्रौढ विद्याभ्यास करके ये महामेधावी और अद्वितीय पंडित बने। इनके पांडित्य और वाग्वैखरी से प्रभावान्वित होकर कृष्ण देवराय ने इन्हें "प्रसंगाभरणतीर्थ" विरुद से विभूषित किया था। इन्होंने भी व्यासराय के ही जैसे व्यासकूट और दासकूट दोनों की अपार सेवा की है। इन्होंने संस्कृत में कई ग्रंथों की रचना की है। इतना ही नहीं, कन्नड में "वैकुंठ वर्णन", "स्वप्नगद्य", "लक्ष्मी (मंगल) शोभाने" तथा "भारत तात्पर्य निर्णय टीका"—इन ग्रंथों की रचना की और अनेक कीर्तन (पद), मुळादि, उगाभोगों की भी रचना की है। (कीर्तन, मुळादि और उगाभोग इनके विषय में पहले समझाया गया है, देखें) इनके काव्य, कीर्तन आदि सभी में सार तत्त्व एक ही है—और वह है द्वैत मत तत्त्व निरूपण। इनकी कृति "वैकुंठवर्णन" का एक दूसरा नाम भी है "तत्त्वसारद सॊबगिन सोने"। (अर्थात् तत्त्व सार का सुन्दर फुहार)। यह सांगत्य (एक देशी छन्द) और पदों से युक्त चार संधि (अध्याय) वाला एक ग्रंथ है। ग्रंथारंभ में इस अपने ग्रंथ के विषय में वादिराज ने बताया है कि—"यह तत्त्वसार श्रुति-पुराण आदि के सारतत्त्व को लेकर साधारण जनता को सुगम रीति से बताने के लिए बनाया है"। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रंथ का विषय क्या। "स्वप्न गद्य" गद्य नहीं बल्कि पैंतालीस षट्पदियोंवाला एक पद्य-काव्य है। कहा जाता है कि भगवान् ने स्वयं स्वप्न में प्रत्यक्ष होकर वादिराज से ये पद्य कहलवाये इसलिए इसका नाम "स्वप्न गद्य" है। "लक्ष्मी (मंगल) शोभाने" एक सौ बारह पदों का एक छोटा ग्रंथ है। कहा जाता है कि स्वादी के राजा अरसंप्प-नायक का दामाद ज्वर से पीड़ित होकर मरा तो अपनी पुत्री के सुहाग की रक्षा करने की प्रार्थना वादिराज से की तो तब इस लक्ष्मी (मंगल) शोभाने "को गाकर मृतक को जिलाया था। इन पदों में "वधू वर की रक्षा करें"—ऐसी कामना की है। इस ग्रंथ में समुद्र मंथन के समय उत्पन्न लक्ष्मी से नारायण ने विवाह जो किया, उस कथा का वर्णन इसमें दिखता है। मध्वराज द्वारा संस्कृत में रचित "महाभारत तात्पर्य निर्णय" की कन्नड में लिखित टीका है यह "भारत तात्पर्य निर्णय टीका"।

वादिराज ने अपने उपास्यदेव "हयवदन" को अंकित करके अनेक कीर्तनों (पदों) की रचना की है। इन्होंने वहाँ की प्रादेशिक तुळु भाषा में पदों की रचना करके हरिजनोद्धार का मार्ग प्रशस्त किया कहा जाता है। इनके कन्नड कीर्तनों (पदों) में अत्यन्त प्रसिद्ध कीर्तन है "ऐश्वर्य गुण वर्णन"—। उन्ही के शब्दों को ज्यों का त्यों देकर उसका भाव नीचे दिया जाता है—

ध्रुव

"हणवे निन्नय गुणवेनितु वर्णिसलि !
हणविल्लदवनॊब्ब हॆणकिंत कडॆयय्या ॥प॥

नुडि

बेलेयागदनॆल्ल बॆलेयमाडिसुवि ।

ऍल्लवस्तुगळन्नु इद्दल्लि तरिसुवि ॥
कुलगेट्टवर सत्कुलकॆ सेरिसुवि ।
हॉलॆयनादरु तन्दु ऑळगॆ सेरिसुवि ॥१॥
अंगनॆयर संगतिय माडिसुवि ।
श्रृंगाराभरणंगळ बेगतरिसुवॆ ॥
मंगनॆंदरु अनंगनॆन्दॆनिसुवि ।
कंगळिल्ल दवनिगॆ मगळ कोडिसुवि ॥२॥
चरणक्कॆ बंदंथ दुरित बिडिसुवि ।
सर्वरिगॆ श्रेष्ठ नरन माडिसुवि ॥
अरियद शुंठन अरितवनॆनिसुवि ।
सिरि हयवदनन स्मरणॆ मरसुवि ॥३॥

इस पद में प्रयुक्त शब्द सरल अवश्य हैं, परन्तु नुकीले हैं। इनका भाव गंभीर होने के साथ हृदय पर गहरा असर करने वाला है। इस पद का भावार्थ यों है—

धृव या पल्लवी का अर्थ है

"हे धन ! तुम्हारे गुणों का वर्णन कहाँ तक करूँ ?
निर्धन मनुष्य निर्जीव सबसे भी गया बीता है।
अर्थात् धनहीन मनुष्य और मुर्दा बराबर है।

नुडि 1.

जिसकी कोई कीमत नहीं, बेकार है उसे कीमती बना दोगे, जहाँ तुम हो, वहीं सब चीजों को मंगवा लेते हो। अर्थात सब तरह की चीजें तुम्हारे पास अपने आप आ जाती हैं। पतित और कुलहीन व्यक्ति को पवित्र और सत्कुल प्रसूत बनाते हो; अधम नीच और अंत्यज तक को घर में जगह देते हो। (धनी क्या-क्या नहीं कर सकता ?)

नुडि 2.

अरे धन ! चुटकियों में औरतों की इज्जत लुटाता है; और उनका शील भंग आसानी से तू करा देता है। सजावट के आभूषणों को क्षण-मात्र में तू मंगा देता है। बंदर जैसे कुरूप को भी अनंग-सा सुन्दर बना देता है तू। तेरे प्रताप हो तो अंधे से भी बेटी का ब्याह हो जाता है। तेरा प्रताप ऐसा करा देता है।

नुडि 3.

पैरों में लगे बंधन को (कष्ट को) क्षणमात्र में तू दूर कर देता है। अरे धन ! तेरा प्रताप मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ बना देता है। तेरा प्रताप मूर्ख अज्ञानी निरक्षर को भी महाज्ञानी और उद्दाम पण्डित बना देता है। श्री हयवदन भगवान् का स्मरण तक तुम्हारा प्रभाव मनुष्य को भुला देता है। अर्थात तेरा ऐसा प्रताप है कि वह भगवान का स्मरण तक भुला देता है।"

(इस पद का भावार्थ प्रत्येक पद का अलग-अलग गद्यानुवाद किया गया है। इससे

स्पष्ट है कि धन क्या-क्या कराता है। यह कन्नड जनता में बहुत लोकप्रिय है।) यह गीत वादिराज की तर्कबुद्धि एवं कविता शक्ति का परिचायक है। वादिराज एक बहुत बड़े मेधावी तार्किक है। शास्त्रार्थ में वादियों को हराकर युक्तियुक्त तर्क से समझाने में ये बड़े समर्थ थे। इसलिए इनका नाम "वादिराज" अन्वर्थ भी है। इनके कीर्तनों (पदों में) में भी यही गुण लक्षित होता है। इनका साहित्य शास्त्र सहित्य है।

वादिराज की कीर्ति साहित्य क्षेत्र से अधिक धार्मिक क्षेत्र में अत्यन्त उज्ज्वल है। उडपी में दो महीनों व एक बार संपन्न होने वाले पर्यायोत्सव को दो वर्षों व एक एक बार संपन्न होने की व्यवस्था के ये ही जन्मदाता है। [श्री मन्मध्वाचार्य ने उडपी में श्रीकृष्ण की अर्चामूर्ति की स्थापना की। इस मूर्ति की पूजा स्वयं आचार्य जी ही करते थे। यह पूजा निरंतर चलती रहे - ऐसी व्यवस्था की। अपने आठ शिष्यों को वहीं उडपी में आठ मठ स्थापित करके उन्हें पीठाधिपति बनाया। दो महीने तक एक मठ के पीठाधिपति श्री आचार्य द्वारा स्थापित अर्चामूर्ति की पूजा करें– ऐसी व्यवस्था की। इस तरह से बारी-बारी से उस मूल अर्चामूर्ति की पूजा आठों मठों के आठों पीठाधिपतियों को—करने का अवकाश मिल जाता था। इस व्यवस्था को पर्यायोत्सव कहते हैं। आज भी यह पर्यायोत्सव संपन्न होता है। दो महीने के बदले अवधि को दो वर्ष बनाया है। दो वर्ष वाली व्यवस्था वादिराज ने की।]

दक्षिण भारत के कर्नाटकप्रांत में भारत प्रसिद्ध एक पुण्यक्षेत्र "धर्मस्थल" है। इस धर्मस्थल व मंजुनाथेश्वर भगवान् की स्थापना इन्हीं वादिराज ने की।" "कदिरें" नामक स्थान से इस मंजुनाथ भगवान् को लाकर धर्मस्थल में प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन्हीं को है। स्वादी संस्थान के राजगुरु बने रहकर स्वादी के राजा से मठ की सेवा के लिए आवश्यक धन आदि की अच्छी व्यवस्था करायी थी। ये करीब एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहे और चौदह वर्ष में एक बार क्रम से संपन्न होने वाले पर्यायोत्सव को आपने चार बार संपन्न किया। पर्यायोत्सव के दो वर्ष की अवधि के पश्चात् फिर से पर्यायोत्सव के आने तक बीच के चौदह वर्षों की अवधि को द्वैतमत के प्रचार करने में बिताया करते थे। इस तरह द्वैत मत का खूब प्रचार किया। आज भी द्वैत-मतावलंबी यह विश्वास करते है कि ये ही भावी वायुदेव हैं।

पुरन्दरदास : (ई० सन् 1484-1564)

वचनकारों में जैसे बसवण्णा अग्रगण्य हैं, वैसे ही हरिदासों में पुरंदरदास अग्रगण्य हैं। शून्य सिंहासनासीन सर्वज्ञमूर्ति प्रभुदेव ने बसवण्णा के विषय में कहा— निर्भ्रान्त और निश्छल एवं दृढ़भक्त, अकेले बसवण्णा ही हैं जो गुहेश्वर लिंग (भगवान् शिवजी) के लिए प्रीतिभाजन है।"—यों कहकर प्रभुदेव ने बसवण्णा की प्रशंसा की। विद्यासिंहासनासीन परमपूज्य व्यासराय ने पुरन्दरदास के विषय में यह कहकर "दासों में सर्वश्रेष्ठ यदि कोई है तो वह पुरन्दरदास है।"—उनकी (पुरन्दरदास की) भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यदि बसवण्णा वृषभमुख का अवतार माने जाते हैं तो पुरन्दरदास नारद का अवतार माने जाते हैं। धर्मोपदेश देने में भी दोनों बराबर माने जाते हैं। इस दृष्टि में दोनों अद्वितीय हैं। विष" निरूपण, जीवन के अनुभव, भक्ति निर्भरता, लोकानुकंपन इन बातों में से दोनों ... न-धर्मी हैं; इतना ही नहीं दोनों के जीवन की

घटनाओं में एक असाधारणता दिखाई देती हैं। अत्यन्त श्रेष्ठ कहलाने वाले ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर बसवण्णा ने अपने संपूर्ण जीवन को पतित एवं निम्न वर्ग के लोगों के उद्धार के लिए ही समर्पित किया। पुरन्दरदास ने आगर्भश्रीमंत (बहुत धनी और संपन्न परिवार) होकर जन्म लेने पर भी, अपनी सारी संपत्ति को घास के तिनके के बराबर मानकर त्याग दिया और भिक्षुक वृत्ति का अवलंबन कर दीन-दलितों की सेवा में आजीवन लगे रहकर अपने जीवन को सार्थक बनाया। ये दोनों महापुरुष अलौकिक शक्ति-सामर्थ्य के कारण लोकमानस में पूजनीय हुए।

कहा जाता है कि देवर्षि नारद ने अपने भक्ति सूत्रों को व्यावहारिक जीवन में समन्वित कर लोक-जीवन के सामने एक आदर्श उपस्थित करने के ख्याल से पुरंदर-गढ़ के एक महाधनी करोड़पति वरदधनायक नामक व्यक्ति के पुत्र होकर जन्म लिया और इनका नाम श्रीनिवास था। मानव होकर जन्म लेने के बाद मानव-सा व्यवहार करना तो सहज ही है। बालक श्रीनिवास की शिक्षा-दीक्षा की अच्छी व्यवस्था की गयी; लौकिक एवं वैदिक दोनों विद्याओं में निष्णात हुआ भी। इसके पश्चात् प्राप्त वयस्क होने पर सत्कुल प्रसूता सरस्वती नामक कन्या से श्रीनिवास का विवाह संपन्न हुआ। पिता की मृत्यु के बाद उस अपार धनराशि का मालिक बना। पैतृक धंधा जवाहरात का व्यापार था; इसी व्यापार में लगा। इस व्यापार में वह बहुत प्रसिद्ध हुआ। धीरे-धीरे उनकी ख्याति अपने सम सामयिक राजा-महाराजाओं तक पहुंची। इस तरह की प्रसिद्धि के साथ-साथ उनमें धन लोभ भी बढ़ने लगा। ऐसे परम लोभी को परमत्यागी बनने का एक मौका आया। एक दिन इस लोभी जौहरी श्रीनिवास के पास एक गरीब ब्राह्मण आया; अपने बेटे के उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) के लिए उस ब्राह्मण ने इस लोभी श्रीनिवास ने मदद माँगी। यह कंजूस व्यापारी आजकल कहते-कहते एक दो दिन नहीं, एक दो महीने नही, लगातार छै महीनों तक टालता सताता रहा। लगातार इस तरह भीख को सताने वाले इस गरीब ब्राह्मण से उकता-कर छै महीने बाद एक घिसा-पिटा सिक्का देकर उस भिखमंगे से पिंड छुड़ा लिया। वह गरीब ब्राह्मण घिसे सिक्के को हाथ में लेकर वहाँ से निकला और उस कंजूस की पत्नी सरस्वती देवी के पास गया; उनसे अपनी सारी राम कहानी सुनायी। बेचारी वह क्या करती? अपने ही घर में वह अस्वतंत्र थी। यहाँ तक कि वह अपनी इच्छा के अनुसार भोजन तक न बना सकती थी। इस दशा में इस माँगने वाले ब्राह्मण को वह क्या दे सकती थी? परन्तु यह ब्राह्मण भी कोई मामूली आदमी न था। उन्होंने अपनी राम कहानी इस ढंग से सुनायी कि उस देवी का दिल पिघल गया। ब्राह्मण ने उन्हें धर्मोपदेश दिया और बताया कि मैके वालों ने जो नाक का नथ (नासिकाभरण) दिया है उसे देने में कोई पाप नहीं लगेगा। क्योंकि वह पति का नहीं और उस पर उनका अधिकार नहीं। और कहा कि इस नथ के बेचने से जो धन प्राप्त होगा, वह उपनयन संस्कार के खर्चे के लिए पर्याप्त भी हो जाएगा। उस ब्राह्मण की इन बातों को सुनकर अत्यन्त दयाभिभूत होकर उस देवी ने नथ उतारकर (ब्राह्मण) को दे दी और कहा "श्रीकृष्णार्पणमस्तु।" ब्राह्मण उसे लेकर बिक्री करने के लिए बाजार गया और उसी श्रीनिवास की दुकान में पहुंचा। दूकानदार जौहरी श्रीनिवास नायक के हाथ नथ देकर कहा कि इस नथ का मूल्य जो वाजिब समझें दे दें। श्रीनिवास ने नथ

को पहचान लिया और उसे सील मोहर करके पेटी में बन्द कर रखा; अपने घर गया; पत्नी की नाक खाली थी; उसे डाँटा। तुरंत नथ लाकर दिखाने के लिए कहा। बेचारी, क्या करती ? वह पति के इस डाँट-डपट से थरथर काँपने लगी—कहा—अन्दर रखी है। फिर पति की आज्ञा हुई तुरन्त दिखाने की। वह असमंजस में पड़ी। पूजा घर में गयी। इस आफत से बचाने के लिए अपने भगवान् से प्रार्थना की; जहर भरे प्याले को लेकर भगवान् को प्रणाम कर पीने को थी, इतने में नथ उस जहर के प्याले में दिखायी पड़ी। भगवान् को धन्यवाद देकर उस नथ लाकर पतिदेव के हाथ में दे। इसे देखकर वह भौंचक्का रह गया। घर से वह दूकान की तरफ भागा। शील-मुहर बन्द पेटी को खोला, देखा तो नथ वहाँ नहीं थी। और नथ को लाने वाला वह ब्राह्मण भी लापता हो गया था। वह ब्राह्मण विट्ठल मन्दिर की तरफ गया और वहीं पता नहीं कहाँ विलीन हो गया ! अब आगे क्या करें था ? श्रीनिवास दूकान से घर आया और पत्नी से पूछा—वास्तविक स्थिति क्या है ? वह ब्राह्मण कौन थां ? कहां से आया औह यहाँ आकर क्या कहा ?—आदि आदि। पतिदेव की इस कातरता को देखकर पत्नी ने वस्तुस्थिति से परिचय कराया। चितामग्न श्रीनिवास नायक को लगा कि यह सब दैवलीला है। उन्होंने समझा कि साक्षात् विट्ठल भगवान् ने ही ब्राह्मण का रूप धारण कर प्रत्यक्ष दर्शन दिया। तब उन्हें ज्ञानोदय हुआ। वह विरागी बने। अपनी सारी संपत्ति को भगवदर्पित तुलसीदलयुक्त जलधारा के साथ दान कर दिया। ताल-तंबूरा हाथ में लेकर पत्नी तथा बच्चों के साथ हंपी की तरफ रवाना हुआ। उस समय उनके मुँह से अनायास ही कविता निस्मृत हुई। वह यों है—

धृत

आदद्दॅल्ला ऑळितॅं आयितु।
माधवनंघ्रिय सेविसुवुदकॅं साधन संपत्तायितु ॥प॥

नुडि

दंडिगॅबॆत्त हिडियुवुदक्कॅं।
मंडॆबागि नाचुतलिद्दॅ।
हॆण्डति संतति साविरवागलि।
दंडिगॅ बॆत्त हिडिसिदळय्या ॥१॥

नुडि

गोपाळबुट्टि हिडियुवुदक्कॅं।
भूपनॆन्दु नाचुतलिद्दॅं।
आ पतिव्रतॆं व्रत अतिघनवागलि।
गोपाळ बुट्टि हिडिसिदळय्या ॥२॥

नुडि

तुलसी मालॆं हाकुवुदक्कॅं।
आलसनागि तिरुगुतलिद्दॅं।
जलज नयन श्रीपुरन्दर विठल।
तुलसी मालॆं हाकिसिद ॥३॥"—इस पद का भाव यों है—"जो कुछ होना था सो गया, जो हुआ सो अच्छे ही के लिए हुआ। भगवान् श्रीमाधव की चरण-

सेवा करने का साधन ही बना । "तराजू की डांडी पकड़ने से शरम लगती थी, लज्जा से सिर झुका जाता था (मेरी) पत्नी अपनी संतान के साथ सुखी होवें; उसी की प्रेरणा और भगवद्‌भक्ति के कारण भगवान् की सेवा करने के लिए मानसिक सिद्धता प्राप्त हुई ! धन्य है (मेरी) वह पत्नी जिसकी एकाग्र निष्ठा ने (मेरे) हृदय का परिवर्तन कर दिया । आज डांडी को हाथ में पकड़ते हुए आनन्द हो रहा है ॥1॥ भिक्षा पात्र हाथ में लेने के लिए शरम लगती थी; मैं समझता था कि मैं महाराजा हूँ । उस महा पतिव्रता का यह एक निष्ठ भक्ति-व्रत बढ़े, विकास पाकर फैले । उस (मेरी) पत्नी की उस निष्ठा, एकाग्रता, निश्चल भक्ति ने आज मेरे हाथ में यह भिक्षापात्र पकड़ा दिया; आज मुझे इस भिक्षापात्र को हाथ में लेते हुए लज्जा नहीं, हर्ष हो रहा है ॥2॥

तुलसी माला को भगवान् के चरण कमलों में समर्पित करते हुए आलस्य के कारण यहाँ वहाँ भटकता फिरता रहा । स्वयं भगवान् मेने रे हाथ से माला डलवा ली । अर्थात् मुझ में भगवान् के अनुग्रह से ऐसी प्रेरणा स्फुरित हुई कि अब मेरा सारा तन मन धन उन्हीं को अर्पित हो गया । इस समस्त त्याग, भक्ति एवं विभक्ति के पीछे मेरी उस महा पतिव्रता भगवद्‌भक्त पत्नी की प्रेरणा ही प्रमुख है ॥3॥"

इस तरह गाते-गाते पुरन्दरदास को शायद ऐसा लगा कि भगवान् श्रीकृष्ण उनकी आँखों के सामने (साक्षात्) प्रत्यक्ष खड़े हो । इस भावना से ही आकृष्ट होकर बाल बच्चे और पत्नी समेत हंपी पहुंचकर वहाँ स्थित व्यासराय स्वामी के द्वारा उन्होंने हरिदास की दीक्षा ली और उस दिन से बड़े आनन्द से भिक्षा माँगते हुए जीविका कमाकर बच्चों और पत्नी का पालन-पोषण करने लगे । तब से यही उनके जीवन का आदर्श बना कि—"साल माडबेड, सालदँनवेड, नाळॅगिडबेड" अर्थात्—" कर्ज मत लो, लालची मत बनो जितना मिले उतने से तृप्त हो ओ, जो मिले उसे कल के लिए बचाकर मत रखो ।" गुरु (व्यासराय) ने दीक्षा देकर उन्हें पुरन्दरदास नाम से अभिहित किया । तब से ये पुरन्दरदास के नाम से प्रसिद्ध हुए । इनके पद, कीर्तन आदि सबके लिए यही (पुरन्दर) नाम अंकित के रूप में प्रचलित है । [जिस तरह सूरदास के या तुलसी और कबीर के पदों में "सूर", "तुलसी" और "कबीर" के नाम अंकित हैं वैसे ही "पुरन्दर" इनके पदों में अंकित है ।] विजयनगर के राजा कृष्णराय ने इस पुरन्दरदास को अपने राजमहल में ले जाकर इन्हें सम्मानित किया । पुरन्दरदास तो उठते बैठते भगवान् का स्मरण करते और उसी में तल्लीन हो जाते । इस भगवत्-स्मरण से उन्हें ऐसी स्फूर्ति हमेशा जागृत रहती कि वे आशु कवि की तरह गीत बना-कर गाने लगते । जब राजा कृष्णराय ने अपने राजमहल में उन्हें बुलाकर गौरवान्वित किया तो तुरंत उन्होंने यह गीत बनाकर गाया—राजा के सामने उनके राजवैभव के विषय में यों गाना गाया—

"नम्म भाग्य दॉड्डदो ! निम्न भाग्य दॉड्डदो !
सुम्मनॅ इब्बरु कूडि ! साटिमाडि नोड्वा !"

इसका अर्थ यों है—"मेरा भाग्य बड़ा है या तुम्हारा भाग्य ! दोनों मिलकर एक बार अपने-अपने भाग्य को तौलकर देखें !" यों कहकर पुरन्दरदास ने इस बात का प्रतिपादन किया कि राजा के भोगजीवन से स्वयं अपने द्वारा स्वीकृत त्याग-जीवन ही श्रेष्ठ है । पुरन्दरदास की कीर्ति फैलने लगी । कुछ विद्वान् पुरन्दरदास की इस फैलने

वाली कीर्ति को देखकर उनसे जलने लगे और ऐसा प्रतीत होता है कि व्यासकूट के सामने दासकूट की हेठी करने लगे। और पुरन्दरदास के पदों की अवहेलना भी करने लगे। उन पण्डितों के उस तरह के व्यवहार को देखकर व्यासराय ने उनका खंडन किया और पुरन्दरदास के उन कीर्तनों को "पुरन्दरोपनिषद्" कहकर उन्हें गौरवान्वित किया। उन हरिदासों के कीर्तन पदों से पता चलता है कि पुरन्दरदास ने कुछ करामात भी कर दिखाये थे। ऐसे करामातों में एक यह कि एक बार विट्ठल मन्दिर में मूर्ति के सामने का पर्दा अचानक आग लगने से जलने लगा। पुरन्दरदास जहाँ बैंठे थे वहीं अपने दोनों हाथ मलने लगे और उधर परदे की आग बुझ गयी। इसी तरह शरणसंत हरिहर ने भी अपने दोनों हाथ मलकर जहाँ बैंठे थे वहीं से विरूपाक्ष महादेव के सामने के परदे की आग बुझायी थी। — इस घटना का स्मरण हो आता है। पुरन्दरदास ने सारे भारत का भ्रमण कर समस्त तीर्थों का दर्शन किया—ऐसा लगता है। इस तरह भ्रमण करते हुए तरह-तरह के लोगों के संपर्क में आये; भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लोगों के जीवन वैविध्य को देखा और इस तरह उनका लोकानुभव पक्का हुआ भी होगा। उनके कीर्तनों में विभिन्न क्षेत्रों और उनकी महिमा का वर्णन प्रभूतमात्रा में दृष्टिगोचर होता है। अन्य सभी हरिदासों से अधिक जनजीवन का गहरा अनुभव इनका था—यह स्पष्टतया उनके सैकड़ों कीर्तनों से मालूम हो जाता है। इतना ही नहीं, इन्होंने अपने उन अनुभवों को अन्य दासपंथी दासों से भी अधिक प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। समाज के लोपदोषों को पहचान कर उसके उद्धार का अच्छा मार्ग-दर्शन भी किया है। एक कनकदास को छोड़कर इनने प्रभावशाली ढंग से, भावपूर्ण एवं भक्ति भरित और रसस्पंदिनी पद रचकर गाने वाले इन दासपंथी दासों में अकेले पुरन्दरदास ही हैं। इस विषय में इनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। व्यासराय ने पुरन्दरदास के विषय में जो कहा —"दासों में श्रेष्ठ पुरन्दरदास है" यह बहुत ही सार्थक है।

सारे हरिदास बृंद ही हरि सर्वोत्तमत्व की स्थापना करने की ही दृष्टि से अपनी समस्त शक्तियों का विनियोग किया। पुरंदरदास ने भी वही काम किया। परंतु पूरंदरदास के कहने का ढंग ही निराला है। वह ताल ठोंक कर कहते हैं—

> "हॉडि नगारि मेलें कैय। घड घडा हॉडि नगारी मेलॅ
> कैय ॥ प ॥ (ध्रुव)
> मृडबंधन पद बिडदें भजि पर। बिडिसि पॉरॅव
> जग दॉडॅयनॅ परनॅन्दु ॥ अनु पल्लवी ॥"—

अर्थात् - "नगाड़ा बजा बजा कर घोषणा करो कि मृडबंध (भगवान् शिव जिस की पूजा करते हैं) भगवान् हरि के चरण कमलों की अविच्छिन्न भक्ति हरि समर्पण बुद्धि से जो करें उसे, जगन्नियामक सिरजहार प्रभु सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर अवश्य उद्धार करेगा। यानी एकाग्र और निश्चल भक्ति आत्म समर्पण युक्त होने पर "अन्यथा शरणं नास्ति" की भावना से करें तो ऐसे भक्त का उद्धार भगवान् श्री हरि अवश्य करेगा।"—ऐसे अटल विश्वास के साथ जो भगवान् की शरण में जाय वह ऐहिक सांसारिक विषयों में निर्भीक होगा। भगवान् को ही सब कुछ मानकर उन्हीं की

भक्ति में मग्न हो जाता है। अपनी स्थिति में संतुष्ट है—पुरंदरदास। उन्हें कहीं कोई कमी का अनुभव नहीं होता। वह गर्व से कहते हैं—

"नान्याकॆ बडवनु ? नान्याकॆ परदेशि ?
श्रीनिधे हरियॆ नीनिरुवतनक ॥ प ॥ (ध्रु)
पुट्टिसिद ताय्तन्दॆ इष्ट मित्रनु नीने।
अष्टबन्धु सर्व बळग नीने।
पॆट्टिगॆयॊळगण अष्टाभरण नीने।
श्रेष्ठ मूर्ति कृष्ण नीनिरुवतनक ॥ 1 ॥
ऒडहुट्टिदव नीनॆ, ऒडलिग्हाकुव नीनॆ।
उडलु होदियलु वस्त्र कॊडुवव नीनॆ।
मडदि मक्कळनॆल्ल कडॆ हय्सुवव नीनॆ।
बिडदॆ सलहुव ऒडॆय नीनिरुवतनक ॥ 2 ॥
विद्यॆ हेळुव नीनॆ बुद्धिकलिसुव नीनॆ।
उद्धारकर्त मम स्वामि नीनॆ।
मुद्दु सिरि पुरंदर विठल निन्नडिमेलॆ।
बिद्दुकॊण्डिरुवॆनगॆ यातर भयवु ? ॥ 3 ॥"

भावार्थ यह कि—"मैं क्यों गरीब होऊँ और क्यों लावारिस कहाऊँ ? हे हरि ! हे श्रीनिधे ! जब तक तुम मेरे साथ हो तब तक मैं लावारिस और क्यों होऊँगा ?

1. "जन्म देने वाले माता-पिता तुम हो, आप्त मित्र तुम हो, समस्त बन्धु-बांधव तुम हो, पेटी के अन्दर सुरक्षित समस्त अमूल्य आभरण तुम हो, हे श्रेष्ठ मूर्ति भगवन् जब तुम हो तुम हो तो तुम ही मेरे सर्वस्व हो। ?"

2. "भाई तुम हो, खिलाने वाले तुम हो, पहने-ओढ़ने के लिए वस्त्र देनेवाले तुम हो, पत्नी और बाल बच्चों का उद्धार करनेवाले तुम हो, हमेशा संरक्षण करने वाले मालिक तुम हो, जब तक तुम हो तब तक मैं गरीब और दीन व अनाथ क्यों कहाऊँ ?

विद्या (ज्ञान) सिखानेवाले तुम हो, अक्ल की बात बतानेवाले तुम हो, मेरे उद्धार करनेवाले और मेरे देव तुम ही मेरे सब कुछ हो। हे प्यारे श्री पुरंदर विठल भगवान् ! सदा सर्वदा तेरे चरणों में पड़े रहनेवाले मुझे भय काहेका ? ठीक ही तो है !

3. पूर्ण रूप से शरणागत होने के पश्चात् कोई डर नहीं हो सकता। परन्तु उस स्थिति तक पहुँचना हो तो ऐहिक सुखों के प्रति विरक्ति का होना आवश्यक है। साधारणतः मानव मन को आकर्षित करनेवाली चीजें तीन हैं—कनक, कामिनी और भू-स्वामित्व (इसे कन्नड में क्रमशः हॊन्नु, हॆण्णु, मण्णु—कहते हैं)। इन तीनों पर की ममता और मोह ही मानव के सभी दोषों और पापों का कारण है, मानव के उद्धार या उनकी मुक्ति के मार्ग में बाधक बन कर खड़े हैं। पुरंदरदास इन तीनों की निस्सारता का स्पष्टीकरण करते हुए अपने आप अपने मन से सवाल करते हैं—"अरे मन ! यह तो बताओ कि इन तीनों में कौन तुम्हारा हितू है ? धरती है ? तरुणी है ? या ऐश्वर्य ?" यदि तुम तरुणी को चाहोगे तो उससे तुम्हें जो मिलेगा वह

यह है—"दूसरों के घर में जनमी स्त्री को लाकर अपने घर की मालकिन बना कर रखा और अर्धांगिनी बनाकर अपना प्यार उनमें उंडेल दिया, अन्त समय में वही अर्धांगिनी मृत्यु घश होने पर अपनी आँखों से देखने को डरती है।"

'अब रही भू-स्वामित्व—जायदाद-राज्य आदि—इनकी दशा देखो—"यह तो सैंकड़ों ने इसका उपभोग पहले किया और अपना कहकर शिलालेखों में लिखवा कर अपने स्वामित्व की घोषणा की। सुन्दर महल बनवाया, किले बनवाये, उसमें सुख से जिये। मरने पर उसे निकाल बाहर फेंकते हैं।"

अब रही धन—"उद्योग-धंधा करो, व्यवहार चलाओ, राजा की सेवा करो, मालिक की गुलामी करो, अन्त में नीचता करो, धोखा दो, चोरी करो, दूसरों के दुखों की परवाह मत करो, येन केन धन जुटाओ और मरते समय यह धन पीछे आएगा नहीं, छोड़ कर जाना ही तो है?"—यदि लोग इस परम सत्य को समझ कर व्यवहार करेंगे तो धन कनक वस्तुवाहिनी कामिनी से होनेवाली अनर्थ परम्परा से बचेंगे और संसार में अनर्थ कम होंगे। इन तीनों का सम्बन्ध केवल शारीरिक है। यह देह अस्थिर है। देहपतन के साथ इन सबका सम्बन्ध ही टूट जाएगा। इतना ही नहीं—जीवित रहते हुए भी इनकी चिन्ता बनी ही रहती है मिटती नहीं। हमेशा चिन्ता ही चिता है। इस चिन्ता से निश्चिन्त होना हो तो काम-क्रोधादि अरिषड्वर्ग को जीत कर विरक्त होना पड़ेगा। विषय सुखानुभव से अधिक दुखदायक उन पर मनुष्य की आसक्ति है। यह आसक्ति ही दुख का मूल है। विषयासक्ति जब तक मन से सम्पूर्ण रूप से निकल नहीं जाएगी, मिट नहीं जाएगी, तब तक भगवान् का स्मरण, कीर्तन, भक्ति यह सब निष्प्रयोजन है। "नीम के साथ गुड़ मिलाने पर नीम नीम है और गुड़ गुड़ है, साँप को दूध पिलाने से फल क्या होगा? जहर तो जाएगा नहीं?" इसी तरह विषय वासना में आसक्त रहकर बाह्याडंबर या दिखावे के लिए जप-तप आदि के ढकोसले से वह केवल पेट पालने का बहाना मात्र होगा; इन सबसे कोई फ़ायदा न होगा। इस तरह की वृत्ति को पुरंदरदास "उदर वैराग्य" कहते हैं। वे कहते हैं—

"उदर बैराग्य विदु नम्म,
पद्मनाभनल्लि लेश भकुतियिल्ला ॥ प ॥ (ध्रु.)
उदय कालदलॆद्दु गड़गड़ नडुगुत।
नदियॊळु मिंदॆवॆन्दु हिग्गुतलि।
मद मत्सर क्रोध ऒळगॆ तुंबिकॊण्डु।
बदियलिद्दवरिगाश्चर्य तोरुव ॥ 1 ॥ उदर वैराग्यविदु···
कंचुगारर बिडारदंददलि।
कंचु हित्ताळॆ प्रतिमॆ नॆरहि।
मिंचलॆनुत बहु ज्योतिगळनॆ हच्चि।
वंचनॆयलि धन पूजॆय माडुव ॥ 2 ॥ उदर वैराग्यविदु···
"करदलि जपमणि बायलि मंत्रवु।
अरिवॆय मुसुकु मोरॆगॆ हाकि।

परसतियळ गुण स्मरिसुत अनुदिन ।
परम वैराग्यशालियॅन्दॅ निसुव ।। 3 ।। उदर वैराग्योवदु…
बूटक तनदलिबहळ भकुति माडि ।
दिटनीत सरियारिल्लॅनिसि ।
नाटकद स्त्रीयंतॅ बयलु डंभव तोरि ।
ऊटद मार्गद ज्ञानविदल्लदॅ ।। 4 ।। उदर वैराग्यविदु…
नानु ऍम्बुदु बिट्टु ज्ञानिगळॉडनाडि ।
एनादरू हरिप्रेरणॅ यॅन्दु ।
ध्यानिसि मौनदि पुरंदर विठलन ।
काणदॅ माडिद कार्यगळॅल्लवु ।। 5 ।।— उदर वैराग्यविदु…

— कि—"विषय वासनाग्रस्त होकर जप तप पूजा पाठ ये सारे ढकोसले रचकर, इस आडंबरयुक्त व्यवहार से लोगों को ठगनेवाले यह दिखावे का वैराग्य केवल पेट-पालन करने का बहाना मात्र है; इस व्यवहार में भगवान् के प्रति भक्ति कहाँ ? यह पेट पालन का एक बहाना है, लोगों को ठगने का तरीका है । बड़े सवेरे उठकर थर-थर काँपते ठंड में नदी स्नान करके खुश हो गये तो क्या हुआ ? मोह मद मात्सर्य क्रोध-लोभ आदि जो भीतर भरा हुआ मैल है वह तो ज्यों का त्यों भरा हुआ है । इस मैल को भीतर छिपा कर बाहर का यह ढकोसला दिखा कर सारा दिखावा और बहाना केवल पेट भरने के तरीके मात्र हैं ।। 1 ।।

"ठठेरे की दूकान की तरह काँसे पीतल की मूर्तियाँ सजाकर बहुत-से दीप, चमकाने के लिए जला रखते हैं; भगवान को ही धोखा देकर बड़े आडंबर से ठाट से पूजा सम्पन्न करना क्या है ?—यह भी तो पेट-पालने का ही बहाना है ।। 2 ।।

"हाथ में सुमिरनी लेकर फिराते रहो, जीभ मंत्र पठन के बहाने मुँह में फिरती रहे, कपड़े से अपने को ढाँप कर जाप करने के बहाने पराई बहू-बेटियों के सौदर्य आदि गुणों का मन में चिंतन करते हुए रचा जाने वाला यह सारा ढोंग है ! ।। 3 ।।

"है तो बगुला-भगत, बहुत बड़े भक्त का अभिनय कर अपने को बहुत सच्चा भगत कहलवाकर ऐसा ढोंग रचे कि लोग समझे इनके बराबर बड़ा भक्त कोई नहीं; —यह सारा छल कपट क्यों ? नाटक में अभिनय करने वाली नटी का-सा ढोंगी बनना क्यों ?—यह सब केवल उदरंभरण की हो तो बहाने-बाजी है ? ।। 4 ।।

"अपनेपन में अहंभाव त्याग कर ज्ञानियों के सत्संग में रहकर, जो कुछ हो, सब हरिकृपः और उन्हीं की प्रेरणामान पुरंदर विठल का एकाग्र मन से मौनी होकर ध्यान किये बिना किया जानेवाला समस्त कार्य ढोंग है, और वह केवल पेट भरने के लिए ही किया जानेवाला ढकोसला है, और कुछ नहीं ।। 5 ।।."—

इस तरह बाह्यडंबर और ढोंग करनेवालों को देखकर पुरंदरदास कहते हैं कि "दुनिया में अपने को सबसे ज्यादा बुद्धिमान् समझकर ढोंग रचनेवालों को देख मुझे हँसी आती है ।" इस विषय में उनके पद सामाजिक अधः पतन पर विशेष प्रकाश डालनेवाले प्रकाशस्तंभ जैसे हैं । हमारे समाज में प्राचीनकाल से आज तक जाति-कुल और पवित्रता-अपवित्रता के विषय में प्रचलित अर्थहीन आचार-विचारों की रूढ़ि

परम्परा जो है उसके प्रति पुरंदरदास की दृष्टि उदार है। उनका विचार है कि मानव की उच्चता-नीचता जन्म से नहीं, उनके गुण और कर्म से पहचानी जाती है। इसलिए वह सवाल करते हैं—अछूत गाँव के बाहर है? क्या वह गाँव के अन्दर नहीं?— और इस—सवाल का उत्तर भी स्वयं देते हैं; किस किस तरह के व्यक्ति नीच और अछूत कहलायेंगे—इसकी लंबी सूची ही तैयार करते हैं। बताते हैं—"यह या वह अस्पृश्य नहीं, अस्पृश्यों के लिए बने गाँव के बाहर के अड्डों में (हरिजन कालोनी) वे अस्पृश्य नहीं? तो हैं कहाँ? पत्नी की बातों में आकर माता-पिता की निंदा करने वाले उन जन्मदाओं के प्रति निष्ठुर वचन कहनेवाले अस्पृश्य और चांडाल है। संतानवती होने के बाद वार्धक्य की दहलीज पर पहुँचकर पतिद्वेष करनेवाली स्त्री चांडाली है। इस तरह चांडाल—चांडालियों की एक लंबी सूची ही प्रस्तुत करते हैं— पुरंदरदास। (मडि) पवित्रता के बारे में कहते हैं—"छूत-छात की भावना रखकर खाली उछल कूद करने फिरने से कोई पवित्र नहीं होता। मल-मूत्र से शरीर भरा पड़ा है और जनन-मरण के अशौच के बीच यह शरीर पड़ा है; इस बात से छूटे बिना कावेरी में डुबकी लगाने मात्र से कोई पवित्र हो जाते हैं? चमड़ा धोने से कर्म धुल जाता है? इस कर्म को धोने के रहस्य को जाने बिना खाली बाहरी मैल धोने से कहीं कोई पवित्र बनता है? काम-क्रोध आदि को पेट में भरकर पानी में डुबकी लगाने से कोई शुद्ध बन जाता है? सिरजनहार प्रभु का सतत ध्यान किये बगैर पवित्रता-शुद्धता कहाँ से और कैसे आयेगी? काम क्रोध आदि से दूर होकर मन वचन कार्य कर्म से परिशुद्ध रहकर परम प्रभु का सतत ध्यान करना ही पवित्रता का एकमात्र लक्षण है। ऐसे रहना ही पवित्रता है। स्नान का अर्थ केवल लोटे में पानी भरकर सिर पर उंडेलना नहीं, अहंकार को छोड़कर ज्ञान जल से स्नान करना ही स्नान है।—यह पुरंदरदास का उपदेश है।

पुरंदरदास की कृतियों में कई एक ऐसी हैं जिन के पीछे छिपी एक सकारण और विस्तृत विचारधारा है। इन कृतियों को पढ़कर उस रचना का उद्देश्य आसानी से समझा जा सकता है। कृति के पीछे के भावों का अंदाज लगाना कोई कठिन बात नहीं। मसलन उनकी एक कृति की यह पंक्ति देखिये :—"रागि तंदीरा, भिक्षकें रागी तंदीरा?"—अर्थात्—"(रागि -बाजरे का-सा एक क्षुद्र जाति का धान्य जो देखने को राई-सा रहता है और जिसे पीसकर आटे को पकाकर गोला बनाते हैं नमक-मिर्च आदि के साथ खाते हैं) पुरंदरदास आशु कवि तो थे ही; हरि कीर्तन गाते हुए तानपुरा बजाते भिक्षा के लिए जाया करते; ऐसे प्रसंग में किसी परिवारी के घर के द्वार पर गाते बजाते पहुँचे। गृह स्वामिनी बस दास को भिक्षा में देने के लिए यही अनाज "रागी" ले आयी। दान में या भिक्षा में कोई वस्तु अगर दी जाये तो वह उत्तम और अच्छी वस्तु होनी चाहिए। इस संत महात्मा ने इस तरह के क्षुद्र धान्य को लाते हुए देखा और यह पद गाया। और उस गृहस्वामिनी को अच्छा सबक भी सिखाया। और आगे बढ़े। अपने घर की तरफ पुरंदरदास को आते हुए देखकर किसी और गृहस्वामिनी ने (अपने) घर का दरवाजा बंद किया; दास जी गा उठे—"कद व मुच्चिदळद को, गैय्याळि मूळि। कदव मुट्टिदळको, चिलक बल्लाडुति दें। ऑळगिद्द पापवॅल्ल हॉरगॅ होदीतेन्दु···" अर्थात्—"उस बेवकूफ औरत को तो देखो, मुझको आते

दूर से ही देखकर घर का दरवाजा बंद कर दिया, ऐसा बन्द किया मानो कहीं घर में संचित सारा पाप निकल न जाये" आदि आदि"- इस तरह उस दरवाजा बंद करनेवाले मालकिन को खूब अपमानित करके आगे बढ़े। बारह बजे का समय, दास जी भिक्षा के लिए सुबह से घूम रहे थे; भूख लग रही थी, थके-मांदे भी थे, तब एक घर में गये। वहाँ गृहस्वामिनी को अपनी किसी पड़ोसिन सखी के साथ खेल में मग्न देखा। घर आये अतिथि की ओर उसका ध्यान तक न गया, उसने उनकी तरफ़ आँख उठाकर देखा तक नहीं। इस स्थिति को देखकर गृहस्वामी का ध्यान अपने कर्तव्य की ओर आकर्षित करने के लिए यों गाना तब का तब रचकर गाने लगे—"ऊटक्कें बन्दॅवु नावु, निम्म आट पाटव बिट्टु अडुगे माडम्मा"— अर्थात्—"खेलना बन्द करो, हम अतिथि आये हैं, उठकर खाना-वाना बनाओ।" इस तरह कर्तव्य बोध कराते हैं। —इस तरह की कई कृतियाँ पुरंदरदास की कृतियों में मिलेंगी। उदाहरण के लिए एक-आध यहाँ उद्धृत है।

संसार निस्सार है। यह अशाश्वत है; फिर भी इस निस्सार और अशाश्वत संसार को त्याग कर भागने का उपदेश पुरंदर दास नही देते। वह कहते हैं—"इस बेकु, इद्दु जैसबेकु"— अर्थात् "इस अशाश्वत संसार में रहकर शाश्वत तत्त्व की खोज करनी चाहिए और निस्सार में से सारतत्व को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। यह संसार घृणित है, फिर भी इस संसार में रहकर उसके प्रति उदासीन होना चाहिए; इससे कुछ पाने की इच्छा कतई नहीं रखनी चाहिए।"—यह उनकी निश्चित धारणा है। सांसारिक दु:ख-सुख से विचलित नहीं होना चाहिए; इस भव-सागर में उठनेवाली तरंगों के आघातों को पत्थर-सा बन कर सहना चाहिए। यों संसार में रहो और कंसारि श्री कृष्ण भगवान् का सतत स्मरण करते सदा उनकी शरण में एकाग्र चित्त बने रहो।—यह उनका उपदेश है। विवेकी मनुष्य अपने मानव होकर जन्म लेने पर खुश होता है। जीव के उद्धार के लिए मानव जन्म से उत्तम दूसरा कोई साधन नहीं है। इस तत्थ्य को समझाते हुए कहते हैं - "मानव जन्म बहुत बड़ा है, इसे फिजूल करो मत; यों ही मत गँवाओ।"—इस बात का ठोक-पीटकर उपदेश देते हैं; और कहते हैं कि धर्म संगत रीति से व्यावहारिक जीवन यापन करते हुए एकाग्र भक्ति के साथ भगवान् का ध्यान करो; जो भी हो, भगवान् पर भरोसा रखो। यों अपने को संभाल कर आगे बढ़ो तो तुम्हारा उद्धार होगा। कदम कदम पर स्वयं अपनी परीक्षा आप लेते थे और अपनी गलतियों का सुधार करने का प्रयत्न करते। पुरंदर दास जब अपनी गल्तियों की ओर देखते तो उन अनगिनत गलतियों के भार से दबे जाते है तब भगवान् से प्रार्थना करते—"हे भगवान्! मैं महान् अपराधी हूँ, करोड़ों गलतियां मुझ में हैं, मैं किस मुंह से आपसे क्षमा याचना करूँ? संसार भर के लोभ-मोह-मद-मात्सर्य आदि सब कुछ लेकर अपने उद्धार के लिए प्रार्थना लेकर किस मुँह से मिन्नत करूँ; हे भगवन्! इस भवसागर से तारनेवाले तुम्हारे सिवा और कौन है? उद्धार के लिए मैं अन्यत्र कहाँ जाऊँ? हे भगवन्! तुम्हारी कृपा के बिना काम-क्रोध आदि शत्रुओं को मैं जीत कैसे सकूँगा? हे! भगवान्! मेरी इस दशा को देखकर भी क्या मुझ पर दया न करोगे? भगवन् बाँह गहो और इस पतित का उद्धार करो।—यों बड़े दैन्य से भगवान् से प्रार्थना करते हैं। भगवान् से प्रार्थना करना तो कर्तव्य है; फिर सब

कुछ भगवान् के हाथ में है।

पुरंदर दास ने अपनी कुछ कृतियों में श्री कृष्ण की बाललीलाओं का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। बाललीला के वर्णन में बालक श्री कृष्ण के प्रति जो वात्सल्य श्री पुरंदर दास ने दर्शाया है वह अत्यंत मधुर है। इन कृतियों पढ़ते समय भक्त सूरदास का स्मरण हो आता है। बाललीलाओं के वर्णन में ही नहीं अन्य बातों में भी कृष्णभक्त संतों में ये दोनों भक्त कवि बेजोड़ है और अपने अपने क्षेत्र में अद्वितीय है।

भक्त पुरंदर दास श्री हरि के भक्त थे ही; परंतु अन्य मत-संप्रदायों के प्रति अनुदार नहीं थे। हरि और हर में कोई भेद नहीं मानते थे।

पुरंदर दास ने अपनी कृतियों के द्वारा धर्म और दर्शन का ही उपदेश नहीं दिया, बल्कि लौकिक जीवन के प्रति आसक्न रह कर भगवांन् को पाने का मार्ग भी बताया कहने का मतलब यह कि भगवान् का भक्त बनने के लिए लौकिक जीवन से दूर भागने की आवश्यकता नहीं।

पुरंदर दास की कृतियाँ मधुर, वात्सल्य आदि भक्ति के सभी प्रकारों से युक्त होकर साहित्यिक वन गयी हैं, और काव्य रसानुभूति से हृदय को प्लावित करती हैं। इतना ही नहीं इनकी कृतियाँ सामाजिक जीवन को व्यवस्थित कर सुधार करने में भी बहुत शक्तिशाली हैं। इनकी कृतियों से कन्नड भाषा और साहित्य ही पुष्ट नहीं बने बल्कि ये संगीतमय कृतियाँ भक्तियुक्त होकर "कर्नाटक संगीत" के नाम से प्रख्यात प्रत्येक और विशिष्ट साहित्य के रूप में कर्नाटक को ही गौरवान्वित कर सकी हैं। कहा जाता है कि परम भक्त शिरोमणि त्यागराज की माता पुरंदर दास के पद गाया करती थी और माँ के द्वारा गाये जानेवाले इन पदों को सुन सुनकर त्यागराज ने प्रेरणा पायी थी; इसी प्रेरणा ने उन्हें कृति रचना में स्फूर्ति दी। दासपंथ के अनुयायियों की गणना करते समय सर्वप्रथम पुरंदर दास ही का नाम लिया जाता है; इसमें शक नहीं कि वही इन दासपंथियों में अग्रगण्य हैं।

कनकदास—यह कनकदास पुरंदर दास के समसामयिक संत हैं। पुरंदर दास और कनकदास ये दोनों दासपंथ के अश्विनी देवता हैं। दोनों व्यासरायस्वामी के शिष्य एवं सहाध्यायी थे। पुरंदर दास अपने हरिकीर्तन के कारण हरिदास के रूप में प्रसिद्ध हैं तो कनकदास केवल कीर्तन ही नहीं, "मोहन तरंगिणी", "रामधान्य चरित्र", "नल चरित्र", "हरि भक्ति सार" - इन काव्यों के भी रचयिता हैं। यह एक असाधारण कवि भी हैं। इनके कीर्तनों (पदों) में भगवान् की स्तुति से भी अधिक नीति का उपदेश है। विचार स्वातंत्र्य और कविता शक्ति—इन दोनों बातों में यह कनकदास दासपंथ के अन्य सभी भक्त संतों से अत्यंत प्रतिभावान् थे।

जिला धारवाड में "बाड" नामक एक गाँव है। वहाँ एक गडरिये का परिवार, बीरप्पा और बच्चम्मा नामक पति-पत्नी थे। तिरुपति के भगवान् बालाजी का भक्त था यह परिवार। भगवान् बालाजी के वरप्रसाद से इनका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। माता-पिता ने उनका नाम "तिम्मप्पा" रखा। यही उनका एकमात्र पुत्र था। यह बीरप्पा विजयनगर के राजाओं के अधीन एक छोटी रियासत का पाळेगार था। (पाळेगार उसे कहते हैं जो दस-बीस छोटे छोटे गाँवोंवाले एक कसबे का राजा होता होता है अथवा व्यवस्था करनेवाला मालिक होता है।) इसलिए बालक तिमम्पा को छुटपन से

ही क्षत्रियोचित विद्या जैसे—हथियार चलाना आदि आदि—में शिक्षा दी गयी। वह इस वीर विद्या में बड़ा निष्णात बना; महापराक्रमी भी कहलाया। व्यावहारिक कुशलता के कारण दक्ष राजा भी बना। एक बार भूशोधन के काम में लगे रहे तो उन्हें अपार धनराशि मिली। तब लोगों ने तिम्मप्पा को कनकप्पा—कनक नायक "कहकर पुकारना शुरू किया। यह अनवर्थ नाम ही धीरे-धीरे उनका अंकित नाम बन गया। उन्होंने उस प्राप्त निधि से कागिनेले नामक स्थान में आदि केशव भगवान् के लिए एक सुन्दर और भव्य मंदिर बनवाया और वहाँ भगवान् की प्रतिष्ठा करवायी। कालांतर में यह उत्तर कर्नाटक का "तिरुपति" क्षेत्र बन गया। यह कनक नायक अपने आराध्य देव आदि के शव भगवान् के बड़े भक्त थे और "कगिनेलेया-दि केशव" के अंकित से पदों की रचना करने लगे। अधिकार और ऐश्वर्य तथा कीर्ति और यौवन—इन सब से सम्पन्न कनक नायक की स्थिति अचानक ही दयनीय दशा को पहुँची। उनकी पत्नी का देहांत हो गया, और उसी समय युद्ध में भी पराजित हो गया। पत्नी वियोग से दुखी कनकप्प नायक को पराजय का धक्का भी लगा। इससे उन्हें अपने ही जीवन के प्रति उदासीनता और जुगुप्सा की भावना उत्पन्न हुई। युद्ध में पराजित होने के साथ जख्मी भी हो गया। इन सब कारणों से वह विरक्त होकर व्यासराय स्वामी के यहाँ जाकर उनका शिष्य बन गया। तब यह कनकनायक अपने गुरु के साथ भजन कीर्तन करते हुए उन्हीं के साथ रह गया। इस तरह वह दासकूट का सदस्य भी हो गया। धीरे-धीरे दासकूट के सदस्यों में प्रमुख भी बना। पुरंदरदास और कनकदास दोनों गहरे मित्र बने। पुरंदरदास जब परंधाम (मरण) को पहुँचे तो उन्होंने अब तब की अवस्था में ही अपना तंबूरा कनकदास को दे गये। कनकदास अपने जीवन का अधिकांश समय तिरुपती में बालाजी की सेवा में बिता कर अंतिम दशा में कागिनेले में अपने "आदिकेशव" भगवान् के चरण कमलों में सिर रखकर परंधाम को प्राप्त हुए।

कनकदास बहुत बड़े विद्वान् तो नहीं थे; परन्तु बड़े चतुर एवं ज्ञानी अवश्य थे। उनका अपार ज्ञान और असाधारण बुद्धि शक्तियो को दर्शानेवाले सैकड़ों प्रसंग दंतकथाओं के रूप में लोगों में श्रुति परम्परा से प्रचलित हुए हे। व्यासराय स्वामी ने शूद्र कनकदास को जो आदर दिया और उनकी कृतियों को जो गौरव दिया—इसे देखकर संप्रदाय शरण ब्राह्मणों ने इस पर आपत्ति उठायी। व्यासराय ने इस सम्प्रदाय वादियों की कनकदास के प्रति ऐसी अनुचित धारणा को दूर करने के लिए और कनक-दास की श्रेष्ठता को स्थापित करने के विचार से भी एक युक्ति सोची। इसके बाद व्यासराय स्वामी न एक दिन की विद्वानों की गोष्ठी में जब कनकदास भी मौजूद थे तब सभी के सामने एक सवाल उठाया प्रश्न था—"मोक्ष पाने की अर्हता से युक्त या उसे पाने योग्य व्यक्ति कौन है ?" वहाँ की उस गोष्ठी में एक से एक बढ़कर विद्वान् थे। पर किसी में यह साहस नहीं था कि कहें - "मैं मोक्ष पाने लायक हूँ।" एक एक करके सभी विद्वानों से पूछा गया। इस सवाल का उत्तर कोई न दे सके। कनकदास की भी बारी आयी तो गुरु व्यासराय ने उनसे भी यही सवाल किया। स्वयं स्वामी जी को इस बात का संदेह था कि खुद भी मुक्ति पाने के योग्य है या नहीं और यह तो निश्चित ही था कि वहाँ स्थित विद्वन्मंडली में कोई मुक्ति पाने

योग्य नहीं । जब कनकदास से सवाल किया गया तो उन्होंने स्पष्ट उत्तर दिया कि—"जब तक अहं (मैं) की भावना मिटे नहीं तब तक कोई भी मुक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता ।" कनकदास यह उत्तर सुनकर वहाँ उपस्थित सभी विद्वान् क्रोधाभिभूत हो गये । कनकदास ने बड़ी शांति के साथ कहा—"ठीक है । "अहं" (मैं) की भावना जब तक है तब तक कोई मोक्ष पाने का अधिकारी नहीं हो सकता ।" उनकी शांत और गंभीर वाणी सुनकर पंडित मंडली का जोश ठंडा पड़ गया । इसके बाद एक दूसरे दिन व्यासराय ने सभी शिष्यों को बुलाया और सब को एक एक केला दिया और कहा कि सब लोग जाओ और ऐसे एकांत स्थान में खा कर आओ जहाँ कोई तुम्हें खाते हुए न देखें । सब लोग केला लेकर एकांत स्थान की खोज करते हुए गये । कनकदास भी गये । सब लोग अपनी-अपनी समझ के अनुसार एकांत में केला खाकर लौटे । कनकदास भी लौटा, मगर केला हाथ में लिये ही लौटा । सभी की मौजूदगी में गुरु के सामने खड़े होकर कहा—"मुझे ऐसी कोई जगह न मिली जहाँ कोई न हो । भगवान् सर्वत्र मौजूद है । आज्ञा थी कि एकांत में केला खाने जहाँ कोई न हो । ऐसी जगह ही नहीं मिली तो कैसे खाऊँ ?" - कनकदास की इस सूक्ष्म दर्शिता के अनेकों उदाहरण मिलेंगे । ऐसे ही गुण के कारण वह सर्वमान्य और सबके आदर के पात्र भी बने ।

ऐसा प्रतीत होता है कि कनकदास ने कुछ करामात भी करके दिखलाये थे । एक बार वह उडपी गये भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन करने । वहाँ वह श्री कृष्ण मंदिर गये । वहाँ के पुजारियों ने कनकदास को शूद्र समझ कर भगवान् के दर्शन करने के लिए उन्हें अन्दर प्रवेश करने नहीं दिया । भकवान् भक्त को दर्शन दिये बिना कैसे रहेंगे ? भगवान् की मूर्ति उस तरफ घूम गयी जिस तरफ़ भक्त खड़ा था । मूर्ति के उस तरफ को घूमते ही वहाँ की दीवार में छेद पड़ गया । भक्त को भगवान् का दर्शन [उसी छेद के द्वारा] मिल गया । (दीवार में के छेद को कनकन किंडि कहते है । कन्नड में किंडि का अर्थ छेद है । कनक किंडि का अर्थ है कनकदास को दर्शन देने के लिए भगवान की मूर्ति के घूम जाने के कारण दीवार में जो छेद पड़ा और जिसके द्वारा कनकदास ने भगवान का दर्शन किया । उस कनकन किंडी कहते हैं ।) यह कनकन किंडी आज भी बनी हुई है । और इसी नाम से प्रसिद्ध है । ऐसी अनेक (करामातें) कथाएँ कनकदास के संबंध में प्रचलित है । इस तरह के कई अलौकिक कार्य करके दिखाने के कारण इनकी बड़ी महिमा गायी जाती है । सम्भवतः इसी वजह से लोग इन्हें यमधर्म का अवतार भी मानने लगे ।

कनकदास के काव्यों में "मोहन तरंगिणी" करीब सत्ताइस सौ पद्यों वाला एक ग्रंथ है । ये पद्य सांगत्य (छंद) में है । उनके शेष तीन ग्रंथ भामिनी षट्पदी में हैं । इस मोहन तरंगिणी का "कृष्णचरित" एक दूसरा नाम भी है । शिवजी के फालनेत्र से कामदहन, कामदेव का पुनर्जन्म, शंबरासुरवध, उषा और अनिरुद्ध की प्रेमलीला और बाणासुर विजय—ये इस काव्य की कथा-वस्तु हैं । कवि ने अपने काव्य के आरंभ में रामानुज मुनि की स्तुति की है और श्रीवैष्णवोचित पद्धति के अनुसार कुछ विशिष्ट वर्णन भी किये हैं । इससे ऐसा विदित होता है कि जब "मोहन तरंगिणी" को लिख रहे थे तब ये संभवतः श्रीवैष्णव मत के अनुयायी थे । कुछ समय तक ये रामानुजपंथी

अवश्य रहे—ऐसा निर्विवाद रूप से कहा ही जा सकता है। कवि ने अपने काव्य के विषय में जो प्रशंसा लिखी है वह वास्तव में सार्थक है। अपने काव्य को महाकाव्य का पद देने के उद्देश्य से संभवतः संप्रदायानुसार अठारह वर्णनों का भी उपयोग किया है। इस कारण से कथा-प्रवाह कुछ कुंठित अवश्य हुआ है और लगता है कि वर्णन कुछ अति हो गये हैं; फिर भी ये वर्णन सहज ही लगते हैं। इनमें सुन्दर कल्पनाविलास भी है। ठेठ कन्नड शैली में उनका सांगत्य अच्छा और चुस्त भी है। उनका सूर्यास्त वर्णन आदि कई वर्णनाभाग बहुत ही सुन्दर है। इस सबको देखते हुए इस काव्य का नाम "मोहन तरंगिणी" बहुत ही ठीक लगता है। कवि ने अपनी इस कृति का नाम "कृष्णचरित" जो कहा वह भी एक विशिष्टार्थ का सूचक है—ऐसा प्रतीत होता है। इनके वर्णनों में समसामयिक जीवन का चित्र भी दिखता है। इससे ऐसा लगता है कि विजयनगर के राजा कृष्णराय की ओर भी कवि ने संकेत किया हो। कथा में पौराणिक अद्भुत घटनाओं का और कुछ अलौकिक सन्निवेशों का वर्णन भरा पड़ा है, ऐसी अद्भुत और अलौकिक बातों के कारण पात्रों में मानवोचित सहजता की कमी दिखती है। कवि का आदर्श भक्ति है; काव्य सरल है; काव्य के अंत में बाणासुर और श्रीकृष्ण के युद्ध का प्रसंग आता है जहाँ कवि ने हरि-हर की समानता प्रतिपादित किया है। इससे कवि की उदात्तदृष्टि स्पष्ट होती है। कुल मिलाकर काव्य के विषय यों कहा जा सकता है कि यह महाकाव्य न होने पर भी एक उत्तम कृति अवश्य है।

कनकदास का "रामधान्य चरित" चमत्कारपूर्ण एक खंडकाव्य है। इसमें "रागी" (एक क्षुद्र धान्य) का बडप्पन बयान करने वाले एक सौ छप्पन पद्य हैं। रावणवध के बाद श्री रामचन्द्र जी ऋषियों के आश्रम में आये। ऋषियों ने उन्हें कुछ विशिष्ट तरह के भक्षय-भोज्यों से आतिथ्य किया। उन विविध किस्मों के भक्ष्यों को खाकर रामचन्द्रजी की इच्छा हुई कि देखें कि इन भक्ष्यों को तैयार करने में किस-किस तरह के अनाज का उपयोग किया गया है। तब उन्होंने अनाज के उन सभी किस्मों को मंगवाया। रागी, धान, बाजरा और बाजरे के किस्म के बाजरे से भिन्न कुछ और अनाज, ज्वार, जौ, गेहूँ, मकई आदि नौ भिन्न-भिन्न किस्मों के अनाज प्रस्तुत हुए। अब इन धान्यों के विषय में चर्चा हुई। एक-एक ऋषि एक-एक धान्य की प्रशंसा करने लगे, और उसको श्रेष्ठ बताने लगे। अब रागी और चावल में चर्चा छिड़ गयी रामचन्द्र जी के समक्ष। चावल गर्व के साथ कहने लगा—"यज्ञ यागों में उपनयन आदि माँगलिक कार्यों में मेरी आवश्यकता अनिवार्य है। भगवान् की पूजा में अक्षत में ही बनता हूँ। यों मेरी सर्वत्र सभी मांगलिक कार्यों में मेरी ही आवश्यकता अनिवार्य होती है।" इतना ही नहीं—"राजा-महाराजाओं से लेकर छोटे-छोटे बच्चों तक के लिए, लोगों के उपयोग के लिए, भोज-समाराधना आदि में, विद्यारंभ और अध्ययन करने वाले सभी उत्तम कुल के ब्राह्मणों के घरों में, व्रत उपवास आदि पवित्र कार्यों में,—इन सभी परिस्थितियों में सर्वत्र मेरा समादर होता है, इन सभी स्थितियों में मेरा ही उपयोग श्रेष्ठ माना जाता है और तुम इन सभी दृष्टियों से अयोग्य हो, हटो मेरे सामने से।"—चावल के इस गर्वभरी बात को सुनकर और इस तरह अपनी निन्दा को भी सुनकए "रागी" को बड़ा गुस्सा आया। वह चावल से कहने लगी—दुर्बलों और गरीबों की तरफ तुम आँख उठाकर देखते तक नहीं; तुम हमेशा धनियों

के पीछे रहकर गरीबों के प्रति सदा उदासीन रहते हो, प्रसूताओं और रोगियों के लिए पथ्य-पान (आहार) में और मुर्दे के मुंह में डालने के लिए तुम्हारा उपयोग होता है; तुम्हारा जन्म ही निरर्थक है।" चावल यह सुनकर कहने लगा कि मैं तेजस्वी ब्राह्मणों के माथे का अक्षत बनकर चमकता हूँ।"—इसका जवाब रागी देने लगी कि "तुम मृतक का ही प्रतिबिंब हो, इस पर गर्व ?" श्रीरामचन्द्र जी के सामने ही इस तरह अपनी-अपनी मर्यादित सीमा का अतिक्रमण कर बड़बड़ाने वाले इन दोनों को (रागी और चावल) श्री रामचन्द्रजी ने छैमास के कारावास का दन्ड दिया। छः मास की अवधि बीतने पर गौतम ऋषि इन दोनों धान्यों को बुलाकर ले गये और रामचन्द्र जी के समक्ष प्रस्तुत किया। वहाँ देवराज इन्द्र ने दोनों धान्यों की विमर्शा करके रागी को सारवान् और चावल को सारहीन बताकर निर्णय सुनाया। तब श्रीराम ने रागी को पास बुलाया और उसे "राघव" नाम दिया। वही आज "रागी" के नाम से प्रसिद्ध है।

"रामधन्य चरित" एक उत्तम विडंबना है। कुलीन कहलानेवाले, धनी माने जाने वाले, सत्वहीन होने पर भी गर्व दिखाकर बाह्याडंबर दिखाने वाले ढोंगी भगवान् से सदा दूर ही रहेंगे इस तत्त्व को इस विडंबन काव्य में कनकदास ने बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है।

कनकदास के काव्यों में "नल चरित्र" बहुत सुन्दर काव्य है। संस्कृत महाभारत के अट्ठाईस अध्यायों में फैले इस नलोपाख्यान से कथावस्तु लेकर भामिनी षट्पदी छन्द में करीब चार सौ अस्सी पद्यों और नौ संधियों में, संग्रह करके लिखा है, इस कवि ने। अत्यंत जनप्रिय कन्नड काव्यों में "नल चरित्र" काव्य भी एक है। औचित्य की सीमा के अन्दर, वर्णना विधान को सीमित करके मृदुमधुर शब्दयुक्त पद्य, सुन्दर भाव वाहिनी के रूप में रचित हैं, इस काव्य में। इस काव्य के मुख्य पात्र-नल और दमयंती के चरित्र बड़े सजीव हैं। मानवीयता के विविध भावों को कवि ने बहुत ही मार्मिक ढंग से निरूपित किया है। राज्यभ्रष्ट राजा नल बीच जंगल में सोयी हुई पत्नी को अकेली छोड़कर चला जाता है। परन्तु जाने के दूसरे ही क्षण में अपने काम पर पछताता है। कवि कहते हैं—

"वनितॆ मलगिहळॊ, अधैर्यदि। नॆनॆवळॊ दैववनु मनदलि।
कनस कंडॆळुवळॊ काणदॆ हलव हंबलिसि ॥
कनलि विधियनु बैवळो, कं। बनिय सुखिळो शोकदलि निज
तनुव बिडुवळो कांते यॆन्तिहळॆनुत बिसुसुय्दु ॥
सुतर पररॆडॆगित्तु नंबिद। सतिय तंदडवियलिमलगिसि।
मति विकळनादॆनु पुराकृत कर्मफलवैसॆ ॥
क्षितियॊळारू टॆन्नबोल् निज सतिगॆ तप्पिद बाहिररू एं।
दतिशयद शोकदलि नडॆदनुशिवशिवायॆनुत ॥"—

कि—"(मेरी) पत्नी सोई पड़ी है या डरके मारे भगवान् की याद कर दुखी हो रही है, या स्वप्न में जाग कर बगल में मुझे न पाकर दुखी हो रही हैं अथवा दुख से शरीर त्याग ही कर देगी—पता नहीं उसकी क्या गति हो गयी होगी। बच्चों को दूसरों के

पास छोड़ कर मुझ पर विश्वास रख मेरे साथ आनेवाली अपनी पत्नी को बीच जंगल में सुलाकर मैं भी कैसा बुद्धिहीन हूँ, उसे अकेली छोड़कर चला आया। यह भी प्राचीन कर्म का फल है। धरती पर इस तरह पत्नी को त्याग कर भागने वाले मुझ जैसा अधम और कौन हो सकता है ? यों अपने किये पर पछताता हुआ आगे बढ़ा"

पत्नी से अलग होकर पछतावे के कारण अत्यंत दुख में रहने पर भी नल महाराज ने आग में जानेवाले कार्कोटक सांप को बचाया। इस उपकार के बदले उस सांप ने उसे डस दिया। जहर सारे शरीर में व्याप्त हुआ तो ऐसा सुन्दर पुरुष एकदम विकार स्वरूपी (कुरूप) बन गया। ऐसे कामदेव-से सुन्दर महाराज नल का कुरूप-रूप का वर्णन कवि ने इस ढंग से किया है कि कोई भी पढ़े तो उस वर्णित रूप का मानसिक चित्र बनाकर हँसी से लोटपोट हुए बिना नहीं रहता।

पति परित्यक्ता दमयंती जंगल में कई कष्टों को सहन कर बहुत दुखी हुई और पति की खोज करती हुई अन्त में चेदि राजा के नगर में पहुँची। कवि ने परम सुन्दरी दमयंती का बहुत ही मनोचित्र, इस प्रसंग में, प्रस्तुत किया है।

कवि के अन्य काव्यों की तरह इस "नल चरित्र" काव्य में भी सुललित कन्नड की सुन्दर शैली दिखाई देती है। यह एक सुप्रसिद्ध, मनोहर तथा एक आदर्श प्रेम कथा है; सुन्दर सरल काव्य है। कोमल-कांत कविता धारा है। कुमारव्यास की छाया यत्र-तत्र दिखने पर भी वह कवि की रसज्ञता का साक्षी मात्र है। यह एक उत्तम और निर्दोष सरस काव्य है।

कनक दास "हरि भक्त सार"-नल चरित की ही तरह का अत्यंत लोकप्रिय ललित और सुन्दर काव्य है। इस काव्य में नीति बोधक एक सौ दस पद्य हैं। प्रत्येक पद्य "रक्षिसु नम्मननवरत" याने "हमें सदा रक्षा करो"—से समाप्त होता है। कन्नड देश का प्रत्येक बच्चा इन पद्यों से परिचित पहले होता है और फिर काव्याभ्यास आरंभ करता है। इस काव्य का प्रत्येक पद्य भक्तिमुक्ताफल है। कविता भक्तिभाव भार से लदी होने पर भी अत्यंत सरल है। उदाहरण के लिए एक पद उद्धृत किया जाता है—

"दीन नानु समस्त लोक के। दानिनीनु, विचारिसलु मति
हीन नानु, महामहिम कैवल्य पति नीनु
एन बल्लॅनु नानु ? नेरेसु। ज्ञान मूरुति नीनु निन्नस
मानरुंटे ? देव ! रक्षिसु नम्मननवरता"—

अर्थात्—"हे देव ! मैं दीन और समस्त विश्व को दान देनेवाले महादानी तुम; मैं विचार शून्य बुद्धिहीन हूँ, और तुम महामहिम और मोक्षदाता हो; मैं अदना क्या जानता हूँ, तुम ज्ञानमूर्ति हो। भगवान् ! तुम्हारी बराबरी कौन कर सकता है। ऐसे दानी दयामय महामहिम भगवान् ! तुम सदा सर्वदा हमारी रक्षा करो।"

कनकदास के ये शब्द कितने ध्वनिपूर्ण हैं। शायद किसी ने इस कवि के किसी काव्यांश को देखकर दूसरों की नकल कहकर अपमानित किया प्रतीत होता है। इससे संभवत: कनक दास ने "नृसिंहस्तव" के नाम के सत्तानवे पद्यों का एक सांगत्य काव्य लिखा होगा—ऐसा कवि चरितकार संदेह करते हैं।

कनकदास की कविता शक्ति सम्पूर्ण विकसित होकर अपनी सुगंधि को बिखेरा

है उनके कीर्तन पदों में। इस कीर्तन साहित्य में वैविध्य की दृष्टि से पुरंदरदास अग्र-गण्य हैं तो काव्य गुण की दृष्टि से कनकदास अग्रगण्य है। इनके उपमान-उपमेय और दृष्टांत बहुत रमणीय हैं। इस संत कवि कनकदास ने जिन राग-रागिनियों में गाया वह भी भावानुकूल एवं सुन्दर है। ईश्वरानुग्रह से प्राप्त प्रतिभा से उनका अपार लोकानुभव भी संयुक्त है। साधारण जनता और लोकजीवन के अनुरूप अभिव्यक्ति माध्यम भी सामान्य व्यवहार भाषा है। पूर्वावस्था में राजा तो था ही, इससे उन्हें इन बातों का पूर्ण ज्ञान था। इसी वजह से उनके छोटे-छोटे शब्द बड़े सत्वशाली हैं। यही नहीं लोक जीवन में दृष्टिगोचर होनेवाले दोषों को देखते हैं तो आग-बबूला हो जाते हैं। इन सामाजिक दोषों की कड़े शब्दों में टीका भी करते हैं।

हमारे समाज के दोषों में जातीयता (ऊँच-नीच) अग्रगण्य है। इस ऊँच-नीचे के भेद-भाव का कटु अनुभव कनकदास को भी हुआ था—ऐसा प्रतीत होता है। इसलिए बड़े नुकीले शब्दों में इस जातिवाद की आलोचना करते हैं—

"कुल कुल कुल वेन्नुतिहरु।
कुलयावुदु सत्य सुखवुळ्ळ जनरिगॅ ॥ १ ॥ (ध्रु०)
केसरॉळु तावरॅ पुट्टलु। अदंतंदु बिसजना भनि र्गपिसलिल्लवे।
हसुविनमांसदोळुन्यत्ति क्षीरवु।
वसुधॅयॉळगॅ भूसुररुणलिल्लवे ? ॥ २ ॥
मृगगळ मॅयलि पुट्टलु कस्तूरि।
तॅगॅदु पूसुवरु द्विजरॅल्लरु।
अक्जवल्लभनाव कुल पेळिरय्या ॥ ३ ॥
आत्म याव कुल, जीव याव कुल।
तत्त्वेन्द्रियगळ कुल पेळिरय्या।
आत्म महात्मनुनॅलॅयादिकेशव।
आतनॉलिदमेले यावकुलवय्या ॥ ४ ॥"

इसका भाव यह है—"लोग जाति-कुल कहकर चिल्लाते बहुत हैं। सत्य बोलने वाले, मनो वाक् काय कर्म से सचाई वरतने वाले लोगों के लिए कौन जाति और कौन-सा कुल ? कीचड़ में कमल पैदा होता है। उसे लाकर भगवान् को समर्पण नहीं करते ? गो मांस से उत्पन्न होने वाले दूध का सेवन उत्तम कुलीन ब्राह्मण नहीं करते ? मृग-नाभि में से उत्पन्न होने वाली कस्तूरी को निकालकर सभी भूसुर अपने शरीर पर नहीं लगाते ? जन्मत: ग्वाले के घर में पैदा होनेवाले भगवान् नारायण की जाति या कुल कौन-सा है ? पर्वत पुत्री बल्लभ का कुल कौन-सा है। बताओ तो। आत्मा की कौन जाति, जीव की जाति कौन, पंचतत्व और इंद्रियों की जाति कौन-सी है ? आत्मा और परमात्मा का निवास आदि केशव भगवान् में है। उस भगवान् के प्रसन्न होने पर जाति-कुल क्या और कहाँ है ?" जाति-कुल आदि के विषय में ऐसी उग्रटीका करते हैं। "पुत्र से ही मुक्ति" (पुन्नामन रकात् त्रायते इति पुत्र:) कहना एक अंध-विश्वास है। इसका खंडन कनकदास इन शब्दों में करते हैं—

"मगनिन्द मुक्तियुंटॅ जगदॉळु ॥ १ ॥
निगमांत सार मुक्तियल्लदेले ॥ अनु ण ॥

त्रिगुण रहित परमात्मन ध्यानदि ।
हगलिरुळु नित्यानंददि ।
तॆगॆदु प्रपंच वासनॆय मुद्दुवरिगॆ ।
मगनिद्देरॆनु इल्लदिद्देरॆनु ॥ २ ॥
ललनॆ पुरुषरु तम्म-तम्म कामद ।
सलुवागि कूडे शोणित शुक्लदि ।
मिळित मांसपिंड तन्न पूर्व गतियिंद ।
नेलकॆ बीळलु तानु सलहि राक्षेपुदे ॥ २ ॥
परम दुष्टनु आगि मरॆतु सद्धर्मव ।
गुरु हिरियर साधुगळ निंदिसि ।
बेरॆदन्यजातिय परनारिय कूडि ।
हिरियर जरॆदु आ नरकक्कॆ बीळुव ॥ ३ ॥
सत्यनॊब्ब मग, शांतनॊब्ब मग दुर् ।
वृत्तिनिग्रह समचित्तनु ।
उत्तमरीनाल्कु मक्कळिद्दमेलॆ ।
हॆत्तरॆ फलवेनु हॆरदिद्दरेनय्या ? ॥ ४ ॥
सुतरिल्लदवरिगॆ गतियिल्लवॆम्बॊन्दु ।
कृतक शास्त्र लौकिक भवकॆ ।
क्षितियॊळु बिडदॊडॆयादिकेशव जग ।
त्पतिय ध्यानिपगॆ सद्गतियिल्लदॆ होगदो ॥ ५ ॥"

इसका भावार्थ है—"वेदांत ज्ञान के बिना इस दुनियाँ में पुत्र होने मात्र से कोई मुक्ति को प्राप्त करता है ? त्रिगुणातीत परमात्मा के ध्यान में रात दिन निरत होकर सांसरिक वासनाओं को जिसने निकाल फेंका हो—ऐसे व्यक्ति को पुत्र से होगा क्या ? पुत्र हो तो क्या, न होने पर भी तो क्या ?—स्त्री पुरुष दोनों अपनी-अपनी वासना को तृप्त करने के लिए परस्पर मिलकर रतिक्रीडासक्त होते हैं और फल-स्वरूप शुक्ल-शोणित का सम्मिलित होकर पिंड तैयार होता है। पूर्वाजित कर्म गति के अधीन होकर वह पिंड शिशु के रूप में संसार में उतर पड़ता है। उसे पाल-पोसकर बड़ा बनाते हैं। यही तो पुत्र है ! क्या यह मूर्खता नहीं कि उससे मुक्ति पाने की आशा रखें ?—फिर आगे चलकर वह बड़ा होता है; परम दुष्ट होकर सद्धर्म को भूलता है; बड़े और बुजुर्गों तथा साधु-संतों की निंदा करता है; अन्य असवर्ण एवं परनारियों का संग करके बड़ों-बुजुर्गों की अवहेलना करके नरक में पड़नेवाले यह पुत्र मुक्तिदाता थोड़े ही है।—"सत्य" एक पुत्र, "शांति" एक पुत्र, "दुर्वृत्ति निग्रह" एक पुत्र, "समचित्त" एक पुत्र—ऐसे चार पुत्रों के रहने पर पुत्र प्रसव हो या न हो—दोनों बराबर है।—लोक में "पुत्र हीन को सद्गति नहीं"—कहनेवाली प्रचलित उक्ति एक कृतक बात है; मनुष्यकृत अर्थहीन बात है। इस पृथ्वी पर भगवान् के ध्यान में तन मन से निरत रहनेवाले व्यक्ति को सद्गति प्राप्त हुए बिना न रहेगी।"

भगवान् के अनुग्रह पर अटल विश्वास रखकर निश्चल भक्ति से भगवान् की शरण में रहनेवाले कनकदास के इस भावगीत को देखिये—

"तल्लणिसदिरु कंड्या ताळु मनवे ।
ऍल्लरनु सलहुवनु इदकॅ संशयविल्ल ॥ प० ॥
बॅट्टदा तुदियल्लि हुट्टिरुव वृक्षक्कॅ ।
कट्टॅयनु कट्टि नीरॅरॅदवरु यारो ।
पुट्टिसिद स्वामिता हॉणॅगारनागिरलु ।
कॉट्टुरक्षिपनिदकॅ संदेह बेडा ॥ १ ॥
अडवियॉळगाडुवा मृगपक्षिगळिगॅल्ल ।
अडिगडिगाहारवित्तवरु यारो ।
पडेद जननिय तॅरदि स्वामि हॉणॅगीडागि ।
बिडदॅ रक्षिपनिदकॅ संदेह बेडा ॥ २ ॥
कल्लॉळगे हुट्टि कूगुव पक्षिगळिगॅल्ल ।
अल्लिदनु कागिनेलेयादि केशवराय ।
ऍल्लरनु सलहुवनु इदके संशयविल्ल ॥ ३ ॥..."

इस भावगीत में वह कहते हैं—

"रे मन ! चिन्ता मत करो, छटपटाओ मत; सबका संरक्षक भगवान् है । वह वह तेरी भी रक्षा करेगा ।—"पहाड़ी की चोटी पर पेड़ पैदा हुआ है, उसे क्यारी (आलवाल) बना कर पानी किसने दिया ? पैदा करनेवाले भगवान् स्वयं उत्तरदाता बनकर पिला खिलाकर पालन जरूर करेगा ही, इसमें कुछ भी शंका मत करो । जंगल में उड़ते फुदकते पक्षियों को और दौड़ते फिरते पशुओं को समय-समय पर खाना कौन देता है ? जन्म देनेवाली माँ की तरह खिला-पलाकर सब तरह के संरक्षण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर समस्त-सृष्टि का पालन-पोषण वह सिरजनहार स्वामी अवश्य करेगा; इसमें किंचिन्मात्र भी शंका मत करो । पत्थर में जन्म लेकर कूकते चिल्लाते उड़ते-फुदकते चिड़ियों को, उन-उनके स्थान पर खाना पहुँचाकर उनकी रक्षा कौन करता है ? सबको सर्वत्र समान रीति से देखभाल कर रक्षा कागिनेले का आदि केशव भगवान् अवश्य करता है; इसमें जरा भी संदेह नहीं—"—इस भाव गीत में कवि की भगवान् के प्रति अटल विश्वास एवं निश्चल भक्ति—इन दोनों का कितना अच्छा और संतुलित समन्वय है । इनकी कृतियों में धर्म और काव्यधर्म—दोनों का सुन्दर सम्मेलन हुआ है । कवि कहते हैं—"शरीर भी तेरा, जीवन भी तेरा; हे भगवान् ! तुम ही अकेले सर्वतंत्र-स्वतंत्र हो । हम मानव तुम्हारे अधीन, हैं"—उनकी कृतियाँ इस बात का प्रतिपादन स्पष्ट रूप से करती हैं ।

कनकदास की कृतियों में (पदों में) पर्याप्त मात्रा में व्यंग्य और उक्ति वैचित्र्य दिखाई देता है । अयोग्य और दुष्ट लोगों की संगति के बारे में कहते हैं—"अज्ञानी और अयोग्य लोगों की संगति से सुज्ञानी और योग्य लोगों के साथ झगड़ा करना लाख दर्जे बेहतर है ।" यह उनकी बात कितनी मार्मिक है । बाहरी ढोंग कितना खोखला है—इसके विषय में कहते हैं—" पादोदक का पात्र हाथ में लेने मात्र से कोई पवित्र होता है ? जिसका जन्म सार्थक नहीं वह भागवत कैसे ?—इस तरह भिन्न भिन्न मतावलंबियों के सभी तरह के ढकोसलों और ढोंगीपना देखकर उन पर बहुत ही कठोर व्यंग्य करते हैं । उनका यह निश्चित विचार है कि कोई भी मताव-

लंबी क्यों न हो यदि वह धर्म के नाम पर या भगवान् के नाम पर किसी तरह का बहाना करके पेट पालने के लिए आडंबर या दिखावा करता है वह सब कुछ ढोंग-ढकोसले के सिवा और कुछ नहीं। वह चाहे जोगी, जंगम, बैरागी, संन्यासी जो भी वेष धारण कर ढोंग रचे—यह सारे का सारा भेष बित्ते भर पेट और बिलस्ते भर कपड़े के लिए है। समाज के निम्न वर्गों के लोगों के उद्धार के कार्य में कनकदास ने जो कार्य किया वह भी काफ़ी महत्वपूर्ण है। उन्होंने सामान्य अपने विश्वास, उनके अपने संस्कार और आचरण आदि का ही उपयोग करके उन्हीं के स्तर पर उन्हीं की भाषा में लोकगीतों के ही ढंग पर जानपद गेयों के परिचित रागों में पद बनाकर उन्हें धर्मोपदेश देते हैं। कनकदास के ऐसे अनेक गीत है। ये अपने गीतों के द्वारा उनको बुलाते हैं और उन्हें उनके अपने निम्न स्तरीय व्यवहारों, आपसी बैर भावों, क्षुद्र देवी-देवताओं के बेढंगे आराधन क्रमों आदि-आदि बातों के बारे में समझा बुझाकर सच्ची भगवद्भक्ति एवं उत्तम आचरण आदि का व्यवहार सिखाते हैं। कभी-कभी इन पदों में उदात्त तत्वों का भी बोध उन्हीं के स्तर की भाषा में समझाते भी हैं। गागर में सागर भरने की उनकी वाणी इतनी नुकीली है और सीधे हृदय तक पहुँचने की ताकत रखती है। संसार की अस्थिरता का वर्णन देखिये—"बोळ्ळि बंगारिट्टुकॉण्डु, ऑळ्ळॅ वस्त्र हॉद्दुकोण्डु, अळ्ळंबेर बॉम्बॅयंतॅ आडिहोयितु; हळ्ल हरिदु होगुवाग, गुळ्ळॅ बन्दु ओडेयितल्ला, उळ्ळॅ पॉरॅयन्तॅ काणो संसारद आट।"—अर्थात्—कवि कहते हैं—"चाँदी-सोने से सजकर, अच्छे कपड़े पहनकर, खेल की गुड़िया की तरह खेल दिखाकर चला गया। नदी में पानी बह कर बुदबुदे को बहा ले जाकर उसे फोड़ दिया, अरे मूर्ख ! दुनिया का खेल प्याज के पतले छिलके की तरह सारहीन और क्षणभंगुर है।"

कनकदास ने अल्लम प्रभु के जैसे रहस्यार्थ वाली और पहेली की तरह की कुछ कृतियों की रचना भी की है। उन्हें "कनकन मुंडिगे" कहते हैं। मेघ गर्भ में छिपी विद्युल्लता की तरह, इस तरह के कनकदास के पदों का अर्थ, अचानक ही चमकना चाहिए। ये पद ऊपर से असंबद्ध लगते हैं, इनकी भाषा एक तरह से सांकेतिक है जैसे कबीर की उलटबाँसियों की भाषा या सांध्यभाषा है।

समझने वाले के लिए इस सांकेतिक भाषा में छिपे अर्थ का बोध होता है; इस तरह की उनकी कृतियों में बहुत गंभीर आध्यात्मिक तत्त्व छिपा हुआ है। उदाहरण के लिए एक पद उद्धृत है—

"ऑम्बत्तु हूविगॅ ऑन्देनाळवु चंदमामा।
तुंबि नाळ तुदि तुंब भानुप्रभॅ चंदमामा।
कालिल्ल दातनु हत्तिदना मर चंदमामा।—
कैयिल्ल दातनु कोय्दनु आ हण्णु चंदमामा॥"

इसका अर्थ—"हे चंदामामा ! एक नाल में नौ फूल हैं; नाल के अग्र में भ्रमर समूह, जिसके पैर ही नहीं वह पेड़ पर चढ़े, और जिसके हाथ न हो वह फल तोड़े।"—इसका तात्पर्य ऐसा मालूम होता है मोक्ष सिद्धि के लिए साधना करनेवाले साधक की साधना के विभिन्न स्तरों में अनुभूत होनेवाली स्थितियों का यह वर्णन है।—स्वयं कनकदास को मालूम है कि वह जो कहते हैं उसे सामान्य मनुष्य समझ नहीं सकते। इसीलिए

कहते हैं—कनकदास ने जो बात कही है उसका रहस्य केवल आदि केशव भगवान् ही जानते हैं।

कनकदास की कल्पना शक्ति कहीं-कहीं बहुत भव्य और गगनचुंबी हो गयी है। पढ़ते हुए पाठक पुलकित हो जाते हैं। वह बताते हैं कि कई जन्मों में जो स्तन्य-पान किया है वह दूध यदि मापा जाय तो क्षीर सागर से दुगुना होता है और जन्मने बाद रोने से जो आँसू बहे वह लवण समुद्र से तिगुने है; उन विभिन्न जन्मों में विभिन्न देहों की सारी हड्डियाँ एकत्र करें तो मेरु पर्वत से चौगुनी होंगी;—यों हिसाब लगावें तो पता नहीं कितने जन्म बीते होंगे ! इस वर्णन को जब सुनते हैं तो सात्विक वृत्तिवालों को सहज ही संसार के प्रति जुगुप्सा की भावना उत्पन्न हो जाती है। कवि कनकदास ने रूपकों का ऐसा सुन्दर चित्र बनाया है कि उनको पढ़ते ही सारा चित्र हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष होकर नाचने लगता है। यह उदाहरण देखिये—

"पंचोन्द्रमगळॆम्ब मंचिगॆय हाकिरय्या,
चंचलवॆम्ब हक्कियन्नु ओडिसिरय्या
उदयास्तमानवॆम्ब ऍरडु कॉळगव माडि,
आयुष्यद राशियनु अळॆयिरय्य."—अर्थात्

"पंचेन्द्रियों की खटिया बनाओ, चांचल्य रूपी पक्षी को भगावो, उदय-अस्त (सूर्य का) रूपी दो माप लो, आयु की राशी को मापो." इस रूपक में कवि की कल्पना का कितना कितना भव्य है ! जैसे ये रूपक भव्य हैं वैसे ही उनके उपमान भी बहुत हृदयग्राही है। मसलन यह देखिये—"गाळिगॉड्डिद सॉडरु ई संसार": भाव यह कि यह संसार हवा में रखे दीपक-सा है। "संसारवॆम्ब सागरवनुत्तारिसुवॉडॆ कंसारिनाम ऑन्देसाकु" ="संसार से पार उतरने के लिए कंसारि का नाम स्मरण अकेला ही काफी है।" "हेरॉप्पिसिद मेले सुंकवे ?"=सब कुछ सौंपने के बाद चुंगी क्या ? आदि आदि उपमानों में कितना औचित्य है। उनके काव्यों में भक्ति उनकी काव्य शक्ति का पोषक है।

संत कवि कनकदास कन्नड देश और कन्नड भाषा के लिए एक कीर्ति-पताका है।

वैकुंठदास—व्यास, वादिराज, पुरंदरदास और कनकदास—इनके समसामयिक है वैकुंठदास। इनके विषय में ऐसा मालूम पड़ता है कि यह श्री वैष्णव मतानुयायी थे और बेलूर के चेन्तकेशव भगवान् के भक्त थे, अपने जीवन में इन्होंने कुछ अलौकिक कार्य भी कर दिखाये। इन्होंने अपने कीर्तनों (पद) के अन्त में "वैकुंठकेशव" का नाम अंकित किया है। इसी अंकित में कई पद रचे हैं। एक बार भगवान् के दर्शन के लिए मंदिर के सामने गये तो मंदिर का दरवाजा बंद था। इस बंद दरवाजे के सामने खड़े दर्शनार्थी भक्त दर्शन न पाने के कारण अत्यन्त खिन्न होकर भावावेश में एक पद गाया जो इस प्रकार है—"बागिलनु तॆगॆदु सेवॆयनु कॉडु हरिये। कूगिडुव ध्वनियु केळिसुवुदिल्लवे निनगॆ ॥" अर्थात् "हे भगवान् ! द्वार खोलकर दर्शन दो; कब से पुकार रहा हूँ, मेरी पुकार तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती ?"—यों अपने हृदय की वेदना को बहुत ही मार्मिक ढंग से इस पद में उन्होंने अभिव्यक्त किया है। भक्त के इस दर्शन करने

की महती आकांक्षा को देखकर आर्त भक्त की पुकार सुनकर भी भगवान् चुप कैसे रहेंगे ? द्वार खुला, भक्त को भगवान् का दर्शन मिल गया। इस घटना के कारण बेलूर "भूवैंकुंठ" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनके कीर्तनों में काव्यगुण से अधिक भक्ति व्यक्त हुई है।

इनके पश्चात् सत्रहवीं सदी के अन्त तक करीब सत्तर-अस्सी वर्ष तक अवधि में दास साहित्य का विकास बहुत हद तक कुंठित हुआ—ऐसा लगता है। ऐसा नहीं कि दासपंथ की परंपरा ही रुक गयी; यत्र तत्र कुछ दासपंथी संत दिखाई देते हैं। परंतु अत्यंत प्रतिभावान् और अपरोक्ष ज्ञानी कोई संत हुए—ऐसा, विदित नहीं होता। पुरंदरदास और कनकदास जैसे संतों की पंक्ति में समान स्तर पर बैठ सके और इनके साथ नाम लिया जा सके ऐसे प्रतिभावान् और अपरोक्ष ज्ञानी संत का दर्शन करना हो तो अठारहवीं सदी के पूर्वार्ध में स्थित जगन्नाथदास के ही पास आना पड़ेगा। इनसे पहले पुरंदरदास के चार लड़कों ने संभवतः दासपंथ की परंपरा को आगे चलाया —ऐसा प्रतीत होता है। विजयेन्द्रतीर्थ और उनकी शिष्य परंपरा ने भी दास साहित्य को अपनी देन भी दी होगी। सुधीन्द्रतीर्थ के शिष्य राघवेन्द्रतीर्थ इस समय के अत्यंत प्रभावशाली व्यक्ति हैं। कुंभकोणं नामक स्थान के निवासी तिम्मप्प इनके पिता थे। कहा जाता है कि भगवान् बालाजी के प्रसाद रूप में प्राप्त पुत्र राघवेन्द्र बचपन से ही तर्क-व्याकरण-वेदांत—में बड़े निष्णात और दिग्दंति पंडित बने। फिर सुधीन्द्रतीर्थ से संन्यास लिया। संन्यास लेने के पूर्व इन्हीं गुरु सुधीन्द्र जी के पास "सुधा" का भी सम्पूर्ण अध्ययन कर चुके थे और "सुधा" पर "परिमल" के नाम से व्याख्या भी लिखी। सुधीन्द्र जी से संन्यास लेने के पूर्व वैवाहिक जीवन जब बिताते थे तब इनका एक पुत्र भी हुआ जिसका नाम लक्ष्मीनारायण था—ऐसा सुनने में आता है। संन्यास लेने के पश्चात् ये मंत्रालय नामक स्थान में रहने लगे। यहाँ रहते हुए उन्होंने कुछ अलौकिक कार्य करके अपरोक्ष ज्ञानियों में अग्रगण्य कहलाये। इतना ही नहीं, अपने कुछ संस्कृत ग्रंथों तथा कन्नड कीर्तनों (पदों) की रचना की और इस तरह व्यासकूट और दासकूट दोनों की सेवा की। "वेणुगोपाल" के अंकित से रचित इनके कीर्तन (पद) बहुत लोकप्रिय हैं। इनके इन जनप्रिय पदों में अत्यन्त लोकप्रिय और प्रसिद्ध पद यह नीचे उद्धृत है—

"इंदुयनगें गोविन्द निन्नय पादार विन्दव तोरो मुकुंदने ॥ प० ॥
मंदरोद्धारने, नंदगोपन कंद। इंदिरारमण गोविंद गोकुलानंद ॥—
॥ अ० प० ॥

नॉन्दॅनय्या भवबंधनदॉळु सिलुकि।
मुंदे दारि गाणदॅ कुंदिदॅं जगदॉलु ॥
कंदनानॅन्दॅन्न कुंदुगळॅणिसदे।
तंदॅनीकायाॅ कंदर्प जनकनॅं ॥ १ ॥
मूढतनदि बलु हेडि जीवननागि।
दृढ भक्तिय माडलिल्लवो हरियॅ ॥
नोडलिल्लवॉ निन्न, पादुलिल्लवो महिमॅं।
गाडिकार कृष्ण बेडिकॉम्बेनु स्वामि ॥ २ ॥

धारुणियॊळु भूभार जीवननागि ।
मेरॆदप्पि नडॆदु सेरिदॆ कुजनर ॥
यारुकायुवरिल्ल सेरिदॆ निनन्नय्या ।
धीरवेणुगोपाल पारुगाणिसो स्वामि ॥ ३ ॥"—इसका भाव यों
है—"हे भगवान् ! रमापते ! आज तुम मुझे अपने पाद दर्शन का सौभाग्य दो, आज दर्शन देने का अनुग्रह करो। संसार के बंधन में फँस कर बहुत दुखी हुआ हूँ। "आगे किधर जाऊँ, रास्ता दिखता नहीं। हे भगवान् ! मुझे बच्चा समझकर, हे जगत्पिता ! क्षमा करो। मैं मूर्ख और कायर तेरे चरणों में अचल और अटल भक्ति न कर सका। हे स्वामी ! तेरी तरफ़ से बेखबर रहा, तेरी महिमा का गान न किया न सुना। संसार रूपी इस रथ (गाड़ी) को चलानेवाले तुम मेरा उद्धार करो।—हे कृष्ण ! मैं ने इस भूमि पर भार बन कर, अपनी परिमित सीमाओं का भी उल्लंघन कर, दुष्ट लोगों की संगति में जीवन गंवाया है। इन सबका निवारण कर, मेरे समस्त दोषों को क्षमा करो, हे हरि ! मेरा उद्धार करनेवाला कोई नहीं, एक मात्र तेरे सिवा कोई दूसरा उद्धारक नहीं, तेरी शरण में आया हूँ, तेरे चरणों में पड़ा हूँ। भगवान् ! तुम हो उद्धार करो।"—यह राघवेन्द्रतीर्थ की अनन्त भक्ति का परिचायक है।

राघवेन्द्रतीर्थ साहित्यिक न होने पर भी अपरोक्ष ज्ञानी के रूप में अद्वितीय महापुरुष हैं। महाज्ञानी के रूप में विख्यात महापुरुष हैं। मंत्रालय के राय (सद्गुरु राघवेन्द्रराय) के नाम से प्रसिद्ध इस महात्मा के नाम से अपरिचित कन्नडभाषी संभवतः कोई नहीं होगा। आज भी असंख्यक लोग उन महात्मा के चित्र को अथवा उनकी समाधि के प्रतीक बृंदावन को रखकर श्रद्धा भक्ति के साथ उन महात्मा की पूजा करते हैं और अपनी कामनाओं को पूर्ण कर लेते हैं। अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं।

विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद दक्षिण में जो धार्मिक विप्लव हुआ उसे रोक कर धार्मिक-स्थिति को बनाये रखने का श्रेय श्री राघवेन्द्रतीर्थ को ही मिलना चाहिए। इनके प्रभाव से मन्त्रालय और उसके आस-पास के प्रदेशों में कुछ हरिदासों का उदय हुआ। प्रसन्न वेंकटदास, विजयदास, तिम्मण्णदास, गोपालदास, मोहनदास, जगन्नाथदास आदि अनेक हरिदासों ने एक साथ जन्म लेकर दास साहित्य की तुष्टि पुष्टि के कारण बने।

प्रसन्न वेंकटदास—(ई० सन्० 1680) इनका जन्म स्थान जिला बीजापुर का बागलकोट है। छुटपन में ही माता-पिता से वियोग हुआ। घर में इनकी भाभी थी। वह बालक वेंकटदास को बहुत सताती थी। इस वजह से वह घर छोड़कर तिरुपति की ओर भाग गये। वहीं रहकर बालाजी की सेवा में निरत हो गये। भगवान् बालाजी के अनुग्रह से उन्हें कविता शक्ति प्राप्त हुई। "प्रसन्न वेंकट कृष्ण" के अंकित नाम से इन्होंने कुछ कीर्तन (पद) रचे हैं। यह भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। वह कहते हैं—

"अरिगळे सखरक्कु, अतिविषामृतवक्कु,
उरगपूमालॆयक्कु, उरि तण्णगक्कु,

शरधि गोष्पदवक्कु, शरधात बॅण्डक्कु,

नरहरिय नामवनु, नंबि भजिपरिगें।" तात्पर्य यह कि—"यदि भगवान् पर अटल विश्वास और निश्चल भक्ति रख कर उनका भजन सतत जो करे तो शत्रु मित्र बन जाते हैं, जहर भी अमृत हो जाता है, साँप फूलों की माला बन जाता है, आग ठंडी होती है, अलंघ्य समुद्र भी गोपद का-सा छोटा बन जाता है, तीर तूल (रूई) सा बन जाता है।" भगवान् नरहरि की कृपा क्या-क्या नहीं कर सकती? हाँ, उन पर अडिग भक्ति चाहिए; अटल विश्वास चाहिए। "त्वमेव शरणं मम" की एक निष्ठ आत्म समर्पण की बुद्धि चाहिए। यह भक्त प्रसन्न वेंकटदास अपने इस निश्चल विश्वास को लोगों में बाँट सकने वाले महान् व्यक्ति थे। अपने कीर्तन-भजन के द्वारा वे लोगों को भगवच्ध्यानासक्त बना सके। इन्होंने भागवत के दशमस्कंध की कथा को गीत, द्विपदी, वृत्त—इन छन्दों में कन्नड में प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्ण की बाललीला के वर्णन में बच्चों की तोतलीवाणी का प्रयोग करके सुन्दर पदों की रचना उन्होंने करके कमाल किया है। उनके बालभाषा में गाये गीत बहुत ही सुन्दर और मनमोहक हैं। इनकी भाषा उत्तर कर्नाटक की भाषा है। उस प्रदेश में उनके गीत बहुत लोक-प्रिय हैं।

विजयदास—ये प्रसन्न वेंकटदास के समकालीन है। ये रायचूर जिले के किसी एक गाँव के निवासी है। इनके पिता का नाम श्रीनिवास और माता का कूसम्मा है। इनके इस ग़रीब परिवार में ज्येष्ठ पत्र होकर ये पैदा हुए। इनका नाम दासप्पा था। ये देखने को बड़े मूर्ख लगते थे। थे भी कम अक्ल के। लोग इन्हें देखकर हँसी उड़ाया करते। इस तरह लोगों के द्वारा हँसी उड़ाये जाने का दुःख लगा, इस कारण ये अपना गाँव छोड़कर निकल भागे। इधर-उधर भटकते-भटकते वे काशी पहुँचे। कहते हैं कि वहाँ रहते समय एक रात को स्वप्न हुआ। स्वप्न में पुरंदरदास जी प्रत्यक्ष हुए और इनकी जिह्वा पर बीजाक्षर लिख गये। तब से उनके मुह से जो भी बात निकली वही गीत बन गया। "हरवदन विठल" के अंकित से उन्होंने अनेक गीत बनाये। अपने अन्तर में यों प्रकाश के फैलने के कारण आनंद में गाने लगे—"अंतरंगद कदवु तॅरॅयितिन्दु। इंतु पुण्यद फलद प्राप्ति फलिसितॅनगॆं॥" भाव यह कि—"मेरे अंतरंग का द्वार खुल गया (अज्ञान का परदा हट गया)। यों अपने पूर्व पुण्य का फल आज मिल गया (आज ज्ञानोदय हुआ)।" यों आनंदित होकर अपने अज्ञानमय गत जीवन पर पछताते हैं। अपने एक कीर्तन में वह भगवान् से प्रार्थना करते हैं—हे भगवान्! तुम मेरे हृदय में सदा बसो। मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा और तुम भी मुझे न छोड़ना।" इन्होंने असंख्य "सुळादि" लिखी हैं। एक पुरंदादास को छोड़कर अन्य किसी दासपंथी संत ने इतनी "सुळादि" नहीं लिखी हैं इतनी इस विजयदास ने लिखी। इनके कीर्तन और सुळादि बहुत भावगर्भित एवं तत्त्व बोधक हैं।

अठारवीं सदी के दासपंथी संतों में महिपतिदास का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने भक्ति भरे अनेक गीत रचे। परंतु इनकी कृतियाँ अभी तक अप्रकट ही हैं।

गोपालदास—अठारहवीं सदी के हरिदासों में विख्यात भक्त संत यह गोपाल दास है। ये विजयदास के शिष्य थे। जिला रायचूर के मोसरुकल्लु नामक एक गाँव में मुरारिराय नामक एक गृहस्थ रहते थे। इनकी पत्नी का नाम वेंकम्मा था। इस

दंपति का एक पुत्र हुआ। नाम रखा गया भागण्णा। गरीबी के कारण यह बच्चा भागण्णा कुम्हलाये फूल जैसे दुबला पतला और दुर्बल हुआ था। अपनी इस दशा से दुखी बच्चा भगवान् का ध्यान करता हुआ एक पेड़ के नीचे सो गया। जब यह सो रहे थे तो एक कृष्ण सर्प उनके शरीर पर रेंगता हुआ चला गया। इसे देखकर लोगों ने उन्हें महात्मा समझा। उस दिन से उनमें महानता का दर्शन होने लगा। वह भक्ति परवश होकर जब नाचने लगा तो उनके मुँह से हरिकीर्तन गीत बनकर निकला। अचानक ही विजयदास ने एक बार इन्हें देखा और दास दीक्षा देकर "गोपाल विठल" अंकित दिया। दीक्षा लेने के बाद ये गोपालदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। भक्ति भरे अनेक गीत इन्होंने बनाये। रोग (भवरोग) का निदान बताकर भवरोग से मुक्त करने की प्रार्थना भगवान से करते हुए उन्होंने यों गाया—

"आव रोगवु एँनगें देव धन्वन्त्रि।
सावधानदि एँन्न कैपिडिदुनोडय्या॥" अर्थात्

"हे भगवान्! तुम भवरोग वैद्य हो, देखो तो सही कि मुझे कौन सा रोग है?"—यों प्रार्थना करते हुए अपने रोग का लक्षण बताते हैं— "भगवान् की मूर्तियाँ मुझे दिखाई नहीं पड़ती. हरिकीर्तन सुनाई नहीं पड़ती, ध्यान मंत्र भी मुँह से नहीं निकल पाता, प्रसाद रुचता भी नहीं."—आदि आदि उनकी अपनी बीमारी के लक्षण बता कर कहते हैं—"हे भगवन्! तेरे चरणों की सेवा के लिए ये हाथ नहीं उठते, बड़े बुजुर्गों और गुरुओं के सामने सिर नहीं झुकता, नामोच्चरण करने के लिए जिह्वा भी काम नहीं देती, तीर्थ यात्रा करने के लिए पैर नहीं उठते—यह मेरा रोग अनादिकाल से है, इस रोग का निवारण करो भगवान्!" यों भगवान् के सामने गिड़गिड़ाते हैं। यह गीत चमत्कार पूर्ण होने के साथ-साथ सुन्दर भी है। इसी तरह वह भगवान् से प्रश्न करते हैं—"हे भगवान्! तुम्हारे पास आकर क्या माँगूँ? माता-पिता-धन, पुत्र, अधिकार, इन सब से और इन में प्रत्येक से होनेवाले सुख-दुखः आदि का वर्णन करके अंत में यही वर माँगता है,—भगवान्! किसी से कुछ न माँगूँ—ऐसा वरदान दो।" —इस आशय का उनका गीत बहुत ही सुन्दर और मार्मिक है।

गोपालदास का शिष्य समुदाय बहुत धनी है। उनके तीन भाई उनके शिष्य बनकर दास सम्प्रदाय को आगे बढ़ाया। अठारहवीं सदी के हरिदासों में सुप्रसिद्ध जगन्नाथ दास एवं हॅळवनकट्टे गिरियम्मा इन्हीं के शिष्य वर्ग में सम्मिलित हैं।

जगन्नाथदास—जिला रायचूर में ब्यागवट्टे एक गाँव है। इस गाँव का कारिंदा था नरसप्पा। इनकी पत्नी का नाम था लक्ष्मीबाई। जीवन के उतार-चढ़ाव का अनुभव पा कर नरसप्पा अपने उस गाँव को छोड़कर उसी जिले के "मानवी" नामक स्थान में आकर बसे। कालांतर में "नरसिंह विठल" अंकित पाकर हरिदास बने। इस हरिदास को श्रीनिवास भगवान् के अनुग्रह से एक पुत्र हुआ। इस पुत्र का श्रीनिवास नाम रखा गया। श्रीनिवास ने बचपन में पिता के पास बैठकर कन्नड और संस्कृत सीखीं। और मंत्रालय में जाकर संस्कृत का प्रौढ़ शिक्षण प्राप्त किया। ये बहुत बड़े और अद्वितीय पंडित बने। दैवदत्त कविता शक्ति पांडित्य का सहारा पाकर बहुत ही अच्छा विकसित हुआ। मंत्रालय के स्वामी ने इन्हें "आचार्य" की उपाधि देकर सन्मानित किया। श्रीनिवासाचार्य विद्या, बुद्धि, गौरव पाकर कीर्तिशाली

होने के साथ काफ़ी धनी भी हुए। इसके कारण बड़े अहंकारी बने। उनका "विद्यामद" वादभूमि में उतर कर बृंहण करने लगा। शास्त्रार्थ और बाद में ज्यों-ज्यों इनकी विजय-पताका फहरती हुई ऊपर चढ़ती गयी त्यों-त्यों इनका गर्व भी बढ़ता गया। इस हालत में एक बार श्रीनिवासाचार्य विजयदास से मिले और कूसी (विजय दास की माता कूसम्मा का यह छोटा रूप 'कूसि' है) मगदास (कूसम्मा का बेटा यह दस) "दास का भेष बनाकर लोगों को धोखा देते फिरता है—यों कहकर उनको (विजयदास को) अपमानित किया। इसके फलस्वरूप श्रीनिवासाचार्य क्षयरोग—पीडित हुए। इस रोग से मुक्त होने के लिए फिर से उन्हीं विजयदास के पास जाकर उन्हीं की शरण लेनी पड़ी। विजयदास ने उन्हें गोपालदास के पास भेज दिया। गोपालदास कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे, वह तो सिद्धि विनायक के अंश संभूत थे। उन्होंने अभिमंतित्र करके एक ज्वार की रोटी श्रीनिवास को दी। उस रोटी को खाने पर वह स्वस्थ हुए। रोग के अच्छे होने के साथ-साथ वह भवरोग से भी मुक्त हुए। तब तक उनके विचार हरिदासों के पदों के विषय में कोई अच्छे नहीं थे। वह हरि दास के पदों को "प्राकृत पद" कहकर उन्हें त्याज्य समझते थे। अब उनकी इच्छा हुई खुद हरिदास बने। अतः उन्होंने गोपालदास के ही पास जाकर उन्हीं से "अंकित" का अनुग्रह करने की प्रार्थना की। उन्होंने स्वयं अंकित न देकर यह कहकर कि 'विठल' ही "अंकित" का अनुग्रह करेंगे— उसे पंढरपुर भेज दिया। वहाँ चंद्र भागा नदी में स्नान करते समय "जगन्नाथ विठल" की नाम उत्कीरित शिला उनके हाथ लगी। उस दिन से यह श्रीनिवासाचार्य जगन्नाथदास के नाम से भगवद्दत्त "जगन्नाथ विठल" के अंकित से भगवन्नाम स्मरण करते हुए गाते-गाते चले। यों उन्हें दासपंथ की दीक्षा मिली।

जगन्नाथ दास के इस उपर्युक्त जीवन वृत्तांत का आधार "वेंकटेश विठल" शब्द है। इस वृत्तांत में जो अलौकिक घटनाएँ वर्णित है उन्हें अगर छोड़ भी दें तो भी जगन्नाथ दास के जीवन में काफी वैविध्य है और वह जीवन अनुभव पूर्ण है—इसमें कोई शक नहीं। उनकी कृति "हरिकथा मृत सार" बहुत ही विद्वत्तापूर्ण है। इस कृति के बत्तीस संधियों में करीब एक हज़ार पद्य है। मध्वमत तत्त्व इन हज़ार पद्यों के विशालकाय ग्रंथ में फैला हुआ है। द्वैत तत्त्व के समस्त सिद्धांतों से युक्त इस ग्रंथ को द्वैत सिद्धांत का एक विश्व कोश ही कह सकते हैं। इसलिए यह सहज ही शास्त्र विषयक ग्रंथ बना है। फिर भी महलिंग रंग के "अनुभवामृत" की तरह जगन्नाथ दास ने भी प्रभुसम्मित का प्रतिपादन कांता सम्मित बनाकर किया है। शास्त्रीय विषय काव्य रूप-धारण कर इस कृति में उतर आया है। अत्यन्त क्लिष्ट वेदांत विषय को कवि ने सुलभ, सरल, एवं सुन्दर ढंग से छोटे-बड़े सबके समझने योग्य ढंग से प्रतिपादित किया है। भगवान् की अपार करुणा का जगन्नाल दास का यह वर्णन कितना सुन्दर है—

"मलगि परमादरदि पाडलु। कुळितु केळुव, कुळितु पाडलु
निलुव, निन्तदॅनलिव, नलिदरॅ ओलिवे निमगॅम्ब
सुलभनो हरि, तन्नवरनरॅ। घळिगॅ विट्ठलगनो, रमाधव
नॉलिसलरियदॅ बळलुवरु पामररु भवदॊळगॅ॥"—

यह जितना आसान है उतना ही हृदयंगम भी है। इसका भाव इस प्रकार है—"लेटे लेटे आदर से भगवान् का नाम स्मरण करो तो वह बैठकर सुनता है, बैठकर हरिगुण गाओ "तो वह खड़े होकर सुनता है, यदि भगवान् खड़ा होता है तो संतुष्ट होता है और अगर खुश हो जाता है भक्त पर प्रसन्न हो जाता है। भगवान् यों सुलभ-लक्ष्य है, जो भगवान् का भक्त है वह उसका अपना है और भगवान् अपनों को कभी नहीं छोड़ता, उनका उद्धार अवश्य करता है। वह कभी अपने भक्तों से अलग नहीं होता। लोग उस भगवान् को संतुष्ट करने का रास्ता नहीं समझते और इस तरह दुनियां में तरह-तरह कष्ट झेलते हैं।"—भगवान् का नाम-स्मरण करने के लिए देश-काल और अन्य किसी तरह के बन्धन नियम आदि की आवश्यकता नहीं। कोई भी हो या किसी भी काम में लगा हो—अपना काम करते हुए भी भगवान् का नाम स्मरण कर सकता है। वह कहते हैं—

"मक्कळाडिसुवाग, मडदियाँ। ळक्करदि नलिवाग हय प
ल्लक्कि गज मोदलाद वाहनवेरि मेरॆवाग
बिक्कुवागाकळिसुतलि दे। वक्कि तनयान स्मरिसुतिहनर
सिक्कनो यमदूतरिगॆ आवल्लि नोडिद॥"—

कि—"बच्चों को खिलाते समय, पत्नी के पास सरस विनोद में समय बिताते समय, पालकी, घोड़े, हाथी आदि वाहनों पर सवार होकर आनंद से समय बिताते हुए भी नाम स्मरण करना जो न भूले, साँस लेते, हिचकी लेते जंभाई लेते सभी समय देवकी तनय का नाम स्मरण करते रहने पर ऐसे भक्त यमदूतों के खोजते रहने पर भी कहीं कभी न मिलेंगे। अर्थात् यमदूत भगवद् भक्त का कभी कुछ न कर सकेंगे।"—जगन्नाथ दास के द्वैतमत प्रतिपादन में लगे रहने पर भी उनकी दृष्टि बहुत उदात्त और उदार है। और सर्वजन सम्मत विचार है। वह कहते हैं—

"आव कुलदवनागॆडे नि। न्नावदेशदोळिद्दॊडे नि
न्नाव कर्मव माडलेनिन्नाथ कालदलि
श्रीवरन सर्वत्रदलि सं। भाविसुत पूजिसुत मोदिप
कोविदरिगॆंटेनो भवदुःखादि दोषगळु॥"—कि

"किसी कुल में पैदा हुआ हो, किसी भी देश का निवासी हो, कोई भी कर्म करता हो, सर्वत्र और सदा श्रद्धा निष्ठा से युक्त होकर श्रीवर परम पिता भगवान् का ध्यान करने वालों को भवदुःख आदि दोष कैसे लगेंगे ?"—यों सर्व समता की घोषणा करने वाले कवि आगे बढ़कर बताते हैं—

"सर्वदेशनु पुण्यवु। उर्वं कालवु पुण्य कालक
सर्व जीवरु दान पात्ररु मूरुलोकदोळु
सर्व मातुगळॆल्ल मंत्रवु। सर्व कॆलसगळॆल्ल पूजॆयु,
सर्व वंद्यन विमलमूर्ति ध्यानवुळ्ळवगॆ।"—

तात्पर्य यह कि—"सभी देश पुण्य भूमि है, सभी समय पुण्य है, तीनों लोकों में रहने वाले सभी जीव दान के पात्र हैं। उठते बैठते बोलते—कहने वाली सभी बातें मंत्र के समान हैं, किये जानेवाले सब काम पूजा है,—यह सब किसे ?—उसे जो सर्ववंद्य शुद्ध मूर्ति भगवान का ध्यान सदा करता हो। अर्थात् भगवान का ध्यान श्रद्धा-भक्ति और

अटल विश्वास के साथ जो करें उसके लिए सभी देशकाल पुण्य है, और सभी दान के पात्र हैं, आदि आदि ।—भगवान् कहाँ नहीं हैं; वह तो सर्वत्र हैं । कवि की दृष्टि बहुत उदार है; विषय निरूपण भी सुन्दर है; भामिनी षट्पदी छन्द में इस तत्त्व की धारा निरर्गल बहती चली गयी है । कहीं कहीं कवि ने जो उपमाएँ दी हैं वे भी पाठकों के लिए आकर्षक बनाकर काव्य में सौंदर्य के प्रसाधन बनी हुई हैं । वह कहते हैं भगवद् भक्ति के बदले ऐहिक सुख की आकांक्षा करना राजा बनकर कौड़ी के लिए हाथ पसारने के बराबर है; सुन्दर धेनु के घर पर रहते गोबर की इच्छा करने के समान है; भक्त भगवान् की स्तुति करता है तो वह भगवान् के लिए बच्चों की तोतली बोली के समान और बच्चों की ऐसी तोतली वाणी सुन माँ जैसे खुश होती है वैसे ही भक्तों की वाणी से भगवान् खुश होते हैं । सांसारिक सुख छलनी की छाया है । ऐसी उपमाओं के द्वारा गंभीर और गहन वेदांत तत्त्वों को आसानी से सभी की समझ में आ सके—इस ढंग से बताते हैं । इस दृष्टि से जगन्नाथ दास महान् है ।

जगन्नाथ दास जी की शैली सर्वत्र सुलभ है—ऐसा नहीं समझना चाहिए वह संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे । कई जगह उनकी शैली संस्कृत भूयिष्ठ होकर साधारण पाठकों के लिए दुर्बोध्य भी हो जाती है । इस तरह की क्लिष्ट कृतियाँ उनके "हरिकथामृत सार" से अधिक उनके कीर्तन (पद) साहित्य में मिलेंगी । ऐसी प्रतीति है कि उन्होंने हजारों कीर्तन (पद) रचे हैं, परंतु अब करीब दो सौ मात्र उपलब्ध हैं । और वे प्रकाशित है । इनमें बहुतांश पद भगवान् एवं भगवत के स्त्रोत हैं । अन्य हरिदासों की तरह इन की भी कृतियों में भक्ति और विरक्ति का ताना बाना है, तो भी इनका सा पांडित्य अन्यत्र दुर्लभ है । कभी-कभी तो इनकी कृतियों को (पदों को) पढ़ते समय हमें भ्रम हो जाता है कि ये कृतियाँ कन्नड की है या संस्कृत की एक उदाहरण देखिये—

"दासोहं तव दासोहं तव । दासोहं तव दासोहं ।
वासुदेव विगताघ संघ तव ।। प ।।
जीवांतर्गत जीव नियामक । जीव विलक्षण जीवनद ।
जीवाधारक जीवरूपरा । जीव भव जनक जीवेश्वर तव ।। १ ।।"

इस पद का अर्थ स्पष्ट है । यह तो ऐसा है कि इस पद की शब्दावली में कहीं कन्नड के प्रत्यय तक नहीं है । और एक उदाहरण सुनिये—

"स्वांत ध्वांत निकृंतन कमला । कांत श्रीमदानंत नमो ।
चिंतित फलद मदंतर्यामि दुरंत । शक्ति जयवंत नमो ।।"

अर्थ स्पष्ट है । जब जगन्नाथ दास की ऐसी कृतियों को पढ़ते या सुनते हैं तो हमें इसे कन्नड ही मानना पड़ता है । केवल मानना नहीं स्वीकार करना करना पड़ता है कि यह कन्नड है । कभी-कभी तो ये प्रास प्रिय बन जाते हैं । उनकी प्रास प्रियता का यह उदाहरण देखिये—"पालिसेन्न गोपाल कृष्ण । व्याप्त गुप्त, जगदाप्त, दोष निर्लिप्त, तृप्त, गतसुप्त, सुगुप्त"— यह संस्कृत भूयिष्ठ है तो "श्री वेंकटाचल निवास निन्न । सेकानुसेवकर दास, ऐंनिसि । जीविसुव नरगॆ आयास, याके । श्रीवरने कोडु एनगॆ लेसा ।।"—यह कन्नड है । इन दोनों में रेखांकित अक्षरों को प्रास देखिये । इन दोनों (संस्कृत व कन्नड) में प्रास केवल प्रास के लिए ही न होकर अर्थयुक्त और भावपूर्ण है ।

जगन्नाथ दास के पदों में चिंतन करने के लिए पर्याप्त मात्रा में चिंतन सामग्री है। मनुष्य का जीवन सफल कैसे होगा ? भगवान् से क्या माँगना चाहिए ? इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए बताते हैं, जीवन को सफल बनाना हो तो भगवान् के गुणगणों का चिन्तन करते हुए भजन-ध्यान करना चाहिए। भगवान् से माँगना हो तो यह माँगना चाहिए कि हे भगवान् ! जन्म जन्मांतरों में मधुसूदन का स्मरण एवं भगवद् भक्तों का सत्संग हमेशा बना रहे। मनुष्य को निश्चिन्त होना हो तो अपना समस्त उत्तरदायित्व भगवान् पर छोड़ देना चाहिए। सर्व रक्षक भगवान् की शरण में यों आत्मार्पण जो करें कनकी भगवान् रक्षा करेगा। यों होने पर मनुष्य निर्भय होता है। ऐसे धर्मभागानुसरण करते करते रहने पर भी लोग निंदा करते हैं, यह एक स्वभाव जन्य प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति पर जगन्नाथ दास कहते हैं—"इरबेकु निंदकरु सज्जनरिगें। दुरित राशिगळॆल्ल परिहरिस लोसुगदि"—हमारे पापों का परिहार करने के लिए हमें निन्दा करनेवालों की आवश्यकता होगी, होना भी चाहिए जो भागवत होंगे उन्हें कैसा रहना चाहिए—इस बात का बहुत ही आदर्श चित्र जगन्नाथ दास ने प्रस्तुत किया है। वह बताते हैं कि जो भागवत है वे जहाँ जो देखते हैं उसमें भगवान् का ही दर्शन करते हैं, जो खाते-खिलाते हैं उस सब को यज्ञ मानते हैं, सदा सर्वदा भगवन्नामामृत का ही पान करते हैं, पत्नी-पुत्र आदि समस्त परिवार को भगवान् का सेवक मानते हैं। श्री जगन्नाथ दास के इस तरह के विचारों को जब पढ़ते हैं तो लगता है कि भगवदुपासना की व्याप्ति इनकी कितनी विस्तृत है और विचार कितने उदार हैं। यों उनका सर्व समर्पण भाव भी सराहनीय है। वह सर्वव्यापी भगवान् के विराट्-स्वरूप की पूजा का दिग्दर्शन इन शब्दों से स्पष्ट होता है—"हैमांड मंटपवु भूमंडलवॆ पीठ, सोम-सूर्यरॆ दीप, भूरुहगळु चामरगळति विमल व्योम मंडल छात्र, यामाष्टकगळष्ट दल पद्म—अरितवरिगति सुलभ हरिपूजे।"—याने "हेमांड (ब्रह्मांड) ही मंडप है, भूमंडल ही पीठ (आसन) है, सूर्य-चंद्र ही दीप है, ये पेड़-पौधे ही चामर है, विस्तृत विमल आकाश ही छत्र है, आठों याम (एक दिन और रात मिलकर आठ याम—याम = 3 घंटे) अष्ट दल कमल है—इस तत्त्व को समझनेवाले के लिए हरि की पूजा सुलभ है।" इस तत्त्व को न जाननेवाले के बराबर दुनियाँ में कोई अभागा नहीं। इसी तरह "मळॆय मज्जन, दिग्वळयगळॆवसन, मलयजानिलवॆ श्रीगंधधूप"—अर्थात् "वर्षा जल ही स्नान, दसों दिशाएँ ही वसन (वस्त्र), मलयमारुत ही चंदन का धूप है।" इस महात्मा की दृष्टि में भगवान् की जो भी सृष्टि है वह सब ईश्वरार्पण के ही लिए है और उनको लगता है कि सारी सृष्टि भगवान् की सेवा करने के लिए ही तैयार खड़ी है। ये रूपक भव्य होने के साथ-साथ जगन्नाथ दास की गरिमा को बतानेवाले प्रकाशस्तंभ जैसे हैं।

जगन्नाथ दास ने कीर्तन (पद) और सुळादियों की ही रचना नहीं की बल्कि सामान्य जनता जनता में प्रचलित जनप्रिय छन्द "त्रिपदी" में "तत्त्वसुव्वाली" नामक भक्ति भरे पदों की रचना की है। भगवान् विष्णु की स्तुति में सत्ताईस पदोंवाला (नुडि) "तंत्रसार" नामक एक कृति की भी रचना की है। ये "तत्त्व सुव्वाली" के पद बहुत सरल सुलभ एवं हृदयंगम हैं; "हरि भक्तिसार" में प्रतिपादित गहन तत्त्व यहाँ गेयों के रूप में सामान्य अपढ लोगों तक की समझ में आने लायक रीति में

व्यक्त हुए हैं ।

जगन्नाथ दास को भगवदनुग्रह प्राप्त महात्मा करकर गौरवान्वित किया है। उनके काव्य, कविता आदि उनकी रचनाओं को पढ़ते हैं तो लगता है कि वह इस प्रशस्ति के सर्वथा योग्य हैं। वह रंगोली (चौकपूरने का चूर्ण) में भगवान् की मूर्तियों के सुन्दर चित्र बनाया करते थे, इसलिए इन्हें "रंगोली दास" कहकर भी लोग पुकारते थे। वह भागवतोत्तम बनकर प्रशस्त जीवन बिताकर अपने परिसर में रहने वाले लोगों के जीवन को सुधार कर उनके उत्तम मार्ग दर्शी ही न बने बल्कि अपने शिष्यों के द्वारा दास संप्रदाय को भी प्रगतिशील बनाया; और इस तरह कन्नड साहित्य एवं संस्कृति के इतिहास में अमर कीर्ति पायी। सर्ववंद्य महात्मा बने।

मैसूर के ओडेयर के समय का कन्नड साहित्य

एक सूक्त है—"निराश्रया न शोभन्ते कविता वनिता लता"। वनिता और लता जिस तरह आश्रयहीन होने पर शोभान्वित नहीं होते वैसे ही कवि भी निराश्रित होने पर शोभा संपन्न नहीं हो सकता। लक्ष्मी सास तो सरस्वती बहू। सास-बहू में पटता नहीं। लक्ष्मी की कृपा जहाँ हो वहाँ सरस्वती का कटाक्ष कम होता है। कवि रचना करे और उसे पढ़कर या पढ़वाकर आनंदित हो और कवि से कहें कि तुम काव्य रचना करते जाओ "तुम्हारे खाने कपड़ा आदि की व्यवस्था करूँगा—कहनेवाले लक्ष्मी पुत्र नहीं हो तो कवियों की कृतित्व शक्ति हवा में रखे दीपांकुर की तरह आश्रयहीन हो जाती है। संसार में साहित्य और कला का विकास और उनका संरक्षण एवं संवर्धन राजाओं के अथवा गुरुओं के उदाराश्रय से ही होता आया है। कन्नड साहित्य के विषय में तो यह बात सोलहों आने ठीक है। कन्नड साहित्य का अरुणोदय नृपतुंग राजा ही के कारण उनके समय में हुआ। वह (नृपतुंग) केवल राजा नहीं, कविराज थे। ऐसा लगता है कि एक कवियों की बहुत बड़ी टोली ही उनकी छत्रच्छाया में आश्रय पाकर सुख-समृद्धि के साथ पनप रही थी। पंप युग के सभी कवि राजा के आस्थान के सन्मान्य व्यक्ति थे। इस सम्प्रदाय का विरोध, कन्नड साहित्य में स्वतंत्र युग का प्रवर्तत करनेवाले हरिहर ने किया। इस विरोध की परवाह किसने की? सम्प्रदायशील कवियों ने न तो उनका अनुगमन किया, न उनकी परवाह की। राजाओं के आश्रय में पहले से चली आयी चंपूकाव्य लिखने की परिपाटी आगे बढ़ी। चौदहवीं सदी में विजयनगर की स्थापना हुई, वह "विद्यानगरी" बन गयी। प्रौढदेव राय के समय में उनके दंडनायक लक्कण ने एक सौ एक विरक्तों को सारी सहूलियतें देकर सब तरह का प्रोत्साहन देकर कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि में चार चान्द लगवा दिया। विजयनगर क कृष्णदेवराय ने भी कन्नड कवियों को काफ़ी प्रोत्साहन दिया। सोलहवी सदी में विजयनगर के पतन के बाद दक्षिण में मैसूर राज्य स्थाई रूप से स्थापित हुआ। इस राज्य के राजा लोग कन्नड कवियों के आश्रयदाता बने।

मैसूर राजाओं का इतिहास सत्रहवीं सदी से आरंभ होता है। इसी के साथ-साथ समय के साहित्य का इतिहास भी शुरू होता है। ई० सन्० 1600 में "राज ओडेयर" श्रीरंगपट्टन में अभिषिक्त होकर सिंहासनासीन हुए, और एक स्वतंत्र राजा बने। तिरुमलार्य इनके दंडनायक थे। इन्होंने "कर्णवृत्तांत कथा" को सांगत्य में लिखा। इसमें महाभारत के शाँति पर्व की कर्ण कथा निरूपित है। राज ओडेयर के बाद चामराज ओडेयर (ई० सन्० 1617—1637) सिंहासनासीन हुए। ऐसी प्रतीति है कि इन्होंने "चामराजोक्ति विलास" और "मणिप्रकाश" नामक दो ग्रंथों की रचना की है। "चामराजोक्ति विलास" वाल्मिकी रामायण की गद्य में में लिखित टीका है। कन्नड़ के गद्यरामायणों में यही सर्व प्रथम है। इस ग्रंथ के आरंभ में एक श्लोक है—"लोकानामुपकाराय विरूपाक्षेण धीमता। विदुषा कृतवान् सम्यक् प्रतिज्ञां चामभूपतिः॥" इस श्लोक को देखने पर ऐसा मालूम होता है कि राजा ने विरूपाक्ष

ड़ल नामक एक पंड़ित से इसे लिखवाया होगा। चामराजा का दूसराग्रंथ मणि
ाश है। यह स्कांदपुराणांतर्गत ब्रह्मोत्तर खंड़ का गद्य में कन्नड़ व्याख्या है। काव्य
 दृष्टि से इन दोनों में कोई देखने लायक विमेषता नहीं है।

रामचंद्र नामक एक पंड़ित चामराज के आश्रित थे। उन्होंने शालिहोत्र के
श्वशास्त्र को कन्नड़ में भाषांतर करके प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने इस ग्रंथ के
रे में लिखा है—"यह महाराजा चामराज की कीर्तिपता का है और इसे मैं ने बच्चों
 को समझने में आसान हो—इस तरह लिखा है।" पद्मण पंड़िप भी चामराजा
 आश्रितों में एक हैं; "चामराजीय" के नाम से "हयसार समुच्चय" नामक ग्रंथ की
चना की है। कंदपद्यों के रूप में प्रस्तुत यह ग्रंथ बीस अध्यायों का विशालकाय
ाव्य है। क्षात्र तेज संभवत: सामयिक आवश्यक थी, इसीलिए अश्वलक्षण. और अश्व
ास्त्र संबंधी इस साहित्क का निर्माण उस समय हुआ प्रतीत होता है।

मैसूर के राजाओं में कंठीरवनसराज (ई० सन्० 1638—1659) महापरा-
मी थे; यथा नाम तथा गुण। जैसे उन्होंने अपने राज्य का विस्कार किया वैसे ही
ने आस्थान में अच्छे-अच्छे विद्वानों को जमा कर विद्वानों की गोष्ठी का भी
स्तार किगा था। उनके राजमहल में चित्रशाला, नाट्यशाला आदि की व्यवस्था भी
। कवि, गमकि (भारत आदि काव्यों का अच्छा गायन करनेवाले), वाद करने में
ुर, वाग्मी आदि आदि अपने-अपने विषय के निष्णात पंड़ितों को आश्रय कंठीरव
सराज ने दिया था। इन राजाश्रित कवियों में एक भास्कर कवि थे जिन्होंने
हार-गणित" (व्यवहार गणित) लिखा। इनका कथन है कि अपनी कविता-शक्ति
ं गणित शास्त्र-परिणति—दोनों का प्रदर्शन करने के लिए इस ग्रंथ की रचना की
। राजा ने इन्हें "सरस और सत्कविवल्लभ" कहकर गौरवान्वित भी किया था।
 कृति में कविता शक्ति के प्रदर्शन के लिए कोई विशेष अवकाश नहीं; हाँ, उनकी
स्त्र-परिणति सराहनीय अवश्य है। इन्हीं राजा कंठीरव नरसराज ओड़ॅयर के
श्रित एक और कवि गोविंद वैद्य ने "कंठीरव नरसराज विजय" नामक काव्य को
गत्य में लिखा। कहा जाता है कि इसे उन्होंने राजा ने दलपति नंजराजेन्द्र की
णा से लिखा। इस काव्य को भारती नंजराज ने राजा के आस्थान में पढ़ा। कवि
अपने को वेदाध्ययन संपन्न बतलाया है, और अपने को छन्द, गण, लक्ष्य, लक्षण
दि के अच्छे ज्ञाता भी कहा है। अपने काव्य के संबंध में यों कहा है—"यह मेरा
व्य नव युवती के आलिंगन के जैसे आनंददायक, शक्कर मिश्रित औंटाये हुए दूध की
ह पाठको और श्रोताओं के लिए आनंद देनेवाला है।" उनके काव्य को "नरस्तुति"
ुकर निंद न करें, इसलिए वे कहते हैं—"ना विष्णु: पृथिवी पति:—कहकर वेद
दि शास्त्र कह रहे हैं; —यह कंठीरव नरसराज साक्षात् नरसिंह का अवतार है,
लेयुग के दानओं, का दमन करने के लिए ही मानव रूप में अवतरित हुए हैं; ऐसा
ामहिम है यह राजा; ऐसे सच्चरित्र, महापराक्रमी और धर्मात्मा का चरित्र सब के
ए मंगल कर हो—इस उद्देश्य से इस कृति की रचना की गयी है; अत: कोई इसे
स्तुति करकर निंदा न करें।"—इस तरह कहकर काव्य का आरंभ करते हैं।
व्य सहज वर्णना भाग को छोड़ दें तो यह ग्रंथ केवल एक इतिहास मात्र है। इसमें
ीरव नरसराज के दिग्विजय की परंपरा का दिग्दर्शन है। इसमें जो युद्धवर्णन है

वह बहुत ही सहज है। युद्ध पद्धति, व्यूह रचना, युद्धोचित शरीर त्राण, आयुध प्रयोग —आदि आदि विषयों का सांगोपांग वर्णन इसमें है। वीररस प्रधान इस काव्य में कवि ने "मदन मोहिनी" के प्रसंग को लाकर शृंगार निरूपण के लिए "मदन मोहिनी" की कल्पना करके एक सुन्दर प्रसंग की उद्‌भावना की है। यह प्रसंग इस काव्य के लिए अप्रासंगिक होने पर भी मनोहर है। मदन मोहिनी एक सुन्दर वेश्या है। उसका विचार है कि कंठीरव उसके सौन्दर्य के अनुरूप हैं और उसे प्राप्त करने के लिए चित्र-लेखा से पूछकर उन्हें (कंठीरव राजा को) अपनी सखी की सहायता से प्राप्त कर, खुश हुई—यही इस प्रसंग की कथा का सार है। यह कथा दो संधियों में फैली हुई है, यह कथा अप्रासंगिक होकर इसमें औचित्य का लोप अवश्य हुआ है। मगर हृदयंगम अवश्य है। कवि की शैली सरल, कथा की धारा सुललित होकर बह चली है। श्रीरंगपट्टण का वर्णन बहुत सुन्दर है। इस वर्णन से उस समय का जन जीवन स्पष्ट मालूम होता है। संभवत: उस काल में बहुत से उर्दू शब्दों का विशेष प्रयोग कन्नड में चल पड़ा था—ऐसा प्रतीत होता है। कवि ने बिना हिचक के अपनी कृति में उर्दू शब्दों का खूब प्रयोग किया है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं उर्दू में ही पद्य लिख डाला है।

आज कन्नड में अनेक उर्दू शब्द जो घुल-मिल कर कन्नड के ही बन गये हैं। इस तरह के उर्दु कन्नड, मिलाप का इतिहास इस कृति को पढ़ने पर थोड़ा बहुत मालूम होता है।

चिक्क देवराज ओड़यर—(ई० सन्० 1672—1704) का राज्यकाल मैसूर के इतिहास में एक स्वर्णयुग है। इनके समय के साहित्य के इतिहास का भी यह स्वर्ण-युग है। चिक्क देवराज ने अपने बाहुबल से मैसूर राज्य को अभूतपूर्व ढंग से विस्तृत बनाया और अप्रतिम वीर कहलाये। राज्य व्यवस्था पर ध्यान देकर प्रजा हित की ओर विशेष ख्याल रखा। प्रभूत धन कमा कर "नव कोटि नारायण" कहलाये। इनकी कीर्ति देहली तक पहुँची। उस समय देहली में औरंगजेब बादशाह थे। उन्होंने "राजा जगदेव" की खिताब देकर गौरवान्वित किया। इनके मित्र बने। राजकीय दृष्टि से उन्नत पद और कीर्ति पाने के साथ-साथ ये बहुत बड़े भक्त भी थे। मेलुकोटा के नारायण भगवान् पर इनकी अपार भक्ति थी। "चिक्क देवराज बिन्नप · चिक्क देवराज का विनय" के नाम से अपने इष्टदेह के प्रति विनय के तीस पद लिखे हैं। संगीत और साहित्य दोनों पर राजा का अपार प्रेम था। स्वयं संगीतज्ञ थे और साहित्य रसिक भी थे। राजा अपनी इस संगीत-साहित्य की अभिरुचि के कारण "रसिकजन कर्ण रसायनीकृत संगीत विस्तरं" "साहित्य विद्यानिकष प्रस्तरं"—की बिरुदावली से विभूषित थे। यदि राजा वीणावादन करते तो उसकी झंकार कस्तुरी के सुवास की तरह फैल जाती। साहित्य संसार में भी राजा की कीर्ति चिरस्थायी है। उन्होंने संस्कृत में "यदुगिरि नारायण स्तव" और "सत् शूद्राचार निर्णय" तथा कन्नड में "चिक्क देवराज बिन्नप", गीत गोपाल", "भारत", "भागवत" और "शेषधर्म" इन ग्रंथों की रचना की ऐसी प्रतीति है। ऐसा लगता है कि इनमें कुछ इनकी कृतियाँ नहीं। इन राजा ने ग्रंथ रचना की हो या न हो, अथवा दूसरों ने रचकर इनके नाम से प्रकट किया हो, इतना तो निश्चित है कि राजाश्रत में तिरुम-लार्य, सिंगार्य, चिक्कुपाध्याय, शृंगारम्म, हॉन्नम्मा, वेणु गोपाल वरप्रसाद, तिम्मकवि,

मल्लिकार्जुन, चिदानंद कवि मल्लरस—आदि कवि आस्थान में रहे। एक साथ इतने कवि एकत्र होकर अमित काव्य रचना कर कन्नड साहित्य की पुष्टि तुष्टि में चार चाँद लगा दिये। इस चिक्क देवराजा का नाम साहित्य के इतिहास में अजर अमर है।

चिक्क देवराज बिन्नप—इस कृति के तीस विनय के पद भी विशिष्ट द्वैत मत तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। गद्यरूप में लिखित इस विनय के प्रत्येक विनय के साथ एक कंद (कन्नड का एक छंद) पद्य है। यह विनय भगवान् से इस कारण से की है कि भगवान् राज्य की सब प्रजा को परमगति प्राप्त करने की योग्यता दें। क्योंकि स्वयं राजा ने लौकिक सुख-समृद्धि की सारी व्यवस्था की है, लौकिक आवश्यकताओं से जब प्रजा निश्चित है, तब अच्छे धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक जीवन व्यतीत कर पारलौकिक जीवन के सुख का सामान जुटावें—इसलिए यह राजा का अपनी प्रजा के लिए यह विनय है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा ही है कि जो भक्ति के साथ एकनिष्ठ विश्वास रखें, चाहे वह किसी भी जाति या कुल में जन्मा हो अथवा महा-पापी ही क्यों न हो, तो उसका उद्धार करूँगा। भगवान् के इस वचन को चरितार्थ करना हो तो भगवान् के प्रति एक निष्ठ भक्ति तथा उनके सर्व संरक्षकत्व में अटल विश्वास होना चाहिए। इसलिए लोगों को, इस तत्त्व को समझाने के लिए साधारण से साधारण व्यतित भी समझ सके—इस उद्देश्य से इस "बिन्नप" को लिखा है—इस तरह कवि अपनी कृति के विषय में स्वयं कहते हैं। उन्होंने जैसी भाषा का प्रयोग किया है वह भले ही उनके उद्देश्य के अनुकूल हो या न हो कवि का आदर्श सराहनीय अवश्य है। इन विनय के पदों को पढ़ने के पश्चात् यह स्पष्ट बोध होता है कि कवि निष्कल्मषः मन के सरल-स्वभाव वाले उत्तम कोटी के भक्त हैं। इन विनय के पदों (बिन्नपों) का कन्नड साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है।

चिक्कदेवराज का भारत, भागवत, शेषधर्म—ये संस्कृत के ग्रंथों का कन्नड भाषांतर है और गद्य ग्रंथ हैं। कवि का भारत शाँतिपर्व के बाद से ही शुरू होता है। संभवतः वह दार्शनिक विषय सम्बन्धी होने के कारण से शाँतिपर्व के भाग को ही अनुवाद के लिए चुना है।

चिक्कदेवराज के कहे जानेवाले ग्रंथों में "गीत गोपाल" अत्यंत प्रसिद्ध है। यह जयदेव कवि के "गीत गोविन्द" की तरह कीर्तन के रूप में है। इसमें दो भाग हैं। एक एक भाग में सात खंद, और प्रत्येक खंड में सात कीर्तन (पन) हैं। इसलिए यह 'सप्तपदी' है। प्रत्येक सप्तपदी के आरंभ में उसमें जो विषय वर्णित है वह गद्य में कहा गया है। कवि का विश्वास है कि परमगति प्राप्त करने के लिए हरिकीर्तन (हरिगुणगान) ही एक मात्र सहारा है। इसलिए कवि कहते हैं—

"पालं बय़सिद रोगिगॆ
पालिन्दौषधमनीव वैद्यन तॆरदिं
दी लोगरॊल्व गीतद
मूलदॊळे मुक्तिगतिय मॊगदोरिसिदं"—

अर्थात् "दूध की इच्छा करने वाले रोगी को दूध में ही मिलाकर दवा देनेवाले वैद्य की तरह संगीत के प्रेमी लोगों के लिए संगीत के ही द्वारा मुक्तिमार्ग दिखाया!"—ठीक

ही तो है। संगीत किसे पसंद नहीं, प्रत्येक मनुष्य अपने ढंग से गाता गुनगुनाता है ही। इस गीत-गोपाल के पद भक्तिभाव से भरे, चित्ताकर्षक एवं आत्मतोष देनेवाले हैं, अवश्य। सप्तम सप्तपदी में कवि ने भगवान् के दिव्यमंगलरूप का वर्णन करते हुए यों गाया है—

यरकुल कांबोधिराग और झंप ताल :

"कंगॉळिसविरलारॆं कण्ण पुण्यद बॅळस। कंगॉळिसदिरलारॆनॆं
पॉङगॉळल नुडिसुतिळिहॉत्तिनॉळु पुरवीधि। सिंगरिसि मॆरॆव
हरिय सिरिय॥ प॥
क्रमदि नडु तोळ्मुडिगळन्दिनिसु कॉङि्कनॉळु कमनीय वॅन्दॆंनिसि
मॆरॆयॆं।
समतळदि निन्दडिय मुंदॆं मत्तॊन्दडिय सचियुंगुटवनूरि।
रमणीय रेखेयॊळु निंदु कॉळलुलिगॊळुव राय गोवळन तोरॆ। नीरॆ॥१॥
कळॆवॆं त्तकत्तुरिय वीणॆयॊडनॊडनुण्मि कविव तनिगंपिनंतॆं।
बळॆव तानद गमकगतिय मैसिरिगॆं मॉग बगॆबगॆबव भाववडॆयॆं।
कॉळलिगिन्दुटिय सविदोरियॊळदनिगॊळुव! कॉनवु गोवळन तोरे,
नीरे॥२॥

भावार्थ—"आँखें के पुण्य फल का वर्णन कैसे करूँ? शाम के समय मृदु-मनोहर मुरली बजाते हुए शहर के राजमार्गों से होकर जानेवाले प्यारे कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन कैसे करूँ? मुरली बजानेवाले उस सुन्दर मूर्ति के खड़े होने की भंगिमा का कैसा रूप है? मुरलीनाद से और सुन्दर भंगिमा में खड़े हुए मोहन की उस मूर्ति को मुझे भी दिखाओ तो।···आदि आदि।" इस तरह प्यारे कृष्ण की मनोहर मूर्ति का चित्र प्रस्तुत करनेवाले इस पद्य में केवल चित्र मात्र नहीं संगीत का भी माधुर्य भरा हुआ है।

चिक्कदेवराज के आस्थान कवि तिरुमलार्य ने "गीत गोपाल" और "बिन्नप (विनाय के पद)" इन दोनों की रचना की—ऐसा कहने के लिए कई कारण हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अपने अन्नदाता के प्रति भक्ति, प्रेम और कृतज्ञता प्रदर्शित करने के विचार ने इन कृतियों के निर्माण करने की प्रेरणा तिरुमलार्य को दी होगी। कवि तिरुमलार्य की "अप्रतिमवीर चरित", "चिक्कदेवरायविजय"—इन कृतियों में "बिन्नप (विनय)" और "गीतगोपाल" के भी पद्य हैं और इन कृतियों में जो चिक्कदेव राय की प्रशंसा है वह स्वयं कृत अपनी प्रशंसा नहीं हो सकती हैं—क्योंकि कोई अपनी प्रशंसा आप नहीं करते—इस कारण से भी इन कृतियों के कर्ता तिरुमलार्य ही हो सकते चाहे कृतियाँ किसी की भी हो वे प्रशंसनीय अवश्य हैं।

अब चिक्कदेवराज के आश्रय में जो कवि रहे उनके बारे में भी कुछ विचार करें।

तिरुमलार्य : चिक्क देवराज के आस्थान कवियों में सुप्रसिद्ध व्यक्ति यह तिरुमलार्य थे। इनके पिता का नाम अलसिंगार्य थे और यह चिक्क देवराज के पिता दोड्ड देवराज के यहाँ पुराण श्रवण कराते थे तथा इस कला के प्रकांड पंडित थे। इनकी माता सिंगारम्मा थीं जिन्होंने "कर्णवृत्तांत कथा" को लिखा है और यह प्रधान तिरुमलार्य की पुत्री है। इनके ज्येष्ठ पुत्र होकर तिरुमलार्य पैदा हुए। बचपन के चिक्क

देवराज के सहाध्यायी, मित्र और मित्र के आस्थान पंडित और अंत में मंत्री होकर यशस्वी हुए। राजा और तिरुमलार्य में घनिष्ठ प्रेम रहा प्रतीत होता है। उन्होंने अपनी कृति में राजा का जो वर्णन किया है उससे ही यह बात स्पष्ट होती है। इस वर्णन से महाकवि पंप और उनके राजा अरिकेसरी की याद हो आती है। पंप ने अपने आश्रयदाता राजा अरिकेसरी को अपने काव्य का नायक बनाया है; तिरुमलार्य ने अपने राजा के विषय में काव्य ही नहीं रचा बल्कि अपने दो श्रेष्ठ काव्यों को राजा के ही नाम से प्रकाशित किया।

निरुमलार्य ने "चिक्क देवराज विजय" "चिक्क देवराज वंशावली" "चिक्क देवराज शतक"—इन काव्यों और "अप्रतिमवीर चरित" नामक एक अलंकार ग्रंथ लिखा है। इनमें "चिक्क देवराज शतक" अब उपलब्ध नहीं है। कवि का "अप्रतिम वीर चरित" संस्कृत के अलंकार ग्रंथ "चन्द्रलोक, काव्य प्रकाश" आदि का अनुसरण है और चार प्रकरणोंवाला एक लक्षण ग्रंथ है। संस्कृत के सूत्रों का कन्नड में वृत्ति लिखकर अपने खुद की रचनाओं के द्वारा उदाहरण प्रस्तुत किया है। ये सारे उदाहरण चिक्क देवराज के स्तुतिपरक पद्य हैं। चिक्क देवराज "अप्रतिक वीर', बिरद-भूषित थे। उनकी स्तुति होने के कारण इस कृति का नाम "अप्रतिमवीर चरित" है। सांप्रदायिकता का अनुसरण इस ग्रंथ में लक्षित होता है; ऐसा कोई कहने लायक महत्त्व इसमें गोचर नहीं होता। काव्य के प्राण "रस और ध्वनि" का भी अभाव है यहाँ।

तिरुपलार्य का "चिक्क देवराज विजय" एक चंपग्रंथ है। इसमें चिक्क देवाराज की जीवनी है। इसमें यत्रतत्र त्रिपदी छंद, सांगत्य एवं गीत भी है। इस चिक्क देवराज के पहले जो मैसूर के राजा हुए उनके इतिहास का काव्यमय वर्णन करके बाद को चिक्क के देवराज के बाल्य, विद्याभ्यास, संगीत कला नैपुण्य आदि आदि का मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इस राजा का राज्य-विस्तरण, वैभवपूर्ण राज्य पालन आदि आदि बातों का विवरण इसमें नहीं है; अतः यह कुछ असंपूर्ण-सा लगता है। कवि ने अपने स्वामी का वर्णन बड़ी भक्ति एवं श्रद्धा के साथ किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह काव्य कुछ मूल्य रखता है। और काव्य की दृष्टि से भी यह एक अनमोल कृति अवश्य है। कवि ने कवि-स्वातंत्र्य के विषय में कहा है—"कब्बिगर नामघटित घटना नूतन ब्रह्मरुते ?"—याने कवि लोग अघघटित घटना समर्थ नूतन ब्रह्मा के समान है। अपनी इस कृति में इस उक्ति को कुछ हद तक चरितार्थ किया है। "चिक्क देवराज विजय" में ऐसी कोई सुन्दर कथा नहीं है। शैली में भी प्रसाद गुण की कमी है। वर्णनावैखरी प्रशंसनीय है। चिक्क देवराज के वीणावादन की प्रशंसा ऐसे सुन्दर एवं प्रभावशाली शब्दों में किया है, मानो पाठक के सामने बैठकर राजा स्वयं वीणा बजा रहा हो—ऐसा लगता है। राजा के इस वीणावादन की ध्वनि से पशु, पक्षी और पेड़ पौधों तक नाद-मोहित होकर तन्मयता से खड़े हो गये हैं—यह है उनकी वीणा की माधुरी। इस तरह के काव्यमय वर्णन मुक्तभोगी से ही संभव है। रत्नाकरवर्णि को छोड़ अन्य किसी कवि ने संगीत का इतना सुन्दर वर्णन नहीं किया है। प्रकृति वर्णन में भी कवि ने अपने अनुपम सामर्थ्य का और विशिष्टता का प्रदर्शन किया है। कवि का चन्द्रोदय वर्णन सुनिये—वे कहते हैं "संध्याराग कामदेव की सेना के पदाघात से उत्पन्न लाल धूलि के समान है, उस सेना शस्त्रास्त्रों से निकले धूम जैसे है वह अंधेरा,

आसमान के तारे फुल झड़ियों से निकले फूल जैसे हैं,—इन सभी से भीतर न होकर निर्भय छाती तानकर खड़ी युवतियों की छाती पर बन्दूक से निकली गोली की तरह है यह चन्द्रबिंब।"—कवि की कल्पना तो देखिये। और कहते हैं कि "कामदेव विजय यात्रा के लिए निकालते वक्त प्राची दिगंगना आरती उतारकर लगायी टीका की तरह लग रहा है यह चन्द्रबिंब। यह चन्द्र ऐसा लगता है मानो त्रिविक्रम के पैर के अंगूठे से कटकर उड़ा हुआ नाखून जाकर आसमान में अटक गया हो। इसी तरह कवि का चन्द्रिका-वर्णन भी बड़ा रोचक है। कुल मिलाकर यह "चिक्क देवराज विजल" सुन्दर काव्यांशों से सजकर मनोहर वर्णना प्रधान काव्य है।

"चिक्क देवराज वंशावली" मैसूर के राजवंश के इतिहास से युक्त "हळॅगन्नड" (प्राचीन कन्नड) का एक गद्य ग्रंथ है। राजओडेयर से लेकर चिक्क देवराज ओडेयर तक के राजाओं का इतिहास इसमें वर्णित है। कन्नड में गद्य साहित्य का बिलकुल अभाव रहा। हळॅगन्नड में तो उस समय गद्य शशविषाण ही था। प्राचीन कन्नड भाषा का यह सुन्दर गद्यकाव्य स्वागतार्ह है। मैसूर के इतिहास को काव्यवस्तु बनाने पर भी यह शुद्ध इतिहास तो नहीं है। तिरुमलार्य कवि थे, इतिहासकार नहीं। ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति का अनुशीलन करना उचित नहीं। कवि ने उस इतिहास में जिस काव्य को देखा उसे उज्ज्वल बनाकर काव्य का निर्माण किया है। यह काव्य भी संपूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है। चिक्क देवराज की जैत्रयात्रा के प्रसंग में यह काव्य शास्त्रार्थ में ही रुक है। जो कुछ उपलब्ध है उतने में राजा के प्रति कवि की आदर-बुद्धि, राजवंश के प्रति प्रेम, गौरव आदि भाव बहुत ही स्पष्ट रूप से वर्णित है। कवि ने अपने राजा प्रभु को एक आदर्श राजा के रूप में चित्रित करने में अपनी निपुणता दिखायी है। बहुत हद तक अपने आदर्श को निभाने में सफल भी हुए हैं। इस समूचे ग्रंथ को पढ़ने पर लगता है कि कवि की प्रामाण्य बुद्धि पर परदा पड़ा-सा मालूम पड़ता है, क्योंकि अपने राजा के पिता दोड्ड देवराजा के इतिहास को बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करके ऐतिहासिक दृष्टि से भी अद्वितीय पराक्रमी के रूप में प्रसिद्ध कंठीरव के जीवन वृत्तांत को बिल्कुल छोटा बनाना कवि के लिय उचित नहीं मालूस पड़ता है। इतना ही नहीं कभी-कभी लगता है कि यह वर्णना भाग कुछ ज्यादा है। गया है। प्रत्येक वर्णनांश को पृथक् कर देखने पर वह सहज लगता है और समुचित शब्दयोजना सुन्दर भी लगती है। तिरुमलार्य कन्नड और संस्कृत में अद्वितीय पंडित थे, सरस कवि भी उनकी शैली, शब्दयोजना आदि संतुलित होकर भरी और गंभीर रूप से बहने वाली महान दी की तरह रमणीय है। उनका भक्तिभाव काव्य में ऐसा घुलामिला है जैसे दूध और शक्कर। अपने आराध्य दैव का नखशिखांत वर्णन कवि ने बड़ी तन्मयता से किया है और पाठकों को भी उसमें तल्लीन कर देता है। इनका यह गद्यकाव्य "गद्य कवीनां निकषं वदंति"—सूक्ति के लिए एक उदाहरण जैसा है। कन्नड के गद्य साहित्य में इसके लिए एक प्रमुख स्थान है।

चिक्कुपाध्याय : त्रिकदंबपुर या तेरकणांबि के निवासी पंडित रंगाचार्य के जुड़वें बच्चों में एक लक्ष्मीपति था। इस रंगाचार्य की पत्नी का नाम नाच्यारम्मा था और यह एक श्रीवैष्णव परिवार है। इन्हीं दंपती की संतान थे। यह लक्ष्मीपति जो चिक्कुपाध्याय के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह चिक्क देवराजा के करणिक (कारिंदा) थे

और बाद को मंत्री बने। इन्होंने अट्ठाईस से भी अधिक ग्रंथों की रचना की है। कहा जाता है कि यह चिक्क देवराजा के अध्यापक रहे। इसीलिए इनका नाम चिक्क-पाध्याय के नाम से प्रसिद्ध है। इनके कथन से ही विदित होता है कि यह बड़े संपन्न थे और यह लोगों के प्रेमभाजन बने थे। इनके प्रति लोगों का परम आदर था। इनकी दो पत्नियाँ थीं। इनके ग्रंथों की प्रस्तावना में इन्होंने मैसूर के राजवंश के विषय में सुदीर्घ उल्लेख किया है। मैसूर के राजवंश के इतिहास को लिखने वालों के लिए इनकी कृतियों से बहुत मदद मिल सकती है।

ऐसा लगता है कि चिक्कुपाध्याय के बराबर इतने ग्रंथों को रचना अन्य किसी ने नहीं की। इनकी कृतियों में कुछ बृहदाकार ग्रंथ हैं। महत्त्व की दृष्टि से चाहे जैसे भी हो, आकार प्रकार को देखने पर हम में इनके प्रति आदर बुद्धि स्वयं उपजती है। इनकी कृतियों में "कमलाचल माहात्म्य, हस्तगिरि माहात्म्य, यादवगिरि माहात्म्य, पश्चिम रंग माहात्म्य, वेंकटगिरि का माहात्म्य, यदुगिरि महात्म्य, श्रीरंगमाहात्म्य"—ये रंग स्थल माहात्म्य निरूपण करने वाले हैं। कमलाचल माहात्म्य, हिमवद्गोपाल स्वामि-पर्वत के माहात्म्य का करीब 3750 पद्यों में वर्णन है; और यह चंपू काव्य है। हस्तगिरि माहात्म्य काँची का महत्व बताने वाला करीब 1200 पद्यों का चंपू ग्रंथ है। कमलाचल माहात्म्य में कवि ने कहा है कि यह काव्य ताजा और औंटाया हुआ मलाईदार दूध जैसा स्वादिष्ट, भरे पूरे नवयौवना सुन्दर युवती के समागम तुल्य आनन्ददायक है; और हस्तगिरि माहात्म्य के विषय में बताया है—कि यह काव्य मधुकर करस्पर्श निर्मुक्त सुमलता की तरह, नवयुवा कन्या के जैसे, औटाये मीठे दूध का-सा उज्ज्वल तथा सरल सुन्दर है। कवि के यादवगिरि माहात्म्य करीब 1200 पद्यों का और पश्चिम रंगमाहाम्य करीब 320 पद्यों का—ये दोनों सांगत्य में हैं। शेष तीन माहात्म्य ग्रंथ पद्य में हैं। इन माहात्म्य ग्रंथों के अलावा एकादशी व्रत के माहात्म्य का बयान करने वाला 22९6 पद्यों का "रुक्मांगद चरित" 6255 पद्यों का विष्णुपुराण जो संस्कृत का अनुवाद है, 828 गद्य व पद्यों का "दिव्य सूरि चरित" जो बारह विष्णुभक्त आल्वारों की कथा है, "सात्विक ब्रह्मविद्याविलास" नामक प्रश्नोत्तर रूप विशिष्टा द्वैत प्रमाणग्रंथ जो 9 आश्वासों का है, (इसी नाम के संस्कृत ग्रंथ का कन्नड अनुवाद), "अर्थ पंचक" नामक तमिलग्रंथ का कन्नड अनुवाद चंपू काव्य बंध में प्रस्तुत किया है। इस अर्थ पंचक नामक तमिल ग्रंथ में स्वस्वरूप, पर-स्वरूप, उपाय स्वरूप, पुरुषार्थ स्वरूप, विरोधी स्वरूप नामक पाँच विषय वर्णित हैं। इस तरह पाँच बृहत्काय ग्रंथों की भी रचना की है। विष्णु पुराण को चंपू काव्यबंध में लिखा तो सही, इससे संतुष्ट न होकर उसी को गद्य में लिखा है। हरिवंश के अश्व-मेध पर्वांतर्गत "शेषधर्म" का 25 अध्यायों में कन्नड गद्य रूप में प्रस्तुत किया है। "कामंदकनीति" "तिरुवाय्मोळ"—इनकी कन्नड में टीका लिखी है। संस्कृत के कन्नड में अनुवादित "कामंदक" नीति का एक दूसरा नाम "उपाध्याय निरपेक्षा" भी है। "तिरुवाय् मोळि" की टीका नम्माळ्वार के नाम से प्रसिद्ध शठकोपयोगी की कृति का कन्नड भाषांतर हैं। संस्कृत की "शुकसप्तति" नामक ग्रंथ का कन्नड अनुवाद है जो सात हजार गद्य खंडों में फैली हुई विशालकाय कृति है। ऐसा लगता है कि मदन मोहिनी की कथा को सांगत्य में इन्होंने लिखा है। श्रीरंगपट्टण के रंगनाथ भगवान्

की स्तुति में "रंगधाम स्तुति सांगत्य", "पश्चिम रंग सांगत्य", "रंगधाम पुरुष विरह सांगत्य", "रंगधाम नीति शतक सांगत्य", "रंगनायक रंगनायकी स्तुति सांगत्य", आदि आदि स्तोत्र ग्रंथों के अलावा "श्रृंगार शतक सांगत्य", "चित्रशतक सांगत्य", "अक्षर मालिका सांगत्य"—नायक तीन सांगत्य ग्रंथों का भी निर्माण इस कवि ने किया है। इन में से प्रथम श्रृंगारशतक सांगत्य में श्रीकृष्ण के सुन्दर रूप को देखकर आनन्दित रमणियों के सरस सल्लापों का वर्णन है। दूसरे चित्रशतक सांगत्य के कन्नड भाषा की चतुरोक्तियाँ हैं। तीसरे अक्षर मालिका सांगत्य में "क" कार से "क्ष" कार तक के वर्णों और उनके क्रमशः बारह कड़ियों से आरंभ होने वाले पद्यों में भगवान् नारायण की स्तुति है। "रंगनाथ स्वामी श्रृंगार सूत्रोदाहृण" नामक एक ग्रंथ भी इस कवि ने लिखा है जो श्रृंगारविषायिक सूत्रों वाले कंद पद्यों का काव्य है। चिक्क देवराजा के स्तुतिपरक कुछ गेयपद भी इनके नाम से प्रचलित हैं। "वैद्यामृत टीका", "तत्त्वत्रय", "अमरुशतक" ये तीन इस कवि की अनुपलब्ध कृतियाँ हैं।

चिक्कुपाध्याय ने जो साहित्य सृजन किया है वह विपुल ही नहीं विविधता से भी पूर्ण है। माहात्म्य, स्तोत्र, पुराण शास्त्र, स्तोत्र आदि विविध विषय जैसे कृतियों में वैविध्य ला देते हैं, वैसे ही चंपू, सांगत्य, कंद, गेय, गद्य आदि साहित्य की विधाओं में भी वैविध्य है। इतना ही नहीं, इनके चंपू काव्यों की भाषा संस्कृत भूयिष्ठ है तो सांगत्यों की भाषा शुद्ध सरल कन्नड है। इनका गद्य भी सुन्दर है। इन सभी में दिखने वाला एक साधारण विषय धर्म का निरूपण है। इनके ग्रंथों में कुछ ग्रंथ चिक्क देवराज स्तुति, वंशावली, विजय परंपरा आदि से आरंभ होते हैं। ऐसा लगता है कि कवि ने राजा के आदेश के अनुसार काव्य रचना की है। श्रीवैष्णव धर्म के अनुयायी श्रीवैष्णव धर्माभिमानी थे चिक्क देवराजा। उनकी मदद एवं प्रोत्साहन से वैष्णव धर्म सम्बन्धी ग्रंथ विपुलमात्र में लिखे गये और पर्याप्त मात्रा में इनमें धर्म-प्रसार कार्य में सहायता भी मिली होगी ऐसा प्रतीत होता है।

अन्य सभी कवियों की तरह चिक्कुपाध्याय भी अपनी कविता शक्ति की प्रशंसा खुद करने में पीछे नहीं है। विपुल ग्रंथराशि का निर्माण इन्होंने किया है; अतः एक ग्रंथ में जो वक्तव्य दिया है वही प्राकारांतर से दूसरे ग्रंथ में भी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस तरह के अपने काव्य के विषय में कथित वक्तव्य केवल सांप्रदायिक हैं; ये सर्वथा सत्य माने नहीं जा सकते। उनके काव्यवाहिनी का पात्र काफी विस्तृत है, यह ठीक है। मगर उसमें प्रवाहित होने वाला प्रवाह वर्षाकाल के प्रवाह की तरह है; न कि जीव नदी का-सा गहन-गंभीर नहीं। उनकी प्रतिभा और कल्पना कोई विहंगम विहारी नहीं। कवि पद्य रचना की कला में निपुण अवश्य है। परन्तु उनकी कविता को सांप्रदायिक चौखटे के ही सहारे स्थित होना है। प्रतिभापूर्ण नवीनता की अपेक्षा कवि समयाश्रित चातुर्य ही यहाँ अधिक है। उनके वर्षाकाल का यह वर्णन सुनिये—

"वारुतर हंस गमनके। भेरिखं केकीनाट्य ढक्कानिनदं;
नीरदनृपाल धनवा। धारावं मौळगितोउर्नें मेघध्वानं॥

अर्थात्—"मेघनिनद् हंसगति के अनुकूल भेरी नाद है, मयूर नर्तन के लिए अनुगुण ढक्कानाद-सा है।"—कवि के "हस्तगिरि माहात्म्य" में कन्नड देश का वर्णन

बहुत ही मनोहर है। कन्नड प्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य की एवं यहाँ की भाषा की समृद्धता की पूर्ण हृदय से प्रशंसा इस तरह से की है कि पाठकों के हृदयों पर एक स्थाई प्रभाव अमिट होकर अंकित हो जाता हैं। कन्नड भाषा की शब्द संपत्ति पर आश्चर्यजनक अधिकार तथा शब्द शक्ति को पहचान कर प्रयोग करने की प्रतिभा आश्चर्यजन है।

कवि के चंपू ग्रंथों में "रुम्मांगद चरित" अत्यंत उत्तम है। "दिव्यसूरि चरित" में भक्ति का स्रोत बहाने के लिए पर्याप्त मात्रा में अवकाश रहने पर भी पता नहीं क्योंकि कवि का भावावेश मौन है। इसकी महत्ता केवल इतनी है कि यह तमिल से कन्नड में अनूदित है। कवि ने रुक्मांगद चरित में दो एक सरस सन्निवेशों का उद्भाव करके पाठकों के हृदयों को आर्कषित कर दिया है। राजा रुक्मांगद के सभी प्रजाजन एकादशी व्रत का आचरण करके पुण्यशाली बन रहे हैं, इससे यमराज की शिकायत है, क्योंकि उन्हें कोई काम नहीं। इस कारण से यमराज ब्रह्मा के पास जाकर शिकायत करते हैं। अपने दुख की रामकहानी सुनाता है। तब ब्रह्मा मोहिनी का सृजन करके रुक्मांगद का व्रत भंग करने के लिए भेजता है। वह हिमालय की उपत्यका में गाती-नाचती रहती है। रुक्मांगद उसके सौंदर्य पर मोहित होता है और उसे अपनी पत्नी बना लेता है। वह व्रतभंग करने के लिए प्रयत्न करती है और राजा रुक्मांगद को एक बड़े धर्मसंकट में डाल देती हैं। यदि व्रताचरण को बन्द न करें तो अपने पुत्र का वध स्वयं को करना पड़ता है। राजा अपने बेटे धर्मांगद को गोद में लिटाकर उसे मारने के लिए उद्यु्क्त होता है। तब महाविष्णु प्रत्यक्ष होकर सभी को बैंकुंठ लोक में ले जाते हैं। यहाँ के धर्मांगद का चित्र सजीव है। रुक्मांगद का धर्मसंकट भी काफी प्रभावशाली है।

चिक्कुपाध्याय में कन्नड के पूर्व कवियों में अकेले रुद्रभट्ट का स्मरण किया है। परन्तु पंपयुग के सभी कवियों की कृतियों का आमूलाग्र परिचय प्राप्त कर कवि षडक्षरी का भी अच्छा अध्ययन किया है—ऐसा लगता है। पुराने कवियों के भावों को ग्रहण कवि ने अच्छी तरह से अपनी कृतियों में समाविष्ट किया है—यह स्पष्ट है। उनके रुक्मांगद चरित की मोहिनी "कर्नाटक कादंबरी" कीमहाश्वेता से मिलती-जुलती है। विष्णुपुराण के कुछ पद्यों के लिए रुद्रभद्र का 'जगन्नाथ विजय' षडक्षरी का 'राजशेखर विलास' का आकर बने हुए हैं। (मद्रास विश्वविद्यालय के द्वारा प्रकाशित विष्णु पुराण की भूमिका में इसे प्रमाणित्त करने के लिए काफी उदाहरण उद्धृत हैं।) महाकवि पंप की कृतियों से उद्धृत भागों को चिक्कुपाध्याय की कृतियों में चुनकर दिखाया जा सकता है। पूर्वकवियों के अध्ययन के कारण कवि को कन्नड के पांडित्य की उपलब्धि काफी मात्रा में हुई है। ऐसालगता है यह कवि कन्नड और संस्कृत के अलावा तमिल में भी बड़े पंडित रहे होंगे। उनके इस पांडित्य के कारण कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि करने में बहुत सहायता मिली है। उनके गद्यग्रंथ उनके समय की गद्य शैली के अच्छे आदर्श हैं। कन्नड के गद्य साहित्य के इतिहास में चिक्कुपाध्याय के लिए एक विशिष्ट स्थान सुरक्षित है।

तिम्मकवि : आप चिक्क देवराजा के आश्रित कवि थे। राजा के आदेश से और चिक्कुपाध्याय की प्रेरणा से "यादव गिरि महात्म्य", "वेंकगिरि माहात्म्य",

"पश्चिम रंग माहात्म्य" – इन तीन चंपू ग्रंथों को इस कवि ने लिखा है। इनमें क्रमशः मेलुकोटे, तिरुपति, तथा श्रीरंगपट्टन की महिमा वर्णित है। "यादवगिरि माहात्म्य" के आरंभ के चार आश्वासों की वस्तु चिक्कदेव राजा की वंशावली और राजा के पराक्रम —इन दो बातों के वर्णन के लिए नियत कर रखा है। कन्नड के पूर्व कवियों में केवल रुद्रभट्ट की स्तुति की है। यही इस कवि का आदर्श है। रुद्रभट्ट के ही बराबर इनकी रचना प्रौढ़ है।

मल्लिकार्जुन : यह कवि भी चिक्कदेव राजा के आश्रित थे। इन्होंने ब्रह्माण्ड पुराणांतर्गत शिवनारद संवाद रूप श्रीरंग क्षेत्र की महिमा को "श्रीरंगमाहात्म्य" के नाम से चंपू–काव्य-बंध में लिखा है। इस ग्रंथ के प्रथम दो आश्वासों में कर्नाटक देश का और चिक्कदेव राजा की वंश परंपरा का वर्णन है। आमतौर पर सभी कवियों ने जैसे अपने काव्य की प्रशंसा की है वैसे ही इन्होंने भी की है। परन्तु इस कवि की अपने काव्य की प्रशंसा में कुछ तथ्य है। इनकी कल्पना बहुत ऊँचे दर्जे की न होने पर भी शैलललित है।

सिंगार्य—यह कवि तिरुमलार्य के भाई थे। ये भी चिक्कदेव राजा के आस्थान कवि थे। इन्होंने "मित्रविंदा गोविन्दा" नामक नाटक लिखा है। कन्नड में उपलब्ध नाटकों में यही सर्वप्रथम नाटक है। यही इसकी गरिमा है। सिंगार्य ने यह तो नहीं बताया है कि यह कृति श्रीहर्ष कवि की संस्कृत कृति "रत्नावली" का रूपांतर है, तो भी यह रूपांतर ही है। शृंगार प्रधान मूल "रत्नावली" नाटक का हू-ब-हू अनुवाद करने के बदले संभवतः श्रीवैष्णव मत पर के प्रेम के कारण अपनी इस कृति का नाम रत्नावली के बदले "मित्रविंदा गोविंदा" रखा है। स्त्रीलोल वत्सराजा के लिबास में श्रीकृष्ण और वासवदत्ता की वेशभूषा में रुक्मिणी, रत्नावली के स्थान पर सरस्वती, पेटू विदूषक के स्थान पर कुचेल—इस तरह रत्नावली के पात्रों को अपने नाटक में समन्वित किया है। इससे यह कृति विकृत हो गयी है। "विनायकं प्रकुर्वाणो रचयाभास वानरं"--हो गयी है। मूल नाटक 'रत्नावली" में जो सन्निवेश रचना, संभाषण-चातुरी, रसाभिव्यक्ति है वह इस भाषांतर में नही है। शृंगाररस निरूपण ही इस नाटक का सार सर्वस्व है। ऐसे नाटक का भाषांतर हळॆगन्नड में किया है, शैली की क्लिष्टता के कारण यह सुबोध नही हो सका है; लोहे का चना बन गया है। विषय के अनुकूल भाषा यदि न हो तो वह विषय के प्रति अपचार है; शृंगार जैसे रस के निरूपण के लिए रसाभिव्यक्ति के अनुकूल भाषा न हो तो वह उसकी हँसी उड़ाना है। इस नाटक के आरंभ में एक विस्तृत प्रस्तावना है। इससे कवि के समय के इतिहास को समझने में थोड़ी बहुत मदद मिल जाती है, यही एक समाधान है। इस तरह की अनेक गलतियाँ होने पर भी यह कन्नड का सर्वप्रथम नाटक है, अतः यह इस गौरव का पात्र अवश्य है, यह निर्विवाद है। कवि ने स्वयं बताया है कि उन्होंने "राघवाभ्युदय" और "गीतरंगेश्वर" नामक दो और कृतियों की रचना की है। परन्तु ये आजतक अनुपलब्ध हैं।

चिक्कदेव राजा के आश्रितों में वेणु गोपालवरप्रसाद नामक कवि ने "चिक्क देवराज वंशावली" और चिदानन्द कवि ने "मुनिवंशाभ्युदय", मल्लरस कवि ने "दशावतार चरित", लिखा है। "चिक्क देवराज वंशावली" और "दशावतार चरित",

—ये दोनों चंपू काव्य बंध में हैं।" चिक्क देवराज वंशावली" के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह मैसूर के राजवंश का इतिहास है। इसमें कथा की अपेक्षा वर्णन अधिक है। "दशावतार चरित" में विष्णु के दस अवतारों की कथा वर्णित है। इसमें काव्य-गुण की अपेक्षा अष्टादश वर्णन को विशेष महत्व दिया है। चिदानन्द कवि का "मुनि-वंशाभ्युदय" सांगत्य में है। जैन मुनियों की परंपरा का वर्णन इसमें होने के कारण इसका यह नाम है। इसमें भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त के श्रवणबेळ्गोळ आने का वृत्तांत निरूपित है।

चिक्क देवराजा के आश्रय में दो कवयित्रियाँ रही जिनका नाम उल्लेखनीय है। एक हॉन्नम्मा और दूसरी शृंगारम्मा। हॉन्नम्मा रानीवास में नियुक्त थी और पट्टमहिषी देवराजम्मण्णी की प्रीति-विश्वास के पात्र थी। यह अळसिंगार्य की शिष्या थी। राजा ने अपनी पट्टमहिषी के सामने "सरस साहित्य वरदेवी" कहकर हॉन्नम्मा की प्रशंसा की और अपनी पट्टमहिषी से एक सरस काव्य रचना करने का आदेश दिलवाया। यह महिषी की आज्ञा के अनुसार होन्नम्मा ने काव्य रचना की थी। यही "हरिबदेय धर्म" याने पतिव्रताधर्म नामक ग्रंथ है। यह 468 पद्यों वाला एक सांगत्य शैली में लिखा ग्रंथ है। इसमें पतिव्रता स्त्री के धर्मों के विषय में विस्तृत रूप से बतलाया गया है। कवयित्री ने बताया है कि अपने इस ग्रंथ में पातिव्रत्यधर्म के निरूपण करने के लिए आवश्यक आधारभूत सामग्री रामायण, भारत, मनुधर्म शास्त्र आदि शास्त्र ग्रंथों से ली है। चिक्क देवराय ने "सरस साहित्य वरदेवी" कहकर उनकी जो प्रशंसा की है वह कोई अनुचित नहीं है। इस कवयित्री में औचित्य का ज्ञान है। अनावश्यक अठारह वर्णनों के जाल में पड़कर अपने काव्य में पतिव्रता के आचरण व धर्मों का ही वर्णन प्रतिज्ञाबद्ध होकर इस कवयित्री ने किया है। कवि सहज वाणी में स्त्रियों के स्थान-मान के विषय में वह कहती है—

"पॅण्णल्लवें तन्मन्नॅल्ल पॅडददायि। पॅण्णल्लवें पॉरॅदवळु।
पॅण्णु पॅण्णॅन्देतकें बीळुगळॅवरु। कण्णुकाणद गाविलरु।"

अर्थात् "आप सभी को जन्म देने वाली माँ स्त्री नहीं? पालन पोषण करने वाली माँ स्त्री नहीं?—इस सबको जानते हुए भी मूर्ख लोग स्त्रियों के प्रति उदासीनता दिखाते और उन्हें अपने से निम्न-स्तर की मानते हैं। यह कैसी मूर्खता है?"—कवयित्री की ऐसी उक्तियाँ सहज स्पष्ट होने के साथ बड़े प्रभावयुक्त भी हैं। भारतीय स्त्री के स्त्रीत्व के आदर्श की पताका को फहराती हुई कहती हैं—"गुणवंतॅयरॅसगुव पति-शुश्रूषॅगॅणॅयह तपविन्नॉळवे?" याने गुणवती पत्नी पतिदेव की जो सेवा-टहल करती है उससे बढ़कर कौन-सा तप है?"—इतना ही नहीं, वह कहती है कि जो निष्ठावान् है, पतिभक्ति परायण है—ऐसी पतिव्रता स्त्री निष्काम भाव से पति को ही परदैव मानकर सेवा करती है, ऐसी पतिव्रता स्त्री चाहे पति उसे सिर चढ़ाकर प्रेम करे या पैरों तले रौंद डाले उसकी परवाह नहीं करती, यह इतना ही समझती है कि विधि ने जैसा रखा है वैसा होता है और अपने लिए तो पति ही परदैव है—यों मानकर सेवा तत्पर रहती है। जो कुछ भी होता है वह सब ऐसी पतिव्रता नारी के लिए अच्छा ही मालूम पड़ता है। भारतीय स्त्रियों के विषय में और पतिव्रत्य के विषय में होन्नम्मा के ये विचार आधुनिक स्त्रियों के लिए, पता नहीं, रुचेंगे या नहीं। परन्तु उनका

निश्चित विश्वास है कि स्त्री यदि ऐसी पतिव्रता हो तो "सकाल में वर्षा होगी, सुभिक्ष होगा, उपज बढ़ेगी, पतिव्रता नारी की वाणी पवित्र होगी और इसीलिए वह जो कहेगी वह होकर ही रहेगा ।—कवयित्री की यह धारणा तो देखिये, यह कैसा दृढ़ विश्वास ! साधारणतया लोग लड़के के जन्म पर खुश होते हैं और लड़की के जन्म लेने पर चिंतित होते हैं । इस तरह की प्रवृत्ति को देखकर यह कवयित्री कहती है कि लड़का और लड़की दोनों बच्चे ही तो है, वह बड़ा क्यों यह छोटा क्यों ? लड़का घर रहेगा तो लड़की अन्यत्र जाकर घर का नाम उज्ज्वल करेगी । इस तरह लड़की लड़के से किस बात में कम है ? यों कहकर स्त्री जाति की उत्तमता स्थापित करती है । जिस तरह स्त्री पुरुष का अनुसरण करती है उसी तरह पुरुष को भी स्त्री का अनुसरण कर उसका पोषण करना चाहिए । पति को देवता मानकर पूजने वाली स्त्री को जैसे आराधक पर भगवान् संतुष्ट होकर प्रेम से रक्षा करते हैं वैसे ही पति को भी चाहिए कि पत्नी को संतुष्ट करें । भगवद्भक्ति से भी पतिव्रता स्त्री के लिए पतिभक्ति बड़ी है—इस बात का आदेश देने के लिए पातिव्रत्य की महिमा दर्शानेवाली जो कथा होन्नम्मा ने कही है वह बहुत ही रम्य और रसवान् है; और बोधप्रद है । इस कृति का लक्ष्य ही नीतिबोध यानी चरित्रशुद्धि तथा शीलवान् बनने के लिए मार्गदर्शन कराना है । होन्नम्मा ने अपनी कृति में इस आदर्श को बहुत अच्छी तरह से निभाया है । नीतिबोधक कवियों की श्रेणी में आप अग्रगण्य है ।

शृंगारम्मा : चिक्क देवराज की कृपा के पात्र एक और स्त्री कवि शृंगारम्मा है । इन्होंने अपने को "चिक्क देवराजा की प्रेम पुत्री" बताया है । आपने "पद्मिनी कल्याण" नामक काव्य को सांगत्य में लिखा है । तिरुपति के भगवान् वेंकटेश्वर एवं पद्मावती के विवाह का वर्णन इस काव्य का विषय है । होन्नम्मा की सी काव्यशक्ति शृंगारम्मा में नहीं है । इनका काव्य भी 189 पद्यों वाला छोटा है । काव्य सुन्दर है । पद्मावती के सौन्दर्य का उनकी वेषभूषा का वर्णन अपने समय के अनुकूल है । है । स्त्री कवियों की कमी के उन दिनों में यह कवयित्री स्वागतार्ह अवश्य है ।

चिक्क देवराज ओडेयर के पश्चात् इम्मडी कंठीरवनरसराज गद्दी पर बैठे । इनके समय में कहने लायक प्रोत्साहन साहित्य क्षेत्र संभवतः नहीं मिला । इनके बाद दोड्ड देवराज के समय (ई० सन् 1717-1731) में राजा के कारणिक (कारिंदा) वेंकटपति के द्वारा प्रोत्साहित होकर बालवैद्य चलुव नामक व्यक्ति ने "कन्नड लीलावती", "रत्नशास्त्र",—इन दो कृतियों की रचना की । "लीलावती" गणितशास्त्र है, इसे कवि ने कंदपद्य एवं वार्धक षट्पदी में और "रत्नशास्त्र" को केवल वार्धक षट्पदी में लिखा है । राजा की पट्टमहिषी चालुवांबा ने अपने पति की आज्ञा से "वरनंदी कल्याण" नामक सात संधियों (सर्गों) का एक सांगत्य छन्दबद्ध काव्य लिखा । इसमें वरनंदी विवाह की कथावस्तु मेलुकोटा के चलुवरायस्वामी भगवान् का देहली के बादशाह की पुत्री 'वरनंदी' के साथ विवाह का वर्णन है । कवयित्री का कथन है कि यह "वरनंदी" सत्यभामा का ही अवतार है । इनकी शैली ललित, मधुर और मनोहर है ।

दिल्ली के बादशाह की पुत्री अत्यन्त रूपवती है और वह यौवन भार से आक्रांत है; वह मेलुकोटा के चलुवराय भगवान् पर मुग्ध है; उसके बिना वह जी नहीं

सकती, ऐसी विरहावस्था में तड़पती हुई वरनंदी पर कामदेव के सुमनबाणों का आक्रमण हो रहा है। इन कुसुम बाणों के आघात से उसे अपरिमित वेदना हो रही है; तब वह मंमथ की निंदा करती है। वह कहती है कि जो शूर है वह अपने सामने दुर्बल शत्रु को देखकर उन पर हाथ नहीं उठाते बल्कि शत्रु को कमजोर समझकर रक्षा करते हैं; उनकी स्त्रियों पर शूर कभी आँख नहीं लगाते बल्कि उनकी शीलरक्षा तत्परता के साथ करते हुए उनका आदर करते हैं। परन्तु यह मंमथ ऐसा है कि वह मानो स्त्रियों की हत्या करने ही के लिए पैदा हुआ है। यह कवयित्री प्रचलित सांप्रदायिकता का अनुसरण करने पर भी, कुछ नवीनता की दृष्टि भी रखती है। इन्होंने तिरुपती के "वेंकटाचल माहात्म्य" का निरूपण करने वाली करीब 200 लोरियाँ लिखी है जिसका नाम "वेंकटेश माहात्म्य लालिपद" है। तिरुपति के वेंकटेश भगवान् की पत्नी" "अलुमेलु मंगादेवी" के स्तोत्र रूप "अलुमेलु मंगललि पद" भी लिखे हैं। इसमें ऐसी लोरियाँ 35 हैं। इनके अलावा गद्य में "तलकावेरी माहात्म्य टीका" भी लिखी है।

कळले के राजाओं में एक वीरराजा (ई० सन् 1720) ने "वैद्य संहिता सारार्णव" नामक ग्रंथ रचा है। यह चिक्क देवराजा के आश्रित दोड्डेन्द्र का बेटा है। देवचंद्र ने अपनी 'राजावली कथा' में इनकी प्रशंसा की है। संभवतः वैद्यशास्त्र के अभ्यासियों के लिए इनका यह काव्य बहुत उपयोगी मालूम पड़ता है। इनके इस ग्रंथ का एक दूसरा नाम "वीरराजोक्ति विलास" भी है। बड़े कृष्णराज ओडेयर के बाद सातवें चामराजा और चिक्क कृष्णराजा—ये दोनों क्रमशः राजा हुए। इनके समय में यक्षगान नाटक, कुछ गेय जैसे पद्य आदि का निर्माण तो हुआ, मगर कुछ उल्लेखनीय कलाकृतियों का निर्माण नहीं हुआ। चिक्क कृष्णराजा के समय में राज्य हैदरअली के हाथ में पड़ गया। इसके पश्चात् ई० सन् 1800 तक मैसूर का राजवंश राहुग्रस्त चन्द्रमा की तरह अज्ञात ही रहा। इस अवधि में केवल देवचन्द्र की "राजावली कथा" ही एक उल्लेखनीय कृति है। ई० सन् 1811 में मुम्मडी कृष्णराजा ने राज्य निर्वहण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। तब से मैसूर राजवंश की उन्नति के साथ-साथ कन्नड साहित्य की भी श्रीवृद्धि होने लगी।

मुम्मडी कृष्णदेवराय : (ई० सन् 1704 -- 1894)

मुम्मडी कृष्णदेवराय मराठी, उर्दू, फारसी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। संगीत और साहित्य के अच्छे पारखी थे। इतना ही नहीं वेदांत (दर्शन) और ज्योतिष शास्त्र में भी गहरा ज्ञान था। जैसे कवि इन्न ने कहा है—कि "कवि वही धन्य है जो ईर्ष्या रहित हो और वही धनी धन्य है जो उदार हो।" इस मुम्मडी कृष्णदेव राय में इन दोनों गुणों ने—धनी होकर उदारता, कवि होकर अन-असूयता—घर कर लिया था। स्वयं कवि होकर उन्होंने पचास ग्रंथ लिखे हैं। इतना ही, नहीं कवि और कलाकारों को खुले हाथ से मदद देकर उन्हें प्रोत्साहित भी किया। ये इन बातों में बहुत उदार रहे और "उदार चरितानांतु वसुधैव कुटुंबकं"—इस उक्ति को चरितार्थ करने वाले थे। यह राजा धर्मपरायण थे और मठ-मन्दिरों के लिए बड़ी उदारता से दान भी इन्होंने दिया। राजा का आस्थान एक तरह से "सरस्वती का निवास" ही बन गया था। अनेक कवियों ने प्रभूत मात्रा में ग्रंथों की रचना की। इनके राज्यकाल में प्रजा

धर्मपरायण थी और सुखी तथा समृद्ध जीवन बिताती थी। इसलिए एक कहावत बनी—"कृष्णराज भूप—घर-घर में दीप" अर्थात् कृष्णराजा के राज्य में कहीं दुख का अँधेरा नहीं था, सभी सुखी और संपन्न थे।

मुम्मडी कृष्ण राज कवि के ग्रंथ वैपुल्य और उनके वैविध्य को देखने पर आनंद और आश्चर्य दोनों एक साथ होते हैं। उन्होंने "कृष्णराजवाणी विलास रत्नाकर" के नाम से कालिदास के "शाकुंतल, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय" नाटकों के कथाओं के रूप में तथा श्री हर्ष कवि के "रत्नावली" नाटक को "वत्स राज कथा" के नाम से—गद्य में लिखा है। उत्तर रामचरित कथा, कादंबरी, दश कुमार कलानिधि, उषापरिणय, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, नलोपाख्यान, भामाकथा" आदि सुन्दर कथानकों को लिखा; इतनी ही नहीं बत्तीस पुतलियों की कथा, बेताल पंच-विंशति, शुक सप्तति आदि अद्भुत तथा रम्य कथानकों को लिखा; इनके अलावा अखंड कावेरी महात्म्य, अर्कपुष्करिणी माहात्म्य, चुंचनकट्टे का माहात्म्य, तुला कावेरी माहात्म्य, यादवगिरि—श्रीशैल—हालास्य महात्म्य—इन माहात्म्य के वर्णन करने वाले ग्रंथों की भी रचना की है। अश्वमेघ पर्व की टीका, देवी भागवत तात्पर्य टीका, रामायण टीका, रामायण तात्पर्य दीपिका टीका आदि पौराणिक ग्रंथों की टीका लिखी है; और जातक साम्राज्य टीका भी इन्होंने लिखी है। इन सबके अलावा और भी अनेक ग्रंथों की रचना की है—जैसे—देवी माहात्म्य, सप्तशती, ललितोपाख्यान, लौंग्यपुराण, शंकर संहिता, कृष्ण कथा सार संग्रह, कृष्ण कथा रत्नाकर, गयचरित, राम कथा कल्पवृक्ष, भारत, भागवत, भगवद्गीता, अध्यात्म रामायण, काशीकांड, उत्तर गीता, शनैश्चर कथा आदि अनेक ग्रंथ, कन्नड भाषा में मुम्मडी कृष्णराजा की कृपा से उतर आये हैं। इनकी कौन-कौन-सी रचनाएँ हैं—इसकी सूची बनाने की अपेक्षा यह कहना आसान है कि इनकी कई रचनाएँ और कई विषयों को लेकर ग्रंथ बाहुल्य के साथ विविधतापूर्ण हैं।

मुम्मडी कृष्णराज कवि के सभी ग्रंथ अधिकतर गद्य में हैं। "सौगंधिका परिणय"(यह भी गद्य में है) "नंजुंड शतक"—आदि दो तीन को छोड़ अन्य सभी ग्रंथ गद्य ही है। इनके इन गद्य ग्रंथों की पौराणिक शैली है। कन्नड में गद्य का विकास करने में मुम्मडी कृष्णराज कवि और उनके आश्रित साहित्यकारों ने जो योगदान दिया है वह अद्वितीय है। आधुनिक कन्नड साहित्य के अरुणोदय के लिए यही राजकवि कारण बने—यों कहेंगे तो कोई गलती नहीं होगी। ग्रंथ रचना में उनकी आसक्ति भाषा-भिमान, परिश्रम और पांडित्य—इन दृष्टियों से देखें तो हम हर्ष-पुलकित हो जाते हैं। "राम कथा कल्पवृक्ष" नामक ग्रंथ के लिखने के पूर्व कवि ने इसके लिए कहाँ-कहाँ से सामग्री जुटायी है उसका विवरण देते हैं। वे बताते हैं कि "श्रीमद्रामायण", "विष्णुपुराण", "पद्मपुराण", "कूर्मपुराण", "अध्यात्मरामायण", "शिवधर्मोत्तर", "विष्णुधर्मोत्तर", "जैमिनी"—इत्यादि अनेकों ग्रंथों में उपलब्ध होनेवाली रामकथाओं के सारसर्वस्व का क्रोडी करण करके लोकोपकारार्थ इस "रामकथा कल्पवृक्ष" नामक ग्रंथ की रचना की है। "कृष्णकथा रत्नाकर" भी "रामकथा कल्पवृक्ष" की तरह अनेक ग्रंथों, जैसे—भागवत दशमस्कंध, विष्णुपुराण, हरिवंश, भारत आदि—के परिशीलन का फल है जिसमें इन सभी का सार सर्वस्य निहित है। इसी तरह और

भी कई ग्रंथों का निर्माण, प्राचीन साहित्य का परिशीलन एवं अनुसंधान करके, किया है।

इनकी कृतियों में "नलोपाख्यान", "बत्तीस पुत्थलीकथा", "सौगंधिका परिणय", "भारत", "कृष्णराज वाणीविलास रत्नाकर", "वत्सराज की कथा" अत्यंत जनप्रिय हैं।

मुम्मडी कृष्णराज कवि के आश्रित अनेक कवियों ने संस्कृत व कन्नड भाषाओं में सैकड़ों काव्य लिखे हैं। कन्नड में वेंकटरामा शास्त्री ने "अमरुक टीका", "शनिश्चयोदशीव्रत", "धनुर्मास की महिमा", "गजगौरीव्रत" आदि की कथाएँ लिखी हैं। रामकृष्ण शास्त्री ने संस्कृत में स्वरचित "भुवनप्रदीपिका" की कन्नड में टीका लिखी है। श्रीनिवास कवि ने "कृष्णनृप विजयोत्कर्ष" लिखा है। शांतराज पंडित ने "लक्ष्मीदेवी के पुष्प शृंगार" के विषय में गेय-पद लिखे हैं।

केम्पुनारायण—मुम्मडी कृष्णराजा के आश्रितों में केम्पुनारायण बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी कृति "मुद्रामंजूष" है। विशाखदत्त के "मुद्राराक्षस" के आधार पर कन्नड में रचित यह ग्रंथ अत्यंत जनप्रिय गद्यग्रंथ है। इसमें राजतंत्र-निपुण चाणक्य मदांध नवनंदों का संहार करके, मौर्य चंद्रगुप्त को सिंहासन पर बिठाने की सारी कथा वर्णित है। "मुद्राराक्षस" नाटक की कथा के आरंभ के पूर्व का वृत्तांत—अपने पैर में चुभे घास के अंकुर को जड़ से उखाड़ फेंकने, और इस घटना को चंद्रगुप्त के देखने तथा उनका चाणक्य के पास जाने, एवं चाणक्य का अपमानित होने आदि आदि वस्तु को—बृहत्कथा, विष्णु पुराण, कामंदक—आदि ग्रंथों से संग्रहीत करके चाणक्य की समग्र जीवनी को निरूपित किया है। इस कृति में हम चाणक्य की सूक्ष्म बुद्धि, कार्य दक्षता राजतंत्र में निपुणता को देखने के साथ-साथ उसी परिमाण में उनकी निःस्वार्थ बुद्धि, त्यागशीलता, ब्रह्मतेज को भी देख सकते हैं। चाणक्य के जीवन के ये दोनों मुख हमें चकित कर देते हैं। जब चंद्रगुप्त राजा थे तब चाणक्य एक कुटी में रहा करते थे। राजकुमार को सिंहासन पर बिठाकर, स्वामिभक्त और राष्ट्रप्रेमी राक्षस को उनका मंत्री बनाकर राज्य को दृढ़नींव पर स्थित देखकर स्वयं तपस्या करने चले जाते हैं। चाणक्य का पात्र अत्यंत उज्ज्वल है। बड़ा ही प्रभावशाली है। महान् है। केम्पु-नारायण का गद्य प्रौढ होने पर भी ललित, सजीव और प्रभावशाली है। गद्य साहित्य के वर्तमान स्तर तक पहुँचने की पहली सीढ़ी "मुद्रामंजूष" है।

अळिय लिंगराज—यह लिंगराजा मुम्मडी कृष्ण राजा के आश्रय में पले-पढ़े थे। इनके आश्रयदाता की ही तरह ये भी उदारी, उभय कविता विशारद, विद्वज्जन पोषक, धर्म परायण और बहुत अच्छे कला पोषक थे। राजा ने अपार धन देकर अपनी दो कन्याओं के साथ इनका विवाह भी किया था। इसीलिए ये "अळिय (दामाद) लिंगराजा" हैं। कन्नड और संस्कृत में अपार पांडित्य, संगीत-साहित्य में निपुणता प्राप्त कर अनेक ग्रंथों की रचना करके ये कीर्तिशाली हुए। इसी के कारण ये "उभय कविता विशारद" के बिरुद से भूषित भी हुए। अपने आश्रयदाता मालिक की ही तरह इन्होंने भी करीब 50 ग्रंथों की रचना की। इनके ग्रंथ-चंपू, षट्पदी, सांगत्य, शतक, यक्षगान, गेयपद आदि कई रूपों में हैं जो लिंगराज की सर्वतो मुखी प्रतिभा का दिग्दर्शन कराते हैं। इनका "नरपति चरित" एक अलंकार ग्रंथ है।

इसमें लक्ष्योदाहरण के रूप में जो पद्य दिये गये हैं वे मुम्मडी कृष्णराजा की प्रशंसा के पद्य हैं। इसे सुनकर ही राजा ने इन्हें "उभय कविता विशारद" की बिरुदावली से भूषित किया—इनके काव्यों में यक्षगान ही अधिक हैं। संभवत: राजा को यक्षगान पर विशेष प्रेम था। इस समय हम अनेक "यक्षगान" कृतियों को ही देखते हैं। दक्षिण कन्नड जिले से "यक्षगान" नाटक मंडलियाँ मैसूर आकर महाराजा के उदाराश्रय में नाटक प्रदर्शन करने की व्यवस्था करती रहीं—ऐसा दीखता है। लिंगराज ने भी करीब तीस यक्षगान नाटक लिखे हैं।

मुम्मडी कृष्णराजा के आश्रित कवियों में तिम्मय्य कवि ने "राजवंश रत्न प्रभा" लिखी, मद्दगिरि नंजप्पा ने "कृष्ण राजेन्द्र विलास" लिखा, सीताराम सूरि ने "सहस्रायु कथा" लिखी, नंजुंड कवि ने "कृष्णराज भक्तिसार", "कृष्णराज भोगावली", "कृष्णराज शृंगार शतक" आदि कुछ और श्री ग्रंथ लिखे हैं। "शृंगार शतक" कंद पद्य शैली में है; इसमें यत्र तत्र गद्य भी है। इस ग्रंथ में "राजा उत्सव के समय जब शहर में गाजे-बाजे के साथ शहर के राज मार्गों में निकलते तब पौर स्त्रियाँ उनके प्रति आदर और अनुराग जो दिखाती थी—उसका वर्णन है। पद्य सरल और सुन्दर हैं।

मुम्मडी कृष्णराजा को "कन्नड का भोज राज" कहकर गौरवान्वित करते हैं। जब हम उनकी रसज्ञता, रसिकता, उदारता, चारों ओर घिरी विद्वानों की मंडलियाँ आदि को देखते हैं तब सर्वात्मना वे इस गौरव के योग्य हैं। इसमें कोई शंका ही नहीं।

मुम्मडी कृष्णराजा के बाद चामराज मैसूर के राजा हुए। इनके गद्दी पर बैठने के बाद से कन्नड साहित्य का आधुनिक युग आरंभ होता है—कहा जा सकता है। कन्नड में नाटक साहित्य "शशविषाण" था। इनके समय में प्रोत्साहन पाकर नाटक साहित्य विपुल रूप में विकसित हुआ। "कर्नाटक भाषोज्जीविनी पाठशाला, प्राच्य कोशागार की स्थापना की जिस उत्साह से उन्होंने स्थापित किया उसी उत्साह के साथ प्रोत्साहन देकर "चामराजेन्द्र नाटक सभा" की भी स्थापना उन्होंने की। कन्नड प्रदेश में स्थित करीब-करीब सभी अभिनेता राजा से प्रोत्साहित होकर रंग में आये। नाटकाचार्य कृष्णाय्यंगार, श्रेष्ठ अभिनेता वरदाचार, हास्य नट पुट्टारिशास्त्री, लक्ष्मी पति शास्त्री, सुब्बण्णा, राचोटी—आदि अभिनेताओं के नाम भी बी० एल्० राईस, आर नरसिंहाचार आदि प्राच्य संशोधकों के नामों की ही तरह ही प्रसिद्ध है। अभिनव कालिदास बसप्प शास्त्री, नंजनगूड सुब्बा शास्त्री, अनंत नारायण शास्त्री, जयरामाचार्य—आदि कवियों ने नाटक रचना के कार्य में हाथ लगाया। केवल भारतीय भाषाओं से ही नहीं, अंग्रेजी से भी नाटकों का अनुवाद करके नाटक साहित्य को समृद्ध किया। यों अनुवादित नाटक सर्वप्रिय बने न भी हो तो भी इस प्रयत्न से कन्नड साहित्य के अनेक प्रकारों के उद्‌भव और विकास पर अत्यंत प्रभाव पड़ा। कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक,—आदि भाषांतरित होकर रूपांतरित होकर कई प्रकारों में साहित्य का विकास होने लगा।

बसप्प शास्त्री—ये चामराजा के आस्थान कवि और राजपुरोहित थे। कन्नड और संस्कृत में अद्वितीय पंडित तथा प्रतिभावान कवि भी थे। इन्होंने "सावित्री चरित"

को षट्पदी छन्द में, भर्तृहरि के "सुभोभित" को वृत्तों में "नीतिसार संग्रह" को कंद पद्यों में, "दमयंती स्वयंवर" और "रेणुकार्य विजय" को चंपू काव्य बन्ध में लिखा है। उनकी कविता ललित, भावगर्भित, धाराकार बही है। फिर भी उनकी कीर्ति पताका चोटी पर पहुँची है उनके नाटकों के कारण ही। "चामराजेन्द्र नाटक सभा" के लिए नाटक लेखन के कार्य में लगकर बसप्प शास्त्री ने "शाकुंतल", विक्रमोर्वशीय", "चंडकौशिक", "उत्तर राम चरित", "रत्नावली", "मालतीमाधव", "शूरसेन चरित"—इन सात नाटकों को कन्नड में प्रस्तुत किया है। इन में अंतिम "शूरसेन चरित" शेक्स्पीयर के "ओथेलो" नाटक का भाषांतर है। इन्हें अंग्रेजी तो आती न थी। इसलिए इस कृति में मूल की रस रहित छाया मात्र (यहाँ) दिखती है। इनके शेष छः नाटक संस्कृत से अनूदित हैं। वर कवि कालिदास के भावलोक के अन्दर प्रविष्ट होकर उनके भाव की गहराई और गंभीरता को समझकर कन्नड के पाठकों को तथा नाटक के प्रेक्षकों को दर्शाने का कार्य सफल रूप से किया है। इनका "अभिज्ञान शाकुंतल" नाटक मूल नाटक के सौंदर्य से भी बढ़ चढ़कर सुन्दर बना है; इस रस-तपस्वी की भाव-भूमि को सरस-भाव-वर्षा से प्लावित कर वर कवि कालिदास अभिनव रूप में उतरा है। मूल नाटक की शैली, भाषा मार्दव, भावानुकूल पद योजना—आदि से यह कृति कन्नड की अमरकृति बन गयी है। पढ़ते समय ऐसा लगता है कि यह अनुवाद नहीं, मूल है। शाकुंतल के सारंग वर्णन "ग्रीवाभंगाभिरामं…" शकुंतला के सौंदर्य के वर्णन में "अनाघ्रातं पुष्पं…" आदि आदि के अनुवाद पढ़ते ही बनता है। यह ऐसा लगता है कि कालिदास ने ही इन्हें मूल में कन्नड में ही लिखा था। सभी दृष्टियों से यह कवि बसप्प शास्त्री वास्तव में "अभिनव कालिदास" कहलाने के लिए सब तरह से योग्य और सर्वथा मान्य अवश्य है।

कुमारव्यास युग जैन कवि

कन्नड साहित्य में चंपू-काव्यों का सृजन करके कन्नड साहित्य-पताका को फहराने वाले जैन कवि कुमार व्यास-युग में युगधर्म के अनुसार अपनी काव्य-सृष्टि के लिए देशी छन्दों को ही लेकर आगे बढ़े। उनके तीर्थंकरों की जीवनियाँ अथवा तीर्थंकर चरित पांडित्य पूर्ण एवं गंभीर शैली में प्रणीत थे। वे अब षट्पदी और सांगत्यों के रूप में आम जनता की चीज बनकर उतरे। इन कवियों का प्रभाव अन्य कवियों पर पड़ने के बदले वैदिक और वीरशैव कवियों का प्रभाव इन पर पड़ा लगता है। इस युग में जैन कवियों की संख्या कम ही है। इस अल्प संख्या में भी उत्तम दर्जे के कवि नहीं के बराबर है। एकआध को छोड़कर अन्य सब जैन कवि बिलकुल मामूली दर्जे के ही हैं। इस युग के कुछ प्रमुख जैन कवियों के विषय में जानना प्रासंगिक होगा।

भास्कर—पन्द्रहवीं सदी के पूर्वार्ध में इस कवि ने "जीवंधर-चरित" लिखा जो भामिनी षट्पदी छन्द में है। इस काव्य से पता लगता है कि यह कवि बसवांक नामक जैन-ब्राह्मण का बेटा था और इन्होंने पेनुगोण्डा के शांतीश्वर जिनालय में ई० सन् 1225 में अपने इस काव्य को लिखा। काव्यांतगत कथावस्तु बहुत सुन्दर है। राजपुरी के राजा सत्यन्धर का बेटा जीवन्धर है। गर्भावस्था में ही इलकी माता मंत्री काष्ठांग के कृत्रिम संधान के कारण बनवासी हो जाती है। जंगल में घूमते-फिरते समय वहीं जीवंधर का जन्म होता है। यह बच्चा बड़ा होने पर देश भ्रमण करने निकलता है और कई देशों में भ्रमण करके कई राजकुमारियों से विवाह कर लेता है, फिर अपनी राजधानी लौटकर मंत्री काष्ठांग को जीतकर राजा बनता है। कुछ समय के पश्चात् वह विरक्त होकर संन्यास ग्रहण कर लेता है। यहाँ सन्निवेश रचना करने में भास्कर कवि अपनी कुशलबुद्धि का अच्छा प्रदर्शन किया है। जीवंधर की माता के बनवास की करुण-कहानी बहुत ही हृदय-विदारक ढंग से वर्णित है। कवि की शैली सरल, ललित और सुन्दर है। कवि की कल्पना भी बड़ा मनोहर है।

इन्होंने बताया है कि वादीशसिंह सूरि की संस्कृत रचना को कन्नड में अनूदित किया है। भाव और भाषा की दृष्टि से यह कवि कुमारव्यास का ऋणी है।

कल्याण कीर्ति—ज्ञानचन्द्राभ्युदय, कामकथा, अनुप्रेक्षा, जिनस्तुति, तत्त्वभेदा ष्टक,—इन ग्रंथों की रचना कल्याणकीर्ति ने की है। ज्ञानचन्द्राभ्युदय में बताया है वि उन्होंने ई० सन् 1439 में इसे लिखा। इससे यह विदित होता है कि कवि पंद्रहर्व सदी के बीच में रहा। इस काव्य में ज्ञानचन्द्र नामक राजा की तपस्या औरत द्वार प्राप्त अभ्युदय की कथा वर्णित है। इस ग्रंथ में करीब 900 पद्य हैं जो वार्धिव षट्पदी, भामिनी षट्पदी और परिवर्धिनी षट्पदी छन्दों में है। इसमें कई उन्नतभाव या स्वतंत्रवर्णन वैखरी नहीं दिखाई देती। सम-सामयिक कवियों का अनुसरण इसां दिखता है।

कवि की "कामकथा" जैन परंपरा के अनुसार कामदेव की कथा है। या यत्सगां में है। यों बताया गया है कि इस काव्य को कवि ने तुळु राजा भैरवसुत पांड्य

राय की इच्छा से लिखा। सांगत्य छन्द के बीच-बीच में कुछ कंदपद्य एवं षट्पदी छंद के भी कुछ पद्य इसमें हैं। यह करीब 330 पद्यों वाला ग्रंथ है। इस ग्रंथ में कहीं-कहीं जो वर्णन मिलते हैं वे सहज और स्वाभाविक हैं। इस कवि के शेष तीनों ग्रंथ केवल जैन धर्म प्रतिपादन के लिए ही नियत हैं। कवि चरितकार बताते हैं कि इस कवि ने सिद्धराशि नामक एक और ग्रंथ भी लिखा है। इनके काव्यों में ही काव्य-धर्म का जब अभाव है तब धर्म ग्रंथों में काव्यतत्त्व को खोजने की ज़रूरत ही नहीं।

रत्नाकर वर्णि—पश्चिमी पर्वतश्रेणी के पास दक्षिण कन्नड जिले के कार्कल नामक स्थान है। यहाँ सोलहवीं सदी के मध्य भैरस नामक राजा राज कर रहा था। सूर्यवंशी देवराज के पुत्र रत्नाकर इस राजा के आस्थान-कवि थे। यह "श्रृंगार कवि" के नाम से प्रसिद्ध थे। योगाभ्यास से प्राणादि दास वायुवों को अपने वशवर्ती बनाने वाले इस रसिक कवि पर राजपुत्री मोहित हुई। सुन्दर युवा कवि और सुन्दरी राजकुमारी—इन दोनों में स्नेह बढ़ा। यह समाचार राजा को मिला। उन्होंने रत्नाकर को दण्ड देना चाहा। किसी तरह से राजा की यह दण्ड देने की बात रत्नाकर को मालूम हो गयी। रत्नाकर राजधानी से चुपके से भाग निकला। इनके भाग जाने का समाचार किसी को मालूम नहीं हुआ। वह भागकर सीधे अपने गुरु महेन्द्र कीर्ति के पास गया। वहाँ गुरु से "अणुव्रत" की दीक्षा ली और अध्यात्म तत्त्व की साधना में लीन हो गया। इन गुरु के पास एक कवि थे जिसका नाम विजयण्णा था, इन्होंने जैनियों के "द्वादशानुप्रेक्ष" कन्नड में लिखा था। इस काव्य को हाथी पर रखकर गौरवान्वित किया गया और ऐसी उत्तम कृति के कर्ता भी पुरस्कृत किये गये। इस घटना से कवि रत्नाकर की कवि चेतना जागृत हुई। यब इन्होंने 84 संधितों (प्रकरणों) वाले "भरतेश वैभव" काव्य का निर्माण किया और कहा कि इस काव्य को भी हाथी पर रखकर गौरवान्वित किया जाय। परन्तु उस समय जो आचार्य गद्दी पर विराजते थे—उन्होंने इसे पुराणों के अनुसार नहीं है कहकर इनकार कर दिया। इस पर वाद-विवाद हुआ और अंत में आचार्य ने क्रोधित होकर इन्हें बहिष्कृत किया। इतना ही नहीं, अपनी सात सौ श्रावक शिष्य मंडली में कहीं भिक्षा तक न मिल सके, ऐसी व्यवस्था की। रत्नाकर इससे डरे नहीं। इस अन्याय का कारण अपना मत ही समझकर उन्होंने मत परिवर्तन कर लिया और वीरशैव मत की दीक्षा ली। इस मत के शास्त्र पुराणों में गंभीर अध्ययन से गहरा ज्ञान पाया। कुछ समय के बाद जब क्रोध शांत हुआ तो फिर जैन बने—यह इस कवि के विषय में देवचन्द्र (1838) कृत "राजावली कथा" में वर्णित जीवन चारित है।

कवि ने अपने काव्यों में स्वविषय के संबंध में कुछ नहीं लिखा है। रत्नाकर वर्णि, रत्नाकर अण्णा, रत्नाकर सिद्ध—ये इनके पर्याय नाम हैं। परन्तु उन्हीं के कथनानुसार उन्हें "रत्नाकर सिद्ध" नाम पसन्द है। उन्होंने अपने माता-पिता का नाम न बताकर केवल यह कहा है कि "श्री मंदर स्वामी" मेरे पिता हैं। अपने देश को कर्नाटक और वंश को क्षत्रियवंश बताया है। दीक्षा गुरु चारुकीर्ति आचार्य और मोक्ष-गुरु हंसतीर्थ—बताया है और कहा है कि मोक्षगुरु हंसतीर्थ की आज्ञा से आत्मश्रीलार्थ "भरतेशवैभव" को लिखा। अपने विषय में उन्होंने जो कुछ बताया है वह इतना ही है। उन्होंने अपने काव्य निर्माण की अवधि को यों बताया है कि यह वृषभमास में

शुरू किया गया और कुंभ मास में समाप्त किया जा सका। तात्पर्य यह कि नौ महीनों की अवधि में दस हजार पद्यों वाला यह "भरतेशवैभव" लिखा गया।

रत्नाकर ने भरतेशवैभव के अलावा अपराजितेश्वर शतक, त्रिलोक शतक, रत्नाकराधीश्वर शतक—इन तीन शतक ग्रंथों का भी निर्माण किया और देवचन्द्र "राजावली कथा" से विदित होता है कि इन्होंने करीब दो हजार तक अध्यात्म गीतों की भी रचना की है। त्रिलोकशतक से विदित होता है कि कवि का स्थान मूडबिदरे एवं इस शतक का निर्माणकाल ई० सन् 1457 है। इसे कवि की प्रथमकृति मानने के लिए काफी आधार मिलता है, अतः कवि का समय और कृति रचनाकाल पंद्रहवीं सदी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। अपनी कृतियों में कवि ने अपने बारे में कुछ भी नहीं बतलाया है; फिर भी भरतेशवैभव को शामूलाग्र पढ़ने पर लगता है कि देवचन्द्र रचित "राजावली कथा" में वर्णित रत्नाकर की जीवनी केवल दंतकथा न होकर एक ऐतिहासिक बात है। "भरतेश वैभव" के पाठकों को ऐसा अवश्य लगता है कि यह कवि बेशक रसजीवी था। उनके प्रणय जीवन संबंधी सारी दंतकथाएँ सत्य हो सकती हैं—ऐसा कहना ठीक न होने पर भी उनके नाम के साथ जुड़े "वर्णि" और "सिद्ध" शब्दों के आधार पर उन्हें विरक्त मानकर चलना भी सत्य से दूर ही होगा। उनके मतांतरित हो जाने की कथा में भी कुछ सार है—ऐसा लगता है। एक तो यह कि स्वयं जैन देवचन्द्र ने अपने ही मतानुयायी कवि रत्नाकर के विषय में लिखना, इससे भी बढ़कर कवि का अपने काव्य "भरतेश वैभव" में भोगांग, योगांग, त्यागांग—इन तीन अंगत्रयों के विषय में लिखकर योग-भोगों के सामरस्य सिद्धांत को अपने काव्य में समन्वित करना तथा ऐसे कुछ वाक्यांशों का प्रयोग करना—आदि आदि बातें इस कथा के कुछ अंशों को पुष्ट करती हैं। "सोमेश्वर शतक" जो पाल्कुरिके सोमनाथ रचित कहकर प्रसिद्ध हैं वह रत्नाकर विरचित है—ऐसी प्रतीति है। ऐसा मालूम पड़ता है किसी तालपत्र की प्राचीन पांडुलिपि में निम्नलिखित एक पद्य है। पद्य यों हैं—

"वर सम्यक्त्व सुधर्म जैन मतदोळ् तां पुट्टिया दीक्षेयं
धरिसी सन्नुत काव्य शास्त्रगळनुं निर्माणकं माडुतं
वर रत्नाकर योगियेन्दु निरुतं वैराग्य बन्देरलां
हरदीक्षाव्रत नादेनै हरहरा श्री चेन्नसोमेश्वरा ॥ इसका भाव है कि "श्रेष्ठ जैनधर्म में जन्म लेकर दीक्षित होकर उत्तम काव्यशास्त्र आदि का निर्माण करते हुए यह रत्नाकर विरक्त होकर हरदीक्षा में दीक्षित हुए।" इस पद्य को देखने पर इस बात पर विश्वास करने के लिए काफी प्रमाण मिलता है कि यह "हरदीक्षाव्रती" (शैव) हुए थे। इस बात का निर्णय ("इदमित्थं" कहकर) करने के लिए तैयार न होने पर भी, इस बात की ओर इशारा करने में कोई आपत्ति नहीं की कि कवि रत्नाकर हरदीक्षाव्रती हुए होंगे—ऐसा सोचने के लिए, यहां एक आधार है।

रत्नाकर ने विजयण्णा पर स्पर्धा करके काव्य लिखा और वह पुरस्कृत नहीं हुआ—यह बात सत्य प्रतीत होती है। कवि रत्नाकर ने संप्रदायबद्ध पौराणिक कथा में साहस के साथ रद्दोबदल करके निरंकुशता बरती है इस "भरतेश वैभव" में। इससे आज भी यह काव्य पंथ और रत्न के धर्मग्रंथों की तरह धर्म की गद्दी पर नहीं चढ़ सका है। इस काव्य के अंत में कवि दुखी होकर कहता है—"मैं कीर्ति कामी नहीं हूँ:

कीर्ति होगी भी तो अपने आप होगी; जब होगी तब उस कीर्ति को देख-सुनकर धूर्त लोग ईर्ष्या करेंगे; और काव्य कर्म में लगेंगे; उनकी कविता आगे नहीं बढ़ेगी; कर्ण-मधुर भी वह नहीं बनेगी; इससे वे हैरान होकर कहेंगे—छोड़ो, नयी कविता है, प्राचीन शास्त्र का रीति-रंग इसमें नहीं है; वे हमें अपने रास्ते जाने के लिए भी नहीं छोड़ेंगे; खामोखाह झगड़ा करेंगे; पुस्तकों के भार से दबकर अपने को बड़े गुरु मानकर बरतेंगे; मैं आत्मनिरीक्षण में लगा रहूँ तो वे दिगंबर होकर मन में अंधेरा भरकर बकवास करते फिरते ढकोसला करेंगे; चाहे वे कितना भी ढकोसला करें, बकवास करते फिरे, मुझे अपनी कृति के कारण कीर्ति मिलेगी जरूर; और उन्हें कुछ नहीं मिलेगा; अतः मेरे काव्य की निंदा करने पर भी मैं प्रतिवाद नहीं करता; "मैं स्पर्धा से नहीं डरता; उनका एक महीने का अध्ययन मेरे एक दिन के अध्ययन के बराबर भी नहीं; फिर भी मुझे गर्व नहीं; मैं अपने को सर्वज्ञ नहीं मानता हूँ। मैं जो कहता हूँ वहीं आखरी निर्णय नहीं है; परम रहस्य बहुत कुछ है जो छिपा पड़ा है; आत्मा की महिमा अपरंपार है; मैं किसी दूसरे पर ईर्ष्या कर लिखने नहीं लगा; अपने स्वांतस्सुखाय लिखता हूँ। दो चार धूर्त मेरे काव्य की निंदा करेंगे तो भी क्या? थोड़ी सी शृंगार सामग्री यहाँ आयी होगी, तो भी क्या ? शृंगार पर मोहित होकर लोग बिगड़ न जाँय, शरीर सुख की लालच में पड़कर मोक्षसुख को खो न दें—इसलिए अपने काव्य में श्रंगार का वर्णन किया है—इसे न समझकर लोग इसी बात को बड़ा क्यों बनावें ? चाहे तो सुने, न चाहे तो छोड़ दें; चाहे दूर से ही बिदाकर दें; इससे न मुझे दुःख होगा, न संतोष ही होगा।"—कवि की ये बातें कवि के मन की प्रतिक्रिया के द्योतक नहीं हैं ?

रत्नाकर के तीन शतक काव्यों में प्रत्येक में 128 पद्य हैं। इनमें से एक त्रिलोकशतक है जो जैन मत के अनुसार सांसारिक स्थिति गतियों के विषय में जानकारी देता है और वह कंदपद्यों में है। शेष दोनों वृत्तों में हैं। इनमें "रत्नाकर शतक" कवि की परिणत-मति का अच्छा और उत्तम उदाहरण है। इनका लक्ष्य अन्य शतकों की ही तरह नीति (चरित्र-निर्माण) निरूपण करना है तो भी इस शतक में ओज है। कहने में प्रखरता है। शास्त्र जानने वाले ढकोसलेबाज शास्त्रज्ञों के बारे में कवि कहते हैं—

> "शास्त्रं बन्दॉडॅ शांति, सैरणॆ, निगर्व, नीति, मॆल्वातु, मु
> क्ति स्त्रीचिन्तॆं, निजात्मचिन्तॆं, निलवेळ्कंतल्लदा शास्त्र दि
> दुस्त्रीचिन्तनॆं, दुर्मुखं, कलहमुद्गर्वं, मनंगॊण्डॊडा
> शास्त्रं शास्त्रमॆ, शास्त्रि शास्त्रिकनला रत्नाकराधीश्वरा।"

तात्पर्य यह है—"यदि कोई शास्त्रज्ञ विद्वान् हो तो उनमें शांति, सहिष्णुता, निरहंकार भावना, सच्चरित्रता, मधुरवाणी, मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति, आत्मचिंतन,—आदि इन सब गुणों का होना वास्तव में सच्चे शास्त्रज्ञ और विद्वान् होने का प्रमाण है। मुक्ति स्त्री की चिंता के बदले दुःशीला कामिनी की चिंता करना, क्रोध और गर्व से दूसरों के प्रति कटूक्तियाँ बोलना, झगड़ा करना, मनमाने व्यवहार करना आदि गुणों के होने पर उस शास्त्रज्ञ विद्वान् को क्या कहें ? उनका सारा शास्त्र ज्ञान निरर्थक है। वह शास्त्रज्ञ नहीं, शस्त्र के समान घातक है।" रत्नाकर इस तरह, पंडित होते हुए भी शीलसंपन्न न होकर दूसरों के प्रति ईर्ष्या करने वाले और कटुता दिखाने वाले लोगों की टीका

करते हैं। कवि रत्नाकर की वाणी प्रखर होने पर भी, उनके धर्म प्रतिपादन एवं तत्त्वजिज्ञासा में औन्नत्य है। औदार्य है। दाक्षिण्यरहित होकर सत्य को व्यक्त करने का साहस तभी कोई कर सकता है जबकि वह स्वयं मनोवाक्-काय-कर्म से सत्यव्रती हो, स्वयं आदर्श-साधना-तत्पर हो। इस तरह की निर्भीक प्रखरवाणी और स्वतंत्र मनोवृत्ति रत्नाकर को छोड़कर अन्य किसी जैन कवि में हम देख नहीं पाते। जैन तत्त्व के अनुसार जीवन की क्षणिकता उन्हें स्वीकार्य है; परन्तु इस कारण से ऐहिक सुख-त्याग करना उन्हें स्वीकार नहीं। ऐहिकता का अनुभव करते हुए शाश्वत सुख की खोज करनी चाहिए—यही उनका मानवता के प्रति संदेश है। अर्थात् लौकिक सुखानुभव त्याज्य न हो; पारलौकिक सुख की प्राप्ति लौकिक सुख के त्याग से ही संभव है—ऐसा समझना गलत है। ऐहिक अशाश्वत अवश्य है, परन्तु इस अशाश्वत में से शाश्वत को पाने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। व्यावहारिक जीवन के साथ आध्यात्मिक जीवन का समन्वय करना इसके लिए वांछित है। यही रत्नाकर का संदेश और "भरतेश वैभव" काव्य का सारसर्वस्व है।

"भरतेश वैभव" में त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों में से एक भरत चक्रवर्ती के जीवन का इतिहास है। इनकी कथा बहुत पुरानी है। प्रथम तीर्थंकर वृषभनाथ के एक सौ पुत्रों में प्रथम, सोलहवें मनु, प्रथम चक्रि, चरमांग आदि तीर्थंकर के जीवन चरित के साथ इनका (भरत) वृत्तांत भी बताना संप्रदायगत परंपरा है। अन्य सब शलाका पुरुषों के जीवन चरित की ही तरह भरत के जीवन-चरित के लिए भी जिनसेन कवि का "महापुराण" ही मूल-आधार है। इस पुराण के अनुसार वृषभनाथ ने अपने बच्चों को राज्य सौंपकर स्वयं तपस्या करने चला जाता है। बड़ी रानी का बेटा भरत अयोध्या में, छोटी रानी का बेटा बाहुबली पौदनपुर में राज्य कर रहे थे। कुछ समय के पश्चात् भरतचक्रि के शस्त्रागार में चक्ररत्न का प्रादुर्भाव होता है। उसके बल पर राजा विश्वविजय प्राप्त करता है। परन्तु छोटा भाई बाहुबली उनके वशवर्ती होने पर राजी नहीं होता। इस वजह से भरत को उनसे युद्ध करना पड़ा। युद्ध में होने वाले रक्तपात से लोगों को बचाने के लिए देवताओं ने इन दोनों के युद्ध पर नियंत्रण कर दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध, बाहुयुद्ध के विधान का निर्णय किया। भरत इन सब प्रकार के युद्धों में बाहुबली से हार जाता है। इस अपमान के कारण रोषाविष्ट होकर भरत अन्यान्य युद्ध करने पर उतर पड़ा। निरस्त्र बाहुबली पर उसने चक्ररत्न का प्रयोग किया। इस तरह के अन्याय और अधर्म को देखकर बाहुबली विरक्त होकर तपस्या करने चला गया। इधर भरत चक्रवर्ती बनकर राज्य चलाते रहे और एक दिन उसने दर्पण में अपना चेहरा देखा तो पके बाल दिखाई पड़े। इससे विरक्त होकर तप करने चला जाता है।

रत्नाकर ने भरत की कथा का यह ढाँचा लेकर उसमें पर्याप्त मात्रा में रद्दो-बदल किया है। प्रथम तीर्थंकर की अंशभूत इस कथा को एक स्वतंत्र कृति के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यही रत्नाकर का वैशिष्ट्य है। रत्नाकर के समय तक किसी अन्य कन्नड कवि ने इस तरह का प्रयत्न नहीं किया था। रत्नाकर ने इस तरह एक स्वतंत्र कृति के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न ही नहीं किया बल्कि जो सामग्री मौजूद थी उसमें कुछ परिवर्तन करके कुछ नयी सामग्री मिला करके अपनी

कृति के कथानायक को बहुत ऊँचा उठाने का साहस किया है और इस कार्य में वह सफल भी हुए हैं। केवल "जिन" बनाने वाले के लिए ही नियत पंच कल्याणों का आयोजन, अपने नायक भरत के जीवन में, करने का यत्न किया है। कवि ने "जिन" के पंच कल्याणों के बदले योग विजय, दिग्विजय, योगविजय, अर्ककीर्ति विजय और मोक्ष विजय—इन पाँच विजयों के वितान पर भरत की कथा को फैलाया हैं। ये पाँच विजय पंच कल्याणों के पर्याय हैं। इन पाँच विजयों के निरूपण में रत्नाकर की कल्पना शक्ति किस तरह विकसित होकर फैली है, जरा देखें—

भोग विजय कथा-नायक के भोग-साम्राज्य का रंग-बिरंगा चित्र प्रस्तुत करता है। गर्भावतरण कल्याण के अवसर पर भोगने वाले स्वर्ग सुख से बढ़कर सुख इस भूलोक में तीर्थंकर से भी बढ़कर भरत भोगता है। भरतचक्री ने जिस सुख का अनुभव किया है वह अपरंपार है; उसकी गिनती नहीं हो सकती। जिन सेनाचार्य के काव्य में ही इसकी सूचना है। उनकी छ्यानवे हजार पत्नियाँ हैं। उनके साथ जलक्रीड़ा, चंद्रिका विहार आदि कई प्रकार के सुख भोग भोगते हुए वह परम सुखी जीवन यापन करता है। जिन सेनाचार्य की इस सूचना को स्वीकार कर कवि ने अपनी समस्त सृजनशक्ति का भरतचक्री के शृंगार जीवन के वर्णन में विनियोग किया है। "भोग संधि" एक शृंगार-रस-सागर ही है। उनकी पत्नियाँ उनके साथ जो सरस-सल्लाप करती हैं—ऐसा प्रत्येक सन्निवेश एक कल्लोलमाला है। इस कल्लोलमाला पर तैरते हुए पाठक लावण्य-रसानुभूति की चरम सीमा में पहुँचकर अपने को धन्य मानेंगे। भरतचक्री को शृंगार जीवन का विस्तार और उसकी गंभीरता रोमांचकारी है।

भरत की छ्यानवे रानियों की पंक्ति में बीच की मकुटमणि है कुसुमाजी। अपने सुन्दर रूप, कलानिपुणता, चातुर्य, सौजन्य आदि के कारण वह पति की हृदयेश्वरी बनी है। एक बार इस सुन्दरी रानी ने अपने हृदयेश्वर पर एक सुन्दर काव्य की रचना की। उसे सुनकर भरतचक्री बहुत खुश हुए। और इच्छा हुई कि एक दिन उसके साथ रहकर आनन्द से समय बितावें। इसलिए कहला भेजा कि उसके यहाँ खाने आयेंगे। वक्त पर उन्हें खाने के लिए बुलाने कुसुमाजी ने अपनी बहन मकरंदाजी को भेजा। झूले पर सुखसनासीन अपने बहनोई (राजा भरतचक्री) के सामने गंध-पुष्पाक्षत-तांबूल आदि को स्वर्ण थाल में रखकर मकरंदाजी ने कहा—"जीजा जी! भोजन तैयार है; अब आप हमारे घर चलें।" यौवन की दहलीज पर स्थित उस सुन्दर कुमारी को देखकर राजा की इच्छा हुई कि उससे कुछ छेड़खानी करें। इसलिए राजा ने कहा—"आज मैं तुम्हारे घर आऊँ, यह उचित है? एकाध साल बाद तुम मुझे बुलाओ तो आऊँगा।" यह सुनकर वह लड़की गंभीर हो अपनी बात बदल कर बोली—"बहन के घर पधारने को कहा।" राजा को मालूम था कि वह बहुत चतुर है। उसे छेड़ने पर मजा भी आयेगा—यह भी राजा को अच्छी तरह मालूम है। इसलिए कहा—"तुम बड़ी चतुर हो! अभी कहा कि कि मेरे घर आओ; क्या तुमने कभी अपनी बहन का नाम भी लिया? यों कहकर उसे छेड़ा। राजा ने जैसा सोचा था वैसा ही हुआ; वह भी वाद-विवाद करने के लिए तैयार होकर खड़ी हो गयी;—यह संभाषण देखिए—

मकरन्दाजी—"अक्का (बड़ी बहन) का नाम आगे चलकर उनके बच्चे होंगे तो लेंगे।

इससे मेरा क्या सम्बन्ध ! पेचीली बात मत करें।"

भरतचक्री—"यों बातें करती हुई मुझे आकर्षित करती हुई बुला रही यह सुन्दरी कातर हो रही है।"

मकरन्दाजी—"मैं कातरता-वातरता नहीं जानती, यह कातरता आपकी वे अंबुजाक्षियाँ ही जाने; इस तड़क-भड़क को हम क्या जाने ? अब बात बन्द करके चलें।"

मकरन्दाजी की ये बातें सुनकर राजा उसके पीछे-पीछे हो लिए। कुसुमा जी के महल में प्रवेश करते ही वहाँ स्वर्ण-पंजरस्थ "अमृतवाचांक" नामक तोते ने राजा का स्वागत किया। तोते ने कहा—"जीजा जी ! आप कुशल तो हैं ? आप इस घर की ओर बार-बार क्यों आवेंगे ? क्या पृथ्वीपति होने का गर्व है ? हमारी दीदी के घर बारबार क्यों आएँगे ? आये तो सही, फिर जायेंगे ? मैं आपके पैर बाँध दूंगी; हमारी दीदी की मृणाल-सी बाहुलता भी है जो आपको बाँध रखें; कैसे जाएँगे ? मैं देखूंगी। हमारी दीदी के पास रहने पर इन दोनों पाशों से भी बचकर जाने की कोशिश होगी तो दीदी के दृष्टिबाण चुभकर कनखियों की नजर आपको नजरबन्द कर दें—ऐसा कराऊँगा।"—"अमृतवाचांक तोते की शिक्षा गुरु तो यही मकरंदाजी है। राजा ने उसे अपने बाहुपाश में बाँधकर चुंबन से उसे सम्मानित किया। मकरंदाजी भी बड़ी नखरे करने वाली थी। राजा के इस व्यवहार से वह क्रोधित हुई हो - ऐसा अभिनय करती हुई उस अपने जीजा से वाग्युद्ध में उसे खुश किया। कवि ने इस प्रकरण को "सरसंधि" नाम दिया है लो बहुत ही अन्वर्थ है।

राजा का कुसुमाजी को इस तरह सम्मानित करने का यह प्रसंग बहुत ही सुन्दर और शृंगाररस परिपाक से हुआ है। पति-पत्नी जब तनहाई में रहे तब राजा के प्रेममय मीठे वचनों ने कुसुमा के चित्त को प्रसन्नता से भर दिया। राजा भरतचक्री ने कुसुमा के घर प्रत्येक कोने-कोने को देखा और चीजों को यथास्थान करीने से रखा पाया; इतना ही नहीं, पूरे महल की सजावट को देखकर चकित हुए। सजावट की प्रत्येक चीज़ की तारीफ करते-करते कुसुमाजी के साथ सारे महल का चक्कर लगाया; हर चीज की तारीफ़ के साथ-साथ कुसुमाजी की और कुसुमाजी के मायके वालों की भी तारीफ़ करने लगे। कुसुमाजी बड़ी बुद्धिमान् और चतुर थी। वह इन सब प्रशंसाओं से खुश होकर फूली नहीं। उसने पतिदेव की ही तारीफ़ करके उन्हें थाली पर पधारने को कहा। स्वयं अपने हाथ से परोसकर भोजन कराया। हाथ धुलवाये; फिर मंजिल पर के एकांत-प्रकोष्ठ में ले गयी; वहाँ तल्प तैयार था। उस पर लिटाकर, पान-पट्टी दी, कर्पूर गंध आदि का लेप किया, पंखा करने लगी, फिर पैर दबाने लगी। राजा के आग्रह करने पर लौटकर आयी और क्षणभर में खाना खाया; प्रसाधन प्रकोष्ठ में गयी और बाल संभाले, उन घुंघराले बालों की वेणी गूँथी; तिलक लगाया। अपने सौन्दर्य पर स्वयं मुग्ध होकर हँस पड़ी। तांबूल गंध सेवन के बाद पतिदेव के शयनकक्ष के द्वार पर धीरे-धीरे जाकर पहुँची। द्वार के पास खड़ी प्रियतमा कुसुमाजी को देखकर राजा ने उन्हें अन्दर आने को कहा; पतिदेव की आज्ञा पाकर मंदहास बिखरती हुई कुसुमाजी अन्दर प्रविष्ट हुई। पत्नी का दिया हुआ सुवासित जल लेकर कुल्ला किया; उसका खिलाया हुआ पान चबाते हुए पूछा—"कुसुमी क्यों आयी ?"

सवाल का जवाब मिला—"पता नहीं क्यों आयी ? ईश्वर ही उनकी इच्छा को जानता है।" राजा ने कहा—"लगता तो ऐसा है कि शायद हम से झगड़ने आयी है।" रानी ने कहा—"झगड़ने नहीं, कुछ रहस्य बात है; सजा से परामर्श करने आयी है।" रसिक चक्री ने कहा—"गूढ़ार्थ ? ऐसा रहस्य कौन-सा है ?"—रानी ने कहा—"मूर्ख हो तो खुलकर कहना होगा; प्रौढ़ मति आते ही समझ जाएँगे कि क्यों आयी।" अब राजा क्या उत्तर दें ! वह उठ बैठे और रानी को खींचकर अपने बाहुपाश में कसकर बाँध लिया। सरस विनोद, भोग-भाग्य आदि से राजा को संतुष्ट करने वाली वह मोहन मूर्ति हाथ में वीणा लेकर बजाती हुई गाने लगी। वह साहित्य-संगीत में सरस्वती के बराबर लग रही थी। कवि ने अपनी वर्णना शैली में उस वीणागान के वर्णन में साक्षात् सरस्वती को लाकर सामने खड़ा कर दिया है। राजा उस गान देवी रानी की संगीत-माधुरी में डूबता उतराता आत्मविस्मृत हो गया; और भी सुनते ही रहने की लालसा हो रही है। राग-अलाप आदि का रंग गहरा जमता जा रहा है। अब राजा अपने को कब तक वश में रख सकता है ! गायन बन्द करने को कहने की इच्छा नहीं हो रही है; इधर मन भी गाढ़ालिंगन के लिए तड़प रहा है। क्या करें ? प्रत्येक आलाप की समाप्ति पर रानी कुसुमाजी को अपने बाहुपाश में कसकर चुंबन करता है।—इस तरह कवि ने भरतचक्री के अत्यंत सुखी पारिवारिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है।

रत्नाकर कवि के भरत अत्यंत सुखी जीवन बिताने वाले हैं। उनकी छयानवे रानियाँ हैं, फिर भी किसी में सौतियाडाह नहीं। वे सब एक दूसरे के साथ सगी बहनों का सा बरताव करती हैं। सब तरफ से बहने वाली इस आनन्द की धाराओं का संगम केन्द्र भरतचक्री है। वह ऐसा शक्तिशाली है कि सबको एक साथ संतुष्ट कर सकता है। रातदिन उन्हें सुख सागर में डुबोकर आनन्द-निमग्न कर सकता है। एक संपन्न परिवारी जिस-जिस तरह के सुख की कल्पना कर सकता है उन सभी सुख भोगों को भोगने में कहीं कोई कमी इस भरतचक्री के जीवन में नहीं है। उन पर जितने लोग अवलंबित हैं वे चन्द्रमा के चारों ओर फैले नक्षत्रों की तरह हैं। कुसुमाजी जैसी कला-प्रवीण सुर सुन्दरियाँ भरत के रानीवास में पर्याप्त संख्या में हैं। वे सभी अपने व्यक्तित्व को ताक पर रखकर भरतचक्री के सुख में अपना सुख मानकर अपने जन्म की सफलता समझती है। केवल रानीवास की रानियाँ ही नहीं, माता, साले, सास-ससुर आदि अनगित बन्धु-बाँधव भी भरतचक्री को सुखी रखने के लिए सर्वदा तैयार हैं, हमेशा इन सभी का यही ख्याल रहता है। कवि की कुशलता ने भरत को सभी तरह से संपन्न चित्रित किया है।

"भोग विजय" में कवि ने मूल कथा का यथावत् उपयोग विशेष परिवर्तनों के बिना किया है। मूलकथा की सूचनाओं के अनुसार भरत के चित्र को चित्रित कर उन्हें भोग-सरोवर का कमल बनाया है। परन्तु "दिग्विजय पर्व" में वर्णित भरत के दिग्विजय के प्रसंग में काफी हेरफेर किया है। मूल पुराण का भरत दिग्विजल करने के लिए निकलकर समस्त भूमंडल को क्षुब्ध बनाकर सारे राजाओं को त्रस्त करके आसमुद्रांत भूमण्डल को जीतकर अपनी राजधानी को लौटता है। अपने भाई लोग—उनमें में भी—बाहुबली को सामना करने के तैयार देखकर क्रोधित होता है। जो राजा हार मानकर वशवर्ती नहीं बनता है उसे तपस्या करने के लिए जाना होगा"—

यों भरत घोषणा करता है। एक बाहुबली को छोड़कर अन्य सभी तप करने जाते हैं। भरत बाहुबली के साथ युद्ध करता है। युद्ध में हारकर अधर्म से जीतने का यत्न करता है।—परन्तु कवि रत्नाकर का भरत उपर्युक्त पुराण के संप्रदाय के अनुसार चित्रित भरत से भिन्न है। रत्नाकर को भरत का चित्र महान् है; वह जमीन में जड़ जमाकर आसमान में विस्तृत होकर फैला है। स्वयं महत्वपूर्ण हैं, उनकी बातें भी वैसे ही महत्व-पूर्ण और गंभीर है। उनके नय-विनय की परवाह न करने वाले उनके भाई ही धूर्त हैं, यहाँ कवि रत्नाकर की कृति में। घोषणा के अनुसार सभी के तप करने के लिए जाने की बात सुनकर भरत दु.खी होता है और कम से कम बाहुबलि को संतुष्ट कर तपस्या करने जाने से बचाने के लिए उनके पास दक्षिण नामक अपने चतुरवाग्मी हर-कारे को भेजता है। यह हरकारा विनयशील है। वह स्नेहसिक्त वचनों से बाहुबली को समझाने का प्रयत्न करता है। वह कहता है—"दादा भरत ने तुम्हें आँखभर देखकर संतुष्ट होने की इच्छा से मुझे बुला लाने के लिए भेजा है। दादा तुम्हारे द्वार पर खड़े हैं। चलो, उनसे मिलो।"—हरकारे की ऐसी स्नेह सिक्तवाणी की परवाह न करके बाहुबली उनसे युद्ध करने के लिए तैयार होता है। उनकी माता और रानियाँ भरत के पक्षपाती हैं। इन सबके रोकने पर भी न रुककर बाहुबलि युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता हैं।

कवि रत्नाकर के लिए भरत का युद्ध प्रसंग ही अच्छा नहीं लगता। "अहिंसा परमोधर्मः" कहकर सारी दुनियाँ को अहिंसा का उपदेश देने वाले जैनियों में तत्रापि शलाका पुरुष भरत का युद्धक्षेत्र में खड़े होना कवि रत्नाकर के लिए सह्य नहीं। युद्ध को तो कतई रोक दिया है। भरत के बाहुबलि पर चक्र-प्रयोग करना भी झूठ है। जब युद्ध ही छिड़ा है तो भंग करना अनुचित समझकर सद्‌गुण वचनों से उन्हें जीतता है। क्षणभर में मुक्ति प्राप्त करने वाला, शलाका पुरुष कभी कठोर हृदयी हो सकता है? —यह कवि का कथन है। युद्ध के लिए तैयार खड़े भाई बाहुबली से भरत (बड़े भाई) कहते हैं—"सुनो भैया! आज दुर्बुद्धि से प्रेरित होकर यह युद्ध क्यों करें? इससे अका-रण रक्तपात होगा। राजा लोगों को बिना कारण के युद्ध करना उचित नहीं। मैंने तुम्हारे प्रति कभी कोई बात जो अपमानजनक हो नहीं कही है। मेरी सेना के किसी व्यक्ति ने ऐसी बात कही है? सहोदर भाई को देखने की लालसा से कहला भेजा; मैं तुमसे इतना बड़ा हूँ, इसलिए छोटे भैया को अपने सेना-शिविर में बुलवाया। यदि तुम ही बड़े होते तो क्या बुलाने पर मैं तुम्हारे पास नहीं आता? तुम्हें जीतकर क्या मुझे कीर्ति मिलेगी? देवादिदेव मुझे धिक्कार नहीं करेंगे? तुम्हें जीतकर उस विजय को लेकर मैं क्या करूँगा?"—इतना ही नहीं, और कहते हैं—"अब मैंने जो कुछ जीता है वह सब तुम ले लो; तुम्हारे सुख संतोष को आँखभर देखकर मैं संतुष्ट होऊँगा। अपने जैसे लोगों को यह उचित नहीं कि भाई-भाई आपस में लड़ें।"—भाई की बातें सुनते-सुनते बाहुबली का क्रोध "गरुड़ मंत्र से उतरने वाले सर्पविष" की तरह उतर गया और उसका क्रोधी-हृदय शांत हुआ। वह लज्जा से सिर झुकाकर कहने लगा कि—"मैंने अपराध किया; मेरी गलती को माफ करें; आपने अपनी पवित्र वाणी से मेरे मन के कलुष को धोकर मुझे परिशुद्ध बनाया।"—यों कहते हुए उसने साष्टांग प्राणिपात किया।

पौराणिक कथा में अपनी इच्छा के अनुसार रद्दोबदल करना हो तो कवि को अपने "दर्शन" में एक उत्कृष्ट विश्वास होना चाहिए और अपने निश्चित आदर्श के अनुरूप पौराणिक कथा में परिवर्तन करने के लिए आवश्यक साहस भी होना चाहिए। कवि रत्नाकर ऐसे ही साहसी हैं। महाकवि पंप ने भी अपने पुराणकाव्य को केवल भाषांतर के ही रूप में प्रस्तुत किया है। परंतु रत्नाकर ने अपने लिए जो ठीक लगे सो सब परिवर्तन मूल पौराणिक कथा में धैर्य और साहस के साथ किया है। संभवतः इसी कारण से श्रावकों में इन्हें भिक्षा न मिल सकी और "द्वादशानुप्रेक्षा" के लिए जो सम्मान मिला वह "भरतेश वैभव" को नहीं मिला नहीं तो क्या हुआ ? जो त्यागबुद्धि कवि ने उस समय दर्शायी वही आज कवि की महान्-उन्नति का कारण बनी। बेशक रत्नाकरवर्णी कन्नड का महान् कवि है और "भरतेश वैभव" महान् कृति है।

रत्नाकर के "भरतेश वैभव" के शेष तीन भागों में—अर्थात् पंचकल्याणों के पर्याय रूप भोग विजय और दिग्विजय को छोड़कर शेष तीन विजयों में—मूलकथा भाग में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया है।

"भरतेश वैभव" का औन्नत्य उसके काव्यत्व में है। रत्नाकर को धर्मवीर भरत पर अपार प्रेम और गौरव है। उनके जीवन चरित को सुनकर लोगों का उद्धार हो जाय—यही उनका उद्देश्य है। इनका निश्चित विश्वास है कि शुष्क वेदांत निरूपण से सुख-भोगों की नींव पर निर्मित आध्यात्मिक जीवन अधिक स्थिर और शाश्वत है। इसलिए अपनी कथा का आरंभ ही भरत के लौकिक जीवन के भोगभाग्य के वर्णन से शुरू करता है। भरत आगर्भ श्रीमान् है। षट् खंडों के भंडार का मालिक है; नौ निधियों का स्वामी है। भोग साधना का मिनियों की कमी नहीं; एक नहीं दो नहीं छयानवे हजार पत्नियाँ हैं। वह जो चाहे सो सब क्षणभर में प्रस्तुत हो जाता है। इंद्रियतृप्ति के लिए आवश्यक प्रसाधन आवश्यकता से भी अधिक प्रस्तुत हैं। ये प्रसाधन-परिकर निर्दिष्ट एवं धर्मसंगत हैं। कवि रत्नाकर ने धर्म का प्रमुख स्थान कृति में बनाये रखा है। अर्थकाम भरत के गुलाम है, फिर भी पंचाणुव्रत परायण, प्राणीदया धर्म का पालन करने वाले हैं—वह दुनिया के मोहपाश में फँसता नहीं। धर्म की सीमा के ही (अंतर्गत) रहकर सुखभोग भोगने वाला राजर्षि है, रत्नाकर कवि का नायक भरत। कवि रत्नाकर की दृष्टि में राजर्षि की व्याख्या यों है जिसे उन्होंने अपने "रत्नाकराधीश्वर शतक" में बताया है—

"राजश्रीयॉळनेक कामिनयंरुटाळाप नृत्यंगळुं
टाजिह्वारुचियुंदु कामिसिदुवॅल्लावुंटु उंटादॉडं
राजीवं कॅसरळ्दि यळ्द्दवॉलिद्दू च्वॅक्कॅ कण्णिट्टॉडा
राजं राजनॅ तानॅ राजऋषियै रत्नाकराधीश्वरा"—अर्थात् "राज्य है, ऐश्वर्य है, अनेक कामिनियाँ हैं, मृदुमधुर संगीत है, मनोहर नृत्योत्सव है, जिह्वा की रुचि को तृप्त करने के लिए जो चाहे बनाकर खिलाने वाले हाथ बाँधे खड़े हैं; इलाज सब होते हुए भी कीचड़ के कमल की तरह कीचड़ में रहते हुए भी उससे अछूता रहकर ऊर्ध्वमुखी होकर जैसे विकसित होता है वैसे ही सब तरह के सुख और भोगोपभोगों के बीच रहकर भी इन सबसे अछूता रह सकने वाला राजा ही वास्तव में राजर्षि है।"—कवि रत्नाकर का नायक राजा भरतचक्री इसी तरह का राजर्षि है।

शृंगार सरोवर में तिरने वाले कमल जैसे हैं; पता नहीं, किस अमृत घड़ी में इस स्वर्णशृंखला से मुक्त होकर ब्रह्मानन्द से रस में विलीन हो जाएगा। यह है भरतचक्री की स्थिति। अभी थोड़ी देर पहले पत्नी कुसुमाजी के घर में आनन्द से मिष्ठान भोजन करने के बाद पान का स्वाद लेते हुए, संगीत रसास्वादन करते भोग जीवन में तल्लीन था न ? इस भोग जीवन रत भरत को देखने पर ऐसा लगता था कि वह इन भोग सामग्रियों की स्वर्ण-शृंखला में वद्ध है। परन्तु, उत्तरक्षण में हम यह क्या देखते हैं ! भरत आँख मूँदकर चिन्मय-मूर्ति को अपने अंतश्चक्षु के सामने प्रत्यक्ष देखते हुए योग मुद्रा में हैं।— इस स्थिति में भरतचक्री की पहुँच का औन्नत्य और व्यक्तित्व का गांभीर्य समझना ही कठिन है। कवि रत्नाकर भरत की इस स्थिति का वर्णन यों करते हैं—

> "भरदनागळॅयिष्टु हॉत्तु नल्लळ कूडॆ। मॆरॆदुदु हळॆ मॆरहाय्तु। आरिदनाग
> ळॆ कंडनागळॆ हंसन। कुरुहना राजयोगीन्द्र। संदुभोगदॉळिद्दु योगकॆ
> सलुबाग।
>
> हिंदणवासनॆयिल्ल। ऑन्दविट्टॊन्दुवस्त्रव हॉदॆवंतिद्दुदॆन्दॆनॆयु भाववानृपगॆ॥

भावार्थ यह है कि "इतनी देर तक पत्नी के साथ जिस आनन्द का अनुभव करता था उसे क्षणभर में भूल गया; यह भूलना भी बहुत पुराना बन गया; तुरंत ही उन्हें उस परमहंस (आत्मा) रूपी चिन्मूर्ति का दर्शन होने लगा; यह राजर्षि जब इस भोग भूमि से योगभूमि में जैसे प्रविष्ट हुआ, अपनी वह समस्त वासना ही ऐसे अदृश्य हो गयी मानो वासना भी ही नहीं। एक चोला उतारकर दूसरा चोला जिस आसानी से पहना जाता है, राजा भरत का भोगजीवन से योगजीवन में प्रविष्ट होना उससे भी आसान है।" और आगे कवि भरत की स्थिति का यों बयान करते हैं—तनुवॆ जिनालय, मनवॆ सिंहासन। वनुप मात्मनॆ जिननॆन्दु। तनगागि तन्निन्दता नोडुति। द्दनु सर्वचिंतॆय-नीगि।"—अर्थात् "शरीर ही जिनालय है, मन ही सिंहासन है, अनुपम आत्मा ही "जिन" है; अंतर्मुख होकर, सारी चिंताओं से निश्चिन्त हो, अपने चित्त में उस चिन्मय-मूर्ति का दर्शन करने में लीन योगमुद्रा में स्थित थे यह राजर्षि।" कवि कहते हैं यह भरत भी श्रीकृष्ण ही की तरह "पद्मपत्रमिवांभसि" है। पाठकों को काव्य शृंगाररस पूर्ण लगना भी कवि की दृष्टि में वह ऐसा शृंगार नहीं जो वासना को जागृत करें। कवि की दृष्टि में यह भरत खाकर भी निराहारी, स्त्री के संग रहकर भी ब्रह्मचारी, भूमंडल के होते हुए भी वह निस्सीम" है। कवि ने अपने काव्य सागर में भोग की एक बड़ी लहर पैदा करके उसके पीछे ही एक त्याग की भी बड़ी लहर उठा दी है। दोनों लहरों का वेग बराबर है। भरतचक्री के जीवन में भोग-योग दोनों आँखमिचौनी का खेल खेलते हैं। उनके समग्र जीवन में योग और भोग दोनों बिल्कुल बराबर तौलते हैं। एक ज्यादा एक कम ऐसा नहीं; यह स्पष्ट दिखता है। भोगमूलक शृंगार और योगमूलक त्याग इन दोनों में परस्पर विरोध न हो—ऐसा समन्वय इन दोनों में लाकर एक ऐसे सुन्दर समन्वित धर्मतत्त्व का प्रतिपादन ही रत्नाकर कवि की काव्यसिद्धि है। कवि कु-वें. पु. ने मैसूर विश्वविद्यालय से प्रकाशित "भरतेश वैभव" के प्राक्कथन में कहा है कि—"रत्नाकरवर्णी सचमुच महाकवि हैं; यह महाकवि शब्द इनके विषय में उसके संपूर्णार्थ के साथ अन्वर्थ है। यह औपचारिक बात नहीं; "भरतेश वैभव" में

त्याग-भोगों का समन्वययोग कवि का आदर्श है और उन्होंने उसे बहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। इतना ही नहीं कवि ने अपने इस आदर्श को केवल भरत के जीवन में ही नहीं संपूर्ण काव्य के प्रत्येक अंग-अंग में और प्रत्येक प्रसंग में इच्छापूर्वक निरूपित किया है। जब हम इस कृति को पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि संसार के किसी और साहित्य में ऐसी कृति का निर्माण ही नहीं हुआ है। इस दृष्टि से यह अद्वितीय कृति है। विश्व की समस्त भाषाओं के साहित्यों में इसका स्थान संतुलित है। यह कृति कवि के महत्व को दर्शानेवाला प्रदीप हैं।

हमारा बहुतांश साहित्य चर्वित्व-चर्वण और पिष्ट-पेषण है। वही सांप्रदायिकता, वही कवि समय, वही अष्टादश वर्णन—इनकी सीमाओं से घिरकर गढ़े में रुके पानी की तरह गंदला और दुर्गंध पूर्ण हो गया है। एक बार ये पुरानी सांप्रदायिक बातें महाकवियों पर भी हावी हो जाती है। इन बातों में रत्नाकर फँसे नहीं हैं। वह इस सांप्रदायिक्रता से दूर हैं। काव्य रचना का उद्देश्य साधारण लोग पढ़कर रसास्वादन करें—यही कवि रत्नाकर का मंतव्य है। विद्वानों की गोष्ठी इस काव्य को पढ़ें और प्रशंसा करके कवि को बिरुदावली से भूषित करें यह कदापि उनका उद्देश्य नहीं। अगर इच्छा हो तो वह भी पठ्यकाव्य लिख सकता था। परन्तु जमा हुआ पांडित्व उन्हें पसन्द नहीं। वह काव्य देवी सरस्वती से पूछता है कि काव्य को तो इक्षुदण्ड-सा मधुर रस भरा लिखना छोड़कर बांस-सा कड़ा और नीरस क्यों होना चाहिए। उनसे कवि प्रार्थना करता है काव्य रस भरा इक्षु खंड-सा बने ऐसे अनुग्रह करने के लिए सरस्वती से प्रार्थना करता है। चाहे कोई पढ़ें, पढ़ने के बाद खुश होकर वाहवाह करें—ऐसा होना चाहिए। कविता को ऐसा आसान, सुन्दर और मनोहर होना चाहिए। श्रव्यगीत तो साधारण लोगों के लिए समझने लायक सुलभ, नीतिबोधक एवं गेय होना चाहिए। ऐसी सुलभग्राह्य सुन्दर कृति के निर्माण करने वाले कवि पांडित्यभार से बोझिल कविता को क्यों पसंद करेंगे? उनकी निश्चित धारणा है कि अष्टादश वर्णन की काव्य में प्रचुरता हो तो वह बेकार होगी; अतः काव्य वस्तु के लिए जितना आवश्यक है ओर जहाँ आवश्यक वहीं उतना ही होना चाहिए। भाव को प्रधानता देनी होगी, न कि शास्त्र नियम अथवा व्याकरण या छन्दोनियम की प्रधानता होनी चाहिए। काव्य के लक्षण के विषय में जो नियम होंगे सो ठीक मगर कवि अपनी स्वतंत्रता से वांछितार्थ की अभिव्यक्ति में आवश्यक नियमोल्लंघन भी करें तो वह कोई दोष नहीं, और उस दोषोल्लंघन को गलत नहीं मानना चाहिए। केवल लक्षण की साधना के ही लिए काव्य निर्माण करें तो वह काव्य नहीं शास्त्र होगा। शास्त्र काव्य नहीं; काव्य को श्रव्य, सुन्दर, सुलभ और भावपूर्ण, नीति बोधक तथा सर्वजनबोध गम्य होना चाहिए। चाहे इसके लिए असाधु शब्द का प्रयोग भी करना पड़े, उस पर ध्यान देने की जरूरत नहीं।—यह है कवि रत्नाकर का आदर्श। वह कहते हैं कि चन्द्र कलंकी है; तो क्या हुआ? चंद्रिका में तो वह कलंक नहीं! इसी तरह शब्द कैसे भी हों, क्या उनके द्वारा अभिव्यक्त धर्म तो असाधु नहीं होगा न?—आगे चलकर वह पाठकों से कहते हैं—श्रृंगार से समन्वित अध्यात्म, त्याग से प्रेरित भोगवृत्ति का समन्वित योग, इस वृत्ति में दर्शाया है; इसलिए इसे पढ़ना चाहिए।—अर्थात् मानव को एकदम संसार से उदासीन होकर योग साधना करने की आवश्यकता नहीं। सांसा-

रिक भोग का योग के साथ समन्वय करना ही श्रेय-प्रेय दोनों के लिए उचित है ; यही कवि का भी आदर्श है और उद्देश्य भी।

कवि रत्नाकर की शैली ललित और मनोहर है; आसान भी। जो जैसा है वैसा ही ज्यों का त्यों वर्णित करने में यह कवि सिद्धहस्त हैं। उनके साम्य भी ऐसे हैं कि जो लोगों के दैनिक जीवन में व्यवहृत हैं। लोक जीवन में प्रचलित अनुभवों की उदाहरणों की तुलना देकर अपने सिद्धांत या आदर्श को समझाने में बड़े पटु हैं। आँखों के सामने प्रत्यक्ष न दिखने वाले और केवल श्रोत्रग्राह्य अमूर्त को अपने वर्णनों के द्वारा चाक्षुष प्रत्यक्ष कर सकने की कवि की दक्षता को हमने देख ही लिया है। इस कवि की काव्यशैली में (नाजुक और नफ़ीस) कोमलता अत्यधिक है। वर्णनीय वस्तु के प्रत्येक पहलू को स्पष्ट समझाने के लिए कभी-कभी एक ही बात को दुहराया भी है। इनकी शैली की एक कमी उग्रभावना का अभाव है। उग्रभावना इनके स्वभाव में ही नहीं है। कोमलभाव कवि के लिए सहजभाव है। अत: काव्य में उग्रभावनाओं की प्रखरता नहीं है। रत्नाकर कवि के द्वारा सांगत्य छन्द बहुत उत्तम स्थिति को प्राप्त हुआ है।

कर्नाटक-माता के कंठहार कवि रत्नों में कवि रत्नाकर एक बहुत अमूल्य रत्न और कंठमाला का शीर्षरत्न है। रत्नाकर नाम अन्वर्थ है।

विजयण्णा :—(ककीब ई० सन् 1450) कवि चरितकारों ने यह निर्णय किया है कि यह विजयण्णा, जैसे देवचंद्र ने अपनी "राजावली कथा" में रत्नाकर वर्णि के समसामयिक बताया है, यह केवल भ्रामक है;—अर्थात् देवचंद्र के अनुसार यह रत्नाकर वर्णी के समकालीन है, कवि चरितकारों के अनुसार समकालीन नहीं। इसका कारण यह है कि कवि चरितकारों ने उनका समय ई० सन् 1557 माना है जबकि स्वयं रत्नाकर वर्णी ने अपनी कृति में अपना समय ई० सन् 1457 बताया है और विजयण्णा की कृति "द्वादशानुप्रेक्षा" को जो सम्मान मिला उससे प्रेरित होकर स्पर्धा की भावना से रत्नाकर से काव्य रचना की—यह असंभव नहीं—यह हमारा मत है। सारांश यह कि हमारे मत से विजयण्णा रत्नाकर के समकालीन थे।

"द्वादशानुप्रेक्षा" नाम से ही स्पष्ट होता है यह बारह अनुप्रेक्षा अथवा चिंतन को निरूपित करनेवाला सांगत्य में लिखा ग्रंथ है। इसमें सांगत्य के साथ-साथ कुछ कंदपद्य भी हैं, कुछ वृत्त भी हैं। यह जैन मत प्रतिपादक ग्रंथ है, इसमें कोई विशिष्ट साहित्यिक गुण नहीं है। उनका निरूपण सरल, सुलभ और हृद्य हैं। एक उदाहरण देखें—

"निन्न नॆच्चिद देह हॆण्डिरु मक्कळु। निन्न धनव तिन्नुवरु
निन्नंतक बंदेळॆ दोय्य वेळॆयॊळ्। नुण्णनॆ कॊलकॆ सारुवरु
जीवनु पोगॆ तक्षणदल्लि हॆणनॆन्दु। ओवदॆ सुडुवरु बेग
तिविद गुणविल्लदिरॆ नडॆबॆणनॆम्बारी विध नोडिरॆ देह."—

अर्थात्—"यह तुम्हारा प्यारा शरीर तब तक सबके लिए प्यारा है जब तक तुम अपनी पत्नी बच्चों को कमाकर सुख से खिलाते पिलाते रहोगे। जब मृत्यु आकर तुम्हारा प्राण हर लेगी तब एक क्षण भर के लिए तुम्हें घर पर भी न रखकर स्मशान में ले जाकर जला डालेंगे। तब यह देह शव हो जाएगा और कमाकर खिलाना न हो सकेगा

तो इसे जीवत्‌श्रव कहेंगे । (जीवच्छव)" इस उदाहरण से हम भाव निरूपण करने की उनकी सरलता और निराडंबर भाषा का भी परिचय पाते हैं।

रत्नाकर के आश्रयदाता देवकवि ही इनके भी आश्रयदाता रहे । कवि ने बताया है कि इन्हीं आश्रयदाता की आज्ञा के अनुसार उन्होंने यह काव्य लिखा । यह "द्वादशानुप्रेक्षा" जैन मत के लिए एक आधार ग्रंथ है । इसे कन्नड में प्रस्तुत करने का श्रेय इन्हीं विजयण्णा को है ।

शिशु मायण अथवा तरल मायण—होय्यसल देश में कावेरी नदी के तीर पर नयनापुर नामक एक स्थान है । इस स्थान पर मायणशेट्टी नामक एक जैन सज्जन था । इनकी पत्नी का नाम तामरसि था । यह जैन दंपती धर्म-परायण और देवभक्त थे । इनका एक पुत्र था जिसका नाम बोम्मिसेट्टी था । इनका पैतृक धंधा व्यापार था । यह बोम्मिशेट्टी अपनी वणिकवृत्ति में बड़ा प्रामाणिक और प्रसिद्ध था। राजा-महा-राजाओं के आस्थान में इन बोम्मिसेट्टी का बड़ा मान था । इनकी पत्नी का नाम नेमांबिका था । इन्हीं के पुत्र था यह शिशु-मायण । बोम्मिशेट्टी ने अपने पिता का ही नाम बेटे को रखा था । इस शिशु मायण ने काणूर्गण के भानुमुनि नामक गुरु के पास शिष्य बनकर विद्या सीखी और बड़े विद्वान् हुए । उन दिनों बेळुकेरे नामक स्थान में गुम्मटदेव राज कर रहा था; इन्हीं राजा की इच्छा के अनुसार "अंजना चरित" नामक ग्रंथ की रचना शिशु-मायण ने की । इन्होंने "त्रिपुरदहन सांगप्य" नामक एक और ग्रंथ भी लिखा है । इस ग्रंथ में उन्होंने अपने काव्य-रचना-काल का निर्देश किया है । उनके निर्देश के अनुसार काव्य-रचना-काल ई० सन् 1172 के करीब का है । परंतु कवि चरितकारों ने उन्हें जो आधार मिला उसके अनुसार ई० सन् 1233 का समय अनु-मान से ठहराया है । इसके कारण सांगत्य में लिखे सर्व प्रथम ग्रंथ शिशुमायण के ही हैं—ऐसा विद्वानों का विचार बना । अब खोजबीन के बाद इनका समय पंद्रहवीं सदी का है—ऐसा निर्णय हुआ । इस कारण सर्व प्रथम सांगत्यकार का पद इन्हें न मिलने पर भी, इनके काव्यों का आदर घटा नहीं । उनके दोनों काव्य सरल है, धारा प्रवाह रूप में इनकी सांगत्य-कविता निरर्गल होकर बही है । सांगत्यकारों के इतिहास में, काव्य की इस विधा के विकास में, शिशु मायण का उन्नत स्थान है ।

यह मायण बहुत विनम्र-स्वभाव के कवि है । उन्होंने अपने बारे में बताया है कि "यह मायण संसार के सभी श्रेष्ठ पुरुषों के सामने तुतलानेवाला बच्चा है ।" इसीलिए अपना नाम शिशु-मायण है । स्वविषय में कवि अपने को बताते हैं कि— "मैं कोई बहुत बड़ा पंडित नहीं हूँ । अक्षर भेद तक न समझनेवाले मुझे काव्य लक्षण का ज्ञान कहाँ हो सकता है? काव्य के रूप में अच्छे विचार बताना भी मैं नहीं जानता; विद्वानों से प्रार्थना है कि समस्त गलतियों को माफ करके इसके गुण गात्र का ग्रहण करें । मेरी यह कविता बच्चों की तोतली बोली के समान है । जिस तरह बच्चों की तोतली वाणी सुनकर माँ-बाप खुश होते हैं और उन्हें अच्छा बोलना सिखाते हैं वैसे ही मेरी गलतियों को समझकर उन्हें सुधारकर उन पर ध्यान न देकर मुझे बालक समझें; मैं समस्त विद्वज्जनों के सामने बच्चा हूँ । मेरी यही प्रार्थना है ।"—यों वह अपनी विनम्रता दिखाते हैं । यह महाकवि न होने पर भी लोकप्रिय कवि अवश्य है ।

शिशु मायण का "त्रिपुरदहन सांगत्य" 282 पद्यों का एक छोटा काव्य है ।

यह संस्कृत के "प्रबोध चंद्रोदय" नाटक का-सा एक लक्ष्य ग्रंथ है। शैव-पुराणों की "त्रिपुरदहन" की कथा के बदले कवि ने जनन-जरा-मरण इन्हें त्रिपुर मानकर, जिनेश्वर को इनसे उद्धार करने वाला मानकर काव्य रचना की है। इसी तरह "मायासुर" को त्रिपुरों का राजा माना है; माया उनकी रानी है; नर, सुर, नारक और तिर्यक्- ये चार पुत्र; क्रोध, लोभ आदि इनके मंत्री हैं; तरह-तरह के और सब प्रकार के कर्म परिवार है—इस तरह कवि ने निरूपित किया है। शैव-पुराणांतर्गत समस्त विवरण यहाँ सांकेतिक रूप से भिन्न-भिन्न विवरणों के रूप में दिखाये गये हैं। जिनके भाल पर "केवल बोध" नामक तृतीय नेत्र है जिससे इन त्रिपुरों को वह जला देता है। जिन परम-दयालु है; वह मोहासुर को नहीं मारता है। उसे पकड़कर दोनों हाथ बांधकर अपने पैरों पड़ने के लिए जिनेश्वर बाध्य करता है और उसे क्षमा कर सद्वृत्ति में रहने का उपदेश देता है। परशिव से भी पुरुपरमेश्वर श्रेष्ठ है—इस बात को प्रमाणित कर पुरुपरमेश्वर को परशिव से अधिक दयालु साबित कर कवि सतुष्ट हुआ है।

शिशु-मायण का "अंजना चरित" छः हज़ार पद्यों का विशालकाय ग्रंथ है। रविषेण का "पद्म चरित" अर्थात् जैन रामायण जो संस्कृत में है उसमें से "अंजना और उसके पुत्र आंजनेय"—की कथा को लेकर इसे अपने काव्य में कवि ने विस्तार के साथ लिखा है। कवि ने अपनी कृति को एक स्वतंत्र कृति कहा है। इनके वर्णनों में कृत्रिमता नहीं है। कवि के काव्य में ऐसे कोई बहुत ऊँचे भाव नहीं हैं; ऐसा उन्होंने बताया भी नहीं उनका दृष्टिकोण ही साधारण जनता को सतुष्ट करना है। इसमें शक नहीं कि उनके काव्य साधारण लोगों में भी अत्यंत प्रिय पात्र बने हुए हैं।

तेरकणांबि बोम्मरस—इस बोम्मरस ने अपने को "तेरकणांबी-निवास पार्श्व जिनेन्द्र चंद्र के चरणकमल भ्रमर". कहा है। इन्होंने "सनत्कुमार चरित", और "जीवंधर सांगत्य"—नाम दो ग्रंथ लिखे हैं। "सनत्कुमार चरित" में इन्होंने बताया है कि इनके परदादा नेमिचंद्र ने प्रौढ़देवराय (ई० सन् 1416) के आस्थान कवियों को वाद में पराजित किया था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह कवि ई० सन् 1485 के करीब रहा होगा। इन्होंने अपने को "बोम्मरसोपाध्याय का पुत्र" बताया है। इससे यह अनुमान कर सकते हैं कि इनके पिता "बोम्मरस" एक बड़े विद्वान् रहे होंगे। इनकी यह कृति "सनत्कुमार चरित" भामिनी षट्पदी छन्द में है और इसमें 870 पद्य हैं। इसमें हस्तिापुर के राजकुमार सनत्कुमार की कथा वर्णित है। अपनी कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा उन्होंने स्वयं की है। प्रशंसा ज़रा अतिरंजित होने पर भी कथा निरूपण अच्छा है; पद्यों का प्रवाह भी निरर्गल है; इनके वर्णनों में कुछ नवीनता भी है। इनका वनवर्णन सुनिये—

"अरगिळि गळोदुव मटवो नु। ण्वरद पिकगळ गानशालेयो
पिरिदु न टिसुव नविल नाटक मंटपवो बिडदे
चरिसुवंकेगळाडुवंगण मॉरॅवमधुपद प्रेमदालय
वर वसंतन राजगृह्वॅनॅं वनवु रंजिसितु."—भाव यह है कि "वसंत ऋतु का कानन सौंदर्य ऐसा है—जैसा सारावन क्या तोतों की पाठशाला है या कोयल का गान मंदिर है? अथवा पंख खोल कर "नाचने वाले मयूरों की नाट्यशाला है या सुन्दर राजहंसों का क्रीडोद्यान है? नहीं तो मधुप झंकृत प्रेम-सदन है?—यह तो ऐसा

लगता है मानो ऋतुराज वसंत का राजमहल है।"—यह कवि सुस्वादु भोजन के बड़े प्रेमी थे—ऐसा मालूम होता हैं। तरह-तरह के स्वादिष्ट मिष्ठान्न और शाक व्यंजन आदि का वर्णन इस ढंग से करते हैं मानो पठक पढ़ते-पढ़ते इन सबका आस्वाद ले रहे हों—ऐसा लगता है। कवि का "जीवंधर सांगत्य" करीब 1450 पद्यों का एक श्रेष्ठ काव्य है। राजपुर के राजा सत्यंधर के पुत्र जीवंधर की कथा निरूपण इसमें किया गया हैं। सांसारिक सुख की नश्वरता के कारण जिन दीक्षा लेकर जीवंधर मुक्ति को प्राप्त करता है। इस कथा के लिखने में कवि का आशय, केवल साधारण लोग इसे पढ़कर मुक्ति पाने योग्य हो—यही है। कथा सरल और जनप्रिय है। कवि के वर्णन सुन्दर हैं; बोम्मरस महाकवि न होने पर भी अच्छे कवि हैं।

करीब ई० सन् 1500 के करीब कोटीश्वर नामक एक दूसरे कवि ने भी जीवंधर चरित लिखा है। यह अपूर्ण है।

मूरनेय (तीसरा) मंगरस—मंगरस प्रथम "खगेन्द्र मणि दर्पण" नामक विष-वैद्य सम्बन्धी ग्रंथ के लेखक थे जिसके बारे में पहले ही बताया गया है। मंगरस द्वितीय ई० सन् 1398 में रहा जिसने "मंगराज निघंट" लिखा और इसका एक दूसरा नाम "अभिनव मंगराज" भी था। यह तृतीय मंगराज है जिसने "जयनृपकाव्य, नेमिजिनेश संगति, श्रीपाल चरित, प्रभंजन चरित, संययत्व (सम्यक्त्व) कौमुदी, सूपशास्त्र"—इन ग्रंथों को लिखा है। चेङ्गाळ्व सचिव कुलोद्भव कल्लहळ्ळि के विजय भूपाल इनके पिता और देविला इनकी माता थी। चिक्क प्रभेन्दु इनके गुरु थे। ये 'प्रभुराज प्रभु कुल रत्नदीप' विसदांकित थे। इनके पिता ने अपने को "रणाभिनव विजय" बताया है। इससे वह युद्धवीर भी रहे होंगे। इनकी कृतियों में एक "सम्यक्त्व कौमुदी" को ई० सन् 1508 में लिखा— ऐसा स्वयं कवि ने बताया है; इससे यह कहा जा सकता है कि यह कवि सोलहवीं सदी के पूर्वार्ध में रहा।

मंगरस की कृतियों में "जयनृप काव्य" परिवर्धिनी षट्पदी में और "सूप शास्त्र" वार्धक षट्पदी में, "संयक्त्व कौमुदी" उद्दंड षट्पदी में और शेष तीन ग्रंथ सांगत्य में हैं। "जयनृप काव्य" में कुरुजांगण के राजपुत्र जयनृप की कथा है। जिनसेन ने इसे संस्कृत में लिखा था। कहा जाता है। कवि ने बताया है कि जैसे दूध में शक्कर मिलायी जाती है वैसे ही कन्नड में संस्कृत का मिश्रण करके इस काव्य की रचना की है। इस कथा के नायक जयनृप प्रथम चक्री भरत का सेनानायक था। इसकी कथावस्तु एक के बाद एक करके विवाह कर श्रृंगार सरोवर में डूबते-उतराते जयनृप का वृत्तांत है। एक हजार से भी अधिक पद्योंवाले इस ग्रंथ में विशेष कोई कथानक नहीं हैं। परंतु मंगरस का पदबंध सरल है। इस कवि की स्वभावोक्तियाँ अच्छी हैं। पतझड़ के मौसम के बाद पेड़-पौधों पर निकले नये कोमल पत्तों को देख कर कवि कहता है कि वनौषधि करने वाला श्रेष्ठ वैद्य बनकर नवचैत्र आया है। अर्थात् यह वसंत ऋतु के आगमन का वर्णन है। परिवर्धिनी षट्पदी में काव्यधारा सुललित होकर बह चली है।

मंगरस का सूप शास्त्र 365 पद्योंवाला पाक शास्त्र सम्बन्धी ग्रंथ है। संस्कृत के सूप शास्त्र ग्रंथ से जितना समझ में आया उतना अंश लेकर लिखा है—ऐसा बताया है। कवि बताता है कि नल, भीम आदि पाक शास्त्र निपुण व्यक्तियों के मतानुसार

यह ग्रंथ लिखित है। इसमें पिष्टपाक, पानक, कलमान्न पाक, शाक-पाक—आदि बहुरसवि पाक भेदों का प्रतिपादन किया गया है। कवि का कथन है कि अपने इस काव्य की सार्थकता इह-पर दोनों का साधन है। जीवधारियों के देह संरक्षण के लिए रूप-रस-गंध-स्पर्श-आदि का उपभोग आवश्यक है। इन भोगोपभोगों में, रसनेन्द्रिय की तृप्ति हो जाय तो इह-पर दोनों में सुख की प्राप्ति होती है। इसीलिए यह सुस्वादु पाक शास्त्र मैंने लिखा है—ऐसा कहकर कवि बताता है कि यह स्त्रियों के लिए अत्यंत प्रीतिकर ग्रंथ है।

मंगरस ने कई प्रकार के भक्ष्य-भोज्य और उनके बनाने का विधान आदि का सुन्दर और आकर्षक वर्णन किया है। अपनी प्रतिभा से पाक शास्त्र को एक कलाकृति बनाया है, कवि ने।

संयक्त्व कौमुदी 792 पद्यों का ग्रंथ है। यह उद्दंड षट्पदी में है। अर्हद्दास नामक एक वैश्य की पत्नियों के द्वारा उदितोदित नामक एक राजा को जो कथा कही गयी और जिसे सुनकर राजा ने संयक्त्व ग्रहण कर दीक्षित हो स्वर्ग प्राप्त किया—यही इस काव्य की कथावस्तु है। कार्तिक के महीने में कौमुदी उत्सव के समय इस काव्यकथा के नायक राजा ने संयक्त्व को प्राप्त किया —और इस उत्सव से विरक्त होकर दीक्षाली; इसलिए इस ग्रंथ का नाम "सम्यक्त्य कौमुदी" रखा गया। इस कथानक संस्कृत और कन्नड दोनों का समुचित मिश्रण करके सुन्दर शैली में आकर्षक ढंग से लिखा। ऐसा कवि कहते हैं। उनका कथन कुछ हद तक सत्य भी है। काव्य मनोहर है। ऐसा कहा जाता है कि मगध के महाराज श्रेणिक से गौतम गणधर ने यह कथा कही थी। इस कथा में कई अवांतर कथाएं भी हैं। ये सब कथाएँ सुन्दर लोककथाएँ हैं। इस भी कथा-अवांतर कथानकों का सार नीति निरूपण करना मात्र है। असली कथाओं से ऊपर चारों ओर का वर्णना-भाग अधिक हो गया है। कथानक तो रोचक है।

मंगरस के सांगत्य ग्रंथों में "प्रभंजन चरित" अपूर्ण है। सम्पूर्ण ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। शेष दोनों ग्रंथ डेढ़ हज़ार से भी अधिक पद्योंवाले बृहत्-ग्रंथ हैं। उनमें एक "श्रीपाल चरित" है। इसमें पुंडरी किणीपुर के गुणपाल राजा के पुत्र श्रीपाल की कथा है। कवि ने अपने इस काव्य को "भावुक जन कर्ण विभूषण, रसिक चित्तरंजक, वाणी मुख-माणिक्यमुकुर और शृंगार सुधाब्धी" कहा है। हो सकता है। जिस तरह दूसरे कवियों की कृतियों में वर्णन आदि है वैसे ही इसमें भी है। वर्णनों में नवीनता, रम्यता, स्वाभाविकता है। वह एक सरोवर का वर्णन करते-करते बताते हैं कि "यह सरोवर ऐसा है मानो वनदेवी चाँदी के थाल में सोने के कमलों की तरह रहनेवाले कटोरों में मधु का मिष्ट भोजन परोसकर भ्रमरों के भोजन के लिए तैयार रखा हो।"—अस्तु: ऐसे ही कुछ आकर्षक वर्णन इन की कृति में यत्र तत्र मिल जाते हैं।

कवि के "प्रभंजन चरित" में शुंभ दे के जंभापुर के राजा देवसेन के पुत्र प्रभंजन की कथा है।—ऐसा कहा जाता है। कवि चरितकारों ने नमूने के तौर पर उद्धृत पद्यों को देखने पर लगता है कि यह काव्य सरल और सुन्दर होगा। दुष्ट स्वभाव की स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन सुनिये—कहते हैं कि "दुष्ट स्वभाव की स्त्रियाँ खरगोश के सिर पर सींग उगा सकती हैं; बाघिन का दूध भी दुह सकती हैं;—

वे क्या नहीं कर सकती,"—आदि आदि ।

इस कवि का "नेमिजिनेश संगति" एक गेय काव्य है। काव्य के नाम से ही विदित होता है कि यह बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की कथा है। ऐसा अंदाज लगाया जाता है कि कि यह कवि का प्रथम काव्य है। इसकी शैली को देखने पर यह सही मालूम पड़ता है। इनके अन्य काव्यों में दिखनेवाली धारा इसमें नहीं है; फिर भी यहाँ दिखनेवाले वर्णनों में कविहृदय का होना लक्षित होता है। यहाँ के युद्ध वर्णन में युद्धोचित सहजता है जो कवि के क्षत्रिय होने और युद्ध में भाग लेने की गवाही देती है।

मंगरस ने अपने काव्यों के द्वारा कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि करने में अपना योगदान दिया है। साहित्य के परिमाण की दृष्टि से ही नहीं, योग्यता की दृष्टि से भी यह कवि आदरणीय है।

अभिनव वादि विद्यानंद—मल्लिकार्जुन "सूक्तिसुधार्णव" की तरह "काव्य-सार" नामक एक ग्रंथ का संकलन इस कवि ने संपादन किया है। नगर ताल्लूके के एक शिलालेख में इस कवि की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। कहा जाता है यह वाद-विवाद करने में और व्याख्यान देने में बड़े चतुर थे; इनमें वह बड़े प्रसिद्ध माने गये थे। संभवत: चतुर-वाग्मी होने के कारण इनका नाम वादि विद्यानंद पड़ा होगा। इन की प्रशंसा जिस शिलालेख में है उसी में विजयनगर के कृष्णदेवराय (ई० सन् 1509-1529) के राजस्थान के चर्चापटु पंडितों को भी जीता—लिखा है। इससे यह कहना पड़ता है कि इस कवि का समय सोलहवीं सदी का आरंभ काल है। अनुमान किया जाता है कि यह कवि गेरुसोप्पा प्रांत के निवासी होंगे। अपने समय तक जितने सुप्रसिद्ध कवि हो चुके थे उन सभी की कृतियों से कविताओं को चुनकर उन्हें विषयानुसार भिन्न-भिन्न शीर्षकों में उद्धृत कर इसका सम्पादन किया है। मल्लिकार्जुन ने अपने "सूक्ति सुधार्णव" नामक संकलन में उद्धृत कविताओं के रचनाकारों के नाम नहीं दिये हैं, वादि विद्यानंद ने वैसा न करके उन सभी रचनाकारों के नामों के उल्लेख अपने "काव्यसार" में किया है। और उन काव्यों के नाम भी बताये हैं जिनसे कविता उद्धृत की है। इससे इनसे पूर्व जो कवि थे उनके काल निर्णय में सहायता मिलती है। कुछ अज्ञात कवियों के चाटुपद्य और मुक्तक भी इसमें संग्रहीत हैं। कुल 1140 पद्यों का यह संग्रह है। वादि विद्यानंद संग्रहकार के अलावा रचनाकार भी थे—ऐसा लगता है। अनुमान किया जाता है कि इन्होंने एक काव्य भी लिखा है।

साळ्वकवि—चंद्रवंश बैयनृप-शंकरांबिका की मलिदेवी नामक एक बेटी और वसुदानमेरु नामक एक बेटा पैदा हुए। वसुदानमेरु "साळ्वमल्ल" के नाम से राज करता रहा। "कवि सरोवर राजहंस", "संयक्त्व चूडामणि"—विरुद भूषित था यह "साळ्वमल्ल"। यही राजा साळ्व कवि के पोषक रहे। राजा की बहन मलिदेवी का एक पुत्र हुआ जिसका नाम साळ्व था; यही साळ्वमल्ल के बाद गद्दी पर बैठा। (संभवत: साळ्मल्ल की कोई संतान नहीं थी; इसलिए ऐसा लगता है कि उन्होंने बहन के बेटे को ही गोद लिया था।) कवि साळ्व ने अपने आश्रयदाता साळ्वमल्ल और राजा साळ्व देव—इन दोनों की इच्छा के अनुसार भामिनी षट्पदी में भारत लिखा—साळ्व कवि ने अपने भारत में स्वयं ऐसा बताया है। इस भारत का नाम "साळ्व

भारत" है। इस ग्रंथ के अलावा "रस रत्नाकर", और "वैद्य सांगत्य" नामक दो और ग्रंथ लिखे हैं। "शारदा विलास" नामक ग्रंथ भी इन्हीं का लिखा माना जाता है। इस कवि के पिता धर्मचन्द्र और गुरु देशी गण के श्रुतकीर्ति थे। कवि ने जिन राजाओं की कीर्ति गायी है उन राजाओं के बारे में ई० सन् 1560 के एक शिलालेख में उल्लेख है। अतः यह कहा जा सकता है कि यह कवि सोलहवीं सदी के बीच से लेकर इसी सदी के उत्तरार्ध तक की अवधि में रहा होगा।

साळ्व भारत का एक दूसरा नाम "नेमीश्वर चरित" भी है। अन्य जैन भारतों के जैसे इसमें भी हरिवंश और कुरुवंश की कथा वर्णित है। व्यास रचित (वैदिक) भारत की हँसी उड़ाते हुए कवि कहते हैं—

"कॉलिसिदातनें देव, कॉन्द। ग्गळिकें यिन्दवें पुण्य पुरुषुरु
पलबुमाते नैवरॉड हुट्टिदरु सन्नुतरु
ललनॅयॉर्वळनाळ्वरॅम्बी। किविगुडदॆ सज्जन
रॉलिदु चित्तैसुकुदु जिन पावन चरित्रवनु."—अर्थात्—"खून

करानेवाले भगवान् है; मार कर अपने को बड़ा माननेवाले पुण्य-पुरुष हैं; अधिक क्या कहें, ऐसे पाँच सहोदर, (भाई) जो एक स्त्री को पत्नी बनानेवाले, परम पूज्य हैं; ऐसी गंदी बातें न सुनकर जो सज्जन है वे इस पवित्र जिन चरित को आदर और भक्ति से सुनें।"—यों कहकर इस जैन भारत को पढ़कर लोग पवित्र बने—यह उपदेश कवि देते हैं। अपने के सम्बन्ध में कहते हैं—

"नवरसद नॅळॆ, मधुर भावद। तवदलंकारंगळि दो
धुव विमल ललितांग मृदुपद रचनॅ नॅरॆ मरॅव
विविध गुणगण निळयॅ सॉबगिन। सविय सैवळॅगरॅब मत्कृति
युवति चदुरर मनवनिर्कुळिगोळ्वु दच्चरिये ?"—तात्पर्य यह कि—

"यह मेरी कविता नव रसों का निवास स्थान है। मधुरभावों से भरा है; सुन्दर अलंकारों से अलंकृत है; कोमलकांत पदावली से मनोहर है; काव्योचित प्रसाद आदि गुणों से सजकर सुन्दर है; यह सौन्दर्य, माधुर्य, सद्गुण सालंकार और सब तरह से आकर्षक नव युवती-सी है। यह मेरी कृति इस तरह सुन्दर और सर्वादरणीय होने के कारण सबके लिए आकर्षक क्यों न होगी ?" यों कवि अपने काव्य की महिमा का उद्घोष करते हुए सवाल करते हैं। उनके भारत को पढ़कर यदि हम रोमांचित हो जाते हैं तो वह आश्चर्य ही है। क्योंकि "साळ्व भारत" में सांप्रदायिक कथावस्तु के बिना हम रससागर में निमग्न कर दें—ऐसी कोई काव्य शक्ति नहीं है। यह गेय होने के कारण असाधु प्रयोगों आदि के विषय में ध्यान देने की जरूरत नहीं है—ऐसा कवि ने स्वयं बताया है। कवि के पांडित्य के बारे में शंका करने की जरूरत नहीं। वह पंडित कवि हैं। उनका पांडित्य और महत्व उनके शास्त्र सम्बन्धी काव्यों में बहुत अच्छी तरह व्यक्त हैं। उनका भारत एक मध्यवर्ग का काव्य है—ऐसा कहा जा सकता है।

साळ्व कवि का "रस रत्नाकर" काव्योचित नवरस सम्बन्धी एक लक्षण ग्रंथ है, इसमें शृंगार निरूपण, रसों का निरूपण, नायक-नायिका विवरण, और अवाधिकरण—ये चार आश्वास हैं। अमृतानंदि, रुद्रभट्ट, हेमचन्द्र, नागवर्म, कविकाम आदि

लाक्षणिकों ने जिस तरह रसभावों को समझाया है उसी तरह से समझाया है—ऐसा कवि का कथन है। यह बात सत्य है। इस प्रक्रिया के विषय में इतने विस्तृत रूप से और किसी ने नहीं बतलाया है—ऐसा कवि ने स्वयं भी कहा है। इतना ही नहीं, लक्ष्योदाहरण के रूप में प्राचीन कवि पंप, रन्न, नेमिचन्द्र आदि की कृतियों से सैकड़ों पद्य उद्धृत करके अपने ग्रंथ का मूल्य बढ़ाया ही नहीं बल्कि इस काव्य की रम्यता भी बढ़ायी है। इन लक्ष्योदाहरणों के कारण यह शास्त्र ग्रंथ काव्यमय वातावरण से सुन्दर बन गया है। कवि ने यह स्पष्ट कहा है कि—"रस रहित काव्य नीरस है अतः रस ही कृति का सार सर्वस्व है।" इसलिए अपने काव्य में नवरसों के स्वरूप का वर्णन काव्यरस-पूर्ण ढंग से किया है। इन नवरसों में शृंगार के प्रति कवि का विशेष प्रेम है। यह बात इस कृति से स्पष्ट हो जाती है।

"शारदा विलास" नामक कृति के भी कर्ता साळ्व कवि ही थे—ऐसा कहा जाता है। इस कृति में काव्य जीवित कही जानेवाली "ध्वनि" का प्रतिपादन किया गया है। "ध्वनि" के विषय में लिखित सर्वप्रथम ग्रंथ कन्नड में यही है। इस ग्रंथ की समग्र-प्रति प्राप्त नहीं है। इसका दूसरा आश्वास मात्र प्राप्त है। कविचरितकार का अनुमान है कि इस उपलब्ध काव्यांश में उद्धृत लक्ष्योदाहणों से यह विदित होता है कि इस कवि ने अपने पोषक आश्रयदाता की स्तुति की है; संभवतः अपने आश्रयदाता के यशोगान कर उनकी कीर्ति बढ़ाने के लिए यह काव्य लिखा होगा; यदि इसका प्रथमाश्वास उपलब्ध हो जाय तो इस कवि के आश्रयदाता के विषय में और अधिक विवरण मिल सकता था—कवि ने "काव्य प्रकाशिक"— और "साहित्य सुधार्णव" इन दोनों कृतियों के नामों का उल्लेख किया है; अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि कवि ने अपनी इस कृति के लिए सामग्री का संकलन किया होगा।

"वैद्य सांगत्य" साळ्व कवि का रोग निदान चिकित्सा पांडित्य प्रदर्शित करने वाला एक वैद्यकीय ग्रंथ है। सांगत्य में है। वैद्य विषयक जानकारी रखनेवाले पंडित ही इस कृति का मूल्य निर्धारितः कर सकते हैं।

इस तरह कवि साळ्व ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से कन्नड भाषा साहित्य की श्रीवृद्धि करने में अपना सम्पूर्ण योगदान दिया है।

दोड्डय्या—इन्होंने "चंद्र प्रभ चरित" लिखा है। यह सांगत्य छन्द में है। इसमें आठवें तीर्थंकर का चरित वर्णित है। इनके समय के बारे में प्रमाणों के अभाव से निर्दिष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता। विद्वानों का अनुमान है कि यह कवि सोलहवीं सदी के बीच (करीब ई० सन् 1550) में रहे होंगे। कवि परमेष्ठी और गुणभद्रों ने पहले जिस कथा को संस्कृत में कहा था उसी को कन्नड में कहा है—ऐसा कवि का कथन है। हमें स्मरण रखना होगा कि अग्गल ने पहले ही इस "चंद्रप्रभ पुराण" को कन्नड में प्रस्तुत किया है।

अन्य कवियों की तरह दोड्डय्या ने भी अपनी कृति की बहुत प्रशंसा की है। वह कहते हैं कि यह मेरी कृति—पंडित हृदयपंकज मित्र, भारती का भालनेत्र आदि आदि है। इन प्रशंसा शब्दों में एक "भारती भालनेत्र" को छोड़ अन्य बातों को मान सकते हैं। यह 4500 पद्योंवाला बृहत्काय ग्रंथ है। इसमें सांगत्य के अलावा यत्र तत्र कुछ षट्पदी छन्द के भी पद्य हैं। साहित्यिक दृष्टि से देखने पर राह एक सामान्य

कृति मात्र है, गेय है ।

बाहुबलि—दक्षिण वाराणसी कहानेवाले शृंगेरी नामक स्थान के निवासी व्यापारी सण्णण्णा के पुत्र थे; इनकी माता बॉम्मलदेवी थी । इन्हीं का बेटा था यह बाहुबलि । श्री नरसिंह भारती यति जब शृंगेरी शारदा पीठ के अध्यक्ष थे तब नेंलबने नाम स्थान के राजा भैरवेन्द्र इन यति महाराज के तपोरक्षक थे । एक बार इस राजा के आस्थान में ललितकीर्ति नामक कथावाचक ने पुराण श्रावण कराते हुए श्री पंचमी का माहत्म्य सुनाया । इसे सुन कर राजा ने इस कथा को लिखने के लिए बाहुबलि को आज्ञा दी । ललितकीर्ति ने भी इसके लिए स्वीकृति दी । इन दोनों की इच्छा के अनुसार बाहुबली ने श्रीपंचमी की महिमा युक्त नागकुमार चरित को (ई० सन् 1560 के करीब) लिखा ।

नागकुमार की कथा मनोहर है । कनकपुरी के राजा जयंधर ने पृथ्वी देवी नामक एक राजकुमारी का चित्र देखकर उस पर मोहित हुए और उससे विवाह किया । इन्हीं के गर्भ संभूत है यह नागकुमार । इन नागकुमार ने वीणावादन में मनोहरी और किन्नरी को हटाकर इनसे विवाह किया । "नीलगिरि" नामक मस्त हाथी को और घोट देश के घोड़े को, जो बड़ा नटखट और किसी के काबू में न आने वाला था, वश में किया । अनेक राजाओं को जीत कर बड़े वैभव के साथ राज किया । अन्त में विरक्त होकर यह नागकुमार केवली हुए तथा मुक्ति पायी ।

"नागकुमार चरित" 3700 पद्योंवाली एक बड़ी कथा से युक्त बृहत् काव्य है । यह सांगत्य में है । कवि ने अपने इस काव्य को "भववारिधि भैत्र" और "पुण्य-सत्यों का क्षेत्र" कहा है । अपने को कवि ने "कविराज हंस", "संगीत सुधाब्धि चंद्र" —विरुद भूषित कहकर घोषित किया है । अपने काव्य की प्रशंसा में इस काव्य को "रसिक वर्ण रसायन" आदि आदि कहा है । उनके इन कथनों में थोड़ा बहुत सत्य भी है । इस गेय रूप सुन्दर कथानक को पढ़कर मनोरंजन कर सकते हैं । इसमें व्यंग्य, ध्वनि आदि काव्य गुणों को खोजने की जरूरत भी नहीं । कवि ने स्वयं बता दिया है कि काव्य में जो वर्णन होंगे वे स्पष्ट रूप से वाच्यार्थ से मालूम पड़जाने चाहिए । यही उनका अभिमत है । चाहे हम कवि के अभिमत से सहमत हो या न हो, उनका काव्य ऐसा ही है । चाहे कथानक हो, चाहे वर्णन हो, कवि स्पष्ट और सीधे शब्दों में कह देता है । कहने में न आलंकारिकता है न कोई गूढ-भाव ही ।

सोलहवीं सदी में काव्य कर्म करनेवाले कुछ कवि ये हैं—श्रुतकीर्ति, दोड्डणांक, पद्रस, ब्रह्म कवि, इन कवियों ने क्रमशः "विजय कुमारि चरित", "चंद्र प्रभ षट्पदी", शृंगारकथा", "वज्रकुमार चरित"—लिखा है । विजितेन्द्रिय होकर काम देव को जीतनेवावाली विजयकुमारी कथा "विजय कुमारि चरित" में है जो सांगत्य में है । दोड्डणांक की "चंद्रप्रभ षट्पदी" षट्पदी में है । सुखनिलयपुर के राजकुमार सुकुमार की कथा शृंगार प्रधार होने के कारण अपने काव्य को "शृंगार-कथा" नाम कवि पद्मरस ने दिया है । ब्रह्म कवि का "वज्रकुमार चरित" सांगत्य में है । इनके अलावा सोलहवीं सदी में देवोत्तम ने "नानार्थ रत्नाकर" और शृंगार कवि ने "कर्नाटक संजीवन" नामक कोश ग्रंथों का निर्माण किया है । शांतरस ने "योग रत्नाकर" नामक ग्रंथ को कंद पद्यों में लिखा है । इसके बाद सत्रहवीं सदी में जैन

कवियों ने काव्य कर्म में हाथ नहीं लगाया—ऐसा मालूम होता है ।

सत्रहवीं सदी में बहुत कम संख्या में जैन कवियों ने कुछ साहित्य निर्माण तो किया; मगर साहित्यिक दृष्टि से यह जैन कवियों के ह्रास का समय है। इस समय के सभी कवियों को गिनने पर करीब तीस तक कवियों के नाम मिलते हैं। इनमें से केवल चार-पांच कवि-साहित्यिक दृष्टि से गण्य माने जा सकते हैं। इन कवियों में भाषा की दृष्टि से— काव्य गुण की दृष्टि से नहीं—बहुत मुख्य कवि भट्टाकलंक है।

भट्टाकलंक—"कर्नाटक शब्दानुशासन" के लेखक भट्टाकलंक सत्रहवीं सदी के आरंभ में (ई० सन् 1606) रहा। देवचन्द्र ने इनके बारे में बहुत प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है कि यह कवि बड़े विद्वान् और षड्भाषा पंडित थे। कुछ शिलालेखों में भी इनकी काफी प्रशंसा देखने को मिलती है। इस तरह की प्रशंसा के लिए भट्टाकलंक सर्वथा पात्र है—इसमें कुछ भी संदेह नहीं। सुप्रसिद्ध वैयाकरणी नागवर्मा द्वितीय और केशिराज—इन से भी बढ़कर व्याकरणज्ञ है यह भट्टाकलंक। सत्रहवीं सदी तक प्रवृद्ध कन्नड भाषा प्रवाह को अपने 562 सूत्रों की बाँध में रोककर कवि काव्य की फसल को भाषा विषयक निरूपण के नालों के द्वारा बहाकर सींचा है। कन्नड भाषा का व्याकरण संस्कृत में रचित है, इतना ही नहीं, "भाषा मंजरी" के नाम से इसकी वत्ति और "मंजरी मकरंद" नामक व्याख्या भी संस्कृत में लिखकर इसमें जोड़ा है। कन्नड और संस्कृत दोनों के व्याकरणों में अपने को निष्णात पंडित बताया है। उनकी यह बात "मंजरी मकरंद" को देखने पर सर्वथा सत्य प्रतीत होता है। यह कन्नड का पाणिनी है। उनकी अधिकार वाणी उनके अपार और अगाध पांडित्य के अनुरूप ही है। इतना होने पर भी केशिराज के "शब्दमणि दर्पण" में दिखने वाली प्रामाणिकता "शब्दानुशासन" में कभी-कभी नहीं दिखाई देती। यह ठीक है कि "शब्दमणि दर्पण" से अधिक विषय इस शब्दानुशासन में हैं। वैयाकरणी को प्रयोगशरण होना चाहिए; यह वैयाकरणी का प्रधान गुण है। कभी-कभी भट्टाकलंक इस प्रधान गुण की भी परवाह नहीं करते। स्वयं उदाहरणों का सृजन करके जोड़ देता है। ऐसे कुछ प्रसंगों छोड़ दें तो यह एक अद्वितीय वैयाकरणी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह दक्षिण कन्नड जिले के अकलंकदेव का शिष्य रहा; इसलिए यह दक्षिण कन्नड जिले का निवासी है—ऐसा मान लेना पड़ता है।

धरणि पंडित—यह सत्रहवीं सदी के मध्य (करीब ई० सन् 1650) में यह कवि रहे। इन्होंने "वरांगनृप चरित", और "बिज्जलराय चरित"—इन दो ग्रंथों को लिखा है। विष्णुवर्धनपुर के पद्मण पंडित इनके पिता थे। इस कवि ने अपने को विष्णुवर्धनपुर के "पार्श्व जिनेन्द्रचंद्र चरणवारिज भृंग" कहा है। इन्होंने पूर्व कवि पंप, रन्न, पॉन्न-आदि का स्मरण करके उनसे कवितावरदान देने की प्रार्थना की है।

वरांगनृप की कथा जैनियों के लिए अत्यंत प्रिय है। जटासिंह—नंद्याचार्य नामक एक आचार्य ने इसे संस्कृत में रचा था। बन्धुवर्म ने अपने "जीव सम्बोधने" नामक ग्रंथ में इस कथा को संग्रह करके लिखा। इसी कथा को धरणि पंडित ने भामिनी षट्पदी में विस्तृत करके लिखा है। कथा यों है—"वरांग एक राजकुमार था। वह एक दुष्ट घोड़े पर सवार हुआ। इसके फल-स्वरूप उसे जंगलों में "भटक-भटक कर बहुत कष्ट झेलना पड़ा। जंगलों में वह किरातों के हाथ में पड़ गया। उन

लोगों ने राजकुमार वरांग को तरह-तरह के कष्ट दिये। सब सहता हुआ अंत में जैन दीक्षा लेकर संन्यासी बना।" यही "वरांगनृप कथा" की काव्यवस्तु है। यह ग्रंथ पूर्ण नहीं है। अधूरा मिला है। जितना मिला है उसमें ऐसे कोई विशिष्ट काव्य गुण नहीं है। इस कवि की एक कृति और है। वह "बिज्जलराय चरित" है। यह करीब 1250 पद्यों का विशालकाय ग्रंथ है। यह सांगत्य में लिखा गया है। यह बसवण्णा के इतिहास की दृष्टि से कुतूहलकारी ग्रंथ है। कल्याणपुर के राजा बिज्जल "जैन शासनवार्धिवर्धन चंद्रमा, और जैन वंशाण्वय तिलक" हैं। बसवण्णा के पिता मादिराज इस बिज्जल राजा के यहाँ ज्योतिषी था। इनकी पुत्री पद्मिनी थी जिसके साथ राजा ने विवाह किया। इसके बाद अपने साले बसवण्णा को सेनापति का पद दिया। एक बार बसवण्णा ने राजा बिज्जल का सामना किया। राजा ने बसवण्णा को हरा दिया। इस तरह पराजित बसवण्णा एक पोखरे में डूब मरने के इरादे से गिरा। राजा ने उसे बाहर निकलवाकर उसे माफ किया, और फिर सेनानायक का पद दिया। बसवण्णा की प्रेरणा से कुछ लोग जैनियों का-सा वेष धारण कर बिज्जल के पास गये। इन वेषधारियों ने राजा बिज्जल को विषाक्त आम भेंट में दिये। राजा ने आम उठाकर सूंघा। विष के प्रभाव से वह मर गये। इससे राजा की सेना बसवण्णा पर चढ़ आयी। इस आक्रमण से बचने के लिए वह डर कर वहाँ से भागा। भागकर कडलतडी के पास वृषभपुरी के एक कुएँ में बचने के इरादे से गिर पड़ा इस स्थान का नाम वृषभ पुरी था बचने के इरादे से बसवण्णा वहाँ गया; इसलिए उसका नाम उळिवे पड़ा। कन्नड में "उळिवे" शब्द का अर्थ है "बचना"। कहा है—"उळिवॆनॆन्दु पोक्कु सत्तुदरिं" अर्थात् "बचने के इरादे से कुएँ में गिरकर मरने के कारण"—इस वृषभपुरि का नाम "उळिवे" पड़ा।—बसवण्णा की यह कथा प्रचलित सांप्रदायिक कथा से भिन्न है। इस कथा में परमत असहिष्णुता स्पष्ट रूप से दिखती है।

नागचंद्र कवि ने ई० सन् 1650 के करीब "जिन मुनि तनय" नामक ग्रंथ लिखा; ई० सन् 1680 के करीब **चिदानंद कवि** ने "मुनिवंशाभ्युदय नामक ग्रंथ लिखा। "जिन मुनि तनय" जैन मत का उपदेश और चरित्र-गठन सम्बन्धी उपदेश देनेवाला एक ग्रंथ है। इसमें 109 कंद पद्य हैं जो "जिन मुनि तनया" से अन्त होते हैं। इसीलिए इसका नाम "जिन मुनि तनय" है। "मुनि वंशाभ्युदय" सांगत्य में है। जैन मुनियों की परंपरा बतातेवाला यह ग्रंथ चन्द्रगुप्त और भद्रबाहु के श्रावण बेळ्गोळ में आने का विचार बताता है।

देवचन्द्र—यह देवचन्द्र कवि मैसूर के राजा मुम्मडी कृष्णराज ओडॅयर के समय में रहे। इन्होंने "राजावली कथा"—लिखी है जो कन्नड साहित्य के इतिहास के लिखने में बहुत सहायक है। यह एक संदर्भ-सा है। इसके अलावा "रामकथावतार" नामक एक और ग्रंथ की रचना भी की है। राजा के आश्रित वैद्यसूरि नामक पंडित से प्रोत्साहन पाकर इन्होंने "राजावली कथा" लिखी। इसमें जैन मत से सम्बन्धित कुछ इतिहास, कुछ राजाओं के तथा कवियों के विषय में जानकारी दी गयी है। मैसूर के राजाओं की वंशावली भी इसमें संग्रह रूप में है। इस कवि का "रामकथावतार" एक चंपू ग्रंथ है। नागचंद्र कवि की कृति से कथावस्तु, भाव आदि का ग्रहण करने के अलावा अनेक नागचंद्र के पद्यों का अनुवाद इस कृति में हैं।

कुमारव्यास युग–वीरशैव साहित्य

कुमारव्यास युग में वीरशैव साहित्य की सर्वतोमुखी प्रगति हुई। इससे कन्नड साहित्य श्री की वृद्धि में काफ़ी सहायता मिली। बारहवीं सदी में वचन वाङ्मय का जो पूर्ण प्रवाह बह चला वह अचानक ही सूख गया था। वह फिर इस युग में फूट कर बहने लगा। इस वचन वाङ्मय का एक किनारा राजाश्रय और दूसरा तोंटद सिद्धलिंग यति का आश्रय। उधर विजयनगर के प्रोढदेवराय इधर सिद्धलिंग यति। इन दोनों किनारों के बीच वचन वाङ्मय नवीन उद्भाव को लेकर नहीं, बल्कि पुराने वचन साहित्य का संकलन, संपादन और टीका टिप्पणी एवं भाष्यों के रूप में बहने लगा। यही इस युग का वैशिष्ट्य है। प्रौढदेवराय के सेनानायक भक्तिभंडारी जक्कणार्य, तोंटद सिद्धलिंग यति के शिष्य एक सौ एक विरक्त-इस वचन वाङ्मय के प्रसार और प्रचार के अध्वर्यु बने।

कुमारव्यास युग वीरशैव पुराणों के लिए भी एक उत्तम युग है। इस युग में वीरशैव पुराणों का सृजन विशेष मात्रा में हुआ। कन्नड में पुराणों की रचना करने का श्रेय जैन कवियों को है। समय के परिवर्तन के साथ समयानुकूल रीति से अपने को परिवर्तित कर आगे बढ़ने की चतुरता इन जैनियों में नहीं रही। देशी छन्दों का प्रयोग करके उनके द्वारा मत प्रचार करने की सुगम रीति को इन लोगों ने समझा नहीं। इसे समझने तक वैदिक और वीरशैव प्रबल होकर बढ़े। वैदिक धर्मावलंबियों ने अपने दास वाङ्मय कीर्तन आदि के द्वारा; रामायण-भारत-भागवत आदि पुराणों के द्वारा लोगों को अपनी तरफ़ आकर्षित किया। इतना ही नहीं, शिव-पुराण की अनेक कथाएँ, वीरशैव मत के लिए विश्वकोश जैसे रहनेवाले कुछ धर्मग्रंथ, नीति (Moral) बोधक या भक्ति भरे पद्य, गेय, शतक आदि इस युग में बड़े परिमाण में रचे गये।

इस युग की ग्रंथराशि में वीरशैव पुराण संख्या में ही नहीं काव्य गुण की दृष्टि से भी सम्पन्न हैं। इसलिए उनका स्थूल-विवेचन करना अस्थानीय भी नहीं अनावश्यक भी नहीं। स्व० एम० आर० श्रीनिवास मूर्ति जी कहते हैं कि—"बसवेश्वर आदियों के जीवन-चरित-युक्त वीरशैव तत्त्वों के पतिपादक काव्यों को वीरशैव-पुराण कह सकते हैं। आरंभ में बसवण्णा, सिद्धराम आदि पुरातन शरणों को कथानायक के रूप में चुनकर रचना करने की परिपाटी रही। कालांतर में वीरशैवों में महापुरुषों का—चाहे वे पुरातन हो या अर्वाचीन—जीवन चरित लिखकर उन्हें पुराण कहकर अभिहित करना रूढ़ हो गया—ऐसा प्रतीत होता है। तमिलनाडु के तिरसठ प्राचीन शैवभक्तों (नायन्मारों) की जीवनियों ने भी इन पुराणों के लिए आवश्यक सामग्री प्रस्तुत की। शिवतत्त्व चिंतामणी, वीरशैवामृत पुराण-इत्यादि पुराणों में जीवन चरित के अधिक मत तत्त्व सम्बन्धी विचार ही अधिक दिखायी पड़ती हैं। शंकर दासिमय्या का चरित, आराध्य चरित इत्यादि के नाम "चरित" होने पर भी पुराण ही हैं। अतिमानुष कर्म करके दिखानेवाले संतों की जीवनियों को आधार बनाकर मत तत्त्वों

का प्रचार करना ही इन सबका प्रधान लक्ष्य है। कन्नड और संस्कृत में प्रकांड पंडित और प्रौढ़ काव्य रचना समर्थ व्यक्तियों ने कभी-कभी चंपू काव्य बंध में ऐसी कृतियों के निर्माण में हाथ लगाया भी है; परन्तु ऐसे काव्य परिमाण में अधिक होकर देशी शैली में ही ज्यादा लोकप्रिय बने हैं।

सभी वीरशैव पुराणों में कुछ सामान्य लक्षण पहचाने जा सकते हैं। मर्त्यलोक में वीरशैव मत का ह्रास होते देखकर परशिव अपने गण समूह में से चुनकर किसी एक को भूलोक में भेजते हैं। मर्त्य लोक में आनेवाले ऐसे गणधर की सभी विघ्न-बाधाओं का निवारण करने के लिए स्वयं परशिव अपने स्वस्वरूप में प्रत्यक्ष होकर उसे अभयदान देता है। शिव से आज्ञप्त यह गणधर पृथ्वी पर जन्म लेता है; कुछ अतिमानुषकर्म (करामात) करके दिखाता है; अन्य मतों का खंडन करके अपने मत की स्थापना करता है। भगवगीता में स्वयं भगवान् "संभवामि युगे युगे" कह कर वचनबद्ध होने से अवतार लेते हैं और धर्म संस्थापन का कार्य करते हैं। तत्त्व तो एक ही है, परन्तु यहाँ स्वयं परमेश्वर अवतरित न होकर अपने किसी अंश के द्वारा यह काम कराते हैं। इन पुराणों में शिवजी की पंचविं शति लीलाओं की, विभूति (भस्म) प्रसाद, पादोदक—इनकी महिमा, एवं ब्रह्मांड सृष्टि का विचार भी सम्मिलित कर—इन सभी बातों का वर्णन किया जाता है। ग्रंथों की आदि में और अन्त में परशिव के और शिवशरणों के स्तोत्र दिखाई पड़ते हैं। आम तौर पर अन्त में परमेश्वर प्रत्यक्ष होकर कथानायक को अपने लोक कैलास में ले जाते हैं या भक्त अपनी भक्ति के बल से कैलास पहुँचता है।—यह आम तौर पर सभी शैव पुराणों का सामान्य लक्षण है।

वीरशैव पुराणकारों में राघवांक ही प्रथम हैं। इन से पहले हरिहर कवि ने शिवशरणों के विषय में "रगळॆ" लिखे, तो भी वे पुराण नहीं। वह कवि थे, पुराण-कार नहीं। राघवांक के बाद पद्मणांक "पद्मराज पुराण" लिखा। इनके पश्चात् एक भीम कवि हुए जिसकी गणना की जा सकती है। उनका "बसक पुराण" वीर-शैव पुराणों में बहुत मुख्य है। यही आगे के सभी रचनाकारों के लिए मार्गदर्शक है। भीम कवि के इस "वसव पुराण" को कवि काव्य विभाग स्थान माना जाना जा सकता है। इस पुराण के पूर्व अर्थात् पहले देखेंगे तो जैन कवियों के चंपू काव्य और इसके बाद देखेंगे तो अधिकतर वैदिक और वीरशैव कवि तथा देशी छन्दों में लिखित काव्य। इस तरह जैन तथा वैदिक-वीरशैव कवियों के देशी छन्दों में प्रस्तुत काव्यों की मध्य रेखा है यह भीमकवि का बसव-पुराण। बसव-पुराण से पूर्व के षट्पदी काव्य—एक राघवांक की कृतियों को छोड़कर—सभी कच्चे और अधपके हैं। ये सब चंपू काव्य का अनुकरण हैं पर यह अनुकरण एक विकृत रूप में हैं। इस बसव पुराण के बाद से षट्पदी युग ही आरंभ हो जाता है।

वीरशैव पुराणों के द्वारा कन्नड-साहित्य का जो उपकार हुआ है उसे थोड़ा नहीं कह सकते। ये सभी पुराण आम तौर पर सरल, सुलभ, गेय, हैं। षट्पदी, सांगत्य छन्दों में होने के कारण बच्चे-बूढ़े, स्त्रियों और बच्चों तक सभी स्तर के लोगों के लिए समझने योग्य हैं। जैसे यह पामर-रंजक हैं, वैसे पंडितों हैं लिए भी प्रिय पात्र हैं। इन पुराणकारों के कारण षट्पदी छन्द निखरकर सम्पन्न हुआ। क्लिष्ट से क्लिष्ट भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता इस षट्पदी छन्द में आयी। भाव और

भाषा दोनों की दृष्टि से ऊँचे दर्जे के पुराण भी इस समय बने। इन सबसे बढ़कर वीरशैव पुराणों की प्रचुरता के कारण कन्नड साहित्य में पर्याप्त मात्रा में जीवनियाँ प्रस्तुत हुईं।

अब कुमारव्यास युग के वीरशैव काव्यकारों में प्रधान कवियों के विषय में जरा विचार करें।

कुमारव्यास युग के वचनाकार

विजयनगर के राजा प्रौढ़ देवराय के समय समय में उनके दंडनायक जक्कणार्य ने और एक सौ एक विरक्तों ने वीरशैव के प्रचार-प्रसार कार्य में प्रवृत्त होकर वचन वाङ्मय के पुनरुद्धार कार्य में प्रमुख भाग लिया। जक्कणार्य की इच्छा के अनुसार वचन वाङ्मय के अध्ययन करने के लिए उनके गुरु बंकनाथ उन्हें अपने गुरु महलिंग (1425) के पास स्वयं ले गये। उन्होंने जक्कण के उपयोगार्थ "एकोत्तर शतस्थल" और "प्रभुदेव के षट्स्थल ज्ञान चारित्र वचन की टीका"-- इन दो संकलित और सम्पादित वचन संग्रहों को तैयार किया। इस तरह रुके हुए वचन-साहित्य के प्रवाह को फिर से प्रवहित होने दिया। इनके ये दोनों ग्रंथ प्राचीन-संग्रह हैं। बसवण्णा, चॅन्नबसवण्णा, प्रभुदेव-इत्यादि पहुँचे हुए शरणों के 1500 वचनों को चुनकर उन्हें अंग स्थल 44, लिंग स्थल 57— इस तरह कुल 101 स्थलों के अनुक्रम से विभाजित कर निर्मित ग्रंथ ही यह "एकोत्तर शतस्थल" है। इनका दूसरा ग्रंथ संकलनकर्ता महलिंगदेव के कथनानुसार "प्रभुदेव की वचन व्याख्या" है। और उसे अपनी योग्यता के अनुसार अपनी अल्पमति से जो कुछ समझ सके उसे व्याख्या के रूप में प्रस्तुत किया हैं।—ऐसा स्वयं कहते हैं। प्रभुदेव के वचन अनबूझ पहेली की तरह लगते हैं, इनकी व्याख्या करना भी आवश्यक है। इन वचनों की टीका लिखना भी आसान नहीं। ऐसे वचनों की सान्वय टीका लिखने का संप्रदाय पहले पहल इन महलिंगदेव ने ही चलाया। यह श्रेय इन्हीं को मिलना चाहिए। इनसे वचनों की रक्षा एवं उनके प्रकार का कार्य आरंभ हुआ।

महलिंगदेव के शिष्य कुमार बंकनाथ (1430) और जक्कणार्य (1430)— ये दोनों वचन-वाङमय के क्षेत्र में प्रख्यात हैं। कुमार बंकनाथ ने "षट्स्थलीयदेश" और "प्रभुदेव वचन टीका" इन दोनों की रचना करके अपने गुरु के द्वारा जो कार्य शुरू हुआ था, उसे आगे बढ़ाया। इनके ग्रंथ भी अपने गुरु के ही ग्रंथों की तरह है; इनमें कोई खासियत नहीं। इनके शिष्य जक्कणार्य बड़े ओहदेदार थे और साथ ही "भक्ति भंडारी" थे। इन्होंने वीरशैव ग्रंथों की रचना कराने के लिए अपार धन दिया; इतना ही नहीं, स्वयं लेखन कार्य में लगे थे; इन्होंने "एकोत्तर शत स्थल" नामक ग्रंथ की रचना की। "भैरवेश्वर काव्य-कथा सूत्र रत्नाकर" नामक ग्रंथ में इस ग्रंथ की रचना के सम्बन्ध में एक कथा है। प्रौढ देवराय के गुरु मुकुंदपेद्दि नामक वैष्णव विद्वान् ने भारत और रामायण की कथा का नौ महीनों तक उपदेश देकर उन दोनों का बड़े ठाठ के साथ जुलूस निकलवाया था। जक्कणार्य ने इस जुलूस को देखा और अपने गुरु बंकनाथ के निरूपण के अनुसार "एकोत्तर शत-स्थल" नामक ग्रंथ तैयार कर, कल्लमठ के प्रभुदेव, चामरस, कर स्थल के नागिदेव, वीरण्णोडेय आदि आदि एक सौ एक विरक्तों के साथ इस ग्रंथ को पुष्पक में रखकर बड़े संभ्रम और

ठाठ-बाठ के साथ जुलूस निकलवाया। यह "एकोत्तर शतस्थल" पुरातनों के 550 वचनों का संग्रह है जो एक सौ एक स्थलों के अनुक्रम से विभक्त और संपादित है।

जक्कणार्य के समसामयिक थे कल्लमठ के प्रभुदेव (1430)। इन्होंने "लिंग लीला विलास चरित", और "प्रभुदेव के मंत्र-गोप्य की टीका"—यह दो ग्रंथों को लिखे है। "लिंग लीला विलास चरित्र" षट् स्थल सम्बन्धी उपदेशात्मक वचन ग्रंथ है। इसके आरंभ में कहा गया है कि "भक्तिकांड ही षट् स्थल मार्ग है, यह मार्ग ही लिंग लील विकास चरित्र है।" प्रभुदेव, बसवण्णा, चॅन्न बसवण्णा, महादेवियक्का आदि पुरातन शरणों के 720 चुने हुए वचन षोडशस्थल परिक्रमानुसार संग्रहीत करके उनकी व्याख्या की गयी है—इस ग्रंथ में। इन स्थलों के नीचे अंत में कुछ संस्कृत के श्लोक और उनकी टीका भी है।

प्रभुदेव के मंत्रगोप्य की टीका सीस पद्य की तरह के 27 पद्यों की कृति है। प्रत्येक पद्य के लिए विस्तृत टीका भी है। प्रभुदेव के सांकेतिक वचनों के लिए ऐसे विवरण की आवश्यकता भी है। उदाहरण के लिए मंत्रगोप्य का एक पद्य (प्रभुदेव का) देखें—

"ऍण्टॅसळ कमलदा नवब्रह्म पुरदॉळगॅ
ऍण्टु बीदियॉळॅण्टु करिगळुण्टु
ऍण्टु करि गळ सुट्टु कंटकंगळ गॅलिदु
दान्टिदॅनु संसार सागरवनु।।"—इसका अर्थ यों है—"अष्टनाल कमल पर वह नवब्रह्मपुर; इसके आठ रास्ते, इनमें आठ हाथी, इन आठ हथियों को जलाकर कंटकों को जीतकर संसार सागर से पार पाया।" यह शब्दार्थ है। इस तात्पर्य है—"ज्ञान की ज्योति के प्रकाश के फैलने से देहभाव कम होते-होटे सम्पूर्ण नष्ट हो जाता है। उस शिवज्ञान से ही भवविरहित हो सकते हैं, इस एक ज्ञान को छोड़ कर और कोई दूसरा मार्ग भव सागर से पार नहीं ले जाता। अष्टांग योग साधना से शरीर को त्रास देने वाले कर्मों से, देहवासना से मुक्ति नहीं मिलती।—यह उपदेश प्रभुदेव ने सिद्धरायदेव को उपदेश दिया है।"—यह इस वचन का भाव है। कल्लमठ के प्रभुदेव ने अपने ग्रंथ को "शिवज्ञान दर्पण" कहा है।

मग्गॅय मायिदेव ने "मग्गॅय मायिदेव वचन" नामक एक ग्रंथ को लिखा है—ऐसी प्रतीति है। परन्तु यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। तोटद सिद्धलिंग यति के शिष्य गुब्बी के (स्थान का नाम) मल्लण्णा (1475) ने अपने "गण भाष्य रत्नमाला" या "गणभाषित रत्नमाला" में प्राचीन वचनों का संग्रह किया है। 974 वचनों का यह संग्रह है। इस संग्रह के विषय में स्वयं संग्रहकर्ता का यह कथन है—"बसवराज, चॅन्न बसवदेव, प्रभुदेव और प्रमुख असंख्य महागणों के द्वारा आचरित और स्वानुभव से कथित वचन अलग स्थानों में रहे तो अच्छा नहीं, इसलिए मैंने इन्हें विषय व संदर्भ के अनुरूप स्थानों में रखकर एक सुन्दर माला के रूप में पिरोया है।"—अपने इस संग्रह की उन्होंने "वीरशैव प्रतिष्ठापनाचार्य", "दिव्य वेदांत शिरोमणी" कहकर प्रशंसा की है। यह अन्य टीकाकारों से एक कदम आगे बढ़कर वेद-आगम-पुराण-इतिहास आदि ग्रंथों से प्रमाणों का उद्धरण देकर पुरातनों के वचनों को समझाने का प्रयत्न किया है। पुरातनों के वचन उनकी स्वानुभूतियों का प्रतिबिंब ही तो है? इसलिए उन

वचनों में से ऐसे वचनों का ही चयन किया है जिनमें वीरशैवों के आचरण और सिद्धांत एक साथ समझा सके।

वचन संग्रह के कार्य का श्रेष्ठ नमूना "शून्य संपादन" है। इस ग्रंथ और उसके संकलन कर्ताओं के सम्बन्ध में पहले ही कहा जा चुका है। अन्य संग्रहकारों में "पदैकोत्तर शतस्थल" के लेखक बसवेश (1600) प्रमुख है। शरणों के वचनों को वार्धक षट्पदी के पद्यों में परिवर्तित कर प्रस्तुत करना इनका वैशिष्ट्य है।

अब कुमारव्यास युग के स्वतंत्र कृतिकर्ता वचनकारों के विषय में कुछ विचार करेंगे। इनमें अग्रगण्य तोंटद सिद्धेश्वर (1470) हैं। इनके सम्बन्ध में चॅन्नबसव पुराण में कहा है कि यह निरंजन गणेश्वर के अवतार है। परमेश्वर की आज्ञा से उन्होंने षट्स्थल का उद्धार करने के लिए 700 गणों के साथ कैलास से भूलोक में अवतरित हुए। हरदनहळ्ळि के गोसल चन्नबसवेश्वर कर संजात (शिष्य) यह सिद्धेश्वर गुरु से दीक्षा ग्रहण करके देश संचार करते हुए "कॅग्गॅरॅ" नामक स्थान के पास आकर वहाँ के एक बाग में ठहर गये नंबियण्णा नाम एक भक्त ने इन्हें देखकर भक्ति के साथ भिक्षा के लिए निमंत्रण दिया। गुरु ने स्वीकार किया। घर में भिक्षा की व्यवस्था करके लौटकर बुला ले जाने का वचन देकर यह नंबियण्णा गाँव में गये। जाते ही वहाँ के किसी झगड़े में फँस गया, और इधर गुरु को भूल ही गया। दिन पर दिन बीत गये। ध्यान समाधिस्थ सिद्धेश्वर पर एक बांबी बढ़ने लगी। कुछ समय के बाद वस्तुस्थिति को जाननेवाले कुछ भक्तों ने अचानक सी इस बात को स्मरण करके बांबी को खोदकर उन्हें बाहर निकाला और आवश्यक उपचार किया। उनकी कीर्ति चारों ओर फैली। उसी बाग में बहुत समय तक निवास करते रहे, इसलिए इनका नाम "तोंटद (बगीचे का) सिद्धलिंगयति" हो गया। उनके व्यवहार और उपदेश से आकर्षित लोग उनके चारों ओर फैल गये। वह इन सब लोगों के लिए आराध्य बन गये। बसव आदि प्रमथों के समय में जो धार्मिक वातावरण बना हुआ था वह फिर से दिखाई देने लगा। लोगों में धर्म श्रद्धा जगी, सात्विक उत्साह बढ़ा; इस तरह जन जागृति करनेवाले सिद्धेश्वर केवल व्यक्तिमात्र न रहकर एक संस्था ही बन गये। जहाँ वह निवास करने लगे वह जगह कैलास बनी। उनके चारों ओर फैले भक्त वीरशैव के प्रचार और प्रसार के कार्य में कटिबद्ध होकर कार्यरत हुए। लोक जीवन पर अपार प्रभाव डालकर उनके ऐहिक और पारलौकिक श्रेय-साधना के मार्गदर्शी होने वाले इस महा-पुरुष को लोगों ने ईश्वर का अवतार माना और कई तरह की अलौकिक बातों का आरोप करके इन्हें पूज्य बनाया। जिला तुमकूर के ऍडॅयूर नामक गाँव में निवास बनाकर, लोक-पूजित होकर, कुछ वचन गाकर, अन्त में वहीं समाधि में प्रविष्ट हुए, यह तोंटद सिद्धेश्वर। इनके समय में हंपी की तरह ऍडॅयूर भी वीरशैव मत का केन्द्र बन गया। उनके समाधिस्थ होने पर भक्तों ने ऍडॅयूर में एक शिव मंदिर बनाकर सिद्धेश्वरयति के नाम से एक शिलालेख भी वहाँ स्थापित किया। इस शिलालेख में उनकी महिमा गायी गयी है और साथ ही उन सभी भक्तों के नामों का भी उल्लेख हैं जिन्होंने उनके नाम पर "कल्लुमठ" का निर्माण किया। आज यह शिलालेख इस सिद्धेश्वर मंदिर में विद्यमान है। आज भी यह गाँव वीरशैवों की पुण्यभूमि है। विरक्त तोंटदार्य, शांतेश आदि कवियों ने इनके जीवन को अपने काव्यों

के लिए वस्तु बनाकर काव्य रचना की है। अनेक कवियों ने काव्य कर्म में हाथ लगाने के पहले इनकी स्तुति करके पुष्पांजलि अर्पित की है।

तोंटद सिद्धेश्वर के वचन ग्रंथ का नाम "षट्स्थलज्ञान" सारामृत" है। इसका प्रत्येक वचन "महालिंग गुरु सिद्धेश्वर प्रभु" के अंकित से समाप्त होता है। इन वचनों में बसवण्णा, अक्कमहादेवी आदि पुरातन वचनकारों का प्रभाव दिखाई पड़ता है और यह स्वाभाविक है। वहाँ दिखनेवाला उन्नत काव्यगुण यहाँ न दिखने पर ही भक्त की निष्ठा, श्रद्धा, आर्तभाव आदि की इन वचनों में कमी नहीं। "स्वानुभावज्ञानी ही लिंगांग समरसैक्य स्थिति में रहते हैं।"—यह बताते हुए एक उपमा द्वारा समझाते हैं—"इतने बड़े सूर्य-प्रकाश के सामने लूके का प्रकाश कहीं टिक सकता है ?" और "जो अपने मुख को आप देख समझ सकते हैं उसे आरसी में देखना क्या ? अपने आपको पहचानकर स्वयं को जानने समझने वाले ज्ञानी को कैसे आगम कैसे शास्त्र ? आगम आदि की शिक्षा साधारण लोगों के लिए हैं, स्वयं शिव-स्वरूप जो हैं उन्हें इन सबका क्या प्रयोजन है ? वे स्वयं महामहिम हैं।"—उनकी यह भी निश्चित धारणा है कि "शुद्ध-ज्ञान स्वरूपी शरण जो हैं वे स्वयं लिंग हैं।"—इस तरह समझने वालों के लिये संकल्प क्या ? भ्रम कैसा ? इस बात को कई उदाहरणों के द्वारा समर्थन करते करते हैं—जैसे, कहते हैं—"अमृत में कहीं जहर होता है ? मिठास में कड़ुआपन होता है ? सूरज में कलिख और चांदनी में आग होती हैं ? अमृत के सागर में कहीं नीम होता है ? जो सत्य के ज्ञान से परिपूर्ण हैं अर्थात् जिसने सत्य को पहचान लिया है उसे अज्ञान से क्या डर ? सत्य को जान कर स्वयं तादात्म्य भाव से सत्य-स्वरूप जो हैं ऐसे सत्यात्मा का माया क्या कर सकेगी ? ऐसे महनीत ज्ञान-स्वरूप शरण को किसका डर है ?"—सिद्धेश्वर की इस वाणी में अनुभावों की गहराई से अधिक चित्तस्थैर्य है; उन महामहिम में एक साधक की कातरता से सिद्ध पुरुष की प्रशांतता की ही मात्रा प्रबल है। वह कहते हैं: "आत्म-ज्योति जो अपने ही अन्तर को प्रकाश-मय बना रही है उसी में विलीन होकर आनंदानुभव करते हुए जो स्वयं आनंदमय है, उन्हें बड़े तड़के जागकर पुष्प चयन कर पूजा की सामग्री जुटाकर यह सारा बाह्योप-चार किस काम का ?" उन महापुरुष की इन बातों को सुनते हैं तो लगता है यह सम्पूर्ण सिद्ध पुरुष थे।

तोंटद सिद्धेश्वर के शिष्य स्वतंत्र सिद्धलिंगेश्वर (1480) और गुम्मलापुर के सिद्धलिंगेश्वर (1480) ये दोनों स्वतंत्र वचन-निर्माता हैं। "निजगुरु स्वतंत्र सिद्धेश्वर" के अंकित से "स्वतंत्र सिद्धलिंगेश्वर वचनों को लिखनेवाले स्वतंत्र सिद्ध-लिंगेश्वर "मुत्त्यंगना कंठहार" और "जंगम रगळॆ" नामक दो और कृतियों का भी निर्माण किया है। साहित्य की दृष्टि से इनका कोई महत्व नहीं। वचन सरल हैं। ये वचन सूत्रवत् न होकर कथनीय विषय को बतलाने के लिए विस्तृत हो गये हैं, अत: वे निशित नहीं। वचन विषय गर्भित तो हैं, परन्तु सारवंत नहीं। इनके भाव अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त शब्दों के वाच्यार्थ से ही स्पष्ट हो जाते। इनके अनेक वचन विवेकज्ञान का बोध कराते हैं सही; मगर इनमें भावबन्धुरता नहीं है, उक्ति वैचित्र्य भी नहीं। कहीं-कहीं तो प्रास बद्धता दिखती है; मगर इन वचनों से बुद्धि-विकास के लिए आवश्यक सामग्री नहीं मिलती, हृदय में आनंद की अनुभूति भी नहीं

होती। बारहवीं सदी के वचन वाङ्मय से परिचित लोगों के लिए तो ये वचन बिलकुल ही नीरस लगते हैं। स्वतंत्र रूप से वचन-रचना का कार्य बहुत समय से रुका हुआ था, अब जो इस तरह का काम आरंभ हुआ तो इन वचनों को एक प्रकार से साहित्य के इतिहास में स्थान देना है; इसलिए उल्लेख किया गया है।

गुम्मलापुर का सिद्धलिंगेश्वर तोंटद सिद्धलिंगयति के शिष्य भी है और प्रशिष्य भी यति के शिष्य "बोळबसव" संभवतः इनके गुरु थे। उन्होंने अपने प्रत्येक वचन में इस बोळबसव की स्तुति की है; इन्हीं बोळबसव द्वारा सिद्धलिंगेश्वर को तोंटद सिद्ध-लिंग यति का अनुग्रह प्राप्त हुआ था। इनकी कृति "षट्स्थल लिंगांग सम्बन्ध निर्वचन" है जिसमें केवल पंद्रह वचन हैं। बसवण्णा, चॅन्न बसवण्णा, मडिवाळय्या, प्रभुदेव इत्यादि पुरातनों की स्तुति बीच-बीच में वर्णित है और ये लंबे-लंबे वचन हैं। काव्य की दृष्टि से ये साधारण वचन हैं।

तोंटर सिद्धेश्वर के एक और शिष्य घनलिंग (1480) ने कुछ वचन "घनलिंगि प्रिय चेन्नमल्लिकार्जुन" के अंकित से लिखे हैं। उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखते हुए बताया है कि—"मेरे गुरु, परम गुरु, परमाराध्य तोंटदार्य के चरण कमलों में भक्ति पूर्वक प्रणाम करता हूँ। इन्हीं महामहिम की कृपा के पालने में लेटकर प्रमथगणों के वचन रूपार्थ रूपी दूध-घी खाते हुए, उन्हीं महात्मा के संरक्षण में बढ़ा, इन्होंने मेरा नाम घनलिंगी रखा, इस तरह समर्थ हुआ।"—यों आत्मकथा बताकर कहते हैं—"सुत्तूर सिंहासन के पर्वतदेव के शिष्य कूगलूर नंजय्यदेव के कर कमल संजात शरण हूँ।"—उनकी इन बातों से लगता है कि यह जिला मैसूर के सुत्तूर नामक स्थान के निवासी है। इनके वचन काफी लंबे हैं। लंबे होने पर भी सारवंत हैं। इन वचनों में एक साधक की आर्तता, निष्ठा व भक्ति हैं। वह अपने हृदय की वेदना को यों अभि-व्यक्त करते हैं—"मेरे पापों का अन्त नहीं, कायविकार अंधकार की तरह मुझ पर हावी हो गया, मनोविकार रूपी माया ने मुझे बंदी बना रखा, इंद्रिय विकार पागल कुत्ते की तरह काट काटकर भोंकता रहा, मृत्यु के साथ ऐसी सरस केलि ?"—यों वेदना को व्यक्त करके भगवान से अपनी गलतियों को क्षमा करके उद्धार करने की प्रार्थना करते हैं। इनके वचनों में एक काव्यमय शैली है। कहीं-कहीं रूपकों की परंपरा को बढ़ाते हुए वचनों को विस्तृत रूप से फैलाया भी हैं। इनके वचनों में एक विशिष्टता है। इस विशिष्टता के कारण इनका एक विशिष्ट स्थान भी है।

कुमारव्यास युग के स्वतंत्र वचनकारों में षण्मुख स्वामी (1700) का स्थान गण्य है। यह गुलबर्गा जिले के देवरगी नामक गाँव के विरक्त मठ के गुरु थे। इन्होंने अपने गुरु अखंडेश्वर स्वामी के अंकित से 717 वचन लिखे हैं। इनके वचनों में बसवण्णा अक्क महादेवी के वचनों का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से यह पुरातनों के ऋणी हैं। इनके कुछ वचनों को पढ़ने से कहीं बसवण्णा के, और कहीं अक्कमहादेवी के वचनों की छाया स्पष्ट दिखाई देती है; कभी-कभी पाठक इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि ये वचन कहीं बसवेश्वर या अक्कमहा-देवी के ही तो नहीं। इनके वचनों में ऐसा अनुकरण स्पष्ट है, परंतु अनुकरण एक वस्तु का होने के कारण फल भी उत्तम है। सरल सुन्दर एवं प्रसाद गुण युक्त हैं। कवि तत्त्व निरूपण से अधिक आचार धर्म की ओर विशेष आकृष्ट हैं।

षण्मुखस्वामी ने अपने को माता मानकर लिंग को शिशु मानकर लोरी के पद्य गाये हैं जो संख्या में इकतालीस हैं। एक उदाहरण देखिये—"लिंगबॅम्ब मगन हुडॅदु, अंगैयॅम्ब तॉट्टिहलल्लिक्कि, मंगलसूत्रवॅम्ब जोगुळव हाडि अखंडेश्वरनॅम्ब हॅसरिट्टु नोडा।"—अर्थात् "लिंग रूप पुत्र को जन्म देकर, हथेली के पालने में रखकर, मंगल-गान रूपी लोरी गाकर, उसे अखंडेश्वर कहकर नामकरण किया।"—गुरु पति और शिष्य पत्नी है, लिंग शिशु है, हथेली पालना है,—इस तरह परमात्मा की भक्ति में विलीन होकर उसी भाव में रमते रहनेवाले षण्मुखस्वामी सचमुच धन्य है।

कवि चरितकारों ने कर्नाटक कवि चरित भाग-3 के अन्त में अनेक वचनकारों के नामों को एक लंबी सूची दी है। इन सबके अप्रकटित वचनों का समग्र दर्शन हुए बिना उनके बारे में लिखना संभव नहीं। इनमें कुछ वचनकार स्त्रियों के भी नामों का उल्लेख है। करीब पचास वचनकारों के कुछ अंकित युक्त वचन जो उपलब्ध हुए हैं उन्हें उद्धृत भी किया है। नाम और अंकित मालूम होने पर भी वचन अनुपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में इस दिशा में खोजबीन करना जरूरी है। इसमें अन्वेषण कार्य होना चाहिए।

कुमारव्यास युग के वीरशैव कवि

देपराज (1410)—यह विजयनगर के राजघराने से संबंधित व्यक्ति हैं। "सॉबगिन सोनें (सौंदर्यवर्षा)" और "अमरुक शतक" नामक दो ग्रंथ इन कवि ने रचे। इस वंश का मूल-पुरुष "संगम" हैं। इसी संगम वंशचंद्र है "कंप"। इस कंप के छोटे भाई बुक्कराय है; इस बुक्कराय का बेटा "दूसरा कंप"। यही प्रस्तुत कवि है। यह पंद्रहवीं सदी के आरंभ में रहे। कवि ने स्वयं बताया है कि एक किसी त्र्यंबकदेव से कन्नड में आशुकविता करना सीखा। इतकी कृति "सॉबगिन सोनें" सांगत्य में है। इसमें सुरभावति, कंजरा, वसंता आदि सात सुन्दरियों की कथा वर्णित है। कहा जाता है कि इस कवि ने अपनी पत्नी की इच्छा को पूर्ण करने के इरादे से यह कथा कह सुनायी थी। इस अपने काव्य को कवि ने "विद्वतों के लिए प्रिय और रसिक रसायन" कहकर स्वयं प्रशंसा की है। परंतु इसमें प्रयुक्त भाषा प्रौढ़ होने के कारण "हाडु गब्ब (गेय काव्य)" की श्रेणी में इसे रखा नहीं जा सकता। इस पर कवि को अष्ट-दश वर्णनों में जितने हो सके उतने इसमें लाने की इच्छा है। इसलिए गति कुंठित हो हो गयी है। कुछ पद्य तो ऐसे हैं जिनमें कवि की प्रतिभा से अधिक पांडित्य ही प्रदर्शित हुआ है। वर्णनात्मक प्रसंगों में थोड़ा बहुत कल्पना विलास लक्षित होता है। इनका बड़प्पन काव्य गुण के कारण नहीं, इसलिए है कि यही प्रथम सांगत्यकार है। श्री आर० एस० मुगली का कथन है कि —"शैली व छन्द की दृष्टि से यही प्रथम सांगत्यकार है और यह शिशुमायण के पश्चात् का है। समय की दृष्टि से यह पंद्रहवीं सदी के पूर्वार्ध का है तो शिशुमायण उत्तरार्ध का है—ऐसा विचार करने के लिए भी काफी गुंजायश है।"

देपराज का "अमरुक शतक" संस्कृत के "अमरुक शतक" का भाषांतर है। यह परिवर्धिनी षट्पदी में है। शृंगार शरनिधि अमरुक शतक को कन्नड में प्रस्तुत करना ही नहीं, सम्पूर्ण काव्य को वर्धिनी षट्पदी में सर्व प्रथम लिखने का श्रेय भी इन्हीं को मिलना चाहिए।

लक्कण दंडेश—(1428) यह कवि ही नहीं वीरयोद्धा भी था। यह विजय नगर के सम्राट् प्रौढ देवराय (ई० सन् 1416-1446) के सेनापति, प्रधानमंत्री, आप्तसचिव—इन तीनों पदों पर बड़ी दक्षता के साथ कार्य निर्वहण कर गौरवान्वित हुआ और कीर्ति संपन्न भी था। पौरुष के अनुरूप औदार्य, पद के योग्य लोकोपकार बुद्धि, संपन्नता के साथ भगवद्भक्ति—ये इन महाशय में गुण थे। कहने का तात्पर्य यह है कि यह व्यक्ति सब दृष्टियों से आदरणीय थे। इन्होंने कई पोखरे तालाब आदि का निर्माण करके मंदिर बनवाकर प्रजाजन के लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति के लिए आवश्यक सब साधन जुटाये; साधु संत एवं कवि जनों को आश्रयदाता बनकर अपने जीवन को इन्होंने सार्थक बनाया। इन सबसे बढ़कर "शिव तत्त्व चिंतामणी" नामक ग्रंथ की रचना करके कन्नड साहित्य जगत् में अमर कीर्ति पायी। दो हजार दो सौ से भी अधिक पद्योंवाली यह बृहत् कृति "पंचामृत" के समान है;—यों माना

आता है। इस काव्य का लक्ष्य शिवाद्वैत निरूपण करना है—"इस कृति में—"

"गुरुवचनदमृतमं, श्रुति पुराणागमद
परमार्थदमृतमं, वर पुरातन वचन
परियायदमृत में, शिवतांत्रिकरु पेळ्द सिद्धांत बॅनिपमृतमं
परमानुभावदनुभवगोष्ठि यमृतदॉळु
बॅरसि मथनिसि पडॅद लक्कण दंडेश
धरिसिर्प तत्वचिंतामणि"······आदि आदि—

"गुरुवचनामृत, श्रुति पुराण आगम सार, श्रेष्ठ पुरातनों के वचनामृत, शैवतंत्र सार, परमानुभावानुभाव सार—इन सबको मिलाकर सबका मंथन कर लक्कण दंडेशने इस "शिव तत्त्व चिंतामंणि" नामक मक्खन निकाल कर लोकहित के लिए इस पंचामृत को प्रस्तुत किया है।"— इस कृति के निर्माण में कवि का यही आदर्श रहा है। तत्त्व पटल", शिव की पंचविंशति लीलाएँ, पुरातन और नवीन शरणों की कथाएँ, पंचाक्षरी-विभूति-रुद्राक्ष की महिमा, दीक्षाक्रम आदि आदि से युक्त यह ग्रंथ वीरशैव मत का मार्गदर्शक-ग्रंथ है। सिद्धनंजेश कवि ने इसे "शिव तत्व चिंतामणि शास्त्र" कहा है जो सब तरह से अन्वर्थ है।

इस ग्रंथ के उदाहृत असंख्य शिवशरण और उनके वचन ध्यान-योग्य हैं। एक तरह से यह वीरशैव कोश है। तिरसठ पुरातनों की कथाओं के लिए तो कवि के लिए आधार ग्रंथ प्राप्त थे। परंतु सैकड़ों नवीनों—इनमें कन्नड, आंध्र, तमिल, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात—इन सब प्रदेशों के शरण थे— की कथाओं को एकत्र संग्रह करके प्रस्तुत करना आश्चर्यजनक और आनंद का विषय है। इन कथाओं को संग्रह रूप में सारवान् बनाकर प्रस्तुत करने की कला में लक्कण दंडेश सिद्धहस्त है। एक ही पद्य में तीन-चार शरणों और उनके निवासस्थानों तथा उनके भक्ति-वैषिष्ट्य आदि के बारे में कहना साधारण काम नहीं। इस संग्रह शक्ति के लिए यह कवि स्तुत्य अवश्य है। इतना ही नहीं—यह कवि बड़े विनम्र है। असाधारण विनय सम्पन्न इस कवि का प्रत्येक पद इस विनम्रता से अन्त होता है। इनकी दृष्टि में नट् विट् गायक् काछी, कुर्मी, ढेड़-चमार कोई भी हो—यदि वह ज्ञान सम्पन्न हो तो वह इनके लिए पूज्य है। छोटों में भी बडप्पन देखकर उनकी कीर्तिगान करने का कवि का यह आदर्श सराहनीय है।

वीरशैव मत तत्त्व युक्त शरण कथा निरूपण करनेवाले इस "शिव तत्त्व चिंतामणि" में काव्य गुण प्रदर्शन करने के लिए गुंजायश ही नहीं है। फिर भी हंपीनगरी और तुंगभद्रा के वर्णन-प्रसंग में उनकी प्रतिभा का परिचय अवश्य होता है। उनकी तुंग-भद्रा की महिमा का वर्णन सुनिये—

"कंगॉळिप सकल तीर्थद महिमॅपं तन्नॉ
ळंगीकरिसि धरातळद जीवर्गेल्ल
मंगळप्रद निखिळ पुरुषार्थसिद्धिगळनीव ति कृपा रसदॉळु
तुंगॅयॅन्दॅनिसुतं भद्रलक्षणविडिदु
तुंग भद्रानाम मं धरि सि दति निर्मं
ळांगि गंगॅय''······आदि आदि—अर्थात्—

"संसार भर के सभी तीर्थों की महिमा को आत्मसात् करके यह नदी संसार के सारे जीवों को मंगलप्रद पुरुषार्थ सिद्धियाँ देने की कृपा करती है, इसमें यह तुंग—बहुत ऊँचे गुणोंवाली है और मंगल कर लक्षण युक्त होने के कारण भद्रा है। इन दोनों का समाहार तुंग भद्रा है। आदि—इसी तरह कल्याणपुरी का वर्णन बहुत ही सुन्दर है। इस तरह यह कवि लक्कण दंडेश अपनी प्रतिभा का परिचय यत्र तत्र देते हैं।

चामरस (1430;—यह वीरशैव पुराणकारों में विशेष रूप से गौरवान्वित और कीर्तिशाली हैं। इन महाशय ने देवमानव प्रभुदेव अल्लम के जीवन-चरित को "प्रभुलिंगलीला" के नाम से भामिनी षट्पदी में लिखा है। कवि चरितकार कहते हैं कि यह कवि पंद्रहवीं सदी के पूर्वार्ध (14 0 के करीब) में रहा। कहा जाता है कि यह प्रौढ देवराय (ई० सन् 1419—1446) के समय के एक सौ एक विरक्तों में एक था, इससे उनके समय का यह निर्देश है। यह विरक्त थे, इसीलिए उन्होंने अपने काव्यों में कहीं अपने माता-पिता के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है। किसी अदृश्य कवि, सिद्ध नंजेश आदि कवियों के कथन के अनुसार यह कहना पड़ता है कि यही कवि "प्रभुलिंग लीला" के कर्ता हैं। कवि स्वयं अपने विषय में मौन है तो भी अन्य कवियों से इनके बारे में कुछ बातें मालूम पड़ती हैं। "कुमारव्यास के नाम से विख्यात गदग के नारणप्पा चामरस की बहन के पति थे; गदग के राजा से आज्ञप्त होकर साले-बहनोई ने मिलकर महाभारत की रचना की; नारणप्पा के आदि पंचक से चामरस का युद्ध पंचक अधिक सारवंत है—यों समझकर नारणप्पा दुखी हुए और इसलिए नारणप्पा की पत्नी ने अपने भाई के काव्य को जला दिया; इस कारण चामरस विरक्त होकर वीरशैव दीक्षा लेकर हंपी में रहने लगे। इस अवधि में नारणप्पा का काव्य सम्पूर्ण हुआ और वह राज मान्य भी हुआ, फलस्वरूप नारणप्पा का कनकाभिषेक किया गया; इसे जक्कणार्य आदि विरक्तों ने प्रतिवाद किया और ग्यारह दिनों में एक हजार एक सौ ग्यारह पद्योंवाला "प्रभुलिंग लीला" चामरस से लिखवाकर उसे राजमान्य बनवाकर गौरवान्वित किया।"—यह उदंत अन्य कवियों के कथन से विदित होता है। एक कवि से दूसरा कवि बड़ा है—ऐसा बतानेवाली इस जैसी दंतकथा पर आधारित होकर किसी के सम्बन्ध में कुछ कहना सुरुचिपूर्ण बात नहीं होगी। दोनों कवियों की शैली में दिखनेवाली समानता के कारण ऐसे कल्पना के लिए अवकाश हो सकता है इतने मात्र से किसी को बड़ा किसी को छोटा कहना योग्य बात नहीं होगी।

चामरस में कुमार व्यास के समान ऊँचा व्यक्तित्व न होने पर भी वह बड़ा कवि है—इसमें संदेह नहीं। इनके काव्य का अनुवाद तेलुगु-तामिल में ही नहीं, मराठी और संस्कृत में भी हुआ है—इससे हम समझ सकते हैं इनकी काव्य-शक्ति कितनी ऊँची थी और यह कितने जनप्रिय थे। तेलुगु में दो कवियों में—पिडुपत्ति सोमनाथ नामक कवि ने द्विपदी छन्द में और पिडुपर्ति के बसव नामक कवि ने चंपू काव्य बंध में—इसका भाषांतर किया है। तिरुवण्णा मलाई के शिवप्रकाश नामक कवि ने इसका तमिल में अनुवाद किया है। पंडितों का कथन है कि पिडुपर्ती सोमनाथ कवि ने ही इसका संस्कृत में भी अनुवाद किया है। ऐसा मालूम होता है कि ब्रह्मदास नामक कवि ने "लीला विश्वंभर" के नाम से इसका मराठी में अनुवाद किया है।

इन विविध अनुवादों में तमिल का अनुवाद श्रेष्ठ है—ऐसा श्री एम. आर. श्रीनिवास मूर्ति ने अपते "प्रभुलिंग लीला संग्रह" की भूमिका में उदाहरणों के साथ समझाया है। इनके तुलनात्मक अध्ययन की बात को रहने दें तो भी यह बात विशेष आनन्द-दायक है कि कन्नड काव्य का चार भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

दिव्यज्ञानी प्रभुदेव अल्लम के जीवन चरित को काव्य के रूप में प्रस्तुत करने वालों में महाकवि हरिहर ही सर्वप्रथम व्यक्ति है। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि हरिहर के काव्य से अधिक लोकप्रिय इस चामरस का ही है। इसका कारण यह है कि इन दोनों की दृष्टि-कथा नायक के चरित्र को चित्रित करने में—में भिन्नता है। हरिहर ने खुद की देखी सुनी बातों के आधार पर प्रभुदेव के चरित को चित्रित किया है। प्रभुदेव के व्यक्तित्व को आदर्श का ओप देकर उनके चरित्र को चमकाया है। हरिहर का प्रभुदेव शिवजी के परिवार के गणों के गणमुख्यों में एक निर्माय नामक गणाधीश है। एक बार यह निर्माय सुरसतियों में से एक पर मोहित हो गया; इसे शिवजी ने समझा और उन पर दया आयी तो उन्होंने कहा—तुम दोनों भूलोक में जाओ, वहाँ अपनी इच्छा संपूर्ण कर आओ। शिवजी की आज्ञा के अनुसार। निर्माय प्रभुदेव होकर और सुरसति कामलता होकर बोळ्ळिगांवे नामक स्थान में जन्मे। प्राप्त वयस्क होने पर दोनों पति-पत्नी होकर सुख से जीवन बिताने लगे। इस तरह सुख-भोग भोगते हुए कुछ समय व्यतीत हुआ। इसके बाद कामलता ज्वर पीड़ित हुई। इसी में वह मर भी गयी। पत्नी विरह दुःख से वह विरक्त हुआ।—इस कथा में परमज्ञानी प्रभुदेव अल्लम मानव सहज दुर्बलता का शिकार बना है—ऐसा निरूपित है। संभवतः इस महाज्ञानी को इस तरह दुर्बलता का शिकार बनना मताभिमानियों में कुछ लोगों को सह्य नहीं हुआ—ऐसा प्रतीत होता है। चामरस ने ऐसे लोगों का प्रतिनिधि बनकर अपना काव्य लिखने का कार्य आरंभ किया—ऐसा मालूम होता है। इसीलिए इनके काव्य में कामलता का प्रसंग ही नहीं है। इनका (चामरस का) काव्य-स्वरूप क्या है, देखें—

चामरस का प्रभुदेव शिव-शाप ग्रस्त होकर भूलोक में अवतरित गणाधीश नहीं है। वह साक्षात् परशिव का ही प्रतिरूप है। परशिव शिवानी से इनके बारे में बताते हैं—"मानव शरीर धारण करके अपनी साधना के द्वारा नामरूप क्रियाओं को जीत-कर नित्य सुख का भागी जो बन सके—ऐसे साधना-मार्ग का उपदेश दे सकने वाले गुरु यदि कोई है तो वह प्रभुदेव अकेले ही है। दूसरा कोई इनकी बराबरी नहीं कर सकता।"—शिवजी की इस बात को सुनकर शिवानी ने इसका प्रतिरोध किया और प्रतिज्ञा की कि मैं इसे अपनी माया का शिकार बनाऊँगी। इस कार्य को साधने के लिए शिवानी ने अपनी तामस-कला को भूलोक में भेज दिया। वह तामस-कला मूर्त रूप धारण करके बनवसे के राजा ममकार और रानी मोहिनी की पुत्री बनकर पैदा हुई। उसका रूप-सौंदर्य देव-दानव-मानव सबके लिए आकर्षक था। शिवानी की वह तामस-कला माया का भूलोक में असदृश था। उसके जंमते ही भूलोक में क्या-क्या परिवर्तन हो गये—इसे कवि इस तरह बताते हैं—

"इत्तलितीमायॆ हुट्टिद। उत्तलखिळ बुध व्रजंगळ
चित्तगळु पल्लटिसि आशापाश बॆंगळिसि।

मुंत्तु नॆरॆतिह् जीव जाळरि । गॆत्ति कामग्रह् विकारतॆं
मुत्ति मुरुटि सुतिदुं देनॆन्दॆम्दॆं नच्चरिय ॥
ऊरतॊरॆदडबियॊळु गंगा । तीरदॊळु गिरिगह्वरंगळ
घोरतार गुहॆगळॊळु जल पंचाग्नि मध्यदॊळु ।
धीरमुनिगळु दिट्टसिद्धरु । दार योगीश्वररु भयदलि
भोरनॆं दॆं गुंदिदरु मायॆय जनन कालदालि ॥
बॆत्तबिदिरिडि दिदं तरुलतॆं । हुत्त बॆळॆद समाधिवंतर
चित्त संचलवागि नॆन हिन नेम नॆलॆगॆडल् ।"—अर्थात् "इधर माया के जन्मते ही बड़े-बड़े विद्वानों के चित्त चंचल हो गये, इन सभी में—बूढ़ों तक के दिल हिल गये । कामविकार सभी के मनों में उत्पन्न होकर सभी के चित्त चंचल हो गये । यहाँ तक कि पहाड़ों और उनकी गुफाओं में रहने वाले साधक, साधु, संत, तपस्वी, सिद्ध सभी में एक वासना जागृत होकर सभी में कामविकार उत्पन्न हो गया । सब के नेम नियम आदि भंग हो गया ।"—इस तरह की स्थिति पैदा हो गयी । सभी लोग चिंताक्रांत हुए । इस स्थिति में ऋषि दुर्वासा इनके पास आये । माया के जन्मने का वृत्तांत बताया; अल्लम प्रभु के नाम स्मरण मात्र से सब तरह के भय का निवारण हो जाएगा—ऐसा उपदेश दिया । ऋषि दुर्वासा के इस उपदेश के अनुसार सभी लोग प्रभुदेव अल्लम का नाम स्मरण करके निर्भय हो गये ।

माया अपनी बाल-लीलाओं से सबको आनन्द देती बढ़ी; उसके चलन-वलन बहुत ही मोहक एवं आकर्षक थे; कोमल सी मधुर-ध्वनि थी उसकी । इस तरह वह बच्ची सबकी प्यारी होकर बढ़ी और यौवन की देहरी पर आ लगी । अब ममकार राजा को बेटी के विवाह की चिन्ता लगी । उनके गुरु अहंकाराचार्य ने कहा पर शिव ही उस कन्या (माया) का पति है, उनको (शिवजी को) संतुष्ट करना होगा– यह कहकर माया को अहंकाराचार्य ने शिवजी को संतुष्ट करने का मंत्रोपदेश दिया । माया तब से प्रतिदिन मधुकेश्वर मंदिर में जाकर शिवजी की पूजा करने में व्यस्त रहने लगी । वहाँ एक दिन प्रभुदेव अल्लम का दर्शन हुआ । वहाँ प्रभुदेव दिव्य सुन्दर मूर्ति बनकर मृदंग बजाने में तल्लीन रहा । उनका वह मृदंग वादन सबको मोहित करने वाला था । इसे सुनकर माया प्रभुदेव को देखने के लिए उनके पास गयी । प्रभुदेव के दर्शन होते ही पुष्प "चापविद्ध होकर तड़पने लगी । माया की सखियाँ बड़ी चतुरता के साथ किसी तरह से प्रभुदेव अल्लम को राजमहल में ले गयी । अब अल्लम राजमहल में रहने लगे । परन्तु माया जो सुख चाहती थी वह उसे नहीं मिला । बेचारी प्रभुदेव अल्लम के बारे में क्या जानेगी ? क्या समझ सकेगी ? जब अमृत बरस रहा था तब उसका पान न करके, क्षुधार्त जैसे पेट भरने के लिए परिश्रम करता है, वैसी दशा में माया तड़पती ही रही । प्रभु नित्यानन्द का अनुग्रह करने के लिए तैयार है तो उसे छोड़कर क्षणिक वासना तृप्ति के लिए तड़पने वाली माया को क्या कहें ? माया की सखियों ने दोनों को मिलाने का बहुत प्रयत्न किया । मगर—वह क्या ? यह प्रभुदेव अल्लम की रीति ही अलग है । वर्षा से कहीं हवा भीग सकती है ? दावाग्नि कहीं हवा करने से बुझ सकती है ? यह प्रभुदेव तो आकाश की तरह व्याप्त और निराकार एवं निर्विकार है; ऐसे को माया में फँसाने से कहीं फंस सकते हैं ? यह है

अल्लम प्रभु की स्थिति। राजकुमारी प्रभुदेव के विरह से तप रही है—यह बात सारे नगर में फैली। सकला नामक एक दूसरी सखी ने यह बात अल्लम से कही। उन्हें बताया कि "राजकुमारी तुम्हारी विरह से ऐसे तप रही है जैसे पानी में गिरा चूना तप तपकर उबलता है। कामज्वर ग्रस्त राजकुमारी की दशा दयनीय है।"—इस बीच में इधर विरहमग्न राजकुमारी माया को (पार्वती) शिवानी ने कर्तव्य-की प्रेरणा देने के लिए विमला नामक सखी को भेजा। इस विमला से माया में विवेक जगा। परन्तु प्रभुदेव उसे स्वरूप में दर्शन देना अनुचित समझकर मृदंग को वहीं फेंककर अदृश्य हो गये। माया अब किंकर्तव्य विमूढ़ हो गयी। विमला ने उसे समझाया। कहा कि अल्लम कहीं भी हो चाहे सातों लोकों में कहीं भी लिये हों उन्हें ढूंढ निकालेंगे। अब दोनों सखियों के साथ अल्लम की खोज में सब तरह के कष्टों को झेलती हुई जंगलों में फिरने लगीं। इस माया को देखते ही जंगलों में आश्रम बनाकर तपस्या करने वाले ऋषि-मुनि भयभीत हिरनों की तरह यत्रतत्र भागने लगे।

माया के संकट और ऋषियों की दुरवस्था—दोनों को देखकर प्रभुदेव अल्लम ने बड़ी दया से ऋषियों को ऋषि रूप में दर्शन देकर उन्हें समझा-बुझाकर उनके भय को दूर किया; और माया को अपने पूर्व रूप में (पहले जैसा देखा) ही दर्शन दिया। उन्हें देखते ही इन स्त्रियों की भूख, प्यास, थकावट सब मिट गयी। माया ने उनकी (प्रभुदेव की) बरताव की कड़ी टीका की और अपने प्रताप की बड़ाई भी। उसने (माया ने) कहा—"मैं कोई साधारण स्त्री नहीं, मैंने हरिहर ब्रह्मादि देवाधि देवों तक अपने जाल में फँसाया है। इन सभी को अपने वशवर्ती बना चुकी हूँ। इतना ही नहीं तरह तरह की तपस्या करने वाले ऋषि-मुनि-योगी, साधक-सिद्ध आदि अनेक प्रकार के लोगों को अपने जाल में फँसाकर पथभ्रष्ट कर चुकी हूँ। मैं कोई साधारण व्यक्ति नहीं हूँ।"—माया की इस तरह की अहंकारोक्ति को सुनकर प्रभु अल्लम ने उससे पूछा—"अरी बुद्धिहीना! तुमको यों खेल खेलाने वाले है कौन? इस बात को समझे बगैर इस तरह से गर्व के साथ बोल रही हो?"—माया की उस अवस्था में यह विचार मंथन कैसे संभव हो सकता है? उसे इस पर विचार करना आवश्यक नहीं मालूम पड़ा। खाली बातों से उसका मनोरथ सिद्ध होने वाला तो नहीं। इसलिए वह प्रार्थना करती है—"अपने इस धूर्त विचार को छोड़कर मुझ पर दया करो।" वह अपनी स्थिति को हृदय विदारक ढंग से उन्हें (अल्लम को) समझाती है—"मेरी बात रह गयी; वादा किया वचन भंग हो गया; मेरी इस स्थिति को देख कैलासवासी मुझ पर हँसेंगे। मैं घायल हूँ; घायल के घाव को धोकर मरहम'पट्टी करना छोड़कर उस घाव को सुई से कुरेद कर अधिक दर्द पैदा कर दुखी मत बनाओ।"—माया की इस दुःस्थिति का कारण अल्लम कैसे हो सकते हैं?—वह (अल्लम) कहते हैं—

"तरळॆ तन्नय हॊन्नु सल्लदॆ। तिरुगि बंदडॆ अक्कसालॆय
दुरुळतनदलि बय्यहुदे? नीनु मतिगॆट्टु।
हसनर्चिसुवंग भेदां। तरवनरियदॆ सटॆय भक्तिय
भरदलेतकॆ फलव बयसुवॆ मायॆ केळॆन्द॥"—भाव यह यह है—"अरी अबोध अज्ञानी! आपका सोना खोटा है—इसे न समझकर लौटाये हुए सोने को देख सुनार को गाली देने से क्या प्रयोजन है? तुम बुद्धिहीन हो, भगवान् शिवजी को उनके

शरीर भेद को जाने समझे बगैर झूठी भक्ति पर भरोसा करके फल की वांछा करो तो कैसे वह वांछित फल मिलेगा ?"

अब इन दोनों को मिलाने का संधान करने वाली विमला प्रभुदेव अल्लम की प्रशंसा करती हुई कहने लगती है—

"शरणजन रक्षामणियें किं i कर चकोर सुधाकरनें भा
सुर दयांभोनिधियें नीनीस्त्रीय तनु मनव ।
ओरॅदुनोटददडल्लि भाविसें । हुरुळु बळिकेनुंटु ? निन्नय
करुणवाकॅय हरणवॅन्दळु विमलॅं विनयदलि ।।"— भाव यह है कि—"हे प्रभु ! तुम शरणरक्षक हो; दास जनों के लिए आनन्द देने वाले भक्त रक्षक हो; भक्तों के अज्ञान तिमिर के लिए भास्कर हो; दया-सागर हो । यदि तुम इस स्त्री के मन को खराद पर चढ़ाकर देखो तो उसमें अपने आपको ही पाओगे i तुम्हारी करुणा उसके प्राण हैं । इसलिए उस पर दया करो प्रभु !"—विमला की इस मिन्नत को प्रभुदेव अल्लम ने स्वीकार नहीं किया । उन्होंने कहा—"पानी में जामुन दें तो वह दही बनेगा ? जिसकी बुद्धि मारी गयी है और जो अज्ञान के अंधकार में पड़ी है उसे समझाने से भी क्या प्रयोजन ?" इस बात को सुनकर विमला ने कहा—"नीच धातु लोहे का स्पर्श मणि के साथ संपर्क होने पर क्या वह लोहा सोना बन नहीं जाएगा ?"— तो प्रभुदेव बोले—"यह लोहा नहीं जो स्पर्श मणि के स्पर्श से सोना हो जाय; यह तो ठीकरा है ।"—अल्लम ने माया के बारे में स्पष्ट बताया—"सभी समुद्रों का सारा खारा पानी अमृत बन सकता है; मेरु पर्वत अंकुर देकर सारे भूमण्डल पर व्याप सकता है; समस्त वृक्ष चाहे कल्पवृक्ष बन सकते हैं; परन्तु इस माया को परमतत्त्व का ज्ञान नहीं होगा ।"

अब क्या करें ? उसका आना निरर्थक जानकर यह कैलाश को लौट चली ।

सुज्ञानी—निरहंकार से जन्मा अल्लम प्रभु ने ममकार—मोहिनी से जन्मी माया को हरा दिया । ऐसा होना तो सहज ही है । जहाँ ज्ञान हो वहाँ निरहंकार का होना तो स्वाभाविक है । जहाँ ज्ञान और निरहंकार हो वहाँ माया के लिए स्थान नहीं । इसलिए सुज्ञान और निरहंकारों के फल-स्वरूप अल्लम अथवा निर्माय का उदय हुआ । ममकार और मोह से माया का जन्म होना तो स्वाभाविक है । इनके गुरु हैं अहंकार । ये चारों (ममकार-मोह-माया-अहंकार) जहाँ एक साथ हो तो वह "निर्माय" स्थिति तक कैसे पहुँचे ? उस स्थिति को पहुँचना हो तो सुमति और निर्मल मन की आवश्यकता है । इसी तत्व के अनुसार चामरस ने महादेविअक्का के चरित्र को गढ़कर चित्रित किया है । वह तो शिवानी की सात्विक-कला है । अपनी तामस-कला से शिवानी ने प्रभुदेव को जीत न सकने के कारण दुखी होरर शिवजी के उपदेश के अनुसार अपनी सात्विक-कला को भूलोक में भेजा । वह उडतडि नामक स्थान के निवासी निर्मल-सुमति की पुत्री बनकर महादेवी अक्का के नाम से जन्मी । शिवभक्ति ही शरीर धारण कर महादेवी अक्का के रूप में उतर आयी थी । बाल्यवय के बाद यह कन्या यौवन को प्राप्त कर परम सुन्दरी बनी । इस पर राजा कौशिक मोहित हुआ । परन्तु माता-पिता ने उसे राजवंशीय को देने पर नहीं हुए । फिर भी राजदंड के भय से डरकर माता-पिता ने कहा—यदि कन्या अपनी स्वीकृति दे तो कोई आपत्ति नहीं ।

जब माँ-बाप ने बेटी से पूछा तो वह अपने आप सोचने लगी—

"परिमलब नारिक्किदरुक । पूरकं, कोगिलॅगारु सॉगसिन स्वरब

कलिसि दरंचॅगारडियिडलु कलिसिदरु ?"—भाव यह कि—"कर्पूर में सुगंधि किसने भरी ? कोयल को मधुर गान किसने सिखाया ? हंस को चलने की गति किसने बताई ?"—इसी तरह महादेवि अक्का को भी किसी के उपदेश की आवश्यकता नहीं थी। स्वयं उन्होंने एक युक्ति सोची। उन्होंने राजा को बुलवा भेजा और कहा—"हे राजन् ! यदि तुम शिवभक्त हो जाओ तो मैं तुमसे विवाह करूँगी। यदि तुम भवि (लौकिक सुखापेक्षी) हो तो विवाह करना नहीं चाहूँगी।" राजा ने कहा—"हमें शिवभक्ति करने के लिए समय नहीं मिलेगा।" महादेव ने कहा—"ऐसा न होगा तो हम दोनों का विवाह भी संभव नहीं होगा।" राजा निराश होकर लौट पड़ा। इधर अक्क महादेवी विरक्त हो गयी। हथेली में लिंग (शिवजी) लिये भस्म धारण कर खुले बालों से अपने नग्न-शरीर को ढंगकर रह, ग्रस्त चन्द्रमा की तरह (तनु चंद्र और उस पर ढँके हुए केशपाश राहु) सीधे जंगल की तरफ चल निकली।—ऐसा लग रहा था मानो राहु-ग्रस्त चंद्रमा ही जंगल में जा रहा हो।" वहाँ जंगल में तालाब-पोखरों के पास, निर्जन प्रदेशों में गिरि और कंदराओं में, लता गुल्मों में जहाँ तहाँ, सर्वत्र गुरु की खोज करती हुई निकली।

महादेवी अक्का के वृत्तांत कथन में भी चामरस ने हरिहर से भिन्न कथा सरणि का उद्भाव किया है। हरिहर का कथन है "महादेवि अक्का का उडुतडि के राजा कौशिक से विवाह हुआ था, और कौशिक ने जो वचन दिया था उसका भंग करने पर महादेवि अक्का ने उसका निवारण करके दिगंबरा होकर निकल गयी।"—परन्तु चामरस ने विवाह की बात ही नहीं की। परम भक्तिन अक्का एक परसमयी से विवाह कर सकती है—इसकी कल्पना भी चामरस के लिए सह्य नहीं थी।

प्रभुदेव अल्लम परम कारुण्य मूर्ति बनकर भ्रमण करते हुए एक गोग्गय्य नामक भक्त का उद्धार करके भाई के मरने से दुखी मुक्तायक्का को धर्मोपदेश देकर, सॉन्नलिगॅ के निवासी सिद्धराम के पास आता है। कर्मयोगी का यह कार्यरंग प्रभुदेव को अच्छा नहीं लग रहा है। इसलिए —

"नूल संकलॅगडिदु कनकदा कोळवनु कालिगॅ कीलिप

काळुमतियवनंतॅ सति सुतकूट भयवॅन्दु

बळिकॅयनातॅगळॅदु मरळियु। वोळुमुंडॅय कीर्तिगोसुग

कोळुहोदनॅ रामनॅनुवल्लमनु वॅरगादु।"—भावार्थ यह कि—"साधारण रस्सी के बंधन को काट फेंकना छोड़कर सोने के सांकल में पैर फँसाकर सति-सुत-बन्धु-बांधव-इष्टमित्र और समाज से डरकर, अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाकर कीर्ति काम बनकर यह सिद्धराम अपने को क्यों बिगाड़ रहा है। यह सोचकर अल्लम चकित हो गया।"—इसी कारण से प्रभुदेव उसका (सिद्धराम का) उद्धार करने के इरादे से उनके शिष्यों के सामने ही उसे कटुवचन कहे और बुला भेजा। अपने गुरु को दुर्वचन कहने वाले इस व्यक्ति (अल्लम) पर लोगों को गुस्सा आया और वे उस पर पत्थर बरसाने लगे। इतने पत्थर बरसाये कि उन पत्थरों की राशि में प्रभुदेव गड़ गया। इतना होने पर भी प्रभुदेव का कुछ नहीं बिगड़ा, उनका बाल भी बाँका नहीं

हुआ। वह अन्दर ही अन्दर हँस रहे थे। यह वृत्तांत सिद्धराम को मालूम हुआ। वह क्रोधित हो उठा। क्रोध में गरजने लगा—"किसने हमारी निंदा की? चाहे वह कोई हो मैं उसे जड़ समेत उखाड़ फेंकूंगा। तब भी अल्लम ने उसे कटु वचन से डाँट दिया। कहा इस यतित्व को जला डालो। सिद्धराम अपने संतुलन को खो बैठे। उनका माथा ठनका, वह गरज गरज कर चिल्लाते हुए क्रोधाग्नि से सबको जलाने लगा। प्रभुदेव अल्लम ने हलाहाल को पीने वाले शिवजी की तरह इस अग्नि से सबको बचाया। इसे देखकर सिद्धराम को ज्ञानोदय हुआ। उस (सिद्धराम) ने प्रभुदेव के चरणों में गिरकर उनसे प्रार्थना की—"हे प्रभो! तुम्हारी वस्तुस्थिति को न पहचान कर मैंने जो अपराध किया उसे क्षमा कर मेरी रक्षा करो।" अल्लम ने उसे, जैसे पिता पुत्र को समझा-बुजाकर शांत करता है, वैसे ही समझा-बुझाकर शांत किया और उसे ज्ञानोपदेश देकर अपने साथ उसे "कल्याण" ले गये जहाँ बसवण्णा थे। उन्होंने अल्लम प्रभु की भक्ति से स्तुति की और प्रार्थना करने लगे—"हे प्रभो! आपने मेरे मन के आज्ञानांधकार को दूर किया, अब ज्ञान-सूर्य से मेरे अंतर को प्रकाशित करने की कृपा करें।" प्रभुदेव वल्लम ने बहुत खुश होकर कहा—

"हालु हयनुळ्ळल्लि हेळदें। केळदे हब्बवनु सविवुदु
गाळिबी सुव दिनदले तूरुवुदु हॉट्टुगळ।
कालु कै कण्णुगळु तनुविह्। कालदलि कालन निवारिसि
मेलुगतियरसुवनॆं जाणनु बसनकॆळॆन्द ॥"—

तात्पर्य यह है कि—"जहाँ दूध-दही की नदी बहती हो और समृद्धि-संपन्नता हो वहाँ किसी से पूछ-ताछकर त्यौहार मनाने की आवश्तकता नहीं, जब चाहे जैसा चाहे त्योहार मनाया जा सकता है। हवा जिस दिन वहेगी सारा थोथा-थोथा उड़ जाएगा। हाथ-पैर चलते वक्त मृत्यु का निवारण कर उत्तम गति (मुक्ति) प्राप्त करने के लिए आवश्यक सामान जुटाने वाला ही बुद्धिमान् है।" याने ज्ञान का भंडार पड़ा है, इस भंडार में आने के बाद ज्ञानदान किसी से माँगना क्यों? जितना चाहे भंडार से लो। ज्ञान की हवा बहेगी तो सारा अज्ञान (थोथा) अपने आप उड़ जाएगा। हाथ पैर चलाते कुछ ऐसा करो जिससे मोक्ष का साधन जुट सके।"

यों कहकर इष्टलिंग मंत्रोपदेश देकर उसका उद्धार किया। शिवानुभव मंडप में जब प्रभुदेव उपदेश दे रहे थे तब महादेवि अक्का वहाँ आयी, गुरु की खोज में। अल्लम ने उनकी परीक्षा ली और उनके ज्ञान के स्तर को समझकर उन्हें सायुज्ज (लिंगैक्य) का उपदेश देकर श्रीगिरि के कदलीवन में भेज दिया।

प्रभुदेव अल्लम ने फिर से देश-भ्रमण करते हुए श्रीपर्वत पर आया। वहाँ गोरक्ष (गोरखनाथ) नामक एक सिद्ध थे। उन्होंने अपनी साधना से अपने शरीर को वज्र की तरह मजबूत बना लिया था। इस वज्रदेही सिद्ध गोरक्षा को उनकी इस साधना (अर्थात् शरीर को फौलाद की तरह मजबूत बनाने की साधना) की निरर्थकता समझाकर उन्हें वीरशैव का उपदेश दिया। वहाँ से आगे बढ़े और जंगल में आखेट-रत एककिरात को धर्मोपदेश देकर, देशाटन करते हुए कल्याण को लौट आये। तब तक उनके लिए "शून्य सिंहासन" तैयार था। प्रभुदेव ने बसवण्णा की परीक्षा करने के इरादे से खून-पींब से भरे घायल जैसे विकृत देही बनकर दिखाई पड़े। बसवण्णा की

ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि थी कि वह जमीन के अंदर गड़े खजाने को ऊपर ऊपर से खाली जमीन को ही देखकर समझ लेते कि कहाँ और कितनी गहराई में खजाना है। इस खून पीब से भरे घायल को देखते ही पहचान लिया कि वह स्वयं प्रभुदेव हैं। प्रभुदेव को देखकर बसवण्णा अपरिमित आनन्द में डूबकर पुलकित हो आनन्दाश्रुबहाने लगे। और इस आनन्दातिरेक के कारण वह अपने को भूल गये। इसके पश्चात् उन्हे शून्य सिंहासन के पास ले जाकर उस पर बिठाया। इतना होते-होते भोजन का समय आया। रोज की तरह सारे जंगम बसवण्णा के घर भोजन करने आये। बसवण्णा प्रभुदेव में इतने लीन थे कि वे इस तरफ ध्यान ही न दे सके। इधर भोजन के लिए आये जंगम क्रोधित होकर चले गये। इस बात को जानकर बसवण्णा बहुत दुःखी हुए। प्रभुदेव अल्लम को यह समाचार मालूम हुआ। तब प्रभुदेव ने यह कहकर कि मुझ अकेले को को खिलाओ तो एक लाख छब्बे हजार जंगमों को तृप्त करा दूँ— खाने बैठे। इतने सारे जंगमों के लिए तैयार भोजन खतम हो गया। फिर भी अल्लम की भूख नहीं मिटी। भंडार में भरा सारा अनाज चुक गया, भक्तों के घरों में कितना भोजन बना था वह भी खतम हो गया। आसमान ही सर्वभक्षी होकर मुंह बाएँ हुए है और जितना भी डालते जाओ वह भर नहीं रहा है तो क्या करें? इस स्थिति को देखकर बसवण्णा छटपटा गये। शाम के अन्दर अपने को ही खिला देने की बात सोच रहे थे कि इतने में अल्लम ने कहा —"मैं भूखा नहीं आया हूँ; धन की लालसा लेकर भी नहीं आया; मनोकामना को पूर्ण करने की आशा लेकर भी नहीं आया; तुमने जो दासोह (भिक्षा) दिया उसे खाने आया हूँ, केवल खाने की ही आशा से नहीं—आदि आदि।" यों कहकर अल्लम ने बसवण्णा को समझाया। ब्रह्माण्ड को ही अपने गर्भ में धारण करने वाले अल्लम ने भोजन किया तो समस्त जंगम तृप्त हो गये, जैसे गर्भिणी के भोजन करने पर गर्भस्थ शिशु भी तृप्त हो जाता है। अब बसवण्णा को इस बात का ज्ञान हुआ कि "लिंग तृप्ति ही जंगम तृप्ति है और जंगम तृप्ति ही जगत् की तृप्ति है। वह और अन्य शरण भी इस उपदेश से धन्य हुए।

इस कथा को भी शिवजी के मुंह से शिवानी ने सुना तो तुम्हें मालूम हुआ कि यह प्रभुदेव महामहिम हैं। यह सत्य स्वरूपी अल्लम सबके हृदयों में सर्वदा निवास करते हैं।

चामरस ने काव्य-धर्म और और धर्म दोनों को किस तरह से संतुलित कर समन्वित किया है—इस बात को अब हम समझ सकते हैं। कथा सीधी है और अपने लक्ष्य तक पहुँची है। अन्य वीरशैव पुराणकारों की तरह चामरस ने अपने काव्य को शरण-कथाकोश नहीं बनाया है। अनावश्यक शरणों की कथाएँ अथवा भस्म-रुद्राक्ष-आदि की महिमाएँ— ये सब कथा की गति में बाधक नहीं बने हैं। अष्टादश वर्णनों को अपने काव्य में लाने का प्रयत्न ही कवि ने नहीं किया है। जहाँ आवश्यक है वहाँ हित-मित और सीमित वर्णन है। यत्र-तत्र वेदान्त का निरूपण हुआ है—सो भी संभाषण के रूप में हुआ है; कहीं-कहीं इष्टलिंग-प्राण लिंग आदि का भी शुष्क वेदांत की तरह न होकर कथोपकथ के रूप में कांता-समिनत बना है। यहाँ चित्रित चरित्र (पात्र) भी सजीव है। अल्लम और माया आदि के पात्र लौकिक जीवन से दूर नहीं तो भी इनकी अलौकिकता को हम भूल नहीं सकते। चामरस ने सन्निवेश रचना में भी अपनी

कुशलता का अच्छा परिचय दिया है। मायादेवी का प्रणय-प्रसंग, उसका अल्लम मिलने का सन्निवेश, बसवण्णा के यहाँ का भिक्षा-सन्निवेश—आदि आदि प्रसंग अल्लम प्रभु के व्यक्तित्व को बहुत ऊँचा बनाने के साथ साथ बहुत रस भरे हैं। शांतमूर्ति अल्लम के जीवन चरित में काव्योचित अन्यान्य रसों के समावेश के लिए गुंजायश ही नहीं है। तो भी कवि ने इसे "शुष्कोवृक्षस्तिष्ठत्यग्रे" के बदले "नीरस तरुरिह पुरतोभाति" बनाया है। शुष्क वेदांत को सरस बनाकर दार्शनिक और साहित्यिक दोनों तरह के पाठकों के लिए दोनों दृष्टियों से आकर्षक बनाया है। यहाँ चामरस ने जो उपमान दिये हैं वे भी बड़े मनोहर है, कुमारव्यास का स्मरण दिलाते हैं। कविता सरल होने पर भी शिथिल नहीं। भामिनी षट्पदी छन्द में यह संपूर्ण काव्यधारा गंभीर नदी की तरह बह चली है। इतते सब श्रेष्ठ काव्यगण होने पर भी कवि का लक्ष्य केवल कथा निरूपण मात्र नहीं; "तन-मन-धन सर्वस्व त्याग करके पराशिव में ऐक्य पाने की स्थिति में नित्य-सत्य का ज्ञान पाने लायक व्यक्ति इसे पढ़े; अल्प सुख से संतुष्ट न होकर इक्षु के अन्दर रहने वाले मधुर रस का आस्वादन करने वाले हाथी की तरह भक्ति के रस रहस्य का आस्वादन कर सकने की योग्यता रखने वाले ही इस "प्रभु-लिंग लीला को सुने।—यह कवि का मंतव्य है जिसे स्वयं कवि बताते हैं। इस कथा-नक में संक्षिप्त रूप से चित्रित तीन पारिवारिक चित्र मुक्ति-साधन के लक्षण का निरूपण करने वाले चित्र हैं। मुक्ति के साधक हैं। इसीलिए स्व० एम. आर. श्रीनिवास मूर्ति जी ने इस "प्रभुलिंग लीला" को कन्नड में लिखा हुआ "Pilgrims progress" —"मुक्तिमार्ग में चलने वाले यात्री की प्रगति" कहकर गौरवान्वित किया है।

मग्गॅय मयिदेव (1430)—कुमारव्यास युग के वीरशैव कवियों में कुछ ने "शतक साहित्य" का निर्माण करके धर्म और काव्य धर्म— दोनों को एक साथ साधा है। इनकी पंक्ति में अग्रगण्य मग्गॅय मायिदेव है। इनका जन्म स्थान मलप्रहारी तीर का "पुर" नामक क्षेत्र है। इस क्षेत्र के सोमेश्वर भगवान् इस कवि की वंश परंपरा के आराध्यदेव है। इन भक्तों की पीढ़ी में संगमेश्वर का जन्म हुआ जो मायिदेव के पिता थे। जिस वंश में मायिदेव का जन्म हुआ वह परंपरा और जिस वातावरण में पला पढ़ा वह—इन दोनों ने मिलकर मायिदेव को संतजीवी बनाया प्रतीत होता है। ये कन्नड और संस्कृत में महान् पंडित बने। इन दोनों भाषाओं में उन्होंने साहित्य का निर्माण किया है। वीरशैव सिद्धांत को अधिकृत रूप से प्रतिपादन करनेवाला इनका "अनुभव सूत्र या शिवानुभव सूत्र" नामक ग्रंथ संस्कृत में है। कन्नड में इन्होंने 'प्रभुनीति, एकोत्तर शतस्थल षट्पदी, षट्स्थल गद्य, शतकत्रय, मग्गॅय मायिदेव वचन.'—इन ग्रंथों की रचना की है।—ऐसा विदित होता है। परन्तु अब केवल इनका "शतकत्रय" मात्र उपलब्ध है।

वीरशैव कवियों ने इस मायिदेव को प्रभु-विभु-कहकर गौरवान्वित किया है। इसे देखने पर ऐसा लगता है कि वह धार्मिक संसार में बहुत ऊँचा स्थान इन्हें प्राप्त था। सिद्ध नंजेश ने अपने "गुरुराज चरित" में लिखा है कि—"मायिदेव कहते हैं कि लिंगवंत के लिए नरक नहीं है"; और "इस बात की घोषणा छायाहीन जयस्तंभ को विजयनगर में खड़ा करके की है।" शांतलिंग देशिक ने अपने "भैरवेश्वर कथासूत्र रत्नाकर" में, विरक्त तोंटदार्य ने अपने "पाल्कुरिके सोमनाथ पुराण" में भी इस बात

की ओर संकेत किया है। विरूपाक्ष पंडित ने अपने "चेंन्नबसव पुराण" में इन्हें "सकलागम पंडित" कहकर गौरवान्वित किया है। इससे हम अंदाज लगा सकते हैं कि यह प्रौढ देवराय के समय के वीरशैव शरणों में प्रमुख रहे।

मायिदेव के षट्स्थलात्मक शतक त्रय में क्रमशः "शिवा-धव शतक, शिवा वल्लभ शतक, ऐपुरीश्वर शतक"--ये तीन शतक हैं। "शिवाधव शतक" में एक सौ एक वृत्त और प्रत्येक वृत्त "शिवाधवा" से समाप्त होनेवाले, हैं। "शिववल्लभ शतक" में 103 वृत्त "शिवावल्लभ" समाप्त होनेवाले हैं। "ऐपुरीश्वर शतक" में 113 वृत्त "ऐपुरीश्वरा" से समाप्त होनेवाले हैं। ये क्रमशः ज्ञान, भक्ति, वैराग्य को प्रमुख रूप से प्रतिपादित करनेवाले हैं। उनका प्रतिपादन भी भाव भरा और हृदय स्पर्शी है। तत्त्व साक्षात् होने के बाद माया के लिए स्थान कहाँ? वह बताते हैं--"साक्षात्कार के पूर्व माया है; पश्चात् माया कहाँ? आरसी में देखने के पूर्व आरसी का भाव रहता है। आरसी में देखने के पश्चात् आरसी का ज्ञान रहता है। इसी तरह तत्त्वज्ञान के होने तक माया, बाद में माया कहाँ? ज्ञानी को माया का भाव कहाँ?—इस बात को कवि बहुत ही अच्छी तरह स्पष्ट रूप से समझाते हैं। दृष्टांत और उपमाओं के द्वारा गंभीर वेदांत तत्त्वों को हृदयग्राही बनानेवाली कवि की प्रतिभा अद्भुत है। इष्टलिंग धारण, पूजा, स्मरण आदि से जो सुखानुभव करता है वह उस संस्कार बल पर प्राणलिंग ज्ञानी भी बनने में शक्त होता है।—इस बात को कवि ने बहुत ही सुन्दर और आकर्षक ढंग दृष्टांत देकर मन में बैठाया है।

कवि भक्ति भरित आर्तता से भवबंध विमोचन के लिए भगवान् से प्रार्थना करता है—"हे भक्त कल्पवृक्ष! मैं अपने दुसह दुःख को किससे कहुँ? एक तुम्हें छोड़ कर किसे बताऊँ? हे! वरद, हे! अभयप्रद, मैं तेरे चरण कमलों में अत्यन्त आर्त होकर पड़ा हूँ। तुम ही रक्षा करो। तेरे चरणों की भक्ति जिसमें हो उसे सांसारिक दुख कैसे होगा? हे! देवाधिदेव! मेरी रक्षा करो।"—"हे प्रभु आर्त रक्षक भगवान्! मुझ पर अपना बच्चा समझकर अनुग्रह करो—कहो—बच्चा रोओ मत, जो सुख तुम चाहोगे उसे मैंने तुम्हें दे दिया है, डरो मत, चिंता मत करो, दुखी मत होओ। कहो—जब मैं हूँ तुम्हें किसका भय है, बेटा!" कहकर मुझे है भगवान् कृपा दृष्टि से देखो। —कवि की यह मनोदशा कितनी हृदय स्पर्शी है। सांसारिक दुख-संकट और इनके परिणामों को बताते समय कवि की वाणी कितना सजीव बन जाती है। इस कवि की आत्मानुभूति इनके "शिवस्तोत्र, शैवाचारनिष्ठा, शिव शरणों की सेवा" इत्यादि बातों का वर्णन में साकार हुई है। शरण (भगवान् शिव जी के चरणों में अटल भक्ति युक्त होकर सर्वत्र उस भगवान् शिव जी ही का दर्शन करनेवाला ईश्वर सेवक और साधक) "नाहं", "कोहं", "सोहं", "दासोहं"—यह जो कहते हैं, इनमें "दासोहं"-भाव के स्वरूप और स्थिति को अभिव्यक्त करने में उनकी वह गंभीर चिंतन शीलता, पांडित्य एवं ज्ञान—इन बातों का हमें बोध होता है। वीरशैव शतककर्ताओं में हरिहर कवि के बाद सर्वश्रेष्ठ कवि यही है।

मायिदेव की भाषा संस्कृत-भूयिष्ठ है, इतना ही इनका भाव जगत् बहुत ऊँचा है। इसीलिए तोंटदार्य ने इनके शतकत्रय की व्याख्या लिखी है।

कुमारव्यास युग के अन्य शतककारों में चंद्रकवि (1430) वीरभद्रकवि

(1530) ये दोनों सुप्रसिद्ध कन्नड कवि हैं; इसलिए इनकी "गुरुमूर्ति शंकर शतक" और "पंच शतक"— इन कृतियों के बारे में यथास्थान कहा जाता है। "सिरिनामधेय" नामक कवि जो ई० सन् 1550 के करीब रहे, उन्होंने "मल्लेश्वर शतक" लिखा है। इसमें एक सौ वृत्त हैं। प्रत्येक वृत्त "श्रीशैल मल्लेश्वर" अथवा "गिरिमल्लिकार्जुना" के अंकित से समाप्त होता है। इस कवि ने अपने को "वीरमाहेश्वर" कहा है। अपने इस शतक में ईश्वर स्तुति और वीरशैव सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। अष्टादश आवरणों की महिमा बतानेवाले इस ग्रंथ का एक दूसरा नाम भी है "अष्टावरणस्तव" जो अन्वर्थ है। इस सिरिनामधेय कवि के ईश्वर के प्रति कथित वचन तो ऐसे लगते हैं मानोहंपी के हरिहर के मुँह से ही निकले हुए वचन हो। चेन्नामाल्लिकार्जुन कवि सन् 1560 में रहे जिन्होंने "शिव महिम शतक" लिखा है। इसमें 113 वृत्त और 2 कंद पद्य हैं और इसमें उन्होंने शिव पारम्य का प्रतिपादन किया है। इस कवि ने अपने को "वैष्णववागद्व ति कर्मि-हृच्छल्यं" बताया है। इससे स्पष्ट है कि यह वैष्णव, अद्वैति, कर्मकांडियों का हृदयशूल है। इस तरह की मनोवृत्ति के कारण अपनी कृति में यत्र तत्र परमत की हँसी भी उड़ायी है। कवि की भाषा-शैली-सुंदर होने पर भी कल्पना की कमनीयता और भाव में भव्यता नहीं है।

ई० सन् 1620 के करीब एक शंकर देव नामक शतककार हुए जिन्होंने "शंकर शतक" लिखा है। "गुरु शंकरेश्वरा" के अंकित से अंत होनेवाले वृत्तों का एक काव्य है। अन्य शतककारों की तरह शंकर शतक भी वीरशैव वेदांत का प्रतिपादन करता है। इस शंकर शतक के अलावा उन्होंने भक्ति प्रधान कुछ और ग्रंथों का भी निर्माण किया है। वे ये हैं—शंकरदेव कंद, षऽक्षर र गळॆ, भक्ति बिन्न हद (विनय का) रगळॆ, वीरशैव रगळॆ, मैदुर रामन रगळॆ।— ये पाँचों छोटे-छोटे ग्रंथ हैं। इनकी कृतियों में "शंकर शतक" का साहित्य में एक प्रमुख स्थान है। उनका सवाल है कि समस्त चराचर जगत् में व्याप्त परशिव की पूजा करने के बाद अन्यान्य देवी—देवताओं की पूजा की क्या आवश्यकता है? वह कहते हैं वृक्षमूल में सींचने से समस्त शाखा प्रशाखाओं को इस सिंचन का फल मिल जाता है; ऐसी दशा में कोई शाखाओं को सींचे क्यों? उससे होता क्या है? अरिषड्वर्ग से होनेवाले आत्मघात का यह काव्यमय वर्णन देखिये, कवि की ही वाणी में यों है—

"कामदगाळि बीसि, नॆरॆ कोपदमोड मुसुंकि, लाभ लो
भामिष मिंचु संचरिसि, मोहद पॆंमळॆ पॊय्दु, मीरिना
ना मद्धारॆ कल्कॆरॆदु मार्सर मेघरवं तॊडर्दुद
य्यो मिगॆ जीव हंसिगॆर बिल्ल कणा गुरु शंकरेश्वरा।"

अर्थात्—"जीवरूपी हंसी को कहीं कोई आश्रय नहीं मिल रहा है; उस पर काम (आशा-लालसा आदि) रूपी हवा बहती है, उस पर क्रोध रूपी मेघों का आक्रमण होता है, लोभ-लालच बीच-बीच में बिजली की तरह चमक जाते हैं, मोह की मूसलधार वर्षा बरसती है, इस सबके अलावा कई तरह के मद-मात्सर्य आदि आक्रमण करते हैं; यह मत्सर रूपी मेघ गरजता है; इस तरह सभी ओर के आक्रमण के कारण यह जीव-हंसी निराश्रित होकर रक्षक के बिना अनाथ है; हे भगवान् बचाओ।" देखिये यह अरिषड्वर्ग का कैसा अच्छा काव्यमय वर्णन है। इन शतककारों में शांतवृषभेश

(1700) एक हुए हैं जिन्होंने 115 कंद पद्यों का "अनुभव शतक" नामक ग्रंथ लिखा है। इसमें वीरशैव मत का निरूपण हुआ है। धर्म अपना काव्य की दृष्टि से इनमें कोई वैशिष्ट्य दिखता नहीं।

इन शतककारों को यदि नक्षत्र माने तो भव्यंय मायिदेव इन ताराओं के बीच पूर्णचंद्र है।

गुरुबसव (1430)—ऐसा मालूम होता है कि यह कवि गुरुबसव विजयनगर के प्रौढ़देवराय के समय में था। इन्होंने सप्तकाव्य के नाम से प्रसिद्ध सात काव्य लिखे हैं। वे ये हैं— (1) शिवयोगांग भूषण, (2) सद्‌गुरु रहस्य, (3) कल्याणेश्वर, (4) स्वरूपामृत (5) वृषभगीता, (6) अवधूत गीता, और (7) मनोविजय काव्य। —इस कवि ने अपने मनोविजय काव्य के अन्त में जो गद्य लिखा है, उसमें इन्होंने अपने को "शिवयोगी जन सेवित चरणारविंद", "षट् स्थल ज्ञान प्रभापुंज रंजितांत-रंग", "वीरशैव मतस्थापनाचार्य"—कहा है। इससे ऐसा लगता है कि यह बहुत प्रसिद्ध वीरशैव गुरु रहे होंगे - ऐसा कवि-चरितकारों का भी अनुमान है। इनकी कृति "शिवयोगांग भूषण" को श्रुति, शास्त्र तथा आगमों का रहस्य तर्क संगतरीति से बतानेवाला कहा है। इस ग्रंथ में 278 पद्य हैं जो परिवर्धिनी षट्पदी में लिखे गये हैं। इसमें वर्णित वस्तु योगाभ्यासक्रम और योगासन इत्यादि हैं। "सद्‌गुरु रहस्य" 237 पद्यों का, जो भामिनी षट्पदी में हैं, एक ग्रंथ है। इसमें नित्य सत्य का सम्यक् बोध कराते हुए शील संपदा के महत्व को बताया है। "कल्याणेश्वर" परि-वर्धिनी षट्पदी में रचित 102 पद्यों का ग्रंथ है। संभवत: कल्याणेश्वर बसवण्णा को ध्यान में रखकर गुरु बसव कवि ने इस ग्रंथ का नामकरण किया होगा। इसमें "बसवण्णा की सहचरी नंदिनी के, अपने सेवक विचित्रक नामक गणेश्वर को ज्ञानोप-देश करने का वृत्तांत वर्णित है। गुरुबसव देशिक ने उसे अपने शिष्य को उपदेश दिया।" यही इस कृति का सार है। "स्वरूपामृत" नाम से ही स्पष्ट है कि यह आत्मा के स्वस्वरूपज्ञान का बोध करानेवाला ग्रंथ है। इसमें भामिनी षट्पदी के 77 पद्य हैं। "वृषभ गीत" बसवण्णा के स्तोत्र के रूप में वीरशैव वेदांत को प्रतिपादित करनेवाला एक सौ एक पद्यों का काव्य है जो भोग-षट्पदी में रचित है। "मनोविजय काव्य" कुसुम षट्पदी में रचित 355 पद्यों का काव्य है। इस काव्य की वस्तु, सुविवेक नामक एक ज्ञानी का वृत्तांत है जिसने दुनियाँ से थककर गुरु के अनुग्रह से आत्मज्ञान प्राप्त कर मुक्ति पायी। इस कवि की "अवधूत गीता" वैराग्य-बोधक एक सौ गेय-पद्यों का छोटा ग्रंथ है। इसमें कवि ने सांसारिक जीवी का बहुत ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

इस गुरुबसव कवि के सारे ग्रंथ गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में वीरशैव वेदांत के प्रतिपादन करनेवाले हैं। इनकी पद्य रचना सरल और ललित है। वेदांत को प्रति-पादन करनेवाले ग्रंथों में काव्य-गुणों की खोज करना संगत नहीं। षट्पदी छन्द के विविध प्रकारों का काव्य रचना में प्रयोग कर इस छन्द को काव्योपयोगी बनाने में कवि समर्थ है।

चन्द्रकवि—(1430) : कहा जाता है कि यह कवि अष्टभाषा प्रवीन थे। इन्होंने "विरूपाक्षास्थान", "गुरुमूर्ति शंकर शतक"—इन दो ग्रंथों की रचना की है।

गजवेंटिकार (हाथी का शिकार करनेवाला) प्रौढदेवराय ने महाप्रधान गुरुराय की आज्ञा के अनुसार काव्य रचना की।—ऐसा कवि का कथन है। स्वयं कवि का कथन है कि उसकी कविता बहुत मनोहर और सुन्दर है। उनके कथन में अतिशयोक्ति होने पर भी सत्य से दूर नहीं। हंपी के विरूपाक्ष भगवान् के आस्थान का वर्णन ही इसकी वस्तु है। इस चंपू काव्य में विरूपाक्ष भगवान की सभा में होनेवाले संगीत का वर्णन बहुत ही सुन्दर है। इसे चम्पू काव्य बंध में लिखा गया है काव्य प्रौढ होने पर भी मनोहर है। वह कहते हैं कि भगवान की सभा के गायक का संगीत-माधुर्य ऐसा है—"मानो चंद्रबिंब को पकड़कर निचोड़ने पर निकलनेवाली धारा हो, मानो क्षीरसागर के मंथन से उत्पन्न अमृत को अंजली में लेने पर अंजली से स्रवित अमृत-धारा हो, मानो कामदेव के इक्षुचाप की मौर्वी को कसकर खींचने पर निकलनेवाला इक्षुरस हो;"—तात्पर्य यह कि विरूपाक्ष भगवान की सभा के गायक की मधुर ध्वनि इतनी हृदयहारी थी कि उसकी तुलना हो नहीं सकती।

चंद्रकवि का "गुरुमूर्ति शंकर शतक" भक्ति-विरक्ति और मुक्ति का निरूपण करनेवाला वृत्तों में लिखित काव्य है। प्रत्येक वृत्त के अंत में "गुरुमूर्ति शंकरा" का अंकित है। कवि कहते हैं कि भगवान् की पूजा करने के लिए वृद्ध होने तक (सांसारिक व्यस्त जीवन से छुट्टी पाने तक) प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं। इसलिए कहते हैं—"कमजोर होने के पूर्व, इंद्रियों में शिथिलता के आने से पहले, बुढ़ापे के आक्रमण से शरीर के दुर्बल होने पूर्व, भाग्य के मिट जाने के पहले (मृत्यु के समय के आने पर नहीं) भगवान के चरणकमल की पूजा करनी चाहिए। प्यास लगने पर कुआँ खोदना नहीं।"—कवि की यह बात कितनी मार्मिक है।

चंद्रकवि के पद्यों को अभिनववादि विद्यानंद ने अपने काव्यसार में उद्धृत कर इन्हें सत्कवि कहकर सम्मानित किया है।

बोम्मरस : (ई० सन् करीब 1450)—डंकिणीकोटा नामक नगर में एक राजा था जिसका नाम कामभूपाल था था। इनका बेटा तिप्पस था। जब यह तिप्परस राज कर रहा था चिक्कवीरणार्य आदि शरणों ने इनसे (राजा से) प्रार्थना की कि तामिल के सौंदर-पुराण का कन्नड में अनुवाद करावें। इन शरणों की प्रार्थना पर राजा ने अपने आस्थान कवि बोम्मरस से करवाया। यह सौंदर-पुराण सुन्दरनंबी की कथा है। यह सुन्दर नंबी तामिल के सुप्रसिद्ध तिरसठ शैवसंतों में (इन्हें तमिल में नायन्मार कहते हैं।) एक है। सख्यभाव-भक्ति से भगवान् शिवजी को प्रसन्न करके भगवान् के अनुग्रह से शिव सायुज्य प्राप्त करनेवाले महान शिवभक्त हैं। इन भक्त महात्मा का जन्म तामिल प्रदेश में हुआ। तामिल के पॅटियपुराण की इस कथा को महाकवि हरिहरने कन्नड में प्रस्तुत किया था। उसे कन्नड के षट्पदी छन्द में विस्तार के साथ प्रस्तुत करने का श्रेय बोम्मरस को है। आम तौर पर सभी वीरशैव-पुराणों में सुन्दरनंबी की कथा है। गिरिजा के विवाह के समय सर्वालकार भूषित शिवजी ने अपने को आईने में देखा। तब आईने में अलंकृत शिवजी का जो प्रतिबिंब दिखा वही प्रतिबिंब "सुन्दर नंबी" के रूप में अवतरित हुआ। इसलिए इनका नाम "सुन्दर" और शिवजी ने जो भी आश्वासन दिया उन सब पर विश्वास करने के कारण "नंबि"—ये सुन्दर और नंबि दोनों मिल कर "सुन्दर नंबी" इनका नाम हुआ।

[कन्नड और तमिल में भी "नंबी" का शब्दार्थ "विश्वास" करना है।]

यह "सौंदर पुराण" वार्धक षट्पदी में है और इसमें 1200 पद्य हैं। कवि ने अपनी कविता के बारे में बहुत प्रशंसा की है। वह कहते हैं—"सुन्दर सुगंधित चमेली मल्लिका आदि पुष्पों की सुगंधि से भरी वायु का सेवन कर नाच उठनेवाली मस्त भ्रमर की मधुर-ध्वनि-सी और नव-विकसित चूतांकुर पर बैठकर चोंच से कोमल आम्र-पत्रों को कुरेदती हुई मधुर-ध्वनि करनेवाली कोयल के पंचम-स्वर की तरह सुन्दर है, यह काव्य।" कवि का अपनी कविता के विषय में यह जो कथन है वह कवि सहज अतियोक्ति होने पर भी असत्य नहीं। इसमें संदेह नहीं कि कवि बोम्मरस एक उत्तम दर्जे के कवि है। उनका पदबंध ललित और शैली सरल है; काव्यधारा निरर्गल होकर बही है। काव्य में जो कथा बतायी गयी है, वह जैसा ऊपर कहा है, "सुंदर नंबी" के जीवन से संबंधित है।

कवि सम्प्रदाय के अनुसार अष्टादश वर्णन काव्य में है; पर सीमित है। सम्प्रदाय का अनुसरण होने पर भी वर्णनों में पिष्ट-पेषण नहीं हुआ है। यत्र तत्र दिखनेवाले चरित्र-वर्णन एवं प्रकृति वर्णन सुंदर हैं। प्राम-अनुप्रास का खेल और विरोधाभासालंकार की कसरत भी हमें देखने को मिलेंगी। पर इन बातों में भी एक सीमा रखी है कवि ने। यह कवि बोम्मरस महाकवि न होने पर भी मध्यम वर्ग का एक उत्तम कवि है।

नीलकंठाचार्य : (1488)—परम्परागत शिवभक्ति परायण सुप्रसिद्ध शरण के खानदान में इन नीलकंठाचार्य का जन्म हुआ। वीरशैव पंडितत्रय में से एक मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य की कथा को "आराध्य चरित्र" के नाम से वार्धक षट्पदी छन्द में लिखा है। इनके गुरु गंगाधराचार्य हैं जो कन्नड और संस्कृत अच्छे पंडित थे और यह भक्तों की शैवागमों के बारे में शिक्षा देते और उपदेश भी। उत्तमूर के राजा गजबेंटेकार (हाथी का शिकार करनेवाला) वीननंजेन्द्र के द्वारा यह अत्यंत सम्मानित थे। उन्होंने अपने को "वितत कर्नाट लक्षण कमलभव" कहकर अपनी प्रशंसा स्वयं की है।

आराध्य चरित्र तीन हजार से भी अधिक पद्योंवाला बृहत् काय ग्रंथ है। कवि ने बताया है कि श्रीगिरि के शिवभक्तों ने पंडिताराध्य चरित को पाल्कुरिके सोमनाथ से लिखवाया और इसे आंध्र से कन्नड में मैंने लिखा है। पंडिताराध्य का बसवण्णा पर जो प्रेम और आदर था, उसे बड़ी भक्ति के साथ इन्होंने अपने काव्य में लिखा है। यह पंडिताराध्य आंध्र हैं। इन्हें बसवण्णा के महत्व का स्मरण करते हुए बसवण्णा के ही हाथ से प्राप्त माने जानेवाले भस्म को धारण करने के कारण कन्नड भाषा का ज्ञान अपने आप हुआ—ऐसा कहा जाता है। उन्होंने कन्नड में "इष्टलिंग स्तोत्र" और "बसव माहात्म्य गीत" बनाकर गाया। बसवण्णा को प्रत्यक्ष देखने के उद्देश्य से आराध्य निकले तो उन्हें मध्य मार्ग में ही समाचार मिल गया कि बसवण्णा शिवैक्य हो गये; तब आराध्य ने बहुत दुखी होकर उन पर एक गीत गाया। उसके बाद वे श्रीगिरि लौटे और वहीं शिवैक्य हुए। नीलकंठाचार्य ने पंडिताराध्य की संतान के सम्बन्ध में भी अपने ग्रंथ में निरूपित किया है। कवि ने पंडिताराध्य के विषय में बताया है कि उन्होंने चार्वाकादि मतों का खंडन करके वीरशैव का उद्धार किया। इस बात को लेकर मुक्तकंठ से उनकी प्रशंसा भी की है।

यह "आराध्य चारित्र" एक सुप्रसिद्ध वीरशैव पुराण है। यह "पंडिताराध्य चरित" के लिए आधार ग्रंथ है। काव्य बन्ध लक्षणयुक्त है। उक्ति वैचित्र्य नहीं; इसकी प्रधानता के बदले रचना-चातुर्य ही यहाँ की विशेषता है।

चतुर्मुख बोम्मरस (1500)—नीलकंचार्य की तरह है। कवि ने बताया है कि ईशान्य शिवगुरु के संस्कृत में लिखे और हरीश्वर ने रगळे के रूप में लिखे "रेवण सिद्धेश्वर पुराण" को (उन दोनों को) समन्वित कर अपनी कृति का निर्माण किया है। इनके काव्य आदि भाग अर्थात् आरंभ देखने पर लगता है कि यह कवि "सौंदर पुराण" का लेखक बोम्मरस हो सकता है।—ऐसी शंका होती है। परन्तु दोनों गुरु और अंकित में फरक पड़ता है। बोम्मरस का गुरु 'विश्वनाथाचार्य' और अंकित "नीलकंठ" है। चतुर्मुख बोम्मरस का गुरु "वाल-सिद्धेश्वर" (?) और अंकित "शांत भल्लेश्वर" है। यह कवि उस कवि का पौत्र भी हो सकता है। कवि चरितकारों का ऐसा अनुमान है कि इस उपर्युक्त स्थिति में उनका समय 1500 हो सकता है। चतुर्मुख बोम्मरस के पिता मायण्णा थे और वह काश्यप गोत्री वोधायन सूत्री यजुर्वेदी थे—ऐसा कवि ने स्वयं बताया ई। अपने कथानायक रेवण-सिद्ध के वंश में जन्मे वालसिद्धेश्वर पर इनकी अपार भक्ति भी। उन्हीं को गुरु के रूप में स्वीकार कर उन्हीं की आज्ञा से उन्होंने अपने इस काव्य को रचा। कवि ने अपने को "सरस गीर्वाण भाषायुक्त कर्नाट वर वच श्री ललित वदन तामरस", "वर्णक कवीन्द्र चतुरास्य", कवि सभा माणिक्यदीप"—कहा है। उन्होंने पूर्वकवि रघवांक आदि का अनुसरण किया है।

"रेवण सिद्धेश्वर पुराण" वार्धक षट्पदी में है और इसमें 565 पद्य हैं। कवि ने अपने काव्य की प्रशंसा करते हुए स्वयं बताते हैं कि मैं इस काव्य को विद्वानों के लिए प्रिय लगे और शरणों के लिए कर्णामृत बने—इसलिए लिख रहा हूँ। कवि ने इस काव्य के लिए जो कथानक चुना वह साहित्यिक दृष्टि से रसाभिव्यक्ति के लिए आवश्यक सामग्री से रहित है; अतः इसे एक सामान्य काव्य की श्रेणी में ही रख सकते है।

निजगुण शिवयोगी : (1500)—यह निजगुण शिवयोगी सर्वसंग परित्यागी, मगर लोकसेवानिरत; कवि दार्शनिक देश तथा भाषा के सेवक-महान् व्यक्ति हैं। कन्नड भाषा-भाषी क्षेत्र में तीन इसी (निजगुण शिवयोगी) नाम के व्यक्ति हुए हैं। इनमें प्रथम व्यक्ति बारहवीं सदी में रहे और "निजगुण शिवयोग" के अंकित से इन्होंने वचन लिखे; तीसरे व्यक्ति सत्रहवीं सदी के बीच में रहे, और इन्होंने अद्वैत रामायण की रचना की। यह प्रस्तुत "निजगुण शिवयोगी" दूसरे हैं। इनके समय, जीवन वृत्तांत आदि के बारे में निश्चित रूप से कुछ विदित नहीं। इन्होंने ने कन्नड में सात ग्रंथों की रचना की है; वे ये हैं—(1) अनुभवसार, (2) अरुबत्तमूवर (तिरसठ पुरातन शैवसंत जिन्हें नायन्मार कहते हैं मिल में) त्रिपदी, (3) कैवल्य पद्धति, (4) परमानुभव बोध, (5) परमार्थ गीत, (6) परमार्थ प्रकाशिका, (7) और विवेक चिंतामणी। (कहा जाता है कि इन्होंने संस्कृत में "दर्शन सार और तर्क चिंतामणि" नामक दो ग्रंथ लिखे। परंतु वे अब उपलब्ध नहीं हैं।) इस विरक्त महापुरुष ने अपना या अपनी कृतियों का कोई काल निर्देश कहीं भी नहीं किया है। यह निज-

गुण शिवयोगी नाम भी शायद इनका अंकित नाम है या नहीं—पता नहीं चलता। यह उनका अन्वर्थ-नाम हैं या संन्यासाश्रम ग्रहण के बाद स्वीकृत नाम है– यह भी पता नहीं चलता। ऐसा मालूम होता है कि यह मैसूर राज्य के दक्षिण में कावेरी तट पर के किसी एक छोटे राज्य का राजा था और विरक्त होकर शंभुलिंग पहाड़ पर शिवयोग में तत्पर होकर तपस्या रत रहा। इनके काव्यों में "शंभुलिंग" अंकित है और इस पर्वत पर शंभुलिंग का मंदिर है; इसी पहाड़ पर निजगुण शिवयोगी और मुप्पिन षडक्षारी जहां तपस्या कर रहे थे - उन गुफाओं को [आज भी] लोग निर्देश करके बताते हैं—इस सब कारणों से यह निर्विवाद रूप से माना जा सकता है कि यह व्यक्ति इस प्रांत का ही होगा। मुप्पिन षडक्षरी भी इसी प्रदेश का है—ऐसा बताया जाता है। कवि चरितकार बताता है कि इनके समय को निर्धारित करने के लिए अधिकृत आधार नहीं है। जो कुछ उपलब्ध है वह अपर्याप्त है। इस पर अनुमान किया जाता है कि इनका समय 1500 के करीब का होगा। फिलहाल इसी को स्वीकार करके यह मान लेंगे कि यह निजगुण शिवयोगी और मुप्पिन षडक्षरी दोनों सम-सामयिक हैं और दोनों इसी शंभुलिंग पर्वत पर वास करते रहे।

निजगुण शिवयोगी के ग्रंथ वस्तु-वैविध्य तथा रीति की दृष्टि से काफ़ी वैविध्य-पूर्ण हैं। उनका "अनुभव सार" समस्त वेदांत सार है जो साधकों को समझाने के ही लिए लिखा गया है। यह गुरु-शिष्यों के संवाद के रूप में है; त्रिपदी छन्द में है। इसमें 535 पद्य हैं। "कैवल्य पद्धति" गेय पदों के रूप हैं; इसमें 648 पद हैं जो शंभु-लिंगांकित हैं। संभवतः इनके समय तक दास-साहित्य का काफी प्रचार होने के कारण और इन वैष्णवमत में दीक्षित पुरंदरदास आदि संत भक्तों की कृतियाँ गेय बनकर प्रचलित होने के कारण भी इस शिवयोगी को ऐसी प्रेरणा मिली हो—जिससे उन्होंने इस "कैवल्य पद्धति" को गेय पदों के रूप में प्रस्तुत किया। कवि का कथन है कि "सकल वेदांत गम स्मृति पुराण और इतिहास आदि के गहन तत्त्वों को बाल-युवक-वृद्ध तक सभी लोगों को आसानी से समझने लायक रूप में प्रस्तुत किया गया है।" —कवि का यह कथन सत्य है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य जैसे कुनैन की गोली पर संगीत का शक्कर पोत कर लोक हित साधन की दृष्टि से इन गेय पदों को बनाया है। संगीत के माधुर्य में भक्ति ज्ञान वैराग्य सरस और हृदग्राही होकर सुगमता से लोकहित को साधने के समर्थ हुए हैं। इनके इन गेयों में कुछ बहुत जनप्रिय भी हैं। निजगुण शिवयोगी का "परमार्थ गीत" भी "अनुभव सार" ही की तरह गुरु शिष्य संवाद के रूप में है। यह भी वेदांत ग्रंथ है। श्रुति, पुराण और इतिहास तथा स्मृतियों के अर्थ को इस कृति में कन्नड में समझाया गया है। यह रगळॆछन्द में है और करीब 1500 चरण तथा कुछ कंद पद्य इसमें है। कवि ने बताया है कि जिस तरह से धन होने पर अ-गुणी गुणवान् माना माना जाता है। "परमानु बोध" अद्वैत तत्त्व प्रतिपादक करीब एक हज़ार पद्यों का बृहत् ग्रंथ है; और यह सांगत्य में है। "यह याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी के बीच जो (संवाद) चर्चा हुई—उसे प्रतिपादन करनेवाला ग्रंथ है और इसमें वेदवेदांत का रहस्यार्थ तथा पुराणागम स्मृति सार एवं परमार्थ तत्त्व-रहस्य-प्रतिपादित है।"—यह कवि कथन है। इनके अन्य ग्रंथों से इसमें काव्यांश अधिक है—ऐसा कहा जा सकता है। कवि ने गहरे वेदांत तत्त्वों को बहुत ही आसान तरीके से बताया

है। इनकी भाषा आसान है परंतु भावनाएँ ठोस हैं। "अरवत्तिमूवर त्रिपदि" अथवा "पुरातनर त्रिविधि"—यह तिरसठ पुरातन शैव भक्त संतों का स्तोत्र है जो 77 पद्यों का है। इनका ग्रंथ "विवेक चूडामणि" 765 विविध विषयों को प्रतिपादित करने वाला एक बृहत् काय गद्य-ग्रंथ है। इसमें पुराण, इतिहास, वेदांत, वैद्य आदि आदि अनेक विषयों का एक विश्व कोश है। इसके चौथे प्रकरण में कवि ने नादोत्पत्ति, श्रुति, स्वर, गमक, राग प्रभेद, वाद्य, ताल, नृत्य—आदि के बारे में बताया है। कन्नड देश में संगीत का विकास कैसे हुआ ? किस रूप में वह रूढ़ था ?—इन बातों के बारे में कुछ विशिष्ट बातों की जानकारी यहाँ मिलती है। कर्नाटकियों ने संगीत शास्त्र के विषय में अपनी ही एक परिभाषा और तंत्र का उपयोग किया है। इस प्रक्रिया का ज़बरदस्त प्रभाव पड़ोसी प्रांतों के संगीत पर भी काफी पड़ा था। यह बात इस ग्रंथ से मालूम होती है। इसमें बताये हुए श्रुतियों के नाम, श्रुति गमक, तालों के नाम—इत्यादि में कर्नाटक की विशेषताएँ लक्षित होती हैं। कई प्रकार की वीणाएँ, तथा वीणा के अंगों के कन्नड के नाम आदि यहाँ हमें मालूम होते हैं। भारतीय संगीत के लिए सुळादि ताल आदि का शास्त्रीय क्रम कर्नाटक की विशिष्ट देन है—यह इस में विशेष रूप से दिखाया गया हैं। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अनुसार माने जाने वाले स्त्री-पुरुष रागों के विषय में कन्नड प्रदेश संगीत के अनुबंध में निजगुण शिवयोगी ने समझाया है। इतना ही नहीं, नपुंसक, मिश्र रागों के सम्बन्ध में भी निजगुण शिवयोगी ने बताया है।—इन संगीत सम्बन्धी बातों के विषय में श्री आर० सत्य-नारायण, एम० ए० सी० ने खोजबीन कर बताया है। इनका "परमार्थ प्रकाशिका" "चॅन्न शिवयोगीकृत" शिवयोग प्रदीपिका" नामक संस्कृत ग्रंथ की कन्नड टीका है।

हम निजगुण शिवयोगी की प्रशंसा उनके काव्य गुण के लिए नहीं करते बल्कि उनके अपार अध्यात्म ज्ञान के लिए करते हैं। उस अध्यात्म ज्ञान को कन्नड में प्रस्तुत करने की उनकी उत्सुकता प्रशंसनीय है। संस्कृत ज्ञानहीन व्यक्तियों को वेदांत तत्त्व समझना आसान हो जाय—इस दिशा में निजगुण शिवयोगी ने स्तुत्य प्रयत्न किया है। इनकी "विवेक चिंतामणी" का तमिल और मराठी तथा संस्कृत में अनुवाद हुआ है जो गर्व का विषय है। कन्नड के आध्यात्मिक साहित्य के इतिहास में "निजगुण शिव योगी" का स्थान निस्संदेह अद्वितीय है।

मुप्पिन षडक्षरी—यह बताया जाता है कि मुप्पिन षडक्षरी निजगुण शिव योगी के समकालीन है और शंभुलिंग पहाड़ में इनके नाम पर एक गुफा भी है। इनके जीवन-चरित के विषय में कुछ भी मालूम नहीं। "षडक्षरी" के अंकित से इनके कुछ पद "सुबोध सार" के नाम से प्रकाशित है। इन पदों को देखने से लगता है कि यह सहजानंद मग्न वैराग्य-मूर्ति है। इनके पद सुंदर भावगीत हैं। इनकी आध्यात्मिक चेतना सरल सुंदर भाव-प्लुत और सुललित होकर प्रवहित हुई है। इनका हृदय-वैशाल्य, समन्वय बुद्धि—ये बहुत ही प्रशंसनीय हैं। ये कहते हैं—

"अवरवर दरुशनकें। अवरवर वेषदलि।
अवरवरिगॅल्ल गुरुवु नीनॉब्बने
अवरवर भावस्कें। अवरवर भक्तिगॅ।
अवरवरिगॅल्ल देव नीनॉब्बनें

होराट विक्कि सलु बेरादॅयल्ल दॅ ।
बेरुटॅ जगदॉळगॅ एॅलॅ देवनॅ ?—अर्थात्

"अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार अपने-अपने वेश में सभी के गुरु तुम अकेले हो, अपनी अपनी भावना के अनुसार, भक्ति के अनुसार सभी के भगवान् भी तुम अकेले हो। सर्वत्र सबके लिए गुरु-भगवान्—आदि आदि सब कुछ तुम अकेले हो, इन लोगों को आपस में लड़ाने के लिए सबके अलग-अलग बनकर दिखते हो। इस तरह के विभिन्न रूप में केवल तुम ही हो, इस सारी दुनियाँ में; हे भगवान् यह तेरा क्या तमाशा है।"—यदि सब लोग इस 'मुप्पिन षडक्षरी' की तरह इस अनेक रूपों में अनेक तरह के लोगों के अपने-अपने विश्वास और भाव-भक्ति के अनुरूप दिखनेवाले उसी एक भगवान् को समझ ले तो राष्ट्र के लोगों में झगड़े ही न हो; और हमारे राष्ट्र के जीवन में सुख-शाँति चिरस्थाई होकर देश भी समृद्ध होगा। और कहते हैं—"शेर, रीछ, हाथी, साँप इत्यादि हिंस्र एवं खतरनाक पशुओं को शक्ति प्रयोग करके वश में लाया जा सकता है; चंचल चित्त को वश में रखकर उस पर शासन चला सकने वालों को अब तक नहीं देखा है।"—उनकी यह बात कितनी अनुभूति के बाद उनके मुँह से निकली होगी। इससे उनके लोकानुभव की गहराई स्पष्ट मालूम होती है। और देखिये—"ऐश्वर्य स्वप्न समान है", इस भाव को दृष्टि में रखकर कर्नाटक के आबाल-वृद्ध सभी के समझने में सुगम हो—इस तरह से उन्हें एक भिखारी की कथा को षट्पदी छन्द में लिखा है। यह पद्य कर्नाटक में बहुत प्रचलित है। यह कथा-भाव और भाषा के सुंदर समन्वय का बहुत अच्छा उदाहरण है। उनकी एक दूसरी कविता में उनकी भक्ति-वीरता फूट निकली है। वह कहते हैं—"सारा इंद्रिय व्यापार व्यक्ति (अपनी) की इच्छा के अनुसार वशवर्ती होकर जब तक विधेय न होगा तब तक गुस्सा न जाएगा। क्रोध बना ही रहेगा। एक-एक इंद्रिय को दंड देना चाहिए।"—कवि को इंद्रियों पर इतना आक्रोश है। इसे शांत होना हो तो सबसे पहले क्या होना चाहिए—

"दुष्ट नुडिय बिडदॅ ऑलिदु। मुद्रिकॉळ्व हागॅ शिवन
श्रेष्ठवाद शास्त्र केळदिर्प किवियॉळु
इट्टुमॉळॅय कॉर्डातियिद। तट्टि आचॅ ईचॅगागु
वष्टु वडियदनक नन्नसिट्टु होग दु."—वे कहते हैं कि "दुर्वचन कहने की प्रवृत्ति को जीतकर मंगलकर सभी श्रेष्ठ शास्त्रों को न सुननेवाले कान में हथौड़ा लेकर कील ठोंकना चाहिए और ऐसा ठोंकना चाहिए कि इस कान में ठोंको तो उस कान से निकल जाय—इतना कठोर दंड न दे तो क्रोध न जाएगा।" इसी तरह आँख, वाक्, जीभ, नाक-सभी को दंड देना चाहिए। उनके ऐसे वाक्य—"अमावास्या चली गयी, पूर्णिया आयी, हमें कब बुलावा आएगा—पता नहीं, और बुलानेवाले कब आएँगे—मालूम नहीं।" "देह ही देवालय है", "पानी के बह जाने पर उसमें उत्पन्न बुदबुदा फट जाएगा, उस बुदबुदे का-सा है यह विभिन रूपों में दिखनेवाला संसार"—उनके प्रत्येक पद्य में चमकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उनकी योग्यता के अनुसार समझने व चिंतन करने के लिए उपयुक्त सामग्री से उनकी कविता भरी पड़ी है।

मुप्पिन षडक्षरी की तरह सप्पण्ण अथवा सर्पभूषण कवि (1700) ने भी कुछ

आध्यात्मिक गीत "श्री गुरु सिद्ध" के अंकित से लिखे हैं। इन गीतों के संकलन का नाम "कैवल्य कल्पवल्लदी" है। यह भी जाति-मत-पंथ आदि की क्षुद्र सीमाओं से परे रहनेवाले कवि हैं। भगवान शिवजी के बड़े भक्त हैं; अपने आराध्य के विरह में तड़पनेवाले इस कवि के हृदय की वेदना अनायास उनकी वाणी में फूट निकली है। जब हम उनके पदों को पढ़ते या गाते है अथवा गाते हुए सुनते हैं तो हमें इस भक्त संत की भक्ति का सार मालूम होता है।

ऐसे अज्ञात दार्शनिक, जिन्होंने वेदांत को गेय गीतों के रूप में प्रस्तुत किया है, अनेक होंगे जिनके बारे में हमें विदित नहीं है।

सिंगिराज (1500) : कवि सिंगिराज ने *"अमल बसव चारित्र"* या "सिंगि पुराण" को वार्धक षट्पदी में कवि ने स्वविषय में जो बताया है वह यों है; "मैं काशी के विश्वनाथ भगवान् के चरण कमल का षट्चरण हूँ; वीरभद्र का भक्त तथा देमिदेव का शिष्य हूँ।"—इसके सिवाय और कुछ भी नहीं बताया है। पंडितों का अनुमान है यह ई० सन् 1500 के करीब रहे होंगे।

कारणिक बसवण्णा के दिव्य-जीवन को एक कृति के रूप में प्रस्तुत कर अपनी इस कृति-पुष्पांजली को बसवण्णा के चरण-कमलों में समर्पित किया है, इस कवि ने। इस कवि की दृष्टि में बसवण्णा "मानव महादेव" है। शिवजी की आज्ञा से मर्त्यलोक के कर्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए अवतरित वृषभदेव है। मर्त्यलोक में जो अट्ठासी देव-लीलाएँ उन्होंने दिखलायी, उनका वर्णन इस काव्य में निरूपित किया है। हरिहर कवि के "बसवराज देव रगळॆ" और भीम कवि के "बसव-पुराण" तथा लक्कण दंडेश के "शिवतत्त्व मणि"—से (इन तीनों से) सामग्री का संकलन कर सिंगिराज ने अपनी इस कृति में उन दिव्य-लीलाओं को निरूपित किया है। मगर "शिव तत्त्व चिंतामणि" से अन्य दो की अपेक्षा अधिक सामग्री ली है। बसवण्णा के जीवन से सीधा सम्बन्ध रखनेवाली कथाओं को प्राचीन काव्यों से चुनकर उन्हें संग्रह करके अथवा विस्तृत करके अपनी बनाकर उनको सुंदर बनाने की चेष्टा की है। इस प्रयत्न में बहुत हद तक वह सफल भी हुए हैं। (सिंगिराज पुराण—सम्पादक-देवीरप्पा—प्रकाशक मैसूर प्राच्य संशोधनालय—इसकी भूमिका देखें।)

सिंगिराज पुराण में काव्यांश कम है; कवि की दृष्टि बसवण्ण की दैवी-लीलाओं का निरूपण करने के द्वारा पुराण की रचना करना है। इस उद्देश्य को पूर्ण रूप से व्यक्त करने में कवि सफल हुआ है। अन्य पुराणों में जिस तरह सम्बद्ध और असम्बद्ध विचार एवं नवीन-प्राचीन शैव संतों के कथानक आदि हैं वैसे इस पुराण में नहीं है। इसके लिए कवि अभिनंदनीय है। अनावश्यक सामग्री से अपनी कृति को बोझिल नहीं बनाया है। कैलास में एक बार "क्रिया" और "भाव" में वाग्वाद छिड़ा। "भाव" ने वृषभ का और "क्रिया" ने देवता का आश्रय किया। देवों ने वृषभ का अपमान किया। तब वह शिव सभा से निकलकर भूमि देवी की प्रार्थना पर भूलोक में जन्मे। यहाँ विचरते हुए "अनिमिष" नामक को अपना "(शिव) लिंग" देकर कैलास को लौटे। परंतु, लिंग रहित वृषभ को कैलास के द्वार पालकों ने अंदर प्रवेश नहीं करने दिया। शिवजी ने उन्हें फिर से लिंग प्राप्त कर आने का आदेश देकर भेज दिया। वह फिर भूलोक में लौटे आये। यहाँ मादिराज—मादांबिका के

पुत्र होकर जन्मे। वृषभ को अपमानित करनेवाले द्वारपालों को शिव शाप ग्रस्त होकर बिज्जल, कर्णदेव के नाम से जन्म लेना पड़ा। मादिराज के बेटे बसवण्णा ने अपनी आठ वर्ष की आयु में एक ब्राह्मण के लड़के को कुए में ढकेल दिया—इस शिकायत के कारण वह अपनी बहन के साथ कप्पड़ी के संगम क्षेत्र में गया। वहाँ से कल्याण के सोड्डुळ नामक स्थान के एक बाचरस नामक व्यक्ति के आश्रय में रहकर वहाँ से बिज्जल के खजाने के अर्थ लेखक बने। इस समय कहा जाता है कि देवलोक से एक पत्र आया जिसे कोई न पढ़ सका, और उसे बसवण्णा ने पढ़ा। इस कारण वह बिज्जल के मंत्री बने। बसवण्णा का एक बेटा भी हुआ जिसका नाम "बालसेगा" था। अंत में वे शून्य-सिंहासनासीन होकर अदृश्य हो गये। इनके पश्चात् चॅन्नबसवण्णा बिज्जल के मंत्री बने।—बसवण्णा के जीवन-चरित में दिखनेवाले ये रूपांतर ही हैं जिनके कारण इस "सिंगिराज पुराण" की विशिष्टता बढ़ गयी है।

सुरंग कवि : (ई० सन् 1500 के करीब)—यह कवि पुलिगॅरॅ के संगमबिभु-महादेवी—इस दंपती के पुत्र है। इन्होंने "त्रिषष्टि पुरातनों का चरित" लिखा है। यह पुलिगॅरॅ के सामनाथेश्वर का भक्त है। अपने इष्टदेव के अंकित से इन्होंने अपना काव्य लिखा। कवि हरिहर की जैसी मनोवृत्ति मनुज-स्तुति करने की नहीं रही उसी तरह इस सुरंग कवि की भी मनोवृत्ति है। वे कहते हैं—"मनुज स्तुति को छोड़कर सुरंग कवि ने अपनी जिह्वा को गिरीश (शिवजी) की स्तुति के लिए ही सुरक्षित रखा है।" इन्होंने अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की है कि प्राचीन संस्कृत कवियों का काव्य-सौन्दर्य अपनी कृति में उतरे—इसके लिए प्रार्थना की है। परंतु किसी प्राचीन कन्नड कवि का स्मरण नहीं किया है। मार्गी शैली को पसंद करनेवाले इस कवि को देशी शैली के सुप्रसिद्ध हरिहर और राघवांक जैसे कवि भी शायद नगण्य-से लगे होंगे। "कर्नाटक कवि चक्रवर्ती" के विरुद से विभूषित इस सुरंग कवि के विषय में बाद के कवियों ने कुछ भी नहीं कहा है। इन कारणों से कवि के समय के विषय में कुछ निर्णय करना मुशकिल है। कवि चरितकारों ने अनुमान लगाया है कि यह कवि ई० सन् 1500 के करीब रहे होंगे। कवि ने अपने को "वर्णक वस्तुक कविजन कर्णाभरणं शिवैक समुदय पीयूषार्णव चन्द्रं", "सरस कविता नर्तकी नृत्यरंगं", "प्रनिभट कवि वेश्या भुजंगं"—कहकर अपनी गरिमा बताई है। वह कहते हैं कि ब्रह्मा ने संसार का सृजन कर, सुख न पा सकने के कारण चैत्र सुधाकर नीरद आदि के सृजन के साथ सुरंग कवि का भी सृजन करके सुख पाया।

"त्रिषाष्ठि पुरातनों का चरित" नाम से ही स्पष्ट है कि यह तमिलनाड के तिरसठ प्राचीन शिव भक्त-संतों का जीवन चरित है। प्रत्येक भक्त के नाम पर एक एक अध्याय के हिसाब से इस कृति में तिरसठ अध्याय हैं। ऐसा कहा गया है कि इस पुराण की कथा मुनि उपमन्यु ने कणाद से कही। कवि ने बताया है कि लैंग्य पुराण में उक्त कथा का अनुसरण करके उन्होंने अपने इस काव्य का निर्माण किया है। कवि ने अपने काव्य की सुंदरता के विषय में यों बताया है—

"अलर्गळ कंपिनंतॅ, मिळिर्दाडुव तुंबिय बंबलंतॅ तं
बॅलरिन पॅर्मॅयंतॅ, तनिवण्णळिनॉघुव माविनंतॅ पं
बलिसुतॅ कळ्दुनोड्वॅळॅवॅण्डिर कण्मलरंतॅ बल्लरं

नलविनॊळॆय्दॆं सोलिपुदु कब्बिगराळ्दन कब्बदॆळ्तरं."—

तात्पर्य यह है कि "यह मेरी कविता पुष्पों की सुगंधि की तरह, पुष्परस चखने के लिए मंडरानेवाले भ्रमरों की गुञ्जार जैसे, मलयमारुत के समान मनोहर और ताजे फलों के भार से लदे आम्रवृक्ष जैसे आकर्षक, है; और दर्शन की लालसा लिए छिपकर प्रिय को देखनेवाली प्रियतमा की उत्सुक दृष्टि को भी हरा दे—ऐसे सर्वांगीण सौन्दर्य से युक्त है।"

कवि ने अपने काव्य में अठारहों काव्यांगों का वर्णन किया है। चंपूबन्ध में काव्य-निर्माण करनेवाले कवि के लिए यह सहज है कि आठारहों काव्यांगों के वर्णन के लिए आवश्यक सन्निवेशों की उद्भावना करें। इस काम में कवि सफल हुआ है। यह कवि सुरंग अच्छे कथक है। बड़े रोचक ढंग से कथा सुना सकते हैं। कुछ अपूर्व वृत्तों में, गुणिताक्षर आदि वार्णिक छन्दों में अपनी कविता-शक्ति का उपयोग तो किया है; मगर पांडित्य-प्रदर्शन के उद्देश्य को लेकर ऐसा न करके प्रसंग के अनुसार सहज गति में काव्य निर्माण करने के एक मात्र ध्येय को लेकर ऐसा किया है। जो कहना चाहते हैं उसे सरल, सुंदर और हृदयंगम बनाकर कहने में ही उनकी अभिरुचि है। इस कवि ने कुछ अपूर्व और विशिष्ट शब्दों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। इसे देखने पर लगता है कि कवि की शब्द-सम्पत्ति बहुत बड़ी है। इस कवि ने पूर्व कवियों का स्मरण तो किया नहीं; मगर लगता है कि यह कवि भाव और भाषा की दृष्टि से हरिहर कवि का ऋणी है। वर्णना-विधान में इस कवि ने हरिहर का अनुसरण और अनुकरण अवश्य किया है। परंतु हरिहर की रसज्ञता इनमें नहीं है। इस कवि ने कवि हरिहर का अनुकरण कई बातों में करके भी कहीं उनका नाम तक नहीं लिया है। यह आश्चर्य की बात ही नहीं अन्याय भी है।

गुब्बि(य)(का) मल्लणार्य (1513) : यह मल्लणार्य जिला तुमकुर के गुब्बी नामक स्थान के निवासी है। यह सोलहवीं सदी के पूर्वार्ध में रहे। इन्होंने "भाव चिंतारत्न", "वीरशैवीभृत पुराण", और "पुरातन रगळॆ" इन तीन ग्रंथों की है। इस "गुब्बी" नामक स्थान का पुराणों में "अमर गुंडा" दूसरा नाम है। पुराणों में "अमर गुंडा" के नाम से अभिहित इस स्थान में प्रख्यात वीरशैव शरण मल्लिकार्जुन रहते थे—ऐसा कहा जाता है। यह शरण अपने भक्तों को प्रतिदिन शिवपुराण की कथा सुनाया करते थे। पुराण श्रवण करने के लिए दो (गुब्बी) गौरैया आया करते थे (गौरैया को कन्नड में गुब्बी कहते हैं।) कुछ समय के बाद पुराण कथन समाप्त हुआ तो ये दोनों चिडियाएँ वहीं आकर लेटीं और प्राणत्याग किया। तब से इस "अमर गुंडा" का नाम "गुब्बी" हो गया।—यह इस ग्राम का स्थल-पुराण है। मल्लिकार्जुन की शिष्य-कोटि में "गुरु भक्त" नामक व्यक्ति बहुत प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि शिवसायुज्य प्राप्त करने के लिए वह सूली पर चढ़ा था। इस महात्मा के वंश के सभी लोग भगवान् के परम भक्त थे। इनमें एक नागनाथाचार्य नामक व्यक्ति थे जो अपनी भक्ति के बल पर शिवजी को प्रत्यक्ष करके उनसे बातें भी किया करते थे।—ऐसा कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि इनके वंश में कोई दूसरा ऐसा भक्त हुआ जिसने शिवजी पर काले नाग का छाता पकड़ा था। इस तरह के शरण भक्तों की वंश परंपरा में "मल्लणा" का जन्म हुआ। यह मल्लणा परम भक्त और अच्छे विद्वान्

थे। इन्होंने "गणभाष्य रत्नमाला" और "वातूल तंत्र टीका" नामक दो ग्रंथ लिखे। इनकी "गणभाष्य रत्नमाला" पुरातन वचनकारों के वचनों का सम्पादित संग्रह है। इसमें करीब एक हज़ार वचन संग्रहीत है जो षट्स्थल विभाजन क्रम के अनुसार विभक्त हैं। प्रत्येक स्थल के सम्बन्ध में वेद-आगम आदि के आधार देकर विस्तृत विवरण के साथ स्थलों का लक्षण आदि बताया है और पुरातनों (शरण संतों) के वचनों को उदाहरण के रूप में उद्घृत किया है। उनकी भाषा सरल, सुंदर और मधुर है। "वातूल तंत्र टीका" वातूल नामक शैवागम की टीका है। इन दो ग्रंथों से मल्लणा के शास्त्र और आगम आदि का पांडित्य अच्छी तरह मालूम पड़ जाता है। इतना ही नहीं, वीरशैव मत तत्त्व इन ग्रंथों के द्वारा शास्त्रीय-आधार देकर प्रतिपादित किये गये है। इसी मल्लणा के पौत्र है यह मल्लणार्य।

मल्लणार्य के पिता बड़े गुरु भक्त थे। उनकी माँ सर्प्पेयम्मा थी। इस गुरु भक्त शरण दंपती के पुत्र होने के कारण मल्लणार्य में सहज ही भक्त अंकुरित हुई थी। इनमें अंकुरित इस भक्ति को पल्लवित करने का श्रेय गुरु सिद्धमल्लेश को मिलना चाहिए। संभवतः यह सिद्ध मल्लेश तोंटद सिद्धलिंग यति के शिष्य थे। तोंटद सिद्धलिंग यति के समान आध्यात्मिक गुरु और लौकिक विद्या के लिए गुम्मलापुर के शांत-मल्लेश नामक व्यक्ति—इन दोनों के दिशा दर्शन के कारण कवि की सुप्त शक्तियाँ पल्लविन हुई और वह इस काव्य त्रय के रूप में व्यक्ति हुईं। इन ग्रंथों में तीसरा "पुरानन रगळॆ" उपलब्ध नहीं है। शेष दो काव्यों में उनकी दैव भक्ति और अध्यात्म ज्ञान स्पष्ट अभिव्यक्त है। ऐसा लगता है कि कवि आध्यात्मिक वातावरण में ही साँस ले रहा था। शायद बसवपुराण को पढ़कर लोगों को अर्थ बताते रहना ही उनका काम था। वह "बसव पुराण के मल्लणार्य" के नाम से ही प्रसिद्ध थे। ऐसा मालूम होता है कि उनकी वाग्वैखरी से प्रभावित होकर शिवपूजेयार्य नामक व्यक्ति ने इन्हें काव्य रचना करने की प्रेरणा दी। उन्होंने मल्लणार्य से कहा: "हे मल्लमाणार्य, तुम्हारे पितामह ने गणभाष्य रत्नमाला की रचना की; तुम सत्येन्द्र चोल भूपाल के बारे में रचना करो।" उनकी आज्ञा के अनुसार कवि ने कहा "पंचाक्षरी की महिमा बताते हुए गुणवान् सत्येन्द्र भूपाल की कथा जो द्रविड (तमिल) भाषा में है उसे कन्नड में लिखूंगा।" यही "भाव चिंता रत्न" है। कवि के कथन से मालूम पड़ता है कि ई० सन् 1513 में इसे लिखा। इस अपने काव्य को जनप्रिय होते देखकर प्रोत्साहित होकर एक दूसरा ग्रंथ "वीरशैवामृत पुराण" को ई० सन् 1530 में लिख कर सम्पूर्ण किया।

यह "भावचिंतारत्न" 371 पद्यों का वार्धक षट्पदी में लिखा ग्रंथ है। इस भाव चिंता रत्न का एक दूसरा नाम "सत्येन्द्र चोल की कथा" भी है। यह चोलदेश या तमिलनाड से सम्बंधित कथा है। उस देश का रामकुमार शिकार खेलने गया। अचानक उनका घोड़ा शंकर नामक एक शिवभक्त बालक पर हावी हो गया जिससे वह बालक मारा गया। उस बालक की माता तिरुकोलविनाचि नामक शिवभक्त परायण शरण देवी ने राजा के पास शिकायत की। राजा बहुत न्याय परायण था। उनका न्याय के अनुसार "सिर के बदले सिर" या "जान के बदले जान" था। इसलिए अपने बेटे को मारने के लिए संदायी नामक व्यक्ति को नियुक्त करता है। वह

राजाज्ञा का पालन करके अपना भी सिर काट लेता है । "पंचाक्षरी" का उच्चारण करते हुए सेवक का सिर नीचे गिरा राजकुमार के सिर के साथ ही पास में शिवभक्त कुमार शंकर का भी सिर पड़ा था। नीचे गिरे तीनों सिर एक साथ "पंचाक्षरी" जप करने लगे हैं । इसे देख माँ तिरुकोलविनाचि ने अपना भी सिर काट लिया । इसी तरह कुल सात सिर गिरे और "पंचाक्षरी" का जाप करने में लगे । अन्त में जब रानी की बारी आयी तो शिवजी प्रत्यक्ष हुए और सबको "कैलासपद" देकर मुक्ति प्रदान की । तिरुज्ञान संबंधीश नामक शिवशरण ने जिनमत का खंडन करके, पंद्रह हज़ार "तिरुपाडल" (भगवान् के स्तोत्र रूप पद) गाते हुए कुलच्चरे नामक एक शिव भक्तिन को यह कथा कह सुनायी थी—ऐसा माना जाता है ।

पंचाक्षरी की महिमा बतानेवाले इस काव्य को उत्प्रेक्षा रहित एक पद्य को भी नहीं लिखने की प्रतिज्ञा से आबद्ध कवि ने अपनी प्रतिज्ञा का अक्षरशः पालन किया है । इसलिए यह ऐसा हो गया है कि जैसे शिव-पूजन के लिए जानेवाले के सिर पर किरीट और भुजा पर भुजकीर्ति बंधी हो । भक्तिरस प्रधान इस काव्य में अनेक ऐसे स्थान मिलेंगे जो साधारण जनता की पहुँच से बाहर है । इतना प्रौढ बन गया है । इसके साथ कथां संविधान में भी कमनीयता के बदले खुरदरापन आ गया है । शिवजी से अज्ञाप्त ब्रह्मा षण्मुख को शिक्षा देने गये । वह प्रणव का अर्थ न बता सके और इस कारण से शिष्य षण्मुख से गुरु ब्रह्मा हार गये । परशिव ने इस बात को जाना तो बेटे (षण्मुख) से पूछा—बताओ तो, प्रणव के कितने अर्थ हैं ।—बेटे ने कहा—बारह करोड़ । इस पर शिवजी ने कहा बताओ । तब उस बेटे ने कहा—हे पिता ! अब आप गद्दी से उतरिये, मैं ऊपर बैठकर बताऊँगा ।—इस बात को सुनकर शिवजी को गुस्सा आया और शाप दिया कि तुम सोलह हज़ार जन्मों में जनमते रहो ।—जब शिवजी की गुस्सा उतरा तो कहा शाप अपने लोगों के लिए नहीं दिया जाता ।—यों कहकर बेटे को समाधान दिया ।' इतना होने पर भी यह पिता-पुत्र का संभाषण वात्सल्य रहित और कोमलता से दूर है—ऐसा ही लगता है । राजाज्ञा पालन करने के लिए निकले संदायी का भी चित्र ऐसा ही कड़ा-कड़ा लगता है । मल्लणार्थ की इसी कथा को लेकर षडक्षरी ने (कवि का नाम) अपने "राजशेखर विलास" में कवि सहज निरंकुशता से काम लेकर इस कथानक को सुधार संभालकर सजा-धजाकर कितना सुंदर बनाया है ।—इसे हम राजशेखर विलास में देख सकते हैं । मल्लणार्य ने प्राचीन इतिहास को लेकर अपनी कृति को प्रस्तुत करने का प्रयत्न शायद नहीं किया ।

मल्लणार्य अच्छे कथक है । कथन-काव्य का स्वरूप कैसा ही—यह वह जानते हैं । इसलिए वर्णनाभाग कथा की गति में बाधक नहीं बने हैं । जो कहना चाहते थे उसी को ध्यान में रखकर अपने काव्य को लिखा है । यत्र तत्र यदि वर्णन भी आ गये हैं तो भी वे सीमित और काव्य-कथानक में खप गये हैं और कथा-प्रवाह के रोड़े नहीं बने हैं । "भाव चिंतारत्न" भक्ति प्रधान है । शृंगार करुण हास्य रस इस काव्य में भक्ति के पोषण बनकर ही प्रयुक्त है । तिरुकोलविनाचि का पुत्र शोक-वर्णन करुणामय है । राजकुमार के घोड़े के कारण मृत पुत्र की बात सुनकर माँ का हृदय कितना व्याकुल और व्यग्र है—इसका बहुत ही हृदय-विदारक चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। माँ का पात्र चित्रित करने में कवि सचमुच धन्य हुए हैं ।

मल्लणार्य का दूसरा ग्रंथ "वीरशैवामृत पुराण" भी वार्धक षट्पदी छन्द में है। यह 7100 पद्यों का बृहत्काय ग्रंथ है और यह वीरशैव-सिद्धांत का विश्वकोश है। आम तौर पर वीरशैव-पुराणों में दिखनेवाले शिव की पंचविंशति लीलाएँ, नूतन पुरातन शिवशरणों की कथाएँ, अष्टावण-महिमा, षट्स्थल सिद्धांत आदि आद वीरशैव मत-तत्त्व यहाँ प्रतिपादित है। इस तत्त्व प्रतिपादन के लिए वेद, शास्त्र, आगम और पुराण आदि से उद्धृत किये गये हैं। कवि ने स्वयं बताया है की लक्कण दंडेश की "शिवतत्त्व चिंतामणि" से नूतन पुरातन शिव शरणों की कथाएँ उद्धृत हैं। "भाव-चिंतारत्न" को लिखने के लिए जैसे शिवपूजेयार्य प्रेरक हुए वैसे ही "वीरशैवामृत पुराण" को लिखने के लिए हलगेयाचार्य नामक महापुरुष प्रेरक न बने। इस हलगेया-चार्य ने अपने शिष्य कॆंचवीर नामक व्यक्ति को जो उपदेश दिया था, उसी को पद्यरूप में काव्य रचने के लिए मल्लणार्य से कहा—प्रतीत होता है। उनकी आज्ञा के अनुसार कवि ने इस ग्रंथ को रचा।—यह स्वयं कवि का कथन है। इस काव्य की रचना करते समय शिवगंगा के कवि शांतनंजेश इनके गुरु रहे होंगे।

"वीरशैवामृत" धर्मग्रंथ होने पर भी, पुराण होते हुए भी काव्य धर्म से वंचित नहीं है। धर्मानुराग के साथ काव्य दृष्टि भी समन्वित होने के कारण तत्वान्वेषी और काव्य प्रेमी दोनों के लिए यह प्रिय पात्र है। मृत्यु निकट आने पर मानव-मन की दशा का कितना मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है; देखिये—

"नॆलदलिर्दातना मंचमं बयसुवं
सलॆ खट्वदिं दिळॆय नॆळसुवं पुदिदिर्दॆ
मलमूत्रदिं विवस्त्रदॆ लज्जॆयं तॊरॆयुतॆदॆ कॊरळ्गळु कॊणगुतं
सलिलमं बयसुत्तलंतप्प बाधॆयॊळु
सळॆ गळिसिदर्थमं नॆनॆनॆनॆदु दुःखदिं
मलमलं मरुगुतज्ञानदिं तन्न गृह रक्षणॆगॆ चिंतिसुवनु।"—

भाव यह है—"जमीन लिटावें तो खाट पर लेटना चाहेंगे; फिर खाट पर से उतार कर जमीन पर लेटने की इच्छा प्रकट करेंगे; मल-मूत्र के कारण विवस्त्र होकर लज्जा विहीन होकर गला फाड़ फाड़कर छाती पीटते रहेंगे; पानी-पानी की रट लगाते हुए असहनीय कष्ट और दुःख में पड़े रहने पर भी अर्जित संपत्ति की याद करते-करते अपने घर को संभालने की चिंता लेकर तड़पते रहेंगे।—यह कितना स्पष्ट सत्य है। एक और देखिये; एक वेदांति स्त्री का कैसा चित्र प्रस्तुत करता है।—

"इवर नुडि यतिवरर बायहुडि, भाविस
लिकवर बाहुगळु सज्जनर बेहुगळु वळि
किवर चल्विन तुरुबु सदाचारिगळ मनद बिरुबु
इवर चॆल्विन देह उत्तमर दा ह्विं
तिवर नडॆयनघरसगळि गिवे कडॆयॆम्ब
युवतियरु बन्दरादेवदेवेशनं नोडॆ तमतमगॆकूडॆ।"—

तात्पर्य यह है कि—"इनकी बातें यतियों की बातों को चूर्ण करनेवाली है, इनकी बाहुलताएँ सज्जनों को बाँध रखनेवाली बेड़ियाँ हैं। इनके सुंदर केश पाश सदाचारियों के मन को बांधनेवाला पाश है; इनका सुंदर शरीर सत्पुरुषों में जलन पैदा करनेवाला

है; इनका चलना समस्त पापों के सार-सर्वस्व की सीमा है; ऐसी युवतियाँ देवदेवेश के दर्शन के उद्देश्य से आपस में मिलने आये।"—यह कितना परिणामकारी चित्र है।

गुब्बि के मल्लणार्य महाकवि न होने पर भी प्रतिभावंत एवं सशक्त कवि हैं। वंशपरंपरा में प्राप्त कविताशक्ति इनके द्वारा इनके पुत्र शांतेश में भी दृष्टिगत होती है। इन्होंने "तोंटद सिद्धेश्वर पुराण" को भामिनी षट्पदी में लिखा है। इसमें 971 पद्य और 420 ग्रंथ (वचन से लगनेवाला प्रासबद्ध गद्य) हैं। यह काव्य ई० सन् 1561 में लिखा—ऐसा कवि का कथन है। तोंटद सिद्धलिंग यति शिवगंगा में आकर कँग्गॅरें नामक प्रदेश के समीपस्थ नाणगी नदी के तीर पर के बगीचे में जब शिवयोग में लीन रहे तब अपने शिष्य चंद्रशेखर नामक व्यक्ति को भुवनकोश-धर्मा-धर्म विचार शिवपंचविंशति लीलाएँ षटस्थल क्रम आदि बातों का उपदेश दिया। चन्द्रशेखर ने उन उपदेशों को काव्य के रूप में प्रस्तुत करने के लिए शान्तेश से प्रार्थना की; तब उनकी इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य से शांतेश ने इस काव्य की रचना की। इस तरह काव्य रचना करने के लिए जैसे इनके बाप को प्रेरणा बाहर से मिली उसी तरह बेटे को भी बाहर से प्रेरणा मिली। "वीरशैवामृत पुराण" की तरह इनकी कृति में वेद-आगम-पुराण आदि से *आधार श्लोकों का उद्धरण देकर मत-तत्त्वों का निरूपण शास्त्रीय ढंग से* किया है। वीरशैव-मत के विषय में बेटे ने पिता से भी ज्यादा कुछ नहीं बताया है। काव्य-निरूपण करने के विधान में भी इन्होंने अपने पिता का ही अनुसरण किया है। कहीं-कहीं यमक एवं निरोष्ठ वर्णों का प्रयोग कर अपने अलंकार-संबंधी ज्ञान के पांडित्य का प्रदर्शन किया है। इनकी षट्पदी कविता निरर्गल धारामयी है। इनकी कविता समतल भूमि पर बहनेवाली गंभीर नदी की तरह प्रवाहित है।

नंजुण्ड कवि (1525)—इस कवि ने "रामनाथ चरित" नामक काव्य अथवा "कुमार राम सांगत्य" लिखा है। कुमारराम एक राजकुमार था, और वह बड़ा वीर तथा परदार सहोदर के नाम से सदियों से प्रख्यात व्यक्ति था। इस कृति में इन्हीं की कथा वर्णित है। ऐसा लगता है कि यह विजयनगर साम्राज्य की स्थापना से करीब दस-पन्द्रह वर्ष पहले की घटना है। संभवत: उन दिनों मुहम्मद-बिन-तोगलक दिल्ली का बादशाह रहा होगा। उस ज़माने में हुंदी के पास के कुंतल नामक एक छोटे राज्य में कंपिल नामक राजा राज कर रहा था। यह कुमार राम इन्हीं राजा का पुत्र था। यह राजकुमार अपने धैर्य और साहस के लिए प्रसिद्ध था और इसकी कीर्ति दिल्ली तक फैली थी। दिल्ली सुल्तान की लड़की इस पर मोहित हो गयी। अपनी बेटी की इच्छा पूर्ण करने के उद्देश्य से सुल्तान ने कुमार रामनाथ को दिल्ली बुलवाया। परंतु राजा कंपिल ने इंकार किया। इतना ही नहीं, सुलतान के क्रोध का पात्र बादर (यह बादर उस समय के इतिहास में वर्णित बहादुरशाह हो सकता है) को आश्रय भी दिया। इसके फल-स्वरूप भारी युद्ध छिड़ गया। कुमार रामनाथ के पराक्रम के कारण सुल्तान की सेना हार खाकर पीछे हट गयी। इस तरह वीरता और कीर्ति के कारण राजकुमार जन-प्रिय बन गया। होनहार सुन्दर युवा राजकुमार अपने हमजोलियों के साथ एक दिन में गेंद खेल रहा था। अचानक गेंद कंपिल राजा की छोटी पत्नी रत्ना जी के आँगन में जा गिरी। उसे ले आने के लिए राजकुमार वहाँ आँगन में गया जहाँ गेंद गिरी थी। आँगन में प्रविष्ट सुन्दर युवा राजकुमार को देखकर छोटी रानी रत्ना

जी उस पर मोहित हो गयी। धर्मभीरु राजकुमार छोटी माँ की इस अनुचित वाँछा को कैसे पूर्ण कर सकता था ? वह वहाँ से लौट पड़ा। इधर रानी राजकुमार रामनाथ पर क्रोधित हो गयी और उसने राजा से शिकायत की कि उसने ही आकर इसे छेड़ा। रानी की शिकायत सुनकर राजा क्रोध से अंधा हो गया और अपने मंत्री को हुक्म दिया कि बेटे का सिर काट दें और उसे (सिर) मेरे सामने प्रस्तुत करें। वास्तविक स्थिति से परिचित मंत्री ने राजकुमार को तहखाने में छिपा रखा और जाहिर किया कि राजाज्ञा का पालन किया गया है। राजकुमार के इस तरह मर जाने की खबर सुनकर दिल्ली की सेना ने फिर से कुंतल राज्य पर हमला किया। परन्तु समय पाकर कुमार रामनाथ प्रकट हुए और सुल्तान की सेना को हराकर हटा दिया। अब दुबारा हार खाकर जब सेना लौटी तो सुल्तान आग-बबूला हो गया। तब राजमहल की रखवाली करने वाली मातंगी नामक स्त्री ने कुमार रामनाथ का सिर काट लाने की प्रतिज्ञा करके सेना के साथ दक्षिण में आयी। उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। घायल होकर एक चट्टान के सहारे थके माँदे कुमार रामनाथ का सिर काटकर उसे साथ लेकर वह मातंगी दिल्ली की तरफ रवाना हुई। युद्ध में हार खाकर कंपिल राजा सपरिवार आत्महत्या करके मर गये। कुंतल राज्य मिट्टी में मिल गया। इस राज्य के राज-भंडारी के पद पर उन दिनों हुक्क-बुक्क दो भाई काम कर रहे थे। पीछे चलकर विद्यारण्यजी की सहायता और दिशा दर्शन पाकर विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की। यह इतिहास में दिखने वाला आगे का कदम है।

इस कथा की घटना चौदहवीं सदी के आरंभ में घटी। कवि ने इसे दो सौ साल बाद लिखा सोलहवीं सदी के आरंभ में। संभवतः इस अर्से तक कथानायक कुमार रामनाथ का वृत्तांत मुखा-मुखी प्रचलित होकर लोकप्रिय बन गया होगा और कुमार रामनाथ पुराण-पुरुष की तरह प्रख्यात भी हो गया। तेरहवीं सदी के उत्तरार्ध में मुसलमानों के हमले शुरू हो गये और इन हमलों से देश की रक्षा; धर्म की रक्षा करते हुए हिन्दू जाति को इन मुसलमानों के हमलों से कई बार बचाकर देश जाति और धर्म की रक्षा करने वाले यह वीर हिन्दुओं के लिए अवतार पुरुष के समान लगे होंगे। इसके अलावा उनका शील और व्यक्तित्व—इनके कारण भी वह उन्नति स्तर पर पहुँच गया था। यों जनता में प्रचालित पुरानी कथा को नंजुंड कवि ने अपने काव्य में विस्तार के साथ वर्णन किया है। इस काव्य के अनुसार कुमार रामनाथ अर्जुन का अवतार है। पहले स्वर्ग में अर्जुन के द्वारा तिरस्कृत उर्वशी ही रत्नाजी के रूप में अवतरित होकर कुमार रामनाथ (अर्जुन का अवतार) की सत्य परीक्षा लेने आयी है। उनके शत्रु जो राक्षस थे वे मुसलमान होकर जन्मे। इन दुष्टों को दंड देने एवं शिष्टरक्षण करने के ही लिए इनका (अर्जुन का अवतार माने जाने वाले कुमार रामनाथ का) अवतार हुआ। इसीलिए इन्हें दैव-बल पूर्ण रूप से रक्षक बनकर इनकी रक्षा करता है। इनका घोड़ा इन्द्र के उच्चैश्रवा (घोड़े) के अंश से संभूत है। इनके हथियार भी अप्रकृत है। काव्य में दिखने वाला अलौकिक वातावरण इसके लिए पुराण के रंग से रंग दिया है। कुमार रामनाथ का सिर काटकर ले आने की जो आज्ञा मंत्री को कंपिलराज ने दी थी तब देवेन्द्र से आज्ञप्त दूत ने आकर कुमार रामनाथ के प्रतिरूप एक सिर बनाकर देता है। उनके उस काया सिर के साथ उनकी पत्नियाँ

जो प्रतिकृतियाँ ही थीं (सहगमन) सती होती है। जब यह सारा इधर होता रहता है तब कुमार रामनाथ उधर अपनी पत्नियों केसाथ और अपनी माँ के साथ आराम से से रहता है। कुमार रामनाथ के सिर काटकर के आने की प्रतिज्ञा करने वाली मातंगी पहले की गांधारी का अवतार है। इन मुसलमानों को तीन बार ध्वंस करने के बाद कुमार रामनाथ को मालूम पड़ जाता है कि अब अपने इस अवतार का कार्य समाप्त हुआ। इस बात को वह अपने आप मित्रों से पहले ही कह देता है और तब रणरंग में प्रवेश करता है। उसे थकावट मालूम पड़ते ही ध्यानासक्त हो समाधि में लग जाता है। उनके प्राण ले जाने के लिए कैलाश से विमान आता है। उसमें बैठकर वह शिव जी के पास कैलाश जाता है। शिवजी उसकी प्रशंसा कर उसे गणपद (शिवजी के गण परिवार) में स्थान देकर गौरवान्वित करते है। उसके इस भौतिक सिर को देख देहली के सुलतान की लड़की मूर्छित होती है और मर जाती है। इस सिर को देहली में रखे रहना पंडितों के कहने से अशुभ मानकर सुल्तान उसे वापस भेज देता है। वह गंगा का स्पर्श होने मात्र से शिवलिंग बन जाता है।

नंजुंड कवि ने लोक प्रचलित इस पुण्य कथा को, पंडितों के कहने पर लिखा—ऐसा स्वयं बताते हैं। उनके कथन से यह भी विदित होता है कि पंडितों ने नंजुंड कवि को ही यह कथा लिखने योग्य मानकर इन्हें लिखने की प्रेरणा दी। इस नंजुंड कवि के पूर्व-पुरुष केवल कविता करने में ही दक्ष नहीं थे बल्कि वे शूर-वीर एवं धर्मनिष्ठ भी थे। इनकी वंश परंपरा ही इन गुणों के लिए प्रसिद्ध थी। इनके पिता बड़े शूर थे, पिता के बड़े भाई बड़े वीर थे, इनके चचा विजय अपने स्वामी नंजराज के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी। इनके दादा "प्रभु कुलाग्रगण्य विजय नृपाल" स्वयं थे। इस तरह क्षत्रिय कुलोत्पन्न कथानायक बनने योग्य गुणों से युक्त था यह कवि। और काव्य लिखने में भी दक्ष था। यह कवि पदवाक्य प्रमाण को जानने वाला ज्ञाता था। कवि स्वयं बताते हैं—"अन्य चंपू काव्य रचने वाले कवियों की तरह मैं भी राज सभा के पंडितों को संतुष्ट करने के लिए लिख सकता हूँ। परन्तु महाजनों की प्रार्थना पर उन पर के प्रेम के कारण इस कथानक को लिख रहा हूँ।" अपना यह काव्य चंपू काव्य के लक्षणों युक्त हो, इसलिए उन्होंने उस काव्यबन्ध में काव्य शास्त्रोक्त संप्रदायिक वर्णन को स्थान दिया है।—जैसे समुद्र वर्णन, कनकाचल वर्णन, उसके दक्षिण की ओर स्थित कर्नाटक प्रदेश का वर्णन, यहाँ की नदियाँ, उद्यान, धान के खेतों का वर्णन आदि आदि से संबंधित सैकड़ों पद्य इस काव्य में संप्रदाय रक्षण करने वाले पहरेदारों की तरह यत्र तत्र दिखाई पड़ते हैं। नृपतुंग कवि ने कन्नड प्रदेश की जो सीमा रेखा बतायी थी थी वही इस नंजुंड कवि के समय तक भी बनी रही। वह सीमा रेखाएँ—गोदावरी और इधर कावेरी हैं। उन्होंने यहाँ की नदियों का यहाँ की प्रकृति का और खेतों का तथा निवासियों का बहुत ही आकर्षक वर्णन किया है। इस कवि का अपने देश पर जो प्रेम है वह प्रशंसनीय है। वर्णन में नयापन है परंतु लगता है कि औचित्य की सीमा शायद लाँघ गया है। छः हजार सांगत्य पद्यों वाले इस विशालकाय ग्रंथ को इसकी विशिष्टता को घटाये और संक्षिप्त करके आधा बना सकते हैं।

"कुमारराम सांगत्य" अर्थात् रामनाथ का चरित्र एक लोकप्रिय आख्यान होने के कारण कथानायक की वीरता बताने के लिए इस समूचे ग्रंथ आधा हिस्सा सुरक्षित

है । यह सांगत्य छन्द वीररस को प्रतिपादन करने के लिए उतना उपयुक्त न होने पर भी पाठकों के हृदयों में, कवि, जो कहना चाहते हैं, उसे, अच्छी तरह बिठाने में सफल हुए है । कक्तिति के रुद्रदेव कंपराजा पर सेना समेत हमला करने के लिए आ रहा है—इस बात को सुनकर युद्धोत्साही राजा के उत्साह का कैसा पौरुषपूर्ण वर्णन किया है ! कि पढ़ते ही बनता है । कवि कहता है—कि राजा उत्साह से मूँछों पर ताव देने लगे, युद्धोत्साह के हर्षातिरेक से रोमांच हुआ, आँखों से आग बरसने लगी;—यों राजा रौद्र रूप धारण कर हुंकार भरने लगा । फिर भी रुद्रदेव की सेना समुद्र को देखकर जरा घबराया । तब कुमार रामनाथ ने आकर पिता से कहा—"हे पिता ! जंगल कितना बड़ा है, आग की चिनगारी कितनी छोटी ? हाथी कितना बड़ा, सिंह अपेक्षाकृत कितना छोटा ? सागर कितना विशाल और बाडव कितना छोटा ? आप निश्चित रहें, इस बड़ी सेना को काटकर कौओं और गीधों के लिए न्यौता दूंगा । इस रुद्र को जीतकर ही रहूँगा, आप देखते रहिए ।"—यों कहकर कुमार रामनाथ ने सेना में प्रवेश किया, और पराजित कर रुद्र की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।

इस युद्ध वर्णन और युद्ध में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के हथियार आदि बातों का वर्णन पढ़ने पर ऐसा लगता है कि कवि युद्ध-विज्ञान में बड़ा पारंगत था । पुराने जमाने में हमारे यहाँ युद्ध कैसे होते थे इसका दिग्दर्शन इस वर्णन से हो जाता है । यह इस कथानक का एक पहलू है; इसका दूसरा पहलू है शील संपदा का महत्व दिखाना; इसके लिए रानी रत्नाजी का प्रणय प्रसंग उपांष्टभक के रूप में आया है जो बहुत सुन्दर है । कथानायक के पराक्रम का वर्णन यद्यपि कवि को प्रिय है तो भी इससे ज्यादा उनकी शील-संपत्ति विशेष प्रिय है । काव्य के आरंभ में ही कवि ने इस अपनी रुचि को स्पष्ट किया है । कई रूपों में अपने कथानायक की प्रशंसा भी की है । कवि कहते हैं—"लोग पूछेंगे कि यह पुण्यकथा नहीं, पुराणकथा नहीं, पूर्वेतिहास नहीं,—ऐसी कथा को सुनेंगे कैसे ?"—ऐसे सवाल करने वालों के लिए कवि जवाब देता है—"कथॅय विचारिसि नोडिदडिदु पुण्य । कथॅयल्लदल्ल, बॆरॉन्दु पृथुजघनदनीरॆं पिडिय-लॉल्लदन स । त्कथनविदरॉळदॆरिद आवकुलदलि पुट्टलि परवॆण्णळ । भाविसनावनवनिगॆं, देवरु सरियल्ल, नर पशुगळ बलु । दावणियवनॆं कॆळुवनु"—तात्पर्य यह है कि—"अरे लोगों ! इस कथा को पढ़ो, इस पर विचार करो, यह कोई ऐसी वैसी कथा नहीं, इस कथा का नायक कोई साधारण व्यक्ति नहीं । यह परदार सहोदर है, बहुत बड़े धर्म-वीर है, शील संपत्ति के अधिकारी सद्गुण संपन्न शीलवान् महापुरुष और वीर है । ऐसे व्यक्ति देवता के बराबर होता है । इसलिए इसे सब लोग पढ़ें ।"—

ठीक ही तो है ! कुमार रामनाथ पर मोहित होने वाली रत्नाजी अनुपम सुन्दरी है । बसंत ऋतु में मनाये जाने वाले एक उत्सव पर उस समारोह को देखने के लिए छत के छज्जे पर खड़ी रानी रत्नाजी ऐसी सुन्दर लग रही थी कि मानो वह इंद्र की रानी स्वयं हो या स्वर्ग की अप्सरा रंभा ही हो अथवा कामदेव की पत्नी रति देवी ही स्वयं आकर खड़ी हो —आदि आदि—। ऐसी परम सुन्दरी जब खड़ी उत्सव देख रही थी तो उस उत्सव में भाग लेने वाले शूरों में कुमार रामनाथ दिखे । वह रत्नाजी की आँखों में पुष्प-बाण रहित मंमथ था और वज्रायुध रहित इन्द्र के समान एवं कलंकरहित चन्द्रमा की तरह लगता था । इस सुन्दर मूर्ति को देखकर रत्नाजी

सोचने लगी—"क्या ऐसा रूप मनुष्यों में हो सकता है ? यह मनुष्य नहीं, देवलोक से उतरा हुआ कोई गंधर्व है।"—इस सुन्दर मूर्ति को देखते-देखते वह स्वयं अपने को भूल गयी। लज्जावत हुई; पुष्पबाणहत होकर असह्य वेदना का अनुभव करने लगी। कुमार की सुन्दर मूर्ति को बार बार देखती हुई उसे अपनी आँखों में बसाकर, कहीं आँखों से बाहर निकल न जाय, इसलिए आँखें बन्द कर लीं। साथ ही साथ धर्माधर्म विवेचना की भी दृष्टि न रही। कुमार रामनाथ पुत्र के समान था। रत्नाजी उनकी छोटी माँ थी। माँ का पुत्र के प्रति इस तरह का प्रेम धर्मसंमत नहीं था। फिर भी रत्नाजी कुमार के सौंदर्य पर मुग्ध हो गयी। इस तरह आगे आने वाले समस्त दुरंत के लिए उसने अंकुरार्पण किया। इस प्रसंग का मनोहारी वर्णन कवि ने जैसा किया है उसी से कुमार रामनाथ की कैलाश-यात्रा का वर्णन किया है। यह भी उतना ही मनोहर है। "कुमार राम सांगत्य" कथावस्तु, पात्र एवं रस निरूपण—सभी दृष्टियों से सुन्दर है। रस से पुष्ट बनाकर भाव से शक्ति देकर नये विधान से पल्लवित कर इस काव्य को रसिकजनाह्लादक बनाकर कवि ने प्रस्तुत किया है। इन सबसे बढ़कर यह एक ऐतिहासिक काव्य है। ऐसे काव्य कन्नड में बहुत ही कम, नहीं के बराबर है। काव्य के आरंभ के बाईस अध्यायों के होरसल, बल्लाल, लाकतीय वंशी राजाओं के साथ के युद्धों का वर्णन है, फिर दिल्ली के सुल्तान और कुमारराम के बीच हुए युद्धों का वर्णन है जो उस समय के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं; उस जमाने के जन-जीवन का भी चित्रण हुआ है जो बड़ा ही मूल्यवान् है। इन कारणों से इस काव्य महत्व बढ़ गया है।

कन्नड में "जयनृप काव्य" "श्रीपाल चरित" "नेमि जिनेश संगति" (संगति—कन्नड में समाचार) इत्यादि काव्यों के लेखक मंगरस (तीसरा) था। इनके पिता का नाम, विरुदावली आदि नंजुंड कवि के दादा ही के हैं। इसलिए मंगरस इस नंजुंड कवि के चाचा ही हो सकते हैं। इस तरह अनुमान करने के लिए काफी गुंजायश है। मंगरस के काव्यों में एक संयुक्त कौमुदी है; यह स्पष्ट है कि इस काव्य रचना का काम ई० सन् 1508 है। नंजुंड कवि का समय करीब 1525 होगा। परन्तु इस चाचा ने और भतीजे ने एक दूसरे का स्मरण नहीं किया है। इतना ही नहीं यह चाचा जैन भतीजा शैव थे। नंजुंड कवि ने शैव मत को अपनाया होगा। अथवा एक ही परिवार के भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न मतानुयायी रहे हों; ऐसा होना उस जमाने में कोई असंगत बात नहीं है।

श्रीमान् एस० अनंत रंगाचार्य जी ने अपनी "कुमार राम सांगत्य संग्रह" की भूमिका में इस लोकप्रिय कुमारराम की कथा को लेकर काव्य रचना करने वाले कवियों की एक बड़ी सूची दी है। इस नंजुंड कवि के अलावा पाँचाल गंग नामक कवि ने "कुमारि राम सांगत्य" के नाम से, नाग संगय्या ने "परदार सोदरराम सांगत्य" के नाम से, महलिंग स्वामी ने "बालकुमार रामन सांगत्य" के अभिधान से, कवि जाण गंगय्या ने "चेन्नराम सांगत्य" के नाम से, और किसी एक गंग ने "कुमार रामचरित" के नाम से इसी कथा को लेकर अपने अपने ढंग से लिखा है। इस सब के अलावा किसी एक अज्ञात कवि ने कुमारराम सांगत्य लिखा है। इसी कथानक को लेकर अनेक "यक्षगान" भी प्रचलित है। यह कथा तेलुगु और तमिल में भी ग्रंथ के रूप में मौजूद

है—ऐसा कहा जाता है। समय की दृष्टि से एवं काव्य की दृष्टि से भी नंजुंड कवि का ही काव्य उत्तम और अग्रगण्य है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से गंगकवि और कवि नायसंभय्या की कृतियाँ अधिक सत्य के निकट है; इसके प्रमाण के रूप में श्री अनंत रंगाचार्य ने कुछ उदाहरण भी उद्धृत किये हैं। इनमें कुमाररस के घोड़े का विषय भी उद्धृत है। उस घोड़े को नंजुंड कवि की तरह दैवदत्त न कहकर यों घोड़े के बारे में बताया है—"घोड़ा ओरंगमल के ऐंघटिराजा के पास था, इसका नाम उसने "बॉल्ल" रखा था। यह इतना नटखट था कि किसी को चढ़ने नहीं देता, यहाँ तक कि कोई उसके पास फटक नही सकता था। इतना नटखट और जबरदस्त था, वह घोड़ा। यह घोडा किसी के वश में न आता देखकर कोई मुंगुलिराय नामक व्यक्ति उसे पालतू बनाने के लिए अपने पास ले आया, इसे वह भी वश में नहीं ला सका तो देहली के सुलतान उसे अपने पास ले गया; वहाँ भी यही हाल रहा तो वह वापस ओरंगल के प्रताप रुद्रदेव के पास आया। प्रतापरुद्रदेव के मंत्री लिंगण्णा ने उस घोड़े को पकड़ा और वश में लाकर दलवाई(फौजी अधिकारी)का पद पाया। इस घोड़े को कुमारराम ने साधकर पालतू बनाया। इसे देख लिंगण्णा खुश हुए और घोड़े के साथ कुम्मट नामक स्थान में आया।—यह हुआ उस घोड़े का वृत्तांत। अब रत्नाजी का वृत्तांत सुनिये—नंजुंड कवि ने बताया है कि रत्नाजी के मोह से कुमारराम का मुक्त होना अर्जुनांश संभूत होने के कारण। परन्तु गंग कवि ने कहा है कि कुमारराम के अपने चित्तस्थैर्य के कारण। कंपराज ने पुत्र कुमारराम ने सिर काट लेने की जो आज्ञा दी तब नंजुंड कवि के अनुसार इन्द्रदूत ने आकर माया सिर बनाया है; मगर इनके अनुसार एक दूसरा सेवकराम था जिसने कुमारराम के लिए अपना सिर काट कर दिया था। इससे इस सेवक की स्वामिनिष्ठा अच्छी तरह प्रदर्शित हुई थी। मातंगी ने जब राम का सिर काटा तब वह समाधि-अवस्था में था—ऐसा नंजुंड कवि ने बताया तो यहाँ गंग कवि ने बताया है कि तेलुगु देश की सुन्दरियों से वह पराजित हुआ था और बैरियों ने जब सिर माँगा तो स्वयं ने काटकर दे दिया।

कवि गंग का समय कवि चरितकारों के अनुसार ई० सन् 1650 के करीब का है। ऐसा लगता है कि इस अरसे तक पुराण और इतिहासों की खोजबीन का काम आरंभ हुआ होगा। अन्यथा यह भी हो सकता है कि विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित इस कथा के दोनों कवियों ने अपने अपने ढंग से विभिन्न रूपों में लिखा हो।

चेरमांक 1526—यह चेरमांक राजपूज्य गंगप्प शेट्टी का पुत्र और चॅन्नवीरेश का शिष्य था—इन्होंने गुब्बी के मल्लणार्य की कृपा से "चेरम काव्य" नामक कृति की रचना की। इसमें 555 पद्य हैं जो वार्धक-षट्पदी में हैं। पूर्व कवियों में अन्य शिव-कवियों के साथ वाल्मीकि की भी स्तुति की है। इसकी कथावस्तु सौंदरनंबी के सम-कालीन चेरम का इनके साथ कैलासधर्म जाने का वृतांत है।

चेरमांक एक उत्तम कवि है। इन्होंने अपने को "नवरसभाव लक्षण निपुण" कहा है जो सर्वथा उचित ही है। इनके पद्यों को पढ़ते समय कवि लक्ष्मीश का स्मरण हो आता है। कुवलयानन्द के रचयिता जायेन्द्र ने इनके पद्यों को उद्धृतकर अपनी कृति में उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे इनकी कविता का महत्व स्पष्टतया व्यक्त होता है। किसी अलंकार का लक्षण बताकर उसके लक्ष्योदाहरण के रूप में ये

उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं।

वीरभद्र कवि (1530)—यह वीरभद्र कवि विरुप राजा का बेटा है। इन्होंने शिवभक्त चेरमांक की कथा को "त्रिभुवन तिलक" के नाम से सांगत्य में लिखा है। राजवंशोत्पन्न इस कवि ने "वीरभद्र विजय" नामक एक चंपू-काव्य लिखा है; इसके अलावा "पार्वती वल्लभ शतक", "उमामहेश्वर शतक", "प्राणनाथ शतक", "श्रीकंठ सोमेश्वर शतक", "कंठशतक"—नामक पाँच शतकों की भी रचना की है। वीरभद्र विजय चंपू की कथावस्तु दक्ष-यज्ञ को ध्वंस करने वाले वीरभद्र का वृत्तांत है। इस कथा के साथ शिवजी का शरभावतार धारण कर नरसिंह को निग्रह करने का प्रसंग भी आया है। कवि ने स्वयं कहा है कि उनका यह काव्य "नवरस भरित नव्य काव्य दिव्यं" है। पूर्व कवियों की स्तुति करने के अवसर पर हंपी के हरिहर कवि और केशिराज का स्मरण किया है। इनके इस "वीरभद्र विजय" के प्रथम छः प्रकरण में सांप्रदायिक वर्णन भरा पड़ा है। इस वर्णना भाग में ऐसे महत्व-पूर्ण काव्यगुण नहीं दिखते। इनकी शैली ललित और धारावाही है। वर्णनों में कोई नवीनता नहीं है। कवि समयानुसरण किया गया है। यत्रतत्र श्लेष है। कहीं कहीं तो प्रकृति वर्णन एक तरह से से चर्वित-चर्वण है। वीरभद्र कवि अपने पिता और पूर्व कवियों से भी काफी प्रभावित है।

कुमार व्यास युग में वीरशैव पुराणों को चंपू काव्य-बंध में लिखने वाले तीन और कवि हुए जिनका स्मरण करना अस्थानीय नहीं होगा। (1) सदानन्द शिवयोगी (1554) ने "रामनाथ विलास" को, और (2) मुरुगि देशिकेन्द्र (1560) ने "राजेन्द्र विजय" को, (3) सिद्धलिंग शिवयोगी (1600) "भैरवेश्वर पुराण" को लिखा है। ये तीनों विरक्त संन्यासी लगते हैं। सदानन्द शिवयोगी के काव्य "रामनाथ चरित" से मालूम पड़ता है कि ये "नवबाण कवि", "विचित्र विद्वत्कवि कुल सार्वभौम"—विरुद्ध विभूषित थे और इनकी कृति का "रामनाथ गुरुचरित" एक दूसरा भी नाम था। इनके इस चंपू काव्य में बीच बीच में षट्पदियाँ भी हैं—यह एक विशिष्टता है। मुद्रापुर के रामलिंग मूर्ति से दीक्षा लेकर, इस दीक्षा लेने को झूठ मानने वालों के सामने शिवलिंग से ही साक्ष्य दिलाकर वीरशैव मत का प्रसार करने वाले रामनाचाचार्य का वृत्तांत इसकी कथावस्तु है। मुरुगि देशिकेन्द्र के "राजेन्द्र विजय" अथवा "हम्मीर काव्य" के लिए मूल "सिंगिराज पुराण" है। वहाँ के अनिमिषय्या की कथा को थोड़े हेरफेर के साथ प्रस्तुत करके "हम्मीर काव्य" को लिखा है। मूलकथा का मनुराजा ही हम्मीर राजा है। हम्मीर काव्य के संपादक श्री एम. एस. सुंकापुर बताते हैं कि यह नाम गुजरात के राजा का नाम है और कन्नड में इसका प्रयोग गुजरात और कर्नाटक के बीच का संबंध द्योतित करता है; इसके अलावा चालुक्यवंशी राजा गुजरात में राज करते थे।—परन्तु इस विषय पर अधिक संशोधन करना आवश्यक प्रतीत होता है। हम्मीर काव्य प्रचुर पांडित्य के कारण लोहे का चना बन गया है। सिद्धलिंग शिवयोगी के भैरवेश्वर पुराण का एक दूसरा नाम "राजेन्द्र पुराण" भी है। किम्केरी के आराध्य नंजुंड के द्वारा लिखित सांगत्य काव्य से इस पुराण का उद्गम हुआ है।—यह ध्यान देने योग्य बात है।

गुरुलिंग विभु (1550)—इस कवि ने भिक्षाटन चरित" नाम को "कवि-

राय", "वस्तुक कवीन्द्र-वर्णक कवीश्वर कर्णाभरण" आदि कहकर अपने आपको सम्मानित किया है। शिवजी का द्वारिका जाना और वहाँ अपने अजकपाल को भरने के लिए श्रीकृष्ण से भिक्षा माँगना, तब उनका अपने ही सिर के रक्त से न भर सकने के कारण महाभारत का युद्ध करवाकर उस रक्त से शिवजी के उस अजकपाल को भरना—यही इस काव्य की कथावस्तु है। कहा जाता है कि पहले सूत-पुराणिक ने नैमिषारण्य के निवासी सनकादि को यह कथा कह सुनायी थी। कवि कहते हैं कि उसी को सुना रहा हूँ। ऐसा लगता है कि यह कवि आशु, मधुक, चित्र और विस्तार—इन चारों प्रकारों में काव्य-निर्माण करने में चतुर थे। कवि पाठकों को आश्वासन देते हैं कि यह मेरी कृति "रसिक हृदय रूपी रंगमंच की नर्तकी" की तरह मनमोहक है। और कहते हैं कि यह उनकी कृति "रसिकाभरण" है। कृति नाम के अनुरूप अन्वर्थ है।

यह "भिक्षाटन चरित" 155 पद्यों का एक छोटा काव्य है। यह वार्धक षट्पदी में लिखा गया है। चमत्कारयुक्त इस लघु काव्य में कहीं अनुचित या अनावश्यक वर्णन नहीं कथानक सीधा बताया गया है। काव्य नीरस नहीं है। कवि बड़े पंडित हैं, अलंकार-प्रिय भी है। श्लेष आदि शब्दालंकार काफी मात्रा में प्रयुक्त है। परंतु वे क्लिष्ट नहीं। इस कवि ने शृंगार का भी प्रयोग किया है तो भी अन्य अनेक कवियों की तरह अति शृंगार वर्णन नहीं है। श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग साधारण पाठकों के लिए शायद कुछ क्लिष्ट हो। इस कारण से इस ग्रंथ की कन्नड में एक व्याख्या भी लिखी गयी है। गुरुलिंग विभु लघुकाव्य निर्माताओं में श्रेष्ठ कवि है।

किक्केरियाराध्य नंजुण्ड (1550)—यह "भैरवेश्वर काव्य" के निर्माता हैं। वीरशैव पुराण को सांगत्य में लिखने वाले कवियों में यह अग्रगण्य हैं। इनका निवास स्थान किक्केरी है, इसलिए इसका यह नाम है। अपने काव्य के विषय में बताते हैं—

"भक्तिय ताण, संमुक्तिय सदन, वि। रक्तिय सीमॆ, मोहनद

सूक्तिय सिरि, सरसोक्तिय नॆलॆयागि। व्यक्तवागिर्पुदी काव्यं" अर्थात्—"यह भक्ति, संमुक्ति, विरक्ति का आकार है। सूक्ति संपदा से युक्त सरस सुन्दर काव्य है।" इसमें पाँच संधियाँ हैं और 127 सांगत्य हैं। काव्य छोटा है। काव्य से अधिक यह पुराण के रूप में प्रसिद्ध है। पुरातन बसव आदि प्रथमों के द्वारा वीरशैव मत का उद्धार होने के पश्चात् कालगति के कारण वीरशैव का ह्रास हुआ। तब इसका पुनरुद्धार करने के लिए पटशिव ने कालसंहार नामक गणेश्वर को मर्त्यलोक में भेजा। वह आंध्र देश में संगमराज—हैमवती नामक राजदंपती के पुत्र होकर जंमे और भैरवराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। पौराणिकों के द्वारा शिवशरणों की कथाएँ सुनी और प्रसिद्ध शिवभक्त बने। एक दिन शिवजी ने स्वप्न में इन्हें दर्शन दिया, और कहा कि माल्लिपट्टण में गुरु कृपापात्र बनकर सासलु नामक स्थान में सोमेश्वर भगवान् की पूजा करो तो नित्यानन्दावस्था प्राप्त होगी। भैरवराज ने इस स्वप्न में जैसा शिवजी ने आज्ञा दी वैसे ही किया अनेक दैवीलीलाएँ दिखाकर फिर कैलास को चले गये।—यही इस काव्य की कथावस्तु है। कथानायक की भक्ति का विकास-क्रम और उनकी आत्मनिर्भरता आदि को अप्रधान बनाकर उसकी अतिमानव लीलाओं के वर्णन को अधिक प्रधानता कवि ने अपने काव्य में दी है। काव्य की गति धारावाही है, शैली सरल, वर्णन सुन्दर है। काव्य में विशेष वर्णन की अधिक गुंजायश नहीं है। सत्रहवीं

सदी के उत्तरार्ध में शांतलिंग देशिक ने इस काव्य के विवरण के रूप से "भैरवेश्वर काव्य कथासूत्र रत्नाकर" को गद्य में लिखा है।

सांगत्य छन्द में ही लिखित दो और वीरशैव पुराण हैं—(1) बसव कवि का लिखा "चिक्कय्या-सांगत्य" और (2) पर्वत देव का लिखा "नन्नय्यगळ चरित"। यह बसव कवि किक्केरी नंजुंडाराध्य का समकालीन है। चोर चिक्कय्या बसवण्णा को मारने आये और निर्व्याकुल होकर मुक्ति को प्राप्त किया।— "चिक्कय्या का सांगत्य" में उक्त कथा है। इसका एक दूसरा नाम "भक्ति मोहसार" भी है। परशिव का भक्त चिक्कय्या स्त्री-मोह का शिकार न बनकर आत्म-यज्ञ में अपनी आहुति देकर मुक्त हुए—यही इसकी कथावस्तु है। पर्वतदेव बसव कवि से 250-30 वर्ष अर्वाचीन है। यह "नन्नयय्यगळ चरित्र" करीब 1550 पद्यों वाला ग्रंथ है। इसमें बसवण्णा के समकालिक "नन्नय्या" नामक शरण का वृत्तांत है। बसव कवि की तरह पर्वतय्या की भी रचना सरल, सुलभ, सुन्दर है।

विरक्त तोंटदार्य (1560)—इस विरक्त तोंटदार्य ने अपने को "गुरु निरंजन पद कमल सौरभासक्त षट्पद" "षट्स्थला चार संपन्न", "शैव पंचाक्षरी मंत्र हृदय", "अखिल शास्त्रार्थ कोविद"—आदि विशेषणों से विभूषित किया है। इन्होंने "सिद्धेश्वर पुराण", "कर्नाटक शब्द मंजरी", "मनोविजय तात्पर्य", "मग्गेय मयिदेव शतकत्रय टीका"—इन ग्रंथों का निर्माण किया है। इनमें गुरु पर्वतेन्द्र थे। कवि ने अपने को तोंटक सिद्धलिंग यति की परंपरा से संबद्ध गूळूर सिद्धवीरेश्वर के दयाभाजन कहा है बड़े गर्व के साथ। इन्हें तोंटद सिद्धलिंग देशिक, मरितोंटदार्य—कहकरभी निर्देशकि या जाता है। "निरंजनलिंग" अंकित से इन्होंने काव्य रचना की है। पूर्व कवियों में पाल्कुरिके सोमनाथ, पद्मरस, हरिहरदेव आदि का स्मरण किया है, इन्होंने अपनी कृतियों में।

काव्यों में "सिद्धेश्वर पुराण", "पाल्कुरिके सोमनाथेश्वर पुराण" और "कर्नाटक शब्दमंजरी"—ये तीनों वार्धक षट्पदी में हैं। इनके दो 1500 पद्यों वाले बृहत्-काय ग्रंथ हैं। कर्नाटक शब्द मंजरी में केवल 120 पद्य हैं। "सिद्धेश्वर पुराण" निरंजन गणेश्वर के अवतार माने जाने वाले सुप्रसिद्ध तोंटद सिद्धलिंगयति का वृत्तांत बताने वाला पुराण है। यही इस पुराण की कथावस्तु है। इस ग्रंथ में पच्चीस पंक्तियाँ हैं। इनमें 22-23-24 संधियों—इन तीनों में—400 पद्य हैं। इनमें केवल एकोत्तर-शत स्थल का विवरण के साथ विस्तृत वर्णन है। अन्य संधियों में कथानायक का अवतार, उनकी दैवीलीलाएँ, परमत खंडन, इत्यादि विषय निरूपित है। "पाल्कुरिके सोमनाथेश्वर पुराण" भृंगी के अवतार माने जाने वाले पाल्कुरिके सोमेश्वर का वृत्तांत बताने वाला पुराण है। परंतु इसमें सोमेश्वर की अपेक्षा अन्यान्य सैकड़ों शिवशरणों की कथाएँ ही अधिक हैं। यह एक शिवशरणों का कथाकोश है। कवि का कथन है कि गूळूर सिद्धेश्वर की आज्ञा से उन्होंने यह काव्य लिखा। "कर्नाटक शब्दमंजरी" प्राचीन कन्नड शब्दों का अर्थ बताने वाला एक शुद्ध कन्नड का कोश है। शुद्ध, तत्सम तद्भव शब्दों का कवि प्रयोगों के आधार पर अर्थ बताया गया है, इसलिए कन्नड विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। कवि का मनोविजय काव्य गुरु बसव कवि के मनोविजय काव्य की व्याख्या है। "मग्गेय शतकत्रय टीका"—जैसे नाम से ही विदित होता कि यह मग्गेय मयिदेव के तीन शतकों की—ऐ पुरीश्वर शतक,

शिवाधवशतक, शिवावल्लभ शतक—व्याख्या है। पाल्कुरिके सोमनाथ पुराण में कवि ने बताया हैं कि उन्होंने "चिदानंद सिंधु" नामक चंपूग्रंथ भी लिखा है। इन्होंने "सिद्ध-लिंगेश्वर शतक" लिखा है, और "पाल्कुरिके सोमनाथ के पंच-गद्यों की टीका" भी लिखी है। परंतु ये ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। सिद्धेश्वर पुराण में कवि ने अपनी कविता की भूरि भूरि प्रशंसा की है। काव्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं है। यह एक अच्छे पुराण कर्ता हैं।

शान्तेश (1561)—यह शांतदेशिक के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। अमरगुंड के मल्लिकार्जुन की आज्ञ, के अनुसार सूली पर चढ़ने वाले गुरुभक्त के वंश में पैदा हुए थे। विरक्त तोंटदार्य ने वार्धक षट्पदी में जो तोंटद सिद्धेश्वर का चरित लिखा उसी को वार्धक षट्पदी से बदलकर भामिनी षट्पदी में लिखा। इसमें एक हज़ार पद्य हैं। कहा जाता है कि तोंटद सिद्धलिंग यति ने अपने शिष्य चन्द्रशेखर को भुवनकोश, धर्मा-धर्म विचार, शिव की पंचविंशति लीलाएँ षट्स्थलक्रम—इनका उपदेश दिया था। इस सब को काव्य रूप में लिखने के लिए शान्तेश को आज्ञा दी। इस आज्ञा के अनु-सार कवि ने अपने इस काव्य को लिखा।—ऐसा कवि स्वयं कहते हैं। कवि को पांडित्य प्रदर्शन में विशेष अभिरुचि है—ऐसा लगता है। शांतेश की कृति में सरस सन्निवेश बहुत कम है। कविता में धारा है, संगीतमय है। इनके वर्णनों में कल्पना-विलास कम है तो भी शब्द गुंफन में रम्यता है।

अदृश्य कवि (1580)—विजय नगर के राजा प्रौढ देवराय को उनके मन्त्री जक्कणार्य ने अनेक शिवशरणों की कथाएँ सुनायी थीं जिसे इस अदृश्य कवि अथवा अद्रीश कवि ने सुना था; इसी को "प्रौढ़देवराय काव्य के नाम से अभिहित कर काव्य रूप में प्रस्तुत किया। इसमें काव्य गुणों का अभाव होने पर भी वीरशैव शरणों के बारे में जानना जो चाहेंगे उनके लिए काफ़ी सामग्री मिलती है। प्रौढदेवराय के समय के इतिहास पर भी प्रभाव पड़ता है। राजा के पास एक कंदाल पेद्द्याचार्य थे। उन्होंने भारत पढ़कर एक बड़ा जलसा करवाया। इस उत्सव को जक्कणाचार्य ने देखा तो उन्होंने प्रभुदेव के वचनों का एकोत्तर शतस्थल सूत्र व्याख्या लिखकर उसे 101 विरक्त और करस्थल के नागय्या, कल्लुकठ के प्रभुदेव आदि आदि के द्वारा जलसा करवाया। मुकुंदपेद्दि और जक्कण में वाग्वाद भी हुआ। चामरस ने एक दिन में ग्यारह पद्यों के हिसाब से "प्रभुलिंग लीला" लिखकर राजा को पढ़कर सुनायी और जक्कणाचार्य ने उसकी व्याख्या बतायी। इस तरह के कार्यक्रम से राजा खुश हुए और उन्हें राजा ने कुछ गाँव जागीर में दिये। उन्होंने चामरस को राजा का मंत्री बनाया और स्वयं अदृश्य (मुक्त) हो गये। इस इतिहांश को छोड़कर बाकी सब काव्य वीर-शैव मत से संबंधित धार्मिक विचारों से भरा है।

विरूपाक्ष पंडित—स्वयं परमेश्वर मल्लय्या के नाम से भूलोक में अवतरित होकर, भूलोक में भ्रमण करते हुए मक्का जाकर वहाँ के 700 खलिदों (शायद खलीफ़ा होंगे) के गुरु बनकर रहे, और वहाँ संप्राप्त अनावृष्टि का निवारण कर वहाँ के सुरताल (शायद कोई खलीफा ही हो) से पूजित हुए तथा "मळेय (वर्षा कराने वाले) मल्लेश"—के नाम से कीर्तिशाली हुए। इसी "मळेय मल्लेश" की परं-परा में एक सिद्धवीरेश षटस्थलज्ञानी होकर विजययगर के बड़े मठ में गुरु बनकर

रहे। इन्हीं के शिष्य रहे यह विरूपाक्ष पंडित।

सरस कर्नाटादि भाषा विशारद और वर कवि विरूपाक्ष पंडित के पास आकर समस्त शिवभक्तों ने प्रार्थना की कि "हे महात्मा ! भूलोक के समस्त शरणों की कथाओं को अनेक कवीश्वरों ने हमें सुनाया, परन्तु इस चन्नबसवेश्वर के चरित को किसी ने नहीं सुनाया—सो आप हमें यहीं सुनाइये।" इन सबकी प्रार्थना को मानकर विरूपाक्ष कवि ने "चॅन्नबसव पुराण" लिखा। कवि ने बताया है कि सदा सर्वदा मेरे हृदय में विकास करने वाले हंपीनगरी के विरूपाक्ष ही ने इस काव्य को मेरे मुंह से कहलवाया है। अतः सभी इसे सुने—इन बातों से काव्यारंभ किया है। इस पुराण में 63 संधियाँ हैं। वार्धक षट्पदी में लिखे 2900 पद्यों का एक बृहत-काय ग्रंथ है। इस काव्य को पाँच कांडों में विभाजित किया है। इस काव्य के अंत में उन्होंने ग्रंथ-समाप्ति का समय बताया है। कहा है कि शालिवाहनशक 1507 तारण संवत्सर बताया है जो ई० सन् 1587 है। इस समय यह चॅन्नवसव पुराण लिखकर समाप्त हुआ। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कवि सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में रहे। संभवतः यह कवि विरक्त होकर अपने गुरु की गद्दी पर गुरु के बाद बैठे हों। इन्होंने अपने माता-पिताआदि किसी तरह के सांसारिक या पारिवारिक संबंधों के बारे में कहीं कोई जिक्र नहीं किया है।

काव्य का नाम "चॅन्नबसव पुराण" होने पर भी इसमें चॅन्नबसव का जीवन चरित या उनसे संबंधित ही है—ऐसा कहा नहीं जा सकता। प्रथम खंड में चॅन्न बसव का अवतार, महत्व, दैवीलीलाएँ उनका व्यक्तित्व आदि के विवरण हैं। आगे के तीन खंडों में भगवान् शिव की लीलाएँ वर्णित है। पाँचवें कांड में वीरशैव का महत्व, षट्स्थल विवेचन, पुरातनों के विषय, विरक्त, अमरगण, कालज्ञान इत्यादि विषयों को बताते समय "चॅन्नवसव" की भी बात आयी है। इससे यहाँ काव्यांश से अधिक धर्मनिरूपण ही प्रधान है। कवि चरितकार का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि वीरशैव पुरातनों एवं कवियों के काल-निर्णय करने के विषय में इस ग्रंथ का उपयोग किया जा सकता है, इसके लिए यह महत्वपूर्ण है। इसमें विजयनगर के इतिहास से संबंधित कई घटनाएँ उक्त हैं।

एक धर्मवीर का वृत्तांत लेकर काव्य निर्माण करने में प्रवृत्त होकर उसमें नव-रस प्रयोग, अष्टादश वर्णन आदि को भरने का आग्रह संगत नहीं। परन्तु कवि इस आग्रह के वशीभूत होकर अष्टादश वर्णन और नवरस प्रयोग आदि का निरूपण किया है। इससे कथा प्रवाह में रुकावट आगयी है। काव्य-दृष्टि से जो नुकसान हुआ है उसे धर्म-दृष्टि से भरने का प्रयत्न हुआ है। केवल काव्य की दृष्टि से पढ़ने वाले पाठकों की अपेक्षा श्रद्धायुक्त भक्ति से इस काव्य को लोग पढ़ेंगे—बात सही है। परंतु इसमें उक्त धर्म की दृष्टि जिन में हो, वही इसके पाठक होंगे। इस चन्नबसव पुराण के संपादक स्व० एस० एस० बरूवनाल जैमिनी भारत एवं चॅन्नबसव पुराण की लोकप्रियता की तुलना करते हुए यही बात कहते हैं कि इसके पाठक वे ही होंगे जो इसमें प्रतिपादित धर्म की दृष्टि रखते हों; और उस धर्म पर आस्था रखते हों।

चॅन्नवसव पुराण लक्ष्मीश के जैमिनि भारत के बराबर लोकप्रिय न होने पर भी, उसकी बराबरी कर सके ऐसे काव्य गुणों से युक्त है। लक्ष्मीश की तरह विरूपाक्ष

पंडित भी संस्कृत और कन्नड में एक निष्णात विद्वान् थे। पांडित्य, प्रतिभा और कल्पनाशक्ति—इन बातों में दोनों बराबर हैं। किससे कौन प्रभावित है या किसने किससे क्या लिया दिया है—इन बातों की ओर ध्यान न देकर खुले दिल से इन दोनों कृतियों की तुलना करके रसास्वादन कर सकते हैं। पद गुंफन, शब्द चयन, लालित्य आदि दोनों कवियों में समान रूप से हृदयंगम है। वर्णनावैखरी भी मनोज्ञ है। चॅन्न बसव पुराण का यह सर्योदय वर्णन देखें; उदाहरण के लिए उद्धृत है—

"इंदिरन दॅसॅगॅम्पुमूडॅ, कत्तलॅयोडॅ,
मंदानिलं तंपुतीडॅ, भ्रमरं पाडॅ,
बंदुचक्रं कूडॅ, कैरवंबाडॅ, कमलं बिरिदु मगॅयॅाळाडॅ,
मुंदॉवॅ शैवाचार्यनी धरॅगॅ
बंदिदकॅ नूर्मडियागि बॅळगं तोर्प
नॅन्दु सूचिसुवंददुदय शैलाग्रदॉळ् दिनयनुदयिसिदनुरु"—भाव यह है कि—

"पूर्व दिशा में सूर्योदय की लालिमा के छा जाते ही अंधकार भाग गया, मंद समीर का संचार होने लगा, भ्रमर झंकृत हो उठे, कुमुद मुंद गया, कमल विकसने लगे—इस तरह इस सूर्योदय के लक्षण देखने से ऐसा लगता है कि आगे इससे अधिक प्रकाश देने वाले एक महान शैवाचार्य का उदय होगा जिसका प्रकाश सूर्य से भी सौगुना अधिक होगा और उससे अज्ञानांधकर दूर भाग जाएगा।" इस पद्य का पूर्वार्ध लक्ष्मीश विरूपाक्ष कवियों का है इसका उत्तरार्ध पंप कवि का मार्ग है। पूर्वार्ध में ठेठ प्रकृति सौंदर्य का चित्रण है तो उत्तरार्ध में सौंदर्य वर्णन से युक्त काव्य कथानायक का वर्णन सम्मिलित है। विरूपाक्ष पंडित का प्रकृति वर्णन मनोहर है। संपूर्ण नवम संधि इसी प्रकृति वर्णन के ही लिए सुरक्षित है। इसमें सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चाँदनी—इन्हीं का वर्णन है। इन कवि के सूर्यास्त, अंधकार आदियों का वर्णन भी बहुत ही हृदयंगम है।—अष्टादश वर्णन में प्रवृत्त कवि ने गजरे वाली और वेश्या आदियों को काव्य में लाकर पर्याप्त शृंगार वर्णन के लिए मौका पैदा कर दिया है। ऐसे प्रसंगों में प्रतिभा से अधिक कवि का उक्ति चातुर्य ही विशिष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। विरूपाक्ष पंडित का देशप्रेम भी अद्वितीय है। यत्रतत्र दिखने वाले प्रकृति का वर्णन और धान के खेतों का वर्णन आदि बहुत आकर्षक है।

विरूपाक्ष पंडित ने पांडित्य और प्रतिभा के संतुलित मिश्रण से काव्य निर्माण किया है। इससे काव्य में एक चमक आयी है। इस तरह का दूसरा कवि लक्ष्मीश ही है। रसानुभूति की दृष्टि से किससे किसने क्या लिया दिया—इस बात की चर्चा अनावश्यक है। इतना समझ लेना काफी है पाठक दोनों से उपकृत हुए हैं।

सिद्धनंजेश (1650)—यह कवि सत्रहवीं सदी के बीच में रहा। इन्होंने "राघवांक चरित", "भावरत्नाभरण", "बसव शतक", "गुरुराज चरित्र"—इन ग्रंथों की रचना की है। इनमें प्रथम अंतिम ग्रंथ उपलब्ध हैं। उन्होंने अपने "गुरुराज चरित" में बताया है कि भावज्ञ सत्कवियों को प्रिय हो, इसलिए राघावांक चरित और वीर (शैव) माहाश्वरों की संतुष्टि के लिए गुरुराज चरित को लिखा है। महाकवि राघवांक की स्तुति करके काव्य रचना का अनुभव प्राप्त करूँगा कहकर सिद्धनंजेश ने उस शिव कवि का जीवन चरित लिखा है। अपने काव्य की श्रेष्ठता का बड़े गर्व के

साथ बखान किया है। महादेव भट्ट और रुद्राणी के पुत्र के रूप में हंपी में इनका जन्म होना, अपने मामा कवि हरिहर से दीक्षा लेना, उन्हीं से दीक्षा लेना, उन्हीं से शिक्षा पाना देवराज की सभा में हरिश्चंद्र काव्य का वाचन करना, उस काव्य के विषय में हरिहर से चर्चा कर दाँत खोना और फिर से उन्हीं के अनुग्रह से दाँत पाना, गुरु से अष्टावरण की महिमा का श्रवण करना, सोमनाथ चरित्र और शरभ चरित्र आदि का लिखना, कुमार-व्यास का गर्व भंग कर उन्हें हरिहर का महत्व समझाना, अपने सिद्धराम चरित के साथ कॅरॅय पद्मरस के पास जाना, रुद्रप्रताप के सभासद कवियों को वीरेश चरित नामक अपने काव्य के द्वारा भंजन कर वहाँ से हंपी नगरी वापस आना, फिर गुरु की आज्ञा से बेलूर जाकर वहाँ समाधिस्थ होना—इन सभी बातों का विस्तार के साथ वर्णन इस ग्रंथ में प्रतिपादित है। राघवांक रचित "हरिहर महत्व" की कथा को बताते हुए हरिहर द्वारा रचित अन्य काव्यों और उनके लिखने के लिए उत्पन्न प्रसंग आदि वर्णित हैं; इसके अलावा भी अन्यान्य अनेक शरणों की कथाएँ भी में प्रतिपादित हैं।

सिद्ध नंजेश का "गुरुराज" एक शिवशरण कोश है। सैकड़ों नवीन और पुरातन शरणों की कथाएँ इसमें भरी पड़ी हैं। कवि ने बताया है कि अपने गुरु सिद्ध-नंजेश ने पत्नी चॅन्न वीरांबा को जो कथा कह सुनायी उसी को अपनी कृति में लिखा है। सारा काव्य उस पति-पत्नी के संभाषण के ही रूप में शुरू होकर आगे भी आगे भी उसी क्रम से चला है। प्रत्येक संधि के आरंभ में चॅन्नवीरांबा ज्ञातव्य विषय की सूचना देकर उसे विस्तार के साथ समझाने को कहती है और गुरु सिद्धनंजेश उनकी प्रार्थना के अनुसार समझाते हैं। इसके फलस्वरूप पंचाचार्य चरित, शिवजी की पंचविंशति लीलाएँ, लिंगार्चना विधि, षोडशोपचार विधान, बसव पुराण की कथाएँ, गण सहस्र-नाम, नवीन शरण, "शिवतत्त्व चिंतामणि" के नवीन और पुरातन शरण संत—इत्यादि के बारे में जानने की इच्छा गुरुपत्नी प्रकट करती है और गुरु उन्हें समझाते हैं। इस तरह इस पति-पत्नी के कारण वैविध्यपूर्ण इस काव्य में एक सूत्रता आयी है।

कवि सिद्धनंजेश ने अपने एक काव्य में काव्य धर्म का और दूसरे में धर्म का निरूपण किया है। राघवांक चरित में काव्य की रमणीयता है तो गुरुराज चरित में माहेश्वर-प्रिय धर्म निरूपित है। बात सहज है, युवावस्था में राघवांक चरित लिखा और ढलती उम्र में गुरुराज चरित; इसलिए एक में काव्यधर्म और दूसरे में केवल धर्म प्रतिपादित है जो वयोधर्म के भी अनुसार ठीक है। वस्तुतः दोनों कृतियों में उत्तम काव्यांश कम हैं। परन्तु कवि के दोनों ग्रंथ साहित्य के इतिहास लेखन के लिए उप-युक्त सामग्री से भरे हैं। दोनों काव्यों में कई एक कवि स्तुत्य हुए हैं। इसलिए उन कवियों के समय निर्धारण आदि के लिए सिद्धनंजेश के काव्य एक सीमा निर्देश करते करते हैं। कवि चरितकारों ने स्पष्ट बताया है कि यह "गुरुराज चरित" अनेक वीर-शैव गुरुओं और कवियों का इतिहास बताने वाला ग्रंथ होने के कारण इससे हमें बहुत सहायता मिली। अनेक अंश इससे अनुवाद करके हमने इस कविचरित में दिये हैं। कुछ कवियों का समय निर्धारण करने के लिए भी यह हमें बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

सर्वज्ञ—जिला धारवाड़ में "मासूर" नामक एक छोटा गाँव है। वहाँ बसव-रस—मल्लम्मा नामक पति-पत्नी रहते थे। ये आराध्य ब्राह्मण थे। बहुत समय तक इनकी कोई संतान न थी। पुत्र-हीनता के कारण दुखी होकर बसवरस ने काशी

जाकर पुत्रकांक्षा से भगवान् विश्वेश्वर की परम भक्ति से पूजा की। भगवान् से अनुग्रहीत होकर अपने गाँव की तरफ़ लौटा। लौटते हुए रास्ते में अंबलूर नामक गाँव में एक कुम्हार के घर पर ठहरे। इस घर में रहने वक्त एक घटना हुई। कुम्हार के घर में माली नाम एक विधवा रहती थी जिससे दैवभक्त आराध्य ब्राह्मण बसवरस का प्रेम हो गया। इस बसवरस और कुम्हारिन माली के प्रणय के फलस्वरूप उसका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जन्म से ही दैवभक्त यह बच्चा जैसे जैसे बढ़ता गया तैसे तैसे इनकी तीक्ष्ण-बुद्धि सूक्ष्म दृष्टि, सत्यप्रेम, न्यायनिष्ठुरता आदि गुण भी विकसित होते गये। संभवतः जब इन्हें अपने जन्म का वृत्तांत विदित हुआ तब इसका सत्वशाली आत्माभिमान फन फैलाकर फुंफकार करने लगा। तब लौकिक माता-पिता का निराकरण कर कहने लगा—"तंदें विप्रनु अल्ल। तयिमालियु अल्ल। चंद्रशेखरन वरदिंद युट्टिदा कंद नानॆंद सर्वज्ञ॥" अर्थात्—"न पिता ब्राह्मण है, न माता माली है, भगवान् चंद्रशेखर के वरप्रसाद से उत्पन्न बच्चा मैं हूँ।"—यह हुआ माता पिता के विषय में उसका विचार। माता के बारे में उसकी विचारधारा और ज्यादा कटु होकर प्रकट हुई। कहते हैं—"ता, ऍम्बॅनल्दे। तादि नानॆम्बॆनें। तादियॆन्दानु-नुडिदेनु परस्त्रीय। तायियॆन्दॆम्बॆ—" अर्थात् पराई स्त्रियों को माता जैसे मानते हैं उसी अर्थ में वह मेरी माता है, अन्यथा नहीं।"—ऐसा कहने पर जिस मकान में जन्मे वहाँ शांत चित्त होकर रहे भी कैसे?" "खंडितवादी लोक विरोधी"। इसलिए उसे घर से निकाल दिया होगा। तब वह घर से निकाल दिये जाकर एकांकी हो चल पड़े। उन्हें ऐसा लगा कि किसी की दया पर जीने से भी भीख माँगकर खाना और किसी की मेहरबानी से महल में जीने से किसी की परवाह किये बिना स्वतंत्र रूप में किसी मठ-मन्दिर में पड़े रहना अच्छा है। एक विरक्त पुरुष को किससे क्या लेना देना है? उन्होंने अपने मन में कहा—"हाथ मेंखप्पर है, इतना विशाल देश सामने पड़ा है, भगवान् हर (शिव) मालिक है, भिक्षुक से बड़ा धनी कौन है?" यों मन में सोचते हुए वह गाँव गाँव घूमता हुआ अपने पवित्र तीर्थ स्थानों का भ्रमण करता हुआ, गुरु मठ और ज्ञान केन्द्रों का संदर्शन कर अपने ज्ञान भण्डार को समृद्ध बनाता हुआ आगे बढ़ा। उनमें ऐसा कोई आग्रह नहीं था कि अमुक ही गुरु हो अमुक न हो। उनका विचार था गंतव्य स्थान की ओर जाने का रास्ता चाहे कोई बता दे, केवल लक्ष्य की ओर अग्रसर होना मात्र ध्येय है, और वह लक्ष्य है सत्य साक्षात्कार। सत्यसार को जानने वाले गुरु होने पर यह काम दही को मथकर मक्खन निकाल लेने का-सा सुगम हो जाता है। गुरु कृपा हो जाय तो ब्रह्म-प्राप्ति दूर नही। इसलिए गुरु की प्रमुखता है। जो ज्ञानी हुए अथवा जो ज्ञानीं माने जाते थे उन सभी के आश्रम में रहकर अपनी साधना के द्वारा भी उन्होंने सत्य को साक्षात्कार प्राप्त किया। कर्पूर के जलने पर जैसे केवल ज्योति ही ज्योति होती है और जलकर बुझ जाने पर कुछ भी बच नहीं रहता ऐसी ही दशा इनकी हुई। अध्यात्म ज्ञान के क्षेत्र में संपूर्ण सने होने पर उन्हें लगा—

"सत्यवॆम्बुदु तानु हित्तलद गिडनोड
मत्तल्लि नोडियरसदें तानिदें।
हित्तले नोड सर्वज्ञ॥—अर्थात् "सत्य की खोज करते हुए दुनिया भर में घूमना आवश्यक है, सत्य तो अपनें ही पास है। यदि सत्य का दर्शन करना चाहो तो

अपने ही पास देख लो।"—(जैसे कबीर का "आगे पीछे हरि खड़े" या गुरु नानक का "घट ही खोजो भाई"—की याद आती है)। इस स्थिति तक पहुँचते पहुँचते उनका लोकानुभव भी पर्याप्त बढ़ चुका था। स्वानुभव वेद्य लोकानुभव युक्त नित्य सत्य को सुगम, सरल, एवं स्पष्ट बातों में व्यक्त किया। अपनी अनुभूति का उपदेश देने के लिए आम जनता की भाषा को ही चुना और प्रचलित त्रिपदी छन्द को ही माध्यम बनाया। उनकी वाग्धारा, अपारज्ञान, तीक्ष्ण बुद्धि, स्पष्ट कथन—आदि को देखकर लोगों ने उनका अत्यन्त आदर किया होगा। वेश्या से लेकर वेदांतों तक, अज्ञानी से ब्रह्मज्ञानी तक राजनीति से रसवाद तक ज्ञान के सभी पहलुओं को करतलामलक-सा बनाकर वह सर्वतोमुखी प्रज्ञायुक्त होने के कारण लोगों ने उन्हें "सर्वज्ञ" कहा, अवतार पुरुष माना। यह एक चलता-फिरता विश्व कोश (था) लोगों से इस तरह समादृत होने पर वह घमंडी नहीं बना। उसने कहा—

"सर्वज्ञनेंम्बुवनु गर्वदिंदादवनें ?

सर्वरोळॉन्दॉन्दु नुडिगलितु विद्यॅयापर्वतवॅ आद।"—अर्थात् "सर्वज्ञ घमंड से नहीं बना, सबके पास एक एक ज्ञान की बात सीखकर विद्या का पहाड़ बना।"—यह ठीक है, वह अवतार पुरुष भी है; उन्होंने बताया कि वह पहले कैलास में शिवजी का सेवक पुष्पदत्त था और वह अब इस रूप में अवतरित है।

सर्वज्ञ के अंकित से प्रचलित "सर्वज्ञ वचनों" के कर्ता संत कवि का वास्तविक नाम क्या था सो हमें विदित नहीं। उपर्युक्त उनकी जीवन-गाथा को उन्हीं के वचनों के आधार पर लिखा अवश्य है; परन्तु उन पद्यों का लेखक स्वयं है या किसी दूसरे ने लिखकर सर्वज्ञ के नाम से उसमें प्रक्षेप किया है—यह मालूम नहीं पड़ता। उनके काव्य के साथ ही साथ विकसित उनका व्यक्तित्व देखने से लगता है कि उन्होंने जो कुछ कहा वह स्वाभाविक ही है। उनके सामने कोई अपना नहीं कोई पराया नहीं। स्वयं कोई गलती करे तो अपनी गलती के लिए खुद कान पकड़ने में आगा-पीछा करना उनके स्वभाव के विरुद्ध बात है। निर्भीकता के साथ निस्संकोच होकर अपने जन्म-वृत्तांत की सचाई की स्पष्ट घोषणा करने वाले इस व्यक्ति के प्रति हमारे मन में केवल गौरव ही नहीं बल्कि एक पूज्य बुद्धि उत्पन्न होती है। इस कठोर सत्यवादिता के कारण उनका व्यक्तित्व हमारी आँखों के सामने बहुत ऊँचा हो जाता है। इस बात को जाने भीं दे; इनके इस अंकित (सर्वज्ञ) को लेकर कइयों ने त्रिपदी छन्द में पद्य लिखकर इनकी त्रिपदियों के साथ जोड़ भी दिया हो तो इसमें कोई संदेह नहीं। यों मिला देना भी कठिन काम नहीं। अन्य कवियों के काव्यों की तरह, निर्दिष्ट वस्तुओं को लेकर, क्रमबद्ध निरूपण करने वाले भिन्न भिन्न परिच्छेदों में विभक्त—काव्य नहीं है इस सर्वज्ञ कवि का काव्य। इनके काव्य में तो प्रत्येक पद्य स्वतंत्र है और स्वयं परिपूर्ण है। यह परिव्राजक वृत्ति में देश पर्यटन करते हुए मानव के कष्ट और दुखों को देखकर द्रवित अथवा मानवता पर हो रहे अन्याय को देख क्रोधित होकर उत्पन्न उद्वेग या आवेग को तब का तब काव्य रूप में कहने की दक्षता थी इस आशु कवि में। इनके पद्य कई ऐसे हैं जिनके लिए एक परिप्रेक्षक की कल्पना करके उसके परिसर में पढ़ने पर इनका अर्थ दुगुना मधुर बन जाता है। इनकी कविता में दिखने वाला वस्तु-वैपुल्य, सरलता, सुगमता और जनप्रियता आदि बातों से प्रभावित होकर

अन्य कवियों ने अपनी कृतियों को (उसी अंकित के साथ लिखकर) जोड़कर अपने को कृतार्थ माना हो—यह भी संभव है। इस तरह के प्रक्षेपों में "कालज्ञान" संबंधी त्रिपदियाँ मुख्य हैं। इन त्रिपदियों में श्रीरंगपट्टन के पतन जैसी हाल की घटनाओं का जिक्र है जो एक सोलहवीं सदी के कवि के लिए सर्वथा अविदित है। ऐसी बातों का जो इस कवि के बहुत समय के बाद घटी है। इन पर आरोप करना असंबद्ध बात होगी। "सर्वज्ञ के वचन" के संपादक चेन्नप्पा उत्तंगी ने अपने इस संपादित ग्रंथ की भूमिका में बताते हैं—"श्री शिवमूर्ति शास्त्री हल्कुंटेमठ बताते हैं कि ये सर्वज्ञ तीन हैं और उनमें प्रथम संत कवि सर्वज्ञ है, दूसरा सर्वज्ञ "कालज्ञान" का सर्वज्ञ है, तीसरा चौपदी और गेमों को बनाकर गाने वाले सर्वज्ञ है।" दूसरे और तीसरे सर्वज्ञ को छोड़कर केवल प्रथम सर्वज्ञ याने संत कवि सर्वज्ञकी कविताओं के बारे में यहाँ विचार करें।

सर्वज्ञ के वचन भाव, भाषा और शैली में वचन वाङ्मय की ही तरह लगते हैं। इतना ही नहीं, वहाँ दिखने वाले षट्स्थल, अष्टावरण, जातिभेद निराकरण इत्यादि वीरशैव धर्म निरूपण करने वाले वचनों के बराबर सारवान, भावपूर्ण, प्रभावशाली और सत्य निष्ठुर बातें इस सर्वज्ञ कवि के वचनों में भी हैं। इसलिए सर्वज्ञ की इन त्रिपदियों को वचन कहने की आदत-सी पड़ गयी है। परन्तु सर्वज्ञ की त्रिपदियाँ वचन से भी ज्यादा सरल है। इन त्रिपदियों में जो भाव वैशाल्य है वह वचनों में नहीं है। वचन वीरशैव के लिए शास्त्रग्रंथ हैं। सर्वज्ञ की यह कविता है। यह धर्म प्रतिपादन करने के आधार ग्रंथ नहीं हो सकते हैं, परन्तु यहाँ उक्ति चातुर्य, भाषा सौन्दर्य,—आदि, इन वचनकारों के वचनों से भी अधिक मात्रा में हैं। वचनकारों में जो अन्यमत-तिरस्कार की भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। वह यहाँ नहीं है। इस सर्वज्ञ कवि का लोकानुभव भी वचनकारों से अधिक है। भगवान् के बारे उनकी (सर्वज्ञ) यह निश्चित धारणा है—

"आ देव ई देव मादेवनेंनबेड।
आ देवरदेव—भुवन प्राणिगळिगादवने देव सर्वज्ञ।" अर्थात्—"यह देव, वह देव, महादेव कहकर विभिन्न नामों से पुकारे जाने वाले इन सब देवों से सारे विश्व का अधिदैव बनकर समस्त विश्व को चैतन्य देने वाले जो चेतना-स्वरूप हैं वही वास्तव में देव है।"—वह कहते हैं कि "जिसे दैव का साक्षात्कार हुआ है उसे मौन रहना चाहिए; ब्रह्म का साक्षात्कार जिसे हुआ हो उसे मरे हुए-सा मौनी बनकर रहना चाहिए।"

वचन वाङ्‌म की तरह सर्वज्ञ को वचन (त्रिपदियाँ) सदाचार स्मृति हैं। जो इस संसार में खप सकते हैं वे वहां स्वर्ग आदि ऊर्ध्वलोकों में भी खप सकते हैं।"—इस उक्ति के मर्म या रहस्य को वे अच्छी तरह जानते हैं। चित्त शुद्धिहीन बहिराडंबर की कटु आलोचना करते हैं—कहते हैं—

"एँणिसुतिर्पुदु बेंरळु, गुणिसुतिर्पुदु जिह्वे।
मन होगि—हलव नेंनेंदरे हाळ्‌रघुनकनंतक्कु सर्वज्ञ।" अर्थात्—जयमाला की मणियों को फिरा फिराकर उँगलियाँ गिनती रहे, मुँह के भीतर जीभ चलती रहे, मन दुनिया भर की बातों की चिंता में भटकता रहे—यह तो स्मरण करने

का तरीका नहीं; यह सारा ढकोसला है। (यहाँ कबीर का दोहा याद आता है—"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुखमाही। मनुआ दहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं।") विट्ठल भक्ति के बिना मन्दिर की परिक्रमा करना कोल्हू के बैल का-सा चक्कर लगाना है।" "स्नान, गंध, विभूति (भस्म)—इनके धारण करने मात्र से यदि सद्गति मिलती हो तो सदा पानी में रहने वाले मेंढक को, चंदन घिसने वाले पत्थर को, भस्म (राख) में लोटने वाले गधे को स्वर्ग की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?" यह उनका प्रश्न है। सद्गति अथवा स्वर्ग इतनी आसानी से मिलने वाली चीज नहीं; वह कहते हैं—

"खंडिसदें करणवनु, दंडिसदें देहवनु !

उंडुंडु स्वर्गकैदल्कें अदनेनु ! रंडेयाळुबळे ?" अर्थात्—"अपने करण (अंत:करण) को अपने वश में किये बगैर, शरीर की वासनाओं पर काबू रखे बगैर, खा पीकर मजे से स्वर्ग की कामना करते रहने से स्वर्ग कैसे प्राप्त होगा ? क्या स्वर्ग पर रंडी राज करती है जो चाहे जिसे वह आसानी से मिल जाय ?"—सद्गति को प्राप्त करना हो तो शरीर और मन को काबू में रखना आवश्यक है; अरिषड्वर्ग (काम-क्रोध आदि) को जीतना चाहिए। क्रोधी आदमी का शरीर बाँबी की तरह है। अत: वह कहते हैं—

"ऑडलेम्ब हुत्तक्कें नुडिवनालगें सर्प

कडुरोषबॅम्ब विषरेरें, समतें गारुडिगनंतक्कु…" अर्थात् "शरीर बाँबी के समान है और जीभ सर्प समान है; क्रोधरूपी जहर के चढ़ने पर समता खो जाती है।"—इसलिए मनुष्य को समता बनाये रखनी चाहिए। इस "समता को बिगाड़ने में आँख, मन और जीभ—इनका पात्र बहुत प्रधान है। इसलिए ऐसा मत समझो कि ये अंग (आँख, मन और जीभ) अपने हैं। मौका मिलने पर वे अपने काबू से निकल जाते हैं और वे स्वतंत्र होकर अपने वांछित काम को कर देते हैं। अतएव यह कहना गलत है कि दूसरों से हम बिगड़े, स्वयं अपनी मृत्यु आप है।"—यह 'सर्वज्ञ कवि का कथन है।

सर्वज्ञ की दृष्टि में जातिभेद के लिए गुंजायश नहीं है। वह कहते हैं—"जाति-हीनर मनेंय ज्योति ता हीनवें ?"—अर्थात् "जातिहीन के घर का दीप दीप नहीं ? क्या उसका प्रकाश प्रकाश नहीं ?" यह उनका प्रश्न है और स्वयं इसका उत्तर देते हैं—"देविनोंलिदातनें जात" अर्थात् जिस पर भगवान् प्रसन्न हो वही कुलीन है।" उनका निश्चित विचार है कि अगर भगवान् की सृष्टि में कोई ऊँच-नीच नही, सब बराबर हैं। वह कहते हैं—

"ऍलुबिल्ल नालगॅगें, बलविल्ल बडवंगें।

तॉलॅगंबविल्ल-गगनक्कें, देवरलि कुल भेदविल्ल" भावार्थ यों है—'जीभ में हड्डी नहीं, गरीब दुर्बल है यह शक्तिवान् नहीं, आसमान के लिए न खंभे हैं न शहतीर—ऐसे ही भगवान् के लिए कोई जाति कुल नहीं।—भगवान् सब के लिए बराबर है। इस कारण से कुल या जाति मुख्य नहीं, सज्जनता मुख्य है; लोगों को सत्य वादी बनना चाहिए—"सत्यरानुडि तीर्थ, नित्यरानडें तीर्थ उत्तमर संगवदुतीर्थ, 'हरिव-नीरें' तण्डु तीर्थ।"—यानी "सत्य वचन तीर्थ है; नित्य (परमात्मा) सत्य ज्ञान तीर्थ

है, सज्जन संग तीर्थ है, बहने वाला तीर्थ कैसा तीर्थ ?"—ऐसे सज्जन संग से चोर भी अच्छा हो जाता है। परन्तु ऐसे सत्पुरुषों का संग किसे चाहिए ? जैसे—

"गंधवनु तेवल्लि आँन्दुनॉणवनुकाणें

संधिसि मलव बिड्डुवल्लि नॉणमुत्तुवंदवनुनोड्डु"—याने "जहाँ चंदन घिसा जाता है वहाँ एक भी मक्खी नहीं दिखती; जहाँ मल विसर्जन करते हैं वहाँ मक्खी ही मक्खी भिन्न भिन्न करती हैं।" तात्पर्य यह कि मनुष्य बुरे काम पर जुट पड़ता है, अच्छा काम नहीं चाहिए। ऐसी दशा में सज्जनों की क्या हालत होगी ? सज्जनों को दुर्जनों के बीच दाँतों के बीच जीभ की तरह रहना चाहिए। "दया धर्म का मूल है।"—अतः प्राणिमात्र पर दयावान् बनना चाहिए और अनाथ-गरीब आदि को दान करना चाहिए—वह कहते हैं—

"कॉट्टहुतगॅ, बच्चिट्टद्दु पररिगॅ

कॉट्टहु केट्टितॅनबेड, मुंदक्कॅ कट्टिहुदु बुत्ति"—याने "जो दान में दे दिया वही अपना, जिसे छिपाकर रखा सो पराये का। ऐसा मत समझो कि जो दिया सो बिगाड़ा, वह तो आगे के लिए सुरक्षित धरोहर दे।" दान करते समय भी "अब नहीं, फिर आओ, 'कभी और आओ'—ऐसा न सताकर तब का तब बुलाकर दे देना चाहिए। जितनी तुम्हारी शक्ति हो दे दो, वही काफी है। दिये में एक चम्मच तेल ही दिया जाता है, घड़ा भर तेल नहीं, जो तुम्हारी संपत्ति है, उसमें थोड़ा दे दो, वही पर्याप्त है। "अन्न ही भगवान् है; उससे बढ़कर कोई दूसरा भगवान् नहीं; अतः भूखे को अन्न दो। ऐसा दानी भगवान् है। सर्वज्ञ विरक्त होने पर भी सांसारिक जीवन से दूर भागने का उपदेश नहीं देते। वह कहते हैं—"बॅच्चना मतॅयागि बॅच्चकॅ हॉन्नागि। इच्चॅयन्नरिव—सतियागॅ स्वर्गक्कॅ। किच्चु हच्चॅन्द सर्वज्ञ।" अर्थात्—"सहूलियतों से युक्त घर हो और संपन्न रहे, इच्छा के अनुसार सेवा करने वाली पत्नी हो तो ऐसे घर के आगे स्वर्ग क्या चीज है ? लगाओ उसमें आग।" पारिवारिक जीवन का सार सर्वस्व स्त्री है। परन्तु स्त्री को सुशील होना चाहिए। गुणवती स्त्री की प्राप्ति तो भाग्य पर निर्भर है। वह कहते हैं—

"अंगनॅयु ऑलियुवुदु, बंगार दॉरॅयुवुदु।

संग्रामदॉळगॅ गॅल्लुवुदु श्वुमूरु। संगय्यनॉलु मे"—कि—"योग्य स्त्री की प्राप्ति, सुवर्ण-प्राप्ति, युद्ध में विजय प्राप्ति—ये तीनों ईश्वर की कृपा से ही संभव है।"—यदि शीलवती गुणवती नारी हो तो वह पर-उपकारी, स्वर्ग की मार्गदर्शिनी, सबके लिए हितकारी बनती है; अन्यथा वही डायन हो जाती है।

सर्वज्ञ अपनी कविताओं के लिए वस्तु की खोज नहीं करता। जो भी बात नज़र आयी वही काव्य वस्तु है, उनके लिए। देखिए कर्जदार की दशा—"कालवनु कॉम्बाग हालोगरुंडतॅ। सालिगनु बंदु ऍळॅवाग किब्बदिय कीलु मुरिदंतॅ सर्वज्ञ"—भाव यह है कि "कर्ज लेते समय दूध-भात के खाने का-सा आनन्द होता है और जब महाजन माँगने आवे तो कमर के टूटने का दुख अनुभव होता है।"—इसी तरह कवि सर्वज्ञ की ये त्रिपदियाँ लोकानुभव के ज्ञान से परिपूर्ण एवं कटु-सत्य के व्यक्त करने वाली और बड़ी नुकीली हैं। उन्होंने वैद्य, रस विद्या, ज्योतिष, वेश्या पद्धति, राजनीति और योग—इत्यादि अनेक विषयों पर लिखा है। चाहे कुछ भी वह लिखे, लोकोद्धार

उनका ध्येय हैं। लोग उनकी बातों को सुनकर अपने को सुधारे सँवारे, यही उनका उद्देश्य है। इसलिए लोगों की ही भाषा में परिचित साम्य देकर जो कहना चाहते हैं समझाते हैं। वह कहते हैं कि सज्जन संग शहद का सा मधुर और दुर्जन संग सड़ा दूध का सा बदबूदार और असह्य है। वैसे ही कंजूस की बात हँसिया की चोट-सी है। दुर्जन पड़ोसी से ताड़ के पड़ोस में रहना अच्छा है।—ये और ऐसी बातें लोकोक्तियों की सी है। इस तरह की प्रचलित समानताओं को साम्य के रूप में उदाहरण कर लोगों को उपदेश देते। इनके उपदेशों का बहुतांश पुराने वचनकारों में उक्त है। परन्तु इनके कहने की रीति नवीन है। आम जनता की साधारण बातों में यह कवि प्राणों का संचार करा देते हैं। इनकी बातें जितनी अर्थपूर्ण हैं उतनी ही भावपूर्ण भी। आज प्रचलित कई कहावतों के मूल में इस सर्वज्ञ कवि के वचन हैं।

सर्वज्ञ कवि विश्वप्रेमी है। दुखियों को देखकर उसका हृदय द्रवित होता है। सहानुभूति उसमें जागती है। अन्यायी को देखकर क्रोधाभिभूत होते हैं। इनकी प्रकृति ही निर्दाक्षिण्य प्रकृति है। किसी की परवाह नहीं करने का स्वभाव हैं। उनकी बातें निशितशरधारा की तरह बेरोकटोक मुँह से निकल पड़ती है। तो भी वे बातें स्वयं को और श्रोता को भी हँसा देती है। इस तरह उनकी बातें हँसा देने वाली होने पर भी मन पर भाव की छाप ऐसी लगा देती है कि आजीवन स्मरण रहे।

शुष्क चारित्र्य संबंधी, शील, विनय आदि से संबंधित उनकी बातें कवि सर्वज्ञ के मुँह से सरस, मधुर और प्रभावशाली होकर व्यक्त हुई हैं। यह तेलुगु के वेमन और हिन्दी के कबीर और तमिल के तिरुवळ्ळुवर के समान स्तुत्य एवं पूज्य हैं।

षडक्षरि (1655)—वैदिक कवियों में लक्ष्मीश और वीरशैव कवियों में षडक्षरी—ये अत्यन्त जनप्रिय कवि हैं। बीसवीं सदी तक—बीसवीं सदी के आरंभ होने के बाद कुछ समय तक भी—कन्नड भाषा पंडित उन्हीं लोगों को मानते थे जो इन दोनों की कृतियों को पढ़कर जो उनका अर्थ बता सकते थे। ये दोनों कवि प्राज्ञ थे और दोनों अपने अपने समय के लोगों की अभिरुचि के अनुकूल काव्य रचना करके लोगों के प्रेमपात्र बने। इन दोनों की प्रतिभा तथा पांडित्य में अंतर होने पर भी सोलहवीं सदी के लक्ष्मीश ने और सत्रहवीं सदी के षडक्षरी ने साहित्याकाश के चंद्र-सूर्य जैसे जनमन को द्योतित कर आकर्षित कर रखा हैं।

षडक्षरिदेव जिला मैसूर के दनगूर नामक स्थान के मठ के पीठाधिपति थे। रेणुक गोत्र के उद्दादे स्वामी के करकमल संजात अन्नदानि स्वामी और इस अन्नदान-स्वामी के करकमल-संजात रेवणसिद्ध देशिक और उनके शिष्य चिक्कवीर देशिक स्वामी के शिष्य यह षडक्षरी है। यह षडक्षरी की गुरु परंपरा है। यह संन्यासी थे; उन्होंने अपने माता-पिता के संबंध में कहीं कोई जिक्र नहीं किया है। ऐसा लगता है कि छुटपन ही में दीक्षा लेकर गद्दी पर बैठे। संभवतः दनगूरमठाधीश होते हुए भी उन्होंने अपने जीवन का बहुतांश समय यलंदूर में ही बिताया होगा। इसलिए उन्हें "यलंदूर षडक्षरी" भी कहा करते हैं। हदिनाडु देश के राजा मुद्दराज ने यलंदूर की लड़की से विवाह किया था। उस लडकी के माता-पिता और घरवाले इस दनगूर मठ के शिष्य थे। विद्या-विनय संपन्न तथा शिवनिष्ठाशील तेजस्वी बालगुरु षडक्षरीदेव ने इस मुद्दराज को अपने गुणों के कारण अपनी ओर आकर्षित

किया होगा। इसके अलावा यह षडक्षरीदेव अपनी दस-ग्यारह आयु से ही कविता करने की रुचि रखते थे। इस कारण से भी राजा आकृष्ट हुए होंगे। इस तरह रसज्ञ, वाक्पटु षडक्षरी के प्रति आकृष्ट राजा ने यलंदूर में ही इनके लिए एक मठ का निर्माण कर उन्हें वहीं बसाया मालूम पड़ता है। इस विरक्त कवि ने वहीं रहकर कृति निर्माण भी किया होगा। यहाँ उनकी समाधि भी है।

यह षडक्षरीदेव कन्नड और संस्कृत दोनों में काव्य रचने वाले सव्यसाची थे। इन दोनों में उनका पांडित्य अद्वितीय था। उनकी कुछ संस्कृत की कृतियों एक "कवि-कर्ण रसायन" नामक अलंकार ग्रंथ भी है। इससे लगता है कि इन्हें कालिदास आदि संस्कृत के महाकवियों की कृतियों का परिचय था—यह निर्विवाद विषय है। कन्नड की कृतियों में हरिहर, केरेय पद्मरस, पाल्कुरिकें, सोममाथ, गुब्बिकें, मल्लणार्य आदि कवियों की स्तुति की है, षडक्षरी ने। इससे यह स्पष्ट है कि अपने पूर्व कवियों की कृतियों का इन्हें अच्छा परिचय था। इन (षडक्षरी) की कृतियों को पढ़ने से यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि अपने समय तक के जितने भी पूर्व कवि थे और जितना साहित्य उपलब्ध होता था उस सबका इन्हें अच्छा परिचय हो चुका था। यह कवि "उभय कविता विशारद"—विरुद विभूषित थे, जो सर्वथा अन्वर्थ है।

कवि षडक्षरी ने संस्कृत में "कविकर्ण रसायन" के अलावा "शिवाधिक्य रत्नावली", "भक्ताधिक्य रत्नावली", नामक वीरशैव धर्मग्रंथों और कुछ स्तोत्रों की रचना की है। कन्नड में "राजशेखर विलास", "वृषभेन्द्र विजय", "शबरशंकर विलास"—नामक तीन चंपूकाव्यों की रचना की है। इन तीनों के लिए क्रमशः "भावचिंता रत्न", "बसवपुराण", और "कुमार व्यास भारत"—इन तीनों से काव्य वस्तु ली है। जब कवि ने "राजशेखर विलास" की रचना की तब कवि नव-युवा थे—प्रतीत होता है। उन्होंने स्वयं अपने काव्य में बताया है कि "कोमलांगी कविता से प्रेम होने के कारण चढ़ती उम्र में ही उसे अपने बाहुपाश में कसकर आलिंगन किया।" एक यति का यों कहना आश्चर्य-चकित तो करता है; परन्तु उससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह कि एक यतिवर्य का अपनी कृति में शृंगार रस की मंजुल धारा को प्रवाहित करना। कवि ने अपने काव्य के अंत में बताया है कि उन्होंने इस काव्य को ई० सन् 1655 में लिखकर पूरा किया; इसके बाईस वर्ष बाद अर्थात् ई० सन् 1677 में "वृषभेन्द्र विजय"—को लिखकर पूर्ण किया है। "शबरशंकर विलास" के रचनाकाल के विषय में कवि ने कुछ भी नहीं बताया है। शेष दो ग्रंथों का उल्लेख इसी में किया है; इसलिए लगता है कि यही उनकी अंतिम कृति है। इस कवि के इन तीन काव्यों में काव्यगुण की दृष्टि से भी "राजशेखर विलास" अग्रगण्य है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कवि षडक्षरी देव राज-पूजित थे। मुद्दराज ने उन्हें यलंदूर में ही प्रतिष्ठित कर गौरवान्वित तो किया ही। कवि ने अपने वीरभद्रोदाहरण गद्य के अंत में बताया है—"कॅळदी राजास्थाने विरचितमिदं स्तोत्रं"। उस समय में कॅळदी, इक्केरी और बिदनूर आदि छोटे राज्यों के राजा वीरशैव थे। अडोस पडोस के इन सभी राजास्थानों में यह यति पूजनीय रहे होंगे। फिर भी उन्होंने अपने काव्यों में कहीं भी किसी राजा की न तो प्रशंसा ही की है, न ही किसी राजा का उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में हरिहरदेव उनका आदर्श है। कवि षडक्षरी ने स्वयं

बताया है—

> धरॅयॉळ् मेणूपुट्टु पुट्टुत्तुळ्ळव नररमेलुबि कब्बंगळं बि
> त्तरिसुत्तं सप्रयासं कॅलकॅलरकटा कब्बिगर कॅट्टपोदर
> हरिदेवं देवदेवोत्तमन शरणरं पाडि कैवल्य लक्ष्मी
> वरनादं मत्तवंगत्याधिक शिवकवीन्द्रंगदार् साटियप्पर् ?"

भाव यह है—"इस भूमि पर जनम-मरण के चक्कर में पड़े रहने वाले मानवों के विषय में काव्य रचना करके अनेक कवि यों ही अपने जीवन को व्यर्थ गँवा गये। हरिहरदेव ने ऐसा न कर देवदेवोत्तम के शरण महात्माओं के गुणकथन के द्वारा कैवल्य प्राप्त किया; ऐसे वर प्रसाद शिवभक्त शरणसेवी कवि की बराबरी कौन कर सकते हैं ?"—इस तरह अपने आदर्श कवि का स्मरण करके षडक्षरीदेव ने भी नर स्तुति न करने की घोषणा करके अपनी कविता शक्ति का उपयोग भगवान् की ही स्तुति के लिए किया है। उनका निश्चित विश्वास है कि कविता-शक्ति ईश्वरानुग्रह से ही उपलब्ध होती है। इसलिए इस भगवद्दत्त शक्ति का उपयोग भगवान् के लिए ही अर्पित होना चाहिए। इस कवि की कन्नड की तीनों कृतियाँ इसी उदात्त आदर्श को लेकर निर्मित हैं।

षडक्षरी कवि का "राजशेखर विलास" पंचाक्षरी की महिमा बताने के लिए ही निर्मित ग्रंथ है। इसकी कथा तामिल से ली गयी है, तो भी इसे गुब्बी के मल्लणार्य ने इसे "भावचिंतारत्न" के नाम से जिसे कन्नड में प्रस्तुत किया है उसी को विस्तार के साथ लिखा है—ऐसा कवि ने स्वयं बताया है। राजा सत्येन्द्र चोल का बेटा शिकार खेलने जा रहा था तो उसके घोड़े ने राजपथ पर जा रहे एक शिवभक्त बालक पर हमला कर उसे मार डाला। उस भक्त बालक की माता ने राजा को यह समाचार दिया। शिवभक्त चोल राजा को यह खबर सुनकर बड़ा पछतावा हुआ और इसे उसने शिवद्रोह के बराबर का पाप माना। उस राजा की नीति थी "जान के बदले जान" इस नीति के अनुसार राजा ने उस शिवभक्त लड़के की जान के बदले अपने लड़के की जान देने का निश्चय किया। अपने लड़के को मार डालने की आज्ञा संदायी नामक एक सेवक को देता है। सेवक अनमना होकर उस आज्ञा का पालन करता है। राजकुमार का शिरच्छेद करने के बाद उस दुःख से सेवक स्वयं अपना गला काट लेता है। इस तरह ज़मीन पर गिरे दोनों सिर पंचाक्षरी का जाप करने लगते हैं। इसे देख उस शिवभक्त बालक की माता तिरुकोळविनाचि अपना भी सिर काट लेती है; राजा सत्येन्द्र चोल इस दुःख से दुखी होकर अपना भी सिर काट लेता है। अब जमीन पर गिरे सभी सिर पंचाक्षरी का जाप करने लगते हैं। इस हालत को देखकर रानी भी अपना सिर काट लेने को तैयार होती है; तब भगवान् शिव प्रत्यक्ष होकर उन्हें अविनाशी गणपद राज्य देकर सभी का उद्धार करते हैं। यही इसकी कथा का सारांश है।

"भावचिंतारत्न" और राजशेखर विलास"—इन दोनों की कथा-सरणी में पर्याप्त मात्रा में साम्य होने पर भी षडक्षरी ने कुछ परिवर्तन लाकर अपने काव्य को चमकाया है। दोनों काव्यों का लक्ष्य पंचाक्षरी की महिमा बताना है। परन्तु इस पंचाक्षरी की महिमा का उत्कर्ष बताने के लिए षडक्षरी ने अपने काव्य में जिस वातावरण का सृजन किया है वह व्यापक है और परिणामकारी है। "भावचिंतारत्न"

का कथानायक सत्येन्द्र चोल है। ढलती उम्र के इस अधेड़ राजा का जलकेली, वन-विहार और वसंतोत्सव आदि में सक्रिय भाग लेना और अपने ही समान वृद्ध मंत्री मतिमोह को सिंहल के राजा के साथ युद्ध में लगाना और सिंहल की राजकुमारी को लाकर अपने पुत्र के संग विवाह कराना—ये और ऐसी बातें षडक्षरी को अच्छी नहीं लगीं। इसलिए षडक्षरी ने राजकुमार राजशेखर को ही अपने काव्य का कथानक बनाया है। राजकुमार खुद सिंहल के राजा के साथ युद्ध करके उसे पराजित करता है; फिर सिंहल की राजकुमारी से प्रेम करके उससे विवाह कर लेता है। "भाव चिंता रत्न" की कथावस्तु में तथा उसके पात्रों के चित्रण में एवं घटनाओं के चित्रण में और इस तरह की अन्यान्य घटनाओं में भी आवश्यकतानुसार मूल कथा में परिवर्तन करके अपनी प्रतिभा से उन घटनाओं को अधिक सहज एवं आकर्षक बनाकर प्रस्तुत किया है।

षडक्षरी ने अन्य चंपू कवियों की ही तरह चंपू संप्रदाय का अनुसरण करके महाकाव्योचित षोडश-वर्णन भी अपने काव्य में लाने का आयोजन बनाया है। वर्णन रम्य होने पर भी औचित्य की दृष्टि से पूर्ण है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। वर्णन अति होने के कारण कथाप्रवाह कुंठित-सा हो गया है। शृंगार वर्णन में कवि की प्रतिभा असमान्य है। काव्य में आधे से भी अधिक भाग शृंगार ही से भर गया है। शृंगार रस परिपोषक कई सन्निवेश यहाँ एक के बाद एक मिलते हैं। श्रीमान् एच. वी. देवीरप्पा अपने "*राजशेखर विलास*" के संबंध में *लिखित लेख में बताते हैं* कि—"इस कृति में वसंतागमन, चन्द्रोदय, वन विहार, जलकेलि आदि का वर्णन अत्यंत हृदयंगम है। नायक नायिका प्रभेदों को मार्मिक ढंग से चित्रित करने में यह कवि अद्वितीय है। पण्यस्त्रियों, जारिणियों आदि के नाज़-नखरों का चित्रण और उनके आमोद-प्रमोद का वर्णन बहुत ही आकर्षक है। पाठकों को भुला देने वाले शृंगार वर्णन में षडक्षारी बहुत कुशल हैं। अँधेरे में जा रही एक सुन्दरी का यह वर्णन देखिये—"*मारनृपं कारॊऍयॊळ्। कूरसियं पुगिसुवंत जॊरघनधारॆं तनुरुचि। सारांगॆ पॊदळ्दु पॊक्कु बपॆंवळॆसॆदळ् वीदिय तमदॊळ्।*"—अर्थात्—"महाराज मन्मथ ही अँधेरे रूपी म्यान में तेजधार वाली चमकी हुई तलवार को रख रहा हो—ऐसी लग रही है इस सुंदरी की देहकांति जो राजवीथी में अंधकार में चल रही है।"—यह अंधकार में राजमार्ग पर जा रही एक सुन्दरी अभिसारिका का चित्र है। एक जारिणी का यह चित्र देखिये—

"*जारॆं निरि जारॆं सोर्मुडि। जारॆं बॆमर्जारॆं मेलुदवु मुडिदलर्गळ्*

जारॆं मुदं जारॆं मदं। जारॆं जारॆं जारिदलॊर्वळ्"—अर्थात्—"साड़ी फिसल रही है; उसके खुले केश फिसल रहे हैं; शरीर पर से स्वेद बिन्दु फिसल रहे हैं; घूँघट भी फिसल रहा है; केशालंकृत पुष्प भी फिसल रहे हैं; खुशी और उत्साह भी मन से फिसलते जा रहे हैं। उस जारिणी का प्रत्येक कदम फिसल रहा है। वह जारिणी है; वह जीवन के सही रास्ते से फिसलती ही जा रही है।"—कवि ने इस जारिणी के चित्र को कैसा मार्मिक बनाया है। एक और चित्र यह देखिये—प्रेमी को प्रेयसी कैसे सुखी बना सकती है।

"नोडिदोंडागळंतें तळॆवाबुब नोडदोडोल्वु नोक्कुप, मा
तांडिसें सुम्मनिर्पं, नुडियुंदिरें, मॆल्लनें सॊल्लिपिच्छॆयं
कूडलोडर्वें मैदॆयॆवनल्दिरलोम्मलें सार्वं मुग्देयें
माडळॆ मच्चिदोपन मनक्कॆ मनोजमहोत्सवंगळं !"—

भावार्थ यह कि—"प्रेमी प्रेमिका की ओर देखता है तो वह लज्जावनत होती है। न देखने पर स्वयं प्रिय की ओर प्यार भरे देखती है; बात करने पर मौन धारण करती है; न बोलने पर स्वयं प्रेमी से प्यार भरे शब्द बोलने लगती है; रति सुख की इच्छा प्रकट करने पर वह खुद दूर हटती है; प्रेमी के दूर हटने पर खुद पास आती है;—ऐसी मुग्धा अपने प्रेम-पात्र को रति सुख न देगी ?"—इस तरह के श्रृंगार से दूर रहनेवाले संन्यासी कवि श्रृंगार का यह कैसा स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत करता है ? उनका काव्य अत्यंत जन-प्रिय इसी श्रृंगार-वर्णन के कारण है। परंतु कवि की दृष्टि पाठकों को शांतमय मंगल की ओर ले जाना है, इसलिए काव्य में यह श्रृंगार पाठकों को इस मंगलमय शाँति के रंग पर खड़ा करने के लिए उत्कोच है।—श्री एच० देवीरप्पा के इस कथन को सर्वथा सत्य मान लेने में संकोच करने की कतई जरूरत नहीं। इस श्रृंगार के बीच-बीच में उस आनंदमय मंगलदायक शाँति का संदेश कवि बड़े प्रभावशाली ढंग से पाठकों के सामने प्रस्तुत कर देते हैं। षडक्षरी देव बड़े उद्दाम पंडित है। अपने पूर्व कवियों की कृतियों का समग्र परिचय इस कवि ने प्राप्त किया है। हरिहर और राघवांक से इस कवि ने स्फूर्ति भी पर्याप्त मात्रा में पायी है। इस रसिक कवि की अनुरक्ति हरिहर और राघवांक से भी अधिक नागवर्म और नेमिचंद्र के प्रति है। वहाँ वर्णित श्रृंगार की ओर आकृष्ट होकर वहाँ की भाव-भंगिमा का उपयोग अपने काव्य के अनुरूप किया है। मूल काव्यों की भाषा और भावनाएँ कवि की प्रतिभा में ढलकर नवीन रूप में चमक रही है। कभी-कभी विशेष कांतियुक्त होकर अधिक तेजस्वी बन गयी हैं। यह सत्य है कि षड़क्षरी में कविता करने की असाधारण शक्ति है; परन्तु वह शक्ति उनके प्रज्ञावलय में आज्ञानुवर्ती है। इसलिए काव्यावेश की प्रखरता से अधिक उक्ति चमत्कार के आवर्त कृति में परिलक्षित होते हैं। ऐसी स्थिति में उनका पांडित्य और चातुर्य हमें चकित कर देते हैं; इस पांडित्यपूर्ण उक्तिचातुर्य के कारण सशक्त कवि प्रतिभा काव्यावेश के द्वारा पाठकों को भुला सकने में सशक्त नहीं बन पायी है। ऐसा नहीं कि सर्वत्र यही हाल है; जहाँ मौका मिला वहाँ कवि का पांडित्य गल कर सरस काव्यधारा के रूप में बहने लगती है। उनकी कल्पनाशक्ति जब गगन चुंबी बनती हैं तब वह कितना मधुरगान गा सकती है ! एक उदाहरण देखिये—यह सूर्यास्त का वर्णन है—

"शराधेगत प्रतिबिंबं। सरिसदॊळिरॆं बद्धरश्मियुततर बिंबं
हर नाट्य के कालनटं। कर मॆत्तिद पॊन्नताळमॆनॆं कण्गॊळिकुं॥

अर्थात्—"परशिव के नाट्य के लिए काल-पुरुष रूपी नट सोने का झांझ (ताल) लेकर शिव-नाट्य के लय के अनुसार ताल बजाने के लिए संनद्ध खड़ा हो—ऐसा लगता है।" अस्त होते हुए सूर्य का और समुद्र में प्रतिबिंबित सूर्यबिंब का यह वर्णन है। यह कितना भव्य चित्र है। कवि प्रणव मंत्र का वर्णन इन शब्दों में करता है—

"हृदय पयोजद परिमळ । मिदु चेतस्तंभदग्र मणि दीपिकॆ मे
णिदु मानसमुकुरद पॊळ । पिदु तानॆंनिसिदुदु गुरु निरूपित मंत्रं ॥
भाव यह है कि—"गुरु के द्वारा उपदिष्ट यह मंत्र हृदय कमल की सुगंधि है; यह चेतन-कुंभाग्रदीप है; यह मन-मुकुर का प्रकाश है।"—इस वर्णन पर ध्यान पूर्वक मनन करने से इस प्रणव-मंत्र-वर्णन की भव्यता बढ़ती ही जाती है। तिरुकॊळविनाचि के प्रलाप के संदर्भ में कवि राघवांक से प्रभावित जरूर है; तो भी षड्क्षरी के व्यक्तित्व को उस प्रभाव से कोई नुकसान नहीं पहुँचा है। इस प्रसंग में कवि की कृतित्व शक्ति ने शोकरस के एक सरोवर का ही निर्माण किया है।

राजशेखरविलास के सभी पात्र आदर्श-व्यक्ति हैं। परंतु इनमें एक भी ऐसा नहीं कि जो हमारे हृदयों पर अपनी छाप छोड़ सके—ऐसा कहा जा सकता है। अत्यंत हृदय-विदारक सन्निवेशों के उद्भाव की गुंजायश होते हुए भी कवि ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया है। पुत्र प्राप्ति की महती इच्छा से भगवान् की आराधना में निरत माता-पिता से सुप्रीत भगवान् ने अनुग्रह पूर्वक पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया था। ऐसे एक मात्र पुत्र को बलिवेदी पर चढ़ाते हुए माता-पिता का हृदय, क्या दुःखाभिभूत नहीं हुआ ? पुत्र को जन्म देने वाली माता सर्व मंगला के हृदय की वेदना की पराकाष्ठा की कल्पना कवि को नहीं हुई ? कट कर भू-पतित सिर फिर पंचाक्षरी मंत्र की महिमा से धड़ के साथ जुड़कर सजीव होना उस मंत्र की महत्ता का उद्घोष करता अवश्य है; परंतु इससे *काव्यसत्त्वहीन-सा हो गया है।* षडक्षरी जैसे एक प्रतिभावान् कवि की कवि प्रतिभा पर भक्तिपूर्ण आध्यत्मिकता हावी हो गयी है जिससे काव्य सत्त्वहीन-सा है।

षडक्षरी के काव्यों में दूसरा "वृषभेन्द्र विजय" है। यह उनके शेष काव्यों से परिमाण मे बड़ा है। यह बाईस आश्वासों में फैला हुआ चार हजार पद्यों का विशालकाय ग्रंथ है। वीरशैव धर्म के पवर्तक बसवण्णा की जीवनी ही इसकी कथा-वस्तु है। इसका "बसवराज विजय" एक दूसरा नाम भी है। कवि ने इसे "श्रीमद् बसवराज विजय महापुराण" भी कहा है। कवि षड्क्षरी ने बतलाया है कि "इस कथा को पहले पाल्कुरिकॆ सोमनाथ ने तेलुगु में लिखा और भीम कवि ने इसे कन्नड में अनुवाद किया; फिर शंकर कवि ने इस कन्नड कृति को संस्कृत में भाषांतरित किया; वही संस्कृत भाषांतर मेरे इस चंपू काव्य का मूल है।" इस कथानक को कई प्राचीन कवि महानुभावों ने लिखा है, फिर से इसी को लिखने का प्रयत्न हास्यास्पद होने पर भी इसे इसलिए लिखने का प्रयत्न किया है कि इसके द्वारा शिवशरण संत महात्माओं का परिचय हो जाय—यह इस कृति के कर्ता षडक्षरी का कथन है। कवि हरिहर ने नरस्तुति न करने की प्रतिज्ञा करके अपनी काव्यशक्ति का प्रयोग केवल ईश-स्तुति ही के लिए किया। इस बात में आपने हरिहर कवि का अनुयायी अपने को माना, उनका अनुसरण किया। परंतु कथा निरूपण करने में उनके (हरिहर कवि के) मार्ग का अनुसरण नहीं किया। वीरशैव पुराण के लेखन मार्य में उद्युक्त षडक्षरी को हरिहर कवि के "बसवराज देवर रगळॆ" के द्वारा आवश्यक आदर्श संभवतः प्रस्तुत नहीं हो सका। वीरशैव धर्म के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कुछ शिवशरण संतों की कथाओं से युक्त "बसव पुराण" इन (षडक्षरी) के लिए विशेष आदरणीय हुआ।

सुप्रसिद्ध कवि हरिहर की कृति से भी अधिक यह "बसव पुराण" लगा।

कवि षडक्षरी ने अपने "वृषभेन्द्र विजय" में एक धर्मवीर का जीवन-वृत्तांत लिखा है। इसका मूल आधार "बसव पुराण" है। इसमें उन्होंने मूल कथानक में कोई विशेष हेर-फेर नहीं किया है। अपनी कृति के नायक चरित्र को उज्ज्वल बनाने के लिए थोड़ा बहुत आवश्यक परिवर्तन अवश्य किया है। इस परिवर्तन के उदाहरण के लिए बिज्जल के वध का प्रसंग प्रस्तुत किया जा सकता है। बिज्जल को मारने के पहले ही बसवण्णा के कल्याण को चले जाने मोळिगॅय मारय्या आदि शिवभक्तों की प्रेरणा से इसका (बिज्जल का) वध किया जाना आदि बातें "वृषभेन्द्र विजय" में बतलायी गयी है। इस तरह से बसवण्णा बिज्जल के वध के पाप से मुक्त हो गया है, और उनका महत्व इस वजह से बढ़ भी गया है।

वृषभेन्द्र विजय में प्रधान कथानायक से भी अधिक उनसे संबद्ध कुछ शरण संतों की ही कथाएँ अधिक है। ग्रंथ का अधिक भाग इन संतों की ही कथाओं से भर गया है। ये कथानक अधिक आकर्षक हैं। सिरियाळ सेट्टी, बेडर कण्णप्पा, कोळूरु कोडगूसु, हेरूरु हेग्गूसु, मुग्ध संगय्या,—आदि शरणों की कथाओं का सरल सुन्दर निरूपण, आवश्यक परिमाण में सीमित वर्णन, समय के अनुकूल भावावेग आदि गुणों के कारण कवि प्रशंसा-पत्र बने हैं। ये कहानियाँ इतने सुन्दर ढंग से प्रतिपादित हैं कि इन से कवि के अच्छे कथाकार होने की गवाही मिल जाती है। ऐसा लगता है कि कवि ने ढलती उम्र में इस काव्य की रचना की है। तब तक इन में भक्ति और वैराग्य का अच्छा विकास भी हुआ होगा। इसके फलस्वरूप उक्तिचार्य, वर्णनाभिलाषा, पांडित्य प्रदर्शन, शृंगार,—निरूपण आदि कम हो गये हैं। शिवशरणों की कथाएँ इनके बदले में सीधे और सरल ढंग से निरूपित होकर सुन्दर शैली में कही गयी है। इस ग्रंथ में कवि की अन्य कृतियों की अपेक्षा शुद्ध कन्नड के प्रयोग अधिक हैं। यह सब होते हुए भी राजशेखर विलास" की सी ओजस्विता जो पाठकों को मुग्ध कर सके, इस में नहीं है। इस में भक्ति एवं विरक्ति के जो वर्णन मिलते हैं वे "राज-शेखर विलास" के वर्णन के सामने फीके लगते हैं।

अब देखें, षडक्षर कवि की तीसरी कृति "शबर शंकर विलास" कैसी है। संभवतः इस कृति के निर्माण करने के समय तक कवि की उम्र ढल चुकी थी। अन्य दो कृतियों में जो चुस्ती देखते हैं वह इस में नहीं दिखती कवि यह सोचकर, कि वह शिवजी की पंचविंशति लीलाओं में से एक को अपने काव्य की वस्तु बनाकर मैंने इस कृति का निर्माण किया है,—संतुष्ट हो गया है। कवि मात्र संतुष्ट है, पाठकों को तो इतने से संतोष नहीं मिलता। कथा यों है—"अर्जुन बनवास के समय पाशुपातास्त्र प्राप्त करने के लिए इंद्रकील पर्वत पर तपस्या कर रहा है। तपस्या से संतुष्ट शिवजी उन्हें पाशुपातास्त्र देते हैं। यही कथावस्तु है। इसी को भारवी ने संस्कृत में विस्तृतरूप से सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है "किरातार्जुनीय" के नाम से। कन्नड के महाकवि पंप और नारणप्पा ने इस सन्निवेश का बहुत ही सुंदर ढंग से वर्णन अपनी-अपनी कृतियों में किया है। कवि षडक्षरी का दृष्टिकोण इन तीनों से भिन्न है। इनके काव्य "शबर शंकर विलास" में किरात वेषधारी शिवजी ही नायक है। अर्जुन का पात्र गौण है। भक्त पराधीन शिवजी स्वयं आकर भक्त अर्जुन का उद्धार करते

है। यहाँ का लक्ष्य शिवजी का भक्त पर अनुग्रह करना दर्शाना मात्र है।

शिवजी को कथानायक के रूप चित्रित करने के कारण कथानक में क्रियालोप हो गया है। कथानायक का निर्दिष्ट लक्ष्य क्या है ? समझ लें कि उनका लक्ष्य भक्त को अभीष्टफल का प्रदान करना ही है। इस लक्ष्य को साधने के लिए एक नकली लड़ाई छेड़ते हैं। वह किरात के वेश में है। अर्जुन के अहंकार का निवारण करके उन्हें तद्वारा शुद्ध बनाकर उनका उद्धार करते हैं। कथा छोटी है। सो भी नकली और झूठी। क्योंकि शिवजी को अर्जुन को पराजित करने की इच्छा नहीं; न उसे पराजित करके ही छोड़ें—ऐसा आग्रह भी नहीं। उन्हें मालूम है कि अर्जुन उनका परम भक्त है। इससे वीररस के निरूपण करने की गुंजायश ही नहीं रह गयी है। यह ऐसा लगता है कि पिता पर गुस्सा करके इच्छापूर्ति करने पर तुले हुए बच्चे का सा लगता है, यहाँ का यह सन्निवेश।

शबरशंकर विलास का कथानक छोटा होने के कारण वर्णन प्रधान हो गया है। बाणभट्ट की कादंबरी की तरह यहाँ भी वर्णन कथानक का अनुचर हो गया है। इसका प्रथम परिच्छेद केवल वर्णन ही वर्णन है। ईश्वर स्तुति, आद्य (पुरातनों की) स्तुति, काव्य प्रशंसा, समुद्र वर्णन, हिमालय का वर्णन, शिवजी के आस्थान का वर्णन, आदि-आदि का वर्णन ही प्रथम परिच्छेद में भर गया है। इस परिच्छेद के अन्त में शिवजी गिरिजा के साथ बैठे दर्शन देते हैं। दूसरे परिच्छेद में इंद्रकील पर्वत का विस्तृत रूप से वर्णन और वहाँ के तपोवनों एवं तपस्यारत अर्जुन का वर्णन है। मगर तपस्वी अर्जुन का वर्णन एक पद्य ही में समाप्त हो जाता है। यों तो काव्य में लगातार वर्णन है। कभी-कभी ये वर्णन सुन्दर भी बन पड़े हैं। जहाँ वर्णना सौंदर्य दृष्टिगत होता है वहाँ कवि पूर्व कवियों के ऋणी हैं। अर्जुन की तपस्याको भंग करने के उद्देश्य से इंद्र आते हैं और कहते हैं—"तुम सुकुमार हो, तुम से इतना भयंकर तप कैसे संभव है ? अल्प तपस्या पर शिवजी संतुष्ट होंगे ?" यह बात हरिहर कवि के "गिरिजा कल्याण" में उन्होंने गिरिजा के कठोर तपोव्रत की परीक्षा करने के लिए आये वटुवेष-धारी शिवजी के मुँह से कहलायी है। इसी को षडक्षरी ने यहाँ प्रस्तुत किया है। परंतु मूल में जो मार्मिकता हरिहर के कहलाने में है वह यहाँ नहीं दिखती है।

अर्जुन के तप-तेज के कारण झुलसे अन्य तपस्वियों की दशा के वर्णन में भी हरिहर का अनुसरण है। अर्जुन के द्वारा मूकदानव का संहार करने के बाद वह मृत शिकार किसका स्वत्व है—इस बात को लेकर चर्चा शुरू होती है। शिवजी के कठोर वचनों से अर्जुन आगबबूला हो जाता है। इस प्रसंग का वर्णन बहुत सुन्दर बन पड़ा है। इस सन्निवेश के वर्णन में कवि कुमारव्यास का बहुत अधिक ऋणी है।

एक कवि दूसरे कवि के ऋणी है, कहने मात्र से वह बड़ा यह छोटा है ऐसा सोचना नहीं चाहिए। सभी कवि अपने पूर्व कवियों के खजाने के ऋणी हैं ही। उनसे कुछ न कुछ लिया अवश्य है। इस शृंखला में षडक्षरी भी एक कड़ी है। वह प्रतिभा सम्पन्न है, सुन्दर शब्द शिल्प प्रतिमा प्रस्तुत करने में चतुर हैं। अपने कलानैपुण्य एवं लोकानुभव से पाठकों को चकित कर देते हैं। "पुराकवीनां गणना प्रसंगे" यह कवि "कविष्टिकाधिष्टित" न होने पर भी एक श्रेष्ठ कवि अवश्य हैं।

कुमारव्यास युग के अन्य वीरशैव कवि :

कुमारव्यास के युग में अनेक वीरशैव कवि हो गये हैं। उन सभी के बारे में विवरण देना या विवेचना करना दुःसाध्य है। सभी के विषय में विवरण देने की आवश्यकता भी नहीं। फिर भी कुछ कवियों के विषय में, जिनके नाम उल्लेखनीय हैं, उनके तथा उनकी कृतियों के बारे में, कुछ परिचय स्थूल रूप से करा देना ठीक मालूम होते हैं। इस युग के आरंभ में (1413) एक मल्लण्णा नामक व्यक्ति हुए जिन्होंने वीरशैव पंचाचार्यों में एक रेवणसिद्ध के विषय में काव्य रचना की जिसका नाम "रेवणसिद्ध काव्य" है। उन्होंने इसे भामिनी षट्पदी में लिखा है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि इस काव्य का निर्माण इनसे पहले लिखित काव्य के आधार पर किया है। रेवण के विषय में लिखनेवाले कवियों में एक भी ऐसा नहीं जो कवि हरिहर के प्रभाव से प्रभावित न हो। रेवण सिद्ध के बारे में जिस किसी ने लिखा है, उन सबके लिए हरिहर कवि के "रेवण सिद्धेश्वर रगळे" पर निर्भर रहना आवश्यक है ही। एक सौ एक विरक्तों में एक "करस्थलद नागिदेव" (यह नागलिंग के नामक से भी जाने जाते हैं) ने (1470) "नागिदेव त्रिविधि" नामक 31 त्रिपदियों का एक काव्य लिखा है जो वीरशैव सिद्धांत को प्रतिपादन करता है। करीब 1650 के समय में एक पर्वत शिवयोगी नामक विरक्त था जिन्होंने इसकी टीका लिखी है। इससे मालूम होता है कि इस छोटे से ग्रंथ का कितना आदर रहा। नागिदेव के समसामयिक एक बत्तलेश्वर था जिन्होंने रामायण लिखी है। यह भामिनी षट्पदी में है, वाल्मीकि से भिन्न होकर शैवमत के आवरण से वेष्टित है। फिर भी यह प्रशंसनीय है कि एक शैव कवि ने वैदिक ग्रंथ को प्रस्तुत कर परमत सहिष्णुता का प्रदर्शन किया है। यह बत्तलेश्वर एक सौ एक विरक्तों में से एक हैं। नीतिसार की एक प्रति में इस कवि को कालिदास आदि महाकवियों की पंक्ति में गिना कर इन्हें "वरकवि बत्तलेश्वर" कहकर गौरवान्वित किया है। यह खुशी की बात है। कर्नाटकियों की परमत सहिष्णुता का यह एक उज्ज्वल उदाहरण है।

पंद्रहवीं सदी के लौकिक कवियों में "चतुरास्य-बोम्मरस" (1450) "कल्लरस" (1450), और "कविलिंग" (1490)—ये तीनों गण्य हैं। बोम्मरस ने 130 कंद-पद्यों में "चतुरास्य" नामक एक कोश ग्रंथ लिखा है। इसमें उन्होंने देशी, तद्भव और तत्सम शब्दों के अर्थ दिया है। इस ग्रंथ का अनुशीलन करने पर ऐसा लगता है कि उन्होंने केशिराज के धातुपाठ का उपयोग किया है कहा जाता है कि उन्होंने तिप्परस नामक एक ब्राह्मण की इच्छा के अनुसार इस ग्रंथ की रचना की। कल्लरस ने "जनवश्य" नामक कामशास्त्र लिखा है। कवि ने बताया है कि विजयनगर के राजा मल्लिकार्जुन ने इसे अपनी प्रेयसी को बतलाया था, जिससे इस "जनवश्य (कामशास्त्र)" ग्रंथ का दूसरा नाम "मल्लिकार्जुन विजय" भी है। "मदन तिलक" एक और नाम से भी इसे पुकारते हैं। यह ग्रंथ शर, कुसुम, और भोग षट्पदियों में लिखा गया है। कवि ने वात्स्यायन आदि के कामसूत्रों का इस ग्रंथ में संग्रह किया है। कविलिंग सालुवराजा नरसिंग के आस्थान में कवि थे। इन्होंने शृंगाररस प्रधान कुछ गीतों की रचना की है। कहा जाता है कि यह कामशास्त्र में प्रवीण थे। इनके पद्यों में कुछ पद्य पंचपादोंवाले वृत्त भी हैं।

सोलहवीं सदी के पूर्वार्ध में विरुपराजा (1519 ?), ओदुव गिरिय (1525), और बोम्बेय लक्क (1508 ?) इन कवियों ने सांगत्य में ग्रंथ रचे हैं। विरुपराज ने "त्रिभुवन तिलक" लिखा है जिसमें तिरसठ पुरातनों में एक चेरमांकनृप की कथा है। कवि ने स्वयं बताया है कि इस कथा को कवि ने अपनी पत्नी को कह सुनाया था। इसमें सीमित परंतु सुन्दर वर्णन हैं जो बहुत ही हृदयंगम है। रचना में वैविध्य नहीं है। ओदुव गिरिय ने "सानंद गणेश सांगत्य", "हरिश्चन्द्र सांगत्य"—नामक दो ग्रंथों की रचना की है। प्रथम ग्रंथ को कुमार पद्मरस से और दूसरे ग्रंथ को राघवांक से उद्धृत किया है। मूल के षट्पदी छन्द में लिखित काव्य वस्तु को सांगत्य छन्द में प्रस्तुत करना इनकी विशेषता है। दोनों ग्रंथ करीब 459 पद्योंवाले छोटे-छोटे ग्रंथ हैं। संग्रह करने में यह कवि चतुर है, आदर के पात्र भी। बोम्बेयलक्क ने "हरिश्चन्द्र सांगत्य" लिखा है। यह 570 पद्योंवाला ग्रंथ है। सांगत्य छन्द में लिखा गया है। काव्य सरल और सुन्दर है। इसका कारण है कि भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से कवि राघवांक का ऋणी है।

सोलहवीं सदी के बीच (1550) में चेन्नबसवांक नामक एक कवि रहे जिन्होंने सुप्रसिद्ध वीरशैव संत भक्तिन् महादेवी अक्का के जीवन चरित को "महादेवि अक्का का पुराण" लिखा है। इनके पिता रुद्र कवि नाग भूषणार्य थे; इनके गुरु व्याघ्रा-जिनांबर कथाधारी चिदानंद यति बसवराज थे। इन्होंने अपनी कृति में पूर्व कवि हरिहर राघवांक, भृंगराज, करस्थली नागिदेव—आदि का आदरपूर्ण स्मरण किया है। इन्होंने "महादेवि अक्का का पुराण" लिखा है। यह 1600 पद्योंवाला बृहत् ग्रंथ है। षट्पदी छन्दों के विभिन्न छन्दों भेदों और कहीं-कहीं सांगत्य छन्द का भी इसमें समावेश हो गया है। गुरु की आज्ञा के अनुसार कवि हरीश्वर ने जिसे रगळॆ छन्द में लिखा था उसे षट्पदी छन्दी में इन्होंने लिखा—ऐसा कवि ने स्वयं बताया है। हरि-हर का अनुकरण करने के कारण महादेवि अक्का की शादी कौशिक से हो जाती है। अन्य वीरशैव पुराणों की तरह यहाँ भी अनेक वीरशैव शरणों की कथाएँ कही गयी हैं। इस महादेवी अक्का के पुराण में कहने लायक काव्य गुण तो नहीं है; यत्र तत्र थोड़ा बहुत चमत्कार परिलक्षित होता है।

सोलहवी सदी के अंत में अण्णाजी (करीब 1600) नामक एक कवि थे। इन्होंने "सौंदर विलास" नामक काव्य लिखा है। इनके पिता का नाम अण्णयभूप था, इसलिए ऐसा लगता है कि यह कवि राजवंशी होंगे। कवि ने बताया है कि शंकरेश के अनुग्रह और आज्ञा से उन्होंने अपने इस काव्य को रचा है। संभवत: शंकरेश कवि के गुरु होंगे। तिरसठ पुरातनों में एक सौंदर नवि की कथा इस काव्य की कथावस्तु है। वार्धक षट्पदी में काव्यधारा निरर्गल बह चली है।

सोलहवीं सदी के दो और कवियों के नाम उल्लेखनीय है। इनमें एक लिंग मंत्री है जिन्होंने "कब्बिगर कैपिडी" नामक एक कोश ग्रंथ की रचना की है। इसे वार्धक षट्पदी छन्द में लिखा। इनका समय 1530 है। इन्होंने अपने को "संगीत निपुण, और बहु लिपिज्ञ" बताया है। एक सौ पद्योंवाले इस ग्रंथ में प्राचीन कन्नड (हळॆगन्नड) का अर्थ दिया गया है। कन्नड कोशों की पंक्ति में इस ग्रंथ का भी एक प्रमुख स्थान है। उत्तरदेश के एक बसवलिंग देवरु (1600) का नाम उल्लेखनीय है।

इन्होंने "बसवेश्वर पुराण कथा सागर", "भैरवेश्वर काव्य कथा सागर", "उचित कथाएँ' —इन तीन ग्रथों की रचना की है। पहलेवाले में 464 कथाएँ, दूसरे में 316 कथाएँ, तीसरे में 74 कथाएँ हैं। पहले के सभी वीरशैव ग्रंथों की छानबीन करके वहाँ की सभी कहानियों का संग्रह करके अपनी इन कृतियों का निर्माण किया हैं। यह वीर-शैव शरणों की कथाओं का एक बृहत् कोश है। शरणों के विषय में अध्ययन करने के इच्छुकों के लिए यह अत्यंत उपयोगी है।

सत्रहवीं सदी के आरंभ में (1616) एक हरीश्वर कवि हुए। यह यलंदूर मठाधिपति तोटदार्य का शिष्य है। हरिहर देव इनका एक दूसरा नाम भी है। इनसे पहले एक हरिहर कवि हुए थे; इसलिए इन्हें हरिहर—दूसरे कहते हैं। वह हंपी का हरिहर था; यह यलदूर का हरिहर है। इनके गुरु थे वृषभपुर के आगमज्ञ सिद्धदेव। गुरु की आज्ञा से इन्होंने "प्रभुदेव का पुराण" लिखा। इसमें प्रभुदेव अल्लम की कथा है, इस वजह से इसमें अनेक शिव शरणों की कथाएँ भी जुड़ गयी है। यह करीब 1475 पद्यों का विशाल ग्रंथ है, और षट्पदी छन्दों (भेदों) में लिखा गया है। इसका एक दूसरा नाम "प्रास रत्नाकर" भी है। इसमें पर्याप्त मात्रा में शब्द चित्र भी देखने को मिलते हैं। *अन्य काव्य गुणों की दृष्टि से* इसमें कोई खास बात नहीं है।

करीब 1650 में एक चन्नणा "वीरेश्वर चरित" लिखा है। कवि ने अपने को "सुविवेकी रमिकदेव चन्नण सत्कविराय" कहा है। इन्होंने कवि राघवांक रचित "वीरेश चरित" को षट्पदी छन्द से सांगत्य में परिवर्तित किया है। इसमें कवि ने कोई विशेष अपनी विशिष्टता का प्रदर्शन नहीं किया हैं।

अठारहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक की अवधि में कन्नड साहित्य का नवीन युग आरंभ होता है। इस अवधि में उल्लेखार्ह कोई वीरशैव कवि दृष्टिगत नहीं होता। ऊसर में उगे नाटे कद के छोटे पेड़ों की तरह कुछ कवि यत्र तत्र दिखते है। एक महादेव कवि हुए जिन्होंने "ब्रह्मोत्तर खंड" लिखा; नूरोंन्द एक कवि हुए जिन्होंने "सौंदर" काव्य लिखा। "वीरभद्र विलास" लिखनेवाले निश्चिन्तात्म, "वीर बसव चरित" के लेखक शंकर कवि, ये और अठारहवीं सदी में भी "शरण बसव चरित" को लिखनेवाले मावनूरु चेन्न बसव और "सिद्धलिंग काव्य" के लेखक बसव कवि—ये सब उन्नीसवीं सदी में भी दृष्टिगोचर होते हैं। उन्नीसवीं सदी के अंतिमांश में बसप्पशास्त्री हुए। इन्होंने "सावित्री चरित", "दमयती स्वयंवर", "भर्तृहरि सुभाषित", "नीतिसार संग्रह", "रेणुका विजय"—इन काव्यों की रचना की और "शाकुंतल", "चंडकौशिक", "उत्तर राम चरित", "रत्नावली", "शूर सेन चरित"—इन नाटकों की भी रचना की। कहा जा सकता है कि अब तक नवीन युग कन्नड साहित्य का आरंभ हो गया। भारत वाचन में अद्वितीय गमकी के रूप में सुप्रसिद्ध और काव्य रचना समर्थ बसप्पशास्त्री मैसूर के महाराजा के आस्थान कवि थे। बहुत मधुर, नादमय और भाव भरी दृष्टि से काव्य सृजन कर कीर्तिशाली बने इस कवि के काव्यों की विमर्शा करना आधुनिक युग के कवि चरितकारों का काम है।

●●●